सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

३०

(फरवरी-जून १९२६)

सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

३०

(फरवरी-जून १९२६)

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय

भूमिका

इस खण्डमें ११ फरवरीसे लेकर १४ जून, १९२६ तककी सामग्री दी गई है। इस साल गांधीजीने विश्राम करनेके उद्देश्यसे सत्याग्रह आश्रमकी शरण ली थी, जहाँ वे चुपचाप अपनी कर्म-साधनामें लगे रहे। स्वास्थ्य-सुधारके लिए वे मसूरी जानेवाले थे, लेकिन फिर उन्होंने यह विचार भी त्याग दिया। इसी प्रकार अमेरिका, चीन और फिनलैंडसे आये आमन्त्रणोंको भी उन्होंने अन्ततः अस्वीकार कर दिया, क्योंकि वे मानते थे कि "अगर मेरे सन्देशमें कोई शक्ति है तब तो मेरी शारीरिक उपस्थितिके बिना भी लोग उसे महसूस करेंगे ही" (पृष्ठ ५८२)। अलबत्ता भारतीय किसानोंके कल्याणकी चिन्ता उन्हें महाबलेश्वर खींच ले गई, जहाँ उन्होंने बम्बईके गवर्नरके साथ भारत सरकार द्वारा प्रस्तावित कृषि आयोगके सम्बन्धमें बातचीत की।

आश्रममें वे 'आत्मकथा' के अध्याय लिखते रहे, जन-हितसे सम्बन्धित समस्याओंपर 'नवजीवन' और 'यंग इंडिया' में अपने विचार व्यक्त करते रहे और बीसियों प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध लोगोंके साथ वैयक्तिक, सामाजिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्वके विषयोंपर पत्राचार करते रहे।

दक्षिण आफ्रिकाकी जाति-विद्वेषकी समस्यासे उनका मन बड़ा आन्दोलित रहा — इतना कि आवश्यकता होनेपर उन्होंने वहाँ जानेकी भी तत्परता बताई। प्रतिक्रियावादी एशियाई विधेयक उनकी दृष्टिमें "विश्वासघात" था; डॉ० मलानका यह प्रस्तावकी समितिके सामने केवल पैडिसन शिष्टमण्डलकी ही मार्फत बयान पेश किये जायें, भारत सरकारकी इससे मूक सहमति उन्हें बहुत नागवार गुजरी। लेकिन जब सरकारके प्रयत्नोंसे क्षेत्र आरक्षण विधेयक स्थगित हो गया तो उन्होंने उसकी इस "कूटनीतिक विजय" के लिए उसे बधाई दी और उससे भारतीयोंकी न्याय और समानताकी माँगोंपर आग्रह रखनेका अनुरोध किया। उनका यह दृढ़ मत था कि प्रवासी भारतीयोंकी मुक्तिका उपाय अन्ततः उनके अपने ही हाथोंमें है। उन्होंने लिखा "वे एक हों और सदा एक होकर रहें; और सबसे बड़ी बात तो यह है कि वे सबके हित-साधनके लिए कष्टसहन करनेके संकल्प और दृढ़ताका परिचय दें" (पृष्ठ ४०६)। ५ मईको अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी साबरमतीकी बैठकमें दक्षिण आफ्रिकासे सम्बन्धित गांधीजीका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। उन्होंने दक्षिण आफ्रिकी भारतीय कांग्रेसको आश्वस्त किया कि सी० एफ० एन्ड्रयूज और स्वयं उनसे रंग-भेद विधेयकके खिलाफ भारतमें जो-कुछ भी करते बनेगा, वे अवश्य करेंगे। लेकिन साथ ही प्रवासी भारतीयोंसे वे ऐक्यबद्ध रहने और "अपने भीतर सत्याग्रहकी शक्तिका विकास" करनेकी अपेक्षा भी रखते थे (पृष्ठ ५४०-४१)। रंग-भेद विधेयकके पास होनेपर उन्होंने उसे वर्ग-

क्षेत्र-आरक्षण विधेयकसे भी बुरा बताया, क्योंकि इससे "दक्षिण आफ्रिकाके सारे मूल निवासी गोरे प्रवासियोंके विरोधी हो जायेंगे" (पृष्ठ ४८०)। उनके लेखे ये दोनों विधेयक एक कुप्रथाको कानूनी मान्यता देते थे और इसलिए उन्होंने इनकी तीव्र निन्दा की। भारत सरकारने अपनी विज्ञप्तिमें जो आश्वासन दिया उसे उन्होंने "धोखेकी टट्टी" माना (पृष्ठ ५९७)।

रंग-भेदकी समस्याकी श्रेणीमें ही वे अस्पृश्यताकी समस्याको भी रखते थे। अपने लेखों और रचनात्मक कार्यों द्वारा वे इस बुराईपर तीव्र प्रहार करते रहे। 'यंग इंडिया'में अस्पृश्योंकी दुर्दशाका वर्णन करते हुए उन्होंने उनकी स्थितिकी तुलना दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंकी स्थितिसे की, क्योंकि दोनोंको मानवीय अधिकारोंसे वंचित रखा जा रहा था (पृष्ठ ४१०)।

वे शराब तथा मादक द्रव्योंके सेवन-जैसी अन्य सामाजिक बुराइयोंका भी विरोध करते रहे। हर्बर्ट एन्डर्सनकी त्रैमासिक पत्रिका 'प्रोहिबिशन'के लिए भेजे सन्देशमें शराबकी दुकानोंपर धरना देनेका औचित्य सिद्ध करते हुए उन्होंने कहा कि "अन्तिम और स्थायी उपाय पूर्ण मद्य-निषेध ही है, क्योंकि शराबीको एक प्रकारका रोगी ही समझना चाहिए, जो अपनी सहायता आप करनेमें पूरी तरह असमर्थ होता है। शराबियोंमें से बहुत-से लोग . . . बाहरी सहायताका खुशीसे स्वागत करेंगे" (पृष्ठ २३७-८)।

देशमें व्याप्त साम्प्रदायिक वैमनस्य और अविश्वासके वातावरणसे गांधीजीकी आत्मा अत्यन्त व्यथित थी। दोनों बड़े समुदायोंके बीचकी खाई दिन-दिन चौड़ी होती जा रही थी और वे महसूस कर रहे थे कि उसे पाटनेमें वे बिलकुल असमर्थ हैं। उन्होंने बहुत व्यथाके साथ लिखा: "आज मेरा [कुछ] कहना निरर्थक है" (पृष्ठ ४०१)। देशमें छाये विभेदके वातावरणसे कांग्रेस भी बची नहीं रह सकी। स्वयं गांधीजी कौंसिल-प्रवेशके विरुद्ध थे (पृष्ठ ३९९)। लेकिन सबसे अधिक दुखी और निराश वे तब हुए जब अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी ४ और ५ मईकी बैठकोंमें साबरमती-समझौता टूट गया और स्वराज्यवादियों तथा प्रतिसहयोगियोंने अन्ततः मिल-जुलकर काम करना अस्वीकार कर दिया। मौलाना आजादके नाम अपने पत्रमें उन्होंने लिखा: "हमारे शीर्षस्थ नेता भी एक-दूसरेपर अविश्वास करते हैं" (पृष्ठ ४५१)।

इस निराशा और पस्तीके बीच गांधीजीका ध्यान स्वभावतः अपने रचनात्मक कार्यक्रमकी ओर गया और वे निरन्तर बढ़ते हुए उत्साहसे इसे सम्पन्न करनेमें जुट गये। 'नवजीवन' और 'यंग इंडिया'में वे इस बातको बार-बार समझाते रहे कि भारतकी गरीबीका इलाज चरखा ही है। उन्होंने चरखेके अर्थशास्त्रका सविस्तार विवेचन किया। उदाहरणके लिए हम कैथरीन मेयोके साथ हुई १७ मार्चकी भेंटवार्ता (पृष्ठ १२७-३३) और फिर २६ मार्चका उन्हींके नाम लिखा उनका पत्र

(पृष्ठ १९१–९२) ले सकते हैं। उनके हृदयकी गहराइयोंमें आस्थाके जलते-दीपका प्रकाश अपने शंकालु सहयोगियोंको दिये इस उत्तरमें दिखाई देता है: "कोई भी सुधार आरम्भमें चाहे जितना असम्भव प्रतीत हो, उसे सम्पन्न करनेके लिए एक ही व्यक्ति पर्याप्त होता है।...चाहे पुरस्कार-स्वरूप उस व्यक्तिको उपहास, तिरस्कार और मृत्यु ही मिले और अकसर यही सब मिलता भी है। किन्तु उसकी मृत्यु भले ही हो जाये, उसका आरम्भ किया हुआ वह सुधार-कार्य कायम रहता है और वह आगे बढ़ता रहता है। वह अपने खूनसे उसकी जड़को पक्की बना देता है" (पृष्ठ ४०७)।

अहिंसामें भी उनका विश्वास उतना ही प्रबल, उतना ही अखण्ड था। वे मानते थे कि अहिंसा मानव-जीवनका श्रेय है और इसके लिए उसे प्रयत्न करना ही चाहिए। जब इस सिद्धान्तके आलोचकोंने इसकी व्यावहारिकतापर शंका की — जैसे कि "दूर देश अमेरिकासे" शीर्षक लेखमें — तब गांधीजीने उसका बड़ा स्पष्ट उत्तर दिया: "अगर हमें आगे बढ़ना है तो हमें इतिहासकी पुनरावृत्ति नही करनी चाहिए, बल्कि नये इतिहासका निर्माण करना चाहिए। हमें अपने पूर्वजों द्वारा छोड़ी गई विरासतको और भी समृद्ध करना चाहिए। अगर हम भौतिक जगत्‌में नये-नये आविष्कार और नई-नई खोजें कर सकते है, तो क्या आध्यात्मिक जगत्‌में अपनी असमर्थताकी घोषणा करना ठीक है? क्या उक्त अपवादोकी संख्या बढ़ाकर उन्हें आम बना देना असम्भव है? क्या यह जरूरी है कि इन्सान बननेसे पहले आदमी पशु बने ही और तब, यदि बन सके तो इन्सान बने" (पृष्ठ ४४७)?

स्वीडनके एक जिज्ञासुने असहयोग आन्दोलनकी आलोचना करते हुए एक लेख लिखा था। उसका उत्तर उन्होंने इन शब्दोंमें दिया: "अहिंसक असहयोग और पाश्चात्य संसारके ऐतिहासिक स्वातंत्र्य-संघर्षके बीच भी कोई साम्य नही है। असहयोग शरीर-बल अथवा घृणापर आधारित नही है।...यह तो आत्म-शुद्धिका आन्दोलन है। इसलिए इसमें अत्याचारीको अपनी भूलका एहसास कराकर सही रास्तेपर लानेका प्रयत्न किया जाता है" (पृष्ठ ६)। वे इस विचारसे सहमत नहीं थे कि भारतका यह अहिंसात्मक आन्दोलन विफल हो गया है, क्योंकि "भारतके स्वातंत्र्य-संघर्षमें अहिंसाको एक स्थायी स्थान प्राप्त हो गया है" (पृष्ठ ६)। और गाधीजीने तब जो-कुछ कहा था, वह सत्य कहा था, इसकी साक्षी परवर्ती घटनाक्रम देता है।

इस खण्डमें यत्र-तत्र पत्र-रूपी मोती भी जड़े हुए हैं। इनमें से कुछ आश्रमके बच्चों और कुछ आश्रमवासी भाई-बहनोंको, कुछ दूर देशोंमें रहनेवाले अनचीन्हे अनजाने लोगोंको तथा कुछ सहकर्मियों और सहयोगियोंको लिखे गये हैं। इनके विषय विविध और व्यापक है। इन पत्रोसे प्रशंसक-आलोचक, बाल-वृद्ध, स्वदेशी-विदेशी समस्त मानवोंकी कल्याण-साधनाके लिए उनकी चिन्ता परिलक्षित होती है।

निराशा, अशान्ति या आपदाओंके बीच शान्ति प्राप्त करनेका उनके पास एक अमोघ उपाय था। वे मानते थे कि: "शान्ति तो अपने भीतरसे ही प्राप्त होगी और उसका रास्ता है, अपने मनको प्रभुमें लगाना और उसमें अटूट विश्वास रखना। जो व्यक्ति यह अनुभव करता है कि ईश्वर उसके भीतर विद्यमान है और वह बराबर उसके साथ है, उसे एकाकीपनका अनुभव हो ही नहीं सकता। मुझे जो-कुछ शान्ति मिली है, इसी विश्वासके बलपर मिली है कि हर चीजके पीछे ईश्वरका हाथ है। फिर विपत्तियाँ विपत्तियाँ नहीं रह जातीं। वे हमारी आस्था और दृढ़ताकी परीक्षा करती हैं" (पृष्ठ ६०५-६)।

चाहे व्यक्तिगत जीवन हो या सार्वजनिक जीवन, वे आत्मबलपर सबसे अधिक जोर देते थे। गुजरात महाविद्यालयके विद्यार्थियोंके सम्मुख बोलते हुए उन्होंने कहा: "संख्याके बलपर तो कायर लोग कूदते हैं। आत्मबलवाला मनुष्य अकेला जूझता है। इस विद्यापीठमें हम आत्मबलकी शिक्षा लेने आये हैं — सो इसमें साथ देनेवाला एक हो या अनेक, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। आत्मबल ही सच्चा बल है। और यह निश्चित मानिए कि यह बल तपश्चर्या, त्याग, दृढ़ता, श्रद्धा और नम्रता तथा विनयके बिना प्राप्त नहीं हो सकता" (पृष्ठ ६२२-२३)।

आभार

प्रस्तुत खण्डकी सामग्रीके लिए हम साबरमती आश्रम तथा स्मारक न्यास (साबरमती आश्रम प्रिज़र्वेशन ऐंड मेमोरियल ट्रस्ट) और संग्रहालय, नवजीवन ट्रस्ट और गुजरात विद्यापीठ ग्रन्थालय, अहमदाबाद; गांधी स्मारक निधि और संग्रहालय; तथा भारतीय राष्ट्रीय पुरातत्व अभिलेखागार (नेशनल आर्काइव्ज़ ऑफ इंडिया), नई दिल्ली; तथा श्रीमती मीराबहन, गाडेन, आस्ट्रिया; श्रीमती सुशीलाबहन गांधी, फिनिक्स, डर्बन; श्रीमती वसुमती पण्डित, सूरत; श्रीमती तेहमीना खम्भाता, बम्बई; श्री घनश्यामदास बिड़ला, कलकत्ता; श्री डाह्याभाई पटेल, धोलका; श्री शिवाभाई पटेल, बोचासन; श्री परशुराम मेहरोत्रा, नई दिल्ली; श्री महेश ए० पट्टणी, भावनगर; श्री हरिभाऊ गणेश पाठक, पूना; श्री शान्तिकुमार मोरारजी, बम्बई; तथा 'ए बंच ऑफ ओल्ड लैटर्स', 'बापुना पत्रो-४ : मणिबहेन पटेलने', 'बापुनी प्रसादी', 'बापूज़ लैटर्स टु मीरा', 'ग्लीनिंग्स', 'माई डियर चाइल्ड', 'पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद', 'विट्ठलभाई पटेल – लाइफ ऐंड टाइम्स' पुस्तकोंके प्रकाशकों और निम्नलिखित समाचारपत्रों और पत्रिकाओंके आभारी हैं – 'बॉम्बे क्रॉनिकल', 'फॉरवर्ड', 'गुजराती', 'हिन्दी नवजीवन,' 'हिन्दू', 'हिन्दुस्तान टाइम्स', 'इंडियन रिव्यू', 'लीडर', 'नवजीवन', 'यंग इंडिया'।

अनुसन्धान और सन्दर्भ-सम्बन्धी सुविधाओंके लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी पुस्तकालय, इंडियन कौंसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स पुस्तकालय, सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालयके अनुसन्धान एवं सन्दर्भ विभाग, नई दिल्ली और श्री प्यारेलाल नैयर, नई दिल्ली हमारे धन्यवादके पात्र हैं। कागज-पत्रोंकी फोटो-नकल तैयार करनेमें सहायता देनेके लिए हम सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय, नई दिल्लीके फोटो-विभागके आभारी हैं।

पाठकोंको सूचना

हिन्दीकी जो सामग्री हमें गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मिली है उसे अविकल रूपमें दिया गया है। किन्तु दूसरोंके द्वारा सम्पादित उनके भाषण अथवा लेख आदिमें हिज्जों-की स्पष्ट भूलें सुधार दी गई हैं।

अंग्रेजी और गुजरातीसे अनुवाद करते समय भाषाको यथासम्भव मूलके निकट रखनेका प्रयत्न किया गया है। जो अनुवाद हमें प्राप्त हो सके हैं, हमने उनका उपयोग मूलसे मिलाने और संशोधन करनेके बाद किया है। नामोंको सामान्य उच्चा-रणके अनुसार ही लिखनेकी नीतिका पालन किया गया है। जिन नामोंके उच्चारणके बारेमें संशय था, उनको वैसा ही लिखा गया है जैसा गांधीजीने अपने गुजराती लेखोंमें लिखा है।

मूल सामग्रीके बीच चौकोर कोष्ठकोंमें दिये गये अंश सम्पादकीय हैं। गांधीजीने किसी लेख, भाषण आदिका जो अंश मूल रूपमें उद्धृत किया है, वह हाशिया छोड़कर गहरी स्याहीमें छापा गया है। भाषणोंकी परोक्ष रिपोर्ट तथा वे शब्द जो गांधीजीके कहे हुए नहीं हैं, बिना हाशिया छोड़े गहरी स्याहीमें छापे गये हैं। भाषणों और भेंटकी रिपोर्टोंके उन अंशोंमें जो गांधीजीके नहीं हैं, कहीं-कहीं कुछ परिवर्तन किया गया है और कहीं-कहीं कुछ छोड़ भी दिया गया है।

शीर्षककी लेखन-तिथि दायें कोनेमें ऊपर दी गई है। जहाँ वह उपलब्ध नहीं है वहाँ अनुमानसे निश्चित तिथि चौकोर कोष्ठकोंमें दी गई है और आवश्यक होनेपर उसका कारण स्पष्ट कर दिया गया है। जिन पत्रोंमें केवल मास या वर्षका उल्लेख है उन्हें आवश्यकतानुसार मास या वर्षके अन्तमें रखा गया है। शीर्षकके अन्तमें साधन-सूत्रके साथ दी गई तिथि प्रकाशनकी है। गांधीजीकी सम्पादकीय टिप्पणियाँ और लेख जहाँ उनकी लेखन-तिथि उपलब्ध है अथवा जहाँ किसी निश्चित आधारपर उसका अनुमान किया जा सका है, वहाँ लेखन-तिथिके अनुसार और जहाँ ऐसा सम्भव नहीं हुआ है वहाँ उनकी प्रकाशन तिथिके अनुसार दिये गये हैं।

साधन-सूत्रोंमें 'एस० एन०' संकेत साबरमती संग्रहालय, अहमदाबादमें उपलब्ध सामग्रीका, 'जी० एन०' गांधी स्मारक निधि और संग्रहालय, नई दिल्लीमें उपलब्ध कागज-पत्रोंका और 'सी० डब्ल्यू०' सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय (कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी) द्वारा संगृहीत पत्रोंका सूचक है।

'सत्यना प्रयोगो अथवा आत्मकथा' और 'दक्षिण आफ्रिकाना सत्याग्रहनो इतिहास' के अनेक संस्करण होनेसे उनकी पृष्ठ संख्याएँ भिन्न हैं; इसलिए हवाला देनेमें केवल उनके भाग और अध्यायका ही उल्लेख किया गया है।

सामग्रीकी पृष्ठभूमि देनेके लिए मूलसे सम्बद्ध कुछ परिशिष्ट दिये गये हैं। अन्तमें साधन-सूत्रोंकी सूची और इस खण्डसे सम्बन्धित कालकी तारीखवार घटनाएँ दी गई हैं।

विषय-सूची

१. टिप्पणियाँ

विश्वासघात

जिस एशियाई विधेयकके पेश किये जानेकी आशंका है, वह समस्त दक्षिण आफ्रिकाके बारेमें गांधी-स्मट्स समझौतेका उल्लंघन है और नेटालके सम्बन्धमें तो विश्वासघात भी है। यह विश्वासघात कैसे है, यह बात दक्षिण आफ्रिकाके अखबारोंको लिखे अपने एक पत्रमें श्री एन्ड्रयूजने स्पष्ट बताई है। अभी-अभी 'इंडियन ओपिनियन' का जो अंक प्राप्त हुआ है, उसमें भी वह पत्र उद्धृत किया गया है। उसका प्रासंगिक अंश निम्न प्रकार है:

> १८६० से नेटाल सरकार इकरारनामेके अधीन बहुत-से भारतीयोंको भारतसे दक्षिण आफ्रिका लाई। उन लोगोंके भारतसे प्रस्थान करनेसे पहले भारत सरकार और नेटाल सरकारके बीच तय पाया गया था कि अगर वे गन्नेके खेतोंमें काम करनेका अपना पाँचसाला इकरार पूरा कर दें तो उन्हें नेटालमें कुछ अधिकार दिये जायें, जिनमें जमीन और अचल सम्पत्ति खरीदनेकी खुली छूटके साथ-साथ अधिवासका अधिकार भी शामिल था। नेटाल सरकार भारतीय गिरमिटिया मजदूर पानेके लिए बहुत आकुल थी, सो उस समय उसने यह भी स्वीकार कर लिया कि इन मजदूरोंके साथ-साथ स्वतन्त्र भारतीयोंके रूपमें भारतीय व्यापारियोंको भी नेटाल आने दिया जाये।
>
> इन भारतीय मजदूरोंने बहुत भारी कीमत चुकाकर इन अधिकारोंका सौदा किया था। कारण, पाँचसाला गिरमिट प्रथा ऐसे गम्भीर नैतिक दोषोंसे भरी हुई थी कि अब इसे एक भ्रष्ट श्रम-प्रणाली मानकर बिलकुल समाप्त कर दिया गया है। नेटाल सरकार अभी-अभी बिलकुल हालतक अपनी ओरसे अनुबन्धकी शर्तोंका पालन करनेकी भरसक कोशिश करती रही है। दक्षिण आफ्रिका अधिनियमके खण्ड १४८ से स्पष्ट है कि नेटाल सरकार द्वारा किये गये करार संघपर भी लागू होते हैं। ('इयर बुक,' पृष्ठ ७४)

आर्थिक भ्रान्ति

भारतीय प्रवासियोंके खिलाफ अकसर जो आर्थिक दलील दी जाती है, उसका समाधान करते हुए उसी पत्रमें श्री एन्ड्रयूज कहते हैं:

> दक्षिण आफ्रिकाके अधिकांश लोगोंके मनपर यह छाप डाल दी गई है कि भारतीय प्रश्न आर्थिक दृष्टिसे एक बहुत गम्भीर समस्या है, किन्तु वास्तवमें यह उतनी गम्भीर नहीं है। सच तो यह है कि इसका समाधान पहले ही हो चुका है, क्योंकि [व्यापारके क्षेत्रमें] भारतीयोंकी स्पर्धा बढ़ नहीं रही है, बल्कि

कम होती जा रही है। डर्बन-जैसे नगरमें, जहाँ भारतीयोंकी आबादी सबसे अधिक है, १९२१ से १९२५ तक भारतीयोंकी सम्पत्तिमें कुल मिलाकर मोटे तौरपर सिर्फ ढाई लाख रुपयेकी मालियतकी वृद्धि हुई, जबकि यूरोपीयोंकी सम्पत्तिमें चालीस लाख रुपयेकी मालियतकी वृद्धि हुई। किन्तु डर्बन और उसके आस-पासके क्षेत्रोंमें भारतीयों और यूरोपीयोंका अनुपात ४ : ५ का है। मैं पहले ही बता चुका हूँ और यहाँ फिर बताना चाहूँगा कि १९२१ की जनगणनाके अनुसार प्रतिवर्ष जहाँ यूरोपीयोंकी आबादीमें ३९.८ प्रतिशतकी वृद्धि हुई, वहाँ भारतीयोंकी आबादीमें सिर्फ ६.१ प्रतिशतकी ही वृद्धि हुई। भारतीय बहुत बड़ी तादादमें उस देशको, फिर कभी वापस न जानेके इरादेसे, छोड़ रहे हैं। जो भारतीय वहाँ पहलेसे ही हैं, उनके अलावा औरोंको तो आने ही नहीं दिया जाता। दक्षिण आफ्रिका संघमें भारतीय पुरुषोंकी संख्या स्त्रियोंसे ज्यादा है। इसलिए जन्म-दरके ऊँचे होनेकी सम्भावना भी नहीं है। १९२१ में संघमें कुल मिलाकर केवल १,६१,००० भारतीय थे। अगर कहीं-कहीं भारतीय दुकानोंकी संख्या बढ़ रही है तो मैंने अपनी आँखों देखा है कि कुछ दूसरी जगहोंमें वह उतनी ही घट भी रही है। इसलिए आर्थिक भयका कारण ही क्या हो सकता है? अगर जल्दबाजी न की जाये तो यह समस्या अपने-आप हल हो जायेगी; और जैसे-जैसे समृद्धि-सम्पन्नता बढ़ती जायेगी (व्यापारकी वृद्धिके साथ-साथ इसका बढ़ना भी निश्चित ही है) श्रमिकोंका अभाव सर्वत्र महसूस किया जाने लगेगा और फिर तो इस देशको खुद ही उन अधिकांश भारतीयोंकी आवश्यकता अनुभव होने लगेगी जो अब भी उद्योग और कृषिके क्षेत्रमें वहाँ उपयोगी और ठोस काम कर रहे हैं। ऐसे समयमें इतने लाभदायक श्रमिकोंको देशसे बाहर निकालना, वास्तवमें लगभग एक अनर्गल बात जान पड़ती है।

श्री एन्ड्रयूज इतना और कहते तो ठीक ही होता कि दक्षिण आफ्रिकाके अन्य हिस्सोंमें एक भारतीयकी स्थिति डर्बनमें बसे भारतीयसे लाख दर्जे बुरी है। संघके अधिकांश हिस्सोंमें वह भूमिहीन है और उसे सिर्फ यूरोपीय भू-स्वामियोंकी कृपापर जीना पड़ता है। उसका एकमात्र अपराध यही है कि श्रमिक होनेके साथ-साथ वह व्यापार भी करता है और इस तरह ईमानदारीसे रोटी कमाता है। अगर निष्पक्ष दृष्टिसे देखा जाये तो एशियाइयोंके विरुद्ध जो चीख-पुकार मचाई जा रही है, उसका कारण सिर्फ विवेकशून्य रंगभेद और क्षुद्र व्यापारिक स्पर्धा ही है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ११-२-१९२६

२. बाकी पैसेसे खादी खरीदिए[1]

. . . जो भी हो, आप देखेंगे कि तीसरे दर्जेमें सफर करनेसे कितना पैसा बच जाता है। उस बचे हुए पैसेसे आप खादी खरीद सकते हैं।

अब इसपर मुझे यह याद आ जाता है कि मैंने [यात्राकी] यह कहानी क्यों शुरू की। मैं तीसरे दर्जेमें सफर कर रहा था। मैं सोच रहा था अभी-अभी दो भिखारी बच्चोंने कितना सुन्दर गाना गाया है और यदि टिकट कलक्टर इन आवारा बच्चोंको गाड़ीमें चढ़ने ही न दे तो ऐसे साहित्यका क्या होगा। तभी एक सज्जन, जो शिक्षित थे और साफ-सुथरे लिबासमें थे और मेरी ही तरह अपने हिस्से-भरकी जगहसे ज्यादा घेरे हुए थे, उठ बैठे और मुझसे पूछा "श्रीमन्! यदि मैं आपसे एक सवाल पूछूं तो आप बुरा तो नहीं मानेंगे?"

और उन्होंने सवाल एक नहीं अनेक किये। मुझे उन्हें तरह-तरहसे अनेक बार खादीका औचित्य समझाना पड़ा। यह सब बहुत दिलचस्प था और एक अद्‌भुत बात यह हुई कि उनकी शंकाओंका समाधान करते-करते इस विषयमें खुद मेरे ही विचार बहुत साफ हो गये।

पिछले कुछ वर्षोंसे सम्पादक तीसरे दर्जेकी यात्राके सुख-दुःखसे अपरिचित रहा है, इसलिए उसे तीसरे दर्जेसे सम्बन्धित अच्छे ढंगसे कही गई कहानियोंको अंकमें स्थान देते हुए बड़ा हर्ष होता है — विशेषकर तब जब कि उन कहानियोंका सम्बन्ध जन-साधारणके भाग्यचक्रसे होता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ११-२-१९२६

३. स्वीडनसे

एक स्वीडन निवासी सज्जन लिखते हैं:

हर हफ्ते आपका अखबार पाकर मुझे अतीव प्रसन्नता होती है और ऐसा लगता है, मानो मैं बराबर आपके सम्पर्कमें हूँ। 'यंग इंडिया' में मैं देखता हूँ कि आप सुदूरवर्ती देशोंके लोगोंके प्रश्नोंके भी उत्तर देते हैं और इससे मेरे मनमें यह खयाल आता है कि क्या आप मेरे प्रश्नोंके भी उत्तर देंगे। . . . क्या आप अपने अखबारके जरिये मुझे यह बतायेंगे कि अपने पहले कार्यक्रमकी

१. तीसरे दर्जेमें सफरके बारेमें लिखे च० राजगोपालाचारीके इस लेखके सिर्फ उसी प्रासंगिक अंशका अनुवाद यहाँ दिया गया है, जिसपर गांधीजीने टिप्पणी की थी।

सभी बातोंपर आप अब भी कायम हैं या नहीं? अखबारोंका कहना है कि आपने कई बातोंमें अपने विचार बदल दिये हैं, किन्तु असहयोगके लिए आप आज भी उतने ही उत्सुक हैं, जितने पहले थे? हमारे यहाँके सबसे मुख्य अखबारमें आपपर एक लेख निकला है। एक अलग कागजपर उसकी मुख्य बातोंका अनुवाद करके भेज रहा हूँ। मेरा खयाल है, उनसे सिद्ध होता है कि लोगोंमें भारतकी वर्तमान स्थितिके सही ज्ञानका बहुत अभाव है। वे नहीं समझते कि चूंकि अंग्रेजोंने भारतके जनसाधारणके चरित्रके हर उदात्त पक्षको कुचल देनेकी कोशिश की है, इसलिए अबतक वह जो-कुछ खो चुका है उसे एक दिन, एक महीने अथवा एक वर्षमें ही वह पुनः प्राप्त नहीं कर सकता। आज वह जिस धरातलपर खड़ा है, वहींसे उसे पुनर्निर्माणका कार्य शुरू करना है। यह काम बेशक धीरे-धीरे होगा, लेकिन जिन लोगोंको इस दिशामें उन्मुख करना है उनकी कैसी शानदार परम्पराएँ हैं!

मैं नहीं तय कर पा रहा हूँ कि उस लेखके जिन अंशोंका अनुवाद भेज रहा हूँ, आपको उनका उत्तर देनेका कष्ट देनेकी धृष्टता मुझे करनी चाहिए या नहीं। लेकिन, मैं जनताको आपके असली विचारोंसे अवगत कराना चाहता हूँ। . . . मैं समझता हूँ, आपका चरखा ही वह आधारशिला है, जिसपर भारतकी मुक्ति, उसकी आर्थिक समृद्धि और इन दोनोंके परिणामस्वरूप आध्यात्मिक "पुनर्जागरण"का भवन खड़ा करना है।

आपसे यह सब कहकर अगर मैंने मर्यादाका उल्लंघन किया हो तो मुझे क्षमा करेंगे। 'बाइबिल' में एक वाक्य है, "प्रेम भयको भगा देता है।" और मैं भारत तथा भारतीय जनतासे लगभग चालीस वर्षोंसे प्रेम करता आ रहा हूँ। यही कारण है कि मैंने यह पत्र इस तरह लिखा है।

पत्र-लेखकने उक्त लेखके जिस अंशका अनुवाद[1] करके भेजा है, वह इस प्रकार है:

गांधीका कट्टर आध्यात्मिक साम्राज्यवाद और पाश्चात्य सभ्यताके प्रति उनकी घृणा प्रतिक्रियावादी भारतका प्रतिनिधित्व करती है। उनका आदर्श सबसे अलग-थलग रहनेवाला प्राचीन ग्राम्य समाज है, शेष दुनियासे भारतका यह पूर्ण अलगाव आर्थिक आत्मनिर्भरताका परिणाम था। इसे प्राप्त करनेके लिए पाश्चात्य सभ्यताके बन्धनोंसे छुटकारा पानेके उपायके रूपमें गांधी घर-घरमें कताई करनेकी सलाह देते हैं। किन्तु दूसरी ओर वे स्पष्टतः रोटीकी राजनीति चला रहे हैं, अंग्रेजोंको सरकारी नौकरियोंसे पूरी तरह उखाड़ फेंकनेका प्रयत्न कर रहे हैं . . .। . . . इस बातमें कोई अत्युक्ति नहीं है कि भारतकी राजनीतिक जीवनी-शक्ति बहुत अधिक सीमातक पाश्चात्य सभ्यताके ही एक

१. यहाँ उद्धृत अंशके प्रासंगिक हिस्सोंका ही अनुवाद दिया जा रहा है।

उपादान अर्थात् रेलवेपर निर्भर करती है। इसी कारण घर-घर कताई करनेके सन्देशके प्रचारमें इतनी ज्यादा सरगरमी आ पाई है, कांग्रेसकी इतनी अधिक बैठकें होती रही हैं, नेता लोग अलग-अलग स्थानोंपर अलग-अलग अवसरोंपर मिलते-जुलते रहे हैं।. . .

. . . गांधीमें जो एक तीसरी विसंगति देखनेको मिलती है, उसका सम्बन्ध जाति प्रथाके प्रति उनके रवैयेसे है। स्वभावतः गांधी वह सामाजिक व्यवस्था लानेके लिए आकुल हैं जो उनके आर्थिक आदर्श, अर्थात् ग्राम्य समाजकी स्वतन्त्रता और आत्मनिर्भरताके आदर्शके उपयुक्त हो। इसलिए गांधीको पुरानी जाति-प्रथाका समर्थक होना चाहिए था। लेकिन बात ऐसी है नहीं। कई विषयों-पर, विशेषकर अस्पृश्योंके बारेमें, गांधीने ऐसा मत व्यक्त किया है जो पुराण-पंथी दृष्टिकोणसे अलग है। इस प्रकार वे वास्तवमें आधुनिकताके पक्षमें काम कर रहे हैं। स्पष्ट है कि . . . इतनी विसंगतियों और विचित्रताओंसे भरे आन्दोलनका कोई महत्त्वपूर्ण परिणाम नहीं निकल सकता। कौंसिलों, स्कूलों और अदालतोंका तथा मिलोंमें पैदा किये गये मालका बहिष्कार बिलकुल विफल हो गया है।

जहाँतक पत्रमें पूछे गये प्रश्नका सम्बन्ध है, मैं फिरसे वही बात कहूँगा जो पहले इन स्तंभोंमें कह चुका हूँ — अर्थात्, असहयोगके मूल कार्यक्रममें मेरा विश्वास अक्षुण्ण है। मुझे यह भी लगता है कि इसने राष्ट्रकी बहुत बड़ी सेवा की है। जिन संस्थाओंपर प्रहार किया गया है, उनका पुराना रुतबा अब नहीं रह गया है। लेकिन, मैं यह स्वीकार करता हूँ कि प्रतिक्रिया भी बहुत जबर्दस्त हुई है और जिनका उन संस्थाओंसे सम्बन्ध था उनमें से बहुत-से लोग उनमें फिरसे लौट गये हैं। लेकिन, मुझे पूरा विश्वास है कि उपयुक्त समय आनेपर यह कार्यक्रम निश्चय ही फिरसे चालू किया जायेगा। हो सकता है, तब वह कुछ बदले हुए रूपमें चालू किया जाये, किन्तु उसकी बुनियादी-विशेषताएँ वही रहेंगी। इस बीच एक व्यावहारिक व्यक्तिकी तरह मैं, अपने सिद्धान्तों या आचरणकी बलि दिये बिना, जिस-किसी नम्र तरीकेसे अपने पुराने साथियोंकी मदद कर सकता हूँ, उस तरीकेसे उनकी मदद कर रहा हूँ।

और जहाँ एक स्वीडिश अखबारसे उद्धृत किये गये अंशका सवाल है, यह मेरे उद्देश्यों और कार्योंके सम्बन्धमें उसी अज्ञानका द्योतक है जो लोगोंमें आम तौरपर पाया जाता है। मुझे रेलगाड़ियोंको खत्म करनेकी कोई चिन्ता नहीं है। मुझे चरखेके प्रसार और रेलवेके अस्तित्वमें कोई असंगति नहीं दीखती। चरखेका उद्देश्य राष्ट्रीय गृह-उद्योगमें फिरसे जान डालकर उससे प्राप्त धनका स्वाभाविक और न्यायोचित वितरण करना है और इस तरह मजबूरीकी बेकारी और दरिद्रताकी दोहरी बुराईको दूर करना है। यह उद्योग कृषिके बाद भारतका सबसे बड़ा धन्धा है और मैंने अंग्रेजों-को भारतसे निकाल बाहर करनेकी बात न कभी कही है और न मनमें ही सोची है। जिस बातकी मुझे चिन्ता है वह यह है कि अंग्रेज लोग भारतके शासनके प्रति अपने रवैयेमें आमूल परिवर्तन करें। आजकी इस अस्वाभाविक और पतनकारी प्रणालीको, जो एक प्रकारकी छिपी हुई दासता ही है, किसी भी कीमतपर बदलना होगा।

यहाँ अब अंग्रेजोंको स्वामी बनकर रहनेकी गुंजाइश नहीं है। अगर वे मित्र और सहायकके रूपमें रहना चाहें तो बेशक यहाँ उनके लिए पूरा स्थान है। अस्पृश्यता-निवारणके बारेमें तो यही कहूँगा कि उक्त लेखके लेखक उसके महान् फलितार्थोंको बिलकुल नहीं समझते। उनकी समझमें यह बात नहीं आ सकती कि अस्पृश्यता-निवारणका प्रयोजन श्रम-विभाजनकी महान् पद्धतिको किसी प्रकार छोड़े बिना हिन्दू-धर्ममें जो सबसे बड़ी बुराई घुस आई है, उससे उसे मुक्त करना है। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि बहुत दूर बैठकर इस महान् आन्दोलनपर दृष्टिपात करनेवाले व्यस्त व्यक्तियोंके लिए उस अपरिचित किन्तु महत्त्वपूर्ण तत्त्वको देख पाना कठिन है, जो अस्थायी किन्तु परिचित सतहके नीचे छिपा हुआ है, और उनके लिए यह भी कठिन है कि वे उस बाहरी आवरणको ही सार समझनेकी गलती न करें। अहिंसक असहयोग और पाश्चात्य संसारके ऐतिहासिक स्वातंत्र्य-संघर्षके बीच भी कोई साम्य नहीं है। असहयोग शरीर बल अथवा घृणापर आधारित नहीं है। इसका उद्देश्य अत्याचारीका नाश नहीं है। यह तो आत्मशुद्धिका आन्दोलन है। इसलिए इसमें अत्याचारीको अपनी भूलका एहसास कराकर सही रास्तेपर लानेका प्रयत्न किया जाता है। हो सकता है, भारत सामूहिक रूपसे अहिंसाके लिए तैयार न हो और इसलिए यह आन्दोलन विफल हो जाये। लेकिन इस आन्दोलनके महत्त्वको गलत मापदण्डसे मापना ठीक नहीं होगा। खुद मेरा विचार यह है कि यह आन्दोलन किसी भी तरह विफल नहीं हुआ है। भारतके स्वातंत्र्य-संघर्षमें अहिंसाको एक स्थायी स्थान प्राप्त हो गया है। यह कार्यक्रम एक सालमें पूरा न हो सका, इससे सिर्फ यह प्रकट होता है कि लोग इतने कम समयमें एक ऐसी जबर्दस्त उथल-पुथलके लिए पूरी तरह तैयार नहीं हो पाये थे। किन्तु, यह एक ऐसा तत्त्व है जो चुपचाप किन्तु निश्चित रूपसे जनताके दिल-दिमागमें घर करता जा रहा है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ११-२-१९२६

४. मद्य-निषेधकी शर्तें

बम्बईके गवर्नरने भड़ौंचके अंजुमनसे साफ कह दिया है कि आप लोग मद्य-निषेध चाहते हैं तो आपको शराबसे प्राप्त होनेवाले राजस्वके स्थानपर राजस्वका कोई और साधन ढूँढना होगा। दूसरे शब्दोंमें इस बुराईको रोकना सरकारका काम नहीं है। इस प्रकार शराबकी लत छोड़नेसे राजस्वमें जो कमी होगी उसे पूरा कराना सुधारकोंका काम है। इसलिए यदि मद्य-निषेधवादी जल्दी मद्य-निषेध कराना चाहते हैं तो उन्हें तय कर लेना होगा कि वे गवर्नर महोदयको, जिनकी बात इस मामलेमें भारत सरकारकी नीतिका ही द्योतक है, हम क्या जवाब देंगे। पहलेसे ही करके असह्य भारसे दबे हुए कर-दाताओंपर और कर लगाना मैं अनुचित मानता हूँ। मद्य-निषेध केवल सरकारी खर्चमें कमी करनेसे ही सम्भव है। सैनिक व्यय एक ऐसी मद है, जिसमें निश्चय ही कटौती की जा सकती है। लेकिन यह राय सही हो या न हो,

मद्य-निषेधवादियोंको, बम्बईके गवर्नर महोदयने जो कठिनाई खड़ी कर दी है, उससे निबटनेके तरीकेके सम्बन्धमें अपनी नीति निश्चित करनी है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ११-२-१९२६

५. सत्ताका दुरुपयोग

भारतके विरोधोंके बावजूद, दक्षिण आफ्रिकी संघ-संसदने रंग-भेद विधेयक पास कर ही दिया। यह कानून भारतीय प्रवासियोंके लिए उतना हानिकर नहीं है, जितना कि वतनी लोगोंके लिए। इस कानूनसे तो लगभग ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि वतनी और एशियाई लोग खानोंमें ऐसा कोई काम करनेसे वंचित हो जाते हैं जो काम यूरोपीय लोग कर सकते हैं या करना चाहें। भारतीयोंपर यह निर्योग्यता लगाना बिलकुल अनावश्यक है। कारण, खानोंमें बहुत कम भारतीय काम करते हैं। जहाँतक वतनी लोगोका सम्बन्ध है, यह कानून न केवल वैधानिक तौरपर उनकी स्थिति खराब कर देता है, बल्कि खानोंमें काम करनेवाले हजारों वतनियोके आर्थिक हितपर भी इसका बहुत प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। तब स्वाभाविक ही था कि जनरल स्मट्सने इस कानूनके खिलाफ कड़ी चेतावनी दी और इसे फूसके ढेरपर चिनगारी फेंकनेके समान बताया। यह विधेयक वतनियोंके लिए एक चुनौती है। वे भले ही अशिक्षित हों, लेकिन वे किसीसे कम स्वाभिमानी और अपने मान-सम्मानके प्रति कम जागरूक लोग नहीं हैं। अपनी असहायावस्थाके कारण वे भले ही इस चुनौतीका कोई जवाब न दे सकें, लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं कि अगर दक्षिण आफ्रिकाके यूरोपीय अपनी इस उद्धततापूर्ण नीतिपर कायम रहे तो वे अपने ही नाशके बीज बोयेंगे। कहते हैं, जब यह विधेयक सिनेटके सामने जायेगा तो वह इसे अस्वीकार कर देगी; ऐसा चाहिए भी। लेकिन जिस तारमें हमें उक्त सूचना मिली है उसी तारमें हमें यह भी सूचित किया गया है कि दोनों सदनोंमें कुल मिलाकर वर्तमान सरकारका बहुमत है और इस विधेयकको पास करनेके लिए वह इस साधनका भी प्रयोग करनेका इरादा रखती है। अगर यूरोपीयोंका रवैया ऐसा ही बना रहा तो लगता है कि एशिया-विरोधी विधान, जिसको लेकर भारतीय जन-मानसमें उथल-पुथल मची हुई है और श्री एन्ड्रयूजको जिसके स्थगित कर दिये जानेकी आशा है, स्थगित नहीं किया जायेगा। वास्तवमें इन कानूनी विधानोंका स्रोत एक ही है और ये रंगके सवालपर वर्तमान संघ-सरकारकी निश्चित नीतिके द्योतक हैं। इस नीतिपर पुनर्विचार तभी सम्भव है, जब भारत सरकार इनके खिलाफ कड़ेसे-कड़ा रुख अपनाये।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ११-२-१९२६

६. पत्र : क्लारा एलियासको

साबरमती आश्रम
११ फरवरी, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पिछली १ जनवरीका लिखा पत्र पाकर मुझे बड़ी खुशी हुई। यह बिलकुल सच है कि अभी हम जो-कुछ चाहते हैं, वह यही कि आज जितने भी प्रतिकूल लक्षण दिखाई दे रहे हैं, उन सबके बावजूद हममें यह दृढ़ आस्था हो कि अन्ततः सत्यकी विजय अवश्य होगी। पर ऐसा विश्वास होना तबतक असम्भव है जबतक कि व्यक्ति कष्ट-सहनको जीवनकी सबसे मूल्यवान निधि माननेको तैयार न हो।

हृदयसे आपका,

मैडम क्लारा एलियास
रॉखुस्स्ट्रास, ३ जी०
ड्यूजेलडॉर्फ, (जर्मनी)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १४०९२) की फोटो-नकलसे।

७. पत्र : अनुपमा बनर्जीको

साबरमती आश्रम
११ फरवरी, १९२६

प्रिय बहन,

आपका पत्र मुझे कल मिला और जाहिर है कि सुप्रभाका विवाह इस महीनेकी ४ तारीखको ही हो गया। खैर, इससे कुछ हर्ज नहीं हुआ है, क्योंकि विवाहमें शरीक हो पाना मेरे लिए असम्भव ही था और मेरे आशीर्वाद देनेमें बहुत देर हो गई, ऐसा तो नहीं ही कहा जायेगा। मैं उसके और उसके पति दोनोंके लिए उस सब सुख और आनन्दकी कामना करता हूँ जिसके वे अधिकारी हैं और प्रभुसे प्रार्थना करता हूँ कि उन्हें दीर्घ जीवन प्राप्त हो, जिसे वे देश-सेवामें लगायें। आशा है आप सब सकुशल हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीमती अनुपमा बनर्जी
५७ बी०, लिटन स्ट्रीट
कलकत्ता

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १४०९३) की माइक्रोफिल्मसे।

८. पत्र : बिशप फिशरको

साबरमती आश्रम
११ फरवरी, १९२६

प्रिय मित्र,

अमेरिका रवाना होनेसे पूर्व लिखा गया आपका पत्र मिला। बड़ी खुशी हुई। आशा है, आप और श्रीमती फिशर अमेरिकामें सानन्द समय वितायेंगे।

दक्षिण आफ्रिकी संघर्षका अभी चाहे जो भी परिणाम हो, मुझे इस बातमें किसी भी तरहका सन्देह नहीं है कि जो बीज आपने बोया था और जिसे अब श्री एन्ड्रयूज सींच रहे हैं, वह उचित समयपर पर्याप्त फल देगा। सत्यकी अन्तिम विजयमें मेरा विश्वास डिगाया नहीं जा सकता और मेरे लिए अगर किसी चीजका कोई महत्त्व है तो वह सत्य ही है। सत्यके मार्गपर चलते हुए हम जीवनमें मिले सारे कष्ट उस समय भूल जायेंगे, जब हम चोटीपर पहुँच जायेंगे।

श्रीमती फिशरने मुझसे सन्देश माँगा है। मैं तो केवल वही बात फिर दोहरा सकता हूँ जो मैं अपने पास आनेवाले अमेरिकी मित्रोंसे कहता रहा हूँ; अर्थात् सबसे ज्यादा जरूरत इस बातकी है कि भारतीय आन्दोलनका गम्भीरतापूर्वक और सावधानी-से अध्ययन किया जाये। अमेरिकामें मैं जो-कुछ होते देख रहा हूँ, वह दुःखद है। वहाँ या तो हमारे आन्दोलनको बहुत बढ़ा-चढ़ाकर या फिर बहुत ही घटाकर देखा जाता है। दोनोंका मतलब असलियतको तोड़ना-मरोड़ना है। मैं इस आन्दोलनको स्थायी महत्त्वकी चीज मानता हूँ और इसमें बहुत महत्त्वपूर्ण परिणामोंकी सम्भावना देखता हूँ। इसलिए पूरी सावधानीसे इसका अध्ययन करनेकी जरूरत है; इसे अखबारी खबरोंकी तरह सतही तौरपर देखनेसे काम नहीं चलेगा। तो ईश्वर करे, आपकी अमेरिका-यात्रा वहाँके लोगोंको भारतके इस आन्दोलनका ज्यादा सही मूल्यांकन करनेमें सहायक हो।

कहनेकी जरूरत नहीं आप जब कभी आश्रम आयेंगे हम आपका स्वागत करेंगे।

हृदयसे आपका,

बिशप फिशर
१५०, फिफ्थ एवेन्यू,
न्यूयार्क सिटी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १४०९५) की फोटो-नकलसे

९. पत्र : आर० एल० सूरको

सावरमती आश्रम
११ फरवरी, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका गत मासकी २८ तारीखका पत्र मिला। बिशप फिशरको लिखे अपने पत्रमें[1] मैंने श्रीमती फिशरको सन्देश भेज दिया है। फिर भी मैंने श्रीमती फिशरको सन्देश भेजनेका जो वादा किया था, उसकी याद दिलानेके लिए आपको धन्यवाद देता हूँ।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत आर० एल० सूर
बिशप फिशरके सचिव
मैथॉडिस्ट एपिस्कॉपल चर्च
३, मिडिलटन स्ट्रीट
कलकत्ता

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १४०९४) की माइक्रोफिल्मसे।

१०. पत्र : आँत्वानेत मिरबेलको

साबरमती आश्रम
१२ फरवरी, १९२६

प्रिय मित्र,

मुझे आपके पत्र बराबर मिलते रहे हैं। कृपया ऐसा न सोचिए कि आप मेरी शिष्या बननेके योग्य नहीं हैं। मैं शिष्य बनाऊँ, इतना पूर्ण मैं अपने-आपको नहीं मानता। क्षण-भरके लिए भी ऐसा मत सोचिए कि जो लोग मेरे साथ आश्रममें रह रहे हैं, उन्हें मैं अपना शिष्य मानता हूँ। वे सब मेरे सहयोगी हैं। उनके बीच मेरी स्थिति एक बड़े-बुजुर्गकी है और मैं बड़ा बुजुर्ग इसलिए हूँ कि शायद मुझे उनसे अधिक अनुभवी माना जा सकता है और मेरा अनुभव उनके अपने अनुभवकी ही तरह उनके लाभके लिए उनको मिलता है। जिस प्रशस्त पथके बारेमें आपको मैंने बताया था, उसके विषयमें भी कुछ रहस्य नहीं है। प्रशस्त मार्ग यही है कि व्यक्ति अपना कर्तव्य अपनी योग्यतानुसार यथासम्भव अच्छेसे-अच्छे ढंगसे करे और सभी कार्य

१. देखिए पिछला शीर्षक।

ईश्वरार्पण करे। इस ढंगसे काम करनेसे हमेशा हमारे सामनेकी सभी कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं और जहाँ भी हमसे जो भूल होती है वह हमें दिखाई दे जाती है। आपने अपने मित्रोंकी जिस छोटी-सी मंडलीका उल्लेख किया है, उसका सत्संग करते रहिए; मेरी सलाह आपको हमेशा मिलेगी।

मैं आशा करता हूँ कि आपका मन शान्त होगा और पड़ोसियोंसे आपके सम्बन्ध प्रेमपूर्ण होंगे तथा आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा।

हृदयसे आपका,

मदाम आँत्वानेत मिरवेल
१००, र्‍यू ब्रूल मेजाँ
लाइल, (फ्रांस)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १४०९६) की फोटो-नकलसे।

११. पत्र : पी० एस० वारियरको

साबरमती आश्रम
१२ फरवरी, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। पारसल मुझे पत्र मिलनेके चार-पाँच दिन पहले ही मिल गया था। दोनोंके लिए धन्यवाद।

मैं समझता हूँ कि मेरे लिए तो आपकी दवा बेकार होगी, क्योंकि २४ घंटेमें मैं दवाके तौरपर केवल एक या दो पदार्थ ही ले सकता हूँ। क्योंकि उतने समयमें चाहे वे दवाके रूपमें हों या आहारके रूपमें, मैं केवल ५ पदार्थ ही ले सकता हूँ। इसलिए यदि आपकी गोलीमें एकसे अधिक पदार्थ हो तो मुझे उसको नहीं लेना चाहिए, क्योंकि तब फिर मुझे कोई भोजन नहीं ग्रहण करना चाहिए।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० एस० वारियर
आर्य वैद्यशाला
कोट्टक्कल
मलाबार

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १४०९७) की फोटो-नकलसे।

१२. पत्र : मैनाको

साबरमती आश्रम
१२ फरवरी, १९२६

प्रिय मैना,

काम ज्यादा होनेसे और फिर अपनी बीमारीकी वजहसे मैं तुम्हें पहले पत्र नहीं लिख सका। मुझे खुशी हुई कि बदरका विवाह हो गया है। खुशी इसलिए नहीं हुई कि मैं कुछ ऐसा मानता हूँ कि बदरके लिए विवाह करना जरूरी था, वरन् इसलिए हुई कि उसकी माँ ऐसा चाहती थी और बदर माँकी इच्छा पूरी करना कर्त्तव्य समझता था। मैं आशा करता हूँ कि बदर और उसकी पत्नी सुखपूर्वक दीर्घ कालतक जीवित रहकर सेवा-कार्य करेंगे।

बदर चाहे तो हाथ-कता रेशम पहन सकता है, लेकिन मैं यह जरूर कहूँगा कि कमसे-कम पुरुषोंकी हदतक तो रेशम मुझे बिलकुल भोंडा लगता है। लेकिन बदर या किसी अन्य व्यक्तिको भी मेरी रुचिके अनुसार चलनेकी जरूरत नहीं है। उसे अपनी रुचिका ध्यान रखना चाहिए और यदि रेशम पहनना उसे भला लगता है तो वह पहन सकता है।

तुम्हारा क्या हाल है, इन दिनों क्या कर रही हो?

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १४०९८)की माइक्रोफिल्मसे।

१३. पत्र : एक बहनको

साबरमती आश्रम
१२ फरवरी, १९२६

प्रिय बहन,

आपका पत्र मिला। मैं यह पत्र बोलकर लिखवानेके लिए विवश हूँ, क्योंकि ज्यादा लिखनेके कारण मेरे दाहिने हाथको आरामकी जरूरत है। मुझे दुःख है कि इसी अक्तूबर महीनेमें लिखा मेरा पत्र आपतक नहीं पहुँच पाया। पता नहीं, किसीने जान-बूझकर उसे आपतक नहीं पहुँचने दिया या क्या हुआ? डाककी ऐसी गड़बड़ियाँ हो ही जाती हैं। यह भी हो सकता है कि अबतक वह खोया हुआ पत्र शायद आपको मिल गया हो। मुझे खुशी है कि मेरे लेखोंसे आपको मदद और राहत मिलती है। यदि मेरे लिए कुछ प्रश्न जवाब देनेको हैं तो कृपया उन्हें लिखनेमें संकोच न करें।

मैं आपके मित्र और पतिको अलगसे पत्र नहीं लिख रहा हूँ। मेरा लड़का देवदास इन दिनों यहाँ नही है। वह मेरे एक सम्बन्धीकी सेवा-परिचर्या कर रहा है। मैं आपका पत्र उसके पास भेज रहा हूँ।

मैं आशा करता हूँ कि 'यंग इंडिया' आपको बराबर मिल जाता होगा। यदि नही मिलता हो तो कृपया मुझे सूचित कीजिए। मैं आपको उर्दू और देवनागरीमें नमूनेके पृष्ठ भेज रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १४०९९) की फोटो-नक़लसे।

१४. पत्र : आर० ए० ह्यूमको

साबरमती आश्रम
१३ फरवरी, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र पाकर खुशी हुई। भिक्षा-वृत्ति निरोधक समितिमें हमारी जो मुलाकात हुई थी, मुझे अच्छी तरह याद है। अमेरिका जाकर आप अपने शरीरको जो आराम दे रहे है, वह आपके लिए जरूरी था। मेरी कामना है कि वहाँ आपके दिन सुखसे बीतें।

मैं ईसा मसीहको ईश्वरका एक-मात्र पुत्र या ईश्वरका अवतार नहीं मानता, लेकिन मानव जातिके एक शिक्षकके रूपमें उनके प्रति मेरी बड़ी श्रद्धा है। उनके जीवनके तथा 'सरमन ऑन द माउंट' में संक्षेपमें दी गई उनकी शिक्षाओंके चिन्तन-मननसे मुझे बहुत ही शान्ति और आनन्द प्राप्त हुआ है।

हृदयसे आपका,

रेवरेंड आर० ए० ह्यूम
अमेरिकन मराठी मिशन
वाई
जिला सतारा

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १४१००) की फोटो-नकलसे।

१५. पत्र : कृष्णदासको

साबरमती आश्रम
१३ फरवरी, १९२६

प्रिय कृष्णदास,

तुम्हारा पत्र मिला। मैं चाहता हूँ कि तुम मुझे नियमित रूपसे लिखते रहो।

मैं भी यही मानता हूँ कि आजकल गुरुजीका[1] कलकत्तासे बाहर रहना बेहतर होगा। आखिरकार कलकत्ताकी आबोहवा बहुत अच्छी तो नहीं है। उनके स्वास्थ्यका ध्यान रखना सबसे जरूरी है, तुम्हारी पुस्तक पूरी होनेकी बात बादमें आती है। और बेशक, मैं उनके लिए तुम्हारे भोजन पकानेकी भी बातको पसन्द करता हूँ। जब वातावरणके प्रति ऐसे संवेदनशील रोगीके लिए भोजन बनाना हो जैसे कि गुरुजी हैं तब भोजन बनानेमें कोमल और स्नेहपूर्ण स्पर्शसे अन्तर तो पड़ता ही है।

मुझमें धीरे-धीरे ताकत आती जा रही है, और मैं पूरा आराम कर रहा हूँ। अंग्रेजीका सारा पत्र-व्यवहार सुब्बैया करता है और अब चन्द्रशंकर गुजरातीमें मेरा बोला हुआ लिखता है। अभी तुरन्त ही 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' के लिए लेख बोलकर लिखवाऊँगा। देवदास अभी भी देवलालीमें है। दस दिनसे ज्यादा ही होनेको आये, मगर तुलसी मेहरके बारेमें किसीको कोई खबर नहीं मिली है। क्या तुम जानते हो कि वह कहाँ है?

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १४१०१) की फोटो-नकलसे।

१६. पत्र : सत्यानन्द बोसको

साबरमती आश्रम
१३ फरवरी, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका स्नेहपूर्ण पत्र मिला। लेकिन यदि मैं समुद्र-यात्रापर चले जानेका प्रयत्न करूँ तो निश्चित है कि परिणाम वही होंगे, जिनकी आपको आशंका है। अपनी किसी भी गतिविधिको गुप्त रख पाना मैंने बिलकुल असम्भव पाया है, और जहाजपर या तो मैं अपनेको कैदी पाऊँगा या फिर प्रदर्शनीमें रखे गये जानवर-जैसा। इसलिए मुझे किसी ऐसे ठंडे स्थानपर जानेकी कोशिश करनी चाहिए, जहाँ मैं मुलाकातियोंसे

१. सतीशचन्द्र मुखर्जी, जो उस समय दरभंगामें स्वास्थ्य-लाभ कर रहे थे।

बच सकूँ और थोड़ी शान्ति पा सकूँ। यों भी मुझमें धीरे-धीरे फिर ताकत आती जा रही है। इसलिए चिन्ता करनेकी कोई बात नहीं है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सत्यानन्दजी बोस
२/८, धर्मतल्ला स्ट्रीट
कलकत्ता

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १४१०२) की फोटो-नकलसे।

१७. सत्य बनाम ब्रह्मचर्य[1]

एक मित्र महादेव देसाईको लिखते हैं :

आपको स्मरण होगा कि गांधीजीने कुछ महीने पहले 'नवजीवन' में ब्रह्मचर्यपर एक लेख लिखा था,[2] और 'यंग इंडिया' के लिए उसका अनुवाद शायद आपने ही किया था। उस लेखमें गांधीजीने स्वीकार किया था कि उन्हें अब भी दूषित स्वप्न आते हैं। इसे पढ़ते ही मुझे ऐसा लगा था कि ऐसी बातें स्वीकार करनेका प्रभाव कभी अच्छा नहीं हो सकता और बादमें मुझे मालूम हुआ कि मेरा यह भय ठीक था। मैंने और मेरे दो मित्रोंने अपने इंग्लैंड प्रवासमें अनेक प्रकारके प्रलोभनोंके होते हुए भी अपना चरित्र शुद्ध रखा था। हम उन तीन मक्कारोंसे तो बिलकुल ही दूर रहे थे। लेकिन गांधीजीका यह लेख पढ़कर मेरे एक मित्र बिलकुल ही हताश हो गये और उन्होंने दृढ़तापूर्वक मुझसे कहा, "इतना भगीरथ प्रयत्न करनेपर भी जब गांधीजीकी यह हालत है तब फिर हम किस गिनतीमें हैं? ब्रह्मचर्य पालन करनेके ये सारे प्रयत्न तब तो व्यर्थ हैं। गांधीजीकी स्वीकृतिसे मेरा दृष्टिबिन्दु सर्वथा बदल गया है। मुझे तो अब तुम डूबा ही समझो।" कुछ हतप्रभ-सा होकर मैंने उसे समझानेकी कोशिश की: "यदि गांधीजी-जैसोंको भी इस मार्गपर चलना इतना कठिन मालूम होता है तो फिर हमें अब तिगुना प्रयत्न करना चाहिए", आदि-आदि। मतलब कि वैसी ही दलीलें दीं, जैसी आप या गांधीजी देते। लेकिन मेरा यह सब प्रयत्न व्यर्थ गया। जो चरित्र आजतक निष्कलंक रहा था वह कलंकित हो गया। यदि कोई कर्म-सिद्धान्तके अनुसार इस युवकके अधःपतनका कुछ दोष गांधीजी-पर लगाये तो आप या गांधीजी क्या कहेंगे?

१. इसका अंग्रेजी अनुवाद २५-२-१९२६ के यंग इंडियामें भी प्रकाशित हुआ था।
२. देखिए खण्ड २४, पृष्ठ १२१-२४।

जबतक मेरे ध्यानमें यह एक ही उदाहरण आया था, मैंने आपको कुछ नहीं लिखा। मैं इसके लिए तैयार न था कि आप उसे अपवाद कहकर आसानीसे टाल दें और मैं उस उत्तरसे सन्तोष मान लूँ। लेकिन इधर इस तरहके दूसरे उदाहरणोंसे मेरे उक्त भयकी पुष्टि हुई है और मुझे इस बातका यकीन हो गया है कि मेरे मित्रपर उस लेखका जो प्रभाव हुआ वह केवल अपवाद-रूप न था।

मैं यह जानता हूँ कि ऐसी हजारों बातें हैं जिन्हें गांधीजी आसानीसे कर सकते हैं, पर जो मेरे लिए सर्वथा अशक्य हैं। लेकिन मुझे भी भगवानकी कृपासे इतना बल तो प्राप्त है कि जो गांधीजीको भी अशक्य मालूम हो, ऐसी कोई एक-दो बातें मेरे लिए अवश्य ही शक्य हो सकती हैं। गांधीजीकी स्वीकृति पढ़कर मेरा अन्तर विलोड़ित हुआ है और ब्रह्मचर्यका पालन कर सकनेके सम्बन्धमें मेरी निश्चिन्तता जो विचलित हुई है सो अभीतक स्थिर नहीं हो पाई है। किन्तु ऐसे ही किसी विचारने मुझे अधःपतनसे बचा लिया है। बहुत बार तो कोई एक दोष ही दूसरे दोषोंसे मनुष्यकी रक्षा कर लेता है। मैं इसमें अपने इस अभिमान-दोषके कारण (जो गांधीजीके लिए अशक्य है, वह मेरे लिए शक्य है!) ही पतित होते-होते बचा।

क्या आप गांधीजीके ध्यानमें यह बात लानेकी कृपा करेंगे — खासकर इस समय जब वे अपनी आत्मकथा[1] लिख रहे हैं? सत्य और शुद्ध सत्य लिखना साहसका काम तो अवश्य है; लेकिन संसारमें और 'नवजीवन' और 'यंग इंडिया' के पाठकोंमें इसका विरोधी गुण ही अधिक परिमाणमें है, इसलिए एकका खाद्य दूसरेके लिए विष हो सकता है।

यह शिकायत कोई नई नहीं है। असहयोग आन्दोलन जिस समय जोरसे चल रहा था उस समय जब मैंने अपनी भूल स्वीकार की थी तब एक मित्रने मुझे सरल-भावसे लिखा था:

आपको तो भूल हो जाये तो भी, उसे स्वीकार न करना चाहिए। लोगोंका यह खयाल बना रहना चाहिए कि ऐसा भी कोई मनुष्य है जिससे कोई भूल ही नहीं हो सकती। आप ऐसे ही मनुष्य गिने जाते थे। अब आपने भूल स्वीकार की है इसलिए लोग हताश होंगे।

इस पत्रको पढ़कर मुझे हँसी आई और खेद भी हुआ। लेखकके भोलेपनपर मुझे हँसी आई। जिससे कभी भूल न हो, ऐसा मनुष्य न मिले तो किसीको इस रूपमें पेश करने और लोगोंको उसे ऐसा ही माननेको कहनेका विचार भी मुझे कष्टप्रद प्रतीत हुआ।

१. यह नवजीवनमें, २९-११-१९२५ से और यंग इंडियामें ३-१२-१९२५ से धारावाहिक रूपमें प्रकाशित हो रही थी।

मुझसे भूल हो और वह लोगोंको मालूम हो जाये तो उससे उनको हानिके बजाय लाभ ही होगा। मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि मैं अपनी भूलोंको तुरन्त स्वीकार कर लेता हूँ, इससे जनताको लाभ ही हुआ है। और मैंने यह अनुभव किया है कि उससे मुझे तो अवश्य लाभ हुआ है।

मेरे दूषित स्वप्नोंके सम्बन्धमें भी यही समझना चाहिए। यदि मैं 'पूर्ण ब्रह्मचारी न होनेपर भी वैसा होनेका दावा करूँ तो उससे संसार की बड़ी हानि होगी, क्योंकि उससे ब्रह्मचर्य कलंकित होगा, सत्यका सूर्य म्लान हो जायेगा। ब्रह्मचर्यका मिथ्या दावा करके मैं ब्रह्मचर्यका मूल्य क्यों घटाऊँ? आज तो मैं यह देख सकता हूँ कि मैं ब्रह्मचर्य-पालनके जो उपाय बताता हूँ वे पूर्ण नहीं हैं, सब लोगोंके सम्बन्धमें पूर्णतया सफल नहीं होते, क्योंकि मैं स्वयं पूर्ण ब्रह्मचारी नहीं हूँ। यदि संसार यह माने कि मैं पूर्ण ब्रह्मचारी हूँ और मैं उसका उपाय न बता सकूँ तो यह कितनी बड़ी त्रुटि गिनी जायेगी?

मैं सच्चा साधक हूँ, मैं सदा जागृत रहता हूँ, मेरा प्रयत्न दृढ़ है, इतना ही क्यों पर्याप्त न माना जाये? इसी बातसे दूसरोंको मदद क्यों नहीं मिल सकती? यदि मैं भी विचारके विकारोंसे दूर नहीं रह सकता तो फिर दूसरोंका तो कहना ही क्या है? ऐसा गलत तर्क करनेके बजाय यह सीधा तर्क ही क्यों न किया जाये कि जो गांधी एक समय व्यभिचारी और विकारी था यदि वह आज अपनी पत्नीके साथ भी विकार-रहित भावसे रह सकता है और रम्भा-जैसी युवतीके साथ भी, उसके प्रति बेटी या बहनका-सा भाव रखकर रह सकता है तो हम सब लोग भी इतना क्यों न कर सकेंगे? हमारे स्वप्नदोषोंको, विचार-विकारोंको तो ईश्वर दूर करेगा ही। यह सीधा तर्क है।

लेखकके वे मित्र तो, जो स्वप्नदोषोंकी मेरी स्वीकृतिके बाद पीछे हटे हैं, कभी आगे बढ़े ही न थे। उन्हें झूठा नशा था, वह उतर गया। ब्रह्मचर्यादि महाव्रतोंकी सत्यता या सिद्धि मुझ-जैसे किसी भी व्यक्तिपर अवलम्बित नहीं है। उसके लिए तो लाखों मनुष्योंने उग्र तपश्चर्या की है और कुछ लोग तो पूर्णरूपसे सफल-प्रयत्न भी हुए हैं। जब मुझे इन सिद्ध पुरुषोंकी पंक्तिमें खड़े होनेका अधिकार प्राप्त होगा तब मेरी भाषामें आजसे भी अधिक निश्चय दिखाई देगा। जिसके विचारमें विकार नहीं है, जिसकी निद्रा भंग नहीं होती है और जो निद्रित होनेपर भी जागृत रह सकता है, वह नीरोग होता है। उसे कुनैनके सेवनकी आवश्यकता नहीं होती। उसके विकार-रहित रक्तमें ही ऐसी शुद्धि होती है कि उसे मलेरिया इत्यादिके कीटाणु कभी पीड़ित नहीं कर सकते। मैं इस स्थितिको ही प्राप्त करनेका प्रयत्न कर रहा हूँ। उसमें हारनेकी कोई बात ही नहीं है। मैं उस प्रयत्नमें लेखकको, उनके श्रद्धाहीन मित्रोंको और दूसरे पाठकोंको अपना साथ देनेका निमन्त्रण देता हूँ और चाहता हूँ कि लेखककी तरह वे मुझसे भी अधिक तीव्र वेगसे आगे बढ़ें। जो पीछे पड़े हुए हों, वे मुझ-जैसोंके दृष्टान्तसे आत्मविश्वासी बनें। मुझे जो-कुछ भी सफलता प्राप्त हो सकी है, उसे मैं निर्बल तथा विकारवश होनेपर भी प्रयत्न करनेसे, श्रद्धासे और ईश्वरकृपासे प्राप्त कर सका हूँ।

इसलिए किसीको भी निराश होनेका कोई कारण नहीं है। मेरा महात्मापन मिथ्या है। वह तो मुझे मेरी बाह्य प्रवृत्तिके — मेरे राजनैतिक कार्यके — कारण प्राप्त हुआ है। वह क्षणिक है। मेरा सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्यादिका आग्रह ही मेरा अविभाज्य और सबसे अधिक मूल्यवान अंग है। उसमें मुझे जो-कुछ ईश्वरदत्त प्राप्त हुआ है, उसकी अवज्ञा कोई भूलकर भी न करे। मेरा सर्वस्व तो वही है। उसमें दिखाई देनेवाली विफलताएँ सफलताकी सीढ़ियाँ हैं। इसलिए मुझे विफलताएँ भी प्रिय हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १४-२-१९२६

१८. गुजरातमें खादी

भाई लक्ष्मीदासने गुजरातमें खादी-मण्डलकी व्यवस्थाके अन्तर्गत तैयार होनेवाली तथा जिसकी उन्हें जानकारी है, ऐसी अन्य खादीका विवरण भेजा है:[1]

इस विवरणमें काठियावाड़के आँकड़े नहीं हैं। उन्हें प्राप्त करें तो उत्पादनके आँकड़ोंमें और भी वृद्धि दिखाई दे। ये आँकड़े बताते हैं कि खादी-प्रवृत्ति जीवित है और बढ़ती जा रही है। लेकिन जब हम अपने ध्येयकी ओर दृष्टिपात करते हैं तो हमें उपर्युक्त आँकड़े तुच्छ लगते हैं। फिर भी यदि इन तुच्छ आँकड़ोंमें सच्चा बीज होगा और उसे ठीक पानी मिलता रहेगा तो उसके चेतन होनेमें तनिक भी समय नहीं लगेगा। कठलालमें लोग सात आने गजवाली स्थानीय खादी न लें और तथाकथित मिलकी खादीका प्रयोग करें, यह बात आश्चर्यजनक कही जायेगी। इसकी सूक्ष्म जाँच होनी चाहिए और इस रोगका इलाज होना चाहिए।

खादीका काम पौष्टिक खुराकके-जैसा है, परन्तु पौष्टिक खुराककी तरह ही उसका स्वाद जीभके लिए नहीं है। उसका स्वाद तो उससे मिलनेवाले पोषणमें ही है। खादी जितनी ज्यादा तैयार होगी, उतना ही हिन्दुस्तान पुष्ट होगा। इसमें अजीर्ण तो हो ही नहीं सकता। इसमें कार्य करनेवालेको तात्कालिक परिणाम बहुत कम लग सकता है, लेकिन जैसे आमका वृक्ष बड़ा होनेपर हजारों फल देता है उसी तरह धैर्यपूर्वक कार्य करनेवाले सेवकको अपने छोटे-से दीख पड़नेवाले काममें से अन्तिम अत्युत्तम परिणाम देखनेका सौभाग्य अवश्य ही मिलेगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १४-२-१९२६

१. विवरणका अनुवाद यहाँ नहीं दिया गया है।

१९. पत्र : जेठालालको

साबरमती आश्रम
रविवार, फाल्गुन सुदी २ [१४ फरवरी, १९२६][1]

भाई जेठालाल,

तुम्हारा पत्र मिला। न्यासपत्र बादमें नहीं, बल्कि पहले ही तैयार करना है और ऐसा ही उचित भी है। अगर पुजारी कामचलाऊ होगा तो मन्दिर भी कामचलाऊ ही रहेगा। मन्दिरका अच्छा होना केवल अच्छे पुजारीपर निर्भर करता है। भाई जगजीवनदाससे बातचीत करके इसके सम्बन्धमें कोई निर्णय कर डालो। फिर मुझे लिखो।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० ११९३५) की माइक्रोफिल्मसे।

२०. भेंट : दक्षिण आफ्रिकी शिष्टमण्डलको

१४ फरवरी, १९२६

दक्षिण आफ्रिकी शिष्टमण्डलके सदस्य सर्वश्री गॉडफ्रे, पाथेर, मिर्जा और भायात कल रात यहाँ पहुँचे और आज सुबह सत्याग्रह आश्रममें उन्होंने श्री गांधीसे मुलाकात की।

उनके साथ उन लोगोंने पूरे तीन घंटेतक दक्षिण आफ्रिकाकी स्थितिपर विचार किया।

श्री गांधीका यह निश्चित मत था कि दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंकी मुक्ति तभी सम्भव है, जब उनमें आत्म-विश्वास और आत्म-बलिदानकी प्रबल भावना हो। उन्हें पूरा विश्वास था कि विश्व-जनमतके सामने दक्षिण आफ्रिकाको भी झुकना पड़ेगा। उन्होंने आवश्यकता होनेपर दक्षिण आफ्रिका जानेकी रजामन्दी जाहिर की, लेकिन आवश्यकता वैसी है या नहीं, यह तय करनेका अधिकार उन्होंने अपने ही हाथों रखा।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १५-२-१९२६

१. पत्रमें आश्रमके न्यासपत्रकी लिखा-पढ़ीका उल्लेख हुआ है। यह १२ फरवरी, १९२६को हुई थी।

दूसरी धार्मिक पुस्तक, जिसमें आपकी दृढ़ आस्था हो, पढ़िए और उसमें जो-कुछ भी कहा गया है उसपर मनन कीजिए। यह सब कर चुकनेपर अपने विवाहकी बात न सोचिए और आप पायेंगे कि आप बराबर प्रगति कर रहे हैं। मेरी रायमें यह कहना बिलकुल गलत है कि शुद्ध जीवन बितानेके लिए व्यक्तिका विवाह करना जरूरी है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १४१०३) की फोटो-नकलसे।

२३. पत्र : एस० आर० स्कॉटको

साबरमती आश्रम
१६ फरवरी, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला[1]। आप देखेंगे कि उन वर्षों पुरानी बातोंका वर्णन मैंने सिर्फ याददाश्तके सहारे ही किया है। लेकिन, मुझे वे बातें याद बहुत अच्छी तरहसे हैं। मैं यह कह सकनेमें बिलकुल असमर्थ हूँ कि उस समय राजकोटमें कही गई बात सच थी या नहीं और ऐसा मैंने ['आत्मकथा' के] सम्बन्धित अध्यायमें[2] भी कहा है। कहा है न? मेरी स्मृतिकी आँखें साफ देख रही हैं कि उस हाई स्कूलके नुक्कड़पर खड़ा वह धर्मोपदेशक स्कूली बच्चोंके सामने धुआँधार भाषण करता जा रहा है और हिन्दू-धर्मकी निन्दा कर रहा है। लेकिन, उस धर्मोपदेशकका नाम याद कर सकना मेरे लिए असम्भव है। मैं तो समझता हूँ कि जब मैंने उसे इस तरह भाषण करते सुना था, तब भी मैं उसका नाम नहीं जानता था।

क्या आप चाहते हैं कि आपका पत्र मैं 'यंग इंडिया' में प्रकाशित कर दूँ? अगर आपकी इच्छा हो तो मैं खुशी-खुशी प्रकाशित कर दूँगा।

मैं इतना और कहना चाहता हूँ कि मेरे बादके अनुभव भी उस पहले अनुभवसे कुछ अच्छे नहीं रहे हैं। मैं हजारों ईसाई भारतीयोंसे मिला हूँ और मैंने देखा है कि उनमें से अधिकांश नहीं तो बहुत-से लोग मांस खाते हैं और यूरोपीय वस्त्र पहनते हैं। जब भी मैंने इन चीजोंके बारेमें उनसे बातचीत की है तो उन्होंने कमसे-कम मांसाहार और यूरोपीय पोशाकको उचित साबित करनेकी कोशिश की है।

उस घटनाके बाद भी मैंने बहुत-से मिशनरियोंको हिन्दू धर्म और हिन्दू देवी-देवताओंकी निन्दा करते सुना है और धर्म प्रचारक संस्थाओंके प्रकाशनोंमें तो इससे भी बुरी बातें पढ़ी हैं। किन्तु, साथ ही इस बातकी साक्षी भरते हुए मुझे बड़े हर्ष-

१. देखिए "पत्र : एस० आर० स्कॉटको", २३-२-१९२६।

२. देखिए भाग १, अध्याय १०; जो यंग इंडिया ११-२-१९२६ में "धर्मकी झाँकी" शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था।

का अनुभव हो रहा है कि पिछले कुछ समयसे और आजकल भी दूसरे धर्मोंके प्रति सहिष्णुतासे काम लेनेकी प्रवृत्ति दिखाई दे रही है और कुछ मिशनरी यह भी चाह रहे हैं कि ईसाई भारतीयोंको फिरसे अपने पूर्वजोंवाली सादगी अपनानी चाहिए और हर भारतीय चीजको हेय दृष्टिसे देखनेकी प्रवृत्ति छोड़ देनी चाहिए।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १४१०४) की फोटो-नकलसे।

२४. पत्र : मोतीलाल नेहरूको

साबरमती आश्रम
१७ फरवरी, १९२६

प्रिय मोतीलालजी,

आपका पत्र मिला। मैं जानता हूँ कि मेरा बीमार पड़ जाना मेरे लिए शर्मकी बात है। अब मैं दुगनी सावधानी बरत रहा हूँ। सालके अन्ततक अपनेको पूरी तरह स्वस्थ कर लेनेके लिए मैं कुछ भी उठा नहीं रखूँगा। और अगर आपके पास होमियोपैथीकी कोई ऐसी गोलियाँ हैं, जिनसे पूरा-पूरा लाभ होना निश्चित है और जो मुझे ५६ वर्षके वृद्धसे २६ वर्षका नौजवान बना सकती हों तो वे गोलियाँ मुझे भेज दीजिए; आप जितनी गोलियाँ खानेको कहेंगे, मैं रोज खाया करूँगा!

मुझे बड़ी खुशी हुई कि जवाहरलाल और कमला जा रहे हैं और उनके साथ स्वरूप और रणजीत भी। मुझे इस बातसे कोई अचम्भा नहीं हुआ कि कृष्णा भी पीछे नहीं रहना चाहती। मैं आशा करता हूँ कि किसी-न-किसी तरह उसके लिए भी गुंजाइश निकाली जा सकेगी ताकि उसे भी जितना हो सके उतनी सैर करनेका मौका मिल जाये। इस यात्रासे मैं बड़े परिणामोंकी आशा करता हूँ, न केवल कमलाके लिए वरन् जवाहरलालके लिए भी।

हाँ, मैंने इस तथ्यपर अवश्य गौर किया कि आप वाइसराय और दोनों सदनोंके नेताओंके बीच हुई बातचीतमें उपस्थित थे और इस बातकी मुझे खुशी है कि आप उसमें थे।

यदि विधानसभाकी सभी कमेटियोंको छोड़ना होगा तो मैं समझता हूँ कि स्कीन कमेटीको[1] भी छोड़ना होगा। आपने जिस प्राविधिक भेदकी तरफ ध्यान दिलाया है, वह भेद है अवश्य, लेकिन हमारे कामके लिए वह काफी नहीं होगा; यद्यपि मैं व्यक्तिगत रूपसे आपके स्कीन कमेटी छोड़नेका विचार नापसन्द करता हूँ।

१. जो इंडियन सैंडहर्स्ट कमेटीके नामसे भी विदित है। इसकी नियुक्ति भारतमें एक सैनिक कॉलेज खोलनेके प्रश्नपर विचार करनेके लिए १९२५ में हुई थी। सर एन्ड्र्यू स्कीन इसके अध्यक्ष थे।

लेकिन यदि कौंसिलोंसे बाहर आ जाना अच्छा है तो स्कीन कमेटीसे भी बाहर निकल आना जरूरी होगा।

यदि इस महीनेके अन्दर आप एक दिनके लिए भी किसी तरह आ सकें तो मुझे खुशी होगी। कठिनाइयाँ तो आपको बल ही देती हैं, इसलिए मैं आशा करता हूँ कि आप बिलकुल स्वस्थ और प्रसन्न होंगे।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १४१०५) की फोटो-नकलसे।

२५. पत्र: सी० वी० रंगमचेट्टीको

साबरमती आश्रम
१७ फरवरी, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला।[1] अपने-आपको कांग्रेसी कहनेवाला या कांग्रेसका बिल्ला लगाये फिरनेवाला हर आदमी कांग्रेसी नहीं है। कांग्रेसी वह है जो कांग्रेसके निर्देशोंका शब्दशः और अर्थशः पूरा-पूरा पालन करता है। इसलिए मेरी रायमें कांग्रेसी वह है जो खादीमें पूरा विश्वास करता है, स्वयं खादी पहनता है और सो भी कभी-कभी या दिखावेके लिए नहीं, बल्कि शुद्ध मनसे; जो अस्पृश्यता-निवारणमें विश्वास करता है और तथाकथित अस्पृश्योंसे निस्संकोच भावसे मिलता-जुलता है, जो साम्प्रदायिक एकतामें विश्वास करता है और जब-कभी वैसा अवसर आता है तब उस विश्वासके अनुसार आचरण करता है और जो कांग्रेसके अहिंसा और सत्यके सिद्धान्तमें विश्वास करता है।

ऐसे व्यक्तिको सभी सच्चे कांग्रेसियोंका विश्वास पानेका और यदि उन्हें वोट देनेमें कोई सैद्धान्तिक आपत्ति न हो तो उनका वोट पानेका हकदार होना चाहिए।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १७-३-१९२६

1. इस पत्रमें रंगमचेट्टीने महात्माजीसे पूछा था कि आगामी चुनावोंमें वे किसकी मदद करें।

२६. पत्र : एक मित्रको

साबरमती आश्रम
१७ फरवरी, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मेरी कामना है कि आपके अखबारको दीर्घ जीवन प्राप्त हो और जैसे-जैसे दिन बीतें, वह खादी, अस्पृश्यता-निवारण, साम्प्रदायिक एकता और अहिंसा तथा सत्यका दृढ़तासे पालन करनेपर अधिकाधिक जोर दे। पाँच सालका यह बच्चा [अखबार] अहिंसा और सत्यका पदार्थपाठ प्रस्तुत कर रहा है न!

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १४१०७) की माइक्रोफिल्मसे।

२७. पत्र : वी० वी० दास्तानेको

साबरमती आश्रम
१७ फरवरी, १९२६

प्रिय दास्ताने,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम क्या चाहते हो — जिन २८ सज्जनोंके नाम तुमने मेरे पास भेजे हैं, उन सबको मैं खुद ही पत्र लिख दूँ या यह कि मैं श्रीयुत सुमंतको यह बताते हुए पत्र लिख दूँ कि मैं क्यों नहीं आ पाया हूँ? देवदास मेरे साथ नहीं है। वह देवलालीमें मथुरादासकी सेवा-परिचर्या कर रहा है। यह विचार काफी अच्छा है कि जिन जिलोंमें मैं दौरा करनेवाला था, वहाँका दौरा एक दल करे। वह दल खुद मेरा सन्देश ले जा सकता है। मैं नहीं जानता कि मणिलाल कोठारी कब लौटेंगे। अप्पा साहबने मुझे पत्र लिखा था और खादी प्रदर्शनीके सम्बन्धमें उनके विचारका अनुमोदन करते हुए मैंने जवाब लिख दिया है। मैं नहीं समझता कि ३०० रुपयेके प्रस्तावित अनुदानके सम्बन्धमें कोई कठिनाई होगी।

निश्चय ही तुम पहलेसे समय तय करके मुझसे मिलने यहाँ आ सकते हो। मैं आजकल ज्यादा काम नहीं करता। इसलिए तुम जब चाहो आ सकते हो। तुमने जो पत्र लिखनेको कहा है, वह तुम्हारा उत्तर मिलनेपर ही लिखूँगा।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १४१०८) की फोटो-नकलसे।

२८. पत्र : हैरॉल्ड मैनको

साबरमती आश्रम
१७ फरवरी, १९२६

प्रिय श्री हैरॉल्ड,

आपके संक्षिप्त पत्रके लिए धन्यवाद। कृपया आगामी शनिवारको अवश्य आइए। मेरे लिए शामके ४ बजेका समय सबसे सुविधाजनक है, लेकिन यदि आपके लिए वह सुविधाजनक नहीं हो तो सुबहके आठ बजेका समय भी मेरे लिए वैसा ही अच्छा है और शामके ३ बजेका भी। क्या आप मुझे यह सूचित करनेकी कृपा करेंगे कि किस समय मैं आपके आनेकी उम्मीद करूँ?

आपके पत्रपर १२ तारीख पड़ी हुई है। वह आज मिला है और चूंकि मैं देखता हूँ कि आजसे २० तारीखके बीच समय कम है, इसलिए मैं निम्नलिखित तार भी भेज रहा हूँ।

"पत्रके लिए धन्यवाद। सुबहके आठ या शामके चार बजे। शनिवार ठीक रहेगा।"

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १४१०९) की माइक्रोफिल्मसे।

२९. पत्र : मोतीबहन चौकसीको

साबरमती आश्रम
बुधवार, १७ फरवरी, १९२६

चि० मोती,

तुम्हारा पत्र मिला। कल तो सिर्फ नाजुकलालका ही मिला। तुम दोनों अब्बास साहबसे मिले, यह बहुत अच्छा किया। तुम्हारी लिखावट अब भी ऐसी नही हो पाई है कि मैं उसे ठीक कह सकूँ। 'भरूच' शब्द तो तुमने ऐसा लिखा है कि उसे मुश्किलसे ही पढ़ा जा सकता है। 'भ' का शुरूका गोल हिस्सा टूटा हुआ है। 'ढी' 'छी' की तरह लगता है। 'प' और 'य' का भेद ठीकसे नहीं दिखाया है। इस तरहके और भी बहुत-से उदाहरण बता सकता हूँ।

छोटी लक्ष्मी सो गई थी, फिर भी जब मैंने पूछा तो उसने कहा कि मैं तो अपने बाल काढ़ रही थी। इसलिए आज उसकी सम्मतिसे मैंने खुद ही उसके बाल काट डाले। अब उसका सिर बहुत अच्छा और साफ लगता है। इसी तरह वह अपना अभ्यन्तर भी स्वच्छ कर लेगी, ऐसा वचन तो उसने दिया है।

लक्ष्मीदास कल बीजापुर गया। आज या कल लौट आयेगा।

बापूके आशीर्वाद

मार्फत श्री नाजुकलाल चौकसी
भरूच केळवणी मण्डल
भरूच

गुजराती पत्र (एस० एन० १२११६) की फोटो-नकलसे।

३०. पत्र : रामदास गांधीको

बुधवार [१७ फरवरी, १९२६][1]

चि० रामदास,

मैं तो रामनाम जप रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (जी० एन० ६८४९) की फोटो-नकलसे।

३१. आजकी चर्चाका विषय

पाठकोंके हाथमें इस लेखके पहुँचते-पहुँचते दक्षिण आफ्रिकी शिष्टमण्डलके अधिकांश सदस्य जलमार्गसे दक्षिण आफ्रिकाकी ओर लौट रहे होंगे। प्रस्थान करनेसे पूर्व सर्वश्री अहमद मायात, जेम्स गॉडफ्रे, पाथेर और मिर्जा मुझसे मिलने आये थे। उन्होंने मेरे साथ दिन-प्रतिदिन परिस्थिति जो रूप लेती जा रही है, उसके सम्बन्धमें बातचीत की। वे जहाँ-कहीं भी गये, सर्वत्र उनका जैसा शानदार स्वागत हुआ और भारतके सभी दलोंने, जिनमें यूरोपीयोंके संगठन भी शामिल हैं, उन्हें जिस प्रकार अपना समर्थन दिया, उसपर उन्होंने सन्तोष व्यक्त किया। लेकिन, मुझे यह कहते हुए खुशी हो रही है कि इस समर्थनसे उनके मनमें सुरक्षाका कोई भ्रम उत्पन्न नहीं हुआ। उन्होंने यह देख लिया कि भारत मदद देनेके लिए उत्सुक तो बहुत है, लेकिन उसमें मदद देनेकी उतनी सामर्थ्य नहीं है।

रंग-भेद विधेयक संसदमें धीरे-धीरे अपना रास्ता तय कर रहा है। सिद्धान्तकी दृष्टिसे यह उतना ही बुरा है जितना कि एशियाई कानून। इसलिए यह उतना ही आपत्तिजनक भी है। इसको विधानका रूप देनेमें जो प्रगति हो रही है, उससे एशियाई विधेयकके विषयमें संघ-सरकारका इरादा और संकल्प प्रकट होता है। यह बात दिन-

१. राष्ट्रीय संग्रहालयमें सुरक्षित मूल पत्रपर दी गई डाक-मुहरसे।

प्रतिदिन अधिकाधिक स्पष्ट होती जा रही है कि संघ-सरकार उस कानूनको नरम बनानेके बजाय सम्भव हो तो, और कड़ा बनानेका इरादा रखती है। खण्ड १०में संशोधन करनेकी जो तजवीज है, उससे वास्तवमें राहत कुछ नहीं मिलती, और उस विधेयकमें केपको शामिल करनेकी बातको लेकर कुछ दक्षिण आफ्रिकी अखबार भी विधेयकके खिलाफ हो गये हैं। एक अखबारने तो यहाँतक आरोप लगाया है कि शायद भारतमें डॉ० अब्दुर्रहमानकी कारगुजारियोंसे जल-भुनकर ही दक्षिण आफ्रिकाकी सरकार विधेयककी व्याप्तिमें केपको भी शामिल करनेका प्रयत्न कर रही है। हमें तो यही आशा करनी चाहिए कि सरकार और चाहे जो-कुछ करनेकी दोषी हो, लेकिन उसपर जिस क्षुद्रताका आरोप लगाया गया है, उस क्षुद्रताकी दोषी वह नहीं है। मगर चाहे जो हो, सरकारके इरादे साफ हैं। सरकारकी नीति भारतीय प्रवासियोंका मूलोच्छेद कर देनेकी है, और उन्हें इसी सरकारी नीतिका सामना करना है, उसके खिलाफ लड़ना है। अगर उनके पीछे साम्राज्य-सरकार तथा भारत-सरकारका प्रबल समर्थन हो तो वे यह लड़ाई सफलतापूर्वक चला सकते हैं, मगर यह समर्थन उन्हें मिलनेवाला नहीं है। भारत-सरकार साम्राज्य-सरकारकी प्रतिच्छविमात्र है और वर्तमान संघ-सरकार साम्राज्य सरकारसे न तो डरती है और न उसका कोई आदर करती है; इसके विपरीत, साम्राज्य-सरकार ही संघ-सरकारसे डरती है। उसे डर यह है कि कहीं दक्षिण आफ्रिकी संघ साम्राज्यीय साझेदारीसे अलग न हो जाये। यह तो वैसा ही हुआ जैसे कुत्ता पूँछको नहीं, बल्कि पूँछ ही कुत्तेको चलाये। साम्राज्य-सरकारको जबतक भारतको खो देनेका भय नहीं होगा तबतक वह दक्षिण आफ्रिकाके विरुद्ध अपनी सत्ता और अधिकारका प्रयोग नहीं करेगी। आज ऐसा दिखता है, जैसे असहयोग विफल हो गया। इससे साम्राज्य-सरकारके मनमें इस विषयमें एक नई आशा बँध गई है कि भारत असहाय है। इसलिए जब ठीक मौका आयेगा और भारतमें कोई अप्रत्याशित स्थिति न उत्पन्न हो गई तो निश्चित है कि सत्ताका जोर दक्षिण आफ्रिकाके पक्षमें डाला जायेगा। इस प्रकार, अगर यह विधेयक वर्तमान सत्रमें स्थगित भी हो जाये तो भी इतना निश्चित है कि अन्तमें वह पास होकर रहेगा।

फिर हमारे दक्षिण आफ्रिकावासी देशभाई क्या करें? दुनियामें अपनी सहायता आप करने-जैसी अच्छी कोई और चीज नहीं है। जो अपनी सहायता आप करते हैं, उन्हींकी सहायता दुनिया भी करती है। इस प्रसंगमें बल्कि शायद सभी प्रसंगोंमें, अपनी सहायता आप करनेका मतलब स्वेच्छासे कष्ट उठाना है, और ऐसे कष्ट-सहनका मतलब सत्याग्रह है। जब उनके सम्मानपर बन आई हो, जब कोई उनसे उनके अधिकार छीन रहा हो, जब उनकी आजीविकाको कोई खतरा हो, उस समय उन्हें सत्याग्रह करनेका अधिकार है और यह उनका कर्त्तव्य हो जाता है। उन्होंने १९०७ और १९१४ में सत्याग्रह किया और जब ऐसा किया तो उन्हें भारत सरकारका भी समर्थन प्राप्त हुआ, बल्कि सच तो यह है कि यूरोपीयों और दक्षिण आफ्रिकाकी सरकारने भी उन्हें सराहा। अगर उनमें सामूहिक हितके लिए कष्ट सहनेकी इच्छा और उत्साह हो तो वे फिर वैसा कर सकते हैं।

मगर अभी उसके लिए उपयुक्त समय नहीं आया है। पहले तो उन्हें तमाम कूटनीतिक उपायोंको आजमाकर देख लेना है और वे ऐसा कर भी रहे हैं। अभी उन्हें भारत-सरकार संघ-सरकारके साथ जो वार्ता चला रही है, उसके नतीजेकी राह देखनी चाहिए और जब वे सभी रास्ते आजमाकर देख लें, लेकिन तब भी इस कठिनाईसे नहीं निकल पायें, तब समझना चाहिए कि अब सत्याग्रह करनेका बिलकुल उचित प्रसंग उपस्थित हो गया है। उस हालतमें पीछे हटना कायरता होगी। और विजय तो निश्चित मानिए। दुनियाकी कोई भी ताकत किसीसे उसकी मर्जीके खिलाफ कुछ नहीं करवा सकती। सत्याग्रह इस महान् नियमके बोधका सीधा परिणाम है और उसका इस बातसे कोई सरोकार नहीं है कि उसमें कितने लोग शामिल हैं।

सत्याग्रहकी शर्तें अनुल्लंघ्य हैं। उनमें अपवादके लिए कोई गुंजाइश नहीं है। उसमें किसी प्रकारकी हिंसा नहीं होनी चाहिए। उसमें एक न्यूनतम माँगका आग्रह करके चलना चाहिए — ऐसी न्यूनतम माँग, जिसमें कोई कमी नहीं की जा सकती हो और जो किसी भी विवेकशील और निष्पक्ष व्यक्तिको ठीक लगे। हो सकता है, हम न्यायतः बहुत-सी चीजोंके हकदार हों, लेकिन सत्याग्रह ऐसी ही चीजोंके लिए किया जाता है, जिनके बिना आत्मसम्मान, या दूसरे शब्दोंमें सम्मानपूर्ण ढंगसे जी सकना असम्भव हो।

उसमे कितनी कीमत चुकानी पड़ सकती है, इसका भी पूरा अन्दाजा रखना चाहिए। सत्याग्रह मात्र कुछ कर दिखानेके साहसके कारण या आजमाइशी तौरपर नहीं किया जा सकता, यह तो व्यक्तिकी भावनाकी तीव्रताका मापदण्ड है। इसलिए सत्याग्रह उसी हालतमे किया जाता है, जब उसके बिना काम न चले, वह अनिवार्य हो जाये। इसके लिए, अर्थात् सत्यके लिए जो भी कीमत चुकानी पड़े, कम है। जब सफलताकी कोई आशा नहीं रहती, तब भी इसमें सफलता मिल जाती है। सत्याग्रह मानवीय सहायतामें विश्वास रखकर नहीं किया जाता, वह तो ईश्वर और उसके न्यायमें अपरिमित आस्थाके बलपर ही किया जाता है। ईश्वर बड़ा दयालु भी है और बहुत कठोर भी। वह जब हमारी परीक्षा लेने बैठता है तो हमारी कष्ट-सहनकी क्षमताको अन्तिम बिन्दुतक परखकर छोड़ता है, लेकिन वह इतना दयालु भी है कि हमारी परीक्षा इस हदतक नहीं लेता कि हम टूट जायें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १८-२-१९२६

३२. जेल या "अस्पताल"?

अभी हालमें लॉर्ड लिटनने कलकत्ता रोटरी क्लबके सदस्योंके सामने जेलोंके विषयमें बोलते हुए कहा कि जिस प्रकार हम शरीरसे अस्वस्थ लोगोंको जेलोंमें नहीं, बल्कि अस्पतालोंमें भेज देते हैं, उसी प्रकार मानसिक रूपसे अस्वस्थ, अर्थात् अपराधी वृत्तिवाले लोगोंके लिए हमें "नैतिक चिकित्सकों और नैतिक अस्पतालोंकी व्यवस्था" करनी चाहिए। परमश्रेष्ठने विषयको इस प्रकार प्रस्तुत किया:

> अपने सामने मैं जो आदर्श रखना चाहता हूँ वह, अगर बिलकुल संक्षेपमें और सरलतम शब्दोंमें कहूँ तो, केवल यह है — हमारी दण्ड संहिताका आधार प्रतिशोध न हो, बल्कि उसके स्थानपर सुधार हो। सजा देनेसे भयकी भावना उत्पन्न की जा सकती है, जबर्दस्ती किसीमें कोई आदत डाली जा सकती है, लेकिन यह मनुष्यको नेक नहीं बना सकती। इसलिए नैतिक सुधारके साधनके रूपमें सजा निरर्थक ही नहीं, उससे भी बदतर है। अतः, सजा देनेका चलन बिलकुल खत्म कर देना चाहिए। दण्ड-जुर्मानेके बलपर जबर्दस्ती थोपी गई नैतिकता झूठी है और जो लोग एक नैतिक मान स्थापित करना चाहते हैं, उन्हें किसी और तरीकेसे काम लेना चाहिए।

सजाके लाभों और उसकी सीमाओंके विषयमें लॉर्ड लिटनने कहा:

> अगर सजाके तरीकेका सहारा लिया भी जाये तो उसका उद्देश्य व्यक्तिके कल्याणके लिए आवश्यक आदतें डालना अथवा समाजके कल्याणके लिए आवश्यक अनुशासन उत्पन्न करना होना चाहिए। मैं यह नहीं कहता कि सजा अपने इस प्रयोजनमें बराबर सफल ही होगी; मेरे कहनेका मतलब यह है कि प्रसंग-विशेषमें कोई सजा, अपना प्रयोजन सिद्ध करनेकी दृष्टिसे उपयुक्त या अनुपयुक्त हो सकती है। फिर मैं यह भी नहीं कहता कि इस उद्देश्यको प्राप्त करनेका एकमात्र तरीका सजा ही है। मेरा कहना तो यह है कि सजाके तरीकेसे केवल इन्हीं उद्देश्योंकी पूर्ति हो सकती है। जोर-जबर्दस्तीसे जो एक उद्देश्य सिद्ध नहीं हो सकता, वह है मनुष्यको नेक या नैतिक आचरण करनेवाला बनाना। इसलिए जिन सजाओंका उद्देश्य मानव-स्वभावकी दुर्बलताओंको दूर करना या नेकी सिखाना है, वे सबकी-सब नितान्त कपटपूर्ण हैं। जिस प्रकार स्वास्थ्य शरीरकी एक दशा है उसी प्रकार नेकी भी मनकी एक अवस्था है और जिस तरह सजासे शारीरिक दोषोंको नहीं सुधारा जा सकता है उसी तरह चारित्रिक दोषोंको भी नहीं सुधारा जा सकता। किसी संक्रामक रोगसे पीड़ित व्यक्तिको जबरन सबसे अलग करके रखना किसी समाजके

> स्वास्थ्यके हकमें आवश्यक हो सकता है; ऐसे ही कारणसे, जिस व्यक्तिके नैतिक दोषोंसे समाजको खतरा हो, उस व्यक्तिको समाजसे अलग करके रखना आवश्यक हो सकता है; लेकिन लाल बुखारसे बीमार किसी व्यक्तिको खसरे, क्षय और कुष्ठसे पीड़ित बहुत-से लोगोंके साथ बन्द करके उसकी बीमारी ठीक करनेकी कोशिश करना उतना ही बेतुका और शरारत-भरा काम होगा, जितना कि किसी चोर या ठगको दूसरे चोरों और ठगोंके साथ बन्द करके उसकी चोरी या ठगीकी आदत छुड़ानेकी कोशिश करना।

इस उद्घोषणाके बाद तो कोई भी उनसे यही अपेक्षा करता कि अब वे बंगालमें जेल-सुधारकी दिशामें किये गये या किये जानेवाले प्रयत्नोंका वर्णन करेंगे। किन्तु, उसके बदले बंगालके गवर्नर महोदयने इंग्लैंडमें मानवतावादी संगठनों द्वारा किये गये दो सफल प्रयत्नोंके दृष्टान्त दिये और कहा:

> अब आप यह पूछ सकते हैं कि मैं आपके सामने आज इसी विषयपर क्यों बोला। कारण यह है कि यह एक ऐसा काम है, जिसे कोई भी सरकार नहीं कर सकती। इस प्रकारके कार्योंमें दखल देकर तो सरकारें सिर्फ बाधा डालती हैं और काम बिगाड़ती हैं। यह काम तो उन्हीं लोगोंको करना चाहिए, जिन्हें मनसे इसे करनेकी प्रेरणाका अनुभव हो।

इस प्रकार उन्होंने अपनी सरकार और तमाम सरकारोंको इस अत्यावश्यक सुधारके दायित्वसे मुक्त कर दिया और यह जिम्मेदारी समारोहमें उपस्थित रोटरी क्लबके सदस्योंके विशाल और "आदर्शवादी" कंधोंपर डाल दी।

किन्तु, एक अनुभवी कैदीके नाते मेरा विश्वास है कि लॉर्ड लिटन जो सुधार-कार्य अपने श्रोताओंसे हाथमें लेनेकी अपेक्षा रखते हैं, वह वास्तवमें सरकारको शुरू करना चाहिए। मानवतावादी व्यक्ति और संगठन उसमें सहायता-भर कर सकते हैं। अभी तो जो स्थिति है, उसमें मानवतावादी कार्योंमें प्रवृत्त लोग अगर कुछ करते हैं तो सबसे पहले उन्हें जेलोंमें चलनेवाली शरारतोंको दूर करना होगा। जेलोंका वातावरण कैदियोंकी अपराधवृत्तिको और भी उभार देता है और निर्दोष कैदी भी वहाँ यह सीख जाते हैं कि अपराध करके कैसे छिपाया जाता है। मैं मानता हूँ कि मानवतावादियों द्वारा किये गये प्रयत्नोंसे जेलोंमें चलनेवाली बुराइयोंका निवारण नहीं हो सकता। जब लॉर्ड लिटनने अपने भाषणके प्रारम्भमें "हमारी दण्ड-संहिताका आधार प्रतिशोध न हो, बल्कि उसके स्थानपर सुधार हो", यह बात कही, तब निश्चय ही यह प्रकट तथ्य उनके ध्यानमें रहा होगा। लेकिन, स्पष्ट है कि अपना भाषण समाप्त करते समय वे यह बात भूल गये कि उन्होंने अपनी दण्ड-संहिताको इस सुधारका आधार बनानेका मंशा जाहिर किया था; और चूँकि उन्होंने यह महसूस किया कि वे अपनी सरकारको ऐसे किसी सुधारका श्रेय देनेकी स्थितिमें नहीं हैं, इसलिए उन्होंने भाषण समाप्त करते हुए कह दिया कि यह सुधार करना सरकारका काम नहीं है।

लॉर्ड लिटनने ठीक ही कहा है कि सजा तो विशुद्ध रूपसे समाजकी सुरक्षाको ध्यानमें रखकर देनी चाहिए। अगर ऐसा है, तब तो सिर्फ नजरबन्दी ही काफी होनी चाहिए और किसीको नजरबन्द भी तभीतक रखना चाहिए जबतक कि ऐसा माननेका पर्याप्त आधार न हो कि उस व्यक्तिकी बुरी आदतें दूर हो चुकी हैं या जबतक उसके सदाचरणके बारेमें कोई जमानत न मिल जाये। कैदियोंका समुचित वर्गीकरण, मानवीय दृष्टिकोणसे उनके बीच कामका बँटवारा, अच्छे वार्डर रखना, कैदियोंको वार्डर बनानेका चलन समाप्त कर देना, इन तमाम बातों और इसी तरहके जो दूसरे बहुत-से परिवर्तन आसानीसे सुझाये जा सकते हैं, उनको लागू करनेमें कोई कठिनाई नहीं हो सकती।

खुद लॉर्ड लिटन द्वारा प्रस्तुत कसौटीके अनुसार मुकदमा चलाये बिना राजनीतिक कैदियोंको नजरबन्द रखना और उनके साथ वैसा दुर्व्यवहार करना, जैसा-कि उनके साथ हुआ बताया जाता है, बिलकुल गलत है। आशा करनी चाहिए कि परमश्रेष्ठ अपनी जेलोंके प्रशासनमें अपने उक्त प्रशंसनीय मानदण्ड लागू करेंगे। और यदि ऐसा हुआ तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन्हें अनेक आश्चर्यजनक बातें सूझेंगी — उन्हें ऐसे कई सुधारोंका दर्शन होगा जिन्हें मानवतावादी लोगोंकी अपेक्षा उनकी सरकार कहीं ज्यादा आसानीसे कर सकती है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १८-२-१९२६

३३. पाँच हजार मील दूर

अभी हालमें विधानसभामें भारतीय अपीलोंकी सुनवाईके लिए प्रिवी कौंसिलमें दो अतिरिक्त न्यायाधीश नियुक्त करनेके प्रस्तावपर जो बहस हुई, उसने इस विवादको फिरसे जीवित कर दिया है कि अपीलकी यह अन्तिम अदालत कहाँ स्थित होनी चाहिए। आज हम जिस व्यामोहमें पड़े हुए हैं, अगर वह व्यामोह नहीं होता तो हम बड़ी आसानीसे देख सकते कि न्याय प्राप्त करने (या कि खरीदने?)के लिए पाँच हजार मील जाना कितना निरर्थक है और यह व्यवस्था कितनी दोषपूर्ण है। दलील यह दी जाती है कि अगर न्यायाधीशोंको यहाँ, मान लीजिए, दिल्लीमें अपीलोंकी सुनवाई करनी पड़ती तो वे मुकदमोंके फैसले उतनी तटस्थता और निष्पक्षता-से नहीं कर पाते, जितनी तटस्थता और निष्पक्षतासे इस सुशोभन दूरीपर बैठे रहकर करते हैं। किन्तु, जरा-सा सोचनेसे ही यह दलील बिलकुल खोखली दिखाई देने लगती है। क्या लन्दनके गरीब लोगोंकी प्रिवी कौंसिल दिल्लीमें होनी चाहिए? और फिर फ्रांसीसियों और अमेरिकियोंको क्या करना चाहिये? क्या परस्पर कोई प्रबन्ध करके फ्रांसीसियोंको अपनी अपीलकी अन्तिम अदालत अमेरिकामें स्थापित करनी चाहिए और अमेरिकियोंको फ्रांसमें? अगर भारत स्वतन्त्र देश होता तो फिर हम क्या करते? या कि भारत एक अपवाद है, जिसके साथ विशेष कृपापूर्ण

व्यवहार करने और जिसको सुदूर लन्दनमें अपील करनेका अधिकार देनेकी जरूरत है? प्रिवी कौंसिलको लन्दनमें रखनेके पक्षमें बड़े-बड़े उपनिवेशोंके दृष्टान्त देना बेकार है। वे तो भावनाके वशीभूत होकर इस असंगतिको कायम रखे हुए हैं। और कई उपनिवेशोंमें अपीलकी अन्तिम अदालतें अपने यहाँ ही रखनेके पक्षमें आन्दोलन चल पड़े हैं। भारतकी भावना उपनिवेशोंकी भावनासे उलटी है। आत्म-सम्मानी भारत कभी भी यह चीज बरदाश्त नही करेगा कि उसकी अपीलकी अन्तिम अदालत भारतसे कहीं बाहर हो।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १८-२-१९२६

३४. खादीकी प्रगति

अखिल भारतीय चरखा संघके मन्त्रीको चित्तूर जिला खादी बोर्डका एक पत्र मिला है, जिसमें सितम्बर, १९२५ से लेकर दिसम्बर, १९२५ तक लोगोंके अपने काते सूतसे तैयार की गई खादीके विषयमें महत्त्वपूर्ण जानकारी दी गई है। पत्रका एक अंश नीचे दे रहा हूँ:[1]

ऊपर जो जानकारी दी गई है, उसका महत्त्व इस बातमें निहित है कि इन खुद कातनेवालोंमें वकील, स्नातक, नगरपालिकाके एक पार्षद, विधान परिषद्के एक सदस्य और विधानसभाके भी एक सदस्य शामिल हैं। इन लोगोंने शायद अपने सभी या कुछ कपड़े अपने ही काते सूतसे तैयार कराये हैं, लेकिन सो कुछ पैसा बचानेके खयालसे नहीं, बल्कि इसलिए कि उन्हें इस चीजसे प्रेम है। महादेव देसाईने इसी अंकमें अन्यत्र नाथा पटेल नामक एक किसानका किस्सा बयान किया है। ऐसे किसान अपनी जरूरतके कपड़ोंके लिए मुख्यतः इस खयालसे सूत कातते हैं कि इस तरह वे काफी बचत कर लेते हैं। जैसा कि उसने खुद ही कहा है, उसे अपने परिवारपर सालाना २५० रुपये खर्च करने पड़ते थे। इस प्रकार खादीका आर्थिक महत्त्व भी है और भावात्मक भी और दोनों समान रूपसे स्पृहणीय हैं।

मैं खादी-कार्यका संगठन करनेवालों और कातनेवालोंको उनकी शक्ति और लगनके लिए बधाई देता हूँ, किन्तु दुःखके साथ कहना पड़ता है कि पत्र-लेखकने, लोग सेवा-भावसे कातें, इस चीजको प्रोत्साहन देनेके लिए जो योजना तैयार की है, उससे मैं सहमत नहीं हो सकता। वे ऐसे हर व्यक्तिको, जो किसी मान्यता प्राप्त कताई केन्द्रमें महीना-भर रोजाना एक घंटा सूत काते, उपहारस्वरूप एक तौलिया देनेका वादा करते हैं और फिर यह वचन भी देते है कि जो लोग ९० दिनोंतक रोजाना एक घंटा सूत कातेंगे उनका सूत मुफ्त बुनवा देंगे।

१. यहाँ इसका अनुवाद नहीं दिया जा रहा है।

अगर इन वादोंका सम्बन्ध उन वर्गोंके कातनेवाले लोगोंसे है, जिनका उल्लेख ऊपर उद्धृत पत्रमें हुआ है तो मैं समझता हूँ कि यह अवांछनीय प्रलोभन है और विधान-परिषद् तथा विधान-सभाके सदस्य और वकील लोग अपना सूत शायद इस तरह मुफ्त नहीं बुनवायेंगे। अगर वे इस खयालसे सूत कातते हैं कि अन्तमें उन्हें कताईका अच्छा-खासा पुरस्कार मिलेगा तब तो उनके चरखा चलानेका कोई महत्त्व ही नहीं रह जायेगा। ऐसे लोगोंको तो कताईसे प्रेम होनेके कारण ही कातना चाहिए। अपने ही काते सूतसे बुना कपड़ा पहननेका सुख और सन्तोष उनके इस श्रमका पूरा पुरस्कार होना चाहिए। पुरस्कार तो उन लोगोंके लिए है, जो कातनेके इच्छुक नहीं हैं। हाँ, सेवा-भावसे कातनेवाले लोगोंमें भी जो जरूरतमन्द हों और जिनके लिए एक-एक पैसेकी बचतका मतलब अपनी दाल-रोटीके लिए उतने पैसे और प्राप्त हो जाना है, उनको पुरस्कार दिया जा सकता है।

सेवा-भावसे कताई करनेवालोंको पूनियाँ देनेका मतलब भिखमंगीको प्रोत्साहन देना है। जो लोग पूनियाँ खरीद सकते हैं, उन्हें वे मुफ्तमें क्यों दी जायें, जबकि काता हुआ सूत उन्हींका होना है? बेशक, इतना काफी है कि उन्हें कताईकी सुविधाएँ दी जायें और उन्हें इस कलामें दक्ष बनानेके लिए जो-कुछ शिक्षण-प्रशिक्षण दरकार हो, वह दिया जाये। मुफ्त पूनियाँ तो सिर्फ दरिद्र लोगोंको दी जा सकती हैं, ताकि वे अपनी रोटी कमा सकें और उन्हें काम करनेकी प्रेरणा मिले, क्योंकि इस समय निठल्लापन सारे देशमें फैलता हुआ-सा लग रहा है। पहले तो हमें जबरदस्ती निठल्ला बनाकर रखा जाता था, किन्तु अब यही दोष हमारी आदतमें शामिल होता जा रहा है। खादी-कार्यकर्त्ता यह बात कभी न भूलें कि खादीकी सारी योजनाका आधार यह मान्यता है कि करोड़ों लोग कामके अभावमें या तो पूरे वर्ष या कमसे-कम तिहाई वर्ष बेकार बैठे रहते हैं। इसलिए इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि खादी संगठनों द्वारा खर्च किया गया एक-एक रुपया इन करोड़ों अभावग्रस्त लोगोंकी जेबमें जाये और सो भी दानके तौरपर नहीं, बल्कि उतने मूल्यके किये हुए किसी श्रमके पारिश्रमिकके रूपमें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १८-२-१९२६

३५. बदसे-बदतर

मद्रासके प्रकाशित 'हिन्दू' अखबारमें दक्षिण आफ्रिकी एशियाई विधेयकके खण्ड १० के प्रस्तावित संशोधनका पूरा पाठ छपा है। नीचे मैं समानान्तर स्तम्भोंमें प्रस्तावित संशोधन और मूल खण्ड, दोनों उद्धृत कर रहा हूँ:

मूल खण्ड १०, उप-खण्ड २:

गवर्नर जनरल 'गजट' में घोषणा करके विज्ञापित कर सकता है कि उस तिथिसे या उसके बाद, जो कि घोषणामें निर्धारित की जाये, घोषणामें बताई गई किसी भी जातिका कोई सदस्य इस खण्डके उप-खण्ड (२) में वर्णित तटीय क्षेत्रको छोड़कर नेटाल प्रान्तमें अन्यत्र कहीं भी कोई अचल सम्पत्ति स्वायत्त नहीं करेगा, ऐसी सम्पत्ति पट्टेपर भी नहीं लेगा और न ऐसी सम्पत्तिका पट्टा नया ही करवायेगा, किन्तु इस खण्डकी कोई भी व्यवस्था ऐसी अचल सम्पत्तिका पट्टा नया करानेसे किसी व्यक्तिको नहीं रोकेगी जो इस अधिनियमके लागू होनेके समय उस व्यक्तिके अधिकारमें हो।

संशोधित खण्ड

गवर्नर जनरल 'गजट' में घोषणा करके विज्ञापित कर सकता है कि घोषणामें निर्धारित तिथिसे या उसके बाद — किन्तु यह तिथि अगस्त, १९२५ से पहले की नहीं होगी — घोषणा-पत्रमें बताये गये किसी भी वर्गका कोई व्यक्ति एक तो इस संघकी सीमामें कहीं भी अचल सम्पत्तिको किरायेपर नहीं लेगा, न उसको अपने कब्जेमें लेगा और न पट्टेदारकी हैसियतसे पाँच सालसे अधिक अवधिके लिए पट्टा ही नया करवायेगा; और दूसरे, केप ऑफ गुड होप और नेटालमें वह कोई अचल सम्पत्ति स्वायत्त नहीं कर सकेगा। हाँ, वह निवासके प्रयोजनोंके लिए वर्गनिवास क्षेत्रमें या व्यापारिक प्रयोजनोंके लिए वर्गव्यापार क्षेत्रमें अथवा किसी भी प्रयोजनके लिए वर्गनिवास और व्यापार-क्षेत्रमें अचल सम्पत्ति अर्जित कर सकेगा।

मूल खण्ड और संशोधनपर जरा-सी नजर डालनेसे किसी साधारण पाठकको भी स्पष्ट हो जायेगा कि संशोधन मूल खण्डसे लाख दर्जे बुरा है। इस तरह इसमें किसी तरहके समझौतेके लिए प्रयत्नतक नहीं किया गया है, बजाय इसके यह भारतीय लोकमतको, और दरअसल तो भारत सरकारको भी, एक चुनौती है। संघ-सरकारका यह रवैया उस प्रबल आन्दोलनके अनुरूप ही है, जो दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंके विरुद्ध भड़काया गया है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १८-२-१९२६

३६. पत्र : पुरुलिया कुष्ठ आश्रमके अधीक्षकको

साबरमती आश्रम
१९ फरवरी, १९२६

प्रिय मित्र,

आपके तत्काल और सविस्तार उत्तरके[1] लिए धन्यवाद। मैं उसकी एक प्रति उन बीमार मित्रको भेज रहा हूँ। वे एक कालेजमें प्राध्यापक हैं और मैं जानता हूँ कि आपने इस सिलसिलेमें जो कोशिशें की हैं, उनके लिए वे कृतज्ञ होंगे।

कृपया डॉ० सान्त्राको मेरी याद दिला दें।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १४११०) की माइक्रोफिल्मसे।

३७. पत्र : आ० टे० गिडवानीको

साबरमती आश्रम
१९ फरवरी, १९२६

प्रिय गिडवानी,

पुरुलियासे आये जवाबकी नकल पत्रके साथ भेज रहा हूँ। मूल पत्रको भविष्यमें प्रयोग करनेके लिए रख रहा हूँ। मैं समझता हूँ कि दूसरा उपाय आज़माना बेहतर होगा। श्री शार्पके पत्रसे जाहिर होता है कि चिन्ताका कोई कारण नहीं है। मैं आशा करता हूँ कि वैसे आप बिलकुल ठीक-ठाक होंगे।

संलग्न : १

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १४१११) की माइक्रोफिल्मसे।

१. गांधीजीके १०-२-१९२६ के पत्रके जवाबमें; देखिए खण्ड २९, पृष्ठ ४४७-४८।

३८. पत्र : विनोबा भावेको

साबरमती आश्रम
शुक्रवार, १९ फरवरी, १९२६

भाई विनोबा,

यदि तुम भी बीमार पड़ जाते हो तो अब दूसरोंको दोष कैसे दे सकते हैं? अब तो मेरे लिए भी अपनेको दोषी मानना जरूरी नहीं। जो जन्मसे ब्रह्मचारी है, अगर उसे बीमार पड़नेका अधिकार हो तो मुझ-जैसे मनुष्यको तो, जिसने पके हुए घड़ेको चाकपर चढ़ानेका प्रयत्न किया है, इसका कितना अधिक अधिकार होना चाहिए? लेकिन हम दोनोंको यह अधिकार छोड़ना होगा। ब्रह्मचारी तो वही है जिसका शरीर वज्रका होगा। रोग-मात्र किसी-न-किसी विकारका ही चिह्न है न? आशा है, अब तुम बिलकुल ठीक हो गये होगे।

मामाके आश्रमके बारेमें लिखना। जैसा कि तुम कह गये थे, तुम्हारा प्रतिदिन १६० गज सूत लिख दिया जाता है। और यद्यपि पुरुषोत्तमको लिखे तुम्हारे पत्रके अनुसार उसमें सुधार होना चाहिए फिर भी तुम्हारी औसत तो १६० गज ही आयेगी। इसलिए छोटे-छोटे सुधार करके वही खराब करनेकी इच्छा नहीं होती।

जमनालाल आज यहाँ आये हैं। काकाको भी शायद कल अथवा रविवारको आ ही जाना चाहिए। स्वामी निषेधाज्ञा भिजवानेकी धमकी दे गये थे। यदि यह आज्ञा भेज दी गई होगी तो काका नहीं आयेंगे। चार बजेकी प्रार्थनामें आजकल बालकृष्ण 'ईशोपनिषद्' सुना रहा है। अवधि पूरी होनेपर तुम भी आ जाना।

गुजराती प्रति (एस० एन० १२१८२) की फोटो-नकलसे।

३९. पत्र : शार्दूलसिंह कवीसरको[1]

साबरमती आश्रम
२० फरवरी, १९२६

प्रिय मित्र,

पिछले दिनों जो डाक जमा हो गई थी, उनका जवाब देनेका समय मुझे अब जाकर मिला है।

जैसा कि आपने देखा है गुरुद्वारेवाले मामलेमें जिन कैदियोंपर मुकदमा चल रहा है, उनमें से कुछ-एकके रिहा कर दिये जानेके सम्बन्धमें मैंने कुछ नहीं कहा है। मैं

१. साधन-सूत्रमें पत्र पानेवालेका नाम नहीं लिखा है। लेकिन देखिए "पत्र: शार्दूलसिंह कवीसरको", २६-११-१९२५, खण्ड २९।

जानता हूँ कि कुछ कहना जोखिमका काम था, क्योंकि इसकी तहमें क्या है, इसकी जानकारी मुझे नहीं है।

अपने २७ जनवरीके पत्रके अन्तिम अनुच्छेदमें आपने जिस पत्रका उल्लेख किया है, वह मुझे अभीतक नहीं मिला है। मैं उसकी खोज करा रहा हूँ।

मैं आशा करता हूँ कि आप उन बातोंसे मुझे अवगत कराते रहेंगे जो आपकी रायमें मुझे मालूम होनी चाहिए।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १४११२) की माइक्रोफिल्मसे।

४०. पत्र : जीवनलालको

साबरमती आश्रम
शनिवार, फाल्गुन सुदी ९, [२० फरवरी, १९२६][1]

भाईश्री जीवनलाल,

आपका तथा भाई रामजीभाईका लिखा सम्मिलित पत्र तथा आप दोनोंके अलग-अलग लिखे पत्र मिले। मुझे कहना चाहिए कि उनसे मुझे कुछ आघात पहुँचा है। जैसे हम अपने निजी कामको छोड़ नहीं सकते और उसे सफल बनानेके लिए प्राण-पणसे जुट जाते हैं, ठीक वैसे ही हमें अपने हाथमें लिये लोकहितकारी अथवा धार्मिक कार्यके सम्बन्धमें भी करना चाहिए। इस नियमके अनुसार आप दोनोंमें से कोई भी, जिस तरह यह लिखकर कि हम अमरेली कार्यालयका उत्तरदायित्व छोड़ चुके हैं, उसे छोड़ देना चाहते हैं, उस तरह तो नहीं छोड़ सकते। आपने यह कार्य स्वेच्छासे हाथमें लिया है और यदि आप इससे मुक्त होना चाहते हैं तो दूसरी तरहसे उसकी अच्छी व्यवस्था करके ही मुक्त हो सकते हैं। आप दोनोंकी दिक्कतको मैं समझ सकता हूँ। मैं आपको एक पत्र तो आपका पत्र आनेसे पहले ही लिख चुका हूँ। मैंने उसमें जो-कुछ लिखा है, उसपर मैं अब भी कायम रहना चाहता हूँ। इस कार्यालय-की जिम्मेदारी परिषद् अथवा चरखा संघ अथवा खादी-मण्डलकी होगी। अभी तो मैंने ही इस जोखिमको उठा लिया है और आश्रमसे रुपया दे दिया है। लेकिन आपको यह इच्छा नहीं करनी चाहिए कि कोई सार्वजनिक संस्था उसमें पड़कर उसमें लगी आपकी पूँजी आपको वापस दे दे। आप कह सकते हैं कि इस कार्यको चलानेकी जोखिम सार्वजनिक संस्थाको उठानी चाहिए और अबसे इस कार्यके लिए जो पैसा चाहिए, उसका प्रबन्ध यह संस्था स्वयं करे तथा यदि किसी समय वह कार्यालयको बन्द करना

१. यह पत्र जीवनलालके जिस पत्रके उत्तरमें लिखा गया है उसपर यह टिप्पणी लिखी हुई थी : "पूज्य बापूने फाइलमें लगानेके लिए दिया, ता० २५-४-१९२६"; तारीख और वर्षका निश्चय इसीके आधारपर किया गया है।

चाहे तो वह इस सारे कारोबारको खरीदनेका प्राथमिक अधिकार आपको दे और यदि आप उस अधिकारका प्रयोग न करें तो उसे बन्द करते समय बची रकममें से आपका जितना हिस्सा आपके द्वारा लगाई गई १०,००० रुपयेकी रकमके अनुपातसे निकले उतना आपको दे दे। मैं दो वर्ष बाद उस रकमकी वापसीकी आपकी शर्तको ठीक नहीं मानता। आप प्रतिवर्ष जो दान करते हैं, यदि उसकी अवधि दो वर्षकी निश्चित करना चाहें तो मैं इसे तनिक भी अनुचित न मानूँगा। लेकिन मैं आप दोनोंसे ऐसी आशा अवश्य रखता हूँ कि जिस कार्यको आपने अभीतक अपना समझकर चलाया है उसे स्थायी बनानेके लिए आप, जबतक वह सुव्यवस्थित रूपसे न चलने लगे तबतक उसमें सहायता करते रहें और मैं यह मानता और चाहता हूँ कि अब जबकि आप अपने निजी कार्यको अधिक सफल बनाना चाहते हैं तब इसके फलका लाभ भी कार्यालयको विशेष रूपसे मिले। अमरेलीका खादी-कार्यालय काठियावाड़की सबसे बड़ी खादी प्रवृत्ति है। इसके लिए पर्याप्त उद्योग किये गये हैं, धन खर्च किया गया है और उसका काम भी अच्छी तरह जमा हुआ है। उसकी आवश्यकताके बारेमें सन्देहकी कोई गुंजाइश नहीं है। यदि यह कार्यालय बन्द हो जायेगा तो काठियावाड़में चलनेवाली खादीकी प्रवृत्तिको बड़ा धक्का पहुँचेगा।

इस सबपर विचार करनेके बाद आप दोनों जिस निश्चयपर आयें उससे मुझे अवगत करें।

आपके दानके बारेमें मेरी सलाह तो यह है कि जो पैसा बचा है, उसे आप मुझे भेज दें। उसे अन्त्यजोंके अथवा खादीके कार्यमें इस्तेमाल करनेका इरादा है। जहाँतक मुझसे बन पड़ेगा वहाँतक मैं इस रकमका उपयोग मकान बनानेके लिए नहीं करूँगा, लेकिन इतना अवश्य चाहूँगा कि आप मुझे उसके लिए वचनबद्ध न करें। चूँकि मैं स्वयं बाहर नहीं जाता; इसलिए आपके पास रखे इस पैसेका उपयोग करना चाहता हूँ।

गुजराती प्रति (एस० एन० १०८९३) की फोटो-नकलसे।

४१. विधवा-विवाह

एक विधवा बहन लिखती है:[1]

लेखिका बहनको यह पत्र शोभा देता है। पर इससे विधवा बहनोंके प्रश्नका निपटारा नहीं हो सकता। जब बाल-विधवाको धर्म-जैसी वस्तुका ज्ञान नहीं हो सकता, तब विधवा-धर्मकी तो हम बात ही कैसे कर सकते हैं? धर्मके पालनमें धर्मका ज्ञान निहित है। क्या हम कह सकते हैं कि एक बालक, जिसे झूठ-सचका कोई ज्ञान नहीं

१. इस पत्रका अनुवाद यहाँ नहीं दिया गया है। पत्र-लेखिकाने इसमें लिखा था कि मेरी समझमें यह बात नहीं आती कि आप बाल-विधवाओंको पुनर्विवाहकी स्वतन्त्रता देनेकी हिमायत क्यों करते हैं, क्योंकि परम्परासे उनके लिए जिस प्रकारके संयमी जीवनका विधान है, उससे उन्हें वासनाओंके दमनमें सहायता मिलती है, और इसलिए वह उनके लिए आत्मोत्थानकारी है।

है, असत्यके दोषका दोषी है? नौ सालकी बालिका यही नहीं जानती कि विवाह क्या वस्तु है, वह यही नही जानती कि वैधव्य क्या चीज है। उसके विषयमें तो यही कहना होगा कि उसका विवाह ही नहीं हुआ। तब वह विधवा किस तरह मानी जा सकती है? उसके विवाहकी क्रिया तो की थी उसके माता-पिताने और उन्होने ही मान लिया है कि वह विधवा हो गई। इसलिए यदि वैधव्यका पुण्य किसीको मिलता हो तो कहना होगा कि वह उसके माता-पिताको ही मिलता है। पर क्या वे नौ सालकी बालिकाका बलिदान करके इस पुण्यके यशोभागी हो सकते हैं? और यदि हो भी सकते हों तो भी हमारे सामने उस बालिकाका सवाल तो ज्योंका-त्यों ही रह जाता है। मान लें कि अब वह बीस बरसकी हो गई। ज्यो-ज्यों वह समझदार होती गई, उसने अपने आसपासकी परिस्थितिसे यह जाना कि वह विधवा मानी जाती है। पर इस धर्मको तो वह नहीं समझती। यह भी हम मान लें कि बीस वर्षकी अवस्थाको पहुँचते-पहुँचते धीरे-धीरे उसमें स्वाभाविक विकार पैदा हो गये और बढ़े भी। अब उस बालाको क्या करना चाहिए? वह अपने माता-पिताके सम्मुख तो अपने मनोभावोंको प्रकट कर नहीं सकती, क्योंकि उन्होंने यह संकल्प कर लिया है कि उनकी युवती लड़की विधवा है और उन्हें अब उसका विवाह नही करना है।

यह तो एक कल्पित दृष्टान्त है। पर भारतमें ऐसी विधवाएँ एक-दो नही, हजारो हैं। हम यह तो देख ही चुके हैं कि उन्हें वैधव्यका कोई पुण्य-फल नहीं मिलता। ये युवतियाँ अपने विकारोंको तृप्त करनेके लिए अनेक पापोंमें फँसती हैं। इसके लिए कौन जिम्मेवार है? मेरे खयालसे उनके इन पापोंमें उनके माता-पिता तो अवश्य ही हिस्सेदार होते हैं। पर इससे हिन्दू धर्म कलंकित होता है, दिन-प्रतिदिन क्षीण होता जाता है, और धर्मके नामपर अनीति बढ़ती जाती है। इसलिए यद्यपि इन बहन-जैसे ही विचार पहले स्वयं मेरे भी थे, पर अब विशेष अनुभवसे, मैं इस निश्चयपर पहुँचा हूँ कि जो बाल-विधवाएँ युवावस्थाको प्राप्त करनेपर पुनर्विवाह करनेकी इच्छा करें, उन्हें उसके लिए पूरी स्वतन्त्रता और प्रेरणा भी मिलनी चाहिए। इतना ही नहीं, बल्कि माता-पिताओंको चिन्तापूर्वक उचित रीतिसे इन बालाओंका विवाह कर देना चाहिए। इस समय तो पुण्यके नामपर पापका प्रचार हो रहा है।

बाल-विधवाओंका इस तरह विवाह कर देनेपर भी हिन्दूधर्म शुद्ध वैधव्यसे तो जरूर ही अलंकृत रहेगा। जिसने दाम्पत्य स्नेहका अनुभव किया है, ऐसी स्त्री यदि विधवा हो जानेपर स्वेच्छासे पुनर्विवाह न करे तो उसको संयमकी साधनाके लिए बाहरी नियन्त्रणकी आवश्यकता नहीं होगी। और दुनियामें ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो उसे पुन: विवाह करनेके लिए ललचा सकें। उसकी स्वाधीनता तो सदा ही सुरक्षित रहेगी।

जहाँ आत्मिक विवाह ही नहीं हुआ वहाँ आत्मिक विवाहका आरोप करना अनीति है। बाल-विवाहमें आत्मिक विवाहके लिए अवकाश ही नहीं। आत्मिक विवाह तो सावित्रीने किया, सीताने किया, दमयन्तीने किया। उनके विषयमें हम यह कल्पना भी नहीं कर सकते कि वे वैधव्य प्राप्त होनेपर पुनर्विवाह करतीं। इस प्रकारका

शुद्ध वैधव्य रमाबाई रानडेका था। आज बासन्ती देवीका[1] वैधव्य भी वैसा ही है। ऐसा वैधव्य हिन्दू समाजका अलंकार है; वह इस वैधव्यसे पुनीत होता है। बाल-विधवाओंके कल्पित वैधव्यसे तो हिन्दू-समाज पतित होता जाता है। प्रौढ़ विधवाओंका कर्त्तव्य है कि वे अपने वैधव्यको सुशोभित करते हुए बाल-विधवाओंका विवाह करनेके लिए कटिबद्ध हों और हिन्दू-समाजमें इस प्रथाका प्रचार करें। उन बहनोंको जो उपर्युक्त पत्र लिखनेवाली बहनके सदृश्य विचार रखती हैं, अपने इस विचारको सुधार लेना चाहिए कि बाल-विधवाओंका वैधव्य कायम रखनेमें धर्मकी रक्षा होती है। मैं जिस निर्णयपर पहुँचा हूँ उसका कारण बालिकाओंका दुःख नहीं है, बल्कि इसका कारण है मेरे हृदयमें उत्पन्न उस विषयसे सम्बन्धित सूक्ष्म धर्म-विचार, और मैंने यहाँ उसीको प्रदर्शित करनेका प्रयत्न किया है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २१-२-१९२६

४२. मौन-सेवा

सच्ची सेवा वही है जिसके बारेमें संसारको मालूम हो भी तो वह केवल उसके परिणामसे ही मालूम हो। सेवक अथवा सेविकाको इस बातकी कामना स्वप्नमें भी नहीं होती कि उसका नाम प्रकाशमें आये। इस तरहकी सेवा हिन्दुस्तानमें किसी-किसी स्थानमें हो रही है। इसका लाभ अन्य कार्योंकी भाँति खादीको भी मिल रहा है। ऐसी एक सेवाका उदाहरण एक पत्रमें अभी-अभी मेरी दृष्टिमें आया है। थोड़े-से ही लोग जानते हैं कि बम्बईमें कुछ बहनें खादीका काम कर रही हैं। उनकी देख-रेखमें कुछ कक्षाएँ चलती हैं और उनकी मार्फत गरीब बहनें आजीविका प्राप्त करती हैं। इनमें से एक कक्षा सेवासदनमें है, जिसमें ५५ लड़कियाँ काम करती हैं। दूसरी कक्षा कांग्रेस भवनमें चलती है; उसमें ६५ लड़कियाँ है। सारस्वत भवनमें ३५ लड़कियाँ हैं। एक कक्षा मझगाँवमें है। उससे मुसलमान बहनें लाभ उठाती हैं। इस कक्षाकी लड़कियोंकी संख्या उपर्युक्त पत्रमें नहीं दी गई है। सेवासदन और कांग्रेस भवनकी कक्षाओंसे मुख्यतया पारसी लड़कियाँ लाभ उठाती हैं। सारस्वत भवनमें कर्नाटकी बहनें हैं और अब भूलेश्वरमें गुजराती बहनोंकी सुविधाके लिए एक कक्षा चलानेकी व्यवस्था की जा रही है। यदि इसी ढंगसे अन्य स्थानोंमें भी काम किया जाये तो कितनी ही और गरीब बहनोंको सहज ही सहायता मिल जाये।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २१-२-१९२६

१. चित्तरंजन दासकी पत्नी।

४३. टिप्पणी

'गांधी-शिक्षण'

भाई नगीनदास अमूलखरायने कई वर्ष पहले इस नामकी एक पुस्तक प्रकाशित की थी। इसमें १३ भाग और २००० से ज्यादा पृष्ठ हैं। इसमें उन्होंने उनके हाथ मेरे जो लेख आये उनको विषय-क्रमसे दिया है। पुस्तकके एक-दो भाग मैं पढ़ गया हूँ और उससे उनकी मेहनत और सावधानीका अन्दाजा लगा सकता हूँ। मेरा विश्वास है कि जिन लोगोंको मेरे लेखोंसे बहुत प्रेम है, यह पुस्तक उनके लिए सहायक सिद्ध होगी। इस पुस्तकको प्रकाशित करनेमें भाई नगीनदास कोई आर्थिक लाभ प्राप्त नहीं करना चाहते थे और न उन्होंने प्राप्त किया है। उस पुस्तककी अनेक प्रतियाँ अभी उनके पास पड़ी हैं। उसकी मूल कीमत ८ रुपये १० आने है। किन्तु उन्होने अब वह घटाकर सामान्य पाठकके लिए ४ रुपये १० आने कर दी है। लेकिन वे छात्रावासों, पुस्तकालयों, आश्रमों, अन्य सार्वजनिक संस्थाओं तथा गरीब विद्यार्थियोंको देशमें डाकखर्चका १ रुपया और विदेशोंमें डेढ़ रुपया भेजनेपर अपनी पुस्तक पूरे १३ भाग भेजनेके लिए तैयार हैं। जो मेरे लेखोंको पुस्तक-रूपमें प्राप्त करना चाहें उन्हें भाई नगीनदास अमूलखरायको ६, सुखड़वाला बिल्डिंग, हॉर्नबी रोड, फोर्ट, बम्बई – १ के पतेपर लिखना चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २१-२-१९२६

४४. पत्र : डी० हनुमन्तरावको

साबरमती आश्रम
२१ फरवरी, १९२६

प्रिय हनुमन्तराव,

कुछ पत्र, जो बहुत पहले ही आ चुके थे, निपटानेके लिए मुझे अब दिये गये हैं। इस फाइलमें मुझे तुम्हारे दो पत्र मिले हैं, जो जनवरीमें आये थे। मेरी बीमारीके कारण और फिर स्वास्थ्य-लाभके लिए आराम करने देनेके खयालसे ये अबतक मुझे नहीं दिये गये थे।

आश्रमके सम्बन्धमें मैंने कल कृष्णको लिख दिया है। श्री रुस्तमजी रहे नहीं, सो उस जरियेसे अब हमें कुछ नहीं मिल रहा है। अखिल भारतीय चरखा संघके पास जो पैसा था, वह भी लगभग खुट चुका है। इसलिए जबतक और धन संग्रह

नहीं हो जाता, तबतक कृष्णको कुछ भेज पाना सम्भव नहीं होगा। यह दुःखकी बात है, लेकिन फिलहाल लाचारी है।

आपने मुझे दो मित्रोंके सम्बन्धमें लिखा है। मैं नहीं जानता कि उनके लिए अभी तुरन्त क्या किया जा सकता है। अभी तो आश्रम जरूरतसे ज्यादा भरा हुआ है और मैं समझता हूँ कि जबतक मैं यहाँ हूँ, ऐसा ही भरा रहेगा। मैं कुछ इमारतें और बनवानेकी बातपर गम्भीरतासे विचार कर रहा हूँ, फिर भी यह सोचनेकी बात है कि यदि मुझे आश्रममें स्थायी रूपसे केवल इसी साल रहना है, तो क्या वैसा करना मुनासिब होगा। सिर्फ थोड़े समयके कामके लिए नये कमरे बनवानेसे क्या लाभ, क्योंकि मेरे यहाँसे निकलते ही शायद नवागन्तुक लोग भी चले जायेंगे। तो फिर वे मित्र लोग क्या इस सालतक प्रतीक्षा करेंगे? मैं जानता हूँ कि यह लम्बी अवधि है, लेकिन मेरी समझमें नहीं आता कि इसके अलावा और मैं क्या कर सकता हूँ? क्या तुम्हारा कोई सुझाव है? मैं उन्हें खुद कुछ नहीं लिख रहा हूँ, बल्कि तुमपर ही छोड़ता हूँ कि जो जरूरी हो, करो।

और अब लो खुराककी बात। हम लोग जो आहारमें सुधारके हामी हैं, अपनी बात प्रमाणपूर्वक और बहुत शास्त्रीय पद्धतिसे नहीं कहते। मैं नहीं समझता कि नमकका शारीरिक प्रक्रियापर जो 'प्रभाव'[1] पड़ता है, उसके बारेमें हमारे विचार सचमुच बिलकुल ठीक या किसी भी तरहसे पूर्ण हैं। ऐसा नहीं है कि डाक्टरोंकी स्थिति इस मामलेमें बहुत ज्यादा अच्छी है, लेकिन उनके बीच कुछ ऐसे वैज्ञानिक हैं, जिन्होंने निःसन्देह बड़ा शोध किया है और इस बातके बहुत ज्यादा प्रमाण मिले हैं कि नमक भोजनका बहुत आवश्यक तत्त्व है। चूँकि मुझपर उसका कोई बुरा असर नही पड़ रहा है, इसलिए उन डाक्टरोंकी रायपर पुनर्विचार करना मै उचित नही समझता, जिनके लिए मेरे मनमें बड़ी श्रद्धा है। नमक त्यागनेका आध्यात्मिक महत्त्व निःसन्देह बहुत बड़ा है और उसके सम्बन्धमें मैंने आहार-विषयक अपनी पुस्तिकामें जो-कुछ लिखा है, उसमें मैं कुछ भी संशोधन करना नहीं चाहता हूँ। लेकिन शरीरपर नमकके प्रभावके सम्बन्धमें मेरी मान्यता हिल गई है। यदि मैं जवान होता तो मैं चिकित्सा-शास्त्रका अध्ययन करनेकी कामना पूरी करता और तब उस शास्त्रकी रीतिसे अपने निष्कर्षोंकी पुष्टि करता।[2] लेकिन अब तो यह काम भावी सुधारकोंके लिए ही छोड़ना होगा। वैसे भी मैं अक्सर नमक छोड़ देता हूँ। लेकिन धार्मिक दृष्टिसे नमक त्यागनेकी आवश्यकताकी प्रतीति करानेके लिए तुमने जो दलीलें दी हैं, उनसे ज्यादा सबल दलीलें तुम्हें मुझे देनी होंगी।

समुद्रके बारेमें तुम्हारी दलील स्पष्ट ही गलत है। इसका सीधा-सादा कारण यह है कि दुनियाका तीन चौथाई हिस्सा अथाह समुद्रसे ढँका है और विज्ञानके इस

१. यहाँ साधन-सूत्रमें एक शब्द छूट गया जान पड़ता है। सन्दर्भका ध्यान रखते हुए अनुवादमें 'प्रभाव' शब्दका प्रयोग किया गया है।

२. साधन-सूत्रमें इस वाक्यमें कुछ ऐसे शब्द आये हैं, जिनका कोई निश्चित अर्थ नहीं लगता। अनुवादमें उन्हें छोड़ दिया गया है।

साक्ष्यको तुम गलत नहीं बता सकते कि यदि समुद्रका जल न होता तो दुनिया रहने-लायक न होती। आफ्रिकाको ही लो, उसके तीन तरफसे समुद्र है और समुद्र तटवर्ती सारे प्रदेश आबाद हैं और वहाँके निवासी सशक्त, स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट हैं।

मुझे खुशी है कि तुमने ईसाई मित्रका मुँह बन्द कर दिया है। यह सोचकर दुःख होता है कि जिन बातोंसे लोगोंको अपना प्रतिपाद्य सिद्ध होता दिखाई देता है, उनके बारेमें वे अनजाने ही यह कल्पना कर लेते हैं कि वैसी बातें सचमुच हुई हैं। तुम खुद कबतक अच्छे और स्वस्थ होओगे?

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १४११३) की फोटो-नकलसे।

४५. पत्र : रेवरेंड कॉर्नीलियस ग्रीनवेको

साबरमती आश्रम
(भारत)
२१ फरवरी, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैंने ऊपर जो पता लिखा है, वह मेरा स्थायी पता है और उस पतेपर आप जो भी भेजेंगे, वह बाकायदा मिल जायेगा।

मैं आपकी प्रार्थनाओं और सबकी सद्भावनाओंकी कद्र करता हूँ। इस देशको उनकी सख्त जरूरत है।

मैं अपना कोई फोटो नहीं रखता और न ही मैंने बरसोंसे खास तौरसे बैठकर कोई फोटो खिचवाया है। इसलिए आप जो भी फोटो देखते हैं, सभी अचानक ही लिये गये हैं। इसलिए अच्छा होगा कि आप फोटोकी माँग न करें।

हृदयसे आपका,

रेवरेंड कॉर्नीलियस ग्रीनवे
४०९, कोहमवेट स्ट्रीट
टॉटॅन, मैसाचुसेट्स

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १४११४) की माइक्रोफिल्मसे।

४६. पत्र : मोतीबहन चौकसीको

साबरमती आश्रम
रविवार, २१ फरवरी, १९२६

चि० मोती,

तुम्हारे पत्र मिलते रहते हैं। कभी-कभी होनेवाली अनियमिततासे घर-गृहस्थीकी असुविधाओंका दर्शन होता है। उनमें से कुछ तो अनिवार्य हैं। कुछका उपाय तुम दृढ़तापूर्वक कर सकती हो, सो करना। मुझे तुम्हारी लिखावटसे अभी सन्तोष नहीं है। हाँ, यह अवश्य देखता हूँ कि तुमने इस दिशामें कुछ प्रयत्न किया है; लेकिन अपने अनुभवसे मैं तुम्हें यह समझाना चाहता हूँ कि जबतक कापी लेकर तुम चित्रके समान अक्षर चित्रित नहीं करतीं तबतक तुम्हारी लिखावट कदापि सुन्दर न होगी। तुम्हें अपनी लिखावट तो सुन्दर बनानी ही होगी। तुम्हारी तबीयत बिगड़नी नहीं चाहिए। आशा है, नाजुकलालकी तबीयत सुधरती जा रही होगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती प्रति (एम० एन० १२११७) की फोटो-नकलसे।

४७. तार : सोराबजीको

[२२ फरवरी, १९२६के पूर्व][1]

सोराबजी
सेवाय होटल
दिल्ली

आपका तार[2] मिला। मेरी राय है कि विरोध करनेकी छूट रखकर और गोलमेज सम्मेलनका आग्रह करते हुए दक्षिण आफ्रिकी भारतीय समाजको सिद्धान्तके सवालपर गवाही देनी चाहिए।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११९३९) की माइक्रोफिल्मसे।

१. सोराबजीने अपने २३ फरवरीके पत्रमें इस तारके २२ फरवरीको रातमें प्राप्त होनेकी बात लिखी है।

२. तार इस प्रकार था: "पंडित मोतीलाल नेहरू, मौलाना मुहम्मद अली और श्रीमती सरोजिनी नायडूने हमें तार भेजा है कि दक्षिण आफ्रिकी [भारतीय] समाजको प्रवर समितिके सामने एक पक्षके रूपमें उपस्थित नहीं होना चाहिए और न अपनी ओरसे कोई गवाही ही देनी चाहिए। हाँ, समाजके लोगोंसे

४८. पत्र: एस० आर० स्कॉटको

साबरमती आश्रम
१३ फरवरी, १९२६

प्रिय मित्र,

मैंने अभीतक आपके इस १७ तारीखके पत्रका उत्तर इसलिए नही दिया कि मैं आशा करता था कि आपके १२ तारीखके पत्रके उत्तरमें मैंने जो पत्र[1] आपको भेजा है, उसका जवाब आप देंगे। गुजराती कवितापर आपके निबन्धकी प्रतियोंके लिए धन्यवाद। मुझे वह बहुत पसन्द आया।

मेरे पिछले पत्रको ध्यानमें रखते हुए आप यह बतानेकी कृपा करेंगे कि क्या आप चाहते हैं कि आपका १२ तारीखका पत्र[2] मैं प्रकाशित कर दूँ। यदि ऐसा चाहते हैं तो स्वाभाविक है कि उसमें पाद-टिप्पणीके[3] रूपमें मैं कुछ उसी ढंगकी बात कहूँ जो मैं आपको अपने पिछले पत्रमें लिख चुका हूँ।

हृदयसे आपका,

रेवरेंड एस० आर० स्कॉट
मिशन प्रेस
सूरत

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १४११५) की फोटो-नकलसे।

जब कहा जाये तो भारत सरकारका शिष्टमण्डल सिद्धान्तके सवालपर भारतीयोंका पक्ष तैयार कर सके और सिर्फ उस सिद्धान्तकी पुष्टि करनेके लिए उसे जो सबूत दरकार हों वे उसे मिल सकें, इस दृष्टिसे वे लोग शिष्टमण्डलकी सहायता करें। लेकिन, वे तफसीलकी बातोंकी किसी चर्चामें न पड़ें और न उनके बारेमें कोई गवाही ही दें तथा गोलमेज सम्मेलनपर आग्रह रखें। क्या आपको यह सुझाव पसन्द है? कृपया शीघ्र उत्तर दें — सोराबजी सेवाय होटल।"

१. देखिए "पत्र: एस० आर० स्कॉटको", १६-२-१९२६।

२ और ३. देखिए "एक प्रतिवाद", ४-३-१९२६।

४९. पत्र : नवरोजी खम्भाताको

सावरमती आश्रम
मंगलवार [२३ फरवरी, १९२६]

भाई नवरोजी खम्भाता,

आपका पत्र मिल गया है। चि० जालके नवजोत संस्कारके[1] अवसरपर हम दोनोंकी ओरसे उसे आशीर्वाद कहिए।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (जी० एन० ६५८२)की फोटो-नकलसे।

५०. पत्र : मोतीबहन चौकसीको

सावरमती आश्रम
मंगलवार, २३ फरवरी, १९२६

चि० मोती,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हें आश्रमकी याद आती है तो यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं। लेकिन तुम अपनी इस इच्छाको रोक रही हो, यही ठीक है। इसमें तुम्हें सफलता प्राप्त होगी। आश्रमको तो तुम्हें भूलना ही होगा। आश्रमकी भावना तुम्हारे हृदयमें अंकित हो तो वहीं आश्रम है। नाजुकलाल तुम्हें यहाँ छोड़ जानेकी बात कहते हैं, इससे तो उनकी सरलता ही प्रकट होती है। लेकिन तुम इस सरलताका लाभ नहीं उठाना चाहती, तुम्हें यही शोभा देता है। तुम्हें वहाँ जो सत्संग मिले उसे प्राप्त करना चाहिए। किन्तु तुम्हारे लिए सबसे-बड़ा सत्संग तो नाजुकलालका है और वह दो तरहसे है — पतिके रूपमें और रोगीके रूपमें। तुम इस बारकी तरह अपने मनकी स्थितिको मेरे सामने सदा खोलकर रखा करो। मैं बेला बहनसे पत्र लिखनेके लिए कहूँगा।

बापूके आशीर्वाद

सौ० सुकन्या नाजुकलाल चौकसी
राष्ट्रीय शिक्षा-मण्डल
भरूच

गुजराती पत्र (एस० एन० १२११८) की फोटो-नकलसे।

१. पारसियोंका एक संस्कार, जो हिन्दुओंके यज्ञोपवीत संस्कारसे मिलता-जुलता है।

५१. पत्र : गोपबन्धु दासको

साबरमती आश्रम
२४ फरवरी, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। इसके सम्बन्धमें मैंने लालाजीसे पत्र-व्यवहार किया था। उन्होंने भी बताया कि इस समय उनके हाथमें पर्याप्त पैसा है। मैं समझता हूँ कि पिछले अकाल-सहायता-कोषकी बची हुई रकमको चरखेके काममें लगानेमें कोई हर्ज नही है।

आप जिस तरहका विशेषज्ञ सलाहकार चाहते हैं, वैसा कोई सलाहकार भेजनेकी मैं सोच रहा हूँ। हो सकता है कि ठीक आदमी खोजनेमें कुछ समय लग जाये।

मैं आशा करता हूँ कि आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। मुझमें दिन-ब-दिन ताकत आती जा रही है। कानपुर कांग्रेसके बादसे गोविन्दजीने मुझे कोई पत्र नहीं लिखा है। इसलिए अभी इस वक्त तो मुझे यह भी नही मालूम कि वे हैं कहाँ?

हृदयसे आपका,

श्री गोपबन्धु दास
पुरी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १४११६) की माइक्रोफिल्मसे।

५२. पत्र : सुहासिनी देवीको

साबरमती आश्रम
२४ फरवरी, १९२६

प्रिय बहन,

आपका पत्र मिला। मुझे बोलकर लिखानेका सहारा लेना पड़ रहा है, क्योंकि मेरे दाहिने हाथको आरामकी जरूरत है और बायें हाथसे लिखनेमें बहुत समय लग जाता है।

धन्यवाद। मैं धीरे-धीरे खोई शक्ति पुनः प्राप्त कर रहा हूँ। फिलहाल तो मैं किसीको अनुवादका अधिकार नहीं दे सकता। पश्चिमी देशोंसे कई प्रकाशन-संस्थाओंने मुझे लिखा है और सचमुच मेरी समझमें नहीं आता कि क्या करूँ। मेरा इसमें निजी स्वार्थ नहीं है और मेरे लिए यह एक नया अनुभव है कि मुझे अपनी लिखी हुई किसी चीजके लिए पैसा पानेके विषयमें सोचना पड़ रहा है। लेकिन जैसे-जैसे पैसे देनेके प्रस्ताव आ रहे हैं, अचानक ही मुझमें लोभ पैदा हो गया है और अब मैं यह

चाहने लगा हूँ कि ज्यादासे-ज्यादा पैसा मिले, जिसका उपयोग मैं चरखा संघ या ऐसे ही अपने किसी दूसरे कामके लिए करूँ। इसमें मुझे ध्यान इतना ही रखना है कि अनुवाद ठीक-ठीक हो। इसलिए अभी मैं कोई उत्साहवर्धक उत्तर नहीं दे रहा हूँ। क्षमा करेंगी।

आपके भाईके बारेमें मुझे सब-कुछ मालूम है। सचमुच बड़ी इच्छा है कि मैं उन्हें वापस ले आऊँ। लेकिन उसके लिए खुद मुझमें कोई सामर्थ्य नहीं है, और चूँकि इस सरकारसे मैं किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं रखता, इसलिए इसके लिए उससे कोई बातचीत भी नहीं चला सकता। मैं तो चाहता हूँ कि हम फिरसे जोरदार संघर्ष करें और इस तरह स्वराज्य प्राप्त करके अपने उन सभी देशभाइयोंको, जिन्हें मात्र स्वदेश-प्रेमके कारण विदेशोंमें रोककर रखा जा रहा है, वापस ले आयें।

आप भारतसे रवाना होनेसे पहले यहाँ अवश्य आइए।

हृदयसे आपका,

श्रीमती सुहासिनी देवी
केनेडी स्ट्रीट
लुज, मायलापुर (मद्रास)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १४११७) की फोटो-नकलसे।

५३. 'हमें रुई दो!'

खादी प्रतिष्ठानके श्रीयुत सतीशचन्द्र दासगुप्तने बिहारके कुछ कताई केन्द्रोंका दौरा करनेके बाद उसका बड़ा सजीव विवरण दिया है। विवरण नीचे दिया जा रहा है।[1] इस विवरणसे अधिकसे-अधिक स्पष्ट ढंगसे ज्ञात हो जाता है कि हमारे इस महान् देशके दीन-दुःखी लोगोंके लिए चरखा कैसा वरदान साबित हो रहा है। चरखोंसे निकलनेवाले करोड़ों धागे इन सीलन-भरी काल कोठरियोंके लिए, जिन्हें भारतमें घरकी गलत संज्ञा दी जाती है, सूर्यके प्रकाशकी तरह हैं। इस विवरणके लिए सतीशबाबूने जो शीर्षक चुना है, वह बहुत सटीक है। जब हमारे करोड़ों देशभाई "हमें रुई दो" की आवाज लगा रहे हैं, तब यह कच्चा माल मैनचेस्टरको भेजा जा रहा है। क्यों? दक्ष अँगुलियाँ ताँबेके चन्द सिक्कोंके बदले उस रुईको स्पर्श-सुखद वस्त्रका रूप देनेको तैयार हैं, लेकिन वह उन्हें मिलती नहीं। इस सुन्दर मालकी हजारों गाँठें भारतकी मूक-निरीह जनताका शोषण करनेवाले बड़े-बड़े धनपतियोंका लाभांश बढ़ानेके लिए विदेशको भेजी जा रही हैं। इसलिए हर स्वदेशप्रेमीका यह कर्त्तव्य है कि वह कमसे-कम इतना तो करे ही कि सतीशबाबूने जिन लोगोंका

१. इसका अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

वर्णन किया है, उन्हें रुई मुहैया करनेमें अपना पूरा योगदान दे। यह काम वह दो तरहसे कर सकता है: या तो खुद ही ऐसे भण्डार चलाये या फिर अपने हिस्सेकी रुई अखिल भारतीय चरखा सघको भेज दे, जो उसे कातनेवालोतक पहुँचानेकी व्यवस्था करेगा। और फिर उसे इस तरह काते गये सूतसे बुनी सारी खादीके उपयोगके लिए भी तैयार रहना चाहिए और यदि उसकी इच्छा हो तो इस मुख्य कर्त्तव्यके साथ इस दिशामें उपयोगी अन्य कार्य भी वह जोड़ सकता है, पर यह बुनियादी कर्त्तव्य तो उसे पूरा करना ही चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २५-२-१९२६

५४. हमारा अपमान

दक्षिण आफ्रिकाके डॉ० मलानका प्रस्ताव और भारतके वाइसराय द्वारा उसपर अन्तिम रूपसे दी गई स्वीकृति हमारे लिए अपमानका एक कड़वा घूंट है। दक्षिण आफ्रिकाकी संघ सरकारने एक प्रवर समिति नियुक्त कर दी है, जो सिद्धान्तके सम्बन्धमें और तफसीलके बारेमें भी गवाहियाँ लेगी। डॉ० मलानने इस समितिको चार शर्तोंकी काँटेदार झाड़ियोंसे घेर दिया है। वे शर्तें इस प्रकार हैं: इस समितिके सामने भारत सरकारकी ओरसे सिर्फ पैडिसन शिष्टमण्डल ही गवाही दे; इस गवाहीमें ऊपरसे योग देनेके लिए भारतसे कोई और शिष्टमण्डल, कोई भी "आन्दोलनकारी"— यह डॉ० मलानका शब्द है— नहीं भेजा जाये; प्रवर समिति पहली मार्च या उससे पहले अपनी रिपोर्ट दे दे; और विधेयकको संघ-संसदके इसी सत्रमें अन्तिम रूपसे निबटा देनेके लिए उसपर कार्रवाई शुरू की जाये।

मेरे विचारसे, कोई भी स्वतन्त्र राष्ट्र इनमें से कोई शर्त मंजूर नही कर सकता। पैडिसन शिष्टमण्डल कोई समझौता-वार्ता करने नहीं, बल्कि सिर्फ तथ्य इकट्ठा करने गया था। अगर शिष्टमण्डलको समझौता-वार्ता चलानी होती और गवाही देनी होती तो इससे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण शिष्टमण्डल जाता। यह शर्त लगाना कि कोई भी दूसरा शिष्टमण्डल दक्षिण आफ्रिका न जाये, अपमानजनक है। और प्रकारान्तरसे लगाया गया यह आरोप कि भारत सरकार किसी "आन्दोलनकारी" को भी दक्षिण आफ्रिका भेज सकती थी, और भी अपमानजनक है। डॉ० मलानने पैडिसन शिष्टमण्डलके सम्बन्धमें जिस मालिकाना लहजेमें बातें कही हैं, वह जलेपर नमक छिड़कनेके समान है। और यह शर्त कि प्रवर समितिको अपनी रिपोर्ट पहली मार्चसे पूर्व पेश कर देनी चाहिए, इस बातकी गुंजाइश नही छोड़ती कि भारत सरकार या भारतीय प्रवासी उन सारे प्रमाणोंको इकट्ठा करके सुव्यवस्थित रूप दे सकें जो यह दिखानेके लिए पेश किये जा सकते हैं कि इस कानूनमें निहित सिद्धान्त १९१४ के समझौतेके विरुद्ध हैं।

प्रवर समितिकी नियुक्तिकी घोषणाके साथ-साथ यह घोषणा भी कर दी गई है कि संघ-संसदके इसी सत्रमें विधेयकपर सारी कार्रवाई पूरी कर देनी चाहिए।

यह घोषणा इस बातका द्योतक है कि संघ-सरकारको जो-कुछ करना है, उसके बारेमें वह अपना इरादा पहले ही कर चुकी है और प्रवर समितिकी नियुक्ति मात्र एक धोखेकी टट्टी है, जिसका उद्देश्य भारत-सरकारके मुँहकी लाज रखना है और दुनियाको इस भ्रममें डालना है कि संघ-सरकार कोई अनुचित काम करना नही चाहती। इस-लिए मुझे तो ऐसी कोई आशा नहीं है कि संघ-सरकार द्वारा की गई इस तथाकथित रियायतसे विनाशके कगारपर खड़े प्रवासियोंको वास्तवमें कोई सन्तोष मिल सकेगा। संघ-सरकारको अपनी शक्तिका पूरा एहसास है और वह प्रवासियोंके खिलाफ अपनी पूरी शक्तिका उपयोग करनेको कटिबद्ध है। साफ दीख रहा है कि भारत सरकार प्रवर समितिके निष्कर्षको स्वीकार कर लेगी और भारतीय प्रवासियोंको अपने भाग्यके भरोसे छोड़ देगी। और भारत आज जिस स्थितिमें है, उसमें तो शायद वह संघ-सरकारकी कार्रवाईके खिलाफ एकमत होकर पहलेसे भी अधिक जोरदार और तीव्र विरोध प्रकट कर देनेके अलावा और कुछ नहीं कर सकेगा। उस हालतमें प्रवासी लोग खुद क्या करेंगे? इस प्रश्नका उत्तर भी सिर्फ वही दे सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २५-२-१९२६

५५. एक विद्यार्थीके प्रश्न

एक ईसाई भारतीय, जो अब लंकामें बस गये हैं, किन्तु इस समय संयुक्त राज्यमें विद्याध्ययन कर रहे हैं, लिखते हैं:[1]

> . . .आपके कार्य-कलापोंके विषयमें यहाँकी पत्र-पत्रिकाओंमें बहुत अलग-अलग तरहके विवरण छपते हैं। इसलिए मैं अपनी और अपने अमेरिकी मित्रोंकी जानकारीके लिए आपसे सही ब्योरा चाहता हूँ।

वैसे तो जो प्रश्न पूछे गये हैं, उनमें से कुछके उत्तर इन पृष्ठोंमें पहले ही दिये जा चुके हैं, फिर भी उनमें आम तौरपर लोगोंको इतनी दिलचस्पी है कि उनके उत्तर दोबारा भी दिये जा सकते हैं। उनका पहला प्रश्न है:

> ईसा मसीहके उपदेशोंके विषयमें आपका खयाल क्या है?

मेरे लिए इनका बड़ा नैतिक महत्त्व है, लेकिन ऐसा नहीं है कि मैं 'बाइबिल' में कही एक-एक बातको ईश्वरका अन्तिम आदेश मानता हूँ। ऐसा भी नही मानता हूँ कि हर विषयमें उसमें जो-कुछ कहा गया है, उससे आगे कुछ कहा ही नही जा सकता है और न यही समझता हूँ कि उसकी हर बात नैतिक दृष्टिसे ग्राह्य है। मैं ईसा मसीहको मानव जातिके सबसे बड़े धर्मगुरुओंमें से मानता हूँ, लेकिन उन्हें "ईश्वरका एक-मात्र पुत्र नहीं मानता।" बाइबिलके बहुत-से अंश रहस्यमय हैं।

१. पत्रके कुछ प्रासंगिक अंशोंका ही अनुवाद दिया जा रहा है।

इसलिए मुझपर तो "शब्द मारक है और भाव तारक" वाली बात ही लागू होती है। दूसरा प्रश्न है:

क्या आप जाति-प्रथामें विश्वास करते हैं? अगर हाँ, तो आप उसका क्या महत्त्व मानते हैं?

मौजूदा जाति-प्रथामें तो मैं विश्वास नहीं करता, लेकिन चार प्रमुख धन्धोंपर आधारित चार बुनियादी वर्गोंमें मेरा विश्वास जरूर है। आजकी असंख्य जातियाँ और तज्जनित कृत्रिम प्रतिबन्ध तथा विस्तृत विधि-विधान धार्मिक भावनाके विकासमें बाधक हैं। उसी तरह ये हिन्दुओंके और इसलिए उनके पड़ोसियोंके भी, सामाजिक कल्याणमें बाधक हैं। तीसरा प्रश्न यह है:

आप क्या चाहते हैं: भारतको ब्रिटिश साम्राज्यके अन्तर्गत औपनिवेशिक दर्जा दिया जाये या उसे पूर्ण स्वतन्त्रता दी जाये और वह ब्रिटेनसे अपने सारे सम्बन्ध तोड़ ले? अगर आप पूर्ण स्वतन्त्रता चाहते हों तो फिर आप ब्रिटिश शासन-प्रणालीके स्थानपर किस शासन-प्रणालीकी व्यवस्था करना चाहेंगे?

मैं तो ब्रिटिश साम्राज्यके अन्तर्गत औपनिवेशिक दर्जेसे ही सन्तुष्ट हो जाऊँगा, बशर्ते कि यह दर्जा दिखावटी तौरपर नहीं, बल्कि सचमुच दिया जाये। मैं ब्रिटेनसे सिर्फ तोड़नेके लिए ही सारे सम्बन्ध तोड़नेकी इच्छा नहीं रखता। लेकिन अगर मेरा वस चले तो आजकी इस अस्वाभाविक और अवास्तविक स्थितिको इसी क्षण समाप्त कर दूं, क्योंकि यह इस राष्ट्रके पूर्णतम विकासके मार्गमें बाधक बनकर खड़ी है। इसलिए मैं ब्रिटेनके साथ जिस एक-मात्र सम्बन्धकी कामना करूँगा और जिसे श्रेयस्कर मानूँगा वह है, स्वेच्छापर आधारित बिलकुल स्वतन्त्र और समान साझेदारीका सम्बन्ध। किन्तु अगर ब्रिटेनके साथ हम सारे सम्बन्ध तोड़ लेंगे तो स्वभावतः भारतमें जनताकी प्रकृति और स्वभावके अनुरूप लोकतान्त्रिक शासन-प्रणालीकी स्थापना की जायेगी। इसकी रूपाकृति किसी एक व्यक्तिकी इच्छासे नहीं, बल्कि बहुमतकी इच्छासे निर्धारित की जायेगी। चौथा प्रश्न इस प्रकार है:

भारतीय देशी राज्यों और देशी राजाओंके प्रति आपका क्या रवैया है?

उनके प्रति मेरा रवैया पूर्ण मैत्रीका रहा है; मैं उनके आन्तरिक विधानमें आमूल सुधारकी इच्छा रखता हूँ। बहुत-से राज्योंकी दशा अत्यन्त दुःखद है, लेकिन सुधारका श्रीगणेश अन्दरसे ही होना चाहिए। यह एक ऐसा सवाल है, जिसके बारेमें देशी नरेशों और उनके प्रजाजनोंको आपसमें राय-मशविरा करके सब-कुछ तय करना चाहिए। हाँ, उनपर पास-पड़ोसके प्रबुद्ध लोकमतका जो असर पड़ता है, वह तो पड़ेगा ही। पाँचवाँ प्रश्न है:

क्या आपको यह विचार पसन्द है कि संयुक्त राज्य अमेरिकाके ढंगपर भारतका भी एक संयुक्त राज्य बनाया जाये?

यह तुलना तो कुछ खतरनाक है। जो उपाय संयुक्त राज्य अमेरिकाकी परिस्थितियोंमें ठीक जान पड़ता है, वह भारतकी परिस्थितियोंमें ठीक नहीं भी हो सकता

है। लेकिन अगर इस बातमें सावधानी बरती जाये तो मैं समझता हूँ, अन्ततः भारतको भाषाके आधारपर गठित विभिन्न प्रान्तोंका एक स्वतन्त्र और स्वस्थ संघ ही बनाना पड़ेगा। छठा सवाल है:

यहांके अखबारोंमें छपे कई लेखोंमें ऐसा बताया गया है कि बहुत-सी बातोंपर आपका डॉ० ठाकुरसे[1] मतभेद हो गया है और अब आप उनकी ओरसे बिलकुल विमुख हो गये हैं। क्या यह सच है? अगर सच है तो किन बातोंको लेकर यह मतभेद हुआ है?

बहुत-सी बातोंपर तो डॉ० ठाकुरसे मेरा मतभेद नहीं हुआ है। हाँ, कुछ बातोंमें हमारे बीच मतभेद जरूर है। आश्चर्यकी बात तो तब होती, जब कोई मतभेद न होता। लेकिन उन मतभेदोंके कारण या और किसी कारणसे हमारे बीच तनिक भी मनमुटाव नहीं हुआ है। इसके विपरीत, हमारे सम्बन्ध सदासे अत्यन्त सौहार्दपूर्ण रहे हैं और आज भी हैं। सच तो यह है कि इन बौद्धिक मतभेदोंके कारण हमारी मैत्री और भी दृढ़ और सच्ची हो गई है। सातवाँ प्रश्न इस प्रकार है:

फिलहाल आप भारतमें क्या कर रहे हैं? क्या आपने राजनीतिक नेतृत्व और राजनीतिका त्याग कर दिया है?

इस समय तो मैं, जिसे गुर्अजित विश्राम कहा जा सकता है, उसी विश्रामका आनन्द ले रहा हूँ, और साथ ही अखिल भारतीय चरखा संघके कामको आगे बढ़ानेकी कोशिश कर रहा हूँ। इस समय अखिल भारतीय स्तरका यही एक कार्य है, जिसपर मैं ध्यान दे रहा हूँ। औपचारिक तौरपर तो मेरा राजनीतिक नेतृत्व उस वर्षकी समाप्तिके साथ-साथ खत्म हो गया, जिस वर्षके लिए मुझे कांग्रेसका अध्यक्ष बनाया गया था। लेकिन वास्तवमें वह मेरे जेल जानेके साथ ही समाप्त हो गया था। लेकिन, राजनीतिका जो अर्थ मैं लगाता हूँ, उसके अनुसार मैंने राजनीतिका त्याग नहीं किया है। मैं किसी और अर्थमें कभी राजनीतिज्ञ था भी नहीं। मेरी राजनीतिका सम्बन्ध आन्तरिक विकाससे है, किन्तु चूंकि उसका स्वरूप बहुत व्यापक है, इसलिए वह बाहरी जीवनपर भी बहुत असर डालती है। आठवाँ प्रश्न है:

यहाँ मुझे रंगभेद बहुत फैला हुआ दिखाई देता है और कभी-कभी हमें अपने रंगके कारण बहुत मुसीबतें झेलनी पड़ती हैं। ऐसे प्रसंगोंपर आप मुझे क्या करनेकी सलाह देते हैं? क्या यह उचित होगा कि मैं पत्र लिखकर अपने देशके लोगोंको यह सब बताऊँ? या जब-कभी मुझे यहाँ सार्वजनिक रूपसे बोलनेका निमन्त्रण मिले तब खुद अमेरिकी जनतासे ही यह सब कहना ठीक होगा?

मेरी सलाह इस प्रकार है: जब आप वहाँ गये हैं तो उस पूर्वग्रहको बर्दाश्त कीजिए; लेकिन अगर किसी भी प्रकारसे वह आपके आत्म-सम्मानको ठेस पहुँचाये तो आप प्राणपणसे उसका विरोध कीजिए। जो प्रतिकूल परिवेशमें रहकर भी अपना

१. रवीन्द्रनाथ ठाकुर।

आत्म-सम्मान सुरक्षित रखना चाहेंगे, उन्हें मुसीबतें तो उठानी ही पड़ेंगी। अगर आप किसी प्रकारकी कटुता और अतिरंजनाके बिना लिख सकते हैं तो आप इसका हाल लिखकर चाहे जहाँ भेज सकते हैं; आपका यह आचरण सर्वथा उचित होगा। और यह तो सबसे अच्छा होगा कि जब-कभी आपको अवसर मिले, आप खुद अमेरिका-वालोंसे ही शिष्ट और शोभनीय ढंगसे इसकी चर्चा करें। नवाँ सवाल है:

> क्या आप यहाँके विद्यार्थियोंके लिए मुझे एक छोटा-सा सन्देश भेजनेकी कृपा करेंगे? आम तौरपर ये बड़े अच्छे लोग हैं और अपना जीवन 'यंग मैन्स क्रिश्चियन एसोसिएशन' के काममें लगा देनेकी तैयारी कर रहे हैं।

अगर विद्यार्थियोंसे आपका मतलब भारतीय विद्यार्थी है तो मेरी सलाह इस प्रकार है: उस दूर देशमें आप अपने अच्छेसे-अच्छे गुणोंका परिचय दीजिए, ताकि आपका जीवन आपके पड़ोसियोंके लिए एक आदर्श बन सके। अपना विवेक त्यागकर पश्चिमका अन्धानुकरण मत कीजिए। और चूँकि आप ईसाई विद्यार्थियोंकी ओरसे बोलते जान पड़ते हैं, इसलिए मैं 'बाइबिल' से यह पंक्ति उद्धृत करनेका लोभ संवरण नहीं कर सकता: "पहले तुम ईश्वरके साम्राज्य और उसकी पवित्रताको पानेका प्रयत्न करो, फिर तो सब-कुछ तुम्हें स्वयमेव प्राप्त हो जायेगा।"

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २५-२-१९२६

५६. दोषको छोटा साबित करनेके लिए

एक जर्मन मित्र द्वारा भेजा निम्नलिखित पत्र मैं सहर्ष प्रकाशित कर रहा हूँ:[1]

पत्र-लेखकका ऐसा मानना बिलकुल सही है कि जर्मनों या जर्मनीके प्रति मैं कोई हेय विचार नहीं रख सकता। और कोई यह हिमाकत कर भी कैसे सकता है? जर्मन जाति एक महान् और बहादुर जाति है। उसका अध्यवसाय, उसकी विद्वता और उसकी बहादुरीकी सारी दुनिया सराहना करती है। सभीको यही आशा है कि वह शान्तिके लिए होनेवाले प्रयत्नोंका आगे बढ़कर नेतृत्व करेगी। गत महायुद्धमें वह पराजित जरूर हुई, किन्तु वह पस्त नहीं हुई। अब आवश्यकता सिर्फ इस बातकी है कि वह अपनी अप्रतिम शक्तिका उपयोग सिर्फ अपनी प्रगतिके लिए करनेके बजाय

१. इसका अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने यंग इंडियाके विभिन्न अंकोंमें प्रकाशित जर्मनीसे भेजे पत्रों और जर्मनीसे सम्बन्धित लेखोंपर अपनी प्रतिक्रिया बताते हुए कहा था कि ये पत्र और लेख जर्मनीका सही परिचय नहीं देते। उसका कहना था कि कैसर और जर्मनी विश्व-युद्धके लिए उतने दोषी नहीं थे, जितना दोषी उन्हें ठहराया जाता है; अन्य देशोंकी तुलनामें वहाँ कुछ-अधिक भ्रष्टाचार नहीं है और जर्मनीके युवक-समाजमें विश्वके सुख-शान्तिके लिए एक नई उत्कण्ठा है।

सारी दुनियाकी प्रगतिके लिए करे। दुनियाके अन्य राष्ट्रोंकी तरह उसमें भी इस वांछनीय परिवर्तनके लक्षण दिखाई दे रहे हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २५-२-१९२६

५७. पत्र : के० श्रीनिवासनको

साबरमती आश्रम
२५ फरवरी, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मुझे खुशी है कि मेरी 'आत्मकथा' आपको अच्छी लगती है और उससे आपको सहायता मिलती है। मैं आपकी इस रायका समर्थन कर सकता हूँ कि मेरे ये आन्तरिक अनुभव उन तमाम राजनैतिक प्रवृत्तियोंसे बहुत-अधिक महत्त्वपूर्ण हैं, जिनमें कि संयोगवश मुझे लगातार व्यस्त रहना पड़ा है। इन राजनीतिक प्रवृत्तियोंका जो-कुछ महत्त्व है वह उन आन्तरिक अनुभवोंसे ही उद्भूत है, जिन्हें याद करके मैं यथा-सम्भव बिलकुल ज्योंका-त्यों प्रस्तुत करनेका प्रयत्न कर रहा हूँ। मैं हर दुर्बलताको साफ-साफ बतानेकी कोशिश कर रहा हूँ और यह भी जतानेका प्रयत्न कर रहा हूँ कि मैंने उस दुर्बलतापर कैसे विजय प्राप्त की।

मैं आशा करता हूँ कि आपने कताईपर जितना ध्यान दिया, मालूम होता है उससे अधिक ध्यान देंगे। चूँकि आप वैज्ञानिक हैं, इसलिए संसारके इस सर्व-स्वीकृत अनुभवकी ओर आपका ध्यान दिलानेकी जरूरत नहीं है कि जो भी काम करने योग्य है उसे हम जितनी अच्छी तरह कर सकते हैं, हमें करना चाहिए। यदि चरखा ठीक हो और तकुए अच्छे हों तो हम कातनेवालोंमें से बहुतेरे लोग ऐसे हैं, जो प्रति घंटे कमसे-कम ३०० गज सूत काफी आसानीसे कात लेते हैं। अबतक सबसे ज्यादा गति ९०० गज प्रति घंटेकी रही है।

हृदयसे आपका,

के० श्रीनिवासन
डिपार्टमेंट ऑफ इलेक्ट्रिकल टेकनोलॉजी
इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस
डाकघर
हेब्बल, बँगलोर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १४०७६) की माइक्रोफिल्मसे।

५८. पत्र : सी० श्रीनिवास रावको

साबरमती आश्रम
२५ फरवरी, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपने मुझसे बड़ा कठिन प्रश्न पूछा है। अपनी संस्थाके लिए आपका सरकारसे मान्यता या आर्थिक सहायता देनेको कहना नैतिक दृष्टिसे पाप है या नहीं, यह ऐसा सवाल है जिसे केवल आप या प्रबन्धक लोग ही तय कर सकते हैं। इस तरहके मामलोंमें जिसे ऐसा महसूस नहीं होता कि उसने कोई पाप किया है उसके लिए कोई पाप नहीं है। इसलिए आप जो काम करनेकी सोच रहे हैं, वह कैसा है, यह तय करनेमें किसी अन्य व्यक्तिकी रायका कोई महत्त्व नहीं है।

जहाँतक मेरी बात है, यदि मैं आपकी जगह होता तो मैं सरकारी मान्यता या मददकी याचना नहीं करता। और यदि इसपर विद्यार्थी मुझे छोड़कर चले जायें तो मैं इसका दुःख नहीं मानूँगा, क्योंकि मेरे मनको इस बातका सन्तोष रहेगा कि मान्यता देनेकी प्रार्थना न करके मैंने ठीक काम किया है। हाँ, आपका सरकारी मदद स्वीकार करना राजनैतिक भूल होगी या नहीं, इस प्रश्नपर कोई दूसरा व्यक्ति भी राय दे सकता है। कांग्रेसके प्रस्तावोंकी दृष्टिसे और आज सामान्यतया कांग्रेस-जनोंकी जो मनोवृत्ति है, उसके अनुसार ऐसा करना कोई राजनीतिक भूल नहीं होगी। लेकिन एक अर्थमें यह चीज इस बातकी द्योतक होगी कि हममें पहलेसे ही जो दुर्बलता मौजूद है, उसमें वृद्धि हुई है; मेरा मतलब है, इस अर्थमें कि जो संस्था अबतक प्रतिकूल परिस्थितियोंके तूफानके आगे घुटने टेकनेसे इनकार करती रही है, वह अब लाचारी महसूस कर रही है और घुटने टेक देनेकी सोच रही है।

किन्तु कुल मिलाकर आपको मेरी रायको शुद्ध सैद्धान्तिक राय ही मानना चाहिए। इसलिए आपको अपने अन्तःकरणकी आवाजके अनुसार निर्णय करना चाहिए और यदि आप सरकारी मदद लेनेका फैसला करेंगे तो किसीको भी आपपर अँगुली उठानेका अधिकार नहीं होगा। आप जो भी मुनासिब समझें, निडर होकर करें।

हृदयसे आपका,

सी० श्रीनिवास राव
आन्ध्र जातीय कलाशाला
मसुलीपट्टम

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १४११८) की फोटो-नकलसे।

५९. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

२५ फरवरी, १९२६

इसमें कोई सन्देह नहीं कि देवदासके वहाँ न होनेसे महादेवको ज्यादा काम करना पड़ता है। लेकिन यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। सुविधा होनेपर ही यदि सेवा हो तो यह सच्ची मित्रताकी परिचायक नहीं है। महादेव यदि वहाँ नहीं आ सकता तो उसे देवदासकी अनुपस्थितिसे होनेवाली असुविधाको सहन करना चाहिए। जहाँतक देवदासका सवाल है, यदि उसे वहाँ लम्बे अरसेतक रहना पड़े तो उसमें वह कुछ खोनेवाला नहीं है। सेवामें ही आत्मोन्नति निहित है।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी

६०. पत्र : डाह्याभाई म० पटेलको

साबरमती आश्रम

बृहस्पतिवार, [२५ फरवरी, १९२६][1]

भाई डाह्याभाई,

नगरपालिकामें चमारके चुनावके बारेमें तुमने जो लेख भेजा था, वह मैं पढ़ गया हूँ। मुझे लगता है कि इस लेखको प्रकाशित करनेसे अन्त्यज भाइयोंको फायदा होनेके बजाय कदाचित् नुकसान ही होगा। इसलिए इसे प्रकाशित करनेका विचार छोड़ दिया है। मैं सबसे अच्छा उपाय यह मानता हूँ कि आप लोगोंको शान्तिसे समझा-बुझाकर धीरे-धीरे उनके विरोधको कम करें। इस बारेमें कुछ और कहना हो तो मुझे बताइए।

मोहनदासके वन्देमातरम्

श्री डाह्याभाई मनोहरदास पटेल
धोलका

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० २६९४) से।
सौजन्य : डाह्याभाई पटेल

१. डाककी मुहरसे।

६१. पत्र : प्रतापसिंहको

सावरमती आश्रम

फाल्गुन सुदी १३, १९८२, [२५ फरवरी, १९२६]

कुमार श्री प्रताप सिंहजी,

श्री देवचन्दभाई पारेख, सेठ देवीदास घेवरिया आदि कुछ भाई यहाँ आये हैं। मैंने उनसे बातचीत की है और फिलहाल तो हमने आपसमें यही निश्चय किया है कि यदि राज्यको कोई आपत्ति न हो तो काठियावाड़ राजनीतिक परिषद्का आगामी अधिवेशन अगले वर्ष पोरबन्दरमें किया जाये। इस वर्ष अधिवेशन करनेमें एक बड़ी कठिनाई यह है कि मैंने जो प्रतिज्ञा की है, उसके कारण मैं अधिवेशनमें उपस्थित नहीं हो सकता और मेरे पास आनेवाले भाइयोंको भी तथा मुझे भी ऐसा लगता है कि परिषद्ने भावनगरमें जो नया स्वरूप धारण किया है, उसके स्थिर होनेतक उसमें मेरी उपस्थिति सहायक सिद्ध होगी। परिषद्की उन्नतिके लिए आवश्यक होगा तो मैं इस अधिवेशनका सभापति बननेमें आनाकानी नहीं करूँगा।

हम सबने सेठ देवीदाससे यह प्रार्थना की है कि वे स्वागत समितिके अध्यक्ष पदको स्वीकार कर लें। इस समय सारे देशमें मुख्य रूपसे कार्यकर्त्ताओंकी आवश्यकता है। देवीदास सेठकी रुचि कार्य करनेमें है और उन्हें चरखेमें तथा खादीमें श्रद्धा है, इसीसे मेरी निगाह उनपर जमती है। इस बारेमें नियमानुसार अन्तिम निर्णय तो स्वागत-समितिके सदस्य ही करेंगे। मुझे देवचन्दभाईसे मालूम हुआ है कि अधिवेशन पोरबन्दरमें किये जानेके सम्बन्धमें माननीय राणा साहबको भी कोई आपत्ति नहीं है। तथापि अगर आप माननीय राणा साहबसे इस बारेमें अधिक स्पष्टीकरण करानेके लिए पूछताछ कर लेंगे और मुझे उनके विचारोंसे अवगत करायेंगे तो मैं आपका आभारी हूँगा।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (रील नं० २०) की माइक्रोफिल्मसे।
सौजन्य : गांधी स्मारक संग्रहालय, दिल्ली

६२. पत्र : ए० अरुणाचलम् पिल्लेको

सावरमती आश्रम
२६ फरवरी, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका तार और पत्र भी मिला। डॉ० नायडूने मुझे तार भेजकर इस बातका जोरदार प्रतिवाद किया है कि सत्याग्रहियोंने हिंसासे काम लिया। इसके विपरीत उनकी शिकायत है कि हिंसात्मक व्यवहार उन लोगोंने किया जो तथाकथित अस्पृश्यों द्वारा मन्दिरोंकी समीपवर्ती सड़कोंके प्रयोगका विरोध करते हैं।

यदि आपके पास सत्याग्रहियोंके हिंसात्मक व्यवहार करनेका कोई प्रमाण है तो मैं खुशीसे उसकी जाँच करूँगा। आपके पत्रमें मात्र ऐसे आरोप हैं जिनकी पुष्टि करनेके लिए कोई प्रमाण नहीं दिया गया है। फिर भी, मैं आपका पत्र डॉ० नायडूके पास जवाव देनेके लिए भेज रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत ए० अरुणाचलम् पिल्ले
शुचीन्द्रम्
नागरकोइल, डाकघर
दक्षिण त्रावणकोर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १४०७४) की माइक्रोफिल्मसे।

६३. पत्र : डॉ० नायडूको

सावरमती आश्रम
२६ फरवरी, १९२६

प्रिय डॉ० नायडू,

इस पत्रके साथ एक सवर्ण हिन्दूका पत्र भेज रहा हूँ। मैंने उन्हें जवावमें लिखा है कि आप इस बातसे कतई इनकार करते हैं कि किसी भी सत्याग्रहीने कोई हिंसात्मक व्यवहार किया है। क्या आप पत्रमें लिखे गये आरोपोंके सम्बन्धमें मुझे अपना जवाब देनेकी कृपा करेंगे?

हृदयसे आपका,

डॉ० नायडू
नागरकोइल
दक्षिण त्रावणकोर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १४०७५) की माइक्रोफिल्मसे।

६४. पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त-सम्बन्धी प्रस्तावोंका मसविदा[1]

[२७ फरवरी, १९२६]

[केन्द्रीय विधान सभाकी बहस] के कुछ ही समय बाद मैं महात्माजीसे साबरमतीमें मिलने गया। मैंने देखा कि उन्हें इस विषयपर मौलवी मुहम्मद शफीका लिखा पत्र मिला है। उस पत्रपर और मुझे जो-कुछ कहना था, उस सबपर पूरी तरह विचार करनेके बाद महात्माजीने बोलकर मुझसे दो प्रस्ताव लिखवाये। उनकी समझमें ये ऐसे ठीक प्रस्ताव हैं, जिनपर हिन्दुओं और मुसलमानोंको सहमत हो जाना चाहिए। उन्होंने अपने हाथसे लिखा एक पत्र भी मुझे दिया। दूसरे दिन मैंने उनको स्वराज्यवादी दलके मुसलमान सदस्योंमें प्रचारित कर दिया। वे प्रस्ताव इस प्रकार थे:

(क) निश्चय किया जाता है कि ऐसा कोई भी सुधार या समझौता जिसे कांग्रेस या स्वराज्यवादी दल स्वीकार करे, ब्रिटिश भारतके एक अविभाज्य अंगके रूपमें पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्तपर भी लागू होगा और उसी तरह लागू होगा जैसे कि सभी रेगुलेशनवाले प्रान्तोंपर होगा।

(ख) निश्चय किया जाता है कि ऐसा कोई भी सुधार या समझौता कांग्रेस या स्वराज्यवादी दल स्वीकार नहीं करेगा, जो ब्रिटिश भारतके अविभाज्य अंगके रूपमें पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्तपर उसी तरह लागू नहीं होगा जैसे कि सभी रेगुलेशनवाले प्रान्तोंपर होगा।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दुस्तान टाइम्स, १९-३-१९२६

६५. पत्र: मोतीलाल नेहरूको

[२७ फरवरी, १९२६]

प्रिय मोतीलालजी,

मैंने आपको शफी[2] साहबका पत्र दिखा दिया है। कृपया उन्हें तथा अन्य मुसलमान मित्रोंको बताइए कि मेरी रायमें, पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्तके सम्बन्धमें जो प्रस्ताव किया गया है, उसका समर्थन करना स्वराज्यवादियोंके लिए गलत होगा।

१. केन्द्रीय विधान सभामें सैयद मुरतजा साहब बहादुरने पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्तके सम्बन्धमें एक प्रस्ताव पेश किया था। उस प्रस्तावके बारेमें स्वराज्यवादी दलकी स्थिति स्पष्ट करते हुए पंडित मोतीलाल नेहरूने एक वक्तव्य दिया। वक्तव्यमें उन्होंने यह बताते हुए इन प्रस्तावोंको प्रकाशनार्थ जारी किया कि जब वे २७ फरवरीको साबरमती गये थे तब गांधीजीने उन्हें ये प्रस्ताव बोलकर लिखाये थे और अपनी लिखावटमें एक पत्र भी उन्हें दिया था।

२. मौलवी मुहम्मद शफी।

किन्तु साथ ही कांग्रेस अन्तमें स्वराज्यकी जो भी योजना स्वीकार करे, उसमें इस प्रान्तके शामिल किये जानेके किसी भी प्रस्तावका मैं समर्थन करूँगा। इसके लिए मैंने आपको दो प्रस्तावोंके मसविदे दिये हैं। आशा है उन्हें मुसलमान मित्र स्वीकार कर लेंगे। यदि कोई समझौता नहीं हो पाता तो मैं समझता हूँ, सबसे शोभनीय तरीका आपका इस आशयका आदेश जारी कर देना ही रहेगा कि कोई भी स्वराज्यवादी मतदानमें भाग न ले।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
हिन्दुस्तान टाइम्स, १९-३-१९२६

६६. सूत्रयज्ञ

यज्ञ तो कितने ही होते हैं। कुछ यज्ञ परोपकारके लिए किये जाते हैं तो कुछ स्वार्थके लिए। कुछ लोग तो दूसरेका बलिदान देकर स्वयं यज्ञका पुण्यफल प्राप्त करनेका वृथा लोभ रखते हैं; लेकिन कुछ ऐसे भी हैं जो यह मानते हैं कि यज्ञ तो आत्मबलि देकर अर्थात् अपने ही श्रमसे किया जा सकता है। वराडके कुमार-मन्दिरके आचार्य श्री झवेरभाईने अभी हालमें एक ऐसा ही यज्ञ किया है। वे लिखते हैं:[1]

बारह महीनेमें लगभग १२ लाख गज सूत कातना कोई मामूली बात नहीं है। एक महीनेमें एक लाख गजका अर्थ है—एक दिनमें कोई ३,५०० गज सूत। यदि कोई एक घंटेमें ४०० गज लगातार कात सके तो ३,५०० गज सूत कातनेमें ८ से ९ घंटे तकका समय लगेगा। एकनिष्ठ होकर इतने घंटे रोज एक सालतक चरखा चलानेमें लगाना एक महायज्ञ ही गिना जा सकता है। उपरोक्त पत्रमें ही झवेरभाई लिखते हैं: "मेरी इच्छा तो सिर्फ आत्माकी उन्नति करने और उसके लिए सर्वस्व त्याग करना पड़े तो वह भी करनेकी है।" मैं झवेरभाईको उनके इस निःस्वार्थ प्रयत्नके लिए धन्यवाद देता हूँ और यह चाहता हूँ कि वे ऐसा यज्ञ सदा ही करते रहें। इस उदाहरणको दृष्टिमें रखकर हम लोग आधा घंटा भी देशके हितार्थ सूत कातनेमें लगायें तो उससे देशको कितना लाभ हो? श्री झवेरभाईने अपने पत्रमें एक भूलका संशोधन भी भेजा है। उन्होंने लिखा है, मेरे पिछले वर्षके कार्यके सम्बन्धमें 'नवजीवन' में लिखी गई टिप्पणीमें मेरे काते ३ लाख गज सूतका अंक २० के स्थानमें ६ छप गया था। इसका वजन १८ सेर था। मुझे इस भूलपर खेद है।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, २८-२-१९२६

१. यहाँ पत्रका अनुवाद नहीं दिया जा रहा है। इसमें लेखककी पत्नी और ग्यारह वर्षीया सालीकी सहायतासे वर्षमें काते गये सूतकी मात्रा और किस्म बताई थी।

६७. सम्राट्का गुस्सा

समाचारपत्रोंमें प्रकाशित समाचारोंसे मालूम होता है कि सम्राट् जॉर्ज, इंग्लैंडमें आजकल वहाँके उद्योगोंकी जो प्रदर्शनी हो रही है, उसे देखनेके लिए गये थे। वहाँ उन्होंने देखा कि जिस विभागमें इंग्लैंडके टाइपरायटर प्रदर्शनार्थ रखे गये हैं, उसीमें एक सरकारी कर्मचारी अमेरिकाके बने टाइपरायटरपर पत्र टाइप कर रहा है। सम्राट्को यह देखकर बहुत गुस्सा आया और उन्होंने पूछा, यदि अंग्रेजी टाइपराय-टरोंकी माँग इंग्लैंडके बाहर भी होती है तो इंग्लैंडमें अमेरिकाके बने टाइपरायटर क्यों इस्तेमाल किये जाते हैं? जिम्मेदार अधिकारीने इसकी जाँच करनेकी प्रतिज्ञा की और सम्राट्को शान्त करनेका प्रयत्न किया। लेकिन वे शान्त नहीं हुए और उन्होंने कहा, इसकी जाँच मुझे स्वयं करनी होगी। अंग्रेजी टाइपरायटर बनानेवालेने कहा; यदि सरकारी दफ्तरोंमें अंग्रेजी टाइपरायटर दाखिल किया जाये तो मैं प्रति टाइपरायटर कमसे-कम एक मनुष्यको तो अवश्य ही रोजी दे सकता हूँ — इसपर टीका-टिप्पणी करते हुए इंग्लैंडके समाचारपत्र कहते हैं कि जहाँ संसदकी लोकसभा कुछ भी नहीं कर सकी वहाँ सम्राट्का कड़ा रुख और गुस्सा काम कर जायेगा।

हमें शायद यह लगेगा कि जो इंग्लैंड सारी दुनियामें अपना माल भेजता है, वहाँ अमेरिकाके टाइपरायटरोंसे इतना द्वेष शायद अनुचित है। परन्तु यदि हम सम्राट्की दृष्टिसे विचार करें तो हमें उनका यह गुस्सा मुनासिब मालूम होगा। बचावमें यह कहा गया था कि अमेरिकाके टाइपरायटर इंग्लैंडके टाइपरायटरोंकी बनिस्बत अच्छे हैं, इसलिए सरकारी दफ्तरोंमें उनका इस्तेमाल किया जाता है। लेकिन सम्राट् चतुर थे; वे समझ गये कि इस प्रकार दूसरे देशकी चीज अच्छी देखकर अपने देशकी चीज फेंकी नहीं जा सकती। दूसरे देशकी चीज अच्छी हो तो वह उसी देशमें शोभा देगी। यदि सम्भव हो तो हम उतनी ही अच्छी चीज बनानेकी कोशिश करें; लेकिन यदि सम्भव न हो तो हम जैसा भी माल बना सकें, हमें उसीसे सन्तुष्ट रहना चाहिए। सम्राट्को यह दलील सहज ही सूझी होगी। जो हो; यदि हम इस घटनासे कुछ सीखना चाहें तो बहुत-कुछ सीख सकते हैं। अमेरिकाके टाइपरायटर सरकारी दफ्तरोंमें बहुत होंगे तो एक हजारके करीब होंगे। उनको हटाकर विलायती टाइपरायटर दाखिल किये जायें तो उस टाइपरायटरके मालिककी बात यदि सच हो तो इससे एक हजार अंग्रेजोंको रोजी मिल सकती है। लेकिन यदि हम भारतीय सम्राट् जॉर्जके समान चतुर हों, अपने देशके प्रति उन्हींके समान प्रेम रखते हों और उन्हींकी तरह अपने ऊपर गुस्सा करें तो हम अपने देशके भूखों मरनेवाले एक हजार लोगोंका ही नहीं, बल्कि करोड़ों लोगोंका पेट भर सकते हैं। जिस चीजसे हम ऐसा कर सकते हैं, वह चीज है खादी। यदि हरएक स्त्री या पुरुष कोई विशेष प्रयास किये बिना थोड़ी किफायत करे और अपना खर्च बढ़ाये बिना खादीका ही उपयोग

करे तो वह इतने परिवर्तन-मात्रसे ही कमसे-कम एक मनुष्यको एक महीनेकी रोजी दे सकता है, क्योंकि प्रति मनुष्य कपड़ेका सामान्य खर्च प्रतिवर्ष ८ रुपया होता है। इसमें ५ रुपये तो मजदूरीके हो जाते हैं; और हिन्दुस्तानमें करोड़ों मनुष्योंको इतने रुपये भी नहीं मिलते। हिन्दुस्तानकी वार्षिक आमदनी प्रति मनुष्य ३० रुपये गिनी जाती है। आमदनीका यह अन्दाज तीस वर्ष पहलेका है। महँगाईके कारण आज कुल आमदनी ४० रुपया समझी जाती है। लेकिन खर्चकी बढ़ती भी गिनी जानी चाहिए, इसलिए यह ३० रुपया आज भी मान लेनेमें कोई हर्ज नहीं। लेकिन कोई भी अंक क्यों न लिया जाये, भारतमें ५ रुपयेकी रकम एक मनुष्यकी एक महीनेकी कमाईसे अधिक ही कही जा सकती है और इतना बड़ा पुण्य-सम्पादन करनेके लिए राष्ट्रको सिर्फ अपनी भावना अथवा उससे भी कम, अपनी रुचि बदलनेकी ही आवश्यकता है। विलायतका या मिलका अच्छा लगनेवाला मुलायम कपड़ा, गरीबोंके हाथसे कते हुए सूतसे और गरीबोंके ही हाथकी बुनी खादीकी बनिस्बत हमेशा खराब ही होगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २८-२-१९२६

६८. सच्ची शिक्षा क्या है?

जिस अंग्रेजी शब्दके लिए "केळवणी"[1] [शिक्षा] शब्दका व्यवहार किया जाता है, उसका मूल अर्थ "बाहर लाना" है; अर्थात् हममें जो शक्तियाँ छिपी पड़ी हैं, उन्हें प्रयत्नपूर्वक बाहर लाना। यही भाव 'केळवणी' शब्दका है। जब हम अमुक वस्तुका विकास करते हैं तब उसका अर्थ उसकी किस्म अथवा उसके गुणको बदलना नहीं होता; हम उसीमें निहित गुणोंको मात्र व्यक्त करते हैं। इससे केळवणी [शिक्षा] का अर्थ विकास भी किया जा सकता है।

इस अर्थको ध्यानमें रखकर विचार करें तो शिक्षामें अक्षर-ज्ञानको नहीं गिना जा सकता। फिर चाहे यह ज्ञान हमें एम० ए० बनाये अथवा हमने संस्कृत पाठशालामें संस्कृतका इतना ज्ञान प्राप्त कर लिया हो जिससे हम शास्त्रीकी उपाधिसे विभूषित हो जायें। ऊँचेसे-ऊँचा अक्षर-ज्ञान भी शिक्षाका एक अच्छा साधन तो माना जा सकता है, परन्तु वह स्वयं तो शिक्षा नहीं ही है।

शिक्षा कुछ अलग ही वस्तु है। मनुष्य शरीर, मन और आत्मा इन तीन वस्तुओंसे बना प्राणी है। इसमें आत्मा ही मनुष्यका स्थायी अंश है। शरीर और मनका व्यापार तभी शोभित होता है, जब वह आत्माकी सेवामें प्रयुक्त होता है। इसलिए जिसके द्वारा आत्माकी शक्ति प्रकट हो, ऐसी वस्तुको ही शिक्षा कहा जा सकता है और इसीसे हम विद्यापीठकी मुहरपर "सा विद्या या विमुक्तये" लिखा देखते हैं।

अथवा शिक्षाका दूसरा अर्थ भी किया जा सकता है। अर्थात् जिसके द्वारा शरीर, मन, आत्मा इन तीनोंका सम्पूर्ण अथवा अधिकसे-अधिक विकास हो, उसे

१. गुजरातीमें।

ही शिक्षा कहा जा सकता है। आजकल जो शिक्षा दी जाती है, उससे मनका थोड़ा-बहुत विकास भले ही होता हो, लेकिन हम कह सकते हैं कि उससे शरीर और आत्माका विकास नही होता। मुझे तो इसमें भी सन्देह है कि उससे मनका विकास होता है, क्योंकि यदि शिक्षाके द्वारा हम मनमें जानकारीका बहुत सारा खजाना भरते हैं, तो इससे कहीं उसका विकास हुआ नही माना जा सकता। इससे हम मनको शिक्षित हुआ नहीं कह सकते, क्योंकि शिक्षित मन मनुष्यको बहुत ठीक काम देता है। आजका अक्षर-ज्ञान प्राप्त मन तो हमें जहाँ-तहाँ भटकाता है। यह तो जगली घोड़ेके समान हुआ। जंगली घोड़ेको जब हम अपने नियन्त्रणमें ले आते हैं तभी उसे शिक्षित, सधा हुआ घोड़ा कहा जा सकता है। आजकलके "शिक्षित" नौजवानोंमें ऐसे कितने हैं, जिनमें हम शिक्षाका यह लक्षण देखते हैं?

आइए, अब शरीरकी ओर दृष्टिपात करें। हमेशा एक घंटा टेनिस, फुटबॉल अथवा क्रिकेट खेल लेनेसे क्या हम शरीरको शिक्षित हुआ कह सकते हैं? यह सच है कि शरीर इससे मजबूत होता है। लेकिन जैसे जंगलमें मनमाना दौड़ने-फिरनेवाले घोड़ेका शरीर मजबूत तो कहा जा सकता है, किन्तु शिक्षित नही कहा जा सकता, उसी प्रकार ऐसा शरीर मजबूत होते हुए भी शिक्षित नही कहा जा सकता। शिक्षित शरीर नीरोग होता है, मजबूत होता है, कसा हुआ होता है और उसके हाथ-पैर आदि भी इच्छित कार्य कर सकते हैं। उसके हाथोमे कुदाली, फावड़ा, हथौड़ा आदि सुशोभित होते हैं और ये हाथ इन सबका उपयोग भी कर सकते हैं। उन हाथोंमें यदि चरखा हो तो चरखा सुन्दर ढंगसे चलेगा अथवा फन्नी आदि करघेके औजार हों और पैर करघा चला रहे हों तो वे भी ठीक चलते दिखेंगे। तीस मीलकी यात्रा करते हुए शिक्षित शरीर थकेगा नहीं; पहाड़ चढ़ जायेगा, हाँफेगा नही। ऐसी शारीरिक शिक्षा कैसे मिलती है? हम कह सकते हैं कि आधुनिक पाठ्यक्रममें इस दृष्टिसे शारीरिक शिक्षा नही दी जाती।

आत्माका तो पूछना ही क्या? इसका विकास तो आत्मज्ञानी अथवा आत्मार्थी ही कर सकता है। हम सबमें सुप्त इस आत्मिक शक्तिको कौन जगा सकता है? शिक्षक तो विज्ञापन करनेसे मिल जाते हैं। उन्हें जो प्रमाण-पत्र पेश करने पड़ते हैं, उसमें ऐसा कॉलम तो होता नहीं कि वे आत्मार्थी हैं या नही। यदि हो तो भी उसकी कितनी कीमत हो सकती है? विज्ञापन करनेसे आत्मार्थी शिक्षक मिल भी कैसे सकते हैं? और आत्मिक शिक्षासे विहीन शिक्षा तो नीव-रहित चिनाईके समान है। अथवा अंग्रेजी कहावतका प्रयोग करें तो सफेदी की हुई कब्रके समान है, जिसके अन्दर तो वह मृत शरीर ही पड़ा हुआ है, जिसे जन्तु खा चुके हैं अथवा खा रहे हैं।

इस तरहकी त्रिविध शिक्षा प्रदान करना गुजरात विद्यापीठका ध्येय है और होना चाहिए। इस ध्येयका अनुसरण करते हुए यदि एक भी नवयुवक अथवा नव-युवती तैयार हो तो मैं मानूंगा कि विद्यापीठका जन्म सफल हुआ।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, शिक्षा-परिशिष्ट, २८-२-१९२६

६९. भाषण: एक विवाहमें[1]

२८ फरवरी, १९२६

आप लोग, भाई और बहनें दोनों, जो बाहरसे परिश्रम उठाकर रामेश्वर प्रसाद और कमला इन दोनोंको आशीर्वाद देनेको आये हैं इससे मुझे आनन्द होता है और मैं आपको धन्यवाद भी देता हूँ। धन्यवाद देनेका सबब यह है कि इसको आप सामान्य विवाह नहीं समझते। हिन्दू जातिमें जो विवाह होता है, उसमें बहुत आडम्बर होता है। राग-रंग, नाच-तमाशा, खाना-पीना अनेक प्रकारका प्रलोभन होता है। विवाहका धार्मिक अश, जिसके कारण विवाह करना योग्य समझा गया है, वह धार्मिक कारण छूप जाता है और हम धार्मिक अंशको भूल जाते हैं। विवाहमें पैसेका व्यय इतना अधिक होता है कि गरीबोंको विवाह करना आपत्ति-सी हो जाती है। कई लोग कर्जदार हो जाते हैं, और उस कर्जमें से जन्म-भर भी उनके लिए छूटना मुश्किल हो जाता है। ऐसे विवाहसे वर और कन्या दोनों गृहस्थाश्रममें धर्म-विधिका पालन करें, यह आकाश पुष्पवत् हो जाता है। जिसमें इतना आडम्बर होता है और जो विवाह-विधि इतनी विकारमय होती है और जिसे विकारमय बनानेके लिए माता-पिता इतना परिश्रम उठाते हैं, उससे वर और कन्या संयममय जीवन व्यतीत करें, यह मुश्किल बात है। यद्यपि इस आश्रमका आदर्श यह है कि विवाहित होते हुए भी ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये और उसी प्रकार कुछ लोग रहते भी हैं, बालक और बालिकाओंको ब्रह्मचर्यकी शिक्षा और पदार्थपाठ दिये भी जाते हैं; ऐसा होते हुए भी आश्रमके नजदीक और उसकी छायामे विवाह किया जाता है, इसका कारण क्या? इसको धर्म-संकट माना जाये। अहिंसाका पालन करनेवाले किसीपर बलात्कार नही करते। आश्रमवासियोंमें से जो ब्रह्मचर्यका पालन नहीं कर सकते उनके लिए विवाह करना कर्त्तव्य ही है। और इस कर्त्तव्यको करनेमें हम उनको आशीर्वाद क्यों न दें? और विधि भी अच्छी क्यों न चलायें? यह भी कर्त्तव्य है और इसका पालन करते हुए और सोचते हुए मैंने यह देखा है कि हिन्दुस्तानमें अथवा सारे संसारमें जहाँ विवाहमें धार्मिक विधि मानी जाती है वहाँ उसमें संयमका अंश होता है। विवाह स्वेच्छाचारके लिए नहीं है। स्मृतियोंमें भी लिखा है कि जो दम्पती नियमसे रहते हैं वे भी ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं। मैंने भी इसको बहुत समयतक नहीं समझा था। पर बहुत विचार करनेके बाद मैं समझ सका। जो अपने विकारोंका नाश नहीं कर सकते वे मर्यादामें रहकर विकारोंपर अंकुश रखते हुए अनिवार्यतः इतना ही व्यवहार कर सकते हैं। वे भी संयमी कहलाते हैं। जमनालालजीका और मेरा जो सम्बन्ध है वह तो आप खूब जानते ही हैं। हम दोनोंमें यह निश्चय हुआ कि जितनी सादगीसे और कम खर्चसे विवाह कर सकें, करना चाहिए। इस तरहसे विवाहकी क्रिया करनी चाहिए कि

१. जमनालाल बजाजकी पुत्री कमलाके विवाहमें; विवाह-विधि साबरमती आश्रममें सम्पन्न हुई थी।

जिससे दोनोंपर ऐसा प्रभाव पड़े कि वे विवाहका सच्चा अर्थ समझ सकें। विवाहको आडम्बर-रहित बनाना, भोजनादिको और गान-तानको स्थान नहीं देना, ऐसा अच्छी तरहसे कहाँ हो सकता है? अगर बम्बईमें किया जाये तो मारवाड़ी समाजको और जमनालालजीके मित्रोंको इससे पाठ मिलेगा। आजकल सुधारोंके नामसे जो अधर्म चल रहा है, वह वायु नष्ट हो जायेगा। जो धर्म समझना चाहें, उनके लिए दृष्टान्त हो जायेगा। परन्तु मुझे यह भय था कि जितनी सादगीके साथ यहाँ विवाह हो सकता है उतनी सादगीके साथ वहाँ नहीं हो सकेगा। इसकी दलीलोंमें मैं उतरना नहीं चाहता। इसी कारणसे मैंने वर्धाको भी छोड़ दिया और बम्बईको भी छोड़ दिया। परन्तु इस कार्यको कैसे किया जाये? जमनालालजी और उनके माता-पिताकी सम्मतिसे ही काम नहीं चल सकता था। रामेश्वर प्रसादके वडील[1] वर्गकी भी सम्मतिकी जरूरत थी। प्रभुका अनुग्रह था कि केशवदेवजीने भी इसे स्वीकार कर लिया। मारवाड़ी समाजमें धन बहुत है और खर्च भी अधिक होता है, इतना अधिक कि गरीबोंको विवाह करना अशक्य-सा हो जाता है; और उनपर बोझ पड़ता है। विवाहोंमें फुलवाड़ी, भोजन, बत्तियाँ और नायिकाओंका नाच होता है। मैं नहीं जानता कि मारवाड़ी लोगोंमें नाच होता है या नहीं, परन्तु गुजरातके धनिक लोगोंमें तो कहीं-कहीं होता है। इसका असर सारे मारवाड़ी समाजपर, और मारवाड़ी समाज हिन्दू जातिका एक अंग है, इसलिए उसपर भी, इतना ही नहीं, बल्कि मुसलमान इत्यादि जातियोंपर भी पड़ता है। हाँ, मैं यह मानता हूँ कि उन अन्य जातियोंपर थोड़ा पड़ता है। इससे आप सोच सकते हैं कि धनिक लोगोंपर कितना बोझ है। परन्तु जो धनवान लोग धन कमानेमें मस्त हैं, और अहंकारसे ईश्वरको भूल गये हैं, उनकी बात दूसरी है। मारवाड़ी लोगोंमें धन है। दुराचार होते हुए भी धर्मके लिए प्रेम है। यह बात मैं खूब जानता हूँ। धर्मके लिए वे प्रतिवर्ष लाखों रुपये देते हैं। इसका मुझे प्रत्यक्ष अनुभव है। इसलिए हम दोनोंने सोचा कि बिलकुल सादगीसे विवाह किया जाये। इसमें स्वार्थ और परमार्थ दोनों हैं — जमनालालजी और केशवदेवजीका, रामेश्वर प्रसाद और कमलाका भला सोचना, यह तो स्वार्थ, और दूसरोंको मार्ग बताना यह परमार्थ है। आप देखेंगे कि इस विवाहमें आडम्बर नहीं होगा। नाच-गाना नहीं होगा, विवाहके समय केवल धार्मिक विधियाँ ही की जायेंगी। आप लोगोंको निमन्त्रण इस भावसे दिया गया है कि आप इसके साक्षी हों और इसमें आप सम्मत हों और ऐसी प्रतिज्ञा करें कि आप इसका अनुकरण करेंगे। सम्भव है कि मेरी इसमें भूल हो और आप ऐसा करना पसन्द न करें। हिन्दुस्तानमें चन्द धनिक लोग होनेसे वह धनिकोंका देश नहीं हो जाता। यह कंगालोंका मुल्क है। यहाँपर जितने लोग भूखसे मरते हैं और समयपर अन्न न मिलनेसे व्याधि-ग्रस्त हो जाते हैं और भूख खींचनेसे जड़वत् बन जाते हैं, उतने दुनियाके और किसी देशमें नहीं। यह मेरा कहना नहीं है, इतिहासकारोंका कथन है — हिन्दू-मुसलमान इतिहासकारोंका नहीं, — राज्यकर्त्ताके कौमके लोगोंका यह कथन है। ऐसे कंगाल मुल्कके करोड़पतियोंको भी ऐसा काम करनेका अधिकार नहीं है जिससे

१. परिवारके बड़े बुजुर्ग।

कंगालोंके पेटमें दर्द हो। धनिक लोग हिन्दुस्तानमें ही धन कमाते हैं। वे बाहरसे धन कमाकर धनवान नहीं होते। यों तो बाहरके लोगोंको दुःख देकर धन कमाना भी महापाप है। जितने करोड़पति या लखपति हिन्दुस्तानमें हैं वे कंगालोंको और भी कंगाल बनाते हैं। हिन्दुस्तानके सात लाख देहात हैं। उनमें से कईका नाश हो रहा है। उनका खून चूसा जा रहा है। इसका परिणाम यह हुआ है कि जिनको एक समय भी खानेको नहीं मिलता, वे लोग मर जाते हैं। इस देशमें पशु और मनुष्य दोनों मरते हैं। ऐसी हालतमें इतना ही धन खर्च करना चाहिए जो धर्मके लिए अनिवार्य हो। और बचा हुआ धन परोपकारमें व्यय करें, जिससे हिन्दुस्तानके कंगालोंका भी भला हो और धनिकोंका भी भला हो। इस दृष्टिसे हम देखें तो यह *विवाह अनुकरणीय है। यह एक सामान्य सुधार नहीं है।* इसकी जड़ खूब गहरी जाती है। और इसका परिणाम भी अच्छा ही होगा। इस तरहका कार्य अगर गरीब करेगा तो भी उसका काम तो होगा ही, पर इतना प्रभाव नहीं पड़ेगा। जमनालालजी दस हजार, बीस हजार, और पचास हजार भी फेंक सकते हैं। और उनके मारवाड़ी भाई भी यह कहेंगे कि कैसा अच्छा विवाह किया! परन्तु उन्होंने धन होते हुए भी उसका उपयोग नहीं किया। अपने अधिकारको छोड़ दिया। इसका परिणाम अच्छा ही होगा। कारण, 'गीताजी' में भी लिखा है कि श्रेष्ठ लोग जो करते हैं, उसका अनुकरण दूसरे लोग करते हैं। यह सच्चा और अनुभवसिद्ध वाक्य है। मैंने आपका अनुग्रह माना है और मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। आप कमला और रामेश्वर प्रसाद दोनोंको आशीर्वाद देंगे। दूसरे भी ऐसा करेंगे तो अच्छी बात होगी। ऐसा करनेसे स्वतः ही मुल्ककी और धर्मकी सेवा होगी। रामेश्वर प्रसाद और कमला दोनों यहाँपर हैं, ऐसा मैं जानता हूँ। दोनों समझते हैं। रामेश्वर प्रसाद समझता ही है और कमला भी इस उमरकी हो गई है कि उसके माँ-बाप उसको मित्र-जैसी समझ सकते हैं। इन दोनोंको समझना चाहिए कि इनके माता-पिता जो इतना परिश्रम कर रहे हैं, इतने लोग साक्षी बननेके लिए यहाँ आये हैं सो यह विवाह स्वच्छन्दताके लिए नहीं। विकारका गुलाम बननेके लिए नहीं। यह दम्पती आदर्श बने; उनके ऊँचे भाव बढ़ानेके लिए ही यह सब कर रहे हैं। गृहस्थाश्रममें भी विकारको दबानेका मौका है। शास्त्र तो यह बताता है कि केवल प्रजाकी इच्छा होनेपर ही विकारवश हो सकते हो। इसको हम भूल गये हैं। और हमको यह बात कोई बतलाता नहीं। रामेश्वर प्रसादको यह बात मैं बतलाना चाहता हूँ कि स्त्री पुरुषकी गुलाम नहीं है। वह अर्धांगिनी है, सहधर्मिणी है। उसको मित्र समझना चाहिए। रामेश्वर प्रसाद स्वप्नमें भी कमलाको गुलाम न समझे। हिन्दू धर्ममें भी ऐसे लोग अभी हैं जो स्त्रीको अपना माल समझते हैं। ये दोनों नये जीवनमें प्रवेश करते हैं। मैंने एक बार कहा है, यह तो एक नया जन्म है। *वह दम्पती शिव-पार्वती या सावित्री-सत्यवान या सीता-राम*के समान आदर्शभूत हो। हिन्दू धर्मने स्त्रियोंको इतना उच्च स्थान दिया है कि हम सीताराम कहते हैं, रामसीता नहीं, राधाकृष्ण कहते हैं, कृष्णराधा नहीं। अगर सीता नहीं होती तो रामको कोई नहीं जानता। अगर सावित्री नहीं होती तो सत्यवानका

नाम भी कहीं सुनाई न देता। अगर द्रौपदी न होती तो पाण्डवोंका पता भी न चलता। दृष्टान्त खोजनेकी जरूरत नहीं है। मेरा विश्वास है कि यह कार्य हमको परिणामकारक होगा। मुझको ऐसा सोचनेका मौका नहीं आने पाये कि मैंने कैसा अकार्य किया। अभी मेरे आयुष्यके शेष दिन रहे हैं, उसमें मैं ईश्वरसे डरकर चलना चाहता हूँ। जो-कुछ करता हूँ, अपनी अन्तरामाको पूछकर करता हूँ। मेरी अन्तरात्मा कहती है कि यह दम्पती हमारे लिए आदर्श होगी, हमको पश्चात्तापका कोई मौका नहीं देगी। अन्तमें मैं इन दोनोंको आशीर्वाद देता हूँ कि ये दोनों दीर्घायु हों और अपने वडीलोंको भी सुशोभित करें और धर्मकी रक्षा तथा देशकी सेवा करें।

हिन्दी नवजीवन, ४-३-१९२६

७०. पत्र : जे० बी० पेटिटको

साबरमती आश्रम
२ मार्च, १९२६

प्रिय श्री पेटिट,

आपका पत्र मिला। मुझे दो तार मिले हैं, जिनमें लगभग वही बातें हैं, जो आपको मिले तारमें कही गई हैं। मैं इन तारोंको खास महत्त्व नहीं देता। इसीलिए मैंने उन्हें आपके पास नहीं भेजा।

आजकल दक्षिण आफ्रिकामें हमारे देशभाइयोंके बीच काफी कलह चल रहा है। समाज कई गुटोंमें बँट गया है। इस समय वहाँ श्री एन्ड्रयूजका उपस्थित रहना ईश्वरका वरदान ही समझिए।

दक्षिण आफ्रिकी भारतीय कांग्रेस कई संस्थाओंको मिलाकर बनी है। नेटाल भारतीय कांग्रेस एक ऐसी संस्था है जो नेटालवासी भारतीयोंके एक वर्गका प्रतिनिधित्व करती है। ब्रिटिश भारतीय संघ ट्रान्सवालके भारतीयोंका प्रतिनिधित्व करता है।

इस समय मेरी सलाह यह है कि आप प्राप्त तारोंकी ओर ध्यान न दें और साथ ही मंजूर राशिका बकाया अंश जबतक न अदा करें, तबतक कि पहले ही दिये गये ३९,५०० रुपयेका सही-सही हिसाब आपको न मिल जाये।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११९४४) की फोटो-नकलसे।

७१. पत्र : लाला लाजपतरायको

साबरमती आश्रम
२ मार्च, १९२६

प्रिय लालाजी,

अब इतनी देरसे आपके पत्रका उत्तर दे रहा हूँ, इसके लिए आप क्षमा करेंगे। बात यह है कि मुझे प्रतिदिन कुछ सीमित समयतक ही काम करनेकी अनुमति है; और चूंकि जब आपका पत्र मिला, उस समय पण्डितजी[1] यहीं थे, इसलिए मेरा लगभग सारा समय उन्हींमें लग गया। सो पत्र लिखनेका काम रुका रह गया।

यद्यपि आपके पत्रपर "गोपनीय" लिखा हुआ था, पर मैंने सोच-विचारकर थोड़ी छूट ले ली और उसे इस खयालसे पण्डितजीको दिखा दिया कि तब उनके साथ विभिन्न महत्त्वपूर्ण मामलोंकी चर्चा करना ज्यादा लाभदायक हो सकेगा। मुझे लगा कि जब हम ऐसे विषयोंपर बातचीत कर रहे हैं, जिनसे हम सबका सम्बन्ध है तो उन्हें आपके भी विचार मालूम हो जाने चाहिए।

कल मैंने आपको एक तार भेजा है। उसमें कहा है कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक *सम्मेलनके निमित्त यहाँसे जानेवाले प्रतिनिधि मण्डलकी* सदस्यता आप स्वीकार करें या नहीं, इस सम्बन्धमें मैं कोई निर्णय नहीं दे सकता। वैसे अगर अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी कौंसिलोंके बहिष्कारकी उस संशोधित योजनापर अमल शुरू करती है, जो कांग्रेसके पिछले अधिवेशनमें सोची गई थी तब तो आपके इस प्रतिनिधि मण्डलकी सदस्यता स्वीकार करनेपर हामी भरना मेरे लिए बहुत मुश्किल होगा।

इस समय अ० भा० कांग्रेस कमेटीको क्या करना चाहिए, इस सम्बन्धमें मेरे सारे विचार पण्डितजीको साफ-साफ मालूम हो गये हैं। इसलिए मैं उन्हें यहाँ फिरसे नहीं दोहरा रहा हूँ। सिद्धान्ततः देखें तो यह चीज कांग्रेसके प्रस्तावकी परिधिसे बाहर है, लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि यदि आप लोग कौंसिलोंमें अपनी-अपनी सदस्यता छोड़ देते हैं तो प्रतिनिधि मण्डलमें या किसी ऐसी समिति या सम्मेलनमें, नामजदगीको स्वीकार करना प्रतिष्ठाका काम नहीं होगा, जिसका सम्बन्ध सरकारसे हो। कितना अच्छा होता, यदि आप उस समय आ सकते, जब पण्डितजी यहाँ थे।

सीमा-प्रान्त-सम्बन्धी प्रस्तावकी प्रगतिको मैं अत्यन्त व्यथित मनसे देखता रहा हूँ। इस विषयमें अपनी निजी राय मैंने पण्डितजीको दे दी है, ताकि वह सभी सम्बद्ध जनोंको जता दी जाये।

मोतीलालजीने मुझे बताया कि कोई इस्तीफे नहीं दिये गये — सिवाय इसके कि एक व्यक्तिने इस्तीफा देनेकी धमकी दी, एकको इस्तीफा देनेपर मजबूर किया गया और एकने देकर वापस ले लिया।

१. पण्डित मोतीलाल नेहरू।

मैं आपका पत्र फाड़ रहा हूँ। कृपया अब भी, जब आपको समय मिले, अवश्य आइए; लेकिन इसके लिए अपने पास कमसे-कम दो-तीन दिनका समय रखिए, ताकि हम सुभीतेसे बातचीत कर सकें। और आप चाहे श्रमिक सम्मेलनमें जायें या न जायें, यह सचमुच बड़ा अच्छा होगा कि आप समुद्र-यात्रा करें और किसी ऐसे शान्त स्थानमें आराम करें जो आपको आनन्दप्रद लगे। मुझे तो आरामके साथ-साथ राजनैतिक कार्य करते रहनेका आपका विचार ठीक नहीं लगता, क्योंकि मैं जानता हूँ कि इस तरह आप काममें जुट जायेंगे और अपनेको आराम नहीं देंगे। इसलिए यदि आप जायें तब आपसे यह वचन ले ही लिया जाना चाहिए कि आप कोई राजनीतिक कार्य नहीं करेंगे; केवल विश्राम करेंगे और खुश रहेंगे।

हृदयसे आपका,

लाला लाजपतराय
दिल्ली

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३४१) की फोटो-नकलसे।

७२. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

२ मार्च, १९२६

जबतक तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक नहीं होता तबतक देवदास वहाँ रहनेके लिए तैयार है ही — ऐसा करनेसे उसके विकासमें बाधा पहुँचती है — यह बात वह स्वयं नहीं मानता और सेवा करते हुए किसीका विकास अवरुद्ध हो जाता है, यह मैंने कभी नहीं माना। अध्ययन आदि साध्य नहीं वरन् साधन है। सेवा तो लगभग साध्य वस्तु है। अध्ययनके द्वारा आजतक कोई भी मनुष्य मोक्ष प्राप्त नहीं कर सका है। सेवा करके तो अनेक भवसागरसे तर गये हैं और तर रहे हैं। इस बातको समझना और समझकर अमलमें लाना कठिन अवश्य है; लेकिन मोक्ष मिलना क्या आसान है?

[गुजरातीसे]
बापुनी प्रसादी

७३. पत्र : ए० ए० पॉलको

साबरमती आश्रम
३ मार्च, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैं चीन जाना पसन्द करूँगा, लेकिन मैं नहीं समझता कि मैं चीनी मित्रोंकी कोई विशेष सेवा कर सकूँगा। फिर भी क्या आप कृपया मुझे बतायेंगे कि श्री टी० जेड० कू० कौन हैं और मुझे कहाँ जाना होगा और मुझे इस यात्राके लिए कितना समय देना होगा?

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्री ए० ए० पॉल
७, मिलर रोड, किलपॉक, मद्रास

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ११३६३) की फोटो-नकलसे।

७४. पत्र : मौलाना मुहम्मद शफीको

साबरमती आश्रम
३ मार्च, १९२६

प्रिय शफी साहब,

आपका पत्र मुझे तभी मिल गया था, जब पण्डित मोतीलालजी यहाँ थे। मैंने पत्र उन्हें दिखलाया और उसपर उनसे बातचीत की। मैंने आपका पत्र राजेन्द्रबाबूको भी दिखलाया। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि सीमा-प्रान्तके प्रति वैसा ही व्यवहार होना चाहिए जैसा कि किसी भी अन्य प्रान्तके साथ, लेकिन कांग्रेसीके नाते हमें उन सुधारोंके वहाँ भी लागू किये जानेकी माँग नहीं करनी चाहिए, जिनकी हम सर्वथा असन्तोषजनक और अपर्याप्त कहकर निन्दा करते हैं।

मैंने मोतीलालजीको एक पत्र लिखा है, जो शायद उन्होंने आपको तथा अन्य मित्रोंको अवश्य दिखलाया होगा। उसमें इस दुर्भाग्यपूर्ण मामलेके बारेमें अपनी राय मैंने पूरी तरह बता दी है।

हृदयसे आपका,

मौलाना मुहम्मद शफी
दिल्ली

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३४२) की फोटो-नकलसे।

७५. पत्र : गोपालदासको

साबरमती आश्रम
बुधवार, फाल्गुन बदी ४ [३ मार्च, १९२६]

भाई गोपालदास,

तुम्हारा पत्र मिला। उपवास सब रोगोंका इलाज नहीं। तुम्हारे रोगका इलाज तो फिलहाल यह हो ही नहीं सकता, ऐसा मेरा विश्वास है। तुम कमजोर हो अथवा तुम्हें बुरी आदतें पड़ गई हैं, तुम्हें ऐसा खयाल भी न करना चाहिए और हमेशा प्रसन्न रहना चाहिए। रातको समयपर सो जाना और सुबह जल्दी उठना। तुम्हारी पत्नी तुम्हारी बात न माने तो इसकी भी चिन्ता न करना। वह प्रेमपूर्वक समझानेसे न समझे तो उसे अपने रास्ते जाने देना। तुम अपना मार्ग न छोड़ो और झगड़ा न करो तो वह किसी दिन यह देखकर कि तुम्हारा मार्ग उत्तम है, समझ जायेगी और कदाचित् उसके अनुसार आचरण भी करेगी। न भी करे तो उद्विग्न न होना। बहन हो, माँ हो, भाई हो अथवा मित्र हो, यदि हमारी इच्छानुसार नहीं चलते तो फिर उनके सम्बन्धमें हम निश्चिन्त रह सकते हैं। लेकिन अपनी पत्नीके सम्बन्धमें हम वैसा नहीं करते। यह हमारा मोह है। तुम इस मोहसे मुक्त होना।

अपनी खुराक सादी रखना। मिर्च आदि छोड़ देना। नित्य ठण्डे पानीसे नहानेकी आदत न हो तो डालना और बुरे विचारों और बुरे स्वप्नों आदिसे बचनेके लिए श्रद्धापूर्वक रामनाम जपना। यदि हो सके तो 'भागवत्'के एकादश स्कन्धका पाठ विचारपूर्वक करना और उसपर भली भाँति मनन करना।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (एस० एन० १०६०८) की फोटो-नकलसे।

७६. टिप्पणियाँ

किशोरोंके लिए

अठारह वर्षसे कम उम्रके मेरे किशोर मित्र बार-बार आग्रह करते रहे हैं कि उन्हें भी अखिल भारतीय चरखा संघका सदस्य बनाया जाये। फलतः संघकी परिषद्ने अपनी पिछली बैठकमें एक प्रस्ताव पास करके उन्हें इसकी सुविधा कर दी है। प्रस्तावके अनुसार अठारह वर्षसे कम उम्रके जो लड़के और लड़कियाँ नियमित रूपसे खादी पहनते हैं, वे प्रति मास अपना काता हुआ एक हजार गज सूत भेजकर संघके सदस्य बन सकते हैं। इसके पीछे विचार यह है कि लड़के और लड़कियोंको नियमपूर्वक काम करनेकी आदत पड़े और उन्हें देशके गरीबसे-गरीब लोगोंके साथ

तादात्म्य स्थापित करनेके लिए प्रोत्साहन दिया जाये। और कताईकी कला आँख और अँगुलियोंके लिए तो एक अच्छा अभ्यास है ही, ऊपरसे उससे यह अमूल्य लाभ भी मिलेगा।

सदस्य बननेकी इच्छा रखनेवाले किशोरोंसे प्रतिदिन कमसे-कम आधे घंटेतक कातनेकी अपेक्षा की जायेगी, और अगर वे इस कामके लिए आधे घंटेका एक खास समय निश्चित कर लें, तो वे देखेंगे कि इससे उनकी पढ़ाई-लिखाई और दूसरे जो भी काम वे अपने हाथमें लेंगे, सबमें नियमितता आ जायेगी। उनसे अपने चरखेको बिलकुल ठीक-ठाक रखने, उसकी मरम्मत करना सीखने और धुनाई तथा अपनी जरूरतकी पूनियाँ तैयार करना सीखनेकी भी अपेक्षा की जायेगी। जो लोग अपने कामको मनसे करते हैं, वे देखेंगे कि इन तमाम क्रियाओंमें बहुत कम समय लगता है।

स्कूली लड़कों और लड़कियोंसे मैं चरखा नहीं, बल्कि तकली चलानेको कहूँगा। ऐसा पाया गया है कि तकलीपर प्रति घंटा ८० गज सूत आसानीसे काता जा सकता है। इस तरह प्रति-दिन आधा घंटा तकली चलानेसे १००० गज सूतका मासिक चन्दा पूरा हो जाता है।

तो अब मैं आशा करता हूँ कि बहुत-से लड़के और लड़कियाँ सदस्योंके रूपमें अपने नाम दर्ज करवायेंगे। हाँ, इसके लिए उन्हें पहले अपने-अपने माता-पिताओं या अभिभावकोंसे अनुमति ले लेनी चाहिए। जहाँतक स्कूलोंका सम्बन्ध है, अगर हर स्कूलके लड़कों और लड़कियोंके काते सूतकी जिम्मेदारी उस स्कूलके शिक्षक ही ले लें और सारा सूत एक ही पैकेटमें बन्द करके भेज दें तो डाक-खर्चमें बहुत बचत होगी। हाँ, वे हर लड़के या लड़कीके काते सूतके साथ एक पर्चीपर उसकी मात्रा लिख देना न भूलें। ये पार्सल डायरेक्टर, टेक्निकल डिपार्टमेन्ट, अखिल भारतीय चरखा संघ, सत्याग्रहाश्रम, साबरमतीके पतेपर भेजे जायें।

लड़के और लड़कियाँ अथवा उनके अभिभावक खुदका काता सूत भेजते समय उसके साथ एक कागजपर कातनेवालेका नाम, उम्र, यह कि वह स्त्री है या पुरुष और पता लिख भेजें। वे उसपर यह भी लिख दें कि कितने गज सूत भेज रहे हैं और साथ ही यह भी बतायें कि कातनेवाला नियमपूर्वक केवल हाथ-कती और हाथ-बुनी खादी पहनता है।

स्वयं कातनेवालोंके लिए

अखिल भारतीय चरखा संघके टेक्निकल डिपार्टमेंटके डायरेक्टरने लिखा है कि सदस्यगण उन्हें बार-बार इस आशयके पत्र लिख रहे हैं कि वे उनका काता हुआ सूत लौटा दें, ताकि सदस्यगण उसे बुनवाकर निजी उपयोगमें ला सकें। इसके लिए वे उचित कीमत देनेको तैयार हैं। मन्त्री यह जिम्मेदारी अपने सिर लेनेको तैयार थे कि वे उनके सूतसे खादी तैयार करा कर उन्हें दे देंगे, बशर्ते कि उनका सूत कम हो तो उसके साथ दूसरोंका हाथ-कता सूत मिला दिये जानेपर उन्हें कोई आपत्ति न हो। लेकिन दूसरोंका सूत मिलानेका सुझाव सदस्योंको स्वीकार्य नहीं था, क्योंकि वे पूरी तरहसे खुदके काते सूतका वस्त्र पहननेके सन्तोषसे वंचित होना नहीं चाहते

थे। सदस्योंकी इच्छा वैसे तो कई तरहसे प्रशंसनीय है, लेकिन उसे पूरा कर पाना सम्भव नही हो सका है, क्योंकि ऐसी आशका है कि कुछ लोग लौटाये हुए सूतको ही दोबारा चन्देके तौरपर भेज दे सकते हैं। कारण, फिर जो सूत भेजा जायेगा, उसके बारेमें संघके लिए यह निर्णय करना कठिन होगा कि किनका नया काता हुआ है और किनका पुराना ही दोबारा भेज दिया गया है। इसलिए इसका एक उपाय ढूँढ लिया गया है। वह यह कि जो सूत प्राप्त हो उसे ब्लीच करके फिर सम्बन्धित सदस्योंको ही बेच दिया जाये। ब्लीच करनेसे सूतको कोई नुकसान नही पहुँचेगा। इससे वह ज्यादा उजला और कुछ मजबूत ही होगा।

इसलिए जो लोग कीमत देकर अपना सूत वापस लेना चाहते हों, वे डायरेक्टर, टेक्निकल डिपार्टमेन्ट, या मन्त्री, अखिल भारतीय चरखा संघको अर्जियाँ देकर उसे प्राप्त कर सकते हैं। और जो सदस्य अपना सूत वापस लेना चाहते हों, वे सूतके साथ भेजे कार्डोंपर स्पष्ट रूपसे यह लिखना न भूले — "लौटाये जानेके लिए।"

यह विभाग वी० पी० डाकसे सूत वापस नहीं कर पायेगा। इसलिए मेरा सुझाव है कि देर न हो, इसके लिए सूत भेजनेवाले लोग डायरेक्टरके पास ५ रुपये जमा करा दें। ऐसा हो जानेपर सूतको दर्ज करके, उसकी जाँच करने और उसे ब्लीच करनेके बाद तुरन्त भेज दिया जायेगा। हाँ, अगर भेजनेवालोंकी इच्छा यह हो कि जब काफी सूत इकट्ठा हो जाये तभी लौटाया जाये, तो बात दूसरी है।

'आत्मकथा' के सम्बन्धमें

भारतमें और भारतसे बाहर रहनेवाले बहुत-से मित्र पत्र, तार और समुद्री तार भेजकर मुझसे उन अध्यायोंको पुस्तक-रूपमें प्रकाशित करनेकी अनुमति माँगते रहे हैं, जो मैं 'माई एक्सपेरिमेंट्स विद ट्रुथ' ('सत्यके प्रयोग') शीर्षकसे लिख रहा हूँ। पत्र-पत्रिकाओंके मालिक इन अध्यायोंको समय-समयपर अपने पत्र-पत्रिकाओंमें छापें, इसपर तो मुझे कोई आपत्ति नही है, लेकिन इस समय मैं किसीको उन्हें पुस्तक-रूपमें छापनेकी अनुमति नही देना चाहता। मैं खुद ही यह कहनेकी स्थितिमें नही हूँ कि यह कहानी कब पूरी होगी, और मैं नही चाहूँगा कि ये अध्याय खण्डोंमें छपें। इसके अलावा मैं यह भी चाहूँगा कि पुस्तक-रूपमें इनके प्रकाशनसे पहले या तो खुद ही इनका संशोधन करूँ या अपनी निगरानीमें किसी औरसे करवाऊँ।

इसलिए प्रकाशकोंको मैं सूचित करता हूँ कि इस समय मैं इन अध्यायोंको पुस्तकके-रूपमें छापने अथवा इनका अनुवाद करनेकी अनुमति देनेको तैयार नही हूँ।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ४-३-१९२६

७७. एक प्रतिवाद

रेवरेंड एच० आर० स्कॉट,[1] जो इन दिनों सूरतमें रह रहे हैं, लिखते हैं:[2]

> 'यंग इंडिया' में प्रकाशित हो रही आपकी "कथा" को मैं बड़ी रुचिसे पढ़ता रहा हूँ। . . . उन दिनों (१८८३ से १८९७ तक) राजकोटमें मेरे अलावा और कोई मिशनरी नहीं रहता था, और निश्चय ही मैंने "हाईस्कूलके कोनेपर खड़े होकर" कभी भी अपने धर्मका प्रचार करनेके लिए कोई व्याख्यान नहीं दिया . . . मुझे ठीक याद है कि मैंने कभी भी "हिन्दू-देवताओंकी और हिन्दू-धर्मियोंकी निन्दा" नहीं की। . . . जिन दिनों मैं राजकोटमें रहता था, उन दिनों मैंने बहुत-से ब्राह्मणों और जैन साधुओंको ईसाई बनाया। निश्चय ही उन्हें धर्म-परिवर्तनके समय या किसी अन्य अवसरपर न तो "गोमांस खिलाया गया" और न "शराब पिलाई गई।" . . .

यद्यपि धर्म-प्रचारके उद्देश्यसे ये भाषण चालीस वर्षसे भी पहले दिये गये थे, किन्तु उनकी दुःखद स्मृति मेरे मनमें अब भी ज्योंकी-त्यों बनी हुई है। उसके बादसे मैंने जो-कुछ पढ़ा और सुना है, उससे मेरे मनपर पहले-पहल जो छाप पड़ी थी, वह और भी पुष्ट हुई है। मैंने मिशनरियोंकी बहुत-सी कृतियाँ पढ़ी हैं। वे तो सिर्फ बुरे पहलूको ही देख पाते और उसे और भी बुरा बनाकर पेश करते हैं। बिशप हेबरका "ग्रीन लैंड्स आइसी माउन्टेन्स" वाला प्रसिद्ध भजन[3] भारतके समस्त मानव-समाजका अपमान है। कुछ-एक सदाशयी मिशनरियोंने यरवदा जेलमें भी मुझे कुछ साहित्य भेजा था। उसको पढ़कर ऐसा लगा, मानो वह सिर्फ हिन्दू-धर्मको घटिया बतानेके लिए ही लिखा गया हो। धर्मान्तरणके समय भी गोमांस खाने और शराब पीनेके बारेमें मैंने सिर्फ वही बताया है जो-कुछ मैंने सुना है और अपने लेखोंमें भी उतना ही कहा है। श्री स्कॉटके प्रतिवादको तो मैं स्वीकार करता हूँ, मगर साथ ही यह भी कहूँगा कि यद्यपि मुझे हजारों ईसाई भारतीयोंके साथ बहुत मुक्त ढंगसे मिलने-जुलनेका मौका मिला है, फिर भी उनमें ऐसे बहुत कम लोग नजर आये जिन्हें गोमांस अथवा किसी और मांस और शराबसे कोई परहेज हो। जब-जब मैंने उनसे नम्रताके साथ इस विषयमें बातचीत की तो उन्होंने "किसी वस्तुको अशुद्ध न कहो" वाला प्रसिद्ध पद उद्धृत कर दिया, मानो इसका सम्बन्ध खाने-पीनेसे ही हो और इसमें भोगलिप्साके लिए पूरी छूट दे दी गई हो। मुझे मालूम है कि बहुत-से हिन्दू मांस खाते हैं और कुछ

१. लगता है, यहाँ भूलसे एस० आर० स्कॉटके बदले एच० आर० स्कॉट छप गया; देखिए "पत्र: एस० आर० स्कॉटको", २३-२-१९२६।

२. पत्रके कुछ अंशोंका ही अनुवाद यहाँ दिया जा रहा है।

३. इसमें कहा गया था कि यहाँ सब-कुछ सुन्दर है, मात्र मनुष्य ही पतित और अधम है।

गोमांस भी खाते हैं और शराब भी पीते हैं। उन्होंने किसी नये धर्मकी दीक्षा नहीं ली है। एक धर्मको छोड़कर किसी दूसरे धर्ममें दीक्षित होनेवाले व्यक्तिको अंग्रेजीमें "कन्वर्ट" कहा जाता है, जिसका वही अर्थ है या होना चाहिए जो संस्कृतके "द्विजन्मा" शब्दका है। अतएव, अगर कोई व्यक्ति किसी प्रकारकी सुविधाके लिए नहीं बल्कि हृदयकी प्रेरणापर अपना धर्म-परिवर्तन करता है तो उससे आचारके उच्चतर मानदण्डका निर्वाह करनेकी अपेक्षा की जाती है। लेकिन, अभी मुझे ऐसे गम्भीर विवेचनमें नहीं पड़ना चाहिए। अपने-आपको यह कह सकनेकी स्थितिमें पाकर मुझे बहुत हर्षका अनुभव हो रहा है कि यदि ईसाइयों और ईसाई मिशनरियोंके मेरे कुछ अनुभव दुःखद हैं तो कुछ बहुत सुखद भी हैं और इन सुखद अनुभवोंको मैंने बड़े चावसे अपने मनमें संजो रखा है। इसमें कोई सन्देह नही कि उनमें सहिष्णुताकी भावना बढ़ती जा रही है। व्यक्तिगत रूपसे उनमें कुछ लोगोंको हिन्दू-धर्म और दूसरे धर्मोंकी अच्छी समझ और उनके गुणोंकी पहचान भी है और कुछ तो यह भी स्वीकार करते हैं कि दुनियाके अन्य महान् धर्म झूठे नहीं हैं। उदारताकी इस बढ़ती हुई भावनासे सबको खुशी होगी, लेकिन मैं मानता हूँ कि उस दिशामें अभी बहुत-कुछ करना शेष है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ४-३-१९२६

७८. रुईकी माँग

बाबू राजेन्द्रप्रसादने मुझे निम्नलिखित पत्र[1] भेजा है:

इस पत्रसे मैंने उस अंशको निकाल दिया है जिसमें सतीश बाबूने कतैयोंकी अपने-अपने हिस्सेकी रुई प्राप्त करनेकी व्यग्रताका हाल बताया है। राजेन्द्र बाबूने बताया है कि कतैयोंमें अधिकांशतः मुसलमान स्त्रियाँ हैं। अगर उन्होंने उन कतैयोंकी संख्या भी बताई होती, जिनके बीच हर हफ्ते ६०० रुपये बाँटे जा रहे हैं तो बड़ा अच्छा होता। लेकिन, संख्याका पता लगाना कोई कठिन बात नही है, अवकाशके समयका उपयोग करके हर हफ्ते औसतन आठ आनेसे अधिक नही कमाया जा सकता। इस प्रकार तीन ही केन्द्रोंमें कमसे-कम १२०० जरूरतमन्द औरतें इससे लाभ उठा रही हैं। मेरे जानते तो अगर पर्याप्त कार्यकर्त्ता और पैसे हों तो ऐसे सैकड़ों केन्द्र खोले जा सकते हैं। दुर्भाग्यवश इन दोनोंका अभाव है — और पैसेकी अपेक्षा कार्यकर्त्ताओंका अभाव ज्यादा है। समझदारीसे चन्दा किया जाये तो पैसा तो इकट्ठा किया जा सकता है, लेकिन ठीक ढंगके कार्यकर्त्ता उतनी आसानीसे नहीं जुटाये जा सकते। लेकिन, प्रतिदिन जो तथ्य और आँकड़े इकट्ठे किये जा रहे हैं, उनसे प्रकट होता है कि वह दिन दूर नहीं जब हाथ कताईको सभी लोग अपना लेंगे। संक्रान्तिकी

१. पत्रका अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

अवस्थामें अपना सारा ध्यान पहलेसे ही चल रहे केन्द्रोंपर लगाना चाहिए और उनका प्रभावकारी संगठन करके उन्हें आत्म-निर्भर और स्थायी बना देना चाहिए। रुईकी माँग अवश्य पूरी की जानी चाहिए और यह काम तो धनीमानी लोग ही नकद धन या सामानके रूपमें अनुदान देकर कर सकते हैं। अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारकके प्रति उतना उत्साह नहीं दिखाया जा रहा है, जितना चाहिए। इसका मुख्य कारण यह है कि चन्दा करना स्थगित कर दिया गया है। फिर भी, मुझे आशा है कि जो जानकारी श्रीयुत राजगोपालाचारी और राजेन्द्र बाबूने हम सबको दी है, वह चरखेकी शक्तिमें विश्वास रखनेवाले लोगोंको अपनी-अपनी थैलीका मुँह खोल देनेको प्रेरित करनेके लिए काफी साबित होगी। चरखेके लिए दान देना, मेरे विचारसे दानका एक आदर्श तरीका है, क्योंकि एक ओर तो यह गरीबोंको भिखारी और निठल्ले बनाये बिना तथा उन्हें आत्म-सम्मानसे वंचित किये बिना उन्हे सहायता पहुँचाता है और दूसरी ओर इसका उद्देश्य कपड़ेके मामलेमें भारतको आत्म-निर्भर बनाना और जो लगभग साठ करोड़ रुपये प्रतिवर्ष भारतसे विदेशोंको चले जाते हैं, उन्हें बचाना है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ४-३-१९२६

७९. भारतीय नारियोंकी सेवा-संस्था

स्वर्गीय श्रीमती रमाबाई रानडेकी स्मृतिमें अपनी नम्र श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए मैंने पूनाकी सेवासदन सोसाइटीके महान् कार्यका उल्लेख किया था। इस संस्थाकी आत्मा श्रीयुत देवधर हैं। अब उन्होंने इस सोसाइटीके कार्यके सम्बन्धमें साहित्य भेजा है और मुझसे उसकी समीक्षा करनेको कहा है। समीक्षा करनेके लिए उन्होंने इस आशासे कहा है कि उससे प्रेरित होकर 'यंग इंडिया' के पाठक इस संस्थाको शायद कुछ सहायता दे सकें। संस्थाकी सालाना आय लगभग २ लाख और कुल खर्च अनुमानतः २½ लाख रुपये है। जिस संस्थाको मैं अच्छी तरह नही जानता, उसके कार्यकी समीक्षा मैं शायद ही करता हूँ। इस संस्थाको ठीक तरहसे जाननेका दावा मैं नहीं कर सकता, लेकिन श्रीयुत गो० कृ० देवधरको मैं अच्छी तरह जानता हूँ। हम दोनोंके बीच राजनीतिक मतभेद जरूर हैं, लेकिन उनके कारण ऐसा कभी नहीं हुआ है कि देशके प्रति उनकी निष्ठाकी ओरसे, लगभग एक पीढ़ीसे वे जिस असीम कार्यशक्तिका परिचय देते आ रहे हैं, मेरी आँखें बन्द हो गई हों। सेवासदन सोसाइटीके कार्यका वर्णन खुद उन्हींके शब्दोंमें पढ़िए:

> पूनाके सेवासदनने धीरे-धीरे प्रगति करते हुए अब एक ऐसी महती संस्थाका रूप ले लिया है, जो भारतीय नारियोंकी सेवाके लिए समर्पित है, इसकी शाखाएँ दूर-दूरतक फैली हुई हैं और बहुत-सी दूसरी संस्थाएँ भी इससे सम्बद्ध हैं। इन तमाम शाखाओं और संस्थाओंके जरिये यह साहित्यिक, औद्यो-

गिक, चिकित्सा-सम्बन्धी और संगीतकी शिक्षाका प्रचार-प्रसार करता है— विशेषकर भारतकी सभी जातियों और धर्मोंकी गरीब और वयस्क महिलाओंके बीच।

इस संस्थाके उद्भवकी जानकारी देते हुए वे कहते हैं:[1]

जब मैं १९०७-८ में संयुक्त प्रान्तमें अकाल-सहायता अभियानमें लगा हुआ था, उस समय मेरे मनमें जो एक विश्वास पैदा होता जा रहा था, वह दिन-प्रतिदिन गहरा और तीव्र होता चला गया। वह विश्वास यह था कि भारतको राष्ट्रीय प्रगतिके उन विभिन्न क्षेत्रोंमें, जो हमारी बहनोंके लाभके लिए हैं, प्रशिक्षित और कुशल महिला कार्यकर्त्ताओंकी एक फौजकी उतनी ही जरूरत है जितनी कि निष्ठावान और कुशल पुरुष कार्यकर्त्ताओंके एक दलकी . . . परिणामस्वरूप यह तय पाया गया कि छः गरीब विधवाओंको समाजसेवाके कार्यका प्रशिक्षण दिया जाये। इस प्रकार उस छोटे-से बीजने बढ़कर एक विशाल वृक्षका रूप ले लिया है।

इस संस्थाकी आठ शाखाएँ हैं, जो कुल ९४ कक्षाएँ चलाती हैं। इनमें सभी वर्गोंकी १,२३४ लड़कियाँ और महिलाएँ शिक्षा प्राप्त करती हैं। इनमें विधवाओंका अनुपात ४८ प्रतिशत है। विशेष महत्त्वकी बात यह है कि तीन स्त्रियाँ दलित वर्गकी भी हैं। इनके अलावा ८ यहूदी, २४ ईसाई और ७ मुसलमान स्त्रियाँ हैं। अब्राह्मण स्त्रियोंका अनुपात ४० प्रतिशत है। सोसाइटीके १३ छात्रावासोंमें २७० महिलाएँ रहती हैं। ९२ स्त्रियाँ नर्सिंग और चिकित्सा-शास्त्रकी शिक्षा पा रही हैं। अबतक इसके अधीन १२५ सर्टिफिकेट-प्राप्त अध्यापिकाएँ, ४२ पूरी योग्यता प्राप्त नर्सें, ३१ दाइयाँ, १९ डाक्टर, १७ मैट्रन और गवर्नेस, ३० शिल्पाध्यापिकाएँ और ९ संगीत-अध्यापिकाएँ पूरा प्रशिक्षण प्राप्त करके निकल चुकी हैं। संस्थाका दिन-दिन विस्तार हो रहा है। भारतमें अपने ढंगकी यह सबसे बड़ी संस्था है।

गरीब स्त्रियोंकी जरूरतें पूरी करनेवाली संस्थाके नाते इसमें एक कमी जरूर है। वह है हाथ-कताई और खादीके प्रयोगका अभाव, लेकिन इस मामलेमें श्रीयुत देवधर मेरे दृष्टिकोणसे सहमत नहीं हैं। मैं अनुकूल समयकी प्रतीक्षा कर सकता हूँ। कारण, समय अन्ततः सदा गरीबोंका ही साथ देता है, क्योंकि उनमें असीम धैर्य होता है या उन्हें असीम धैर्य रखना पड़ता है और चूँकि महामन्त्री महोदय (श्री देवधर)का हृदय गरीबोंके साथ है, इसलिए किसी-न-किसी दिन वे देख ही लेंगे कि अगर सेवाके लिए बढाये गये उनके हाथको देशके गरीबसे-गरीब लोगोंतक पहुँचना है तो वह हाथ-कते सूतके जरिये ही पहुँच पायेगा, देखनेमें तो यह रुईका पतला-सा धागा-मात्र है, लेकिन वास्तवमें यह इतना मजबूत है कि यह अपने कोमल और प्रेमपूर्ण बन्धनमें करोड़ों भारतवासियोंको बाँध सकता है। इसमें सन्देह नहीं कि कढाईका काम और ऐसे ही जिन अन्य कामोंका प्रशिक्षण सेवासदनमें

१. कुछ अंशोंका ही अनुवाद दिया जा रहा है।

दिया जाता है, वे कताईकी अपेक्षा अधिक लाभप्रद हैं, लेकिन निश्चय ही हर चीजका महत्त्व आर्थिक लाभकी ही दृष्टिसे आँकनेकी जरूरत नहीं है। १,२३४ लड़कियों और महिलाओंको इस बातके लिए बड़ी आसानीसे प्रेरित किया जा सकता है कि वे अपनी अपेक्षाकृत कम खुशकिस्मत बहनोंके निमित्त प्रतिदिन आधा घंटा दिया करें और जब वे यह जान जायेंगी कि वे खादीकी जो साड़ियाँ पहनती हैं, उनसे उनकी कुछ-एक बदकिस्मत बहनोंको अपने भूखे पेट भरनेमें मदद मिली है तब वे उन साड़ियोंको, जो कुछ ज्यादा भारी होती हैं, मजेमें पहन सकेंगी और उनका वजन बर्दाश्त कर सकेंगी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ४-३-१९२६

८०. अपने नग्न रूपमें

कलकत्तासे प्रकाशित होनेवाले 'फॉरवर्ड' ने १९१९-२० की भारतीय जेल समितिकी रिपोर्टके कुछ अंश छापकर जन-हितका कार्य किया है। जो अंश छापा गया है, उसमें राजनीतिक कैदियोंके साथ किये जानेवाले दुर्व्यवहारके सम्बन्धमें लेफ्टिनेंट कर्नल मलवेनीकी साक्षी दी गई है। इससे वर्तमान शासन-प्रणालीकी बुराई बिलकुल नग्न रूपमें सामने आ जाती है। इससे प्रकट होता है कि अधिकारियोंको किस प्रकार गलत काम करनेकी शिक्षा दी जाती है, और इस तरह किस प्रकार उन्हें भ्रष्ट बनाकर आत्म-सम्मानकी भावनासे वंचित कर दिया जाता है। उन दिनों लेफ्टिनेंट कर्नल मलवेनी अलीपुर केन्द्रीय जेलके अधीक्षक थे। उनके वक्तव्यका कुछ अंश मैं नीचे दे रहा हूँ:[1]

> ...विप्लववादी आन्दोलनके प्रारम्भिक दिनोंसे ही मैं कलकत्तेकी किसी-न-किसी जेलका प्रधान अधिकारी रहा हूँ।...और मैं कमसे-कम कहूँ तो भी मुझे कहना पड़ेगा कि मुझे [कैदियोंके साथ] जैसा निर्मम व्यवहार करनेका आदेश दिया गया और उसके पालनकी अपेक्षा की गई, उससे मेरी भावनाको बहुत आघात पहुँचा।...मैंने एक रिपोर्ट पेश की...जिसमें मैंने अपना मत प्रकट करते हुए कहा कि उन्हें (कैदियोंको) जितने दिनोंतक नजरबन्द रखा जाता हैं, उससे उनके स्वास्थ्यको हानि पहुँच सकती है और तनहाईकी सजा इतनी कड़ी है, जितनी कड़ी सजाका विधान जेल अधिनियम या जेल-सम्बन्धी विनियमोंमें कहीं नहीं किया गया है। इस अधिनियम और इन विनियमोंके अधीन सात दिनसे अधिक तनहाईकी सजा नहीं दी जा सकती। मैंने यह रिपोर्ट जान-बूझकर ऐसी स्थिति उत्पन्न करनेके लिए पेश की थी जिससे या तो मुझे नौकरीसे

१. यहाँ इसे आंशिक रूपमें ही दिया जा रहा है।

निकाल दिया जाये (जिसकी मुझे आशंका नहीं थी) या मुझे जो निर्मम व्यवहार करनेका आदेश दिया गया था, उसमें कुछ सुधार किया जाये और उसका नतीजा क्या निकला? मेरा पत्र मुझे वापस कर दिया गया और मुझसे उसपर पुनः विचार करनेका अनुरोध किया गया. . .।

'फॉरवर्ड' ने लेफ्टिनेंट कर्नल द्वारा उल्लिखित पत्र भी प्रकाशित किया है। जब तत्कालीन जेल महानिरीक्षकको लेफ्टिनेंट कर्नल मलवेनीकी तिरस्कारयुक्त रिपोर्ट मिली तो उन्होंने उनको पत्र लिखा, जिसमें उनसे रिपोर्टपर पुनः विचार करनेका अनुरोध किया गया था और उन्हें संशोधित रिपोर्टमें कौन-सा झूठ लिखना चाहिए, यह भी बताया गया था। यहाँ मैं उस पत्रका एक अंश उद्धृत करनेका लोभ संवरण नहीं कर सकता। प्रासंगिक उद्धरण इस प्रकार है:

कृपया इस पत्रपर पुनः विचार कीजिए। याद रखिए कि इसे शिमला भेजना होगा और इससे सर्वोच्च अधिकारीगण कुपित हो उठेंगे। हम जो उन्हें (कैदियोंको) तनहाईकी इतनी लम्बी सजा दे रहे हैं, उसका कारण सुरक्षा सम्बन्धी आवश्यकता है, जिसका तकाजा है कि इन कैदियोंको न केवल दूसरे देशी कैदियोंसे अलग रखा जाये, बल्कि एक-दूसरेसे भी न मिलने दिया जाये। मेरा खयाल है, आप चाहें तो इतना या इसी आशयके शब्द लिख सकते हैं कि दोनों कैदी तनहाईमें रखे जा रहे हैं, उन्हें प्रतिदिन जरूरी व्यायाम आदि करने दिया जाता है, दोनों प्रसन्न हैं और किसीका स्वास्थ्य खराब नहीं हुआ है।

यह पत्र मिलनेपर लेफ्टिनेंट कर्नल मलवेनी दुःखके साथ अपमानका यह घूंट पी गये और जानते हुए गलत रिपोर्ट दी। इस रिपोर्टके बाद उसपर लीपा-पोती करनेके लिए सरकारी सूत्रोंसे जारी की गई किसी भी रिपोर्टपर कैसे विश्वास किया जा सकता है? और यह कोई अपवाद भी नहीं है। सरकारी विभागोंसे जिन लोगोंका थोड़ा-बहुत भी सम्बन्ध है, वे भली-भाँति जानते हैं कि इस तरह झूठी रिपोर्ट और वक्तव्य गढ़ना सरकारके लिए बहुत ही आम बात है। आज हर चीज वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा 'सम्पादित' की जाती है।

बंगालके जिन बहादुर लोगोंको मुकदमा चलाये बिना अनिश्चित कालके लिए नजरबन्द कर रखा गया है, उनके रिश्तेदारोंको बड़ी कठिनाईसे उनके सम्बन्धमें कुछ बातें मालूम हो पाई हैं। ये बातें दुनियाको बता दी गई हैं और इनसे प्रकट होता है कि उन्हें बहुत ही अनावश्यक कष्ट दिये जा रहे हैं। आरोप आम तौरपर अस्वीकार कर दिये जाते हैं और जहाँ पूरी तरह अस्वीकार करते नहीं बनता, वहाँ अंशतः सत्यको स्वीकार कर लिया जाता है और कैदियोंको कष्ट मिलनेकी जो बात स्वीकार कर ली जाती है, उसकी जिम्मेदारी भी खुद कैदियोंपर ही डाल दी जाती है।

जब श्रीयुत गोस्वामी-जैसे लोग विधानसभाको इस विषयपर बहस करनेकी अनुमति देनेपर मजबूर कर देते हैं तो सरकारी पक्षके सदस्य उनका मजाक उड़ाते

हुए कहते हैं कि लेफ्टिनेंट कर्नल मलवेनीके वक्तव्यको समितिने स्वीकार ही कहाँ किया। सरकार इस निश्चित विश्वासके साथ झूठ और गलत बयानियोंकी आड़ लेकर अपनी संगीनोंकी शक्तिके बलपर हमारी शिकायतोंको तिरस्कार और उपेक्षाके भावसे देखती है कि कैदियोंकी नजरबन्दी और उनके साथ दुर्व्यवहार करना उन अंग्रेजोंकी सुरक्षाके लिए आवश्यक है जिनका कि वह प्रतिनिधित्व करती है।

विरोधके तौरपर बंगालने एक दिनके लिए हड़ताल करनेकी घोषणा की है। नपुंसकों द्वारा की जानेवाली हड़तालोंकी सरकारको कोई परवाह नहीं है। वह सिवाय तलवारकी शक्ति या आत्मबलके और किसी दलीलपर कान नहीं देती। तलवारकी शक्तिको वह जानती है और उसका सम्मान करती है, आत्मबलको वह नहीं जानती और इसलिए उससे डरती है। हमारे पास तलवारका जोर नहीं है। १९२१ में हम समझते थे कि हमारे पास आत्माका बल है। लेकिन आज — ?

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ४-३-१९२६

८१. पत्र : हरिभाऊको

साबरमती आश्रम
४ मार्च, १९२६

प्रिय हरिभाऊ,

मगनलालसे तुम्हारा सन्देशा मिला। यदि पूनामें कोई विशेषज्ञ नियुक्त किया जा सकता है, तो वह भेज दिया जायेगा; लेकिन मैं तुम्हारे तर्कका प्रतिवाद करना चाहता हूँ। हम लोग डनलप या सिंगर-जैसे [पूंजी-सम्पन्न] लोग नहीं हैं। हमारे पास ऐसी अक्षय पूंजी नहीं है कि उसे गँवानेसे हमारा कुछ बने-बिगड़े नहीं। वे जैसा शोषण करते हैं, वैसा हम नहीं कर सकते। हम मूल लागतमें हजार फीसदी और नहीं जोड़ सकते। इसलिए हमारे तरीके उनके तरीकोंसे अलग होने चाहिए। यदि हम चरखे और उसके हिस्सोंके निर्माणके लिए एक केन्द्रीय कारखानेपर ही अपनी सारी शक्ति लगा देंगे तो इस आन्दोलनका असफल होना निश्चित समझो। इसके विपरीत हमें लोगोंको आत्म-निर्भर बनाना चाहिए और इसलिए उन्हें खुद अपने चरखे तैयार करना सिखाना चाहिए। विकेन्द्रीकरणकी यह शिक्षा प्रान्तके स्तरसे ही शुरू हो सकती है, और इसलिए तुम साबरमती, अर्थात् केन्द्रीय बोर्डसे जो-कुछ करनेकी आशा करते हो, वह तुम्हीं लोगोंको करना चाहिए।

महाराष्ट्रको प्रशिक्षण देकर अपने विशेषज्ञ खुद ही तैयार करने चाहिए। वे लोग प्रान्तके अलग-अलग इलाकोंमें फैल जायें और फिर इस काममें लोगोंकी मदद करते हुए वे उन्हें प्रशिक्षित भी करें। जिन लोगोंको चरखेमें विश्वास है, उन्हें केवल सूत कातकर सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिए, वरन् चरखेकी यन्त्र-प्रणालीको खुद

समझना चाहिए, ताकि वे स्वयं ही उसे ठीक कर सकें, जरूरत पड़नेपर उसके हिस्से बदल सकें। उन्हें चमरखों, तकुओं आदिको बनाने और ठीक ढंगसे लगानेकी तमाम सरल विधियाँ सीख लेनी चाहिए। जो काम अपने-आपमें आसान है, उसको लोगोंसे ऐसा कहकर कठिन नहीं बनाना चाहिए कि अपने चरखे बिगड़ जानेपर ठीक करानेके लिए उनको हमारे पास आनेकी जरूरत है। इसलिए मेरा सुझाव है कि अब तुम लोग आत्म-निर्भर और स्वावलम्बी बननेका प्रयत्न करो और इस प्रक्रियामें जैसी भी मददकी जरूरत हो, वह सब यहाँसे लेते रहो। खादीके काममें हम अब ऐसी अवस्थामें पहुँच गये हैं जब वह दिन-दुगुनी और रात-चौगुनी प्रगति कर सकता है। शर्त इतनी ही है कि हम जो थोड़े-से कार्यकर्त्ता हैं वे सब उससे सम्बन्धित विभिन्न कार्योंमें अपने-आपको दक्ष बना लें। ऐसी दक्षता प्राप्त करनेमें न तो बहुत-ज्यादा समयकी और न असाधारण बुद्धि या योग्यताकी ही जरूरत है। केवल लगन और अध्यवसायकी ही जरूरत है।

तुम्हारे पत्रकी शेष बातोंका उत्तर मगनलाल दे रहा है।

तुम्हारा,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३४३) की माइक्रोफिल्मसे।

८२. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

साबरमती आश्रम
५ मार्च, १९२६

प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारा पहली तारीखका पत्र मिला। यद्यपि तुम डॉ० मेहताके लिए भी पत्र लिखकर छोड़ गये थे, फिर भी उसे और पक्का करनेके लिए मैंने भी उन्हें लिखा है। मैं आशा करता हूँ कि जहाजपर कमलाका स्वास्थ्य बिलकुल ठीक रहा होगा। क्या तुम सबको समुद्र-यात्रासे लाभ हुआ? अधिक लिखनेके लिए समय नहीं है।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
ए बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स

८३. पत्र : के० बी० मेननको

सावरमती आश्रम
५ मार्च, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैं आपके सभी शुभ प्रयत्नोंमें पूरी सफलताकी कामना करता हूँ। तथापि मुझे आपकी संस्थाका संरक्षक बननेका लोभ संवरण करना ही होगा। मैं अपने जीवनमें एक भी ऐसा उदाहरण याद नहीं कर पाता, जब मैंने किसी ऐसी संस्थाका संरक्षक पद स्वीकार किया हो, जिसे मैं खुद न जानता होऊँ और जिसके लिए मैंने कुछ काम न किया हो या कुछ काम कर न सकूं।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीयुत के० बी० मेनन
मन्त्री
सन्स ऑफ भारत
पो० ऑ० बॉक्स ४७७, बर्कले, कैलिफ, यू० एस० ए०

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० १२४२३) की फोटो-नकलसे।

८४. पत्र : एलिस मैक्के केलीको

सावरमती आश्रम
५ मार्च, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका सुन्दर पत्र मिला। कृपया लीगके सदस्योंको बताइए कि भारतकी मदद करनेका सबसे अच्छा तरीका यह है कि वे लोग भारतकी समस्याका सही अध्ययन करें। यह अध्ययन अखबारोंसे या अखबारी ढंगसे नहीं किया जा सकता है। इसके लिए उन्हें अध्यवसायी विद्यार्थियोंकी तरह धैर्यपूर्वक और विनीत भावसे प्रयत्न करके वास्तविकताको मूल सूत्रोंसे जानना-समझना होगा।

आपने यह इच्छा प्रकट की है कि मैं अमेरिका आऊँ। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं भी उतना ही इच्छुक हूँ, लेकिन जबतक अन्तरात्माका निश्चित निर्देश नहीं मिलता, तबतक तो मुझे प्रतीक्षा करनी ही पड़ेगी।

अपने पिछले पत्रमें आपने मुझसे मेरा एक हस्ताक्षरयुक्त फोटो माँगा है। क्या आपको मालूम था कि मैं अपना कोई फोटो नही रखता? पिछले दस वर्षोंसे मैंने खास तौरसे बैठकर अपना कोई फोटो नहीं खिचवाया है; और जब खिंचवाता था तब भी मैं अपने फोटो नहीं रखता था। इसलिए मुझे खेद है कि आपको निराश करना पड़ रहा है।

हृदयसे आपका,

कुमारी एलिस मैक्के केली
१२००, मैडिसन एवेन्यू
न्यूयार्क सिटी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १२४२७) की फोटो-नकलसे।

८५. पत्र : एडविन एम० स्टैंडिंगको

साबरमती आश्रम
५ मार्च, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र और फोटो-चित्र पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं सोच रहा था कि पता नहीं आप कहाँ हैं और आपको मेरा पत्र मिला भी या नहीं। 'यंग इंडिया' के लिए आपका नाम दर्ज करवा रहा हूँ। आशा है, वह आपको नियमित रूपसे मिलता रहेगा।

हाँ, आपका खयाल ठीक ही है। अभी एक साल मैं आश्रममें ही रहकर आराम करूँगा। ऐसा तो नही कहा जा सकता कि मैंने एक सालके लिए राजनीतिसे बिलकुल सन्यास ले लिया है, लेकिन मेरी राजनीतिक प्रवृत्तियाँ, यहाँ आश्रममें रहकर मैं जितना-कुछ कर सकता हूँ, उतने ही तक सीमित हैं।

मैंने आपसे कौन-सा फोटो देनेका वादा किया था? अगर खुद अपना फोटो देनेका वादा किया था तब तो मुझसे समझनेमें कोई गलती हो गई होगी, क्योंकि मेरा खयाल था कि आप यह जानते हैं कि मैं अपना कोई फोटो अपने पास नहीं रखता। कहनेको मेरी कुछ तसवीरें हैं जरूर — वे जो बाजारमें बिकती हैं। मगर आप उन विरूप चित्रोंको तो नही ही चाहेंगे।

थियोसॉफिकल सोसाइटीकी प्रवृत्तियोंमें मैं कोई दिलचस्पी नही लेता।

आपकी मान्यता तो यह मालूम होती है कि अच्छी बातोंको समझानेके लिए बहुत-ज्यादा कहने और लिखनेकी जरूरत होती है और अपना आनन्द तथा सन्तोष व्यक्त करनेके लिए तो उससे भी ज्यादाकी। मैं आपकी इस मान्यतासे सहमत नहीं हूँ। इसके विपरीत, मैंने तो यह पाया है कि जब तर्क ठोस और शुद्ध होते हैं तब

उन्हें संक्षेपमें चन्द पंक्तियोंमें बखूबी समझाया जा सकता है, और सच्चे आनन्दकी या तो अभिव्यक्ति ही नहीं हो सकती या हो भी सकती है तो उसके लिए अकसर एक-दो शब्द काफी होते हैं। इसलिए मैं अब भी आपसे यह अनुरोध करूँगा कि अगर आप बताना चाहें तो बताइए कि किन कारणोंसे आपने कैथोलिक मतको स्वीकार किया और अगर बन सके तो इसने आपको जो अनन्त आनन्द प्रदान किया है, उसका भी रहस्य बताइए। मैं यह सवाल व्यर्थके कुतूहलके कारण नहीं, बल्कि रोमन कैथोलिक धर्मका अर्थ और उसका माहात्म्य समझनेके उद्देश्यसे ही पूछ रहा हूँ। मैं यहूदी-धर्मको कुछ-कुछ समझता हूँ, लेकिन जितना समझता हूँ उतना मेरे कामके लिए काफी है। प्रोटेस्टैंट धर्मको मैं और भी अच्छी तरह समझता हूँ; इस्लामको भी समझता हूँ और हिन्दू धर्मको तो समझता ही हूँ; किन्तु, यद्यपि कुछ रोमन कैथोलिक मेरे मित्र भी थे, फिर भी मैं उनके इतना नजदीक कभी नहीं आ पाया कि कैथोलिक मतको समझ लेता। दोनों सम्प्रदायोंके बाहरी अन्तरको मैं समझता हूँ। लेकिन, मैं जो चाहता हूँ वह यह कि कैथोलिक धर्मके मर्मतक पहुँच सकूँ। आप शायद मेरी मदद कर सकें। इसीलिए यह सवाल पूछा है।

श्री अम्बालाल और श्रीमती अम्बालाल मुझसे अकसर मिलते रहते हैं। बच्चे भी। वे बड़े हो रहे हैं। मृदुला तो सयानेपनमें लगभग औरतों-जैसी हो गई है। मैं आपका पत्र सरला देवीको भेज दूंगा; क्योंकि मुझे मालूम है कि आपका समाचार सुनकर उनको बड़ी प्रसन्नता होती है।

हृदयसे आपका,

एडविन एम० स्टैंडिंग
सेप्टन प्लेस, अरुण्डेल
ससेक्स, इंग्लैंड

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १२४३८) की फोटो-नकलसे।

८६. पत्र : मौलाना एम० मुजीबको

साबरमती आश्रम
५ मार्च, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मुझे खुशी है कि आप सब मुस्लिम विश्वविद्यालयमें लग गये हैं। मुझे याद है, जाकिरने[1] लिखा था। चूँकि मैं आपको हकीम साहब और ख्वाजा साहबके जरिये जानता हूँ, इसलिए मैं आपसे बड़ी-बड़ी आशाएँ रखता हूँ। बेशक, मैं आपसे मिलना और बात करना चाहूँगा और इस तरह व्यक्तिगत रूपसे आपका परिचय प्राप्त करके मुझे बड़ी खुशी होगी। मुझसे मिलनेका एक ही रास्ता है

१. जाकिर हुसैन (जन्म १८९७) कई वर्षोंतक भारतके उपराष्ट्रपति और मई, १९६७ से राष्ट्रपति।

—आप साबरमती आ जायें। क्या आप इस महीने आ सकते हैं? अप्रैलमें डाक्टरी सलाहके अनुसार शायद मैं किसी पहाड़ी स्थानपर चला जाऊँगा।

स्मरण रहे कि सोमवार मेरा मौन-दिवस है। आप जब चाहें आ जायें और आश्रममें ठहरें।

हृदयसे आपका,

मौलाना एम० मुजीव
नेशनल यूनिवर्सिटी
करौल बाग
दिल्ली

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३४४) की फोटो-नकलसे।

८७. पत्र: डॉ० प्रतापचन्द्र गुहा रायको

साबरमती आश्रम
५ मार्च, १९२६

प्रिय मित्र,

यह भी खूब रही! भूलें हुईं, लेकिन कितनी मजेदार! आपने जिस तारका जिक्र किया है, मुझे नहीं मिला। आपका तार मैंने यहाँ कई मित्रोंको दिखाया, लेकिन हममें से कोई भी नही समझ पाया कि तार किस जगहसे आया है और सबने यही मान लिया कि काकोरी केसके किसी कैदीने संयुक्त प्रान्तसे तार दिया है। मेरे दिमागमें यह बात आनी चाहिए थी कि प्रान्त शायद बंगाल हो और यह आप हैं जो रिहा हुए हैं। अब आपके पत्रसे सही बात मालूम हो पाई है।

आप जब-कभी साबरमती आयेंगे, निश्चय ही आपकी कताईकी क्षमता मैं देखूंगा। पता नहीं, श्रीमती रायको मेरा वह पत्र मिला भी या नहीं जो आपके कैद जानेके बाद मैंने उन्हें लिखा था।

हेमेन्द्र बाबूकी पुस्तक कब छप रही है? यदि वे या आप मुझे सूचित करेंगे कि हदसे-हद कबतक पुस्तक छप जानेकी सम्भावना है तो मैं प्रस्तावना-स्वरूप कुछ पंक्तियाँ सहर्ष लिख दूंगा।

हृदयसे आपका,

डॉ० प्रतापचन्द्र गुहा राय
३८ ए, कालीघाट रोड
कलकत्ता

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३४५) की माइक्रोफिल्मसे।

८८. पत्र : जे० बी० बेथमैनको

साबरमती आश्रम
५ मार्च, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैं जो 'आत्मकथा' लिख रहा हूँ, उसके अनुवादके लिए अनेक प्रार्थनापत्र आये हैं, लेकिन अभीतक मैंने उसका सर्वाधिकार किसीको नहीं दिया है। कोपेन हेगेनकी वे महिला यदि सर्वाधिकारका दावा किये बगैर अनुवाद करनेमें सन्तुष्ट हैं तो वे अनुवाद कर सकती हैं।

आपने मेरे स्वास्थ्यके विषयमें पूछा है। इस कृपाके लिए मैं आपको और श्रीमती बेथमैनको धन्यवाद देता हूँ। मेरा स्वास्थ्य सुधर रहा है।

आपको और श्रीमती बेथमैनको मेरा स्नेह-वन्दन।

हृदयसे आपका,

रेवरेंड जे० बी० बेथमैन
२०, मिलर रोड, किलपॉक
मद्रास

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३४६) की माइक्रोफिल्मसे।

८९. पत्र : कृष्णदासको

साबरमती आश्रम
५ मार्च, १९२६

प्रिय कृष्णदास,

तुम्हारे दो पत्र मिले। मैं जानता हूँ कि गुरुजीको मौजूदा हालत देखकर कैसा महसूस होता है। ईश्वरकी लीला अपरम्पार है; और मुझे कोई सन्देह नहीं कि आज हमारे सिर कठिनाइयोंके जो बादल मँडरा रहे हैं, समय आनेपर छट जायेंगे। तुम प्रार्थनापूर्ण मनसे कार्य करते हुए उस शुभ स्थितिके जल्दी आनेमें सहायक हो सकते हो। मेरे स्वास्थ्यके सम्बन्धमें गुरुजीकी चिन्ता भी मैं समझता हूँ। इस पृथ्वीपर जबतक मेरी जरूरत है, तबतक यह शरीर ठीक बना रहेगा। हम लोग जितनी सावधानी उचित रूपसे बरत सकते हैं, उतनी सावधानी बरतें, बस यही हमारा काम है, और वह मैं कर रहा हूँ।

मुझे खुशी है कि गुरुजी फिर काफी बेहतर हो गये हैं।

कल मैंने अपना वजन लिया था और देखा कि वह २ पौंड बढ़ा है। अब मैं १०१ पौंड हूँ। निश्चय ही गुजराती 'नवजीवन,' तुम्हें हर हफ्ते मिलता रहेगा। ताजा अंक मैं अभी अलग बुक पोस्टसे भेज रहा हूँ। स्वामीसे कह रहा हूँ कि आगेके लिए वह तुम्हारा नाम दर्ज कर ले।

कमलाका विवाह अच्छी तरह हो गया। कोई आडम्बर नहीं था, केवल धार्मिक संस्कार किये गये। प्यारेलाल कल आया। देवदास एक दिनके लिए आया था। वह मंगलवारको वापस देवलाली चला गया। मथुरादास बराबर, लेकिन बहुत धीमी प्रगति कर रहा है। सतीश बाबू, उनकी पत्नी और बेटा अरुण यहाँ हैं।

तुम्हारा,

श्रीयुत कृष्णदास
११०, हाजरा रोड
कलकत्ता

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३४७) की माइक्रोफिल्मसे।

९०. पत्र : डॉ० एम० ए० अन्सारीको

साबरमती आश्रम
५ मार्च, १९२६

प्रिय डॉ० अन्सारी,

आपका तार मिला, जिसमें आपने खबर दी है कि आप जल्दी ही जहाजसे इंग्लैंडके लिए रवाना हो रहे हैं। तार पढ़कर मुझे आश्चर्य-सा हुआ। क्योंकि आपकी इस आसन्न यात्राके बारेमें मुझे कोई जानकारी नहीं थी, न अब है। खैर; मुझे उम्मीद है कि आपके लौटनेतक भी आपके इस मरीजका शरीर इस लायक तो बचा रहेगा ही कि आप उसकी जाँच करें और उसका मनचाहा इलाज करें।

लेकिन, आज एक तार मिला है, जिसमें सूचित किया गया है कि अब जो हिन्दू-मुस्लिम समिति नियुक्त की जानेवाली है, उसके एक सदस्य आप भी होंगे। इसका मतलब क्या यह है कि आपकी यात्रा स्थगित हो गई है या कि समिति आपके लौटनेके बाद अपना काम शुरू करेगी? पण्डित मोतीलालजीके आग्रहपूर्ण अनुरोधको तो मैंने स्वीकार कर लिया है, लेकिन मुझे इसमें सन्देह है कि हम कुछ कर पायेंगे।

आप जब भी जायें, मेरी शुभकामनाएँ आपके साथ रहेंगी। आशा है, बेगम अन्सारी अब काफी बेहतर होंगी। पता नहीं, हकीमजी कैसे चल रहे हैं!

हृदयसे आपका,

डॉ० एम० ए० अन्सारी
दिल्ली

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३४८) की फोटो-नकलसे।

९१. पत्र : डाह्याभाई म० पटेलको

सावरमती आश्रम
शुक्रवार [५ मार्च, १९२६][1]

भाई डाह्याभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। मैं मामलतदार और कलक्टरके वारेमें लिखना अनुचित मानता हूँ। रामपुरके सम्वन्धमें टिप्पणी लिखूँगा। तुमने लिखा है कि हीराभाईने प्रेमपूर्वक और भक्तिपूर्वक नमस्कार कहा है और उसके साथ ही यह वताते हो कि उन्होंने कातनेकी प्रतिज्ञा ली थी, किन्तु फुर्सत होनेके वावजूद उसका पालन नहीं किया है। इस स्थितिमें उनका नमस्कार कैसे स्वीकार किया जा सकता है! जिससे सामान्य प्रतिज्ञाका भी पालन नहीं हो सकता उसका प्रेम और भक्ति कैसी होगी? यह वात उनसे पूछना और तव उनका जो उत्तर हो वह मुझे लिखना।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० २६९५) से।
सौजन्य : डाह्याभाई म० पटेल

९२. पत्र : एम० के० आचार्यको

सावरमती आश्रम
६ मार्च, १९२६

प्रिय मित्र,

अव जाकर मैं आपकी लिखी पुस्तिकाको पूरा पढ़ सका हूँ। मुझे कहना होगा कि उसमें लिखी वातें मनको पूरी तरह जमती नहीं। अस्पृश्यताके सम्वन्धमें आप जो-कुछ कहते हैं, सर्वथा प्रमाण-रहित है। आप जो उपाय सुझाते हैं, वह कोई उपाय नहीं है। आपने 'प्रारब्ध'का जो अर्थ किया है, वह ऐसा है कि यदि वह सच हो तो एक-दूसरेकी मददकी कोई गुंजाइश ही नहीं रह जाती है और पृथ्वीपर हर नृशंसताको उचित ठहराया जा सकता है और इसलिए दक्षिण आफ्रिकामें हमारे देशभाइयोंके प्रति यूरोपीयोंके वरतावकी जितनी भी निन्दा की जाती है, वह बिलकुल गलत मानी

१. डाककी मुहरसे।

जायेगी। मेरी रायमें, आपने अस्पृश्यताके विरुद्ध वर्तमान आन्दोलनको भी सही ढंगसे नहीं पेश किया है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एम० के० आचार्य
१० डी०, क्वीन्सवे
रायसीना, दिल्ली

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३४९) की माइक्रोफिल्मसे।

९३. पत्र : शिवाभाई जी० पटेलको

साबरमती आश्रम
शनिवार, फाल्गुन बदी ७, १९८२ [६ मार्च, १९२६]

भाई शिवाभाई,

बीमार होनेके कारण तुम्हारे पत्रका उत्तर जल्दी नहीं दे सका। किसीके असहयोगको धर्म माननेका अर्थ यह है कि वह सहयोग करना पाप समझता है। धर्मकी यह विशेषता है कि वह हमें [कर्त्तव्यके] अमुक बन्धनोंमें बाँधता है। उस बन्धनका उल्लंघन-मात्र पाप है। सरकारसे सम्बन्ध रखकर कोई भी संस्था देशकी कुछ भी सेवा नहीं कर सकती, यह कहनेमें अतिशयोक्तिका दोष होता है; लेकिन जितना अधिक सम्बन्ध होगा, सेवा उतनी ही कम होगी, ऐसा तो अवश्य कहा जा सकता है।

तुम्हारे अन्तिम प्रश्नका एकाएक उत्तर देना मुश्किल है। मुझसे मिलोगे तो खुलासा कर सकूँगा। सोमवारके अलावा दूसरे दिनोंमें समय सायं चार बजेका है। मैं ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले पतिके लिए पत्नीको दूर रखनेकी आवश्यकता नहीं समझता। हाँ, उसके साथ एकान्त वासका त्याग अवश्य दृढ़तापूर्वक किया जाना चाहिए।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ४०६) से।
सौजन्य : शिवाभाई पटेल

९४. पत्र : हरसुखरायको

साबरमती आश्रम
शनिवार, फाल्गुन वदी ७ [६ मार्च, १९२६]

भाई हरसुखराय,

आपका पत्र मिला। आप यदि यह बात भूल जायें कि आप वकील हैं तो बहुत-से उपाय बताये जा सकते हैं। लेकिन क्या आपको शरीर-श्रम करनेके लिए कहा जा सकता है? आप स्वयं सूत कातें, दूसरोंसे कतवायें, स्वयं रूई पींजें और दूसरोंसे पिंजवायें — क्या आपको ऐसे कार्योंमें रस आयेगा? जैसे मजदूर आजीविका प्राप्त करके सन्तोष पाता है, क्या आप वैसे सन्तोष पा सकते हैं? मेरे सभी उपाय तो जितने आसान हैं, उतने ही कठिन हैं। लेकिन यदि आप मजदूरका जीवन बिता सकते हों तो लिखें।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (एस० एन० १०६०९) की फोटो-नकलसे।

९५. विशुद्ध धार्मिक विधिसे

सत्याग्रहाश्रमका आदर्श अखण्डित ब्रह्मचर्य होनेके बावजूद उसमें कुछ विवाह सम्पन्न हुए हैं। ये विवाह लोगोंके लिए जानने योग्य होनेके कारण मैं इनपर 'नवजीवन' में टिप्पणी[1] लिख चुका हूँ। "जहाँ ब्रह्मचर्य आदर्श हो वहाँ इस प्रकार विवाहको कैसे प्रोत्साहन दिया जा सकता है," इस प्रश्नकी चर्चा मित्रोंके बीच की जा चुकी है। तथापि आश्रमकी प्रवृत्तियोंमें दिलचस्पी रखनेवाले पाठक वर्गके लिए भी संक्षेपमें इस प्रश्नका उत्तर देनेकी बात अनुचित नहीं मानी जायेगी।

सत्याग्रहाश्रमके ब्रह्मचर्यके आदर्शको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले लोग यदि विवाह-विधि सम्पन्न होती देखकर ही भड़क जायें तो वे अखण्डित ब्रह्मचर्यका पालन नहीं कर सकते, ऐसा मेरा मत है। ऋष्यशृंगका[2] उदाहरण तो प्रसिद्ध ही है। जिस वस्तुसे मनुष्य दूर रहना चाहता है, यदि उसके पीछे उसका मन दौड़ता हो तो उससे दूर रहनेका ढोंग लम्बे समयतक नहीं निभ सकता। इसके बजाय उसे उसके सम्मुख जो भी प्रलोभन उपस्थित हों, उनसे संघर्ष करनेकी तैयारी रखनी

१. देखिए खण्ड २९, पृष्ठ ४२८-३०।

२. महर्षि विभाण्डकके पुत्र। इनकी कथा महाभारतके वनपर्वमें आती है। इन्होंने युवा होनेतक स्त्रीका कभी दर्शन ही नहीं किया था, किन्तु उसपर पहली बार दृष्टि पड़ते ही मोहित हो गये थे।

चाहिए। जिस ब्रह्मचारीका मन अस्थिर हो उसे ब्रह्मचारी नहीं माना जा सकता। स्वेच्छासे पालन किया जानेवाला संयम ही टिक सकता है। इसीलिए निष्कुलानन्दने कहा है कि "त्याग न टिके रे वैराग बिना।" जिसे अपने संयममें आनन्द आता है, जिसे अपना संयम प्रिय है, वह ऐसी कोई वस्तु देखकर, जो उसके संयमके प्रतिकूल हो, ललचायेगा नहीं, अपितु उदासीन रहेगा।

इसके अतिरिक्त सत्याग्रहाश्रममें बालक-बालिकाओंका भी पालन हो रहा है। उन्हें बलात् ब्रह्मचारी रखना आश्रमका हेतु नहीं हो सकता। उनको जब अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन असम्भव लगे तब उन्हें विवाह करनेमें मदद देना आश्रमका सहज धर्म हो जाता है। इसके अतिरिक्त आश्रम-जीवनमें रस लेनेवाले कुछ मित्र हैं। उन्हे उनके बच्चोंके विवाहोंको यथाशक्ति आदर्श रूप देनेमें मदद करना भी आश्रमवासियोंने अपना धर्म माना है और मैं मानता हूँ कि ऐसे विवाह आश्रमके तत्त्वावधानमें हों तो भी वे ब्रह्मचर्यके आदर्शको धक्का नहीं पहुँचायेंगे। इस कारण कहा जा सकता है कि मैंने ऐसे विवाहोंको आश्रमके तत्त्वावधानमें होनेसे रोकनेके बजाय प्रोत्साहन दिया है। ऐसा एक विवाह तो थोड़े समय पहले आश्रममें ही पली-पुसी एक बालिकाका हुआ है। भाई लक्ष्मीदास पुरुषोत्तमसे 'नवजीवन' के पाठक परिचित हैं। उनकी बड़ी लड़की चि० मोतीका विवाह एक मास पहले भड़ौंच शिक्षा मण्डलके भाई नाजुकलाल चौकसीके साथ हुआ है। इस विवाहमें एक कौड़ीका भी लेन-देन नहीं हुआ। भाटिया जातिमें ऐसा विवाह शायद ही होता है, ऐसा मैंने सुना है। यदि ऐसा कहें कि यह विवाह स्वयंवरकी कोटिका था तो गलत नही होगा, क्योंकि यद्यपि पहली पसन्द कन्याके माता-पिताकी थी तथापि अन्तिम पसन्द तो वर-कन्याकी ही थी और जब दोनोंको ऐसा लगा कि वे विवाह-बन्धनमें बँधना चाहते हैं, तभी कन्या-दान किया गया। मित्र-वर्गके अलावा किसीको भी साथीके रूपमें अथवा दूसरी तरह आमन्त्रित नहीं किया गया था। वर-कन्या दोनोंने अपनी हमेशाकी शुद्ध खादीकी पोशाक पहनी थी। शृंगार-मात्रका दोनोंने स्वेच्छासे त्याग किया था। दोनोंने उस दिन पाणि-ग्रहण होनेतक उपवास किया था। विवाह-विधिमें प्राचीन शास्त्र-सम्मत क्रियाके सिवा और कुछ नही किया गया था। वरकी ओरसे कन्याको कुछ भी नही दिया गया था, क्योंकि कन्याके माता-पिताकी इच्छा यही थी। हिन्दुस्तानमें क्वचित ही ऐसा विवाह देखनेमें आता है, जिसमें दोनोंमें से एक भी पक्षके पाँच-सात रुपये भी खर्च न हों और विवाहको केवल संयमका साधन माना जाये।

इस तरहसे हुए विवाहको हम असंयम अथवा विषयोपभोगका साधन नही मान सकते। वह ब्रह्मचर्यके समान एक प्रकारका संयम ही है। मैं जानता हूँ कि भाटिया-समाजमें बहुत ज्यादा धन होनेके कारण विवाहका खर्च दिन-प्रतिदिन बढ़ता जाता है। कन्या तो बेची ही जाती है, ऐसा कहा जा सकता है। ऐसा करनेमें शर्म भी नहीं मानी जाती, क्योंकि यह बात आम हो गई है। इससे गरीब भाटियोंको तो कन्या मिलनी ही मुश्किल हो जाती है। धार्मिक भावनावाले भाटिया परिवार इस विवाहका अनुकरण करें, इस आशासे मैंने इस संस्कारको इतनी प्रसिद्धि दी है।

यद्यपि बिलकुल ऐसा ही तो नहीं, लेकिन इसी प्रकारका एक अन्य विवाह आश्रमके तत्त्वावधानमें गत रविवारको सम्पन्न हुआ। वह मारवाड़ी समाजका था। श्री जमनालाल बजाजने अपनी बड़ी लड़की चि० कमलाका कन्या-दान स्वर्गीय श्री कन्हैयालालजीके पुत्र चि० रामेश्वर प्रसादको किया था। भाई रामेश्वर प्रसाद गुजरात विद्यापीठमें अध्ययन करते हैं। इस विवाहमें दोनों पक्षोंके धनिक होनेपर भी केवल धार्मिक-विधिसे विवाह-संस्कार सम्पन्न करनेकी बात स्वीकार करना दोनों परिवारोंके लिए अत्यन्त कठिन काम था। इतनी सादगीसे धनिक मारवाड़ियोंमें आजतक एक भी विवाह किये जानेकी बात सुननेमें नहीं आई है। सामान्य रूपसे यह विवाह वर्धामें अथवा बम्बईमें होना चाहिए था। श्री जमनालालजीका विचार इस विवाहको बिलकुल किसी आडम्बरके बिना और हो सके तो कमसे-कम खर्चसे सम्पन्न करनेका था, और इसके साथ ही उनकी अभिलाषा विवाहको इस तरह सम्पन्न करनेकी थी जिससे वर-कन्या विवाहका रहस्य समझ जायें, विवाह केवल धार्मिक क्रिया है, यह बात दोनों समझ सकें तथा दोनोंका एक-दूसरेके प्रति क्या धर्म है, यह भी स्पष्ट रूपसे जान सकें। इस तरहका विवाह तो आश्रमकी भूमिमें ही हो सकता है, ऐसा जमनालालजीको तथा मुझे लगा। लेकिन वर-पक्षकी ओरसे सहमति न मिलती तो यह धार्मिक सुधार कदापि नहीं हो सकता था। परन्तु श्री रामवल्लभजी और श्री केशवदेवजी, रामेश्वर प्रसादकी मातुश्री और अन्य बूढ़े-बड़ोंको समझा सके और उन्होंने उन सबकी सहमति प्राप्त कर ली।

इस विवाहमें भी केवल मित्रोंको ही निमन्त्रण-पत्र दिये गये थे। सामान्यतः जैसा निमन्त्रण-पत्र भेजा जाता है, वैसा नहीं भेजा गया। भोज आदि भी नहीं दिया गया। उपहार आदि भी नहीं दिये गये। केवल प्राचीन धार्मिक विधिके अलावा और कुछ नहीं किया गया था। वर-कन्या दोनोंने केवल खादी पहनी थी। दोनों विवाहोंमें सप्तपदीके समय वर-कन्याको जो प्रतिज्ञा लेनी थी वह प्रतिज्ञा उन्होंने अपनी-अपनी मातृभाषामें मेरे समक्ष और मेरे बताये अनुसार ली।

यह है सप्तपदी और वरकी अन्तिम प्रतिज्ञा :

सप्तपदी

वर कन्याको कहता है :

१. इष एकपदी भव। सा मामनुव्रता भव।

इच्छाशक्ति प्राप्त करनेके लिए एक कदम भर। मेरा व्रत पूर्ण करनेमें मेरी मदद कर।

कन्या : मैं आपके प्रत्येक सत्य-संकल्पमें सहायक हूँगी।

२. ऊर्जे द्विपदी भव। सा मामनुव्रता भव।

तेज प्राप्त करनेके लिए दूसरा कदम भर। मेरा व्रत पूर्ण करनेमें मेरी मदद कर।

कन्या : मैं आपके प्रत्येक सत्य-संकल्पमें सहायक हूँगी।

३. रायस्पोषाय त्रिपदी भव। सा मामनुव्रता भव।

कल्याणकी वृद्धिके लिए तीसरा कदम भर। मेरा व्रत पूर्ण करनेमें मेरी मदद कर।

कन्या: मैं आपके सुखमें सुखी और आपके दुःखमें दुःखी हूँगी।

४. मायोभव्याय चतुष्पदी भव। सा मामनुव्रता भव।

आनन्दमय बननेके लिए चौथा कदम भर। मेरा व्रत पूर्ण करनेमें मेरी मदद कर।

कन्या: मैं सदैव आपकी भक्तिमें तत्पर रहूँगी, सदा प्रिय बोलूँगी, सदा आपका-आनन्द चाहूँगी।

५. प्रजाभ्यः पंचपदी भव। सा मामनुव्रता भव।

प्रजाकी सेवाके लिए पाँचवाँ कदम भर। मेरा व्रत पूर्ण करनेमें मेरी मदद कर।

कन्या: मैं आपके प्रजा-सेवाके व्रतमें पग-पगपर आपके साथ रहूँगी।

६. ऋतुभ्यः षट्पदी भव। सा मामनुव्रता भव।

नियम पालनके लिए छठा कदम भर। मेरा व्रत पूर्ण करनेमें मेरी मदद कर।
कन्या: मैं यम-नियमोंके पालनमें आपकी अनुगामिनी बनूँगी।

७. सखा सप्तपदी भव। सा मामनुव्रता भव।

हम दोनोंमें परस्पर मैत्री रहे, इसके लिए सातवाँ कदम भर। मेरा व्रत पूर्ण करनेमें मेरी मदद कर।

कन्या: यह मेरे पुण्यका फल है कि आप मेरे पति हुए। आप मेरे परममित्र हैं, परम गुरु हैं, परम देवता हैं।

कन्याका पिता कहता है:

यस्त्वया धर्मचरितव्यः सोऽनया सह।
धर्मे चार्थे च कामे च नातिचरितव्या॥

तुम्हें जो धर्माचरण करना हो वह इस कन्याके साथ ही करना। धर्ममें, अर्थमें, काममें इस कन्याके साथ एकनिष्ठ रहना। व्यभिचार न करना।

वर: नातिचरामि, नातिचरामि, नातिचरामि॥

धर्म, अर्थ, काममें व्यभिचार नही करूँगा, नही करूँगा, नही करूँगा।

यदि अन्य धनवान् मारवाड़ी सज्जन इस विवाहका अनुकरण करें तो कितना धन बचे, कितना आडम्बर कम हो, वर, कन्या व मातापिता कितनी झंझटोसे बच जायें और कितनी धर्मवृद्धि हो?

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ७-३-१९२६

९६. पत्र : सरोजिनी नायडूको

साबरमती आश्रम
९ मार्च, १९२६

प्रिय मीराबाई,[१]

जोहानिसबर्गसे आये तारकी एक नकल मैं पत्रके साथ भेज रहा हूँ। इसका सारांश मैंने तार द्वारा सोराबजीको भेज दिया है, लेकिन मैंने सोचा कि आपको तारका पूरा ही पाठ मिलना चाहिए। मैंने यह जवाब दिया है: "दिल्ली समितिके निर्णयकी प्रतीक्षा करें।" यह जवाब मैंने सोराबजीको दिये गये अपने आश्वासनको ध्यानमें रखते हुए दिया है। मैंने उन्हें यह आश्वासन दिया था कि लगता है, वहाँ समितिका गठन हो चुका है और दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंको मैं ऐसी कोई सलाह नहीं दूँगा जो, वह समिति जो-कुछ कहे या करे, उसके विरुद्ध हो।

तथापि मेरी अपनी यह राय बरकरार है कि विधेयकके सिद्धान्ततक पर गवाही देनेसे कतई इनकार करके हम खुद गलती कर रहे हैं। गवाही देनेमें जो आपत्तियाँ हैं, उन्हें भी मैंने सुना है। कहा जाता है कि हमारे लोग जिरहमें टिक नहीं पायेंगे और दक्षिण-आफ्रिकामें इतनी योग्यता और अनुभववाला कोई भारतीय नहीं है जो गवाही दे सके। इसका तो साफ-सीधा जवाब यह है कि किसी भारतीयको गवाही देनेकी जरूरत ही नहीं है। जैसा कि आप देखेंगी, प्रवर समितिने एक लिखित अभिवेदन माँगा है। ऐसा अभिवेदन तैयार किया जा सकता है और हम एक सॉलिसिटर नियुक्त कर सकते हैं, जो हमारी ओरसे जिरहमें खड़ा हो और जवाब दे। ऐसा सॉलिसिटर या वकील चुननेमें जो कठिनाई है, उसे मैं समझता हूँ, लेकिन यह कोई असम्भव काम नहीं है। एडम अलेक्जेन्डर इस कामके लिए बुरे नहीं रहेंगे। वे काफी ईमानदार व्यक्ति हैं और उनकी सहानुभूति हमारे साथ है। ऐसे कुछ और लोगोंके नाम भी सोचे जा सकते हैं, जो समाजको किसी प्रकारसे अटपटी स्थितिमें डाले बिना या उसके साथ धोखेबाजी किये बगैर गवाही दे सकते हैं। मैं जो कहना चाहता हूँ वह यह कि भले ही प्रवर समितिसे हमारा कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो, फिर भी हमें उनको यह कहनेका मौका नहीं देना चाहिए कि हमें अवसर दिया गया और फिर भी हमने गवाहीतक नहीं पेश की। कोई कह सकता है कि १९१४ में मैंने भी तो सॉलोमन आयोगका बहिष्कार किया था। किन्तु, मेरे वैसा करनेका सीधा-सादा कारण यह था कि उस समय भारतीय समाजने एक पवित्र संकल्प किया था कि यदि सरकार आयोगके विचारार्थ विषयोंका विस्तार नहीं करती है और समाजकी ओरसे एक प्रतिनिधि उसमें नियुक्त नहीं करती है तो आयोगका बहिष्कार किया जायेगा। इसलिए उस निश्चयके अनुसार मैंने वैसा किया। और इस सिलसिले

१. मीराबाईकी ही तरह श्रीमती नायडू कवयित्री थीं।

में यह भी याद रहना चाहिए कि आयोगकी बैठक शुरू होनेसे भी पहले जनरल स्मट्सके साथ मेरा यह समझौता हो गया था कि एशियाई अधिनियम रद कर दिया जायेगा और जनरल स्मट्स आयोगसे ऐसे निष्कर्षोंकी अपेक्षा करेंगे, जिनके आधारपर वे हमसे एक सम्मानजनक समझौता कर सकें। यह बात अंशतः लिखित रूपमें मौजूद है।

आशा है, आप स्वस्थ होंगी। अभी आप जिन नाजुक कामोंमें लगी हुई हैं, उनमें आपकी पूरी सफलताकी कामना करता हूँ।

हृदयसे आपका,

सह-पत्र : १
श्रीमती सरोजिनी नायडू
मार्फत—वी० जे० पटेल
दिल्ली

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११९४६) की फोटो-नकलसे।

९७. पत्र : तुलसी मेहरको

साबरमती आश्रम
बुधवार [१० मार्च, १९२६][1]

भाई तुलसी मेहर,

तुम्हारे खत आया करते हैं। ठिकाना अनिश्चित होनेके कारन में कुछ नहीं लिखता था। मेरा स्वास्थ्य अच्छा है। एप्रिल मासमें पहाड़पर जानेकी कुछ कोशीश हो रही है। सिर्फ चावल और शाकसे शारीरिक शक्ति अच्छी रह सकती है क्या? शरीरको हरगीज नहीं बिगाड़ना। आजकल आश्रम भरा रहता है।

बापुके आशीर्वाद

मूल पत्र (जी० एन० ६५२५) की फोटो-नकलसे।

१. साधन-सूत्रमें पत्रके ऊपरके भागमें किसीने घसीटमें ११-३-१९२६ लिख दिया है जो सम्भवतः पत्रको डाकमें डालनेकी तिथि है।

९८. तार : हाजीको[1]

[साबरमती
१० मार्च, १९२६ को या उसके पश्चात्]

हाजी
साउथ आफ्रिकन कांग्रेस
डर्बन

एक हफ्ता पहले दिल्ली समितिको राय भेज दी।

गांधी

अंग्रेजी तार (एस० एन० ११९४७) की फोटो-नकलसे।

९९. एन्ड्रयूजकी व्यथा

पाठकगण श्री चार्ली एन्ड्रयूजका पत्र, जो मैं नीचे दे रहा हूँ, पढ़ना चाहेंगे। यह उदारमना अंग्रेज, अकसर लोगोंकी गलतफहमियोंका शिकार होकर भी, भारतमें या उसके बाहर जिस निस्स्वार्थ भाव और निष्ठासे हमारी लड़ाई लड़ता रहा है, उसकी बराबरी करना कठिन है और उससे अधिक निस्स्वार्थ भाव और निष्ठाका परिचय देना तो असम्भव ही है। हमें शायद कभी नहीं मालूम हो पायेगा कि अपनी संकटकी घड़ीमें उन्हें अपने बीच पाकर हमारे दक्षिण आफ्रिकावासी देशभाइयोंको कितना संतोष, कितना बल प्राप्त हुआ है। केप टाउनसे २३ फरवरीको लिखा उनका यह पत्र, एक भी शब्दका हेर-फेर किये बिना, नीचे दिया जा रहा है:[2]

> यह सचमुच मेरे लिए एक ऐसी लम्बी खिंचनेवाली व्यथा साबित हुई है, जैसी व्यथाका अनुभव मैंने आजतक कभी नहीं किया था। इसमें मैंने बड़े-बड़े उतार-चढ़ाव देखे, आशाओं और घोर निराशाओंकी आँखमिचौनी देखी। जब सब-कुछ प्रतिकूल ही प्रतिकूल दिखाई देता है तब कभी-कभी परिस्थितियाँ ऐसा पलटा खाती हैं कि सब-कुछ अनुकूल हो जाता है। एक समय तो मुझे लगा कि कुछ ऐसा ही हो गया है और तब सभी द्वार खुले दिखाई पड़ने लगे और ऐसा सम्भव लगने लगा कि सरकारके रुखमें कदाचित् वैसी ही नरमी आ

१. यह तार हाजी द्वारा ८ मार्चको भेजे निम्नलिखित तारके उत्तरमें था: "प्रवर समितिमें गवाही-सम्बन्धी मेरे २१ फरवरीके तारका जवाब भेजिए। सम्मेलन १४को जोहानिसबर्गमें हो रहा है।" गांधीजीको हाजीका यह तार १० मार्चको प्राप्त हुआ था।

२. यहाँ पत्रके कुछ अंशका ही अनुवाद दिया जा रहा है।

जाये जैसी १९१४में आई थी; वह शायद हमारी बातके औचित्यको उसी तरह महसूस करने लगे जिस तरह उसने १९१४में किया था। दो नेताओंसे बहुत लम्बी वार्ताएँ हुईं — एक जनरल हेर्टसॉगसे और दूसरी मलानसे। दोनों समस्याके समाधानके लिए उत्सुक थे और उनके व्यवहारमें मुझे पूरी ईमानदारी दिखाई दी। मुझे यह भी लगा कि वे अपनी बुनियादी स्थितिसे डिग गये हैं और विधेयकको कमसे-कम बहुत दिनोंके लिए स्थगित तो रखा ही जायेगा।

लेकिन, अब फिर सारी बातें बदल गई हैं। प्रतिक्रिया रंगभेद विधेयकके साथ प्रारम्भ हुई। संसदमें जो दृश्य उपस्थित हुए, नैतिक दृष्टिसे उनसे अधिक बुरी चीज और कुछ नहीं हो सकती थी। दोनों पक्ष एक-दूसरेपर धोखेबाजी का आरोप लगा रहे थे।. . .

. . . प्रथम वाचनके अवसरपर जो दृश्य उपस्थित हुआ, वह बहुत महत्त्व-पूर्ण था। स्मट्स और स्मार्ट तो उसमें आये ही नहीं। शेष सदस्योंने लगभग छिछोरे ढंगसे आपसमें मत-विभाजन किया। पक्षमें ८१ और विपक्षमें १० मत आये। इन दसमें सिर्फ केपके सदस्य शामिल थ, जिनके रंगदार मतदाता भी हैं और इसलिए जिन्हें उनका खयाल रखनेकी जरूरत है।

आजका दक्षिण आफ्रिका तो कोई और ही दक्षिण आफ्रिका है। लगता है, वे उदारतावादी लोग, जिनके अस्तित्वसे मैं और आप १९१४ में भली-भाँति परिचित थे, एकदम लुप्त हो गये हैं। . . .

. . . अब तो आगे सिर्फ पराजय ही दिखाई दे रही है।

मणिलाल बहुत अच्छा काम करते रहे हैं और इस बातसे उनका हृदय जितना व्यथित हो रहा है उतना और किसीका नहीं होगा।

मैं श्री एन्ड्रयूजकी इस निराशापूर्ण भविष्यवाणीसे सहमत नहीं हूँ। मैं कुछ ऐसा मानता होऊँ कि साम्राज्य-सरकार या भारत सरकार कोई बड़ा पराक्रम कर दिखायेगी सो बात नहीं है। लेकिन मैं यह अवश्य मानता हूँ कि जब सत्यका पक्ष लेकर बहादुर लोग चल रहे हों तो उसकी विजय अवश्यंभावी है। साथ ही मुझे यह विश्वास भी है कि जब अन्तिम परीक्षाकी घड़ी आयेगी उस समय भारतीय प्रवासी अपनी वीरता और त्याग-बलिदानका ठीक परिचय देंगे। विजय पानेके लिए उन्हें सिर्फ स्वेच्छया कष्ट-सहनके लिए, जो मनुष्यको ऊपर उठाता है, तैयार रहना है। जिन कानूनोंके खिलाफ वे लड़ रहे हैं, उनमें उनके लिए अनिवार्य और अपमानजनक कष्ट-सहनकी व्यवस्था है। अब इन दोनों प्रकारके कष्टोंमें से किसको चुनें, यह तो स्वयं उन प्रवासियोंपर ही निर्भर करता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ११-३-१९२६

१००. अब भी समस्यासे आँखें चुरा रहे हैं

हालमें ही इन पृष्ठोंमें तथाकथित अस्पृश्योंके मन्दिर-प्रवेशकी जटिल समस्यासे सम्बन्धित एक मामलेपर विचार किया गया था। अब दक्षिण भारतमें ऐसे ही एक मुकदमेका फैसला और हुआ है। माला जातिके मुरुगेसन नामक एक व्यक्तिको तिरुच्चाणूरमें एक मन्दिरमें पूजाके लिए प्रवेश करनेके अपराधमें तिरुपतिके स्थायी उप-मजिस्ट्रेटके समक्ष पेश किया गया था। छोटी अदालतने उस प्रवेशको भारतीय दण्ड-विधानकी २९५ वीं धाराके अनुसार वर्ग विशेषके धर्मका अपमान करनेके उद्देश्यसे (मन्दिरको) "अपवित्र करने"का अपराध मानकर उसे ७५ रुपये जुर्माना अथवा जुर्माना न देनेपर एक महीनेकी सख्त कैदकी सजा दी। किन्तु उस गरीब अन्त्यजके सौभाग्यसे कुछ सुधारकोंने उसके मामलेमें दिलचस्पी ली। फलतः इस फैसलेके खिलाफ अपील दायर की गई। अपील अदालतने अपीलको मंजूर कर लिया और जो फैसला सुनाया उसमें से मैं निम्नलिखित अंश उद्धृत कर रहा हूँ:

> छोटी अदालतमें मुद्दईकी तरफसे सात गवाहोंके इजहार हुए थे। उन्होंने अपने इजहारोंमें कहा था कि मुजरिम माला जातिका है। मालाओंको मन्दिरमें जानेकी मनाही है। और यदि वे उसमें प्रवेश करें तो वह मन्दिर अपवित्र हुआ माना जाता है। यह भी कहा गया है कि अपील करनेवाला मन्दिरके गर्भगृहतक पहुँच गया था, जहाँ केवल सवर्ण ही जा सकते हैं। वह उस समय सभ्य पोशाक पहने हुए था और भस्म-तिलक आदि लगाये हुए था। पुजारीने उसे सवर्ण हिन्दू समझा और उससे नारियल लेकर उसकी ओरसे कपूरकी आरती भी की। इसके लिए अपीलकर्त्ताने चार आनेका निर्धारित शुल्क भी दिया था। अपीलकर्त्ताके वहाँसे जानेके बाद मन्दिरके व्यवस्थापकोंको मालूम हुआ कि वह माला जातिका था; और चूँकि उसके प्रवेशसे मन्दिर अपवित्र हुआ माना गया, इसलिए उसे शुद्ध करना आवश्यक हो गया।
>
> पहले तो इस बातपर विचार होना चाहिए कि मुद्दईकी ओरसे जुर्म कायम करनेके लिए जिन बातोंको सिद्ध करना जरूरी है वे सिद्ध की गई हैं या नहीं। अभियुक्त माला जातिका है और मन्दिरमें उसके प्रवेशसे मन्दिरकी पवित्रता भंग हो गई, यह बात इस मानेमें पूरी तरह सिद्ध कर दी गई है कि उसके मन्दिरमें जानेसे पूजा-अर्चाकी मान्य पद्धतिकी दृष्टिसे मन्दिर अपवित्र हो गया था। लेकिन, इसके अलावा यह बात साबित करना जरूरी है कि उसके प्रवेशसे किसी वर्गके धर्मका अपमान हुआ है और यह कि अभियुक्तका ऐसा अपमान करनेका इरादा था अथवा वह ऐसे परिणामकी सम्भावनासे अवगत था। ऐसा जान पड़ता है कि मुद्दईकी ओरसे इस बातको ध्यानमें रखकर मुकदमा नहीं चलाया गया है

और उसके किसी भी गवाहके बयानसे यह बात प्रकाशमें नहीं आई है कि अभियुक्तका यह कार्य गवाहोंके अथवा किसी भी वर्गके व्यक्तियोंके धर्मका अपमान है। तब फिर अभियुक्तका ऐसा अपमान करनेका इरादा था अथवा वह ऐसे परिणामकी सम्भावनासे अवगत था, इस तरहकी कोई बात करना तो बेकार ही है। मुद्दई द्वारा पेश किये गये सबूतोंमें यह त्रुटि होनेके कारण, मेरे खयालसे, जुर्म साबित नहीं हो सकता। मैं नहीं समझता कि मुकदमा फिरसे चलाये जानेकी इजाजत दी जानी चाहिए।

इस मामलेमें भी हम देखते हैं कि बेचारे तिरस्कृत अन्त्यजोंके विरुद्ध मुकदमा दायर करनेवाले लोग, न्यायाधीशगण और अभियुक्तका बचाव करनेवाले लोग, ये सभी उनके सहधर्मी हिन्दू लोग ही थे। यहाँ फिर अपराधी सख्त कैदकी सजासे बच गया है। (क्योंकि मेरा खयाल है कि वह इतना भारी जुर्माना नहीं दे सकता था।) लेकिन फिर इस मामलेके बाद भी समस्या ज्योंकी-त्यों है। हिन्दू न्यायाधीश यह निर्णय दे सकता था कि यदि कोई अन्त्यज हिन्दू पूजा करनेके लिए मन्दिरमें प्रवेश करता है तो उसके उस कार्यसे जिस हिन्दू-धर्ममें होनेका वह दावा करता है और जिसका कि वह एक अंग माना जाता है उस हिन्दू-धर्मका किसी भी अर्थमें अपमान नहीं होता है। कुछ हिन्दुओंके विचारसे उसका मन्दिर-प्रवेश अनुचित भले ही हो, रूढ़ि-विरुद्ध भी हो या चाहे जो-कुछ हो, लेकिन उससे किसी भी वर्गके धर्मका ऐसा अपमान नहीं होता है कि वह भारतीय दण्ड-विधानके अनुसार जुर्म समझा जाये। यह उल्लेखनीय है कि अपराधीके शरीरपर तिरस्कृत जातिके कोई चिह्न न थे, उसकी पोशाक सभ्य थी और वह भस्म और तिलक लगाये हुए था। सच तो यह है कि यदि ये दलित लोग इस बातपर उतर आयें कि वे अपना पता नहीं बतायेंगे तो उन्हें पहचान पाना मुश्किल होगा। धर्मका पवित्र नाम लेकर मनुष्योंपर अत्याचार करना विशुद्ध धर्मान्धता है। इन लोगोंको यह मालूम नहीं है कि वे जितने इज्जतदार होनेका दावा करते हैं उतनी ही इज्जतवाले, और हिन्दुओंको जिन धार्मिक विधियोंका पालन करना चाहिए उन सब धार्मिक विधियोंका आदर करनेवाले मनुष्योंको सार्वजनिक मन्दिरोंमें दाखिल होनेसे रोककर वे स्वयं अपने ही धर्मको भ्रष्ट कर रहे हैं। मन्दिरमें प्रवेशके लिए अमुक धार्मिक विधियोंके पालनकी माँगसे ज्यादा न तो किसी व्यक्तिको किसीपर कुछ थोपनेका अधिकार है और न ही इससे ज्यादाकी अपेक्षा करनेका। मनुष्यके दिलको तो केवल ईश्वर ही जानता है और यह सम्भव है कि फटे-पुराने वस्त्र पहननेवाले अन्त्यजका हृदय अच्छे वस्त्रोंसे सुसज्जित किसी उच्चवर्गके हिन्दूके हृदयसे कहीं अधिक निर्मल हो।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ११-३-१९२६

१०१. टिप्पणियाँ

कविवर और चरखा

कविवरने अभय आश्रमके अपने भाषणमें कहा था कि इन दिनों उनका शरीर दुर्बल है। लेकिन उनके शरीरके दुर्बल होनेपर भी अभय आश्रमके व्यवस्थापक डॉ० सुरेश बनर्जीने डॉ० ठाकुरको वहाँ बुलाकर अच्छा ही किया। यह आश्रम कोमिल्लामें है और पाठक जानते ही हैं कि इस आश्रमकी स्थापना खादीके विकासके लिए की गई थी। लोगोंको यह भ्रान्ति है कि कविवर चरखा और खादी आन्दोलनके सर्वथा विरुद्ध हैं। यदि किसी खण्डनकी आवश्यकता रही हो तो कविवर द्वारा मानपत्र स्वीकार करने और इससे उनके खादी अन्दोलनमें उनके सहयोगकी जो ध्वनि निकलती है उससे लोगोंकी इस भ्रान्तिका खण्डन हो जाता है। 'सर्वेंट' में उनके भाषणका सारांश प्रकाशित हुआ है; उसमें उन्होंने आन्दोलनके बारेमें जो चर्चाकी है उसे मैं नीचे उद्धृत कर रहा हूँ:

> संयोगवश किसी देशमें जन्म लेनेसे ही वह देश उसका नहीं हो जाता; ऐसा तो तब होता है जब कोई व्यक्ति उसके लिए अपना जीवन समर्पित कर देता है। जानवरोंके शरीरपर तो बाल होते हैं, परन्तु मनुष्यको कातना और बुनना पड़ता है, क्योंकि जानवरोंको जो बाल दिये गये हैं वे स्थायी और प्रकृति-प्रदत्त होते हैं। परन्तु मनुष्यको उपलब्ध साधनोंको अपने काममें लानेके लिए नये सिरेसे बनाना और सँवारना पड़ता है।

भाषणमें और भी विचारपूर्ण बातें कही गई हैं, जो स्वराज्यके लिए काम करने वालोंके लिए बड़ी उपयोगी हैं। कविवर कहते हैं:

> अबतक हम जो भारतको उसके सच्चे रूपमें साकार नहीं कर पाये हैं उसका कारण यह है कि हमने प्रतिदिन और क्षण-क्षण अपने परिश्रमके द्वारा उसका सर्जन, उसका निर्माण नहीं किया, उसे स्वस्थ, सशक्त और फलदायी बनानेका प्रयत्न नहीं किया।

इस प्रकार वे हम सबसे अनुरोध करते हैं कि यदि हमें स्वराज्य प्राप्त करना है तो हममें से हरएकको रोजाना मेहनत करनी चाहिए। दूसरे ही वाक्यमें वे कहते हैं कि हमें

> किसी बाहरी घटनाक्रमके फलस्वरूप स्वराज्य प्राप्त करनेका स्वप्न नहीं देखना चाहिए।

कविवर कहते हैं:

> यह उतने ही अंशोंमें हमारा हो सकता है जितने अंशोंमें हम अपनी सेवा द्वारा समस्त देशमें अपनी ज्ञान-चेतनाका प्रसार करनेमें सफल होंगे।

वे एकता प्राप्त करनेका उपाय बताते हुए कहते हैं: "केवल कामके द्वारा ही हम एकता प्राप्त कर सकते हैं।" अभय आश्रमके निवासी यही तो कर रहे हैं; क्योंकि वे कताई करके हिन्दुओंकी, मुसलमानोंकी और वस्तुतः हर किसीकी, जिन्हें उस साधन द्वारा मददकी आवश्यकता है, मदद कर रहे हैं। वे अस्पृश्य लड़के और लड़कियोंको अपनी शालामें शिक्षा देते हैं और चरखा चलाना भी सिखाते हैं। अपने चिकित्सालयके माध्यमसे वे जाति और धर्मका भेद किये बिना सबको राहत पहुँचाते हैं। उन्हें एकतापर उपदेश देनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। वे तो उसे अपने जीवनमें जी रहे हैं। उनके इस सेवा-कार्यसे प्रभावित होकर कविवर आगे चलकर कहते हैं:

जीवन एक सजीव अखण्ड वस्तु है। अन्ततः महत्त्व तो उस आन्तरिक सत्ताका ही है जो हमें प्राणित करती। यह सही नहीं है कि हमारे हाथोंमें बलकी कमी है। सत्य तो यह है कि हमारा मन जागृत नहीं हुआ है. . . इसलिए हमारी सबसे बड़ी लड़ाई मानसिक शिथिलताके विरुद्ध ही है। गाँव भी एक सजीव हस्ती है। आप इसके किसी भी विभागकी उपेक्षा नहीं कर सकते; एक विभागकी उपेक्षा करनेसे दूसरे विभागको भी नुकसान पहुँचेगा। यह समझ लेना चाहिए कि हमारे देशकी आत्मा एक और अखण्ड है। उसी तरह हमारे दुःख और दुर्बलताएँ भी एक दूसरेसे गुँथी हुई और इसलिए अखण्ड हैं।

हमारी असफलताकी चर्चा करते हुए कविवर ठीक ही कहते हैं:

मनुष्यकी रचना उस हदतक ही सुन्दर होती है जिस हदतक वह अपनेको उस कार्यमें उँड़ेल देता है। हमारे उपक्रमोंमें अकसर हमें असफलता क्यों मिलती है? कारण यह है कि अपने प्रिय कार्यमें भी हम अपनेको पूरी तरह नहीं उँड़ेलते। हम लोग दाहिने हाथसे जो देते हैं वह बायें हाथसे लौटा लेते हैं।

अमेरिका क्यों नहीं जाते?

एक सज्जन लिखते हैं:

आप अमेरिकाके आमन्त्रणको अस्वीकार कर रहे हैं। निःसन्देह आप यह बात मुझसे अधिक अच्छी तरह जानते होंगे कि वहाँ जानेके लिए यह उपयुक्त समय है या नहीं। फिर भी मैं यह नहीं समझ सकता कि आप अमेरिका क्यों न जायें। आपकी मुख्य और एक-मात्र दलील यह है कि अभी आप अपने ही देशमें, अपने ही लोगोंके बीच पूर्ण रूपसे सफल नहीं हो पाये हैं। परन्तु सफलता या असफलताका निर्णायक तो केवल ईश्वर ही है। क्या आप यह कहना चाहते हैं कि आपके द्वारा शुरू किये गये अहिंसा आन्दोलनकी नींव अभीतक दृढ़ नहीं हो पाई है? सत्य ही सत्यकी सहायता करता है। क्या आप मुझसे इस बातमें सहमत नहीं हैं कि अहिंसा आन्दोलनका सारे

संसारमें प्रचार होना चाहिए? क्या सत्य और अहिंसाकी दृष्टिसे अमेरिका और भारतवर्ष आपकी नजरोंमें समान नहीं होने चाहिए?

इस सम्बन्धमें मैं एक या दो उदाहरण भी दूंगा। हमारे नबी, मुहम्मद साहबने, जब उन्हें आवश्यकता हुई, अपनी जन्मभूमि मक्काके बाहर रहनेवाले मदीनेके अपने अनुयायियोंकी मदद लेनेमें जरा भी हिचकिचाहट नहीं दिखाई थी। अभी हालकी ही बात है कि स्वामी विवेकानन्दने भी संसारको अपना सन्देश सुनानेके लिए अमेरिकाको ही अधिक उपयुक्त स्थान पाया था।

और यदि खादी-आन्दोलनको सफल बनानेका कार्य ही आपके वहाँ जानेमें बाधा रूप है तो आपको यह मालूम है कि आप अमेरिकामें चन्दा इकट्ठा कर सकते हैं। आप यह शर्त क्यों नहीं कर लेते (कमसे-कम अपने-आपसे) कि आपको अमेरिकामें खादीके लिए अमुक राशि अवश्य इकट्ठी करनी है। "आदान-प्रदान" के नियमको अपना काम करने देना चाहिए। खादी आन्दोलनको यदि काफी पैसेकी मदद मिले तो उसे लोकप्रिय और सफल बनानेमें कोई देर न लगेगी।

अमेरिकाके निमन्त्रणको स्वीकार करनेके लिए अनुरोध करनेवाले अनेक पत्र मिले हैं, जिनमें से एक पत्र यह है। मेरी दलील तो बड़ी सीधी-सादी है। मुझमें इतना आत्मविश्वास ही नहीं है कि अमेरिका जानेका निश्चय कर सकूँ। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि अहिंसाके आन्दोलनका प्रभाव स्थायी है। उसकी अन्तिम सफलताके विषयमें मुझे तनिक भी शंका नहीं है। परन्तु मैं अहिंसाकी शक्तिका कोई दृश्य प्रमाण नहीं दे सकता हूँ, और जबतक वैसा न कर सकूँ तबतक मेरा खयाल है कि मुझे उसका भारतके संकुचित क्षेत्रमें ही प्रचार करते रहना चाहिए। मेरे मामलेमें और दिये गये उदाहरणोंमें कोई समानता नहीं है। जो भी हो, मुहम्मद साहब और स्वामी विवेकानन्दको उसकी वांछनीयताकी स्पष्ट प्रतीति हुई थी, परन्तु मुझे अभीतक ऐसी प्रतीति नहीं हुई है।

खादी-आन्दोलनका सफल होना सिर्फ पैसेपर ही निर्भर नहीं करता है। उसे स्थिर बनानेके लिए और कितनी ही बातोंका होना आवश्यक है। यदि मैं कभी अमेरिका गया भी तो मैं इस इरादेसे नहीं जाऊँगा कि किसी भी भारतीय आन्दोलनके लिए, जिसके साथ मेरा सम्बन्ध हो, पैसा इकट्ठा करूँ। भारतको अपना बोझ आप ही उठाना चाहिए। और यदि अमेरिकाको भारतकी मदद करना आवश्यक जान पड़ा तो वह 'आदान-प्रदान' के सिद्धान्तके अनुसार नहीं, परन्तु स्वतन्त्र तौरपर ही उसकी मदद करेगा। अमेरिकाकी मदद और मेरी अमेरिका-यात्रा दोनों अपने-अपने गुणोंपर ही आधारित होनी चाहिए।

भूल-सुधार

एक पत्र-लेखकने लिखा है कि १८-२-१९२६ के 'यंग इंडिया' में विधान परिषद्के जिन सदस्य महोदयकी चर्चा की गई है, वे स्वयं चरखा नहीं कातते। उनके

लिए उनकी भतीजी कातती है। मैं सहर्ष इस भूलको प्रकाशित करता हूँ। चूँकि यह समाचार मुझे प्रामाणिक सूत्रसे मिला था, इसलिए मैंने इसे प्रकाशित किया था। खादी आन्दोलन अथवा किसी भी आन्दोलनको अतिशयोक्तिसे कुछ लाभ नहीं मिल सकता। छोटी-सी भी भूल शुद्ध आन्दोलनको नुकसान पहुँचाती है। यदि विधान परिषदोंके सदस्य कातते हैं तो भले ही इस बातका प्रचार किया जा सकता है; परन्तु चाहे विधान परिषदोंके सदस्य कातें या न कातें, बहुत सारे लोग कातें अथवा थोड़े-से ही लोग कातें, लेकिन चरखा आन्दोलन उसके विशुद्ध रूपमें चलाया जाना चाहिए। अगर कताईका अपने-आपमें कोई महत्व है, अर्थात् यदि भारतमें लाखों भूखे मनुष्य हैं, यदि वे कमसे-कम अपना एक तिहाई समय भी व्यर्थ ही नष्ट कर रहे हैं, और यदि हाथ-कताई ही एक ऐसा धन्धा है जो इतने विशाल मानव समुदायको तत्काल उपलब्ध है तो यह आन्दोलन प्रगति करेगा, फिर चाहे कुछ समयके लिए केवल एक ही सच्चा व्यक्ति इसका प्रतिनिधित्व क्यों न करे। और जिन मान्यताओंपर वह आधारित है, यदि वे ही गलत हैं तो फिर चाहे वाइसराय स्वयं ही क्यों न कातें, खादी आन्दोलन समाप्त हो जायेगा। इसलिए प्रत्येक खादी कार्यकर्ताको यह समझ लेना चाहिये कि खादी-आन्दोलन भारतके असंख्य दीन-दुःखी लोगोंके लिए है और इसकी शीघ्र तरक्कीके लिए यह परम आवश्यक है कि इसके सम्बन्धमें जो-कुछ कहा जाये, वह बिलकुल ठीक हो।

प्रकाशित किये गये आँकड़े जिस मन्त्रीने भेजे थे, उसका कहना है कि घोषित पुरस्कार धनवानोंके लिए नहीं थे, बल्कि उन गरीब लोगोंके लिए थे जो नियमित रूपसे कताई मण्डलोंमें जाते हैं।

किशोरोंके लिए

अखिल भारतीय चरखा संघके मन्त्रीने किशोर वयके लड़के-लड़कियोंके लिए, जो चरखा संघके सभासद होना चाहते हों, नीचे लिखा प्रार्थनापत्र तैयार किया है[1]। संचालक, तकनीकी विभाग, अखिल भारतीय चरखा संघ, सत्याग्रहाश्रम, साबरमतीको सूतका अपना पहला चन्दा भेजते समय उन्हें साथमें अपने दस्तखत करके यह प्रार्थना पत्र भी भेजना चाहिए।

हरएक लड़का और लड़की, जिसे इस देशके दीन-दुःखियोंके प्रति तनिक भी सहानुभूति है, इस संघका सदस्य बनना अपना कर्त्तव्य और सौभाग्य समझेगी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ११-३-१९२६

१. प्रार्थनापत्रका फार्म यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

१०२. टिप्पणी

कांग्रेसके सदस्य बननेवालोंको

अब कांग्रेसके सदस्य बननेके लिए चरखा संघके प्रार्थनापत्रमें सिर्फ सदस्य बननेकी इच्छा प्रकट कर देनेसे या 'अ' अथवा 'ब' लिख देनेसे ही काम न चलेगा। कांग्रेसकी सदस्यताके लिए एक विशेष प्रार्थनापत्र तैयार किया गया है। जो लोग कांग्रेसके सदस्य बनना चाहते हैं, उन्हें चाहिए कि वे उसे भरें। लेकिन इस प्रार्थनापत्रको भरनेके अलावा उन्हें इस वर्ष (१९२६) के लिए २,००० गज सूत कातकर भेजना होगा। केवल तब ही उन्हें कांग्रेसका प्रमाणपत्र (सर्टीफिकेट) मिल सकेगा। उदाहरणके तौरपर, यदि चरखा-संघके 'अ' वर्गके किसी भी सदस्यने अक्तूबरसे दिसम्बर तकका ३,००० गज सूत दे दिया है तो जबतक वह जनवरीसे फरवरीतक का २,००० गज सूत और नहीं देता तबतक उसे कांग्रेसका प्रमाणपत्र नहीं भेजा जायेगा। यदि किसीने जनवरीतक का सूत दे दिया है तो वह भी जबतक फरवरीका १,००० गज सूत नहीं भेजता तबतक वह कांग्रेसका सदस्य नहीं बन सकता। इसी तरह जो 'ब' वर्गके सदस्य अक्तूबर, नवम्बर या दिसम्बर १९२५ में २,००० गज सूत दे चुके हैं, वे भी जबतक २,००० गज [और] सूत नहीं भेजते तबतक कांग्रेसके सदस्य नहीं बन सकते।

हिन्दी नवजीवन, ११-३-१९२६

१०३. पत्र : पी० एस० आर० चौधरीको

सावरमती आश्रम
११ मार्च, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र और संलग्न कागजात मिले। आपने बड़े ही प्रभावशाली ढंगसे एक दर्दनाक कहानी बयान की है। मुझे तो लगता है कि आप जिस आन्दोलनकी बात सोच रहे हैं, उससे कोई विशेष लाभ नहीं होगा। इस स्थितिसे छुटकारा पानेके लिए हमें अपने अन्दर सच्ची ताकत पैदा करनी है। खैर, मैं इस विषयपर 'यंग इंडिया' के पृष्ठोंमें लिखूंगा।[1]

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० एस० आर० चौधरी
अवैतनिक मन्त्री
ग्लासगो इंडियन यूनियन
मार्फत-ग्लासगो यूनिवर्सिटी, ग्लासगो

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १२४४०) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए "केवल परिमाणका भेद", १८-३-१९२६।

१०४. पत्र : डॉ० हनुमन्तरावको

साबरमती आश्रम
११ मार्च, १९२६

प्रिय हनुमन्तराव,

मुझे तुम्हारे पत्र अच्छे लगे, खासकर सबसे बादवाला, हालाँकि तुम्हारे कई निष्कर्षोंसे मैं सर्वथा असहमत हूँ। कोई दवा न लेनेके सिद्धान्तमें तुम्हारा दृढ़ विश्वास मुझे अच्छा लगता है और तुम्हारा यह आग्रह भी मुझे अच्छा लगता है कि मैं किसी भी स्थितिमें दवाएँ न लूँ, लेकिन अनुभवसे मुझको सीख मिली है कि सुधारकोंमें कुछ हदतक असहिष्णुता और कट्टरता आ जाती है, जो खुद उस सुधारके लिए ही बाधक सिद्ध होती है, जिसके लिए सुधारकोंके दिलमें इतनी ज्यादा ख्वाहिश होती है।

उदाहरणके लिए, कुनैनकी जो बुराइयाँ तुम गिनाते हो, वे ऐसी बुराइयाँ हैं जो बहुत समयतक बड़ी मात्रामें उसे लेनेसे पैदा होती हैं, बल्कि जबकि मैंने उसे पाँच-पाँच ग्रेनकी मात्रामें लिया और २४ घंटेमें कभी भी १० ग्रेनसे ज्यादा नहीं लिया। हर खुराकको मैंने ताजे नींबूके रसमें काफी पानी और सोडा बाईकार्ब मिलाकर लिया। ५ दिनोंमें कुल मिलाकर मैंने ३० ग्रेनसे ज्यादा कुनैन नही खाई। इस प्रकार ४ दिन सिर्फ ५-५ ग्रेन कुनैन ही ली। मुझपर उसका कोई बुरा प्रभाव पड़ा नहीं दिखता है, और उधर इतनी मात्रामें कुनैन लेकर मैंने उन अनेक चिन्तित मित्रो और डाक्टरोंको भी सन्तुष्ट किया जिनका आग्रह था कि मुझे १५-१५ ग्रेनकी खुराकें लेनी चाहिए।

कुनैनकी अविवेकपूर्ण निन्दा व्यर्थ सिद्ध होगी, क्योंकि वही एक ऐसी दवा है जिसकी मलेरियाको कुछ समयके लिए अच्छा कर देनेकी सामर्थ्यमें सन्देह नहीं किया जा सकता। यदि कुनैनका तत्कालीन ठोस नतीजा यह निकलता है कि मलेरियाका प्रकोप रुक जाता है तो लोग उसके सम्भावित बुरे प्रभावोंसे नहीं डरेंगे। अतः कुनैन-पर सीधा आक्रमण न करके बहुत सोच-समझकर बाजूसे करना चाहिए।

जब मैं जेलमें था, उस समय जिन कारणोसे मैंने ऑपरेशन करवा लिया था, उन्हीं कारणोंसे मैंने कुनैन भी खाई। अगर उस समय बन्धनमें होनेके कारण ही मैंने अपना आग्रह छोड़ दिया तो फिर इस सबसे ताजा उदाहरणमें विशुद्ध प्रेमके बन्धनको उसकी अपेक्षा कितना अधिक प्रभावकारी होना चाहिए था, यह सोचनेकी बात है। लेकिन फिर भी अगर मुझे यह विश्वास नहीं हो जाता कि मैं जो ऑपरेशन करवानेको तैयार हो रहा हूँ, उसके पीछेसे मेरे ही मनकी कमजोरी बोल रही है तो मुझे दुनिया की कोई भी चीज ससून अस्पतालमें ऑपरेशन करानेको प्रेरित नहीं कर सकती थी। किन्तु, यह कमजोरी है क्या? वह जिस चीजको "प्राकृतिक उपचार" कहते हैं, उसकी पूर्ण सक्षमतामें विश्वासका अभाव ही तो है। प्राकृतिक उपचार भी अभी प्रयोग-परीक्षाकी स्थितिसे गुजर रहा है और उसका विकास हो रहा है। अभी यह उस पूर्णताकी अवस्थातक नही पहुँच पाया है, जहाँ हम शत-प्रतिशत परिणामकी आशा रख

सकते हैं। और अगर तुम्हारे मनमें किसी ऐसी चीजका खयाल है जो प्राकृतिक उपचार-से भी परे है, अर्थात् अगर तुम्हें ईश्वरमें ऐसी आस्था है कि तुम अपने-आपको उसके हाथोंमें सौंपकर निश्चिन्त रह सकते हो तो मैं स्वीकार करता हूँ कि अबतक मैं उस *अवस्थाको प्राप्त नहीं कर पाया हूँ।* हम कष्ट-साध्य प्रयत्नोंके बलपर ही उस स्थितिको प्राप्त कर सकते हैं। हम उसे ऊपरसे किसी पोशाककी तरह पहन नहीं ले सकते। और न किसीको दलीलके जरिये इस बातका पूरा-पूरा बोध कराया जा सकता है कि हमारे भीतर एक "सर्व-रक्षक शक्ति" बैठी हुई है।

तुमसे मैं अपनी बातें विस्तारपूर्वक इसलिए कह रहा हूँ कि मैं तुम्हारी सदाशयता और उत्कटताका आदर करता हूँ, लेकिन देखता हूँ, तुममें अधैर्य और असहिष्णुता बढ़ती जा रही है। यह चीज तो प्राकृतिक चिकित्साके पक्ष-पोषकके रूपमें तुम्हारे मार्गमें एक बाधा है। तुम फिर मनमें यह धारणा न बना बैठना कि जिन चीजोंका स्वाद कड़वा होता है, वे सबकी-सब बुरी ही होती हैं। कड़वाहट, मिठास आदि तो सापेक्ष शब्द हैं। क्या तुम्हें मालूम है कि कुछ लोगोंको कड़वाहटकी अपेक्षा मिठाससे कहीं ज्यादा अरुचि होती है? क्या तुम इस बातसे सहमत नहीं हो कि कड़वी नीमकी पत्तीके नियमित सेवनकी अपेक्षा चीनीका नियमित सेवन ज्यादा हानिकर होता है? और मैं तो नहीं कह सकता कि नीमकी दातौनसे ठीक तरहसे अपने दाँत साफ करनेवाला आदमी अपने मुँहको अच्छी और स्वस्थ हालतमें नहीं रख सकता या तुम नीमकी दतौन करनेवालेको भी चम्मच-भर मीठे पाउडरसे ही अपने दाँत साफ करनेको कहोगे?

और अन्तमें इस सूत्र-वाक्यके अनुसार कि "ऐ वैद्य, तू पहले अपने-आपको तो ठीक कर," मैं तुमसे कहूँगा कि तुम पहले खुद ही बलिष्ठ और हट्टे-कट्टे बनकर लोगोंके सामने एक पदार्थ-पाठ पेश करो और इस तरह प्राकृतिक चिकित्साका प्रचार करो।

यह पत्र मैं तुमको इस खयालसे नहीं लिख रहा हूँ कि तुम आइन्दा मुझपर इसी तरह आलोचनाओंकी बौछार न किया करो। हाँ, इतना जरूर है कि तुमको भी मेरी ओरसे बौछार सहनेके लिए तैयार रहना चाहिए।

पता नहीं, आश्रम आनेको इच्छुक उन दो मित्रोंके बारेमें और नेल्लूर आश्रमके विषयमें कुछ दिन पहले लिखा मेरा पत्र तुमको मिला या नहीं। उसे विजगापट्टमके पतेपर भेजा गया था। उस समय तुमने और कोई पता दिया ही नहीं था।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत डी० हनुमन्तराव
मार्फत डी० वी० रामस्वामी अय्यर
विजगापट्टम

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३५०) की फोटो-नकलसे।

१०५. पत्र : केलप्पनको

११ मार्च, १९२६

आपका पत्र[1] मिला। आपको जिस मददकी जरूरत है, वह दिलानेमें मुझे खुशी होगी। उसके सम्बन्धमें अभी मैं श्री च० राजगोपालाचारीसे पत्र-व्यवहार कर रहा हूँ। इसलिए आपको बादमें फिर लिखूँगा।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३५१) की माइक्रोफिल्मसे।

१०६. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

साबरमती आश्रम
११ मार्च, १९२६

प्रिय सी० आर०,

पिछले तारके बादसे आपने अपना कोई समाचार नहीं भेजा है। इस डरसे कि शायद आपका आना न हो सके, मैं केलप्पनसे प्राप्त पत्र साथमें भेज रहा हूँ। आपकी क्या राय है? यदि आपके खयालसे यह मदद दी जानी चाहिए तो आपके पास त्रावणकोर कोषकी जो राशि बची हुई है, उसमें से दे दीजिए।

आपने जो अगली किस्त[2] भेजनेका वादा किया था, वह कबतक भेज रहे हैं? इतनी देर मत कीजिए कि पाठक पहली किस्तके विषयमें तबतक सब भूल ही जायें।

आपका,

संलग्न : २
श्रीयुत च० राजगोपालाचारी
गांधी आश्रम
तिरुचेनगोडु

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३५१) की फोटो-नकलसे।

१. २ मार्च, १९२६ का। इस पत्रमें केलप्पनने एक मकानकी मरम्मतके लिए गांधीजी से ६०० रुपयेकी सहायता माँगी थी।

२. देखिए "एक नीरस परिसंवाद", १८-३-१९२६।

१०७. पत्र : सुन्दरस्वरूपको

सावरमती आश्रम
११ मार्च, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आप 'यंग इंडिया' से जो भी अनुवाद करना चाहें, कर सकते हैं, लेकिन आप ऐसा कहकर कुछ प्रकाशित न करें कि अनुवाद मेरे द्वारा प्रमाणित है। कारण यह है कि मैं आपके अनुवादोंको जाँच नही सकता। इसलिए आप जो-कुछ भी करें, पूरी तरह अपनी जिम्मेदारीपर और अपने काममें मेरे नामका उल्लेख किये बगैर करें। मैं तो कुल इतना ही कर सकता हूँ कि आपके रास्तेकी कानूनी कठिनाई दूर कर दूँ और वह इस पत्रसे दूर हो जाती है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सुन्दरस्वरूप
लँढोरा हाउस
मेरठ सिटी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३५२) की माइक्रोफिल्मसे।

१०८. एक पत्र

सावरमती आश्रम
११ मार्च, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। कितना अच्छा होता कि मैं यूरोप-यात्रा कर सकता और वहाँ कितने ही अज्ञात यूरोपीय मित्रोंसे मिल पाता! लेकिन फिलहाल मुझे लगता है कि मुझे भारत नहीं छोड़ना चाहिए। जब मुझे ऐसा लगेगा कि मेरे लिए रास्ता साफ है, तो मैं यूरोप जानेसे झिझकूँगा नहीं। तबतक तो हमें पत्र-व्यवहार द्वारा ही एक-दूसरेके सम्पर्कमें रहना होगा। इस समय श्री एन्ड्रयूज या किन्हीं अन्य मित्रोंको भी नहीं भेजा जा सकता। श्री एन्ड्रयूज दक्षिण आफ्रिकामें हैं। वे अगले महीने वापस लौटेंगे, लेकिन यहाँ उनके लिए काम पहलेसे ही तैयार रखा है और उसमें वे कई महीनोंतक व्यस्त रहेंगे।

इसमें सन्देह नहीं कि टॉल्स्टॉयकी रचनाओंने मुझपर जबरदस्त असर डाला है। उन्होंने मेरा अहिंसा-प्रेम बढ़ाया है। मैं चीजोंको जितना साफ पहले देखता

था, उससे भी ज्यादा साफ देखनेमें उन्होंने मेरी मदद की। बातको प्रस्तुत करनेकी उनकी शैली बिलकुल अनोखी है। साथ ही मैं जानता हूँ कि हमारे बीच मौलिक भेद थे; और यद्यपि वे भेद बने ही रहेंगे, लेकिन उन तमाम चीजोंकी तुलनामें वे कुछ महत्त्व नहीं रखते, जिनके लिए मैं सदैव उनका आभारी रहूँगा। मेरा देश-प्रेम काफी सुस्पष्ट है; भारतके प्रति मेरा प्रेम बराबर बढ़ता ही जा रहा है, लेकिन उस प्रेमका स्रोत मेरा धर्म ही है और इसलिए मेरे देशप्रेममें किसी भी तरहकी वर्जनकी भावना नहीं है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३५३) की फोटो-नकलसे।

१०९. पत्र : सरोजिनी नायडूको

साबरमती आश्रम
११ मार्च, १९२६

यह रहा दक्षिण आफ्रिकासे आया एक और तार। पता नहीं आपने या सोराबजीने हाजीके उस पहले तारका उत्तर दिया भी या नहीं, जिसका उल्लेख संलग्न तारमें है यदि कोई जवाब नहीं भेजा गया हो तो कृपया एक सन्तोषजनक उत्तर अब भेज दीजिए।

संलग्न तारका जो जवाब मैंने भेजा है, इस प्रकार है:

"एक हफ्ते पहले दिल्ली समितिको राय भेज दी।"

आपका,

सहपत्र : १

श्रीमती सरोजिनी नायडू
दिल्ली

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३५४) की फोटो-नकलसे।

११०. पत्र : टी० के० माधवनको

साबरमती आश्रम
११ मार्च, १९२६

प्रिय माधवन,

आपका पत्र मिला। शुचिन्द्रम्के समझौतेसे मुझे खुशी हुई। डॉ० नायडूने उसके बारेमें मुझे तार भेजा था और जवाबमें मैंने उन्हें लिख दिया कि जबतक समझौतेका पूरा पाठ मुझे नहीं मिल जाता, तबतक 'यंग इंडिया' में मै उसपर नहीं लिखूंगा। अब मालूम हुआ है कि वह सब गोपनीय है। इसलिए मै समझता हूँ कि मुझे इसके बारेमें कुछ नहीं कहना चाहिए।

दीवान महोदयके निर्णयके विरोघ स्वरूप आपका सदस्यतासे त्यागपत्र दे देनेका विचार मुझे कतई पसन्द नहीं है। अगर इसी तरह हर सदस्य, जो किसी निर्णयको अनुचित माने, त्यागपत्र देने लगे तो कोई भी सदस्य नहीं बच रहेगा। हमें अपने मामलेमें आप ही निर्णायक नहीं बन जाना चाहिए, जिस तरह कि आप बन रहे हैं। आप कैसे जानते हैं कि आपकी *व्याख्या* ठीक है और दीवानकी *गलत*? निश्चय ही मैं इस मामलेके गुण-दोषोंके बारेमें कुछ नहीं जानता, लेकिन मैं उस सिद्धान्तको जानता हूँ जिसपर विरोघ-स्वरूप इस्तीफा दिया जा सकता है। अनुचित निर्णयके विरोधमें सदनको स्थगित करनेका प्रस्ताव तो रखा जा सकता है, या कोई वक्तव्य दिया जा सकता है अथवा और बहुत-सी चीजें हैं जो की जा सकती हैं, लेकिन यह निश्चय ही त्यागपत्र देनेका कारण नहीं बन सकता। मै चाहता हूँ कि आपका हर कार्य सुविचारित और शालीन ढंगका हो। एक साधारण सदस्यकी अपेक्षा आपकी जिम्मेदारी बहुत ज्यादा है, क्योंकि आप दलित वर्गोंके एक प्रतिनिधि हैं और दुर्भाग्यसे स्थिति यह है कि आपकी मामूली-सी भूलको भी बढ़ा-चढ़ाकर देखा व बताया जायेगा, जब कि साधारण सदस्योंकी बहुतेरी बेवकूफियाँ भी माफ कर दी जायेंगी।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत टी० के० माधवन
सदस्य, त्रिवेन्द्रम विधान-सभा
त्रिवेन्द्रम

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३५५) की माइक्रोफिल्मसे।

१११. पत्र : सुरेश बाबूको

सांबरमती आश्रम
११ मार्च, १९२६

प्रिय सुरेश बाबू,

मैं आपको तार दे चुका था, उसके बाद आपका पत्र मिला। कदाचित् आपको यहाँ आनेका समय न मिल सके, इसलिए मैं आपके पत्रके जवाबमें कहना चाहता हूँ कि सन्तोष न होनेतक अनुबन्ध-पत्र भरनेमें देर करके आपने गलती की।

जिन कठिनाइयोंका आपने उल्लेख किया है, उनके सम्बन्धमें मैं अब भी आपको यही सलाह दूंगा कि पहले आप अनुबन्ध-पत्र भर दें और उसके बाद ही अपने उठाये गये मुद्दोंपर मन्त्रीसे विचार करनेको कहें। मैं ऐसा इसलिए कहता हूँ कि मेरी व्यक्तिगत इच्छाके आधारपर ही औपचारिक कार्रवाई पूरी किये बिना आपको पैसा भेज दिया गया था। वास्तवमें ऐसा करना उन नियमोंसे अलग हटना था, जिनपर अखिल भारतीय चरखा संघ-जैसी एक बड़ी संस्थाको सचमुच चलना चाहिए।

यदि आप यहाँ आ सकें तो आपने जिन बातोंका उल्लेख किया है, उनमें से अधिकांश सन्तोष जनक ढगसे तय की जा सकती हैं। मैं तो उम्मीद कर रहा था कि आप कविवरकी[1] आश्रम-यात्राके बारेमें विस्तारसे लिखेंगे।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३५६) की माइक्रोफिल्मसे।

११२. सन्देश : 'लिबरेटर'को

साबरमती आश्रम
११ मार्च, १९२६

'लिबरेटर'के उद्देश्य बहुत ऊँचे हैं। मेरे सामने जो विज्ञप्ति है, यदि उसमें गिनाये गये कार्योंमें से एकको भी करनेमें वह सफल हो जाता है तो स्वामी श्रद्धानन्दने अपनी इस नवीनतम रचना — इस पत्र — के लिए जो नाम चुना है, वह सर्वथा उपयुक्त सिद्ध होगा।

मेरे सामने जो विज्ञप्ति है, उसमें दलित वर्गोंके उद्धारपर जोर दिया गया है, और यह उचित भी है, लेकिन और भी ऐसे अनेक वर्ग हैं, जो हमारी विदेशी वस्त्र पहननेकी मूढ़तापूर्ण इच्छाके कारण दलित अवस्थामें पड़े हुए हैं। और वे भारतकी

१. रवीन्द्रनाथ ठाकुर।

जन-संख्याका पाँचवाँ भाग नहीं है, वरन् पाँचमें से चार भाग हैं, और यदि 'लिबरेटर' गाँवोंको शहरोंके प्रलोभनोंसे मुक्त करना चाहता है तो मैं कहूँगा कि चरखेके बिना यह काम असम्भव है।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३५७) की माइक्रोफिल्मसे।

११३. पत्र : चुनीलालको

आश्रम
११ मार्च, १९२६

भाई चुनीलालजी,

आपका पत्र मिला है। और आपकी योजना भी मैंने देख ली है। योजनामें मैं कुछ भी शक्ति नहि देखता हूँ। गोकशी केवल शहरोंमें हि होती है, और उसका रोकनेका तरीका एकहि हो सकता है — कसाइयोंके साथ पशु मोलनेमें मुकाबला करना। वह मुकाबला तभी हो सकता है, जब जितने पशु हम खरीद लें उसपर जो खर्च होगा वह हम निकाल सकें, और ख़र्च निकालना असम्भवित है, जबतक हम डेरी न निकालें और धार्मिक दृष्टिसे मृत गाइ-बेलके चमड़े इत्यादिका व्यापार न करें। जिस तरहसे गायके दूध पीनेसे हम गोमांस भक्षणसे बच जाते हैं, इस कारण दूधको पवित्र समझते हैं, ठीक उसी तरहसे गाय बेलको कत्लसे बचानेके कारण हमको मृत जानवरके चमड़े-हड्डी इत्यादिका उपयोग धार्मिक समजकर करना होगा। अब हम देख सकते हैं कि हमारे नजदीक दो बातें उपस्थित होती हैं; एक, डेरी और टेनरीका शास्त्र समजनेवालोंकी सहाय लेना; दूसरा, मृत पशुके चमड़े-हड्डी इत्यादिका व्यापारको अज्ञानवश होकर लोक दोषित समझते हैं उसी कार्यके ज्ञान द्वारा निर्दोष तो क्या परंतु पुण्यकार्य समझाना। यदि मेरा अभिप्राय सही है तो गौशाला और पिंजरापोलको भी हम इस तरहसे चलावें जिससे हमारी गोशालायें और पिंजरापोल डेरी और टेनरी बन जाय।

गोरक्षाका कार्य आजकल नीरस हो गया है उसका सबब तो यह है कि लाखों रुपयेका चंदा गोरक्षाके नामसे होते हुए भी संख्याकी दृष्टिसे अबतक हम एक भी गाय बचा नहि सके हैं। परंतु गोरक्षाशास्त्रके ज्ञानके अभावके कारण गाय सस्ती हो गई है, जिसे उसका ज्यादह बध होता है।

इस पत्रको अधिवेशनके समय आप पढ़ना चाहें तो पढ़ सकते हैं।

मूल प्रति (एस० एन० १२३९८) की फ़ोटो-नकलसे।

११४. सन्देश : 'हिन्दुस्तानी' को

[१२ मार्च, १९२६]

मुझसे जो कोई भी अपने अखबारके लिए सन्देश माँगता है, वह यदि चरखा और खादीका प्रेमी नहीं है तो बड़ी भारी भूल करता है, क्योंकि मैं इनके अलावा और किसी चीजके बारेमें सोच ही नहीं सकता, लिखना तो दूरकी बात है। अपने चारों तरफ मुझे दुःख और मतभेद, पराजय और तज्जनित निराशा ही दिखाई दे रही है। राहतकी एक ही चीज मुझे दिखाई देती है; वह है चरखा चलाना, और इसीलिए मैं इसकी सिफारिश करता हूँ। यह सोचकर कि इसके द्वारा मैं देशके छोटेसे-छोटे व्यक्तिसे अटूट सम्बन्ध स्थापित करता हूँ, मुझे शान्ति मिलती है, आनन्द मिलता है। चरखे द्वारा और अपने परिश्रम द्वारा मैं देशके लिए वांछित धनमें कुछ वृद्धि करता हूँ। इसके जरिये मैं नंगे लोगोंको वस्त्र देनेमें अपना हिस्सा, चाहे वह कितना ही छोटा हो, अदा करता हूँ और मैं देशके गरीबसे-गरीब व्यक्तिको भी अपनी जीविकाके लिए भीख माँगनेके बजाय परिश्रम करनेके लिए आमन्त्रित करता हूँ।

चरखा सभी विवादों और मतभेदोंसे परे है। यह समान रूपसे सभी भारतीयोंका है या होना चाहिए। इसलिए यदि 'हिन्दुस्तानी' का उद्देश्य देशका राजनीतिक उत्थान है और इसके पाठक इसके उद्देश्यकी कद्र करते हैं, तो सबसे अच्छा काम वे यही कर सकते हैं कि प्रतिदिन कमसे-कम आधा घंटा चरखा चलानेमें लगायें और विदेशी अथवा मिलके बने कपड़ेका बहिष्कार करें और केवल हाथकती, हाथ-बुनी खादी ही पहनें तथा इस प्रकार खादीका जो भी दाम दें, उसे देशके गरीबसे-गरीब व्यक्तिमें वितरित करें।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३५८) की माइक्रोफिल्मसे।

११५. पत्र : शार्दूलसिंह कवीसरको

साबरमती आश्रम
१२ मार्च, १९२६

प्रिय मित्र,

आपके दो पत्र मिले। सामान्य पत्रके उत्तरमें तो साथमें 'हिन्दुस्तानी' के लिए अपना लेख या सन्देश, आप जो भी कहें, भेज रहा हूँ।

आपका दूसरा पत्र पढ़कर मन बहुत खिन्न हो जाता है। सिवाय इसके कि इस क्रोधके तूफानको खुलकर खेलने और खतम होने दिया जाये, और किया ही क्या जा सकता है? और हम लोग, जो इन झगड़ों और इस स्वार्थ-लिप्साकी बुराईको समझते हैं, अगर इस आघातको झेल लें तो अन्तमें सब ठीक ही होगा।

आपके तीसरे पत्रकी प्रति बहुत दिलचस्प है। आपका जेलका अनुभव बड़ा उपयोगी है। जेलसे निकलनेपर आपने वहाँकी तमाम चीजोंको एक विशेष दृष्टिसे देखते हुए जो प्रतिक्रियाएँ व्यक्त की है, वे लोगोंको सहज ही गम्भीर विचारके लिए प्रेरित करती है। मैं आपके इस विचारसे सहमत हूँ कि असहयोग असफल नहीं हुआ है और न उसकी इति ही हो गई है। मैं आपकी इस बातसे भी सहमत हूँ कि स्वराज्य, कई लोग उसको जितना निकट आया मानते होंगे, उससे कहीं अधिक निकट आ गया है। सब-कुछ शिक्षित वर्गोंके मत-परिवर्तनपर निर्भर करता है। अगर हममें से कुछ लोग सत्यपर डटे रहेंगे, और मैं जानता हूँ कि अवश्य डटे रहेंगे तो वे लोग एक-न-एक दिन इसके कायल होंगे ही। मुझ-जैसे कट्टर असहयोगीका स्वराज्यवादियोंके प्रति जो रवैया है, उसे समझानेके लिए बहुत विस्तारसे कहनेकी आवश्यकता है। इसलिए यहाँ मैं उसके सम्बन्धमें कुछ नहीं कहूँगा। लेकिन एक वाक्यमें मैं यह कह सकता हूँ कि मेरा रवैया इस आशापर आधारित है कि किसी भी अग्रगामी नीतिके सम्बन्धमें उनसे अधिकसे-अधिक कर सकनेकी अपेक्षा रखनी चाहिए।

यह बिलकुल सही है कि पंजाबके किसानों-जैसे लोगोंके बीच चरखेको सहायक धन्धेकी तरह दाखिल नहीं किया जा सकता है, क्योंकि वे लगभग सारे समय कताईसे अधिक लाभदायक धन्धोंमें व्यस्त रहते हैं। लेकिन, मध्यमवर्गके लोगोंके पास तो काफी फालतू समय रहता है। सो अगर उनके दिलमें समूचे देशके लिए कोई दर्द है तो उन्हें करोड़ों दीन-दुःखी जनोंकी बात सोचनी चाहिए और उनके लिए वे अगर और कुछ नहीं कर सकते तो कमसे-कम इतना तो करें कि खादी पहनें और लोगोंके सामने एक उदाहरण पेश करनेके लिए तथा उन्हें प्रोत्साहन देनेके लिए प्रतिदिन आधा घंटा सूत कातें। और इसका जबरदस्त राजनीतिक महत्त्व आपकी सूक्ष्म और तीक्ष्ण बुद्धिसे छिपा तो नहीं ही होगा। इसका वह राजनीतिक महत्त्व इस बातमें निहित है कि जो करोड़ों लोग आज पशुसे भी बदतर जिन्दगी जी रहे हैं, उनके पास तब एक सम्मानजनक धन्धा और जीविकोपार्जनका एक साधन होगा। आज तो उन्हें कोई काम करनेको प्रेरित ही नहीं किया जा सकता है। और वे ऐसे निरीह बन गये हैं कि किसी भी अत्याचारीके अत्याचारको चुपचाप बरदाश्त कर लेते हैं। और अगर मैं लॉर्ड रीडिंगको खादी पहननेको आमन्त्रित करता हूँ तो इससे इसका राजनीतिक महत्त्व कैसे खत्म हो जाता है? अगर मैं लॉर्ड रीडिंगको असहयोग और सविनय अवज्ञा या दोनोंमें किसी एकको या दोनोंको अपनानेके लिए आमन्त्रित करूँ तो क्या असहयोग या सविनय अवज्ञाका महत्त्व समाप्त हो जायेगा?

और अन्तमें, मैं मानता हूँ कि जबतक जनसाधारणपर हमारा इतना नियन्त्रण और प्रभाव न हो जाये कि उसकी ओरसे किसी हिंसात्मक प्रदर्शन द्वारा देशकी शान्ति भंग करनेका कोई खतरा हमें न रहे तबतक सामूहिक सविनय अवज्ञा असम्भव है। अतीतमें मैंने जब-कभी हिंसा भड़कनेपर सविनय प्रतिरोध बन्द करवाया, आप देखेंगे कि ऐसे हर मौकेपर उस हिंसामें कांग्रेसियोंका हाथ था और इसलिए उसका राजनीतिक महत्त्व था। यदि मुझे यह पक्का विश्वास हो जाये कि जो भी हिंसात्मक घटनाएँ

किसी समय होती रहती हैं, उनका राजनीतिक उथल-पुथलसे कोई वास्ता नहीं है और कांग्रेसियोंका उनमें परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष रूपसे कोई हाथ नहीं है तो देशमें भले ही ऐसे हजारों विस्फोट हों, मैं आगे बढ़नेमें नहीं हिचकिचाऊंगा।

जहाँतक मेरे स्वास्थ्यका सवाल है, निश्चय ही मैं कमजोर हूँ, लेकिन आपने यह आशा व्यक्त करके कि मैं शायद अपने किसी भी प्रशंसककी अपेक्षा अपने जीवनका मूल्य अधिक अच्छी तरह जानता हूँ, मुझे पूरा श्रेय दिया है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं अपना स्वास्थ्य बनाये रखनेकी भरसक कोशिश करूँगा, लेकिन अधिकसे-अधिक सावधान व्यक्तिपर भी वृद्धावस्थाका असर तो होगा ही। मैं समझता हूँ कि कुल मिलाकर मेरा स्वास्थ्य बहुत अच्छा चल रहा है।

हृदयसे आपका,

सरदार शार्दूलसिंह कवीसर
लॉज लिबर्टी
रामगली, लाहौर

अंग्रेजी पत्र (एस०. एन० १९३५८) की माइक्रोफिल्मसे।

११६. पत्र : एक ग्राहकको

साबरमती आश्रम
१२ मार्च, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका यह सुझाव बिलकुल नया है कि आप 'यंग इंडिया' के चन्देके रूपमें हाथ-कता सूत भेजें। इस सम्बन्धमें कोई नियम नहीं है और 'यंग इंडिया' कार्यालयमें चन्देके एवजमें सूत स्वीकार करनेकी कोई व्यवस्था भी नहीं है। लेकिन अगर आप २० नम्बरका ५०,००० गज एक-सार कता और अच्छा बँटा सूत मेरे निजी पतेपर भेज दें तो मैं चन्देके बदले उसको स्वीकार करवानेका प्रबन्ध करूँगा। अर्थात्, सूतको आश्रम ले लेगा और बदलेमें 'यंग इंडिया' कार्यालयको पैसा दे दिया जायेगा। चन्देके रूपमें जो ५०,००० गज सूतका अनुमान लगाया गया है, वह कम नहीं, ज्यादा ही है; लेकिन यह सम्भव भी नही है कि सूतका ठीक-ठीक अनुमान लगाकर स्वीकार किया जाये। सूत स्वीकार करनेसे पहले मुझे उसकी जाँच करवानी होगी। यदि आप यह सूत भेजना तय करें, तो कृपया उसे पाँच-पाँच सौ गजकी गुंडियाँ बनाकर भेजें, क्योंकि यदि गिनने या जाँचनेमें कोई कठिनाई हुई तो सूतको चन्देके बदलेमें स्वीकार नही किया जायेगा और अगर आप चाहेंगे तो डाकखर्च दे देनेपर उसे आपके पास लौटा देना पड़ेगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३५९) की माइक्रोफिल्मसे।

११७. अपील: भारतीय कला और शिल्पके लिए

साबरमती
१२ मार्च, १९२६

गुजरात विद्यापीठके अधीन एक ऐसा स्कूल भी है, जहाँ भारतीय कलाओंकी शिक्षा दी जाती है। अबतक यह स्कूल छोटे पैमानेपर ही चलाया जाता रहा है। लेकिन, अब इसका विस्तार करनेका इरादा है। इस प्रयोजनसे इसमें एक चित्र-दीर्घा (पिक्चर गैलरी) तथा भारतीय कलाओं और शिल्पोंका एक संग्रहालय जोड़नेका विचार किया गया है। इस कार्यकी व्यवस्थाका भार प्रोफेसर मलकानीके[1] सिर है। भारतीय कलाओं और शिल्पोंसे प्रेम रखनेवाले लोग इस काममें जो भी सहायता देंगे, उसके लिए विद्यापीठ उनका आभारी होगा।

मो० क० गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३६०) की माइक्रोफिल्मसे।

११८. पत्र: दीपक चौधरीको

साबरमती आश्रम
१२ मार्च, १९२६

चि० दीपक,

तुमारा खत मीला है मेरा स्वास्थ्य अब तो अच्छा है तुमारे अक्षर अब तो बहोत अच्छे हैं और भाषा भी अछी है। आजकल आश्रममें बहोत भीड रहती है।

तुमारा दील लश्करी तालीम लेना चाहता है तो मैं कैसे रोक सकता हुं। माताजीकी आज्ञाके अनुसार चलना। मेरी राय इस बारेमें उनकी रायसे भिन्न है। इस लीये मैं तुमारी बुद्धिका भ्रंश करना नहीं चाहता हूं। मैं तो तुमारा कल्याण इच्छकर शांत [होता हूँ।]

तुम दोनोंका स्वास्थ्य ठीक होगा।

बापुका आशीर्वाद

३ सनी पार्क
बालीगंज, कलकत्ता[2]

मूलपत्र (एस० एन० १९८५९) की माइक्रोफिल्मसे।

१. एन० आर० मल्कानी, जो बादमें राज्यसभाके सदस्य हुए।

२. साधन-सूत्रमें पता अंग्रेजीमें है।

११९. पत्र : लल्लूभाई ब० पटेलको

आश्रम
शुक्रवार, १२ मार्च, १९२६

भाई लल्लूभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। किसी भी लड़कीके किसी भी अंगको छिदवाना मुझे तो जंगलीपन लगता है।

मोहनदासके वन्देमातरम्

श्री लल्लूभाई बकोरभाई पटेल
नापाड़
आनन्द तालुका

गुजराती पत्र (एस० एन० १९८५८) की माइक्रोफिल्मसे।

१२०. पत्र : कस्तूरचन्द सूं० मारफतियाको

साबरमती आश्रम
शुक्रवार, १२[1] मार्च, १९२६

भाई श्री कस्तूरचन्द,

आपका पत्र मिला। मैं श्रीयुत . . .[2] श्रीमती . . .के[3] विवाहको समझ नहीं सका हूँ। मैं स्वयं तो सामान्यतया विधवा-विवाहको पसन्द ही नहीं करता हूँ। किस स्थितिमें विधवा-विवाह इष्ट है, यह मैंने 'नवजीवन' में प्रसंगानुसार बताया है।[4] मैं उससे आगे नहीं जा सकता। इसके अतिरिक्त मैं सामान्य रूपसे वर्णाश्रम-धर्मको मानता हूँ। मुझे यह विवाह उस दृष्टिसे भी ठीक नहीं लगता। लेकिन मैं उसकी सार्वजनिक रूपसे चर्चा करनेके लिए किसी तरह भी तैयार नहीं हूँ। उससे समाजकी कोई सेवा हो सकती है, ऐसा मुझे प्रतीत नहीं होता। और जबतक मैं दम्पतीका पक्ष नहीं जानता तबतक मैं टीका करनेका अधिकारी हूँ, ऐसा भी मुझे नहीं लगता। इसीसे मैंने आपको सामान्यतः मेरा क्या विचार है, यही बताया है। परन्तु वह भी सार्वजनिक रूपसे व्यक्त करनेके अभिप्रायसे नहीं। ज्यादा सोच-विचार किये बिना और

१. मूलमें तारीख १३ है; लेकिन उस दिन शुक्रवार नहीं था।
२, ३. नाम छोड़ दिये गये हैं।
४. देखिए "विधवा-विवाह", २१-२-१९२६।

पूरी बात जाने बिना प्रथम दृष्टिमें इस विवाहके सम्बन्धमें मुझे जो तत्त्व 'अनुचित जान' पड़े हैं, मैंने आपको वे ही बताये हैं।

श्री कस्तूरचन्द सूरचन्द मारफतिया
साबरकांठा छात्रावास
मम्मादेवी, बम्बई

गुजराती प्रति (एस० एन० १९८६०) की माइक्रोफिल्मसे।

१२१. पत्र : आनन्दप्रियको

साबरमती
१३ मार्च, १९२६

भाई आनन्दप्रियजी,

आपका पत्र मिला। मैं हैन्डबिल पढ़ गया। बहुत ही गंदा है। उसमें कोई शक नहीं है। परन्तु मेरी सलाह है कि इसपर भी कुछ खयाल न कीया जाय। ऐसी बातोंका उत्तर देनेसे उनको थोडासा भी महत्व मिलता है। और कई लोग केवल जाहेरमें आनेके लिये ऐसी बातें लिखते है। प्रसंगवशात में कुछ बात साफ करना होगा तो कर लूंगा।

कारेली बाग
बड़ोदरा

मूल प्रति (एस० एन० १९८६१) की माइक्रोफिल्मसे।

१२२. पत्र : शुकदेव प्रसादसिंहको

साबरमती
१३ मार्च, १९२६

भाई शुकदेव प्रसादसिंह,

आपका पत्र मिला। प्रतिज्ञा हमेशा कोई सत्कार्यके लिये ही हो सकती है। कुकर्म करनेकी प्रतिज्ञा हो नहीं सकती है। अगर कोई अज्ञानवश होकर लेवे तो उस प्रतिज्ञा [को] तोड़ना उसका धर्म हो जाता है। जैसे कि कोई मनुष्य व्यभिचार करनेकी प्रतिज्ञा लेवे वह शुद्धि पानेसे ऐसे कुकर्मसे अवश्य हट जाये। न हटनेसे पातकी बनेगा।

आपका,
मोहनदास गांधी

मूल पत्र (एस० एन० १९८६२) की माइक्रोफिल्मसे।

१२३. अविश्वास या उचित सावधानी?

एक चरखा-प्रेमी दुःखी होकर निम्न विचार प्रकट करते हैं:[1]

लेकिन मुझे लगता है, चरखा संघके सुझावमें दुःखका कोई कारण नहीं है। कितने सदस्योंने सूत वापस माँगा है, यह प्रश्न अप्रस्तुत है। किसीने माँगा है अथवा नहीं, यह प्रश्न उठ सकता है। इसका उत्तर 'नवजीवन' की टिप्पणीमें ही मिल जाता है। जबतक सूत वापस भेजा ही न गया हो तबतक उसी सूतको वापस कौन भेज सकता है? लेकिन यदि अविश्वासके कारणोंकी खोज करनी हो तो वे हमें पर्याप्त मात्रामें मिल जायेंगे। कांग्रेसका सदस्य बननेकी खातिर अनेक लोगोंने उसी सूतको बार-बार भेजा था। इतना ही नहीं, बल्कि कांग्रेस समितियोंने स्वयं ही खुले रूपसे इसी सूतका बार-बार उपयोग किया था। लेकिन यदि अमुक सावधानियाँ बरती जाती हैं, तो ऐसा नहीं कहा जा सकता कि उसका कारण अविश्वास है, और वैसा अनुमान तो कदापि नहीं निकालना चाहिए। माता-पिता बच्चोंपर अमुक प्रतिबन्ध लगाते हैं, सो अविश्वासके कारण नहीं, बल्कि इस ज्ञानके कारण कि मनुष्य-जातिके स्वभावमें सावधानीके अभावमें मन्दता आ जाती है। इसी नियमके अनुसार संस्थाएँ सदस्योंके बचावके लिए प्रतिबन्ध लगाती है और इसी नियमके अनुसार मनुष्य स्वयं भी प्रलोभनोंसे अपना बचाव करनेके लिए उन प्रतिबन्धोंकी रचना करता है, जिन्हें हम व्रत कहते हैं। दुःखकी बात तो यह है कि संघमें सम्मिलित होनेका लोभ लोगोंमें नही है। लोभ नहीं है, यानी, उनके मनमें यह भाव छुपा हुआ है कि संघमें सम्मिलित होनेसे क्या लाभ। यदि ऐसा न होता तो चरखा संघ द्वारा आयोजित इस निःस्वार्थ यज्ञमें लाखों स्त्री-पुरुष सूतकी आहुति क्यों न देते? लेकिन यदि अभीतक जनताको ऐसा लोभ नही लगा है तो क्या संचालकोंको भी उदासीन रहना चाहिए? क्या संचालकोंको भी संघका महत्त्व कम कर देना चाहिए? जहाँ व्यक्तिगत अर्थ-लाभ नही है, वहाँ कोई लोभ ही नहीं है, इस भ्रम-जालमें से हमें निकल जाना चाहिए। यदि चरखा-संघके सदस्य उसका मूल्य ऊँचा आँकेंगे तो अन्तमें जगत उसे स्वीकार करेगा, क्योंकि उसका उद्देश्य धार्मिक है। माताको अपना बच्चा सब बच्चोंकी अपेक्षा अधिक सुन्दर लगता है। अपनी संस्थाके प्रति संचालकों और समझदार सदस्योंका वैसा ही भाव होना चाहिए, फिर भले ही जगत संचालकोंकी और सदस्योंकी और इसलिए उनकी संस्थाकी कीमत दो दमड़ी आँके। जिसने रामनामका उच्चारण सबसे पहले किया होगा, यदि वह वैसा करते हुए लज्जित हुआ होता अथवा उसने उसकी कीमत

१. यहाँ पत्रका अनुवाद नहीं दिया गया है। पत्र-लेखकने नवजीवनके ७-३-१९२६ के अंकमें प्रकाशित एक टिप्पणी (देखिए "टिप्पणियाँ", ४-३-१९२६ के अन्तर्गत उपशीर्षक 'स्वयं कातनेवालोंके लिए') पर खेद प्रकट किया था और पूछा था कि अधिकारियोंके मनमें अविश्वासका क्या कारण है, जिससे उन्होंने सूतको खीच करनेका निश्चय किया है।

मात्र स्वर्गमें पहुँचने-जितनी आँकी होती तो राम भी आज तैंतीस करोड़ देवी-देवताओं-की पंक्तिमें आ जाते। लेकिन उस राम-भक्तने राम-नामकी कीमत मोक्ष-पदके साथ जोड़ दी; फलतः इस नामको लेकर अनेक मोक्ष प्राप्त कर सके। भगवान तो भक्ता-धीन हैं, दासानुदास हैं। भक्त भगवानका जो मूल्यांकन करते हैं, भगवान उसकी रक्षा करते हैं। जो बात भक्त और भगवानकी है, वही बात संचालकों और संस्थाकी है। अतएव मुझे उम्मीद है कि उपरोक्त चरखा-प्रेमी अपने दुःखको सुखके रूपमें ग्रहण करेगा, चरखा संघको तुच्छ वस्तु नहीं मानेगा और स्वयं समझकर लोगोंको समझायेगा कि चरखा संघको पहुँचा हुआ सूत वापस प्राप्त करनेके लिए उचित प्रयत्न करनेकी आवश्यकता है। ऐसा करनेसे उसके अपने सूतकी कीमत बढ़ती ही है न? इसलिए जिनके पास धन है, जिनकी अपने ही हाथसे कते सूतके कपड़े पहननेकी शुभेच्छा है, उन्हें तकनीकी विभागके मन्त्री द्वारा लगाये गये प्रतिबन्धका स्वागत करना चाहिए। मैं तो यह सलाह देना चाहूँगा कि सदस्योंको इसी बातमें सुख मानना चाहिए कि चरखा संघको भेजा हुआ उनके सूतका उपयोग सारे भारतके लिए किया जाये। ज्यादा अच्छा यही है कि वे इस सूतको यज्ञमें दी गई अपनी आहुति मानें और उसे वापस लेनेकी इच्छा न रखें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १४-३-१९२६

१२४. कुरीतियोंके साम्राज्यमें क्या करें?

एक सज्जन लिखते हैं:[1]

हमने जो नियम अंग्रेज सरकारकी शासन-पद्धतिके बारेमें अपनाया है वही यहाँ भी लागू होता है। यदि लोग सहयोग देकर उक्त शासन-पद्धतिको न टिकाये रखें तो वह आज ही टूट गिरे। इसी प्रकार कुरीतियोंके साम्राज्यको नष्ट-भ्रष्ट करनेका इच्छुक भी यदि उनसे असहयोग करे तो वह साम्राज्य भी मिट जाये। पर यहाँ सहज ही यह प्रश्न उठता है कि केवल एक व्यक्ति द्वारा ऐसे असहयोगसे क्या होने-जानेवाला है? इसका उत्तर यह है कि जिस व्यक्तिने असहयोग किया वह तो जीत गया, दोषमुक्त हो गया। और उसके सहयोगके अभावमें कुरीतियोंके उस साम्राज्यकी उतने परिमाणमें तो हानि हुई ही मानी जायेगी। मकानकी केवल एक ईंट खिसक जाये तो मकान तुरन्त गिर नहीं पड़ता; किन्तु यह तो सभी समझ जाते हैं कि जिस दिन उसकी एक ईंट खिसकी उसी दिनसे मकान कमजोर होने लगता है। और पहली ईंट निकालनेमें जितनी दिक्कत पेश आती है उतनी परेशानी

१. पत्रका अनुवाद यहाँ नहीं दिया गया है। पत्र-लेखक जानना चाहता था कि बाल-विवाह, विदेशी वस्त्रोंका उपयोग तथा दिखावेके लिए किया जानेवाला अंधाधुंध खर्च आदि सामाजिक कुरीतियोंसे कैसे बचा जा सकता है।

अन्य ईंटोंको निकालने अथवा खिसकानेमें नहीं होती। इस जगतमें सुधारके हर कामका सही आरम्भ तो एक मनुष्य द्वारा होता है। फिर आज तो बाल-विवाह आदि कुरीतियोंके विरुद्ध बहुत अच्छा वातावरण भी तैयार हो गया है। जो लोग इन्हें कुरीतियाँ मानते हैं उनके द्वारा इनके खिलाफ अमल करने-भरकी देर है। यदि हम आज इस विषयपर लोगोंकी राय लें तो बहुमत यही पाया जायेगा कि बाल-विवाह बुरा है, विवाहमें अंधाधुंध खर्च करना बुरा है तथा विदेशी वस्त्रोंसे सजना-सँवरना त्याज्य है, बुरा है। इसी प्रकार अन्य कुरीतियोंके विरुद्ध भी बहुमत मिल सकता है। इसके बावजूद अभीतक ये कुरीतियाँ मिटी नहीं हैं, क्योंकि कुरीतियोंका विरोध करनेवाले असलमें निर्बल हैं। वे कथनीमें शूर हैं किन्तु करनीमें कायर हैं। यह कायरता तो तभी दूर होगी जब कुछ व्यक्ति बेहद कष्ट उठाकर भी ऐसे अवसरोंपर कदापि उपस्थित न हों।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १४-३-१९२६

१२५. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

साबरमती आश्रम
१४ मार्च, १९२६

प्रिय सी० आर०

मैंने शंकरलालको भेजा आपका तार तथा महादेवको भेजा हुआ पत्र देखा है। दुःखकी बात है कि सन्तानमूने आपका साथ छोड़ दिया है। आपने मुझे जो पत्र भेजा था, उससे प्रकट होता था कि उसका सोचनेका तरीका गलत था। क्या उसे यह नहीं समझाया जा सकता कि उसका ऐसा सोचना बिलकुल गलत है कि चूँकि वह सारे काम एक साथ नहीं कर सकता, इसलिए उसे कोई काम करना ही नहीं चाहिए?

पता नहीं, आपको पटना जानेकी झंझटसे छुटकारा मिला या नहीं। आशा करता हूँ कि मिल गया होगा, लेकिन यदि नहीं मिला हो तो उम्मीद करता हूँ कि आप जाते समय साबरमती होकर जानेका अवकाश निकाल लेंगे। कृपलानी कल पटना जा रहे हैं और मैंने उन्हें यह काम सौंपा है कि यदि आप पटना जायें तो वे आपको यहाँ ले आयें।

लेकिन जो भी हो, यदि आप नहीं आ सकते तो मुझे अपनी कठिनाइयाँ विस्तारसे बताइए और यह भी सूचित कीजिए कि क्या मैं किसी भी तरहसे कुछ मदद कर सकता हूँ। मुझे यह भी बताइए कि इस साल क्या आप कुछ समय

दौरोंके लिए दे सकते हैं, और यदि दे सकते हैं, तो कितना और कब। आपकी क्या इच्छा है — मैं सन्तानम्‌को खुद ही पत्र लिखूँ?

आपका,

श्रीयुत च० राजगोपालाचारी
गांधी आश्रम
तिरुचेनगोडु

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३६१) की फोटो-नकलसे।

१२६. पत्र : राजबहादुरको

आश्रम
१४ मार्च, १९२६

भाईश्री,

आपका खत मीला। आपका खादीप्रेम देखकर मुझको हर्ष होता है। तकली चलानेमें कुछ खर्च नहीं होता। मेरा विश्वास है कि पटियालेमें भी . . .[1] लोग तो चलाते हैं। जिसको चरखेपर कातनेकी आदत है वे थोड़े कष्टसे अपने आप तकलीपर सूत कात लेते हैं। पैसेकी रसीद आपको मिल गई होगी। क्योंकि आजकल उत्कलमें और पैसे भेजनेकी आवश्यकता नहीं है इसलिये आपका दान खद्दर-प्रचारमें रक्खा गया। खद्दरका हेतु भी ऐसे ही दुःखित लोगोंकी सहायके लीये है।

आपका,
मोहनदास गांधी

श्रीयुत राजबहादुर
रिटायर्ड डी० पी० आई०
पटियाला
(पंजाब)[2]

मूल पत्र (एस० एन० १९८६३) की माइक्रोफिल्मसे।

१. साधन-सूत्रमें यहाँ कटा-फटा है।
२. साधन-सूत्रमें पता अंग्रेजीमें है।

१२७. पत्र : ब्रजकृष्ण चाँदीवालाको

रविवार, १४ [मार्च, १९२६][1]

भाई ब्रजकृष्ण,

तुम्हारा खत मिला। तुम्हारा दुःख मैं समज सकता हूँ। कई दर्द ऐसे रहते हैं जिसकी औषधि समय ही बता देता है। और हमारे दरमियान शांतिका ही सेवन करना चाहिए। यदि तुम्हारा निश्चय अचल है, जबतक कुछ भी कार्यक्षेत्र नही चुन लिया है और स्वतंत्र आजीविकाका प्रबंध नहीं हुआ है तबतक शादी होनेवाली नहीं है तो विनयसे और साथसाथ दृढ़तासे अपना निश्चय बतानेसे माताजी और बडिल भाई दोनों राजी हो जाएगे। यदि तुम्हारा चित इतना स्थिर न हो और भीतरमें शादीकी भी कुछ इच्छा भरी हो तब बडिलोंका सुन लेना वही अच्छा है। धनिक कुटुंबमें विधुरको पुनर्विवाहसे बचते रहना बड़ा कठिन काम है इसमें शक नहीं। वही आदमी बच सकता है जिसको पुनर्विवाह करना बड़ा दुःखका कारण होगा। इसलिये मेरी तो येह सलाह है कि एकान्तमें बैठकर शांतचित्तसे विचारना और उसके बाद हृदय जो कुछ भी कहे इससे अनुकूल चलना। मैं केवल मार्ग ही बता सकता हूं। परन्तु आखरमें निश्चय तो तुम्हारा ही हो सकता है। और निश्चय करनेके समय मेरी क्या और दूसरोंकी क्या सब रायोंको भूल जाना और दिल जो कहे वही निर्भय होकर करना — लड़कीको ईश्वर शीघ्रतासे आरोग्यवती करे और तुमको ईश्वर शांति दे।

बापुके आशीर्वाद

मूल पत्र: (जी० एन० २३५० तथा एस० एन० १९८६६ एम) की फोटो-नकलसे।

१२८. पत्र : मंगलभाई शा० पंचालको

१४ मार्च, १९२६

भाई मंगलभाई,

आपका प्रत्र मिला। उत्तर देनेमें देर हुई, आशा है आप उसके लिए क्षमा करेंगे। आपकी खातिर साढ़े छः बजे 'भक्तराजकी यात्रा'[2] पढ़ना मुझे अच्छा तो लगेगा, परन्तु सब स्त्री-पुरुषों तथा विद्यार्थियोंके लिए यह समय अनुकूल न होगा; इसलिए मैं लाचार हूँ। फिर, समस्त धार्मिक वाचनका सार तो यही है कि हम अपने-अपने कर्त्तव्योंके पालनमें दृढ़ हों। जो इतना समझते ह यदि वे ऐसी कथा न सुनें

१. इसी पत्र (एस० एन० १९८६६) की माइक्रोफिल्मसे।
२. अंग्रेजीकी प्रसिद्ध धार्मिक पुस्तक, पिलग्रिम्स प्रोग्रेस।

तो भी कोई हर्ज नहीं। आप आसानीसे आ सकें तो ठीक ही है। लेकिन आप अपने कामका हर्ज करके आयें, यह अभीष्ट नहीं।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

श्री मं० शाणाभाई पंचाल
मठचारी पोल,
लुणसावाडो
अहमदावाद

गुजराती पत्र (एस० एन० १९८६५) की माइक्रोफिल्मसे

१२९. पत्र : अयोध्याप्रसादको

आश्रम
१४ मार्च, १९२६

भाई अयोध्याप्रसादजी,

आपका पत्र मिला। अनाजका दाम सस्ता होनेसे या महंगा होनेसे किसानोंको लाभ होता है इस प्रश्नकी झंझटमें मैं इस समय पड़ना नहीं चाहता। परंतु चरखाको इस प्रश्नके साथ थोड़ा संबंध है। चरखाकी प्रगतिसे हिंदुस्तानका सबसे बड़ा उद्योगका पुनरुद्धार होता है, और वह भी गरीब किसानोंके ही मारफतसे। इसलिये किसानोंको हर हालतमें चरखा प्रवृत्तिसे लाभ ही होता है। यदि यह बात सही है कि किसान लोग कमसे कम चार महीनेतक कुछ भी काम नहीं करते हैं तो जिस प्रवृत्तिसे उन लोगोंको इतना उद्यम मिले वह प्रवृत्ति उनके . . .[1] वृद्धि करती है। इस दृष्टिसे चरखा प्रवृत्तिको देखनेसे हमें मालूम होता है कि खद्दर केवल . . .[2] का ही प्रश्न नहीं, परंतु किसानोंके घरमें . . .[3] नया उद्यमका प्रवेश करानेका प्रश्न है।

आपका,

मध्य भारत सेवा संघ,
झांसी (यू० पी०),

मूल प्रति (एस० एन० १९८६४) की माइक्रोफिल्मसे।

१ से ३. मूलमें यहाँ कटा-फटा है।

१३०. पत्र : ए० ए० पॉलको[1]

साबरमती आश्रम
१५ मार्च, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मेरे लिए आठ महीने भारतसे बाहर रहना तो बहुत होगा। फिर भी, मैं कार्यक्रमकी तफसीलोंकी और वहाँ मुझसे किस तरहका काम करनेकी अपेक्षा की जायेगी, इसकी जानकारी प्राप्त करना चाहूँगा। मैं यह भी जानना चाहूँगा कि *राष्ट्रीय आन्दोलनमें चीनी ईसाइयोंका क्या स्थान है और मुझे सिर्फ क्या ईसाई* श्रोताओंके सामने ही बोलना पड़ेगा। मैं जल्दीमें कोई निर्णय नहीं लूँगा और अगर वहाँ जाऊँगा भी तो मात्र इसी सम्भावनाके कारण कि चीनको अपने स्वातंत्र्य-संघर्षके लिए अहिंसाका सन्देश स्वीकार करनेको प्रेरित करके उसकी सेवा कर सकूँ। इस विषयमें साफ-साफ सोच-विचार करके निर्णय लेनेके लिए मुझे यह जरूरी लगता है कि कुछ प्रमुख चीनी यहाँ आकर मेरे साथ सारी चीजोंपर बातचीत करें और फिर खुद ही तय करें कि उनके और मेरे विचारोंमें सचमुच साम्य है अथवा नहीं। महज एक प्रदर्शनकी चीज बननेके लिए वहाँ जानेका मेरा कोई इरादा नहीं है।

हृदयसे आपका,

श्री ए० ए० पॉल
मद्रास

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११३६५) की फोटो-नकलसे।

१३१. पत्र : जमनालाल बजाजको

साबरमती आश्रम
सोमवार [१५ मार्च, १९२६][2]

चि० जमनालाल,

मसूरीके विषयमें आज मुझे बहुत उद्वेग रहा। वहाँ या और कहीं जानेका मन ही नहीं होता। मुझे स्वास्थ्य-सुधारके लिए वायु-परिवर्तनकी जरूरत नहीं है। जितने आरामकी जरूरत है, उतना मुझे यहाँ ठीक तरह मिल जाता है और यहाँ जो

१. यह पॉलके ९ मार्च, १९२६ के पत्र (एस० एन० ११३६४) के उत्तरमें लिखा गया था।

२. साधन-सूत्रमें, संभवतः ऊपर जमनालाल बजाज द्वारा यह टीप दी गई है, "तारसे उत्तर दिया, १९-३-१९२६, दिल्ली।"

थोड़ा काम-काज देख सकता हूँ, वह मेरे लिए दवाका काम करेगा। आश्रम न छोड़नेके बहुत-से कारण हैं। आश्रम छोड़नेसे हानि हो सकती है। इसलिए यदि तुम मुझे विचारपूर्वक बंधन-मुक्त करो तो मैं मुक्त होना चाहता हूँ। यदि तुम यह मानते हो कि मुझे मसूरी जाना ही चाहिए तो मैं अवश्य जाऊँगा। पर आज जो मानसिक उद्वेग हुआ है, उसकी बात तुमको लिखनी उचित समझकर लिखी है। मैं शंकरलालसे भी बातचीत करूँगा।

सतीश बाबू कल आये हैं। डॉ० सुरेश शनिवारको आयेंगे।

मणिबहन तुम्हारे साथ रहना नहीं चाहती। उसे अपनी गुजराती अच्छी करनी है। फिर भी मदालसाको[1] जानकीबहनके[2] पास ही रहना चाहिए। बहुत समयतक आश्रममें रहेगी तो यों ही बहुत-कुछ सीख लेगी।

कन्या गुरुकुलको बारीकीसे देखना और मुझे लिखना। यह भी लिखना कि उसमें कितनी कन्याएँ हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (जी० एन० २८५९) की फोटो-नकलसे।

१३२. पत्र : नाजुकलाल नन्दलाल चौकसीको

सोमवार, १५ मार्च, १९२६

भाई नाजुकलाल,

मैंने तुम्हारे पत्रका जवाब फुर्सतके समय देनेकी बात सोची थी। आज मौन है, इसलिए इतना समय निकाल रहा हूँ। तुम्हारे पत्रके एक वाक्यका गूढ़ अर्थ मैंने समझ लिया है। "मेरी मर्जी", ऐसा जवाब नहीं दिया जा सकता, यह मैं समझता हूँ। मैंने तो तुम्हारी कल्पना मोतीके शिक्षकके रूपमें की है और यदि तुम संयमका पालन कर सकोगे तो उसके शिक्षक अवश्य बन सकोगे। हमने स्त्री-जातिको बहुत दबाया है। अब यदि स्त्रियाँ स्वतन्त्रताकी शिक्षा प्राप्त करनेपर अति करती हैं तो हमें इनसे डरनेकी जरूरत नहीं है। तुम तो इससे समझ ही जाओगे, लेकिन मोतीको समझाना। मेरी मदद चाहिए तो वह तुम्हें सुलभ है ही। उसके पत्रोंको मैं ध्यानसे पढ़ता हूँ और दुःखी भी होता हूँ। पत्रोंमें मैं प्रेम नहीं देखता। उनमें रस भी नहीं होता। मोती मानो बेगार करती है। यदि सम्भव हो तो वह पत्र लिखे ही नहीं। यदि तुम उसे उसकी प्रतिज्ञासे मुक्त करना उचित समझो तो लिखना। हमें उससे जोर-जबरदस्ती करके पत्र नहीं लिखवाना है। उसकी लिखावटमें भी सुधार नहीं हो रहा है।

१. जमनालालजीकी पुत्री।
२. जमनालालजीकी पत्नी।

आशा है, तुम शान्त होगे। भगवान करे तुम्हारा स्वास्थ्य बिलकुल ठीक हो जाये। मैं तुम्हारी घर-गृहस्थीमें तनिक भी हस्तक्षेप नहीं करना चाहता। इतना भी जो लिखा है सो मित्र-भावसे ही। करना वही जो तुम्हें ठीक लगे।

मोतीको यह पत्र पढ़ाना चाहो तो पढ़ा देना। यह लड़की मेरा प्रेम कैसे समझ सकती है?

गुजराती प्रति (एस० एन० १२१११९) की फोटो-नकलसे।

१३३. पत्र: पी० जी० मलकानीको

साबरमती आश्रम
१६ मार्च, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैंने पूरी तरह पूछताछ की, लेकिन आपने जिस हुंडीका जिक्र किया है, उसका कोई पता नहीं चला। जाहिर है कि वह गलतीसे कहीं और चली गई है। लेकिन, खुशीकी बात है कि किसीने उसे अबतक भुनाया नहीं है। अगर अब भी आपकी इच्छा वह रकम भेजनेकी हो तो कृपया ऊपरके पतेपर भेज दें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० जी० मलकानी
हैदराबाद शहर मंघा स्थान, कराची

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३६२) की माइक्रोफिल्मसे।

१३४. कैथरीन मेयोके साथ हुई बातचीतका विवरण[1]

१७ मार्च, १९२६

अमेरिकाको मेरा सन्देश केवल यही चरखेकी गुनगुन ध्वनि है। अमेरिकासे जो पत्र और अखबारी कतरनें मुझे मिलती हैं, उनसे पता चलता है कि वहाँ एक वर्ग ऐसा है जो अहिंसात्मक असहयोगके परिणामोंको बहुत बढ़ा-चढ़ाकर आँकता है, और दूसरा वर्ग है जो बहुत कम करके तो आँकता ही है, साथ ही इस आन्दोलनसे

१. कैथरीन मेयोके २४-३-१९२६ के पत्रका एक अंश इस प्रकार है: "आपके सचिवकी मार्फत मिले सन्देशके अनुसार मैं १७ तारीखको दिये गये आपके सन्देशका वह विवरण भेज रही हूँ जो मैंने लिख लिया था। जिन स्थलोंपर सही शब्दोंके बारेमें सन्देह है, वे स्थान मैंने रिक्त छोड़ दिये हैं। अपने कथनोंके स्पष्टीकरण या सुधारोंके बाद आप इसे वापस भेजेंगे तो मैं अनुग्रह मानूँगी। . . ." (एस० एन० १२४४९ की फोटो-नकल); "पत्र: कैथरीन मेयोको", ९-४-१९२६ भी देखिए।

सम्बन्धित लोगोंपर तरह-तरहकी दुरभिसन्धियोंके आरोप भी लगाता है। मैं चाहता हूँ कि लोग उसमें जो भी अच्छाई या बुराई देखें, उसे बढ़ाकर न कहें। इसलिए, यदि कुछ ईमानदार अमेरिकी निष्पक्ष भावसे और धैर्यपूर्वक इस आन्दोलनका अध्ययन करेंगे तो सम्भव है कि संयुक्त राज्य अमेरिकाको इस आन्दोलनके बारेमें कुछ जानकारी हो सके। मैं इसे अपने ढंगका अनोखा आन्दोलन समझता हूँ, हालाँकि मैं खुद इसका जनक हूँ। मेरा कहनेका तात्पर्य यह है कि हमारा सारा आन्दोलन संक्षेपमें चरखा और उसके फलितार्थोंमें समाया हुआ है। मेरे लिए तो यह बारूदका विकल्प है। कारण, चरखा भारतके करोड़ों लोगोंको स्वावलम्बन और आशाका सन्देश देता है। और जब ये करोड़ों इन्सान सचमुच जाग उठेंगे तो उन्हें अपनी स्वतन्त्रता फिरसे प्राप्त करनेके लिए एक अँगुली भी उठानेकी जरूरत नहीं पड़ेगी। चरखेका सन्देश वास्तवमें शोषणकी भावनाके स्थानपर सेवाकी भावनाको प्रतिष्ठित करनेका है। पश्चिममें जिस तत्त्वकी प्रधानता है, वह है शोषण। मेरी ऐसी कोई इच्छा नहीं है कि मेरा देश शोषणकी भावनाकी नकल करे।

(यात्रा और यातायातके साधनोंकी वृद्धिके परिणामोंके सम्बन्धमें :)

ये सब हमें मुक्ति दिलानेके लिए नहीं, हमें घोटनेके लिए आ रहे हैं। मैं यही आशा कर सकता हूँ कि हम इस संकटसे बच जायेंगे। लेकिन हो सकता है कि हमें यह कड़वा घूँट पीना ही पड़े। अगर हम पश्चिमके अनुभवोंसे सबक नही लेते तो हमें यह घूँट पीना पड़ सकता है। लेकिन इस संकटको टालनेके लिए मैं हर सम्भव प्रयत्न कर रहा हूँ। पश्चिमके शक्तिशाली देश आपसमें कितना ही लड़ते रहें, लेकिन इस एक बातपर वे सभी सहमत हैं : "आओ, हम दूसरे देशों — एशिया और आफ्रिका — का शोषण करें।" यह गोया उनका एक [अलिखित] समझौता है और वे उसका असाधारण रूपसे ठीक-ठीक पालन कर रहे हैं। मान लीजिए कि अगर हम अपने पश्चिमी शिक्षकोंकी हर तिकड़म सीख लें, तो क्या होगा? और अधिक बड़े पैमानेपर वही तो होगा जो अगस्त, १९१४ में हुआ था। अगर यूरोप और अमेरिका यह कहना जारी रखते हैं कि "हम हमेशा ऊपर रहेंगे और तुम हमेशा नीचे दबे रहोगे", और यदि हम अहिंसाका सन्देश नहीं अपनाते और यह नही समझ लेते कि हमें सिर्फ इतना ही करना है कि जिस चीजकी हमें जरूरत नहीं है उसे पश्चिमसे खरीदना बन्द कर दें तो वह स्थिति आकर रहेगी। इसलिए हालाँकि ऊपरसे उलटा दिखता है, लेकिन मैं अपनी हर-चन्द कोशिश यही करता हूँ कि शोषणकी इस भावनाके साथ सहयोग न करूँ। भले ही ३० करोड़ लोगोंमें मैं केवल एक ही हूँ, लेकिन मैं पश्चिमकी नकल करनेसे इनकार करता हूँ। कमसे-कम मरते हुए मुझे यह सन्तोष तो होगा कि मैं उसी कामको करते हुए मर रहा हूँ जिसका निर्देश मेरी आत्माने दिया।

केवल हमारी अपनी रजामन्दीसे ही हमारा शोषण किया जा सकता है, फिर चाहे हमने अपनी सहमति मजबूरीसे दी हो या खुशीसे, जानते-बूझते दी हो, या अनजाने ही,- और केवल तभी किया जा सकता है, जब हम यूरोप और अमेरिकाकी बनी हुई तरह-तरहकी आकर्षक वस्तुएँ खरीदेंगे — खास तौरसे कपड़ा। इससे हम

बच सकते हैं, क्योंकि अभी भी हमने अपने हाथोका हुनर बिलकुल खो नही दिया है। इस प्रकार अपनी आवश्यकताओंको आप ही पूरी कर सकने की व्यवस्था करना हमारे लिए कोई कठिन काम नही होगा। इसके लिए तो, जिस तरह हम खाना खाते हैं और पानी पीते हैं, उसी तरह उतने ही सहज ढंगसे खाली वक्तमें प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा काम करना काफी होगा। आज ऐसी बहुत-सी चीजें हैं जिनके लिए मैं पश्चिमके ऊपर निर्भर करता हूँ। जब मुझे विश्वास हो कि मैं केवल वही चीजें लेता हूँ जो पश्चिममें ज्यादा बेहतर बनती हैं, और जो मेरे लिए लाभकर हैं तब यह सौदा सम्मानजनक, स्वतन्त्र और परस्पर लाभकारी सौदा होगा। लेकिन आज जो-कुछ होता है, वह दोनों पक्षोंके लिए हानिकर है। शोषण तो शोषक और शोषित, दोनोंके लिए ही समान रूपसे बुरी चीज है।

मैं इस देशको डायरवादसे बचाना चाहता हूँ। अर्थात्, मैं यह नही चाहता कि जब मेरा देश शक्ति-सम्पन्न हो तो वह दूसरे देशोंपर अपना व्यापार थोपनेके लिए किसीको भयभीत करे। अकसर हमें कठिन अनुभवोके जरिये सीखना पड़ता है, लेकिन यदि मैं ऐसा मानता होता कि हममें से हर एकको उसी दुश्चक्रसे गुजरना होगा और वही सब करना होगा जो दूसरोंने किया है, तब तो मुझे यही समझना चाहिए कि किसी प्रकारकी प्रगति असम्भव है, और उस हालतमें मुझे आत्मघातका सिद्धान्त ही प्रचारित करना चाहिए। लेकिन हम आशा करते हैं, और अपने बच्चोंको इस आशाके साथ ही प्रशिक्षित करते हैं कि वे अपने पिताओंकी गलतियोंसे बचेंगे। मैं तो वास्तवमें इस बातके धुँधले लेकिन स्पष्ट लक्षण देखता हूँ कि पश्चिममें अच्छे दिन आनेवाले हैं। आज पश्चिममें अपने कदम पीछे हटानेका एक जबर्दस्त आन्दोलन चल रहा है। विचारोके क्षेत्रमें काफी प्रगति है, हालाँकि उन विचारोंको अभी कार्यरूप नही दिया गया है। लेकिन आज चिन्तक लोग जो सोच रहे हैं, कल वही कार्यका रूप धारण करेगा।

मेरे पास लगभग नित्य ही अमेरिकी लोग आते हैं। वे केवल कुतूहलवश नही आते। वे इस भावनाके साथ नहीं आते कि "आओ चलो, भारतीय चिड़ियाघरके इस जानवरको देख आयें"; बल्कि वे मेरे विचारोंको जाननेकी सच्ची इच्छाके साथ आते हैं। जो लोग भारतकी गरीबीको देखते हैं और देखकर दुःखी होते हैं, उन्हें सतहके नीचे जाकर इस गरीबीका सच्चा कारण ढूंढ़ना चाहिए। ऐसा नहीं है कि यह गरीबी धीरे-धीरे कम हो रही है। अस्पतालों, स्कूलों, पक्की सड़कों और रेलोंके बावजूद यह गरीबी बढ़ती ही जा रही है। इन सब चीजोंके बावजूद आप देखेंगी कि लोग जैसे चक्कीके दो पाटोके बीच पिसे जा रहे हैं। वे जबर्दस्ती थोपी गई बेकारी और निठल्लेपनका जीवन जी रहे हैं। सौ साल पहले हर झोंपड़ी अपने साधनोंमें चरखेकी सहायतासे अभिवृद्धि कर सकती थी। अब हर किसान खेतीके मौसममें अपना लकड़ीका हल लेकर काम करता है, जिससे केवल कुछ इंच गहरी जोताई ही हो पाती है। लेकिन वर्षके दूसरे मौसमोंमें उसके पास कुछ खास करनेको नहीं होता। ऐसी हालतमें किसान, उनके बच्चे, उनकी औरतें क्या करें? पुराने जमानेमें औरतें अपने चरखे लेकर बैठती थी और कताईके साथ-साथ गीत गाती जाती थी। ये कोई गन्दे या भद्दे गीत नहीं

होते थे। इन गीतोंमें उस ईश्वरका गुणगान होता था, जो हम सभीका स्रष्टा है। उनके बच्चे इन गीतोंको आत्मसात् कर लेते थे, और इस प्रकार यह प्रथा पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती रही और बच्चोंको यह थातीके रूपमें मिलती गई। हालाँकि उन बच्चोंमें कोई नफासत नहीं होती थी और न वे पढ़-लिखे होते थे। लेकिन अब यह सब प्रायः समाप्त हो चुका है। माँ गरीबीके भारसे कराह रही है, उसका मन निराशामें डूबा हुआ है। उसके पास दूध नहीं है। बच्चा जब माँका दूध छोड़ने लायक होता है तब माँ के पास उसे खिलानेको सिवा मामूली मोटे अनाजकी पेजके कुछ नहीं होता, जिससे बच्चेकी आँतें खराब हो जाती हैं।

इन करोड़ों लोगोंसे मैं क्या करनेको कहूँ? यह कहूँ कि वे अपने खेतोंको छोड़कर अन्यत्र चले जायें? क्या यह कहूँ कि वे अपने बच्चोंको मार डालें? या मैं उनकी स्थितिको सुधारनेके लिए जो धन्धा उन्हें दे सकता हूँ, वह दूं?

मैं उनके पास आशाका सन्देश — चरखा — लेकर जाता हूँ और कहता हूँ, "आपके साथ-साथ मैं भी कताई करता हूँ और मैं आपको अपने सूतके एवजमें चन्द पैसे देता हूँ। जो सूत आपने अपने घरोंमें बैठकर, फुरसतके समय और जब मन हुआ उस समय काता है, मैं उस सूतको आपसे खरीदता हूँ" मेरी यह बात सुनकर उस माँकी आँखोंमें आशाकी झलक कौंध जाती है। पाँच सप्ताहकी अवधिके अन्तमें, जिसके दौरान उसे नियमित रूपसे सहायता और सहयोग प्राप्त होता रहता है, मैं उसकी आँखोंमें चमक देखता हूँ। वह कहती है, "अब मैं अपने बच्चेके लिए दूध खरीद सकती हूँ।" और अगर उसे यह काम नियमित रूपसे मिलता रहे तो वह फिरसे एक सुखी घर बना सकती है। इस एक व्यक्तिको लेकर दिये गये दृष्टान्तको आप ३० करोड़ लोगोंके ऊपर लागू करके देखिए तो आपको उस चीजका काफी सही अन्दाजा मिल जायेगा, जिसकी मैं आशा कर रहा हूँ।

अंग्रेज इतिहासकार सर विलियम हंटरके बयानसे पहली बार पता चला कि जनसाधारणकी गरीबी कम होनेके बजाय बराबर बढ़ रही है। जिन गाँवोंमें मैं गया हूँ, उनसे यह सिद्ध होता है। ईस्ट इंडिया कम्पनीके कागजपत्रोंसे यही बात दिखती है। उन दिनों हम माल बाहर भेजा करते थे, हम शोषक नहीं थे। हम अपना माल ईमानदारीके साथ दूसरोंतक पहुँचाते थे। जो लोग हमारा माल न खरीदें, उन्हें दण्डित करनेके लिए हमने कोई तोप-सज्जित नौकाएँ नहीं रख छोड़ी थी। हम बाहरके देशोंको जो कपड़ा भेजते थे, वैसा कपड़ा दुनियामें शायद कहीं नहीं बनता था। हम हीरे-सोने और मसालोंका निर्यात करते थे। हमारी धरतीमें पर्याप्त कच्चा लोहा होता था। हमारे पास अपने यहाँके बने और कभी धुंधले न पड़नेवाले रंग थे। ये सारी चीजें अब लुप्त हो चुकी हैं। ढाकाकी मलमलका तो जिक्र ही क्या, जिससे ओसकी चादरका भ्रम होता था! मैं आज वैसी मलमलका उत्पादन नहीं कर सकता, लेकिन आगे कर सकनेकी उम्मीद रखता हूँ।

ईस्ट इंडिया कम्पनी भारतमें खरीदारी करनेकी गरजसे आई थी, और अन्तमें वह यहाँ विक्रेताके रूपमें जम गई। उसने हमें अपने अँगूठे काट डालनेके लिए मजबूर किया। वह हमारे सीनेपर सवार हो गई और हमसे अपनी मर्जीके खिलाफ काम

कराया, यहाँतक कि हममें से हजारों लोगोंको अपने अँगूठे काट देने पड़े। यह बात कोई मेरी कल्पनाकी उपज नहीं है। इसे ईस्ट इंडिया कम्पनीके कागज-पत्रोंसे देखा जा सकता है। अब सवाल उठता है कि क्या मैं इसका दोष ब्रिटेनपर लगाता हूँ? निश्चय ही लगाता हूँ। जिन कुत्सितसे-कुत्सित उपायोंकी कल्पना की जा सकती है, उन उपायोंसे हमारे व्यापारपर कब्जा किया गया और फिर अपने मालके लिए बाजार पैदा करनेके उद्देश्यसे उस व्यापारको समाप्त ही कर दिया गया। उन्होंने हमें लगभग संगीनके बलपर काम करनेको मजबूर किया। मान लीजिए कि मैं काम करते-करते उकता गया हूँ — उतना उकता गया हूँ जितना हमारे वे बुनकर जिन्होंने और ज्यादा यन्त्रणासे बचनेके लिए थककर अपने अँगूठे काट दिये थे — फिर भी यदि मुझे काम करना पड़ता है तो क्या इसे संगीनका भय नहीं कहेंगे? हमारा कौशल किस प्रकार खतम हुआ, इसका यही इतिहास है।

आप कहती हैं कि चरखा, जो कुछ पीढ़ियों पहलेतक पश्चिमके घर-घरमें चलाया जाता था अब वहाँसे भी गायब हो गया है· लेकिन पश्चिमके वे लोग जो चरखा चलाते थे और जिन्होंने अब उसे छोड़ दिया है, स्वतन्त्र लोग थे और अपनी मरजीसे उन्होंने चरखेको छोड़ा। उनके पास चरखेका एक विकल्प था। यहाँ हमारे पास करोड़ों लोगोंके लिए अभी भी कोई वैकल्पिक धन्धा नहीं है। अगर कोई भारतीय किसान साबुन बनानेका कारखाना या टोकरी बनानेका कारखाना खोलना चाहे तो क्या वह खोल सकता है? वह अपना माल कहाँ बेच सकता है? लेकिन मैं लोगोंको चरखेका रहस्य समझनेके लिए राजी करनेकी कोशिश कर रहा हूँ। अपने अन्दरसे थोपी गई विवशता ऊपरसे थोपी गई विवशतासे भिन्न चीज है। मैं अपने लोगोंको सिखाऊँगा कि वे मर भले जायें, लेकिन इस बाहरसे थोपी गई विवशताका प्रतिरोध करें।

कताई-कलाको पुनर्जीवित करनेमें अब कठिनाई है, क्योंकि लोगोंमें उसकी रुचि समाप्त हो गई है। किन्ही ऐसे लोगोंको काम करनेकी आदत सिखाना मुश्किल होता है जिनकी सारी आशा मर चुकी हो और जिन्होंने वर्षोंसे कोई काम न किया हो। और हमारे यहाँके धनाढ्य लोग समझते हैं कि अपना धन जोड़नेके सिलसिलेमें उन्होंने जो भी अन्याय किये हैं, उन्हें वे गरीबोंके सामने मुट्ठी-भर चावल फेंककर धो सकते हैं। लेकिन इसका असर यह है कि इस प्रकार वे गरीबोंकी आदतें इतनी बिगाड़ देते हैं कि अगर मैं उन लोगोंके पास एक हाथमें सूत और दूसरे हाथमें पैसे लेकर जाता हूँ तो उसके परिणामस्वरूप मुझे कष्ट झेलना पड़ता है। और मैं किसी प्रकार इन्हें मजबूर नहीं कर सकता, मेरी पीठपर सरकारकी कोई शक्ति नहीं है, जिससे मैं उन्हें काम करनेको विवश कर सकूँ। इसलिए मेरा काम धीरे-धीरे चलता है। मुझे पग-पगपर प्रयत्न करना पड़ता है। और फिर भी, आज ऐसे हजारों लोग कताई कर रहे हैं जो पिछले वर्षतक कताई नहीं करते थे। इस क्षेत्रमें जब मुझे सफलता मिल जायेगी तो उसका नतीजा यह होगा कि और भी अनेक गृह-उद्योगोंका विकास होगा। लेकिन इस बीच हमारी मुख्य समस्या हल हो चुकेगी, क्योंकि हमारी सारी कठिनाइयोंकी जड़ विवशताजन्य निठल्लापन है।

अस्पृश्यताका रोग वे ही ठीक कर सकते हैं जो अपने विश्वासोंके प्रति ईमानदार होकर, उनके अनुसार आचरण करना जानते हैं। हिन्दू महासभामें जो झगड़ा उठ खड़ा हुआ वह तो आपने देखा ही। लेकिन सारे विरोधोंके बावजूद अस्पृश्यता समाप्त हो रही है और तेजीसे समाप्त हो रही है। इसने भारतीय मानवताको पतित किया है। "अस्पृश्यों" के साथ ऐसा व्यवहार किया जाता है, जैसे वे पशुओंसे भी गये गुजरे हों। उनकी छाया पड़नेसे भी ईश्वरका नाम अपवित्र होता है। मैं भारतपर थोपे गये ब्रिटिश तरीकोंकी जितने कड़े शब्दोंमें भर्त्सना करता हूँ, उतने ही कड़े शब्दोंमें, बल्कि उससे भी ज्यादा कड़े शब्दोंमें अस्पृश्यताकी निन्दा करता हूँ। मेरे लिए अस्पृश्यता ब्रिटिश शासनसे भी ज्यादा असह्य वस्तु है। यदि हिन्दू-धर्म अस्पृश्यतासे चिपटा रहा तो 'गीता' और 'उपनिषदों' के स्फटिक-जैसे निर्मल सन्देशोंके बावजूद उसका अन्त अवश्यम्भावी है। कारण, उन उपदेशोंका क्या मूल्य रह जाता है जिनको व्यवहारमें झुठलाया जाता है?

प्रश्न: नवयुवक लोग राजनीतिक लाभोंके लिए लड़नेकी अपेक्षा यदि समर्पणकी भावनासे गाँवोंमें जायें और जनताकी सेवामें अपना जीवन लगा दें तो क्या यह ज्यादा बेहतर देश-सेवा नहीं होगी?

उत्तर: अवश्य होगी। लेकिन यह तो एक आदर्श सलाह हुई। विश्व-विद्यालयोंमें हमें जो भी शिक्षा प्राप्त हुई है, उसने हमें या तो क्लर्क बनाया है या मंचोंपर खड़े होकर तकरीरें झाड़नेवाले नेता। अपने विद्यार्थी जीवनमें मैंने चरखा शब्द कभी सुना ही नहीं। मुझे भारतीय या अंग्रेज ऐसा कोई शिक्षक नहीं मिला, जिसने मुझे गाँवोंमें जानेकी बात सिखाई हो। उनकी सारी शिक्षाका मुद्दा सरकारी नौकरीकी आकांक्षा उत्पन्न करना था। उनके लिए आई० सी० एस० सीधे स्वर्गसे उत्पन्न कोई वस्तु थी, और सबसे बड़ी सांसारिक महत्वाकांक्षा थी कौंसिलका सदस्य बन जाना। आज भी मुझे कौंसिलमें जानेको कहा जाता है ताकि वहाँ मैं सरकारको जनताकी जरूरतें बताऊँ और सदनमें उनपर तकरीरें करूँ? "गाँवोंमें जाओ", ऐसा कोई नहीं कहता। स्कूलोंमें तो जो शिक्षा दी जाती है वह 'गाँव चलो' आन्दोलनके विरुद्ध ही है। मगर इसके बावजूद यह आन्दोलन चल पड़ा है। हमारे नवयुवकोंमें भारतीयताकी भावना खत्म हो गई है। वे गाँवोंकी जिन्दगीके अनभ्यस्त हैं। अगर आप वहाँ अपने हाथमें कुदाल और फावड़ा लेकर नहीं जायेंगे तो आप धूल और संक्रामक रोगोंके शिकार होकर बहुत बुरी मौत मरेंगे। मैं खुद अपने कुछ कार्यकर्त्ता मलेरियाके हाथों खो चुका हूँ, हालाँकि उन्हें स्वास्थ्यके नियमोंकी जानकारी थी। गाँवोंकी ओर उन्मुख होनेका आन्दोलन आ गया है, लेकिन उसकी गति धीमी है।

मेरी इच्छा वर्तमान शासन प्रणालीको नष्ट कर देनेकी है, लेकिन अंग्रेजोंको यहाँसे निकाल बाहर करनेकी नहीं। मेरे कहनेका मतलब यह नहीं है कि अंग्रेजोंका इरादा मुझे नुकसान पहुँचानेका था। लेकिन मानव-स्वभाव जो अपराध कर सकता है, उसमें आत्म-प्रवंचना सबसे भयंकर है। और पुराने जमानेकी संगीन अभी भी किसी-न-किसी रूपमें विद्यमान है। मैंने उसको डायरवादका नया नाम दिया है। मैं अंग्रेजों-

को भारतसे मिलनेवाले वेतनपर भारतके कर्मचारीके रूपमें ही रख सकता हूँ, अन्यथा मैं चाहता हूँ कि वे यहाँसे बिलकुल चले जायें। इस लिहाजसे वह चाहे फ्रांसीसी हो, जर्मन हो या चीनी हो, सभीपर यह बात लागू होती है। अंग्रेजोंमें सराहनीय गुण हैं — क्योंकि वे मनुष्य हैं। यही बात मैं किसी अरबके लिए या दक्षिण आफ्रिकाके किसी नीग्रोके लिए भी कहूँगा।

"अंग्रेजोंके चले जानेपर आन्तरिक झगड़े उठ खड़े होंगे, क्या उनका भय मुझे नहीं है? अफगानिस्तानकी आक्रान्ता फौजोंका भय नहीं है?" हाँ, है, लेकिन, ये ऐसी सम्भावनाएँ हैं जिनका मैं स्वागत करूँगा। हम आज भी लड़ रहे हैं, लेकिन अपने दिलमें लड़ रहे हैं। कटारें छिपी हुई हैं। जिस समय इंग्लैंडमें "गुलाबोंका युद्ध" चल रहा था, उस समय यदि यूरोपके देशोंने शान्ति स्थापनाके खयालसे वहाँ हस्तक्षेप किया होता तो आज ब्रिटेन कहाँ होता?

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १२४४५) की फोटो-नकलसे।

१३५. पत्र : विधानचन्द्र रायको

साबरमती आश्रम
१७ मार्च, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि आखिरकार आपने [देशबन्धु] स्मारक अस्पतालका श्रीगणेश कर दिया। तारीख[1] बहुत अच्छी चुनी गई है। वासन्ती देवीके जन्म-दिवसके अवसरपर उनके दीर्घायु होनेकी कामना करता हूँ। यह शुभकामना उनतक पहुँचा दें। उनसे यह भी कहिए कि अभी अनेक वर्षोंतक उनकी आवश्यकता है — और कुछ नहीं तो इसी कारण कि उस अस्पतालको पूरी तरह सफल बनाना है, जिसकी स्थापनाका काम उनके पतिको इतना ज्यादा प्रिय था।

उद्घाटन-समारोहमें आपके साथ शरीक हो सका तो मुझे बड़ी खुशी होगी। लेकिन हो सकता है, वैसा न कर पाऊँ। कारण तो आप जानते ही हैं। उस दिन मेरी सारी शुभकामनाएँ आपके साथ रहेंगी।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

डॉ० विधानचन्द्र राय
३६, विलिंग्टन स्ट्रीट, कलकत्ता

[अंग्रेजीसे]
फॉरवर्ड, २३-३-१९२६

१. २१ मार्चको वासन्ती देवीका जन्म-दिवस था और उसी दिन रवीन्द्रनाथ ठाकुर चित्तरंजन सेवा सदनका उद्घाटन करनेवाले थे।

१३६. पत्र : डॉ० सत्यपालको

साबरमती आश्रम
१७ मार्च, १९२६

प्रिय डॉ० सत्यपाल,

'फुलवारी' के लिए मेरा यह सन्देश है।

बहादुर सिख लोग अपने अन्दरूनी मसलोंको जितनी जल्दी सुलझाकर अपनी बहादुरीका परिचय देंगे, इससे उनका और भारत दोनोंका उतना ही भला होगा। वीर पुरुष सरल होता है, कुटिल नहीं। वीरता शालीन होती है, उच्छृंखल नहीं। यह उदार होती है, क्षुद्र नहीं। जो वीर हैं, वे सदा क्षमा करनेको तैयार रहते हैं, उनमें प्रतिशोधकी भावना कभी नहीं आती। वे सदा सबके लिए सुरक्षाका सौरभ लुटाते रहते हैं; ऐसा नहीं कि जहाँ गये, सर्वत्र सबको आतंकित करते रहें। वे युद्धको नहीं भड़काते, वे तो शान्तिके[1] समर्थ प्रहरी होते हैं। वे मेल-जोल और सद्भावकी तमाम प्रतिमूर्ति होते हैं। वे झगड़े-टंटे नहीं खड़े किया करते। क्या सिख लोग वीरताकी इन कसौटियोंपर खरे उतरते हैं? अगर नहीं तो वह समय आ गया है, जब उन्हें वैसा करके दिखाना चाहिए। कारण, वे न केवल पंजाबके गुरुद्वारोंको, बल्कि स्वराज्य-रूपी महान् भारतीय गुरुद्वारेको मुक्त करानेके लिए प्रतिश्रुत हैं।

हृदयसे आपका,

डॉ० सत्यपाल
ब्रैडले हॉल
लाहौर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३६३) की फोटो-नकलसे।

१. यहाँ साधन-सूत्रमें कुछ चूक दिखाई देती है, जिसे सुधारकर अनुवाद किया गया है।

१३७. पत्र : बर्रा सत्यनारायणको

साबरमती आश्रम
१७ मार्च, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आप मुझे अच्छी तरह याद हैं और जब मैं आपके यहाँ गया था, उस समयकी सुखद स्मृतियाँ भी मेरे मनमें बनी हुई हैं। कृपया बर्मावासी भाइयोंसे कह दीजिये कि संखिया और लौह तत्त्वके इंजेक्शन मैंने जरूर लिये, फिर भी दवाओं और डाक्टरोंके बारेमें मेरे विचार वही हैं जो मेरे लेखोंमे व्यक्त हुए हैं। किसी आदर्शमें विश्वास रखना एक बात है, लेकिन उसके अनुसार आचरण करना दूसरी बात है। इस समय तो मित्रगण जो-कुछ कहते रहते हैं, उसका मतलब यही है कि अब मेरे शरीरपर सिर्फ मेरा ही अधिकार नहीं रहा, उन्हें भी इसकी उतनी ही फिक्र है जितनी मुझे हो सकती है और अपनी इस दलीलके सहारे, जो देखनेमें तो सही लगती है, वे मुझसे यह मनवाते हैं कि मैं स्वयं इस शरीरकी सार-सँभालके लिए जिम्मेदार न्यासियोंमें से एक हूँ और इस प्रकार इसकी अपेक्षाओंको पूरा करनेका मुझे अधिकार है। अतएव, बर्माके उन सज्जन और उन-जैसे अन्य मित्रोंको यदि ऐसा लगता है कि इस विषयमें मेरी कथनी और करनीमें संगति नही है तो उसमें कुछ गलत नहीं है। इसलिए उन बर्मावासी मित्रसे कहिए कि जबतक वे मेरी तरह महात्मा नहीं बन जाते तबतक वे दवाओंको हाथ न लगाने और डाक्टरोंको न बुलानेके अपने संकल्पपर दृढ रहें, और अगर वे उस सँकरे किन्तु सीधे मार्गपर चलते रहेंगे तो उनका कल्याण ही होगा। आप उन्हें चुपकेसे यह भी बता दें कि यद्यपि मैं मित्रोंकी चिकनी-चुपड़ीमें आ गया, फिर भी मैंने सिर्फ पाँच दिनोंतक पाँच-पाँच ग्रेन, बल्कि केवल ढाई-ढाई ग्रेनकी खुराकमें कुल ३० ग्रेनसे ज्यादा कुनैन नहीं ली है और संखिया तथा लौह तत्त्वके इंजेक्शन भी प्रति सप्ताह एकके हिसाबसे सिर्फ पाँच ही लिये हैं।

मुझे तो लगता है कि आपकी यह आशा बेकार ही है कि मैं "अब क्या"' का उत्तर दे पाऊँगा। जबतक मैं यह नही देखता कि खादी घर-घरमें पहुँच रही है, तबतक मैं उसका उत्तर नहीं दे सकता। खादी उस हदतक सफल हो, एक यही चीज ऐसी है जिससे यह साबित होगा कि मध्यमवर्गीय लोगोंने अहिंसाके रहस्यको समझ लिया है। जिस दिन यह बात हो जायेगी उस दिन मैं उसका उत्तर देनेको पूरी तरह तैयार रहूँगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत बर्रा सत्यनारायण
३५, पीटर्स रोड
रायपेट्टा, मद्रास

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३६४) की माइक्रोफिल्मसे।

१३८. पत्र : उर्मिला देवीको

साबरमती आश्रम
१७ मार्च, १९२६

प्रिय बहन,

आपका पत्र मिला। पढ़कर मन बड़ा व्यथित हुआ। लगता है, आपको परेशानियोंसे कभी छुटकारा नहीं मिलेगा। यही तो सोच रहा था कि इतने दिनोंसे आपने कोई पत्र क्यों नहीं लिखा! कारण, इस अरसेमें आपका एक पत्र तो आना ही चाहिए था।

जाहिर है कि आपको काफी दिनोंतक कश्मीरमें रहनेकी जरूरत है। आपने मुझे पुरी आनेको निमन्त्रित किया है और यह प्रलोभन दिया है कि जबतक मैं वहाँ रहूँगा, आप मेरे साथ रहेंगी। लेकिन, इस विषयमें अपने-आपपर मेरा कोई अधिकार नहीं रह गया है। अगर रहता भी तो इन दिनों मैं आश्रममें अपना समय इतने आराम और शान्तिसे बिता रहा हूँ कि यहाँसे कहीं जाना नहीं चाहूँगा। मुझे गर्मीका डर नहीं है। उसे मैं अच्छी तरह बरदाश्त कर सकता हूँ, खासकर इसलिए कि मैं थकानेवाला कोई काम नहीं कर रहा हूँ। लेकिन, मुझे जमनालाल और शंकरलाल बैंकरकी देख-रेखमें रहना पड़ता है और मैंने उन्हें किसी पहाड़ी स्थानपर जानेका वचन दिया है। अगर समुद्र-तटपर जानेसे काम चल जाये तो मेरी जानकारीमें पुरीसे भी एक बेहतर जगह है, यद्यपि उसे लोग जानते नहीं। यह जगह मेरे जन्म-स्थानसे कुछ ही मील दूर है। वहाँ मुझे पूरी शान्ति और ग्रामीण-जीवनका सुख मिल सकता है। वहाँ पुरी-जैसी गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ नहीं हैं, जो हमें घूरती-सी प्रतीत होती हैं, और न वहाँ मनको क्लेश पहुँचानेवाले वे अकाल-पीड़ित लोग ही देखनेको मिलते हैं जो तीर्थ-यात्रियोंसे मुट्ठी-भर गन्दा चावल पानेके लिए झुण्ड बाँध-बाँधकर मन्दिरोंके पास इकट्ठे होते हैं। पुरी मुझे अपने अतीतके पुनीत और गौरवमय इतिहासका स्मरण नहीं कराता, बल्कि हमारे वर्तमान अधःपतनकी याद दिलाता है। कारण, क्या अब यह उन सिपाहियोंके लिए स्वास्थ्य-वर्धनका स्थान नहीं बन गया, जिन्हें हमारे ही पैसे पर हमारी स्वतन्त्रता लूटनेके लिए पाला जाता है? उसमें मेरे लिए कोई आकर्षण नहीं है। उसके बारेमें सोचकर ही मेरा मन खिन्न हो जाता है और मैं जबतक वहाँ रहा, मेरा मन दुःखी रहा। मित्रोंने मुझे बहुत आरामदेह जगहमें ठहराया था। यह जगह बिलकुल समुद्र-तटके सामने थी। लोगोंने मेरी बहुत खातिरदारी भी की। लेकिन जब मैं एक ओर उन सैनिक बैरकोंको और दूसरी ओर उन क्षुधापीड़ित उड़िया लोगोंको देखता था और उनके प्रति पैसेवाले लोगोंकी निर्मम उदासीनताके बारेमें सोचता था, तब मुझे जो मानसिक कष्ट होता था, उसका तो कोई उपचार उनके पास नहीं था।

आपकी बहनके इस जीवट-भरे व्यवहारको मैं अच्छी तरह समझ सकता हूँ। दवाओं और डाक्टरोंको दूर रखनेके उनके संकल्पकी पूर्ण सफलताकी कामना करता हूँ। उनका

यह साहस देखकर तो मुझे उनसे ईर्ष्या होती है। वे अपना शरीर, जैसा 'भगवद्-गीता'में कहा है, उसी ढंगसे सहर्ष त्याग देंगी अर्थात् जो घर पूरा काम दे चुकनेके बाद धराशायी हो जानेकी स्थितिमें पहुँच जाता है और उसका स्वामी जिस प्रकार उसे खुशी-खुशी त्याग देता है, उसी प्रकार वे अपने शरीरको त्याग देंगी।

हृदयसे आपका,

बहन उर्मिला देवी
४ ए, नफरकुंडु रोड
कालीघाट
कलकत्ता
मार्फत न्यायमूर्ति दास
अली मंजिल
पटना[1]

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३६५) की फोटो-नकलसे।

१३९. पत्र : दीनशा म० मुन्शीको

आश्रम
१७ मार्च, १९२६

भाईश्री ५ मुन्शी,

आपका पत्र मिला। मैंने सार्वजनिक सभामें जो-कुछ कहा था सो एक सार्वजनिक व्यक्तिके रूपमें कहा था। मैं उससे अपने-आपको बाँधता नहीं। लेकिन वहाँ आपने मेरे जिस वचनका उल्लेख किया है, उस वचनके भंग होनेकी बात तो मैं नहीं जानता। यदि आपकी सहायताकी रकम बन्द कर दी गई है तो वह किसी कारणसे बन्द की गई होगी। आपको नुकसान पहुँचानेके इरादेसे तो वह कदापि बन्द नहीं की जा सकती, ऐसी मेरी मान्यता है और यदि इस बारेमें आपके साथ किसी तरहका अन्याय हुआ हो तो आप समितिको पत्र लिख सकते हैं। मैं आपको कर्ज कहाँसे दूँ? मेरे पास अपनी कहने लायक तो फूटी कौड़ी भी नहीं है।

मोहनदासके वन्देमातरम्

श्री दीनशा मंचेरजी मुन्शी
राष्ट्रीय विनय मन्दिर
नडियाद

गुजराती पत्र (एस० एन० १९८६९) की माइक्रोफिल्मसे।

१. दूसरा पता पेंसिलसे लिखा हुआ है।

१४०. पत्र : गंगाराम छत्रालाको

आश्रम
१७ मार्च, १९२६

भाई गंगाराम,

आपका पत्र मिला। उससे ऐसा लगता है कि उपर्युक्त मुहल्लेमें मुख्य रूपसे कड़वा पाटीदारोंकी वस्ती है और उसमें घर भी इन पाटीदारोंके ही हैं। यदि ऐसा है तो मुझे लगता है कि अपने घरके सम्बन्धमें प्रतिबन्ध लगानेका अधिकार अन्य सब लोगोंकी तरह पाटीदारोंको भी होना चाहिए। दक्षिण आफ्रिकाका उदाहरण अलग तरहका है। जो लोग वहाँ रहते हैं उनके वर्तमान अधिकार छीनकर उन्हें बरबाद करनेकी बात है। यदि मेरे समझनेमें कोई भूल हुई हो और पाटीदार कौमकी ओरसे किसीपर अत्याचार किया जाता हो तो आपका असहयोग करना उचित होगा।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

श्री गंगाराम खोडीदास छत्राला
नं० ५१८, वाड़ीगाम, गंगाराम पारेखकी पोल
दरियापुर, अहमदावाद

गुजराती पत्र (एस० एन० १९८७०) की माइक्रोफिल्मसे।

१४१. टिप्पणियाँ

राष्ट्रीय सप्ताह

हमारे राष्ट्रीय जीवनमें ६ और १३ अप्रैलके दिन चिरस्मरणीय हैं। ६ अप्रैल, १९१९ के दिन सत्याग्रहका वह अनुपम दृश्य दिखाई दिया था, जिसमें हिन्दू, मुसलमान और दूसरी जातियोंके लोगोंने खुलकर भाग लिया था। वह दलित वर्गोंकी स्वतन्त्रताका दिन भी है। उसी दिन सच्ची स्वदेशीकी नींव डाली गई थी और उसी दिन सारे देशने सविनय अवज्ञाका आरम्भ भी किया था। उस दिन जनसाधारणकी स्वतन्त्रता और प्रतिरोधकी भावना फूट पड़ी थी।

और १३ अप्रैलको जलियाँवाला हत्याकाण्ड हुआ। उसमें हिन्दू, मुसलमान और सिखोंका खून मिलकर एक धारामें वहा था। एक ही दिन कूड़ा-कचरा डालनेकी एक अज्ञात जगह सारे भारतके लिए राजनैतिक तीर्थ-स्थान बन गयी और जबतक भारतका अस्तित्व रहेगा तबतक वह वैसी ही बनी रहेगी। उस दिनसे आजतक अनेक घटनाएँ घटित हुई हैं। १९२१ में जनमानस आशासे भर उठा था और

जब वह आशा अपने चरम बिन्दुपर थी, तभी ऐसा लगा मानो वह बिखर गई है। तबसे ऐसा लगता रहा है जैसे चढ़े ज्वारका जोर बराबर कम होता जा रहा है। आज हम मध्य रात्रिकी घोर अँधियारीमें से गुजर रहे हैं। लेकिन शायद अभी हमको इससे भी अधिक घना अंधकार देखना बाकी है।

लेकिन वह पवित्र सप्ताह अभी भी हमारी आशाका केन्द्र-बिन्दु है। इसलिए यद्यपि हम लोग विभक्त हो गये हैं और सरकार हमारी राष्ट्रीय माँगोंकी, फिर चाहे वे कितनी ही आवश्यक और विवेक-संगत क्यों न हों, निर्भय होकर उपेक्षा कर रही है, फिर भी हमें यह राष्ट्रीय सप्ताह मनाना चाहिए।

फिर, ईश्वरकी इस दुनियामें रात सदैव नही बनी रहती है। हमारी रात्रिका भी अन्त होगा। बस, एक ही चीजकी जरूरत है — हमें इसके लिए प्रयत्न करना चाहिए। इस सप्ताहको हम कैसे मनायें? हड़ताल द्वारा नही और न अभी सविनय अवज्ञा करके ही। आज हम हिन्दुओं और गैर-हिन्दुओंके बीच एकताकी घोषणा करने या उसके लिए खुशियाँ मनानेकी स्थितिमें भी नही हैं, क्योंकि हिन्दू व मुसलमान परस्पर एक-दूसरेको अविश्वासकी दृष्टिसे देखते हैं और वे अपनी शक्ति और बलकी वृद्धि पारस्परिक सहिष्णुता और सहायतासे करनेके बदले सरकारकी कृपासे करनेकी कोशिश कर रहे हैं। इसलिए फिलहाल इस प्रश्नको ऐसे ही छोड़ देना चाहिए। अस्पृश्यता धीरे-धीरे परन्तु निश्चय ही खत्म हो रही है। अब केवल खादी ही रह जाती है, जिसके द्वारा बड़े पैमानेपर कुछ कर दिखानेकी और सामूहिक प्रयत्नकी गुंजाइश है। खादीके मंचपर सब लोग मिलकर कार्य कर सकते हैं। उसकी बिक्रीकी व्यवस्था की जा सकती है। स्वेच्छासे कातनेके कार्यको प्रोत्साहन दिया जा सकता है। अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारकके लिए रुपये इकट्ठे किये जा सकते हैं, जिसका एकमात्र उद्देश्य ही खादी और चरखेकी प्रगति और प्रचार करना है। इसमें कोई सन्देह नही कि राष्ट्रीय सप्ताह मनानेके और भी कई तरीके हैं। स्थानिक कार्यकर्त्तागण विभिन्न तरीकोंकी योजना कर सकते हैं। मैं तो सिर्फ उन्ही बातोंका विचार कर सकता हूँ, जिनमें करोड़ों लोग शामिल हो सकते हैं और जो हमें उन सात दिनोंकी याद दिलाते हैं, और जो स्वराज्य-प्राप्तिके मार्गमें सहायक हो सकते हैं। मेरे विचारमे दूसरी एक भी ऐसी बात नही आती है जो चरखेकी तरह अच्छे ढंगसे इन शर्तोको पूरा कर सके।

यह कितने हर्षकी बात है कि कोई एक काम ऐसा है, जिसे हम कर सकते हैं। और सो भी अच्छी तरह कर सकते हैं — उससे हमें खोया हुआ आत्मविश्वास प्राप्त होगा और उससे वह शक्ति प्राप्त होगी जिसके बलपर हम सभी कठिनाइयोंको पार कर जायेंगे। केवल चरखा ही एक वस्तु है, जिसपर सब वर्गों और धर्मोके स्त्री, पुरुष, बालक और बालिकाएँ काम कर सकती हैं। चरखा ही एक साधन है जो अमीरों और गरीबोंको जोड़नेवाली कड़ीका काम कर सकता है। वही एक चीज है जो अँधेरेमें आशाकी किरण उत्पन्न कर सकती है, और अधभूखे किसानोंके अंधकारमय और दरिद्रतापूर्ण झोंपड़ोंमें प्रकाशकी ज्योति ला सकती है। जिन्हें चरखेमें विश्वास हो वे इस राष्ट्रीय सप्ताहमें खादीको अधिक लोकप्रिय बनानेके लिए प्रयत्न करें।

म्युनिसिपल स्कूलोंमें कताई

अखिल भारतीय चरखा-संघके सहायक मन्त्रीने विभिन्न म्युनिसिपैलिटियों और जिला बोर्डोंको अपने यहाँके स्कूलोंमें हाथ-कताईकी कैसी प्रगति हो रही है, उसका ब्योरा भेजनेके लिए जो गश्ती-पत्र लिखा था, उसके उत्तरमें केवल तीन पत्र ही प्राप्त हुए हैं। उनमें एक अहमदाबाद म्युनिसिपैलिटीके स्कूल बोर्डके प्रधानका है। उसमें बताया गया है कि:

> म्युनिसिपल कन्या-पाठशालाओंके लिए कताईके शिक्षक तैयार करनेके लिए पिछले वर्ष दो कुशल कातनेवालोंकी नियुक्ति की गई थी। शिक्षकोंको ६ महीने तक शिक्षा दी गई और अब म्युनिसिपल पाठशालाओंमें कताईके विषयको अनिवार्य विषय बना देनेका विचार है।

शाहाबाद जिला बोर्डके उप-प्रधान लिखते हैं:

> १९२५ में ८ प्राथमिक पाठशालाओंमें कताई दाखिल की गई है। इन चुनी गई पाठशालाओंके ८ शिक्षकोंको इस विषयकी खास शिक्षा दी गई है और हरएक स्कूलको पाँच-पाँच चरखे दिये गये हैं। १० से १५ साल तककी उम्रके १३९ लड़के आज इसकी शिक्षा पा रहे हैं।

पत्रमें आगे लिखा है:

> अबतक बहुत ही कम कार्य हुआ है, परन्तु अच्छे परिणामकी आशा की जाती है, क्योंकि अब कार्य अधिक व्यवस्थित हो गया है। बोर्डको १,००० रुपयेका जो विशेष अनुदान मिला था उसमें से उसने ३१ जनवरीतक केवल २७४ रुपये ही खर्च किये हैं।

बस्तीके जिला बोर्डके पत्रके अनुसार:

> १५ लड़के नियमित रूपसे कातते हैं। १५ चरखे चलते हैं। रोजाना औसतन केवल १ छटाँक (५ तोले) सूत काता जाता है। उस सूतका उपयोग दरी बुनवानेमें किया जाता है। अबतक केवल दो दरियाँ बुनी गई हैं और उनका पाठशालामें उपयोग किया जा रहा है। मासिक व्यय २० रुपय होता है। यह शिक्षकका वेतन है। सामान खरीदनेमें अबतक रु० ८१-२-० खर्च हुए हैं।

मैं आशा करता हूँ कि दूसरे स्कूल बोर्ड भी, यदि उन्होंने अपने पाठ्यक्रममें कताईको भी रखा है तो, उसकी प्रगतिका ब्योरा अवश्य लिख भेजेंगे। मैं इन पृष्ठोंमें पहले ही लिख चुका हूँ कि पाठशालाओंमें कातनेके लिए तकली ही अधिक सुविधा-जनक और फायदेमन्द है। उदाहरणके तौरपर, शिक्षक लोग एक ही समयमें सैकड़ों लड़के-लड़कियोंकी तकली-कताईकी निगरानी कर सकते हैं, परन्तु चरखेपर होनेवाली कताईमें यह असम्भव है।

एक विलक्षण सुझाव

मेरे सामने एक सत्याग्रही कैदीका एक पत्र है। यह कैदी चार सालसे अधिक समयतक जेल-जीवनका अनुभव ले चुका है। जब वह जेलसे छूटा तब मैंने उससे अपने अनुभव बतानेके लिए कहा। उसने अपने अनुभवोंका जो वर्णन दिया है, वह कुछ बातोंमें मौलिक है। अधिकारियोंके अत्याचारों और जेल-जीवनके कष्टोंके सम्बन्धमें कुछ बतानेके बजाय उसने मुझे अपने आत्म-निरीक्षणके परिणाम दिये हैं। मैं उसके पत्रमें से नीचेके दो अनुच्छेद चुनता हूँ :

> मैं प्रायः सोचता हूँ कि हर छात्रको अपना अध्ययन समाप्त करनेके बाद कमसे-कम छः मासके लिए बलात् जेल भेज देना चाहिए। मेरे विचारसे अंग्रेज लड़कोंको यूरोपकी यात्रा करनेसे जितना लाभ होता है, उसकी अपेक्षा भारतीय छात्रोंको जेल जानेमें अधिक लाभ होगा। आजकल अपनी इच्छासे तपस्या करना बहुत कठिन है, किन्तु यदि हम अपने लड़कोंको जीवनमें प्रवेश करनेसे पूर्व जेलमें रखें तो हमें तपस्याके लगभग सभी लाभ सुगमतासे मिल सकते हैं। बाहरी दुनियासे छः महीनेतक अलग रहकर वे उस सब ज्ञानको पचा सकेंगे जो उन्होंने अपने स्कूलों और कॉलेजोंमें अर्जित किया है और उस ज्ञानका उपयोग कैसे करें, इस सम्बन्धमें गम्भीरतासे सोचनेका शान्तिपूर्ण अवकाश पा सकेंगे। इस प्रकार गम्भीरतासे सोचनेका अवकाश जेलके बाहर रहकर हर आदमीको नहीं मिलता। हममें से अधिकतर लोगोंके पास न विचार हैं और न निश्चित कार्य; हम जो-कुछ करते हैं, उसका आधार प्रायः विचारकी अपेक्षा हमारे मनमें किसी समय जो भाव या प्रेरणा प्रबल हो, वही होती है। हमने पिछले साल क्या किया है और हम अगले साल क्या करेंगे, इस सम्बन्धमें विचार करनेके लिए हममें से हरएक व्यक्ति हर साल कुछ समयके लिए, उदाहरणार्थ, एक मासके लिए, जेल क्यों न जाये?
>
> जेल-जीवनका दूसरा रूप, जिसकी ओर मेरा ध्यान विशेषतः गया है, कैदियोंकी रहन-सहनकी वह पद्धति है जिससे वे इतने साफ-सुथरे रह सकते हैं, इतने कम खर्चमें गुजारा कर सकते हैं और इतनी सादगी रख सकते हैं। यदि जेलोंमें भ्रष्टाचार न हो और लोगोंको वहाँ बलात् बन्द न रखा जाता होता तो ये संस्थाएँ थोड़ी-थोड़ी मजदूरीपर गुजारा करनेवाले हमारे गाँवों और शहरोंके लोगोंके लिए अनुकरणीय नमूनेका काम दे सकती हैं।

यद्यपि मेरी दृष्टिसे भारतकी जेलोंमें सफाईके सम्बन्धमें बहुत-कुछ करना बाकी है, फिर भी मैं पत्र-लेखकके दिये हुए विवरणकी पुष्टि कर सकता हूँ। हमारे गाँवोंमें जैसी सफाई रहती है, उससे जेलोंकी सफाई निश्चय ही ज्यादा अच्छी होती है। असलमें गाँवोंमें जिस चीजको देखकर हर आदमीको दुःख होता है, फिर आप चाहे भारतके किसी भी भागके गाँवोंमें जायें, वह सफाईकी कमी ही है। इसी प्रकार जेलकी खुराककी

सादगी भी तारीफके लायक होती है। और यदि मध्यम वर्गके लोग अपनी खुराकको सादा बना लें तो उनका पैसा बहुत बचे और उनकी तन्दुरुस्ती भी बहुत सुधरे।

देशके युवक अपनी पढ़ाई-लिखाई खत्म करके जीवनमें प्रवेश करनेसे पहले कुछ समय जेलोंमे रहें, यह सुझाव निश्चय ही आकर्षक है; किन्तु इसपर अमल कैसे किया जाये? यदि सविनय अवज्ञा फिर आरम्भ करके छात्रोंको जेल जानेका अवसर न दिया जाये तो उनके सम्मुख जेलके अनुशासनको प्रस्तुत करनेका एक ही मार्ग रह जाता है, और वह यह है कि वे कमसे-कम कुछ समय गाँवोंमें जाकर जम जायें, किन्तु वहाँ सफाईका विशेष ध्यान रखें और उनकी गन्दगीको न अपनायें। जिस हद-तक हरएक कैदीके लिए अपना भंगी खुद बनना आवश्यक होता है उस हदतक वे भी अपने भंगी खुद बन सकते हैं।

निराश नहीं

एक पत्र-लेखकने भारतकी वर्तमान राजनीतिक अवस्थाके सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट करते हुए बड़ी आशा व्यक्त की है। मैं चाहता हूँ कि पाठक भी उनकी इस आशावादिताकी झलक देखें। वे कहते हैं:

> मुझे प्रसन्नता है कि इस समय जैसी परिस्थितियाँ दिखाई देती हैं उनसे मुझे उतनी निराशा नहीं होती जितनी मेरे कई मित्रोंको है। मैं यह अनुभव नहीं करता कि असहयोग असफल हो गया है या हमने उसके अन्तिम परिणाम देख लिये हैं। मैं अब भी विश्वास करता हूँ कि भारतको भविष्यमें स्वराज्य मिलेगा और हमें अन्तिम विजय सविनय क्रान्तिसे ही मिलेगी। सम्भव है कि हमें अपना कार्यक्रम बदलना पड़े, किन्तु हमारी मुक्ति केवल इसी साधनसे साध्य है। मेरा विश्वास है कि हमें निकट भविष्यमें ही विजय मिल जायेगी। निकट भविष्यसे मेरा मतलब एक साल नहीं है; न ५ साल है, किन्तु उसका अर्थ निश्चय ही १० सालसे कम है; क्योंकि मैं देखता हूँ कि लोगोंका हृदय अभी भी स्वस्थ है। जो खराबी है, वह जनताके नेताओंमें है। जनसाधारण सामान्यतया शिक्षितवर्गसे मार्गदर्शनकी अपेक्षा रखता है; किन्तु यह शिक्षितवर्ग भटक गया है। यदि ये शिक्षित लोग अपने दायित्वोंको फिर समझ सकें तो जनसाधारण निश्चय ही उनका अनुगमन करेगा — ऐसे ही जैसे कुतुबनुमाकी चुम्बककी बनी सुइयाँ ध्रुवोंकी ओर जाती हैं।

असहयोग और सविनय अवज्ञाके सम्बन्धमें इन पत्र-लेखक भाईमें जितनी श्रद्धा है, उतनी श्रद्धा सब असहयोगियोंमें हो तो कितना अच्छा हो! कोई भी आदमी यह देख सकता है कि यद्यपि असहयोगसे उस ठोस अर्थमें स्वराज्य नहीं आ सका है जिसे लोग समझते हैं, फिर भी उससे हमारे राजनीतिक जीवनमें क्रान्ति आ गई है; उससे जनसाधारणमें इतनी चेतना आ गई है जितनी मेरे विचारसे किसी दूसरी बातसे नहीं आ सकती थी। और इस बारेमें भी कोई सन्देह नहीं है कि हमें जब-कभी स्वतन्त्रता मिलेगी, वह सविनय अवज्ञा-सहित, किसी-न-किसी रूपमें असहयोगको लागू

करनेसे ही मिलेगी। कारण, भले ही इसके विरुद्ध कुछ भी क्यों न कहा जाये, वस्तु-स्थिति यह है कि खास तौरसे जनसाधारणमें हिंसाके तरीकेमें विश्वास रखनेवाले लोग नहीं के बराबर हैं और स्वराज्य लेनेका ऐसा कोई भी तरीका सफल नहीं हो सकता, जिसको जनसाधारण भी स्वीकार न करले। यदि स्वराज्यकी परिभाषामें केवल कुछ व्यक्तियों या कुछ वर्गोंकी स्वतन्त्रता ही नहीं आती, बल्कि भारतके समस्त जनसाधारणकी स्वतन्त्रता आती है, तो जनतान्त्रिक स्वराज्यके लिए जैसी पूर्ण लोक-चेतनाकी आवश्यकता है, उसको ठीक रूप और दिशा केवल असहयोग और उसके अन्तर्गत आनेवाली सभी बातें ही दे सकती हैं। जनसाधारण केवल अहिंसात्मक और रचनात्मक तरीकोंसे ही भली-भाँति संगठित होगा और उसीसे उसमें एक राष्ट्रीय उद्देश्यकी पूर्तिके लिए भावना पैदा होगी और राष्ट्रकी स्वतन्त्रता प्राप्त करने और सुरक्षित रखनेकी आकांक्षा जागेगी और उसकी योग्यता उसमें आयेगी।

खादीके सम्बन्धमें

पत्र-लेखकने अपने खद्दर सम्बन्धी विचार भी मुझे भेजनेकी कृपा की है, वह कहता है:

> चरखे और खादीको मैं बहुत महत्त्व देता हूँ, किन्तु मुझे खेद है कि मैं उनके सम्बन्धमें बहुत आशान्वित नहीं हूँ और यद्यपि मैं खादीको अधिक महत्त्व देता हूँ, फिर भी मैं उसके राजनीतिक मूल्यको उतना महत्त्व नहीं देता जितना लोग सामान्यतः सन् १९२१में दिया करते थे। मैं नहीं समझता कि अंग्रेज लोग लंकाशायरके वस्त्र-उद्योगके हितोंका खयाल करके ही भारतपर शासन करते हैं। इस सम्बन्धमें दूसरी बातें भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण हैं। आपने लॉर्ड रीडिंगको खादीका व्यवहार करनेका जो निमन्त्रण दिया है, उससे तो मेरी दृष्टिमें असहयोगके कार्यक्रमका जो थोड़ा-बहुत राजनैतिक महत्त्व रहा था, वह और भी कम हो गया है।

पत्र-लेखक खादीका आर्थिक मूल्य स्वीकार करते हैं, यह भी अच्छी बात है। मैं उनसे और उनकी तरह सोचनेवाले दूसरे लोगोंसे यह कहता हूँ कि खादीका राजनीतिक मूल्य उसके आर्थिक मूल्यसे ही पैदा होता है। भूखा व्यक्ति कुछ करनेसे पहले अपने पेटकी ज्वालाको शान्त करनेकी बात सोचता है। विश्वामित्र-जैसे तपस्वी ऋषिकी प्रसिद्ध घटना यहाँ उल्लेखनीय है। तपस्यामें उनका कोई सानी नहीं था। किन्तु जब वे तीव्र भूखसे पीड़ित थे तो वे इतने नीचे उतर आये कि उन्होंने निषिद्ध खाद्यकी भी चोरी की। इससे प्रकट होता है कि भूखा आदमी कितना विवश हो जाता है। वह अन्नका एक दाना पानेके लिए अपनी स्वतन्त्रता और सर्वस्व भी बेच देगा। महासागरोंमें यात्रा करते हुए जब नाविक लोग खाद्यके अभावसे पीड़ित होते हैं तो अपनी भूखको शान्त करनेके लिए नर-मांस भक्षणतक का सहारा लेते हुए सुने गये हैं। भारतके करोड़ों लोगोंकी स्थिति भी ऐसी ही है। उनके लिए स्वतन्त्रता, ईश्वर और ऐसे सभी शब्द कोरे शब्द हैं, जिनका कोई भी अर्थ नहीं है। ये शब्द उनको कर्ण-कटु लगते हैं। वे तो उसी मनुष्यका स्वागत करेंगे जो उन्हें अन्नका एक

दाना देगा और यदि हम इन लोगोंमें स्वतन्त्रताकी भावना पैदा करना चाहते हैं तो हमें उन्हें ऐसा काम देना पड़ेगा जिसे वे अपने उजड़े घरोंमें आसानीसे कर सकें और जिससे उनको नमक-रोटी मिल सके। यह केवल चरखेसे ही हो सकता है। और जब वे स्वावलम्बी हो जायेंगे और अपना गुजारा खुद कर सकेंगे तब हम उनसे स्वतन्त्रताकी, कांग्रेस आदिकी बात कह सकते हैं। इसलिए जो लोग उनको काम देंगे और दो रोटी पानेका साधन देंगे वे ही उनके मुक्तिदाता होंगे और वे ही उनमें स्वतन्त्रताकी भूख जगायेंगे। इसीलिए चरखेका राजनीतिक महत्त्व है। इसके अतिरिक्त, इसमें विदेशी कपड़ेको हटानेकी शक्ति है और इस प्रकार अंग्रेजोंको भारतपर कब्जा रखनेका जो बड़ेसे-बड़ा लोभ है, उसको दूर करनेकी क्षमता है। अंग्रेज लोग इस लालचके कारण ही तो भारतमें जलियाँवाला बाग-जैसे असंख्य हत्याकाण्डकी पुनरावृत्ति करनेका खतरा मोल लेते हैं।

और चूंकि मैं लॉर्ड रीडिंगसे खादी पहननेके लिए कहता हूँ, इससे खादीका राजनीतिक मूल्य क्यों घट जाना चाहिए? निश्चय ही अंग्रेजोंसे हमारा झगड़ा इसलिए नहीं है कि वे अंग्रेज हैं। असहयोगका तरीका अंग्रेजोंमें ऐसा परिवर्तन करनेका तरीका है जिससे वे भारतका हित सोच सकें। यदि वे हमारी अत्यन्त प्रिय आकांक्षाओंकी पूर्ति करेंगे, यदि उनका उद्देश्य भी वही होगा जो हमारा है और वे खादी पहनेंगे, यदि वे हमसे भारतमें शराबकी बिक्री बिलकुल बन्द करानेमें और भयंकर सैनिक व्ययको कम करनेमें सहयोग करेंगे और भारतमें संगीनोंके बलपर नहीं, बल्कि हमारी सद्भावनाके बलपर रहनेके लिए तैयार होंगे तो क्या हम एक समान उद्देश्यकी पूर्तिमें अपने सहकर्मियोंके रूपमें उनका स्वागत न करेंगे? मेरे विचारसे तो अंग्रेजोंको खादी पहनने और चरखा चलानेके लिए कहनेसे इन चीजोंका राजनीतिक मूल्य बढ़ता है और साथ ही इनके पीछे अंग्रेजोंके प्रति वैमनस्यकी भावना है, यह सन्देह तनिक भी नहीं रहता।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १८-३-१९२६

१४२. एक नीरस परिसंवाद

यह लेख 'यंग इंडिया' के ११ फरवरीके अंकमें प्रकाशित "बाकी पैसेसे खादी खरीदिए" के क्रममें लिखा गया है। शीर्षक स्वयं च० राजगोपालाचारीने चुना है। लेकिन पाठक खुद ही तय करें कि यह परिसंवाद नीरस है अथवा सरस।[1]

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १८-३-१९२६

१. इस प्रस्तावनाके साथ कताई और खादी-कार्यपर राजगोपालाचारी द्वारा लिखा एक अत्यन्त रोचक परिसंवाद प्रकाशित किया गया था।

१४३. केवल परिमाणका भेद

ग्लासगो भारतीय संघके अधिकारियोंने एक गश्ती पत्र जारी किया है, जिससे ग्लासगोमें रहनेवाले कुछ भारतीयोंपर लगाई गई निर्योग्यताएँ प्रकाशमें आई हैं। उस पत्रसे मैं निम्नलिखित अंश उद्धृत करता हूँ:

> १८ मार्च, १९२५ को गृह-विभागके सचिवने एक आदेश जारी किया, जिसकी एक प्रति इसके साथ संलग्न है। आदेशमें "विदेशी खलासियों"का पंजीयन करनेका निर्देश किया गया है। इस वर्षके जनवरी महीनेसे ग्लासगो शहर और जिलेमें इस आदेशपर अमल किया जा रहा है और यहाँके पुलिसके अधिकारियोंने आदेशके अन्तर्गत कार्य करते हुए उन व्यक्तियोंको भी, जिनके नाम और पते साथकी सूचीमें दिये हुए हैं, मनमाने ढंगसे विदेशियोंके रूपमें दर्ज किया है। वे सब लोग इस देशमें तीनसे लेकर चौदह सालसे रह रहे हैं। उनका जन्म भारतमें ही हुआ था,—अधिकांश लोगोंका पंजाबमें—और वे ब्रिटिश रियाया हैं। इनमें से बहुत-से लोग तो युद्धके दौरान यहाँ कामपर लिये गये थे और अब भी वे मजदूरोंके रूपमें यहाँ काम करते हैं। कुछ फेरीका काम करते हैं और कोई-कोई खलासीका काम भी करते हैं। वे सब बड़े शान्त और कानूनका पालन करनेवाले नागरिक हैं। गृह-विभागके सचिवका इन लोगोंको "विदेशी खलासी" के रूपमें पंजीकृत करनेका इरादा है, पर वे निःसन्देह विदेशी नहीं हैं; और यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण है कि उन्हें जो शिनाख्त-पुस्तिका दी गई है, उसमें उनके राष्ट्र और जन्मस्थानके नामोंकी जगह खाली छोड़ दी गई है। हम भारतीयोंका खयाल है कि गृह-विभागकी यह कार्रवाई भारतीयोंके व्यवस्थित बहिष्कारकी सामान्य नीतिकी, जो पिछले कुछ वर्षोंसे जोरोंपर है, पराकाष्ठा है। "स्कॉटलैंडके अत्यन्त उदार नगर" ग्लासगोमें तमाम भारतीयोंको उनकी राष्ट्रीयताके कारण कुछ सिनेमाघरों और आमोद-प्रमोदके अन्य स्थानोंपर जानेकी मनाही कर दी गई है। ब्रिटेनके इतिहासमें उसपर आये सबसे घोर संकट और विपत्तिके दिनोंमें भारतीयों द्वारा की गई उसकी विशिष्ट सेवाके लिए इस देशके लोगोंकी कृतज्ञताका यह बड़ा अच्छा सबूत है!

इस पत्रके साथ गृह-सचिवके हस्ताक्षरोंसे युक्त आदेश भी नत्थी किया हुआ है। इसे "रंगदार विदेशी खलासी", पर विशेष नियन्त्रण रखनेका आदेश कहा गया है। इस आदेशमें ६३ व्यक्तियोका उल्लेख है। शायद एकको छोड़कर, जो नामसे हिन्दू लगता है, बाकी सब मुसलमान हैं। उनमें से अधिकांश लोगोंको फेरी लगानेवाला बताया गया है, केवल दो व्यक्तियोंको खलासी बताया गया है। और वे सब मुख्यतः

मीरपुर और जालन्धर जिलोंके रहनेवाले हैं। वे सबके-सब निरपवाद रूपसे पंजाबके रहनेवाले हैं। यह अनुमान लगाना बड़ा ही कठिन है कि उन्हें एशियाई न कहकर रंगदार लोग क्यों कहा गया है। और यह कहना तो और भी ज्यादा मुश्किल है कि जब वे स्पष्ट रूपसे ब्रिटिश प्रजाजन हैं तो फिर उन्हें विदेशी क्यों कहा गया है।

इसी पंजीयनमें जो व्यवहार छिपा हुआ है, उसे समझना कोई कठिन बात नहीं है। यहाँ भी बात वही है, जो दक्षिण आफ्रिकामें है। केवल परिमाणमें भेद है, और मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि ग्रेटब्रिटेनमें भी उतनी बड़ी संख्यामें भारतीय जा बसें तो वहाँके लोग भी भयभीत हो उठेंगे और कानून बनाने लगेंगे। अभी कुछ ही दिन पहले समाचारपत्रोंमें यह बात प्रकाशित हुई थी कि लिवरपूलमें चीनी-धोबियोंको बहुत सताया गया। अमेरिकामें भी हालत कोई बेहतर नहीं है। कुछ ही दिन पहले मैंने इसके बारेमें उस महाद्वीपमें रहनेवाले एक भारतीय विद्यार्थीका पत्र प्रकाशित किया था। अभी हालमें ही अमेरिकासे लौटे हुए एक विद्यार्थीने मुझसे मुलाकात की थी। वे सुसंस्कृत व्यक्ति हैं, अच्छी और शुद्ध अंग्रेजी बोलते हैं और बड़े विनयी हैं। उन्होंने मेरे सामने अमेरिकी रंग-द्वेषका जो चित्र खींचा वह बड़ा दुखद था और उनकी बातोंसे मुझे लगा कि यह रंग-द्वेष निरन्तर बढ़ता ही जा रहा है। इसलिए दक्षिण आफ्रिकामें आज जो प्रश्न उपस्थित है, वह स्थानीय नहीं है; वह तो समस्त संसारकी बहुत भारी समस्या है। जबतक एशियाई जातियाँ पराधीन हैं और किस बातमें उनकी भलाई है, इस ओर ध्यान नहीं देतीं तबतक उनके साथ आज जो व्यवहार किया जा रहा है, वैसा व्यवहार करना बड़ा ही आसान काम है, फिर चाहे वे इंग्लैंडमें हों अथवा अमेरिका या आफ्रिकामें, और वही क्यों, खुद अपने-अपने घरमें — चीन या भारतमें — भी उनके साथ ऐसा व्यवहार करना आसान है। लेकिन वे बहुत दिनोंतक नींदमें नहीं पड़े रहेंगे। तो हमें यह आशा रखनी चाहिए कि उनकी जागृतिसे कहीं वर्तमान गुत्थी और अधिक न उलझ जाये और जातीय कटुताका जो भाव आज मौजूद है, वह और अधिक न बढ़ने पाये। लेकिन पश्चिमी दुनिया शोषणकी जिस प्रवृत्तिसे ग्रस्त है, उसका स्थान जबतक सच्ची सेवाकी भावना नहीं लेती या जबतक एशिया और आफ्रिकाकी जातियाँ यह नहीं समझ जाती कि उनके सहयोगके बिना, जो बहुत अंशोंमें स्वेच्छाप्रेरित ही होता है, उनका शोषण नहीं हो सकता और ऐसा समझकर जबतक वे इस तरह सहयोग करना बन्द नहीं करतीं तबतक इस भावी संकटको कभी टाला नहीं जा सकता। मौजूदा उदाहरणको ही लें। बहादुर पंजाबियोंके साथ जो जातीय भेदभाव बरता जा रहा है, उसे बरदाश्त करनेकी उन्हें जरूरत नहीं है और न अपमानको ही सहन करना चाहिए। जहाँ उनके साथ उचित व्यवहार नहीं किया जाता, उन्हें वहाँ रहना ही नहीं चाहिए और यदि उन्हें वहाँ रहना ही है तो उन्हें अपने प्रति किये जानेवाले अपमानजनक व्यवहारके आगे झुकना नहीं चाहिए। उन्हें उसकी अवज्ञा करनी चाहिए और उसके परिणाम-स्वरूप कैदकी सजा भुगतनी चाहिए। अकसर यह देखा गया है कि जिनके विरुद्ध भेद-भाव बरता जाता है, वे लोग खुद ही, चाहे बहुत थोड़े अंशोंमें ही क्यों न हो,

उसके लिए उत्तरदायी होते हैं। यदि इन पंजाबियोंके मामलेमें भी यही बात हो तो उन्हे ऐसी हरएक बातको दूर कर देना चाहिए ताकि उनकी तरफ कोई उँगली न उठा सके। किसी व्यक्तिको चमड़ीका रग चाहे जैसा हो, यदि उसके मनमें अपनी उचित प्रतिष्ठाका भान आ जाये तो वह पायेगा कि भले ही सारी दुनिया उसके खिलाफ हो, वह सिर ऊँचा करके खड़ा रह सकता है।

यहाँ मै प्रसगवश, जिस पत्रका अंश मैंने ऊपर उद्धृत किया है, उसके लेखकोंका ध्यान इस बातकी ओर आकर्षित करना चाहूँगा कि पत्र यद्यपि काफी चुस्त-दुरुस्त और प्रशसनीय ढगसे लिखा हुआ है, फिर भी इसमें "ब्रिटेनके इतिहासमें उसपर आये सबसे घोर सकट और विपत्तिके दिनोंमें भारतीयो द्वारा की गई उसकी विशिष्ट सेवा" पर जो जोर दिया गया है, उसके कारण यह पत्र मुझे खटकता है।

यदि भारतने युद्धके समय अपनी खुशीसे उसकी सेवा की तो उसके बदले कृतज्ञताकी माँग करनेसे उस सेवाका मूल्य घट जाता है, क्योंकि यह सेवा उसने कर्त्तव्य मानकर ही की और "जब कर्तव्य दानकी भावनासे किया गया हो तभी वह पुण्य-कार्य माना जा सकता है।" लेकिन सच बात तो यह है कि उस समय जो सेवा अर्पित की गई थी, वह स्वेच्छासे नही की गई थी। इसके पीछे अंग्रेजोका बल-प्रयोग या बल-प्रयोग करनेकी धमकी एक बहुत बड़ा कारण थी। जब-जब इस सेवाका जिक्र किया जाता है, तब-तब यदि अंग्रेज लोग यह उत्तर नही देते हैं कि वह तो बेगारके तौरपर वैसे ही ली गई थी — वैसे ही जैसे कि अधिकारी लोग जब भारतीय गाँवोंके दौरेपर जाते हैं तो वहाँके लोगोंसे बेगारमें मजदूरी कराते हैं — तो यह उनका समझदारी-भरा संयम ही है। युद्धके दौरान पंजाबमें जो लोग भर्ती होनेके लिए घरसे निकलनेपर मजबूर किये गये थे, उन्हें अपनी उस समयकी सेवाके लिए ब्रिटिश सरकारसे कृतज्ञताकी आशा रखना तो दूर, उसपर अभिमान करनेका भी कोई कारण नही है। उस कृतज्ञताके पात्र तो माइकेल ओ'डायर थे, जिन्होने पंजाबके सभी जिलोसे उतने रंगरूटोकी माँग की जितनेको भरती करनेकी जिम्मेदारी उन्हें सौंपी गई थी और चाहे जिस कीमतपर भी हुआ हो, उतनी संख्या पूरी भी कर दी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १८-३-१९२६

१४४. पत्र : जोआकिम हेनरी राइनहोल्डको

साबरमती आश्रम
१८ मार्च, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मुझे यह जानकर खुशी हुई कि मेरे लेखोंसे आपको लाभ हुआ है। आप 'यंग इंडिया' के किसी भी लेखका अनुवाद कर सकते हैं। यूरोपमें जर्मन और फ्रेंच भाषाओंमें अनुवाद मिल सकते हैं और सर्वश्री एस० गणेशन, पाइ-क्रॉफ्ट्स रोड, ट्रिप्लिकेन, मद्रास, द्वारा प्रकाशित एक अंग्रेजी संस्करण भी है।

हृदयसे आपका,

प्रो० डॉ० जोआकिम हेनरी राइनहोल्ड
प्रोफेसर, फ्री यूनिवर्सिटी लीग
वारसा, पोलैंड

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १२४४६) की फोटो-नकलसे।

१४५. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

साबरमती आश्रम
१८ मार्च, १९२६

प्रिय सी० आर०,

मेरे और केलप्पनके बीच जो पत्र-व्यवहार हुआ है, उसे साथमें भेज रहा हूँ। मैं आपकी कठिनाइयाँ जानता हूँ। जो बोझ आपसे न उठाते बने, मुझे बता देनेकी कृपा करेंगे। आपका असली काम तो आपने जो आश्रम स्थापित किया है, उसे विक-सित करना है। बाकी सब बादमें ही आता है। इसलिए अगर कोई काम करना आपको अपनी शक्तिसे बाहर जान पड़े तो मुझे वैसा सूचित करनेमें तनिक भी संकोच न करें। उदाहरणके लिए, मैं निर्णय करनेके लिए कोई मामला आपको सौंपूं और आपको लगे कि आप यह काम नहीं कर सकते या अगर आपकी सलाहपर कोई संस्था स्थापित की जाये, लेकिन उसकी देखरेखका काम आपके लिए अशक्य हो तो मुझे साफ-साफ वैसा बता दें। लेकिन, अगर अपने मुख्य काममें बाधा डाले बिना आप यह सब कर सकें तो मैं चाहूँगा कि अवश्य करें। इस पत्रको और इससे पहलेके पत्रको पढ़कर मुझे बताइए कि केलप्पनके बारेमें क्या किया जाये।

इसी तरह मैं दक्षिण भारतके बाढ़-सहायता कोषकी बची हुई राशिके बारेमें भी आपकी सलाह चाहता हूँ। मथुरादासके हाथमें खासी रकम है और मेरे हाथमें भी। आप इसे किस काममें लगाना चाहते हैं। हमें जल्दी ही तय करना है। अलग-अलग कोषोंको मिलाकर, जो क्षेत्र बाढ़से प्रभावित हुए थे, उनमें चरखे और खादीके कामको आगे बढ़ानेके लिए एक ट्रस्ट कायम किया जा सकता है। जिन क्षेत्रोंपर बीच-बीचमें अकाल और बाढ़का प्रकोप होता है, उन्हें भी ट्रस्टमें शामिल किया जा सकता है। लेकिन, हो सकता है, आप कोई और सुझाव देना चाहें।

कुमारका लिखा एक पत्र भी मैं साथमें भेज रहा हूँ। मैंने उसे उत्तर नहीं दिया है और जबतक आप मुझे यह सूचित नहीं कर देते कि आप ये भार उठा सकते हैं या नहीं तबतक मैं उसे कोई उत्तर देना भी नहीं चाहता।

आपका,

संलग्न पत्र : ३
श्रीयुत च० राजगोपालाचारी
गांधी आश्रम
तिरुचेनगोडु

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३६६) की फोटो-नकलसे।

१४६. पत्र : किशोरलाल मशरूवालाको

आश्रम
१८ मार्च, १९२६

चि० किशोरलाल,

तुम्हारे दोनों पत्र मिल गये। दूसरा पत्र आनेके बाद ही मैंने तुम्हें लिखनेका विचार किया था। तुमने जबसे पिंजरापोलके बारेमें लिखा है तभीसे मैं चिन्तित हूँ। मेरी इच्छा तो निरन्तर यही रही है कि तुम जल्दीसे-जल्दी देवलाली पहुँच जाओ।

बन्दरोंके प्रश्नके बारेमें तुम जो लेख दे गये थे, उसे तो मैं तभी पढ़ गया था। तुमने अपने पत्रके समान अपने लेखमें भी इस प्रश्नका समाधान अधूरा ही छोड़ा है। मुझे तो इस समय शुद्ध धार्मिक समाधान चाहिए। उसपर अमल तो बहुत दिनोंमें होगा। वर्षोंकी बद्धमूल भावना किसी गम्भीर कारणके बिना एकाएक कैसे समाप्त की जा सकती है? लेकिन इस समय यह प्रश्न हमारे सामने केवल धार्मिक दृष्टिसे खड़ा होता है। याद रहे कि बन्दरोंके वंशको हम स्वयं ही बढ़ाते रहे हैं। और अब हमें उनके नाशका साक्षी होना पड़ रहा है। यह नाश दो तरहसे होता है: (१) अंग्रेज और विदेशी लोग अपने-अपने मुहल्लोंमें आनेवाले बन्दरोंका नाश करते रहें और (२) जीवित बन्दर, उनपर उनके जीते-जी प्रयोग करनेके लिए,

विदेशोंमें भेजे जाते हैं। और इन दोनों स्थितियोंमें बन्दरोंकी संख्यामें होनेवाली कमी-की बातसे हम अप्रकट सन्तोष प्राप्त करते हैं, यह तीसरी बात है। ऐसी स्थितिमें हमें क्या करना चाहिए? यदि इस तरह हम थोड़े-से बन्दरोंके नाशसे मुक्त हो सकते हों तो ऐसा करना धर्म होगा अथवा समाजके एक अंगके रूपमे उनके इस नाशके प्रति हमारा उदासीन रहना धर्म होगा? समाजके अंगके रूपमें हमारा सामाजिक धर्म क्या है? बन्दरोंके प्रश्नके समाधानमें कबूतरोंके प्रश्नका समाधान भी आ जाता है। कबूतरोंकी वृद्धि हम जान-बूझकर कर रहे हैं। इस बारेमें मुझे तनिक भी शंका नहीं है। पिंजरापोल एक आधुनिक संस्था है। इस संस्थामें जो दया-भावना है, उसके मूलमें ज्ञान है, ऐसा मुझे नहीं लगता और यह तो दरवाजा खुला रखकर छोटे-मोटे छिद्र बन्द करने-जैसी बात हुई। अहिंसापर मैं इस समय अहिंसाकी ही दृष्टिसे विचार कर रहा हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि बन्दरों आदिके प्रश्नपर हम केवल रूढ़िवश ही व्यवहार करते हैं; बन्दरोंके हितका विचार नही करते। और दूसरा प्रश्न जो अहिंसासे ही उद्‌भूत होता है, यह है कि शरीरके साथ होनेवाले उपद्रवोंमें अहिंसक मनुष्य मर्यादाकी रेखा कहाँ खीचे।

ये बातें मैंने इसलिए लिखी हैं कि तुम इनपर फुर्सतके समय विचार करो। इनका उत्तर पानेकी मुझे तनिक भी उतावली नहीं है। प्रथम तो तुम स्वयं ही विचार करना। बादमें नाथके[1] साथ विचार करना और जिस निर्णयपर पहुँचो, उससे मुझे अवगत करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० १९८७१) की माइक्रोफिल्मसे।

१४७. पत्र : मॉड चीजमैनको

साबरमती आश्रम
१९ मार्च, १९२६

प्रिय मॉड,

तुम्हारा दूसरा पत्र मेरे सामने है। कितना अच्छा पत्र लिखा है तुमने! मेरे सामने दो ही रास्ते हैं—या तो उत्तर बोलकर लिखा दूँ या अगर खुद लिखना चाहूँ तो इसका उत्तर देना अनिश्चित कालतकके लिए रोक रखूँ। सो मैं बोलकर ही लिखा रहा हूँ। मेरे दाहिने हाथको आरामकी जरूरत है। बायेंसे भी लिख सकता हूँ, लेकिन उसमें समय बहुत लगता है।

तुम्हारा पत्र पढ़कर मुझे पुराने दिनोंके उन आनन्दपूर्ण क्षणोंकी याद आ गई, जब हम तीनों दूर-दूरतक घूमने जाया करते थे। माताजीसे कहो कि मुझे अकसर

१. केदारनाथ कुलकर्णी।

उनकी याद आती है। इसी तरह जिन पुराने दिनोंकी चर्चा मैंने अभी की है, उन दिनों वे अपने घर मेरा जो आतिथ्य किया करती थीं, उसकी भी याद बहुत आती है। आशा है, तुम अपने अगले पत्रमें मुझे सूचित करोगी कि तुम पुनः पूरी तरहसे और पूर्ववत् स्वस्थ हो गई हो।

अगर मैंने अपने पत्रमें श्रीमती गांधीकी कोई चर्चा नहीं की तो स्पष्टतः उसका मतलब यह था कि वे मेरे साथ बिलकुल मजेमें हैं और मेरी सहायता कर रही हैं। कानूनी तौरपर या और भी किसी तरहसे हम दोनोंके एक-दूसरेसे अलग होनेका कोई खतरा नहीं है — और किसी कारणसे नहीं तो इस कारणसे कि हिन्दू-धर्मकी बात तो दूर रही, खुद मेरे नैतिक नियमोंमें भी इसकी गुंजाइश नहीं है। रामदास चरखेके काममें मेरी सहायता कर रहा है। हरिलालके अलावा और किसी लड़केने शादी नहीं की है। रामदासकी सगाई अभी पिछले ही दिनों हुई है। शायद अगले साल शादी हो। वैसे इस समय जहाँतक वह अपने मनको समझता है, वह अभी दो साल शादी नहीं करना चाहता।

हेनरीसे कहो कि 'भगवद्गीता'के विभिन्न अंग्रेजी अनुवादोंका उसने जो तुलनात्मक संकलन तैयार किया है उसकी निजी प्रति अगर उसके पास हो तो मैं चाहूँगा कि उसे रजिस्टर्ड डाकसे मेरे पास भेज दे। उसने जो प्रति मुझे दी थी उसे तो, पता नहीं कैसे, मैंने कहीं इधर-उधर रख दिया है। इसलिए उसकी निजी प्रतिकी मुझे सख्त जरूरत है। उसकी नकल करवाकर मैं उसे वापस भेज दूँगा।

तुम्हारा,

श्रीमती मॉड चीजमैन
१५ सी, थॉर्नी हेज रोड
गनर्सबरी
लन्दन, डब्ल्यू० ४

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १२४४७) की फोटो-नकलसे।

१४८. पत्र : रामेश्वरदास पोद्दारको

आश्रम
१९ मार्च, १९२६

भाई रामेश्वरजी,

आपका पत्र मिला। आप शोच न करें। कर्त्तव्यका यथाशक्ति पालन करनेके बाद शोचकी आवश्यकता नहीं है। द्वारिका इत्यादि स्थानोंमें जाना इसपर मेरी श्रद्धा नहीं है. इसलिये किसीकी न होनी चाहिए ऐसा फलितार्थ नहीं निकलता है। शुद्ध भावसे ऐसे तीर्थक्षेत्रोंमें जानेमें पाप नहीं है। इसलिये मैंने आपको सलाह दी कि आप अपनी धर्मपत्नी इ० को द्वारकाजी ले जाय। आखरका तीर्थक्षेत्र तो सबके लिये पवित्र हृदय ही है। आपकी मानसिक व्याधी मिटनेका उपाय रामनाम जप ही है।

अस्पृश्य किसको कहें? किसी मनुष्यको अपने जन्मके कारण अस्पृश्य मानना बड़ा पाप है। जिसके दिलमें भाव है और जो शरीरसे ही पवित्र है उसके मंदिरमें जानेसे क्या हानि हो सकती है? आप अस्पृश्यताकी उपाधिमें से सर्वथा मुक्त हो जाय। आपके लिये अस्पृश्यताका संग्रह अनुचित है।

मोहनदास गांधीके वं० मा०

सरनामा: धूलिया

मूल पत्र (एस० एन० १९८७२) की माइक्रोफिल्मसे।

१४९. पत्र: उमरावसिंहको

आश्रम
१९ मार्च, १९२६

भाई उमरावसिंहजी,

आपका पत्र मिला। मेरे पास न आपको देनेके लिये रुपये हैं, न वह मेरा क्षेत्र है, जिसमें आप हैं।

आपका,
मोहनदास गांधी

मूल पत्र (एस० एन० १९८७५) की माइक्रोफिल्मसे।

१५०. पत्र: पूंजा श्रवणको

साबरमती आश्रम
१९ मार्च, १९२६

भाईश्री ५ पूंजा श्रवण,

आपका पत्र मिला। मैं आपको किस तरह समझा सकता हूँ कि भाई शिवजीके प्रति मेरे मनमें न तो द्वेष है और न क्रोध! मैं अपने-आपको भ्रान्त भी नहीं मानता। मेरी भूल मुझे आप अथवा कोई भी बता सके तो मैं उसे जानने और स्वीकार करनेके लिए और उसका प्रायश्चित्त करनेके लिए उत्सुक हूँ। मैंने जो धारणा बनाई है उसके लिए भाई शिवजी खुद जिम्मेदार हैं। मैंने भाई शिवजीके बारेमें जाँच-पड़ताल की, सो उनके प्रति अपने प्रेमके कारण और उनकी सहमतिसे ही की। यदि वे सहमत न होते तो मुझे उसका कोई भी हक नहीं था, यह बात मैं स्वीकार करता हूँ। पंच-निर्णयकी प्रार्थना भी मैंने नहीं, उन्होंने की थी। किसी भी तरह भाई शिवजी निर्दोष

हूँ, यदि यह बात कोई मनुष्य मुझे समझा सके तो मैंने तो यह कहा है कि उसे समझानेके लिए भाई शिवजी जिससे चाहें मैं उससे बात करनेके लिए तैयार हूँ। आखिरकार यदि पंचायत बैठेगी भी तो उनकी इच्छासे ही बैठेगी। पंचायत बुलानेमें यदि कोई ढील है तो वह भी उनके कारण अथवा कहना चाहिए कि भाई मावजीके कारण ही है। यदि पंचायत बैठेगी तो मैं आपका पत्र अवश्य उसे सौंप दूंगा। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं किसी भी बातको पंचायतसे छुपाऊँगा नहीं। मैं भाई शिवजीके प्रति आपके भक्ति-भावके लिए आपको बधाई देता हूँ। मैं आपकी दुःखकी भावनाको समझ सकता हूँ। आप विश्वास रखें कि आपके दुःखसे मैं दुःखी हूँ। लेकिन जो बात मेरे मनमें गहरी बैठ गई है, मैं उसे जबरदस्ती कैसे निकाल सकता हूँ?

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (एस० एन० १९८७३) की माइक्रोफिल्मसे।

१५१. पत्र : गिरधरलालको

आश्रम
१९ मार्च, १९२६

भाई गिरधरलाल,

आपका पत्र मिला। कुछ सन्तोष तो इस बातसे प्राप्त किया जा सकता है कि इस समय आपकी-जैसी स्थिति जगतमें अन्य बहुत-से लोगोंकी है।

१. आपके पास जो समय बचा, आप उसका उपयोग नहीं कर सके, इसके लिए आपकी अपेक्षा हमारा वातावरण ज्यादा जिम्मेदार है। इसमें ईश्वरका संकेत है, ऐसा मानकर कदापि सन्तोष न करना चाहिए, बल्कि अपने भीतर इस वातावरणका विरोध करनेकी शक्ति विकसित करनी चाहिए।

२. जहाँ आप कुछ कर नहीं सकते, वहाँ व्यर्थ दुःखी होनेके बजाय आप रामनाम जपते और प्रसन्न रहते हैं, इसमें तो मुझे कोई भूल दिखाई नहीं देती।

३. धनकी प्राप्ति नहीं होती यह तो कोई दुःखकी बात नहीं। लेकिन यदि धर्मकी रक्षा न होती हो तो यह अवश्य दुःखकी बात है। धर्मकी रक्षा होती है या नहीं, यह तो आप स्वयं ही जान सकते हैं।

४. स्त्री-संगकी अपेक्षा स्वप्नदोषसे ज्यादा कमजोरी आती है, ऐसा मानना बहुत बड़ी भूल है। दोनों ही बातें कमजोरीके कारण होती हैं और अनेक बार स्त्री-संगसे ज्यादा कमजोरी पैदा होती है। लेकिन रिवाजके कारण हम स्त्री-संगसे पैदा होनेवाली कमजोरीको देख नहीं सकते और स्वप्नदोषसे मनपर चोट लगती है, इसलिए जितनी कमजोरी सचमुच होती है, उसकी अपेक्षा हम उसे ज्यादा मान लेते हैं। स्त्री-संग करनेके बावजूद स्वप्नदोष होता है, यह बात आपके ध्यानसे बाहर न होगी। इसलिए यदि आप ब्रह्मचर्यके महत्त्वको स्वीकार करते हों और उसका पालन करना चाहते हों तो

सतत प्रयत्न करनेके बावजूद जो स्वप्नदोष हो, उसकी चिन्ता न करके ब्रह्मचर्यका पालन करते जायें। ब्रह्मचर्यको आचरणमें उतारनेके बाद लम्बे समयके पश्चात् मनपर अधिकार होगा। कब होगा, यह कहा नहीं जा सकता, क्योंकि सबके लिए कालकी एक ही मर्यादा नहीं होती। प्रत्येक मनुष्यकी शक्तिके अनुसार समय कम अथवा अधिक लगता है। कोई जीवन-पर्यन्त मनपर काबू नहीं कर पाता तो भी उसे आचारमें लाये हुए ब्रह्मचर्यका निश्चित फल तो मिलता ही है और वह भविष्यमें ऐसे शरीरका स्वामी बनता है जो मनको आसानीसे रोक सके।

५. मेरे मतानुसार ब्रह्मचर्यका पालन करनेके लिए न तो पुरुषको स्त्रीसे अनुमति लेनेकी जरूरत है और न स्त्रीको पुरुषसे। अच्छा है कि इस विषयमें दोनों परस्पर एक-दूसरेकी सहायता करें। इस सहायताकी प्राप्तिका प्रयत्न करना उचित है। लेकिन अनुमति मिले या न मिले, जिसकी इच्छा हो वह ब्रह्मचर्यका पालन करे और उसका लाभ उठाये। संगसे बचनेके लिए अनुमति लेनेकी जरूरत नहीं होती; परन्तु संग करनेके लिए दोनोंकी अनुमति आवश्यक है। जो पुरुष अपनी पत्नीकी अनुमति प्राप्त किये बिना संग करता है, वह बलात्कारका पाप करता है। वह इस तरह ईश्वरीय और सांसारिक दोनों नियमोंको भंग करता है।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (एस० एन० १९८७४) की माइक्रोफिल्मसे।

१५२. पत्र: परशुराम मेहरोत्राको

साबरमती आश्रम
शनिवार [२० मार्च, १९२६][१]

भाई परसराम,

तुम्हारा पत्र मिला। विद्यापीठकी जगह भले भर गई। विलंब होनेसे भी दूसरी जगह नहीं भर ली जायगी। वहांका कार्य पूरा करनेके बाद भी आना। टाइपराईटिंगका अभ्यास कर रहे हो यह ठीक है।

बापूके आशीर्वाद

श्री परसराम
'स्त्री दर्पण' कार्यालय
कानपुर (यू० पी०)

मूलपत्र (सी० डब्ल्यू० ४९६१) से।
सौजन्य: परशुराम मेहरोत्रा

१. डाककी मुहरसे।

१५३. पत्र : नलिनी रंजन सरकारको

साबरमती आश्रम
२० मार्च, १९२६

प्रिय मित्र,

देर तो हुई है पर कोई काम न किया जाये, इससे देर अच्छी। आपका पत्र अभी-अभी मिला। बड़ी खुशी हुई; आपने सब-कुछ विस्तारसे लिखा है। डॉ० विधानने इस सम्बन्धमें आपसे पहले ही एक छोटा-सा पत्र भेज दिया था। आपने तफसील देकर उसे गोया पूरा कर दिया है। डॉ० विधानके पत्रके उत्तरमें मैंने अपना संदेश भेज दिया है। इसलिए यहाँ उसे दोहरानेकी जरूरत नहीं है।

आशा है, यह संस्था[1] दिन-दिन प्रगति करेगी। सर राजेन्द्र नाथके हाथमें जो राशि है, उसका उपयोग करनेमें क्या अब भी कोई बाधा है?

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीयुत नलिनी रंजन सरकार
६-ए, कॉरपोरेशन स्ट्रीट
कलकत्ता

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० १०७०२) की फोटो-नकलसे।

१५४. पत्र : लाला लाजपतरायको[2]

साबरमती आश्रम
२० मार्च, १९२६

प्रिय लालाजी,

आपका पत्र मिला। आपके पत्रके उत्तरमें मैंने जो पत्र लिखा था, उसकी प्राप्ति आपने सूचित नहीं की। आशा है, वह आपको समयसे मिल गया होगा।

१. चित्तरंजन सेवा सदन।

२. यह लाला लाजपतरायके १७-३-१९२६ के पत्रके उत्तरमें लिखा गया था। लालाजीने गांधीजीके स्वास्थ्यके खयालसे भारतसे बाहर जानेकी सलाह देते हुए लिखा था कि अगर आप जाना तय करें तो आपके फिनलैंड प्रवास-कालके कुछ दिनोंतक वहाँ मैं आपकी सेवामें प्रस्तुत रहूँगा। मैं जानता हूँ कि वहाँ मैं आपके साथ रहूँगा, इसमें आपके लिए कोई आकर्षणकी बात नहीं हो सकती, लेकिन मैंने यह बात इसलिए लिखी है कि इस तरह मुझे आपके साथ जितने दिन रहनेका सौभाग्य और लाभ प्राप्त होगा, उतने दिन भारतमें आपके साथ रहनेका अवसर मिलना तो असम्भव ही है।

मैं उसकी प्राप्तिकी सूचना पानेके लिए बड़ा चिन्तित रहा हूँ। कारण यह है कि मैं अपने-आपको इस विषयमें आश्वस्त करना चाहता हूँ कि आपका पत्र मोतीलालजीको दिखाकर मैंने आपका विश्वास भंग तो नहीं किया है।

कारण चाहे जो हो, लेकिन सिर्फ आराम करनेके लिए यूरोप जाना मेरे मनको गवारा नहीं होगा। कश्मीरकी वात छोड़ दीजिए तो भी भारत और भारतके आस-पासके देशोंमें — जैसे लंका या वर्मामें — ऐसे वहुत से स्थान हैं जहाँ आराम करनेके खयालसे जानेकी मैं सोच सकता हूँ; वैसे सच तो यह है कि कश्मीर या हिमालयकी किसी दुर्गम पहाड़ीपर जाकर मुझे जितनी खुशी होगी उतनी खुशी और कहीं जानेसे नहीं होगी। इसलिए अगर मैं फिनलैंड जाऊँगा तो तभी जाऊँगा जव उसके पीछे किसी ठोस लाभकी प्रेरणा हो। दुनियाके विद्यार्थियोंके निकट सम्पर्कमें आनेकी वात, निस्सन्देह, आकर्षक है। यही कारण था कि फिनलैंडके निमन्त्रणको मैंने अमेरिकासे आये निमन्त्रणकी तरह अन्तिम रूपसे अस्वीकार न करके उसका अनिर्णयात्मक उत्तर ही दिया; उसके वादसे वात आगे नहीं वढ़ी है। अगर फिर निमन्त्रण आता है तो मैं उसके गुण-दोषके आधारपर ही उसके वारेमें फैसला करूँगा। लेकिन, मैं आपको इस वातका विश्वास दिलाता हूँ कि मुझे आपकी तरह परिवर्तन और विश्राम की आवश्यकता नहीं है। अगर मित्रगण वातको वढ़ा-चढ़ाकर पेश करें तो मैं क्या कर सकता हूँ?

लेकिन, अगर मैं फिनलैंड गया तो वेशक मार्गदर्शक, मित्र और सलाहकारके रूपमें आपका साहचर्य प्राप्त करके मुझे वड़ी खुशी होगी। कारण, यूरोपमें मैं लन्दन, इंग्लैंडके कुछ तटवर्ती स्थानों और पेरिसके अलावा और कहीं नहीं गया हूँ, जवकि आप सारी दुनियाका भ्रमण कर चुके हैं।

आप कव जानेवाले हैं?

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

लाला लाजपतराय
१२, कोर्ट स्ट्रीट
लाहौर

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ११३३९) की फोटो-नकलसे।

१५५. पत्र : सी० रामलिंग रेड्डीको

साबरमती आश्रम
२० मार्च, १९२६

प्रिय मित्र,

मुझे उम्मीद थी कि मैं आपके पत्रका उत्तर हाथसे लिख सकूंगा, लेकिन यह नही होनेको था। एकके बाद एक कई दिनोतक मैं बोलकर जवाब लिखाना इसलिए टालता रहा कि लिखनेका समय मिल जाये, लेकिन चूंकि मेरे दाहिने हाथको आराम-की जरूरत है और बायें हाथसे लिखना कठिन होता है — खासकर तब जबकि समयकी बहुत कमी हो — इसलिए आपके पत्रकी प्राप्ति सूचित करनेमें और देर न हो, इस खयालसे आखिरकार मैं बोलकर ही लिखवा रहा हूँ।

आपकी इस कठिनाईमें आपके प्रति मेरी पूरी सहानुभूति है, लेकिन इस समय कठिनाइयोंके इस प्रबल तूफानको कौन रोक सकता है? इसलिए केवल इतनी ही आशा की जा सकती है कि असहयोगियोके सामने जो नई परिस्थिति आ सकती है, उसमें वे ऐसा आचरण करेंगे, जिससे देशका मान बढ़े।[1] यदि आप खादीको बनाये रख सकें और खादी जिस भावनाका प्रतीक है, उससे यदि आप अपने इर्दगिर्दका वातावरण भर सकें तो यही काफी होगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सी० रामलिंग रेड्डी,
चित्तूर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३६७) की माइक्रोफिल्मसे।

१५६. पत्र : एक महिलाको

२० मार्च, १९२६

आपका पत्र मिला। आपको खादीकी चोली अच्छी लगती है तो क्या अब आप साड़ीपर नही आयेंगी? किसी स्वदेशी-प्रेमीको विदेशी कपड़ेसे कैसे प्रेम हो सकता है? यदि हमें अपना देश प्यारा है तो हममें अपने देशकी चीजें पहननेका चाव होना चाहिए। हिन्दुस्तानके गरीबोंके हाथके कते और बुने कपड़ोके प्रति जिनके मनमें अरुचि हो, क्या वे भारतकी सन्तान माने जा सकते हैं? अब मैं आपके अगले पत्रमें ऐसी खबर पानेकी आशा रखता हूँ कि आपने विदेशी कपड़ेका त्याग कर दिया है और आप हाथकी कती-बुनी खादी पहनने लगी है।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९८७६) की माइक्रोफिल्मसे।

१. यहाँ साधन-सूत्रमें कुछ भूल दिखाई देती है, जिसे सुधारकर अनुवाद किया गया है।

१५७. पत्र : धनजीको

२० मार्च, १९२६

भाईश्री धनजी,

आपका पत्र मिला। मैंने उसे गंगास्वरूप गंगाबहन और भाईश्री लक्ष्मीदासको पढ़ा दिया है। बहन मोतीके बारेमें मैंने जो अंश लिखा था, वह भाई लक्ष्मीदासको दिखानेके बाद ही प्रकाशित किया था। वे दोनों कहते हैं कि भाटिया जातिमें कन्या-विक्रय प्रचलित अवश्य है; लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रत्येक भाटिया कुटुम्ब, जिसमें कन्या होती है, उसका विक्रय करता है। यदि कन्या-विक्रय एक सामान्य प्रथा है तो मुझे लगता है कि मैंने तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं की है। आपको तो मालूम होगा कि भाटिया जातिमें कन्या आसानीसे नहीं मिल सकती इसलिए बहुत-से भाटिये हरिद्वार जाकर वहाँसे कन्या ले आते हैं। वे वहाँ भी पैसा तो देते ही हैं। अभी हालमें ही, मेरी दृष्टिमें ऐसे ही एक अच्छे परिवारका उदाहरण आया है, जिसमें हरिद्वारसे कन्या लाई गई है। उसे उसके पैसे भी देने पड़े हैं। वह परिवार शिक्षित है। हम लोगोंमें अपने व्यक्तिगत अथवा समाजगत दोषोंके दर्शनके सम्बन्धमें कुछ असहिष्णुता आ गई है। हमारी स्थिति तो ऐसी होनी चाहिए कि यदि कोई हमें हमारा दोष बताये तो हम उससे प्रसन्न हों — फिर भले ही वे दोष सद्भावसे बताये गये हों अथवा दुर्भावसे। मैं जबसे देशमें वापस आया हूँ तबसे भाटियोंसे मेरा सम्पर्क तो रहा ही है और सभीने मुझसे कन्या-विक्रय और ऐसे ही अन्य दोषोंकी चर्चा की है। लेकिन अगर आपको अब भी ऐसा लगे कि मैंने कहीं भूल की है तो आप मुझे अवश्य फिर पत्र लिखें। देशके अथवा विदेशके किसी व्यक्तिके अथवा किसी समाजके दोषोंको देखना, उनकी चर्चा करना अथवा उनपर विचार करना मुझे बिलकुल ही नहीं रुचता। मैं तो गुण-पूजक हूँ। लेकिन जब दोष स्वतः आँखोंके सामने उभर आते हैं अथवा कानमें उनकी झंकार होती है तब उनपर परदा डालना भी अनुचित है। इसलिए मैं प्रसंग आनेपर, यथासम्भव संयत रूपमें, उनकी चर्चा कर देता हूँ।

विवाह एक मांगलिक प्रसंग ही है; लेकिन संगीत, हँसी-मजाक आदिसे उसकी मांगलिकता बढ़ती नहीं, बल्कि घटती है। मांगलिकताका अर्थ है कल्याणकारी। वह कल्याणकारी तभी माना जा सकता है जब उसका धार्मिक रहस्य समझा जा सके और उसके अनुरूप चला जा सके। तुलसीदासजीने विवाह समारोह आदिका वर्णन किया है, सो इसलिए नहीं कि उनका अनुकरण किया जाये। तुलसीदासजीका विषय विवाह-वर्णन नहीं है, अपितु मोक्ष-दर्शन है। इस तत्त्वको काव्यमें प्रस्तुत करते हुए उन्होंने अनेक लोकाचारोंका वर्णन किया है। मैं 'रामायण' का भक्त हूँ; किन्तु उसके अक्षरोंका नहीं, उसकी आत्माका भक्त हूँ। तुलसीदासजीने तो ऐसी अनेक बातें

लिखी हैं, जिनका अनुकरण हम आज न तो करते हैं और न कर ही सकते हैं। वह तो उन्होंने उस समयके रीति-रिवाजोंका वर्णन किया है। आज हमारे पास तुलसीदासजीकी अपेक्षा अधिक लौकिक अनुभव है और यदि हम उस अनुभवका उपयोग करके लौकिक बातोंमें तुलसीदासजीकी दृष्टिसे अर्थात् धार्मिक दृष्टिसे फेर-फार करें तो ही हम तुलसीभक्त हो सकते हैं। तुलसीदासजीने तो कहा है कि स्त्री तो ताड़नाके ही योग्य है। किन्तु हम आज ऐसा थोड़े ही मानते हैं? विवाह सयम पालनेके लिए है और इसीलिए हमें विवाहकी इस मर्यादाका समय-समयपर दर्शन करना चाहिए। हम ऐसा नही करते, इसीलिए अब व्यभिचार, स्वेच्छाचार और अन्य दोष बढ़ गये हैं और विवाहका अर्थ केवल पशुवत् आचरण हो गया है। इससे हमें विचारपूर्वक छुटकारा पाना आवश्यक है।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (एस० एन० १९८७७) की माइक्रोफिल्मसे।

१५८. पत्र : काका कालेलकरको

शनिवार, चैत्र सुदी [७][1] २० मार्च, १९२६

भाईश्री काका,

आपने पहले पत्र लिखा, फिर उसे रोकनेका प्रयत्न किया, लेकिन उसमें सफल नही हुए। जितनी सफलता स्वामीको आपको रोकनेमें मिली उतनी ही सफलता आपको अपने पत्रको रोकनेमें मिली है। "जैसा करोगे वैसा भरोगे", यह उक्ति चरितार्थ हुई है। आपकी दलील तो मुझे बहुत ही क्लिष्ट जान पड़ी है। ऋषियोंने जब मांस-भक्षणके स्थानपर दूध पीनेकी आज्ञा दी और दूधको पवित्र माना तब उनकी निगाहमें गोमांस-भक्षी हिन्दू थे। जो हिन्दू उस समय फलाहारी थे, उनके लिए उन्होंने दूधको पवित्र नहीं ठहराया। ये सब पवित्र वस्तुएँ अपवित्र वस्तुओंकी तुलनामें ही पवित्र बतायी गई हैं। मैं बकरीका दूध पीता हूँ, सो पवित्र समझकर नही। मैं उसे अपवित्र ही मानता हूँ और जब-जब पीता हूँ तब-तब सजग होकर और अरुचिपूर्वक ही पीता हूँ। इसे पीते समय मेरे मनमें यह खयाल रहता ही है कि कही मैं इसे मोहवश तो नहीं पीता। धार्मिक दृष्टिसे, मनुष्यकी शरीर-रचनाकी दृष्टिसे और रसायन-शास्त्रकी दृष्टिसे दूध मनुष्यका आहार नहीं है, इसमें मुझे तनिक भी शका नही। और यदि मुझे अपनी अन्य शक्तियोंका उपयोग करनेका लोभ और मोह न हो तो आप मुझे एक क्षणके लिए भी दूध पीता हुआ नहीं देखेंगे। मनुष्यका आदर्श आहार वनमें प्रकृतिके पकाये हुए फल ही हैं, इस बारेमें मुझे शका नही। लेकिन मुझे रसायन-शास्त्रका इतना ज्ञान नही है। मुझमें जितना चाहिए उतना संयम नही है और

१. साधन-सूत्रमें यहाँ ६ है; किन्तु उस तिथिको न तो शनिवार था और न २० मार्च, १९२६।

जितना चाहता हूँ उतना धीरज नहीं है। मैं कृत्रिम आचरण तो कर ही नहीं सकता। इसीलिए मैं बकरीका दूध पीकर जीता हूँ। लेकिन जैसे अनशन मेरे जीवनका एक सम्भाव्य भाग है, वैसे ही दूधका त्याग भी है। इसके बारेमें जब मुझमें शुद्ध वैराग्य उत्पन्न होगा तब क्या मैं किसीके रोके रुक सकूँगा? यदि रुक सकूँगा तो वह शुद्ध वैराग्य कैसा?

लेकिन मैं बकरीके दूधका भी त्याग करूँगा, तब भी समाजके लिए दूधकी पवित्रताका समर्थन करूँगा। मैं समाजमें मृत पशुकी हड्डियोंके बने बटनोंका प्रचार करता हूँ, इसीसे आप मुझे जो बटनोंका उपयोग नहीं करता, उनका उपयोग करनेके लिए तो नहीं कहेंगे? अथवा जब मैं यन्त्र-चालकोंको कहता हूँ कि वे अपने यन्त्रोंके लिए कत्ल न किये गये पशुओंकी चरबीका उपयोग करें तब आप हमें आश्रममें भी ऐसी एक-दो मन चरबी इकट्ठा कर रखनेके लिए तो नहीं कहेंगे, यद्यपि कत्ल किये हुए पशुओंकी चरबीकी अपेक्षा मरे हुए पशुओंकी चरबीकी पवित्रताका समर्थन हम सभी करते हैं?

गायके दूधके त्यागसे अहिंसाकी पूरी सेवा नहीं होती, यदि मुझे ऐसा प्रतीत हो तो मैं अवश्य इस व्रतको छोड़ दूँ, क्योंकि फिर यह बात व्रतोंकी पंक्तिमें ही नहीं आ सकती।

यदि आप इसमें अब भी कोई कमी देखें तो मुझे अवश्य लिखें। मैं यदि मोह-वश गाय-भैंसके दूधका त्याग करता होऊँ तो आपको मुझे उससे बचानेका प्रयत्न अवश्य करना चाहिए।

मेरा मसूरी जाना आज ही निश्चित हुआ है। आप आयें या न आयें, लेकिन आपके लिए मसूरीमें प्रबन्ध तो किया ही गया होगा।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९८७८) की माइक्रोफिल्मसे।

१५९. पत्र : प्रभुदासको[1]

[२० मार्च, १९२६][2]

प्रभुदास,

घड़ी-सम्बन्धी व्रतके विषयमें तुम जिस बेचैनीका उल्लेख करते हो, मुझे वह बेचैनी घड़ीके व्रतके कारण नहीं, मनमें अपरिग्रहके अभावके कारण होती है। लेकिन मनको अपरिग्रही बनानेका मैं इसके सिवा कोई दूसरा रास्ता नहीं जानता कि घड़ीके व्रतके समान व्रत लिये जायें। जो मनुष्य अनेक घड़ियाँ लेनेके लिए स्वतन्त्र हो, यदि वह एक घड़ीकी चिन्ता न करे तो यह कोई उसका गुण नहीं है। दूसरोंके खर्चपर उसकी यह निश्चितता सहज ही लापरवाहीका रूप ले सकती है। व्रत लेनेके बावजूद

१. यह पिछले शीर्षक (एस० एन० १९८७८) के अन्तमें जोड़ा हुआ मिला है।

२. पिछले शीर्षकमें दी गई तिथि।

और यह घड़ी खोनेपर दूसरी न मिलेगी, यह जानते हुए भी जो मनुष्य उसके सम्बन्धमें चिन्ता नहीं करता, उसका किसी दिन अपरिग्रही होना सम्भव है। और फिर यदि एक चीजका व्रत लेनेवालेमें ईर्ष्याका भाव आ जाये तो यह कोई उसका नया अवगुण नहीं है; बल्कि समझना चाहिए कि जो अवगुण मनमें भरा था वही संग-प्रसंगसे पनप गया है। व्रतोंकी महिमा ऐसी ही है। एक मलिनताकी सफाई करते हुए दूसरी बाहर आ जाती है और एक व्रतके सम्बन्धमें सफलता मिलनेपर समस्त मलिनताका निकल जाना सम्भव है। जो मनुष्य मनसे व्रत नहीं लेता, उसने तो व्रत लिया ही नहीं। वह खोटा सिक्का है और हम खोटे सिक्केपर से सच्चेका मूल्यांकन नहीं कर सकते।

अयोध्याकाण्ड तो ऐसा है कि अगर मनुष्य उसे हजार बार पढ़े तो भी न ऊबे। इसलिए इसपर तुम जितनी मेहनत करोगे उतना ही उसका फल होगा।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९८७८ ए) की माइक्रोफिल्मसे।

१६०. एक चरखा-प्रेमीका दुःख

धर्मका पालन करना कितना कठिन है, यह बात "अविश्वास या उचित सावधानी?"[1] शीर्षक लेखके उत्तरमें मिले निम्न पत्रसे[2] स्पष्ट हो जाती है:

इस बातको तो मैं पहले ही स्वीकार कर चुका हूँ कि चरखा-संघको दिया हुआ सूत वापस न दिया जाये, यह उत्तम होगा और यही इष्ट है कि कोई इस सूतकी वापसीकी माँग न करे। लेकिन मनुष्य-स्वभाव एक ही साँचेमें नहीं ढला हुआ है। इसलिए सिद्धान्तको आँच न आये, इस बातका ध्यान रखकर कुछ छूट तो देनी ही पड़ती है। ठीक यही बात यहाँ भी हुई है।

चरखा-प्रेमीके चरखा संघ-सम्बन्धी विचार मेरे ध्यानसे बाहर नहीं थे। मेरा काम तो उनके लेखसे जो सीधा अर्थ निकलता है, उससे उत्पन्न होनेवाली दिक्कतोंको बताना था। चरखा-संघ तो एक सांसारिक लाभका साधन है और नहीं भी है। उसे सभी लोग मोक्षका द्वार नहीं मानते। वस्तुतः देखा जाये तो उसे थोड़े-से ही लोग ऐसा मानते हैं। ज्यादातर लोग तो खादीके आर्थिक पक्षको ही स्वीकार करते हैं और चरखा-संघ खादी-प्रचारमें काफी मदद करता है, यह सोचकर उसमें सम्मिलित

१. १४ मार्च, १९२६।

२. पत्रका अनुवाद यहाँ नहीं दिया गया है। पत्र-लेखकका समाधान लेखमें दिये गये गांधीजीके तर्कोंसे नहीं हो सका था। उसका कहना था कि चरखा-संघको जिन अवांछनीय कार्रवाइयोंके विरुद्ध सावधानीका कदम उठाना पड़ा है, वे कताईको कांग्रेसकी सदस्यता-सम्बन्धी धाराके द्वारा राजनीतिका अंग बना देनेसे उत्पन्न हुई हैं।

होते हैं। उनके लिए उचित सावधानी बरतना संचालकोंका धर्म ठहरा। तमाम नियमोंकी परीक्षा उच्च कोटिपर पहुँचे हुए व्यक्तिसे नहीं, बल्कि सामान्य कोटिके मनुष्योंकी दृष्टिसे की जानी चाहिए। मैंने लालचकी जो बात कही थी, वह यह सोचकर कही थी कि उससे परोपकारी संस्थाओंमें शामिल होनेका लालच अथवा उत्साह सभीके मनमें पैदा हो। चरखा-प्रेमीने संघको सफल बनानेके लिए जिन दो बातोंका सुझाव दिया है, वे सचमुच अच्छी हैं। यदि सब सदस्य चरखा-प्रेमीकी-सी होशियारीके साथ सूत कातें और उसे १०० प्रतिशत अच्छा बना दें तो खादीकी जबरदस्त प्रगति हो, ऐसी मेरी मान्यता है; और जिस तरह जौहरी अपने यहाँ इकट्ठे किये गये हीरोंकी जाँच कर उन्हें व्यवस्थित करता है और यत्नपूर्वक सँभालकर रखता है वैसे ही यदि चरखा-संघ आये हुए सूतको परखे, इकट्ठा करे और सँभालकर रखे तो उससे खादीकी भारी प्रगति होगी, इसमें कोई शंका नहीं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २१-३-१९२६

१६१. स्वीकृति

शाह वसनजी जेतसीकी ओरसे उनकी माता श्रीमती जेठीबाईके नामपर मुझे एक हीरकजटित सोनेकी जंजीर और सेठ वालजी कुँवरजीकी ओरसे नागफनीवाली सोनेकी अँगूठी तथा दो छोटे हीरे प्राप्त हुए हैं। ये मुझे, मेरी इच्छाके अनुसार, उपयुक्त देश-कार्यमें खर्च करनेके लिए दिये गये हैं। मैंने उनका उपयोग खादी-प्रचारके लिए करनेकी बात सोची है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २१-३-१९२६

१६२. बंगालकी विशेषता

बंगाल बहुत-सी बातोंमें अपनी विशेषता दिखाता आया है। अब वह खादीके प्रचारमें भी अपनी विशेषता दिखा रहा है। दूसरे प्रान्तोंमें खादी काफी मात्रामें बनती है; परन्तु वे उसकी बिक्रीके मामलेमें आत्मनिर्भर नहीं हैं, बल्कि उसके लिए तो उन्हें और प्रान्तोंपर ही निर्भर रहना पड़ता है। परन्तु बंगालने प्रारम्भसे ही स्वाश्रयी बननेकी नीति अपनाई है। यह नीति किसी एक संस्थामें ही नहीं, बल्कि बंगालकी सभी खादी-संस्थाओंमें बरती जाती है। बंगालने अपने यहाँसे एक गज खादी भी दूसरी जगह बेचनेके लिए नहीं भेजी है।

बंगालका यह उदाहरण प्रत्येक खादी-संस्थाके लिए विचारणीय है। आज एक भी प्रान्त ऐसा नहीं है जो अपनी आवश्यकताकी पूर्तिके लिए काफी खादी उत्पन्न करके उसे अपने यहाँ बेचता हो और जो बचती हो उसीको बाहर भेजता हो। इस

स्थितिपर पहुँचनेके लिए तो हमें प्रतिवर्ष करोड़ों रुपयेकी खादी तैयार करनी पड़ेगी। चूंकि हमारा उद्देश्य खादीको व्यापक बनाना है; इसलिए साधारण तौरपर हमारा नियम यही होना चाहिए कि जहाँ जितनी खादी तैयार की जाये वहाँ उतनी पहनी भी जाये। इसे सफल बनानेके लिए हम जितना अधिक प्रयत्न करेंगे, खादी उतनी ही शीघ्र व्यापक होगी। इसमें केवल वे ही प्रान्त अपवाद गिने जा सकते हैं, जहाँ खादी तैयार करना मुश्किल है। लेकिन ऐसा प्रान्त शायद ही कोई होगा। खादीके मुख्य स्थान तो तमिलनाडु, आन्ध्र-देश, पंजाब और बिहार हैं। वहाँ काम करनेवाली संस्थाएँ अपने मालकी खपतके लिए बाहरकी निकासीपर अधिक निर्भर हैं। इन सब स्थानोंमें अभी खादीकी स्थानिक बिक्री जितनी होती है, उससे अधिक होनी चाहिए। दूसरे प्रान्तोंको उन प्रान्तोंकी खादीकी आवश्यकता होगी तो वे उसे सहज ही प्राप्त कर सकेंगे। परन्तु यदि प्रान्तिक संस्थाएँ अपने प्रान्तोंमें ही खादीकी बिक्रीका प्रयत्न करेंगी तो इससे खादीका उत्पादन बहुत बढ जायेगा और बहुत-सा खर्च भी बच जायेगा।

इस बारेमें बंगाल हमें मार्ग दिखा रहा है। खादी प्रतिष्ठानने प्रथम तो निर्भय होकर पर्याप्त परिमाणमें खादी उत्पन्न की। अब वह 'मैजिक लैन्टर्न' आदि साधनोंके प्रयोगसे उसकी बिक्रीका प्रचार कर रहा है। उसकी योजना है कि खादीका प्रचार करनेके लिए जितने धनकी आवश्यकता हो, वह भी वहींसे प्राप्त करनेका प्रयत्न किया जाये। उसने इस कार्यका आरम्भ स्थानिक धनसे ही किया था। यदि इन तीन नियमोंको — स्थानिक उत्पादन, स्थानिक उपयोग और स्थानिक सहायताको — ध्यानमें रखकर खादीकी प्रवृत्ति चलाई जाये तो खादीका प्रचार बहुत बढ़ सकेगा और खर्च भी ज्यादासे-ज्यादा घटाया जा सकेगा। सच पूछिए तो खादीकी महत्ता इसीमें है। उसका गूढ़ रहस्य इसीमें छिपा हुआ है। जन-समाजको खादीकी आवश्यकता है, इसी मान्यतापर तो उसका अस्तित्व निर्भर है। हमें प्रतिक्षण इस मान्यताको सिद्ध करना चाहिए। और जब धनकी सहायता भी जहाँ चाहिए वहींसे जुटाई जाने लगेगी, तब लाखों मनुष्योंसे प्राप्त एक-एक आनेसे लाखो रुपयेकी मदद मिल जायेगी। और इस सहायतामें जो बरकत होगी वह शायद एक मनुष्यके द्वारा दिये गये एक करोड़ रुपयेके दानमें भी नहीं हो सकती।

इस आदर्शकी प्राप्तिमें कुछ समय लगेगा और कठिनाई भी होगी। परन्तु इस आदर्शको भूल जानेसे तो खादी स्थान-भ्रष्ट हो जायेगी। खादी शुद्ध रीतिसे गरीबोंकी पोषक बने, इसके लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि उपरोक्त तीनो नियमोंका अधिकाधिक पालन किया जाये। इस संक्रातिकालमें हमें दूसरे प्रयत्न भी करने होंगे, दूसरोंकी मदद भी लेनी होगी और प्रान्तोंमें आपसी सहानुभूतिकी आवश्यकता भी होगी। लेकिन यदि हम अपने प्रकाश-स्तम्भको ही भूल जायेंगे तो जैसी दशा असावधान माँझीकी होती है, वैसी ही खादी-सेवकोंकी भी होगी। बंगाल हमें इसकी याद दिलाता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २१-३-१९२६

१६३. जाति-सुधार

अग्रवाल महासभाके अध्यक्षके रूपमें दिया गया श्री जमनालालजीका व्याख्यान पढ़ने और विचार करने योग्य है। इस व्याख्यानमें श्री जमनालालजीने पूर्ण स्वतन्त्रता और निर्भयता दिखाई है। यदि मारवाड़ी समाज जमनालालजीके सुझावोंके अनुसार कार्य कर सके तो वह जितना धन कमानेमें आगे बढ़ा हुआ है, उतना ही आवश्यक सुधारोंको करनेमें भी आगे बढ़ सकेगा। जमनालालजीने जिन सुधारोंपर जोर दिया है, उन सुधारोंकी आवश्यकता सारे हिन्दुस्तानमें और समस्त हिन्दू-समाजमें है। बहिष्कारके शुद्ध हथियारका दुरुपयोग, नीतिहीन और देशहित-विरुद्ध व्यापार, धनवानोंकी विलासिता, स्त्री-वर्ग द्वारा पाश्चात्य रहन-सहनका अपनाया जाना, बाल-विवाह, विवाहके खर्चका बोझा, उपजातियोंकी वृद्धि और बाल-शिक्षाका अभाव आदि त्रुटियाँ हिन्दू-समाजमें कमोबेश परिमाणमें सब जगह दिखाई देती हैं। ये त्रुटियाँ हमें सत्वहीन बनाती हैं, और स्वराज्यके मार्गमें रोड़ा अटकाती हैं। जमनालालजीने अपने व्याख्यानमें इन सब हानिकर रीति-रिवाजोंको त्यागनेपर और अस्पृश्यता-निवारण, खादीके प्रचार और गोरक्षाके उपायोंमें संशोधन करनेपर काफी जोर दिया है। हम सबको यह आशा रखनी चाहिए कि अग्रवाल महासभामें उपस्थित हुए सब सभासद श्री जमनालालजीके सुझावोंपर अमल करेंगे और शेष हिन्दू-जातिका मार्ग सरल कर देंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २१-३-१९२६

१६४. गुजरातमें खादीकी मासिक प्रगति

गुजरात खादी प्रचार-मण्डलने खादीके उत्पादन, विक्रय आदिका माघ मासका विवरण प्रकाशित किया है। उससे हमें इस प्रान्तमें खादीकी प्रगतिका कुछ अन्दाजा हो सकता है:[1]

उपर्युक्त विवरण १९ संस्थाओंसे प्राप्त आँकड़ोंका सार है। मण्डलसे सम्बन्धित अन्य चार संस्थाओंका विवरण इसमें नहीं है और इसी प्रकार काठियावाड़की संस्थाओंका विवरण भी नहीं है। इसलिए उपर्युक्त आँकड़ोंसे गुजरातमें खादीकी कुल प्रगतिका अन्दाजा नहीं लगाया जा सकता। लेकिन ये आँकड़े कुछ-न-कुछ प्रगति तो प्रकट करते ही हैं। आज यह प्रगति हमें तुच्छ जान पड़ेगी; लेकिन निरन्तर इसी तरह प्रगति होती रहे तो यह स्पष्ट है कि अन्तमें खादीका व्यापक प्रचार हुए बिना

१. ये आँकड़े यहाँ नहीं दिये गये हैं।

न रहेगा। इन आँकड़ोंके अतिरिक्त मण्डलने चरखोंकी बिक्रीके आँकड़े भी दिये हैं। मैं उनमें से कुछ यहाँ देता हूँ :[1]

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २१-३-१९२६

१६५. पत्र : श्रीमती हनुमन्तरावको

साबरमती आश्रम
२१ मार्च, १९२६

प्यारी बेटी,

जैसे हनुमन्तराव मेरे लिए पुत्रवत् थे, वैसे ही तुम मेरे लिए पुत्रीके समान हो। अपने एक पत्रमें उन्होने तुम्हें बहुत वीर स्त्री बताया था। जो दुःख तुमपर पड़ा, किसी भी अच्छी पत्नीके लिए इससे बड़ा दुःख और कुछ नही हो सकता, किन्तु मुझे आशा है कि इस महादुःखकी घड़ीमें तुम उस वीरताका परिचय दोगी। लेकिन, अगर मेरी तरह तुम्हें भी ऐसा लगता हो कि यद्यपि हनुमन्तरावका शरीरपात हो गया है, फिर भी आत्मासे वे हमारे बीच विद्यमान हैं तो तुम अपने पतिके दायित्वोंका भार अपने सिर लेकर अपने कार्योंके रूपमें उन्हें जीवित रखोगी और इस तरह दुखको खुशीमें बदल दोगी। हिन्दू-धर्ममें एक पवित्र और पूज्य वस्तुके रूपमें वैधव्यकी प्रतिष्ठाका मतलब है, मरणोत्तर जीवनमें ज्वलन्त विश्वास।

अगर तुम आश्रम आकर इसे अपना घर बना लो तो मुझे बहुत खुशी होगी। अगर तुम समझती हो कि यहाँ तुम मजेमें रह सकती हो तो इसे शिष्टाचारवश रखा गया ऐसा प्रस्ताव न समझो जिसे स्वीकार न किया जा सकता हो। इसके विपरीत, अगर तुम यहाँ आना तय कर लो तो तुम्हारे आश्रम-निवासको मैं एक बहुमूल्य प्राप्ति मानूँगा। और यह सोचकर मुझे बहुत प्रसन्नता होगी कि यद्यपि अब हनुमन्तराव हमें सशरीर नहीं मिल सकते, फिर भी अपनी अर्धांगिनीके रूपमें वे हमारे बीच विद्यमान हैं। मैं यह सुनना चाहता हूँ कि ऐसे मौकोंपर हमारे बीच जंगली तरीकेसे दुःख प्रकट करनेका जो रिवाज है, उसका शिकार तुम नही हुई। वह हमारे धर्मोपदेशोंके बिलकुल विपरीत आचरण है।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीमती हनुमन्तराव

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३७०) की माइक्रोफिल्मसे।

१. ये आँकड़े यहाँ नहीं दिये गये हैं।

१६६. पत्र : डी० वी० रामस्वामीको[1]

साबरमती आश्रम
२१ मार्च, १९२६

प्रिय मित्र,

अपने इस भारी दुःखमें मुझे भी शरीक मानें। मैं जानता हूँ कि हनुमन्तराव आपके लिए क्या थे। अभी कुछ ही दिन पहले उन्होंने मुझे एक पत्र लिखा था। उसका उद्देश्य तो एक मिशनरीके साथ हुई आपकी मुलाकातके बारेमें जानकारी-भर देना था, लेकिन उसमें उन्होंने बताया था कि आप दोनोंके बीच कितना स्नेह था। आशा है, आप इस दुःखके आगे हिम्मत नहीं हार बैठेंगे और उनकी पत्नीको सान्त्वना देंगे।

आपका पता मुझे मालूम नहीं है। इसलिए यह पत्र आपको कृष्णकी मार्फत भेज रहा हूँ। हनुमन्तरावकी पत्नीके नाम लिखा पत्र आप पढ़ लीजिए और अगर वे आश्रम आना चाहें तो उन्हें भेजनेमें कोई संकोच न करें।

ईश्वर आपका कल्याण करे।

हृदयसे आपका,

स्वर्गीय हनुमन्तरावके भाई

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३६८) की माइक्रोफिल्मसे।

१६७. पत्र : सी० वी० कृष्ण

साबरमती आश्रम
२१ मार्च, १९२६

प्रिय कृष्ण,

तुम्हारा हृदय-विदारक तार मिला। इसपर सहसा विश्वास नहीं होता। तुम्हारा दुःख मैं समझ सकता हूँ। ऐसा मानो कि मुझे भी उतना ही दुःख हुआ है। तुमसे और अन्य मित्रोंसे इस शोकपूर्ण घटनाको सविस्तार जाननेकी आशा रखता हूँ। जहाँ-तक हनुमन्तरावका सम्बन्ध है, उन्हें श्रेयस्कर मृत्यु मिली है, और यह सोचकर हमें प्रसन्न होना चाहिए कि अपने आदर्शके प्रति उनकी लगन और निष्ठा महान् थी और अपनी मृत्युसे तो उन्होंने उसपर पक्की मुहर लगा दी है। ईश्वर हम सबको भी अपने-अपने आदर्शोंके प्रति वैसी ही निष्ठाका वरदान दे। तुम्हें इस दुःखका दास

१. देखिए "पत्र : डी० वी० रामस्वामीको", ३-४-१९२६।

नही वन जाना चाहिए, बल्कि परीक्षा तथा कठिनाइयोंको चुनौती देते हुए इसे दुगुनी शक्ति और क्षमता-रूपी विशुद्धतम कुन्दनके रूपमें ढालना चाहिए। मुझे अपनी मन.स्थितिका पूरा हाल लिखना।

साथके पत्र सम्बन्वित व्यक्तियोको पहुँचानेकी व्यवस्था करना। एक हनुमन्तरावकी पत्नीके लिए है और दूसरा उनके भाईके लिए।

हृदयसे तुम्हारा,

सलग्न पत्र : २
श्रीयुत कृष्ण
नेल्लूर

अग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३६९) की माइक्रोफिल्मसे।

१६८. पत्र : देवदास गांधीको

साबरमती आश्रम
रविवार, चैत्र सुदी ८ [२१ मार्च, १९२६]

चि० देवदास,

बहुत दिनतक बाट जोहनेके बाद तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हें यह जानकर दु:ख होगा कि कल रात विशाखापट्टनममें हनुमन्तरावका स्वर्गवास हो गया। उनकी मृत्यु तो मेरी दृष्टिसे बहुत भव्य हुई। उन्होंने अपनी टेक अन्ततक नही छोड़ी। तथापि उनके गुणोंको स्मरण करके मनमें उद्वेग होता है। हनुमन्तरावने मुझे दस-बारह दिन पहले ही एक लम्बा पत्र लिखा था तथा कुनैन-सखिया और लोहेके इजेक्शन लेनेपर मीठी झिड़की भी दी थी।

कान्तिलालके लिए लगातार बहुत माँग की जा रही थी, इसलिए उसे अमरेली भेज दिया है। अत: लगता है कि अब रामदास यहाँ आयेगा। तुम किशोरलालसे तो नित्य मिलते ही होगे। मैंने उसे नासिकके पतेपर पत्र लिखा है। उसे वह मिला या नहीं, यह उससे पूछना। आशा है, तारामती और दिलीप अच्छी तरह होंगे।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९३७१) की माइक्रोफिल्मसे।

१६९. पत्र : रामनारायणसिंहको

आश्रम
२१ मार्च, १९२६

भाईश्री रामनारायणसिंह,

आपका पत्र मिला। अपील भी मिली। आप कहते हैं आपके जिल्लेमें कुछ काम नही होता है। कर्मचारीगण केवल अपनेको सर्वज्ञ समजते हैं, और करते हैं लड़कपन। इस हालतमें भवन बनानेसे क्या लाभ हो सकता है? इसमें मैं संमत भी कैसे हो सकता हूँ? भवन बननेसे न लड़कपन मिट सकता है, न सेवाभाव आ सकता है। भवन तो वही बनना चाहिए जिस जगह पे सेवक बढ़ते जाते हैं, सवनियमका पालन करते है, सबपर लोगोंका विश्वास है, और सब एक दूसरेको मानते है, और संगठित होकर रहते हैं। मेरी तो आपसे अवश्य यह सलाह है कि जबतक अच्छी तरहसे काम करनेवाले सेवक इकट्ठे न हों, भवनका खयालतक भी न करें।

आपका,
मो[हनदास]

मूल पत्र (एस० एन० १९८७९) की माइक्रोफिल्मसे।

१७०. पत्र : चुन्नीलाल रंगवालाको

साबरमती आश्रम
रविवार चैत्र सुदी ८ [२१ मार्च, १९२६]

भाईश्री ५ चुन्नीलाल,

आपका पत्र मिला। जब अपनी भानजीपर आपका पूर्ण अंकुश नहीं है, तब आप उसके लिए उत्तरदायी नहीं माने जा सकते। आप अपना विरोध प्रकट कर चुके हैं और विवाह आदि विधियोंमें भाग नहीं लेंगे, आपके लिए इतना ही पर्याप्त है।

आश्रममें जो विवाह-विधि हुई, उसमें अन्य शास्त्रीय क्रियाएँ शामिल थीं और सम्बन्धित प्रान्तोंके जाने-माने शास्त्रियोंके द्वारा वे सम्पन्न कराई गई थी। लेकिन उसमें अन्य लौकिक आडम्बर नहीं था और मैं मानता हूँ कि उसकी आवश्यकता भी नहीं है। सप्तपदीमें आनेवाली प्रतिज्ञा जानने योग्य हैं, इसलिए उसे मैंने छपवा दिया था। मैं वास्तु क्रिया करनेकी कोई आवश्यकता नहीं समझता। सब लोग अपनी सारी सम्पत्तिका दान कर देंगे, ऐसी आशा मैंने कभी नहीं की; लेकिन मैं यह अवश्य मानता हूँ कि यदि वे ऐसा करते हैं तो इसमें अनुचित कुछ नहीं है।

आपने 'नवजीवन'का आकार बढ़ाने और अधिक लेख देने और जरूरत जान पड़े तो उसका चन्दा बढ़ानेकी जो सलाह दी है, उसमें आपका हेतु निर्मल है, लेकिन उसपर अमल नही किया जा सकता। हाँ, 'आत्मकथा'का भाग बढ़ाया जा सका तो थोड़ा बढ़ानेका प्रयत्न करूँगा।

गुजराती प्रति (एस० एन० १०८५०) की माइक्रोफिल्मसे।

१७१. पत्र : मोतीबहन चौकसीको

साबरमती आश्रम
रविवार, चैत्र सुदी ८ [२१ मार्च, १९२६][1]

चि० मोती,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारी बात मैं समझ सकता हूँ, फिर भी मेरी शिकायतको तो तुम्हें नोट करना ही चाहिए। जो बच्चे अपने बड़ोंके प्रति खूब स्नेह-भाव रखते हैं, वे उत्तरोत्तर सुधरते ही जाते हैं, क्योंकि वे बड़ोंकी आशा पूरी करनेका प्रयत्न अवश्य करते हैं। अक्षरोंको जमाकर लिखना तो बहुत ही आसान बात है। एक-दो पत्र मुझे ऐसे आये भी जिनकी लिखावट ठीक थी। और कुछ लिखनेकी बात क्यों नही सूझती? जिसे लिखनेकी इच्छा हो उसे क्या विषयकी खोज करनी पड़ती है? चौबीस घंटोंमें अनेक घटनाएँ होती हैं; उनका वर्णन किया जा सकता है। अनेक विचार आते हैं; उन्हें लिखा जा सकता है। व्यक्तियोंका आना-जाना होता रहता है; उसके समाचार दिये जा सकते ह। लेकिन यदि निरन्तर लिखनेमें कष्ट हो तो भले ही सप्ताहमें एक बार लिखो। शर्त सिर्फ इतनी ही है कि अक्षर सुन्दर होने चाहिए और पत्रमें सारी बातें आ जानी चाहिए। मेरे कहनेका मतलब इतना ही है कि जो-कुछ करनेकी प्रतिज्ञा की हो, उसे आनन्दपूर्वक तन्मय होकर करना चाहिए, तभी प्रतिज्ञाका पालन हुआ कहा जा सकता है।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

अब भाई नाजुकलालको भी लिखूँगा।[2]

गुजराती पत्र (एस० एन० १२१२०) की फोटो-नकलसे।

१. मोतीबहन द्वारा आश्रम छोड़ते समय गांधीजीको पत्र लिखनेकी प्रतिज्ञाके उल्लेखसे।
२. यह वाक्य गांधीजीके स्वाक्षरोंमें है।

१७२. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

साबरमती आश्रम
रविवार, चैत्र सुदी ८ [२१ मार्च, १९२६][1]

चि० मथुरादास,

बहुत दिनों बाद तुम्हारा पत्र मिला। मैं राह तो देख ही रहा था। मेरा सारा समय अन्य कार्योंमें चला जाता है, जिससे आजकल कुछ खास लिख नहीं पाता। इसीलिए मैं शिथिल हो गया हूँ। लेकिन जब तुम्हारा अथवा देवदासका पत्र नहीं आता तब तनिक चिन्ता हो जाती है। यह बात अब समझमें आ गई है कि तुम्हारी तबीयत धीरे-धीरे सुधरेगी। तुम निश्चिन्त होकर वहाँ आराम करो, यह तुम्हारा धर्म है। मेरा अप्रैल मासमें मसूरी जाना तय हुआ है। वहाँ ऐसी सुविधा रहेगी कि कुछ और लोग भी आ सकें। तुम्हें छुट्टी मिले तो क्या तुम वहाँ नहीं आ सकते? हो सकता है, तुम्हारे स्वास्थ्यके लिए यह ज्यादा ठीक सिद्ध हो। खाने-पीनेकी व्यवस्था तो रहेगी ही।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९३७२) की माइक्रोफिल्मसे।

१७३. भाषण : संगीतके बारेमें[2]

[२१ मार्च, १९२६][3]

हमारा एक पुराना सुभाषित है कि जिसे संगीत प्रिय नहीं होता, वह या तो योगी होता है या पशु। हम लोग योगी तो हैं नहीं, अतः यह जरूर कहा जा सकता है कि जिस हदतक हम संगीत-शून्य हैं उस हदतक हम पशु-तुल्य हैं। संगीत जाननेका मतलब यह होना चाहिए कि हम अपना सारा जीवन संगीतमय कर लें। हमारे जीवनमें संगीत नहीं है, वह सुरीला नहीं है, यही कारण है कि हमारी ऐसी दयनीय दशा है। जहाँ प्रजा एक सुर न निकाल सकती हो, वहाँ स्वराज्य कैसे हो सकता है?

जहाँ एक सुर नहीं निकलता, जहाँ हरएक अपना-अपना राग अलापता है या जहाँ सब तार टूटे हुए होते हैं, वहाँ अराजकता या कुराज्यकी ही स्थिति हो सकती

१. मसूरीकी प्रस्तावित यात्राके उल्लेखसे।

२. अहमदाबाद राष्ट्रीय संगीत मण्डलके द्वितीय वार्षिकोत्सवमें, जो सत्याग्रह आश्रम, साबरमतीके प्रार्थनांगणमें हुआ था।

३. बॉम्बे सीक्रेट ऐब्सट्रैक्ट्सके अनुसार यह उत्सव आश्रममें इसी तारीखको हुआ था।

है। हममें संगीतका अभाव है, इसीलिए हमें स्वराज्यके साधन प्रिय नहीं लगते, और इस अर्थमें प्लेटोका यह वचन बिलकुल सही है कि किसी समाजमें संगीतकी दशा देखकर उस समाजकी राजकीय स्थितिका निश्चय किया जा सकता है। यदि हमारे जीवनमें संगीतका प्रवेश हो तो स्वराज्यका प्रवेश भी हो सकता है। जब करोड़ों लोग एक स्वरमें भजन गाना सीख लें, एक स्वरमें कीर्तन करने लगें या रामनामकी धुन बजाने लगें और एक भी बेसुरी आवाज न निकले तब हमारे जीवनमें संगीतका प्रवेश हुआ कहा जा सकता है। यदि हम इतनी आसान चीज भी सिद्ध नहीं कर सकते तो स्वराज्य कैसे पा सकते हैं?

पिछले तीन वर्षसे अहमदाबादमें संगीतकी कक्षाएँ चल रही हैं; शिक्षा निःशुल्क दी जाती है और शिक्षण देनेवाले पण्डितजी भी अपने विषयके जानकार हैं। फिर भी केवल ३२ विद्यार्थियोंने नाम लिखवाया और आज उनमें से सिर्फ दस हैं और इन दसमें से भी सिर्फ चार ही नियमित रूपसे आते हैं। यह स्थिति सन्तोषजनक नहीं कही जा सकती, लेकिन हम आशा रख सकते हैं कि उसमें सुधार होगा। और डॉ० हरिप्रसाद तो — जिन्हें अहमदाबादकी सैकड़ों गलियोंमें से किसी एकको भी साफ-सुथरा देखकर आशाकी किरणके दर्शन होने लगते हैं — शायद इस स्थितिमें सन्तोष भी मान सकते हैं कि हमारे यहाँ ऐसे चार संगीत-प्रेमी तो हैं जो उसे नियमसे सीखते हैं।

जहाँ दुर्गन्ध है, वहाँ संगीत नहीं हो सकता। सुगंध भी संगीतका एक रूप है, यह हमें समझ लेना चाहिए। सामान्यतः हम सुरीली आवाजको ही संगीत कहते हैं। किन्तु यदि हम संगीतका व्यापक अर्थ करें तो देखेंगे कि जीवनका कोई भाग ऐसा नहीं है, जिसमें संगीतकी आवश्यकता न हो। आज तो संगीत स्वेच्छाचारका समकक्ष हो गया है। चरित्रहीन स्त्रियोंके नाच-गानको संगीत मान लिया जाता है। हमारी माँ-बहनें तो बेसुरा ही गाती हैं। वे संगीत सीखें तो यह लज्जाकी बात मानी जाती है। इस तरह, संगीत सत्संगके अभावमें अप्रतिष्ठित हो गया है और इसलिए डॉ० हरिप्रसादको दस विद्यार्थियोंसे ही सन्तोष मानना पड़ा है।

सच पूछिए तो संगीत प्राचीन और पवित्र वस्तु है। हमारे 'सामवेद'की ऋचाएँ संगीतकी खान हैं। 'कुरान शरीफ'की एक भी आयत ऐसी नहीं जो सुरके बिना गायी जा सकती हो। और ईसाई धर्ममें डेविडके 'साम' (गीत) सुननेपर तो ऐसा लगता है, मानो हम 'सामवेद'का गान सुन रहे हों। किन्तु आज तो गुजरात संगीतहीन हो गया है। यदि हम इस दोषसे मुक्त होना चाहते हो तो इस संगीत-मण्डलको हमें बढ़ावा देना चाहिए।

संगीतमें हम हिन्दुओं और मुसलमानोंका मिलन देखते हैं। हिन्दू गाने-बजानेवालोंके साथ बैठकर मुसलमान गाने-बजानेवाले गाते-बजाते हैं। किन्तु वह शुभ दिन कब आयेगा जब राष्ट्रीय जीवनके दूसरे क्षेत्रोंमें भी इस मिलन-संगीतके दर्शन करेंगे? उस दिन हम राम और रहमानका नाम साथ-साथ लेंगे।

आप लोग संगीतको जो थोड़ी-बहुत तरजीह देते हैं, उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। आप अपने बच्चोंको, लड़कों और लड़कियोंको और ज्यादा संख्यामें

भेजने लगें तो वे वहाँ भजन-कीर्तन सीखेंगे और इस तरह राष्ट्रीय उन्नतिमें आप कुछ योग भी दे सकेंगे।

लेकिन हमें इससे भी आगे जाना चाहिए। यदि हम अपने करोड़ों घरोंमें संगीतका प्रवेश चाहते हों तो हम सब लोगोंको खादी पहननी होगी और चरखा चलाना होगा। खान साहबका आजका संगीत बहुत मधुर था, किन्तु उसे सुननेका सौभाग्य तो हमारे-जैसे चन्द लोगोंको ही मिल सकता है, सबको नहीं मिल सकता। किन्तु चरखेका संगीत तो हरएक घरमें सुलभ किया जा सकता है। इस चरखेके संगीतकी तुलनामें वह संगीत तो कुछ भी नहीं है। कारण, चरखेका संगीत तो कामधेनु है। करोड़ोंका पेट भरनेका साधन है। मुझे तो उसमें सच्चा संगीत दिखता है। ईश्वर सबका कल्याण करे; सबको सन्मति दे।

हम संगीतका ऐसा संकुचित अर्थ न करें कि वह सधे हुए कंठसे शुद्ध स्वरमें तालके साथ गाने-बजानेका अभ्यास-मात्र है। जीवनमें एकरागता और एकतानता होनेपर ही सच्चा संगीत प्रगट होता है। हृदयका कोई तार बेसुरा नहीं होता, तभी संगीतका जन्म होता है। जब सारे देशमें करोड़ों लोग एक ही स्वरमें बोलने लगेंगे तब संगीतका हमारा यह प्रयोग सफल हुआ कहा जायेगा। मेरे विचारसे तो सच्चा संगीत खादीमें और चरखेमें समाया हुआ है। जबतक वह संगीत प्रगट नहीं हुआ है तबतक देशमें अराजकता या कुराजकता रहनेवाली ही है और उसकी गुलामी हटनेवाली नहीं है।[1]

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ४-४-१९२६

१७४. पत्र : जमनालाल बजाजको

आश्रम

सोमवार, २२ मार्च, १९२६

चि० जमनालाल,

तुम्हारा और घनश्यामदासका तार मिला। उसका जवाब घनश्यामदासको दिया है। यह सारा कार्य शंकरलालका है। उनमें समझ कम है। लेकिन अब जो हुआ सो हुआ। ऐसा समझना कि जब भी तुम तैयार होगे मुझे तैयार ही पाओगे; लेकिन ३१ तारीखके बाद।

भाई प्यार अली और नूरबानो, जहाँ मैं गर्मी व्यतीत करूँ, वहीं व्यतीत करना चाहते हैं। उनके लिए अलगसे छोटा-सा बंगला अथवा दो-तीन कमरे मिलें तो भी काफी है। वे तो अपने खर्चपर रहना चाहते हैं। अब जैसा उचित लगे, वैसा करना।

१. भाषणका यह अन्तिम अनुच्छेद **गुजराती**, २८-३-१९२६ से लिया गया है।

मेरी तबीयत अच्छी ही रहती है। अभी तो यहाँ गर्मी पड़ती ही नहीं, ऐसा कहा जा सकता है। आज ही थोड़ी मालूम हो रही है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० १९८८०) की माइक्रोफिल्मसे।

१७५. पत्र : काका कालेलकरको

साबरमती आश्रम
मंगलवार, चैत्र सुदी १० [२३ मार्च, १९२६][1]

भाई काका,

आपको मेरा पत्र मिला होगा। आज आपके दो पत्र मिले। आप मसूरी आयें, इस बारेमें तो मैंने आपको लिखा ही था, लेकिन यदि हमारे भाग्यमें वियोग सहना लिखा होगा तो हम सहन करेंगे। मतलब यह कि यदि सिंहगढ़ आपके स्वास्थ्यके अनुकूल है, वहाँकी शान्ति भी आपको खूब माफिक आ गई है तो उस ध्रुवको छोड़कर केवल मेरे साथ रहनेकी खातिर आप इस अध्रुवका सेवन करे, ऐसी मेरी माँग नहीं है। मैं वहाँ नहीं आ सकता, क्योंकि जैसा कि आप खुद ही मानते हैं, वहाँ मेरा निर्वाह नहीं हो सकता। मैं जहाँ जाऊँगा वहाँ मुझे प्यार अली और नूरबानोके रहनेकी व्यवस्था भी करनी ही होगी। तुम्हारी तरह गोमती बहनको भी वायु-परिवर्तनके लिए बाहर भेजा है, सो उसके लिए भी व्यवस्था करनी होगी। वह न आये, यह अलग बात है। लेकिन अब मुझे चौथे व्यक्ति, मथुरादासके लिए भी व्यवस्था करनी है। मथुरादासको डाक्टरने देवलाली छोड़नेके लिए कहा है। इसलिए या तो वह वहाँ जाये अथवा मसूरी आये। आप यदि वह स्थान छोड़ दें तो भी उस बंगलेका उपयोग तो रहेगा ही, क्योंकि हमारा परिवार एक बड़ा परिवार है। यह सच है कि यदि बगला न लिया होता तो उसके उपयोगका विचार भी न होता। इसके अलावा मसूरीमें सब प्रबन्ध हो चुका है। इस बारेमें तार दिये जा चुके हैं। अब इस कार्यक्रमको बदलना ठीक नहीं है। मेरे लिए वहाँ शान्ति नहीं है, यह तो मैं जानता ही हूँ। पचगनी और मसूरीमें बहुत ज्यादा फर्क नहीं हो सकता। पचगनीमें एकांत नहीं है लेकिन सुना है, मसूरीमें बंगले दूर-दूर होनेके कारण कुछ एकान्त मिल जाता है। दूसरा फर्क यह है कि जहाँ मसूरीमें अंग्रेज ज्यादा हैं वहाँ पंचगनीमें भारतीय हैं। लेकिन आप यह समझ लें कि वहाँ मैं वायु-परिवर्तनके लिए नहीं जा रहा हूँ, कर्त्तव्य-पालनके लिए जा रहा हूँ। कारण कि मैंने न जानेकी खूब कोशिश की। फिलहाल मेरे लिए शान्ति तो यही है। यहाँके जीवनमें मैं खूब ओत-प्रोत हो गया हूँ और रस ले रहा हूँ।

१. वर्ष मसूरी जाने की चर्चाके आधारपर निश्चित किया गया है।

'भक्तराज'[1] और 'गीता', ये दोनों मुझपर हावी हैं और उनका वाहन बनना मुझे प्रिय है। इसके सिवा, मुझे यह अच्छा लगता है कि आश्रममें पड़े-पड़े बिना परिश्रम किये मैं कुछ कर तो सकता हूँ। और मैं देखता हूँ कि बा-को भी यह बहुत प्रिय लगता है। ऐसे अनेक कारणोंसे और मेरी तबीयत यहाँ अच्छी रहती है, इसलिए मेरी तनिक भी जानेकी इच्छा नहीं होती। लेकिन इस सबके बावजूद यदि मैं जाता ही हूँ तो उसका कारण अपनेको सन्तोष देना है।

अब आपकी समस्याके बारेमें। आप घर छोड़कर बिलकुल निरुपाधि बन जायें, यह बात मुझे पसन्द है। किन्तु काकीको कमसे-कम आघात पहुँचना चाहिए, ऐसा मैं मानता हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि आपने काकीके वापस आनेकी बात सोची ही नहीं है, लेकिन मैंने उसकी कल्पना की है। जबतक वे अपना पत्नीत्व सिद्ध करना चाहेंगी तबतक वे आपसे मिलने नहीं आयेंगी, लेकिन जब वे आपके प्रति बिलकुल उदासीन हो जायेंगी तब आपसे मिलनेकी खातिर भी आ सकती हैं, लेकिन इसके सिवा भी उनके यहाँ रहनेकी व्यवस्था होनी चाहिए। आपने तो यह घर छोड़ ही दिया और यह उचित है। लेकिन आश्रमको, अर्थात् मुझे और आपको, काकीके लिए आश्रमकी भूमिपर रहनेकी व्यवस्था करनी ही चाहिए। यदि यह घर नहीं तो दूसरा घर या अब जो बन रहा है वह उन्हें दिया जाये, किन्तु यह बात अलग है। परन्तु इस कर्तव्यका ध्यान आपको अवश्य होना चाहिए। आपकी आज्ञाका पालन तो शंकरको प्रफुल्लित हृदयसे करना चाहिए, यह बात मैं शंकरको बुलाकर समझानेवाला हूँ। शंकरको क्या करना चाहिए, इस बातपर मैं पिछले तीन-चार दिनोंसे रमणीकलालके साथ विचार कर रहा हूँ। मैं इस निष्कर्षपर तो पहुँच गया हूँ कि शंकरको किसीके साथ रहना चाहिए। रमणीकलाल मेरे इस विचारसे सहमत हैं। आपने उसे सीधे ठाकोरभाईकी देख-रेखमें रखनेकी जो बात कही थी सो मुझे याद है। इसलिए मैंने शंकरके सम्बन्धमें ठाकोरभाईकी रिपोर्ट माँगी है। इसमें शंकरके बारेमें चिन्ता करनेकी कोई जरूरत नहीं है। लेकिन वह अव्यवस्थित है, आलसी है, यह मैं उसकी अनुपस्थितिसे समझ रहा हूँ। यदि हम उसके इन दोषोंको बने रहने दें तो उसके अन्य परिणाम निकल सकते हैं। इसलिए यह विचार है कि शंकरकी ज्यादा देख-रेख होनी चाहिए और उसे नियम-पालनके बारेमें प्रोत्साहित करना चाहिए।

मैं इस तरहके परिवर्तन करना चाहता हूँ। यह सब लिखनेका मेरा विचार न था, परन्तु चूँकि शंकरके सम्बन्धमें आपने आज्ञाएँ जारी की हैं, इसलिए भी इस सम्बन्धमें मैं जो-कुछ सोच रहा हूँ सो आपको लिख दिया है।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९३७३) की फोटो-नकलसे।

१. पिल्ग्रिम्स प्रोग्रेस।

१७६. पत्र : वीरसुतको

आश्रम
२३ मार्च, १९२६

भाई वीरसुत,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम बातको और साफ करवाना चाहते हो। प्रत्येक किशोर एक वर्षका व्रत ले, यह अर्थ उसमें समाहित ही है। लेकिन यदि यह स्पष्ट न हो, तो व्रतमें इतना जोड़ लेना। बड़े लोग जो व्रत लेते है, वह भी एक-एक वर्षका ही होता है। किसी व्यक्तिको यदि अमुक वस्तु कर्त्तव्य जान पड़ती हो और वह दूसरोको उसका भान करवाये तथा उसके पालनका आग्रह करे, तो इसे मैं बिलकुल उचित मानता हूँ। बालकोंको सतत जाग्रत रखनेके लिए शिक्षक तो होने ही चाहिए। भाई गोपालराव बालकोंको जो समझा रहे हैं, उसमें मुझे तो औचित्य ही दिखाई देता है।

मोहनदासके आशीर्वाद

दक्षिणमूर्ति
भावनगर

गुजराती पत्र (एस० एन० १९८८१) की माइक्रोफिल्मसे।

१७७. पत्र : लालजीको

आश्रम
२३ मार्च, १९२६

भाई लालजी,

आपका पत्र मिला। मेरी प्रतिज्ञाके बारेमें आपने जो सुना, वह सच है। इसलिए अब तो मुझे आपकी परिषद्की सफलताकी कामना करके ही सन्तोष मानना होगा। मेरी इच्छा है कि अन्त्यज-मात्र शराब न पीने और मांस न खानेका व्रत ले और यह भी चाहता हूँ कि सब खादी ही पहननेका निश्चय करे।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (एस० एन० १९८८२) की माइक्रोफिल्मसे।

१७८. पत्र : जमनालाल बजाजको

साबरमती आश्रम
बुधवार, [२४ मार्च, १९२६][1]

चि० जमनालाल,

तुम्हारा पत्र मिला। हकीम साहबका भी मिल गया है। हकीम साहबको आज निम्नलिखित तार भेजा है:

"पत्रके लिए धन्यवाद। आप मित्रगण जो भी इन्तजाम करेंगे, अनुकूल होगा।"

अब तुम जो तय करो सो सही। मसूरी जानेके पहले मुझे किसी और जगह रखना चाहो तो वैसा कर लेना। बाकी मैं तो सीधे मसूरी जानेके लिए भी तैयार हूँ। वहाँ सर्दी बहुत ज्यादा होगी, इसकी कोई बात नहीं। इतनी तो बर्दाश्त हो जायेगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (जी० एन० २८६०) की फोटो-नकलसे।

१७९. पत्र : सरोजिनी नायडूको

साबरमती आश्रम
२४ मार्च, १९२६

आपका तार मिला, लेकिन मेरे पत्रोंके बारेमें तो आप बिलकुल चुप ही हैं। आप यह तो नहीं चाहेंगी कि जिस चीजको खुद मेरा ही मन स्वीकार नहीं करता, उसके लिए 'यंग इंडिया' के पृष्ठोंमें सिफारिश करूँ। यह जो दक्षिण आफ्रिकाके लिए चन्दा करनेका प्रस्ताव है, मेरे खयालसे गलत है। समझमें नहीं आता कि उसका प्रयोजन क्या हो सकता है। इम्पीरियल सिटिजनशीप एसोसिएशन (साम्राज्यीय नागरिक संघ) द्वारा दिये गये पचास हजार रुपये काफी होने चाहिए और आगे जरूरत साबित करनेपर उसीसे और भी अनुदान प्राप्त किया जा सकता है। और जबतक संघके पास दक्षिण आफ्रिका-जैसे मामलोंपर खर्च करनेके लिए पैसा है, तबतक जनतासे कुछ देनेको कहना मैं गलत मानता हूँ। इसके अलावा, मेरे विचारसे जैसी स्थिति कानपुर-में थी, उसमें कोई फर्क नहीं आया है। उस समय मैंने अखिल भारतीय स्तरपर चन्दा करनेके खिलाफ राय जाहिर की थी। अगर आप या सोराबजी मेरी आपत्तियोंका निवारण कर सकें, तो मैं खुशी-खुशी इस विषयपर लिखूँगा।

१. वर्ष मसूरी जानेकी बातके उल्लेखके आधारपर निश्चित किया गया है।

यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आपने काफी सूत इकट्ठा कर लिया है। मैं समझता हूँ, वह मुझे यथासमय मिल जायेगा। शेष मिलनेपर।

आपका,

श्रीमती सरोजिनी नायडू

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३७८) की फोटो-नकलसे।

१८०. पत्र : अब्दुर्रहमानको

साबरमती आश्रम
२४ मार्च, १९२६

भाई अब्दुररहेमान,

आपका पत्र मिला। यदि वापिस हिन्दूधर्ममें आना चाहते हो तो मुझको और हकीकत देना चाहिए। उसके बाद ही मैं मेरा अभिप्राय दे सकता हूँ।

(१) उमर क्या है?
(२) माता-पिता जिन्दे हैं?
(३) इस्लाम कब लायें? लानेका कैसे हुआ?
(४) 'कुरान शरीफ'का अभ्यास किया है?
(५) अब हिन्दूधर्ममें क्यों आना चाहते हो?
(६) शादी हुई है?
(७) बुजुर्ग मुसलमानोमें से किसीको पहचानते हो?

विद्याध्ययनके लिये राजेन्द्र बाबुसे मिलना चाहिए। क्योंकि विद्यापीठका कारोबार इन्हींके हस्तक है।

मूल प्रति (एस० एन० १२०४४) की माइक्रोफिल्मसे।

१८१. पत्र : स्वामी श्रद्धानन्दको

आश्रम
२४ मार्च, १९२६

भाई साहेब,

आपका पत्र मीला। जानबूजके जलियांवाला बागके लिये मैंने कुछ नहीं लिखा है। मेरा अभिप्राय मैंने जेलमें से निकलनेके वाद ही भेज दिया था कि आज हमारे कुछ भी मकान नहीं बनाना चाहिए। हिंदु-मुसलमान इत्यादि धर्मीओंका ऐक्यका भी वह महान् स्मरणचिह्न होगा। आज अगर हम कुछ भी बनायें तो वह झगड़ेका एक और कारण बन सकता है। पैसा सुरक्षित है ऐसा मेरा खयाल है। जमीन साफ रक्खी जाती है और उस जगहपर एक बगीचा-सा बन गया है। आजकलकी हमारी गंदी

आबोहवामें इतनेसे ही सन्तुष्ट रहना मुझको विशेष योग्य लगता है। आप अपना अभिप्राय मुझको भेज दें। आप ऐसा क्यों कहते हैं कि केवल मालवीयजी, मोतीलालजी और मेरी ही जिम्मेदारी है? आप इस तरहसे छूट नहीं सकते हैं। कमसे-कम जितनी हम तीनोंकी इतनी तो आपकी है ही है। आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा।

मूल प्रति (एस० एन० १९३७७) की फोटो-नकलसे।

१८२. पत्र : आनन्दलालको

साबरमती आश्रम
बुधवार, प्रथम चैत्र सुदी ११ [२४ मार्च, १९२६]

चि० आनन्दलाल,

तुम मुझे क्यों पत्र लिखोगे? आने-जानेवाले लोगोंसे तुम्हारे बारेमें सुनता हूँ और क्षण-भरके लिए दुःखी भी हो जाता हूँ। ऐसा जान पड़ता है कि चि० काशी और उसके बच्चोंके भरण-पोषणके लिए तुम कुछ भी नहीं देते। लेकिन काशीके हिस्सेका जो मकान है, उसका भाड़ा उसकी मिल्कियत है, वह भी तुम उसे नही देते, ऐसा मुझे मालूम हुआ है। यदि ऐसा हो तो यह शर्म और दुःखकी बात है। इस बारेमें यदि तुम्हारी ओरसे बचावके लिए कुछ कहनेको हो तो मुझे बताना।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९३७५) की माइक्रोफिल्मसे।

१८३. पत्र : जयसुखलालको

साबरमती आश्रम
बुधवार, २४ मार्च, १९२६

चि० जयसुखलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। भाई पुरुषोत्तम जोशीके बारेमें जो उचित जान पड़े सो करना। मेरे विचारानुसार तो, जैसा तुम लिखते हो, जिस व्यक्तिका वेतन चुका दिया गया हो और फिर नौकरीसे निकल गया हो उसे खोये हुए कागजोंके लिए उत्तरदायी नहीं माना जा सकता। वह उन कागजोंको कहाँसे ढूँढ़कर निकाल सकता है? यदि खोये हुए कागजातके बारेमें रिपोर्ट तैयार करवाना चाहते हो, तो अलग बात है।

अमरेलीके कार्यालयके बारेमें चि० नारणदासकी टिप्पणी साथ भेज रहा हूँ। नारणदासके कथनानुसार तो तुम्हें जितने पैसे देना तय हुआ था, उससे ज्यादा तुम ले चुके हो और अब भी लेते ही रहते हो। यदि ऐसा ही है तो नहीं चल सकता। बाँधी हुई सीमासे आगे जानेके लिए तो तुम मुझे नहीं कह सकते। तुम्हें आँकड़े नियमित रूपसे भेजने ही चाहिए। यहाँसे पूछे बिना बम्बई हुण्डी लिखकर पैसा मत

लेना। इस बार जब तुमने हुण्डी लिखी उस समय जमनालालने यहाँ पुछवाया था और तुम्हारी साखको धक्का न पहुँचे, इसलिए मैंने तार द्वारा जमनालालको हुण्डी स्वीकारनेको कह दिया था। लेकिन ऐसा दूसरी बार नहीं हो सकता। तारसे हुण्डियाँ स्वीकारनेमें आजकल जोखिम भी है। लोग बड़े लोगोंके नामका प्रयोग करके पैसा खा गये हैं, इसलिए व्यापारी अब तारसे पैसेका लेन-देन बहुत कम करते हैं। निर्णयके अनुसार तुम्हें खादी तो तैयार करनी ही चाहिए। दो वस्तुओंका अवश्य ध्यान रखना। सामर्थ्यसे बाहर काम करके ऐसी स्थिति मत उत्पन्न करना कि सारा काम समेट लेने की नौबत आ जाये। जो शर्तें मुझे बताई गई हैं उन शर्तोंसे बाहर एक भी पैसा खर्च न करना। इतना अवश्य याद रखना कि मेरे पास रुपयोंकी कोई अखूट खान नहीं है। रंगूनसे अभी एक पैसा भी नहीं आया है। जो पैसा दिया है, वह तो जोखिम उठाकर दिया है और सो भी हमने तुम्हारी शक्ति और दूरदर्शिताको ध्यानमें रखकर यह साहस किया है।

अप्रैल मासकी पहली तारीखको मैं कदाचित् मसूरीके लिए रवाना हो जाऊँगा। मेरी अनुपस्थितिमें जितना मैंने कह रखा होगा, केवल उतना ही पैसा निकाला जा सकेगा, यह याद रखना। इसलिए जो शर्तें पहले हुई हैं उनके अनुसार अभी भी कुछ पैसा देना निकलता हो तो तुम मुझे बताना और मैं उसमें सुधार कर लूँगा। जो हुण्डी लिखी जाये उसके बारेमें सबसे पहले यही खबर मिलनी चाहिए। यहाँसे जमनालालको पत्र जायेगा तथा उसके अनुसार ही उसे स्वीकार किया जायेगा। गरिया-धारके बारेमें भाई जगजीवनदासके साथ सलाह-मशविरा करके जो करना उचित जान पड़े उसके बारेमें मुझे सूचित करना। गारियाधारके बारेमें मुख्य रूपसे तुमपर निर्भर करूँगा। अमरेली केन्द्रकी बिक्रीके बारेमें भी तुम भाई जगजीवनदासके साथ सलाह-मशविरा करना। मैं उन्हें लिखनेवाला हूँ।

रामदास वहाँ रहे या न रहे, फिलहाल तुम अमरेली नहीं छोड़ सकते। उर्मिला और बचु यहाँ तुम्हारे बिना क्यों नहीं रह सकते?

गुजराती प्रति (एस० एन० १९३७६) की माइक्रोफिल्मसे।

१८४. पत्र : कृष्णदासको

साबरमती आश्रम
बुधवार, २४ मार्च, १९२६

चि० कृष्णदास,

तुम्हारा पत्र मिला। यदि मुझपर छोड़ दिया जाये तो मैं अंग्रेजीमें लिखनेवाला आदमी हूँ ही कहाँ? इसलिए तुम गुजरातीमें लिखो और मैं उसका अंग्रेजीमें उत्तर दूं, यह बात मुझे खुदको अच्छी नहीं लग सकती। भूलोंको भाई चन्द्रशंकर सुधारकर भेजते रहेंगे। इस बार तुमने गिरधरका पूरा पता भेजा है, इसलिए पत्र उस पतेपर भेज रहा हूँ, ताकि वह तुम्हें जल्दी मिले। ऐसा लगता है कि तुम्हारी भी इच्छा यही है। 'नवजीवन' तुम्हें क्यों नहीं मिलता, इस बातकी मैं जांच कर रहा हूँ। इस बीच आज तो यहींसे जायेगा। गुरुजीका बादमें क्या हुआ? अंग्रेजी-गुजराती शब्द-कोश मिलता है। एक मँगाकर तुम्हें भेजूंगा। उसकी कीमत तुम्हें नहीं भेजनी है। दूसरी पुस्तकें तथा कुछ और चाहिए तो वह भी मँगाना। अगले महीनेके आरम्भमें मसूरी जाना तय हुआ है। साथमें महादेव, प्यारेलाल और सुब्बैया होंगे।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९३७९)की माइक्रोफिल्मसे।

१८५. टिप्पणियाँ

चित्तरंजन सेवासदन

अखिल बंगाल स्मारकके रूपमें जो अस्पताल खोला जानेवाला था, वह आखिर-कार स्वर्गीय देशबन्धुके पुश्तैनी भवनमें, जिसे उन्होंने एक न्यासको सौंप दिया था, खोल दिया गया है। न्यासका एक उद्देश्य स्त्रियोंके लिए अस्पतालकी स्थापना करना था। पाठक यह तो जानते ही हैं कि न्यासियोंने जो दस लाख रुपया इकट्ठा करनेकी आशा रखी थी, उसमें से कोई आठ लाख रुपया जमा हो पाया है। न्यासियोंमें से एक श्रीयुत नलिनी रंजन सरकारने मुझे जो ब्योरा[1] भेजा है, वह निम्न प्रकार है:

> भवनको अस्पतालके उपयुक्त बनानेके लिए उसकी पूरी तरहसे मरम्मत कर दी गई है और जरूरी परिवर्तन भी कर दिये गये हैं। अस्पतालके लिए फर्नीचर और तमाम सामान खरीद लिया गया है। डाक्टर, एक प्रधान परि-चारिका (मेट्रन) और परिचारिकाएँ (नर्सेज) नियुक्त कर ली गई हैं और उन्होंने अपना-अपना काम सँभाल लिया है। . . .

१. इसके केवल कुछ अंशोंका अनुवाद यहाँ दिया जा रहा है।

> गद्दे, चद्दरें, तौलिये, पर्दे, गिलाफ इत्यादि तमाम आवश्यक चीजें खादी प्रतिष्ठानसे खादी लेकर ही तैयार की गई हैं।
>
> हम लोगोंने इस अस्पतालका नाम "चित्तरंजन सेवासदन" रखा है। इस संस्थाको सफल बनानेके लिए हम भरसक प्रयत्न करेंगे और इसके लिए हम आपका आशीर्वाद चाहते हैं। . . .

ऐसी शुभ परिस्थितियोंमें खोले गये इस अस्पतालकी, जिसके पास काफी पैसे भी हैं, दिन-प्रति-दिन तरक्की होनी चाहिए और उससे बंगालकी मध्यम वर्गकी स्त्रियों-की आवश्यकताएँ पूरी होनी चाहिए। इस अस्पतालसे हमें इस बातका स्मरण होता है कि देशबन्धुको सामाजिक कार्य भी उतना ही प्रिय था, जितना कि राजनीतिक। वे अगर चाहते तो अपनी जायदादको राजनीतिक कार्यके लिए दे सकते थे। परन्तु उन्होंने जान-बूझकर उसे समाज-सेवाके हेतु समर्पित कर दिया और उसमें भी स्त्रियोंकी सेवाको अधिक महत्त्व दिया।

क्या उसपर अमल होगा?

दक्षिण भारतमें पोल्लाचिमें हुई कोंगु वेल्लाल परिषद्ने निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया है:

> यह परिषद् कोंगु वेल्लाल जातिकी स्त्रियों और लड़कियोंसे यह आग्रह करती है कि वे हाथ-कताईको अपना जातीय पेशा समझें और वे सब खादीके ही कपड़े पहनें। और इसका यह भी विश्वास है कि इस देशसे अकालको दूर करनेका साधन चरखा ही है।

इस प्रस्तावको पास करनेके लिए मैं परिषद्को बधाई देता हूँ; लेकिन जिन्हें हाथ-कताईको अपना एक जातीय पेशा समझकर उसको स्वीकार करनेकी सलाह दी गई है, क्या वे उसको स्वीकार करेंगी? और क्या जिन्होंने खादी पहननेके लिए मत दिया है, वे भी उसको अंगीकार करेंगे? मैं परिषद्के सदस्योंसे यह कहूँगा कि जबतक पुरुष हाथ-कताईको न अपनायेंगे तबतक स्त्रियोंको कातनेके लिए समझाना बड़ा ही मुश्किल काम होगा। और जबतक इस क्षेत्रमें ऐसे पुरुष काफी तादादमें नहीं होंगे जो कताईमें कुशलता प्राप्त कर लेंगे और वहाँके चरखोंमें जैसे सुधार उपयुक्त हों वैसे सुधार उनमें करेंगे तबतक चरखोंमें या सूतकी किस्ममें सुधार करना तो वे और भी मुश्किल पायेंगे। हाथ-कताईका कार्य प्रस्तावोंके बनिस्बत ठोस कार्यपर ही अधिक निर्भर करता है। तमाम रचनात्मक कार्योंमें प्रस्तावोंकी उपयोगिता बड़ी सीमित होती है। उनसे सिर्फ थोड़ा-सा प्रचार ही होता है। लेकिन सारा दारोमदार तो सिर्फ सूझ-बूझके साथ लगातार काम करते रहनेपर ही होता है।

खादीके मासिक आँकड़े

निम्न छः प्रान्तोंने अपने जनवरी महीनेके खादीके उत्पादन और बिक्रीके आँकड़े[1] भेजे हैं, जो उनके नामोंके सामने दिये गये हैं:

१. आँकड़े यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं।

यदि खादीसे सम्बन्धित दूसरी संस्थाएँ भी अपने मासिक आँकड़े समयपर अखिल भारतीय चरखा संघको भेज दें तो खादीकी प्रगतिका महीने-दर-महीने लेखा देना सम्भव होगा। खादीके बढ़ते हुए उत्पादन और विक्रयके आँकड़े देनेसे खादीके महत्त्वका जितना प्रमाण मिलता है, उतना अन्य किसी बातसे नहीं मिल सकता।

जैसा कि सतीश बाबूने बिहार विद्यापीठके तत्वावधानमें आयोजित प्रदर्शनीमें दिये गये अपने भाषणमें बताया है, एक-एक गजका मतलब है, उसकी कीमतके बराबर पैसा सीधा गरीबोंकी जेबमें डालना। ये गरीब वे लोग हैं, जिनके पास किसी दूसरी तरहसे नहीं पहुँचा जा सकता, जिनके पास कोई दूसरा धन्धा नहीं है और निजकी आयमें एक पैसेकी वृद्धि भी उनके लिए कीमत रखती है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २५-३-१९२६

१८६. उनकी उलझन

यदि निम्नलिखित पत्रके[1] लेखकने 'यंग इंडिया'के पृष्ठोंको देखनेकी तकलीफ उठाई होती तो उन्हें मालूम हो जाता कि उन्होंने जो प्रश्न किये हैं, उन सबका उत्तर पहले ही दिया जा चुका है। फिर भी जितनी बार भूल की जाये उतनी बार यह बताना चाहिए कि सही बात क्या है, इस सिद्धान्तके अनुसार पत्र-लेखक और उनके-जैसे विचार रखनेवाले अन्य लोगोंके लिए मैं उनके प्रश्नोंका उत्तर देता हूँ।

बेशक, यदि हिन्दू विचारपूर्वक और सोच-समझकर अपने प्रयत्नोंसे, केवल नीतिके तौरपर नहीं परन्तु आत्मशुद्धिके लिए, अस्पृश्यताके कलंकको दूर कर देंगे तो उनके इस कार्यसे राष्ट्रको सही काम करनेके एहसाससे जो शक्ति प्राप्त होगी, उससे स्वराज्य प्राप्त करनेमें बड़ी मदद मिलेगी। आज हम लोग असमर्थ हैं, क्योंकि हम ऐक्यकी शक्तिको खो बैठे हैं। जब हम पाँच या छः करोड़ अस्पृश्योंको अपना समझना सीख लेंगे तभी तो हम एक राष्ट्र बननेका प्रथम पाठ पढ़ेंगे। आत्म-शुद्धिके इसी एक कार्यसे शायद हिन्दू-मुस्लिम समस्या भी हल हो जायेगी। कारण, इसमें भी अस्पृश्यताका विनाशकारी विष जाने-अनजाने काम कर रहा है। यदि हिन्दू-धर्मकी रक्षा करनेके लिए अस्पृश्यताकी कृत्रिम दीवारकी आवश्यकता है तो इसका मतलब है कि हिन्दू-धर्म बड़ा ही दुर्बल है।

यदि "अस्पृश्यता" और "जाति-प्रथा" ये दोनों शब्द पर्यायवाची हैं तो इस प्रथाका जितनी जल्दी नाश हो, तमाम सम्बन्धित लोगोंके हकमें उतना ही अच्छा है। लेकिन जाति यदि वर्णका पर्यायवाची है तो मुझे इस बातका पूरा यकीन है कि यह

१. पत्रका अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने लिखा था कि आप खादी और अस्पृश्यता-निवारणपर बहुत जोर देते रहे हैं। मैं खादी पहनता तो हूँ लेकिन चरखा नहीं चलाता हूँ। इसके बाद उसने अस्पृश्यता-निवारणकी आवश्यकता और उपयोगितापर अपनी शंकाएँ व्यक्त की थीं।

व्यवस्था समाजके लिए स्वास्थ्यकर है। वर्तमान जाति-व्यवस्था अपनी अहंकारपूर्ण वर्जनशीलताके साथ अब नष्टप्राय है। असंख्य उपजातियाँ अब स्वयं इतनी शीघ्रताके साथ नष्ट हो रही हैं कि उसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते।

परन्तु मैं हजारवीं बार यह दोहराऊँगा कि मैंने एक साथ खानेके लिए कभी नहीं कहा है और न मैंने जबरदस्ती मन्दिरमें घुसनेकी सलाह दी है। परन्तु मैंने यह अवश्य कहा है, और आज फिर कहता हूँ कि हमारे इन देश-भाइयोंको मन्दिरमें प्रवेश करनेसे रोका नहीं जा सकता। मन्दिरमें प्रवेश करनेके लिए सत्याग्रह करनेका समय अभी नहीं आया है।

यह हमारे लिए लज्जाकी बात है और यह हमारा ही अपराध है कि दलित वर्गोंके लोग गाँव और शहरके बाहर रहते हैं और नारकीय जीवन व्यतीत करते हैं। हम अपनी असहायावस्थाके लिए और हममें अपनी इच्छा और सूझ-बूझसे सही काम करनेके गुण तथा मौलिकताका जो अभाव है, उसके लिए अंग्रेज शासकोंको दोष देते हैं और उन्हें दोष देना बिलकुल उचित है। किन्तु, तब इसी प्रकार हमें अस्पृश्योंको वर्तमान अवदशातक पहुँचानेमें उच्च वर्णोंके लोगोंका जो दोष है, उसे भी स्वीकार करना चाहिए।

ऐसा मालूम होता है कि लेखक इस बातको स्वीकार करते हैं कि हमारे अज्ञान और वहमके शिकार बने हुए इन लोगोंको भौतिक और आध्यात्मिक शिक्षा मिलनी चाहिए। लेकिन जबतक हम लोग समानताके स्तरपर उनके साथ खुलकर मिलते-जुलते नहीं तबतक यह काम कैसे किया जा सकता है? सच तो यह है कि उनकी बनिस्बत खुद हमें ही ज्यादा आध्यात्मिक शिक्षाकी आवश्यकता है। हमारी आध्यात्मिक शिक्षाका 'क, ख, ग' हमारे अहंकारको छोड़कर इन दलित भाइयोंसे तादात्म्य स्थापित करनेसे ही आरम्भ होना चाहिए।

लेखकने साम्यवादियोंकी अस्पृश्योंके साथ तुलना की है। यह केवल बातको उलझाना है। लोग जन्मसे साम्यवादी नहीं बनते हैं और अस्पृश्य तो जन्मसे ही होते हैं। साम्यवादका सम्बन्ध विशिष्ट वैचारिक मान्यताओंसे है, जबकि अस्पृश्यता बाहरसे लादी गई एक असुविधा है। रही मेरी बात, सो कांग्रेस सप्ताहके दौरान मैंने साम्यवादियोंको टाल नहीं दिया था। मैं उनसे बराबर मिलता था और यदि मेरे पास समय होता तो मैं सम्भवतः उनकी सभामें भी जाता। कांग्रेसके विधि-विधानको माननेपर साम्यवादी भी कांग्रेसमें शामिल हो सकते हैं। मैं अस्पृश्योंके पक्षका समर्थन इसलिए करता हूँ कि मैं यह मानता हूँ कि हमने उनके साथ बड़ा अन्याय किया है। यदि साम्यवादियोंकी बात भी मुझे ग्राह्य मालूम हुई, तो मैं उसका भी समर्थन करूँगा।

अन्तमें, यदि लेखक खादीमें विश्वास रखते हैं और खादी पहनते भी हैं तो उन्हें सूत कातकर अपना पूर्ण विश्वास जाहिर करना चाहिए और उसके उत्पादनमें, बहुत थोडा भी क्यों न हो, अपना योग देकर करोड़ों लोगोंके साथ तादात्म्य स्थापित करना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २५-३-१९२६

१८७. एक भारत-सेवक

हनुमन्तराव, जो किसी समय सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटीके सदस्य थे, अब इस संसारमें नहीं रहे। वे अपने आदर्शोंके लिए शहीद हो गये हैं। वे प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धतिके पक्ष-पोषक थे। मनुष्यको जो अनेक बीमारियाँ होती हैं उनकी चिकित्साके लिए औषधियोंके उपयोगमें उनका विश्वास नहीं था। रोग-निवारणके लिए प्रकृतिकी सहायताके रूपमें केवल लुई कूनेकी जल-चिकित्सा पद्धतिको ही वे स्वीकार करते थे। जल-चिकित्साकी क्षमतामें उनका विश्वास लगभग धार्मिक विश्वास-जैसा था। इस चिकित्सा-पद्धतिको ग्रामीणोंमें लोकप्रिय बनानेका वे स्वप्न देखा करते थे। वे जो-कुछ कहते थे, वही करते भी थे। वे एक साल पहले बहुत गम्भीर रूपसे बीमार हो गये थे। उन्होंने जल-चिकित्साका आश्रय लिया और ऐसा खयाल किया जाता था कि इससे वे ठीक हो गये थे। वे विशाखापट्टनममें बीमारीके बाद पूर्ण स्वास्थ्य अर्जित करनेके खयालसे आराम कर रहे थे कि २० तारीखको उनका देहान्त हो गया। वे अन्तिम क्षणतक अपने विश्वासपर कायम रहे। अपनी मृत्युसे कुछ ही दिन पहले उन्होंने मुझे एक लम्बा पत्र लिखा था। पत्रमें उन्होंने प्राकृतिक चिकित्सामें अपनी आस्था व्यक्त की थी और मुझे इस बातके लिए मीठी झिड़की दी थी कि उन्हींकी तरह प्राकृतिक चिकित्सामें विश्वास करते हुए भी कुनैन खाकर और लोहे तथा संखियाके इंजेक्शन लेकर मैंने कमजोरी दिखाई। वे मुझसे और अधिक दृढ़ मनोबलकी आशा करते थे। इन दिनों, जबकि कथनी और करनीमें इतना विरोध रहता है, हनुमन्तराव-जैसे मनुष्यको देखकर शक्ति मिलती है। वे अपने विश्वासपर मरते दमतक कायम रहे। यदि वे भूल भी कर रहे थे तो भी क्या? वे सत्यान्वेषी थे। हम सत्यको तभी पा सकते हैं जब हम जिस बातको सत्य मानते हैं, उसपर आचरण करें। हनुमन्तराव मरकर भी जीवित हैं, क्योंकि उन्होंने इस नश्वर शरीरमें रहनेवाली आत्माकी अमरताको जान लिया था।

हनुमन्तराव देशभक्त थे। वे अपने देशसे जितना प्रेम करते थे, उससे ज्यादा कोई दूसरा मनुष्य नहीं कर सकता। किन्तु फिर भी उनके अन्दर कोई कटुता नहीं थी। अहिंसा उनका धर्म था, केवल नीति नहीं। इसलिए मैंने प्रथम श्रेणीके सत्याग्रहियोंकी अलिखित सूचीमें उनका नाम रखा था। उन्होंने नेल्लूरके पास एक छोटी-सी संस्था खोली थी, जहाँ कार्यकर्त्ताओंके एक दलकी सहायतासे वे खादीका काम आगे बढ़ा रहे थे, और पास-पड़ोसमें रहनेवाले तथाकथित अस्पृश्योंकी सेवा कर रहे थे। उनके पीछे परिवारमें अब उनकी विधवा पत्नी हैं, जो अपने पतिके विचारोंमें विश्वास रखती हैं और उन्होंने गरीबी और बेहद सादगीकी जिन्दगी अपनानेमें अपने पतिका पूरा साथ दिया।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २५-३-१९२६

१८८. "स्वत्वाधिकारका आग्रह रख"

एक सज्जन लिखते हैं :

> आपने जो अखबारोंके मालिकोंको यह इजाजत दे दी है कि अगर वे चाहें तो आपकी 'आत्मकथा'के अध्यायोंको उद्धृत कर सकते हैं, मुझे तो लगता है कि उसका 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' की बिक्रीपर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। अखबारोंमें जो व्यापारिक भावना आ गई है, उसको देखते हुए मैं तो इसी निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि आप अखबारोंको ये अध्याय उद्धृत करनेकी अनुमति देकर ठीक नहीं कर रहे हैं। अगर आप उन्हें इसकी अनुमति नहीं देते तो जो लोग आज 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' नहीं खरीदते वे भी आपकी 'आत्मकथा' पढ़नेके लिए उनके ग्राहक बन जायेंगे और इस तरह वे उनमें प्रकाशित अन्य लेख भी पढ़ेंगे। फिर, आप अपने सन्देशको प्रचारित करनेका अवसर क्यों खोते हैं और शराब-सम्बन्धी तथा दूसरे आपत्तिजनक विज्ञापनोंको, जैसे रति-कला, ताकतकी दवाएँ, अश्लील पुस्तकों और लघु कहानियोंको प्रचारित करनेके भागीदार क्यों बनाते हैं? यह सिर्फ मेरा ही नहीं, बल्कि 'यंग इंडिया'के बहुत-से पाठकोंका मत है।

इस सलाहके पीछे जो शुभ हेतु है, उसकी मैं सराहना करता हूँ, लेकिन मुझे कहना पड़ेगा कि यह सलाह मेरे मनको जँची नहीं। आजतक मैंने अपने किसी लेखके स्वत्वाधिकारपर आग्रह नहीं किया है। इसमें सन्देह नहीं कि 'आत्मकथा'के — अगर इसे 'आत्मकथा' कहा जा सकता हो तो — अध्यायोंके सम्बन्धमें प्रकाशकोंने मेरे पास बहुत लुभावने प्रस्ताव भेजे हैं और हो सकता है, मैं जिस उद्देश्यको लेकर चल रहा हूँ, उसके हितका खयाल करके इस लोभमें पड़ जाऊँ। लेकिन फिर भी उनके सम्बन्धमें मुझे किसी प्रकारके एकाधिकारकी बात पसन्द नहीं है। मुझे जिन पत्रोंके सम्पादनका सौभाग्य प्राप्त रहा है, उनमें प्रकाशित लेखोंको सबकी सम्पत्ति मानना चाहिए। स्वत्वाधिकार कोई स्वाभाविक चीज नहीं है। यह एक आधुनिक प्रथा है, और शायद एक हदतक वांछनीय भी है। लेकिन, दूसरे अखबारोंको 'आत्मकथा'के अध्यायोंको छापनेसे रोककर 'यंग इंडिया' या 'नवजीवन' की ग्राहक-संख्या बढ़ानेकी मेरी कोई इच्छा नहीं है। मैं 'यंग इंडिया' या 'नवजीवन'के पृष्ठोंके जरिये लोगोंको जो सन्देश देनेका प्रयत्न करता हूँ, उसे अपने ही बलका आसरा होना चाहिए और मैं उतने ही ग्राहकोंको पाकर सन्तुष्ट हूँ, जितने ग्राहक आज इन पत्रोंको मेरी 'आत्मकथा'-जैसे किन्हीं विशेष लेखोंको पढ़नेके लोभसे नहीं, बल्कि ये पत्र जिस सन्देशके उद्वाहक हैं, उस सन्देशके कारण खरीदते हैं। फिर, मैं पत्र-लेखकके इस विचारसे भी सहमत नहीं हूँ कि इन पत्रोंके पृष्ठोंमें लिखे अपने लेखोंको किसी दूसरेको प्रकाशित

न करने देनेके वैधानिक अधिकारका लाभ न उठाकर मैं उन अखबार-मालिकोंके पापोंका भागीदार बनता हूँ, जो पत्र-लेखक द्वारा उल्लिखित ढंगके विज्ञापन छापते हैं। बेशक, मैं इन विज्ञापनोंसे हृदयसे घृणा करता हूँ। निस्सन्देह, मैं ऐसा मानता हूँ कि इन अनैतिक विज्ञापनोंके बलपर अखबार चलाना सरासर गलत है। मैं यह भी मानता हूँ कि अगर विज्ञापन स्वीकार किये ही जायें तो अखबार-मालिकों और सम्पादकोंकी ओरसे उनकी वांछनीयताकी कड़ी पूर्व-परीक्षाकी व्यवस्था होनी चाहिए, और सिर्फ स्वस्थ विज्ञापन ही लिये जाने चाहिए। लेकिन, अगर मैं स्वत्वाधिकारके नियमका उपयोग नहीं करता तो उससे अनैतिक विज्ञापन छापनेके अपराधका भागीदार नहीं बन जाता। मसलन, अगर मैं अखबारोंके दफ्तरोंमें जा-जाकर उनके मालिकोंसे इस बातके लिए कि वे आपत्तिजनक विज्ञापनोंको स्थान न दें, दो-दो हाथ नही करता तो क्या मैं इन विज्ञापनोंके प्रकाशनके अपराधका भागीदार बन जाता हूँ? अनैतिक विज्ञापनोंकी बुराईके शिकार तो वे पत्र-पत्रिकाएँ भी होती जा रही हैं जो सबसे प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाएँ मानी जाती हैं। यह परिष्कार मुझ-जैसे किसी धौकिया सम्पादकके प्रभावसे सम्भव नहीं है। यह तो तभी सम्भव है जब खुद उन्हींकी अन्तरात्मा इस बढ़ती हुई बुराईको पहचानेगी या जब जनताका प्रतिनिधित्व करनेवाली और जनताके नैतिक हितोंका खयाल करनेवाली कोई सरकार उनपर यह प्रतिबन्ध थोप देगी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २५-३-१९२६

१८९. तामिलनाडुका एक गाँव[1]

सूबरीने मुझसे आग्रह किया कि मैं कालंगल अवश्य जाऊँ। उन्होंने कहा:

"वह एक ऐसा स्थान है जो आपको देखना चाहिए। आपने अन्तिपालयम् देखा है और पसन्द किया है। कालंगल अन्तिपालयम्से ज्यादा अच्छी जगह है।"

सूबरीको, जिनका पूरा नाम श्रीयुत के० सुब्रह्मण्यम् है, हर कोई चाहता है — बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष सब उनपर मुग्ध हैं। इसका रहस्य उनका बाल-सुलभ भोलापन और उनकी सेवाभावना है। वे एक युवक-रत्न हैं। केवल सूबरीको खुश करनेके लिए ही मैं कुछ भी कर सकता हूँ। इसीलिए मैं कालंगल गया। यह कोयम्बटूरसे १३ मील दूर स्थित एक गाँव है।...

गाँवकी स्वच्छता और सफाई अद्‌भुत थी।... वहाँ मैंने सड़कोंपर आवारा फिरनेवाला एक भी कुत्ता नहीं देखा। क्योंकि कोई भी पत्ते या बचा-

1. यहाँ गांधीजीकी टिप्पणीके साथ-साथ चक्रवर्ती राजगोपालाचारी द्वारा लिखे लेखके कुछ अंशोंका ही अनुवाद दिया जा रहा है।

खुचा अन्नादि सड़कपर नहीं फेंकता है। हर घरके पीछेवाले अहातेमें अच्छे ढंगसे बनाये गये खादके गड्ढेमें ही सबकुछ डाला जाता है।

मेरे मेजबानके घरका भीतरी भाग व्यवस्था और सफाईका नमूना था। . . .खासे बड़े आकारके और कील-काँटेसे बिलकुल दुरुस्त दो चरखे, जिनके तकुए ताजे कते सूतसे भरे थे, हॉलकी शोभा बढ़ा रहे थे। घरकी औरतोंके व्यवहारमें दमघोंटू संकोच नहीं था और न उनमें किसी किस्मका पर्दा ही था। . . .

हम लोग दूसरे परिवारोंको देखने भी गये। हर घरमें अपना चरखा था, और वे सारे चरखे बिलकुल ठीक काम करनेकी अवस्थामें थे। हर जगह लोगोंने हमें अपना काता हुआ सूत और अपने बनाये कपड़े दिखाये। . . .

इस सुन्दर गाँवने ऐसे दिलपर ठंडे मरहमका काम किया जो सारे देशमें सब जगह निष्ठुर उपेक्षा और लंकाशायरका कपड़ा देख-देखकर व्यथित था।

हम द्रौपदीके मन्दिरके सामने थे और मैंने लोगोंसे कहा कि वे द्रौपदीका उदाहरण याद रखें। अगर द्रौपदीकी तरह भारत ईश्वरमें विश्वास रख सके और गांधीके द्वारा प्रस्तुत किया हुआ चरखा अपना सके तो वह अपनेको प्रताड़ना और अपमानसे बचा सकता है। कालंगल उस फूलके समान है, जो डालसे तोड़ा नहीं गया है और अपनी ताजा खुशबू सब तरफ बिखेर रहा है। अन्य गाँवोंको भी उसके उदाहरणका अनुकरण करना चाहिए। सुबरी और उनके मित्र, जिन्होंने १९२४ में इस उर्वर मिट्टीमें यह बीजारोपण किया था, पूरे सम्मानके पात्र हैं। — सी० आर०।[1]

कितना अच्छा होता यदि कालंगल-जैसे और भी बहुत-से गाँव होते! स्पष्ट है कि इस गाँवमें चरखेकी प्रगतिके साथ-साथ सफाई और स्वच्छता बढ़ती गई है। इस बातको अन्य स्थानोंके कार्यकर्त्ताओंको भी ध्यानमें रखना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २५-३-१९२६

१. चक्रवर्ती राजगोपालाचारी।

१९०. पत्र : प्रतापसिंहको

सावरमती आश्रम
बृहस्पतिवार, चैत्र सुदी ११ [२५ मार्च, १९२६][1]

कुमारश्री प्रतापसिंहजी,

आपका ३ मार्चका पत्र मिला था। अव . . . राणासाहव पोरवन्दरमें आ गये हैं, ऐसा मैंने सुना है। इसलिए यदि मेरे पत्रका उत्तर दिया जा सके तो दीजिएगा।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९३७४) की माइक्रोफिल्मसे।

१९१. पत्र : फूलचन्दको

सावरमती आश्रम
बृहस्पतिवार, चैत्रसुदी ११ [२५ मार्च, १९२६][2]

भाईश्री फूलचन्द,

आपका पत्र मिला। आप वहुत जल्दी निराश हो जाते हैं और मुझसे निराश होते नहीं वनता। लेकिन इसका क्या उपाय? आपको जहाँ निराशा दिखाई देती है, वहाँ मैं आशा देखता हूँ। मेरी श्रद्धा तनिक भी डगमगाती नहीं है। भावनगरके लोग अनेक प्रकारसे ताने मारते हैं तो मारें। हम इससे क्यों डरें अथवा डगमगायें? मुझे विश्वास है कि शहरोंमें थोड़ी-वहुत मात्रामें खादीकी खपत अवश्य होगी। हमारा मुख्य कार्य गाँवोंमें ही होना चाहिए, इसमें कोई शंका हो ही नहीं सकती। नगरपालिका आदिका काम हो सकता हो तो उसे करनेमें मेरा कोई विरोध नही है। लेकिन एक ही व्यक्तिको अनेक प्रकारका काम तो कदापि नही करना चाहिए। अपना क्षेत्र मैंने ढूंढ़ लिया है। यदि राजनीतिक परिषद् कोई व्यापक कार्य करना चाहती है तो ऐसा कार्य तो खादीका ही है, अथवा अन्त्यजोंका है। नगरपालिकाका काम करनेके लिए तो अनेक लोग निकल पड़ते हैं। वे यह करें और उसे शोभान्वित करें तो वहुत अच्छी वात है। लेकिन खादी और अन्त्यजोका काम करनेवाले लोग वहुत नही हैं। उसे तो हमें ही शोभान्वित करना है और यदि हमें उसमें विश्वास हो तो लोक-निन्दासे पराजित होनेकी क्या वात है? आपने कपासका संग्रह करनेके वारेमें लिखा है। उसका मुझे विश्वास नहीं होता। गारियाधारमें शम्भुशंकरने ऐसा

१. पोरवन्दरमें काठियावाड़ राजनीतिक परिषद् बुलानेके सम्बन्धमें प्रतापसिंहके साथ गांधीजीका पत्र-व्यवहार इसी वर्ष चल रहा था। देखिए "पत्र: प्रतापसिंहको", २५-२-१९२६।

२. पत्रमें राणा साहबके पोरवन्दर लौटने और वहाँ काठियावाड़ राजनीतिक परिषद्की बैठक बुलानेकी चर्चाके आधारपर।

किया जान पड़ता है। ऐसा हो तो मुझे बुरा नहीं लगेगा। मतलब यह कि हम लोगोंको कपास इकट्ठा करनेकी सलाह दें और उसे पिंजवाकर तथा बुनवाकर भी दें। किन्तु यह सब उनके खर्चपर होना चाहिए। कारण, यदि हम ऐसा नहीं करते तो इसका अर्थ यह होगा कि हम खादी आन्दोलनके रहस्यको नहीं समझ पाये हैं। खादी आन्दोलनका मुख्य ध्येय विदेशी कपड़ेका बहिष्कार नहीं, अपितु जिनके पास काम नहीं है, उन्हें काम देना है और यथासम्भव उनके भूखके कष्टको दूर करना है। ऐसा करनेका परिणाम बहिष्कार हो सकता है। किन्तु यदि इस परिणामको हम साध्य मान बैठें तो हम गिर जायेंगे। यदि हिन्दुस्तानमें भुखमरी और बेरोजगारी परस्पर कार्य-कारणरूप न हों तो मैं चरखेपर से अपने हाथको उठा लूँ।

हमें इस बातको सामने रखकर चलना चाहिए। इसीलिए हमारा कार्य गरीबोंके हाथों खादी बुनवाना और उसे सामान्य वर्गको बेचना है। इस दृष्टिसे अमरेलीमें खादीका ज्यादा इकट्ठा हो जाना मुझे भयानक नहीं लगता। हाँ, इस खादीको काठियावाड़से बाहर ले जानेकी परिस्थिति मुझे अवश्य भयानक लगेगी। लेकिन यदि ऐसे काम न चले तो इस तरह तैयार हुई खादीको मैं हिन्दुस्तानसे बाहर भेजनेको भी तैयार हो जाऊँगा — फिर बम्बई आदिकी तो बात ही क्या है? इसलिए मेरी कसौटी एक ही हो सकती है — वह यह कि हम देखें कि जहाँ-जहाँ हम खादी तैयार करवाते हैं, वहाँ-वहाँ जिनके पास दूसरा कोई धन्धा नहीं, ऐसे गरीबोंसे ही हम कतवाते हैं या नहीं और उन्हें जो दर देते हैं वह स्वीकृत दर है या नहीं; और सूत बलदार काता जाता है कि बेगार टाली जाती है। यदि इन तीन बातोंका उत्तर सन्तोषकारक आये तो वहाँ हम यह प्रवृत्ति चलने देंगे।

गोंडल और जामनगरके बारेमें मैंने जो उद्‌गार व्यक्त किये थे, उनके बारेमें यदि लोगोंने बहुत आशा बाँधी थी तो यह उनका दोष है। निराश होनेके बावजूद वे अपने काममें लगे रहें तो ठीक ही है। और यदि वे हमारा त्याग कर देते हैं तो हम क्या कर सकते हैं? हमारे हाथमें तो प्रयत्न करना ही है।

दीवान साहबका पत्र भेजता हूँ। सँभालकर रखिए। मुझे वापस न भेजें। राणा-साहब आ गये हैं, ऐसा सुना है। इसलिए मैं आज याद दिलानेके लिए पत्र लिख रहा हूँ।

अन्त्यज आश्रमके लिए मैंने पाँच हजार रुपये देनेकी बात कही थी सो दो महीनेमें, अर्थात् जूनमें भेजनेकी आशा रखता हूँ। मैं अप्रैलके आरम्भमें यहाँसे निकल चुका होऊँगा। मईके अन्तमें वापस पहुँच जाऊँगा और तुरन्त पाँच हजारका प्रबन्ध कर लूँगा। ऐसा हुआ तो काम ठीक समाप्त हो गया माना जायेगा न?

इस पत्रको देवचन्दभाईको पढ़ा दीजिएगा। जबतक दीवान साहबका उत्तर नहीं आता तबतक पोरबन्दरमें सभा न की जाये, यह ठीक ही है। अब मुझे नहीं लगता कि आपके पत्रकी किसी भी बातका उत्तर बाकी रह गया है।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९३८०) की फोटो-नकलसे।

१९२. तार : जमनालाल बजाजको

अहमदाबाद
२६ मार्च, १९२६

सेठ जमनालाल बजाज
कनखल,

यदि मुझे तारीख निश्चित करनी है तो मैं अप्रैलके बाद किसी समय रखूंगा। अभी यहाँ मौसम असामान्य रूपसे ठंडा है।

बापू

[अंग्रेजीसे]
पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद

१९३. पत्र : जे० ई० डेनिसनको

साबरमती आश्रम
२६ मार्च, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। खेदके साथ आपको सूचित करना पड़ रहा है कि मैं अपना कोई फोटो नहीं रखता। और कई वर्षोंसे मैंने किसी फोटोग्राफरके सामने बैठकर फोटो उतरवाया भी नहीं। हाँ, बाजारमें मेरे फोटो बिक रहे हैं। वे सब अचानक लिये गये हैं। मेरी रायमें वे सब असलकी नकल ही हैं।

हृदयसे आपका,

श्री जे० ई० डेनिसन
डायरेक्टर
टू रिवर्स ब्वॉयज वर्क एसोसिएशन
एच० पी० हैमिल्टन स्कूल
टू रिवर्स, वाइकान्सिन
(यूनाइटेड स्टेट्स)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १२४३०) की फोटो-नकलसे।

१९४. पत्र : कैथरीन मेयोको

साबरमती आश्रम
२६ मार्च, १९२६

प्रिय बहन,

आपके जानेसे पहले आपका पत्र मिल गया, इससे मुझे बड़ी खुशी हुई, और उससे भी ज्यादा खुशी यह जानकर हुई कि आप सारा मामला . . .[1] विचार कर रही हैं। मैंने जो-कुछ कहा, उसकी सचाईकी छानबीन आप स्वयं कीजिए और तब किसी निर्णयपर पहुँचिए। यही वह बात है जो मैं चाहता हूँ कि सभी अमेरिकी मित्र करें। किसी बातपर यों ही यकीन न करें, हर बातको — चाहे वह किसी भारतीय सूत्रसे ज्ञात हो या यूरोपीय सूत्रसे, वह भारतके पक्षमें या विपक्षमें हो — खुद जाँचें और पूरी तरह सोच-विचारकर कोई निष्कर्ष निकालें और उसके अनुसार आचरण करें।

मैं इस पत्रके साथ उन किताबोंका उद्धरण भेज रहा हूँ, जिनके नाम आप उद्धरणोंके अन्तमें पायेंगी। फिर भी यदि आपको उन पुस्तकोंको प्राप्त करनेमें कठिनाई हो, जिनसे ये उद्धरण लिये गये हैं तो कृपया मुझे सूचित कीजिए। मैं इतना और कहना चाहूँगा कि भारतकी गरीबीके बारेमें जो बात कही गई है वह स्वर्गीय सर विलियम विलसन हंटरके साक्ष्यपर ही आधारित नहीं है, बल्कि उस कथनकी पुष्टि बादमें एकाधिक भारतीय और यूरोपीय विशेषज्ञोंके कथनोंसे हुई है। यदि आप मुझसे इस जानकारीको भी सिद्ध करवाना चाहे तो मुझे इसके प्रमाण भेजनेमें खुशी होगी। मैं आपको एक तरीका सुझा रहा हूँ, जिसे तथ्यकी छानबीनके लिए कोई साधारणसे-साधारण व्यक्ति भी अपना सकता है।

१. क्या यह सच है या नहीं कि भारतके लगभग ८० प्रतिशत लोग खेतिहर हैं और १,९०० मील लम्बे और १,५०० मील चौड़े क्षेत्रमें दूर-दूरतक फैले गाँवोंमें रहते हैं?

२. क्या यह सच है या नहीं कि ये किसान छोटे-छोटे खेतोंपर बसर कर रहे हैं; और बहुधा बड़े जमींदारोंके आसामीकी तरह रहते हैं?

३. क्या यह सच है या नहीं कि उनमें से बहुत बड़ी संख्या ऐसे लोगोंकी है, जिनके पास कमसे-कम सालमें चार महीने कोई काम नहीं होता?

४. क्या यह सच है या नहीं कि अंग्रेजोंके शासनसे पहले इन्हीं लोगोंके पास खेतीके कामके अलावा हाथ-कताई और कुछ अन्य सहायक उद्योग-धन्धे थे, जिनसे उन्हें खेतीसे होनेवाली अल्प आयके अतिरिक्त कुछ और मिल जाता था।

५. क्या यह सच है या नहीं कि यद्यपि हाथ-कताईको पूरी तरह समाप्त कर दिया गया है, तथापि किसी अन्य धन्धेने उसका स्थान नहीं लिया है?

१. यहाँ साधन-सूत्रमें कुछ स्थान खाली है।

यदि इन सभी प्रश्नोंका उत्तर "हाँ" में है तो कोई भी व्यक्ति चाहे जो कहे, यह तो निश्चित है कि हाथ-कताई उद्योगका नाश होनेसे पहले ये खेतिहर लोग जितने गरीब थे, उसकी अपेक्षा अब वे ज्यादा गरीब हो गये होंगे। जनताकी इस बढ़ती हुई गरीबीके कई अन्य कारण भी है, लेकिन मैं समझता हूँ कि इन प्रश्नोंमें जितनी बातें आ जाती हैं, वे एक साधारण जिज्ञासुके लिए काफी हैं। मैंने सचाईका पता लगानेका यह तरीका आपको इसलिए सुझाया है कि भारतकी बढ़ती गरीबीके दुःखद तथ्यको आप एकाधिक तरीकोंसे जाँच कर सकें।

कैथरीन मेयो

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १२४५१) की फोटो-नकलसे।

१९५. पत्र : अमूल्यचन्द्र सेनको

साबरमती आश्रम
२६ मार्च, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैं यह दावा नहीं करता कि मुझे पूर्ण सत्यका साक्षात्कार हो गया है। लेकिन जहाँतक हुआ है, स्वाभाविक रूपसे हुआ है। असत्यको छोड़कर सत्यको ग्रहण करनेका कोई विशेष क्षण मेरे जीवनमें आया हो, ऐसा मुझे याद नहीं है। कृपया उन मिशनरी महिलाको बताइए कि अपने बंगालके दौरेके समय मैं अंग्रेज लोगों द्वारा चलाई जा रही कई मिशनरी संस्थाओंमें गया था। उनमें से कुछका तो हाथ-बुनाई या हाथ-कताईसे कोई सरोकार नहीं था। उन्हें यह भी बता दीजिएगा कि मैं खास तौरसे सिरामपुरके सरकारी बुनाई प्रतिष्ठान और उसके निकट स्थित चर्च ऑफ इंग्लैंड मिशन द्वारा संचालित लड़कियोंके स्कूलमें भी गया था। इसलिए यदि मैं उनके गलीचेके कारखानेमें नहीं गया तो केवल समयाभावके ही कारण ऐसा हुआ होगा।

मैं आपको यह बतानेके लिए धन्यवाद देता हूँ कि आप खादीके सिवाय कुछ और नहीं इस्तेमाल करते हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत अमूल्यचन्द्र सेन, एम० ए०
सीनियर लेक्चरर
लैंग्वेज स्कूल, क्वीन्स हिल
दार्जिलिंग

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३८३) की माइक्रोफिल्मसे।

१९६. पत्र : मुहम्मद शफीको

साबरमती आश्रम
२६ मार्च, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र और उसके साथ पण्डितजीके वक्तव्यके जवाबमें आपका वक्तव्य मिला। आपकी व्यथामें मैं साझेदार हूँ। कुल मामला बहुत खेदजनक है। लेकिन मैं ईश्वरके इस वचनपर भरोसा रखकर चलता हूँ कि इस ससारमें शाश्वत दुःख या शाश्वत सुख-जैसी कोई चीज नहीं है और इसलिए यदि व्यक्ति प्रतीक्षा करे और विश्वास रखे तो हर दुःखके बाद सुख प्राप्त होता है। मैं तो धैर्य रखता हूँ, क्योंकि मेरे अन्दर आस्था है और इसीलिए मेरी आँखोंके सामने जो दुःखद बातें हो रही हैं, उनपर मैं रोता नही।

हृदयसे आपका,

मौलवी मुहम्मद शफी, एम० एल० ए०
५, विंडसर प्लेस
रायसीना
दिल्ली

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३८४) की माइक्रोफिल्मसे।

१९७. पत्र : हकीम अजमलखाँको

साबरमती आश्रम
२६ मार्च, १९२६

प्रिय हकीम साहब,

आपको उर्दूमें पत्र नही लिख रहा हूँ, इसके लिए आपको मुझे माफ करना ही होगा। मुझे दाहिने हाथसे लिखनेकी मनाही है। बायें हाथसे उर्दूमें लिखना बड़ी मेहनतका काम है। और अभी इस वक्त, जब मुझे कमसे-कम काम करना चाहिए, मैं आपको उर्दूमें पत्र लिखनेमें बहुत ज्यादा समय नही लगाना चाहता। इसीलिए बोलकर पत्र लिखवा रहा हूँ।

तो आखिर आपपर मेरी देख-भालकी जिम्मेदारी भी डाल दी गई है — मानो इस जिम्मेदारीके बिना आपकी परेशानियोंमें कुछ कसर रह गई थी। आपका अन्तिम तार मिल गया है। मैं अपनी स्थिति स्पष्ट कर दूँ। किसी ज्यादा ठंडे स्थानको जानेके लिए आश्रम छोड़नेका अभी मेरा कतई मन नही है और इसीलिए

मुझे आश्रम छोड़नेकी कोई जल्दी नहीं है। मैं जमनालालजी तथा अन्य मित्रोंसे वचनबद्ध हूँ कि उनके कहनेपर किसी भी दिन उनके तय किये गये स्थानपर जानेके लिए साबरमतीसे रवाना होनेको तैयार रहूँगा। लेकिन यदि रवानगीका दिन मुझे तय करना हुआ तो मैं उस समय जाना चाहूँगा जब थोड़े दिनोंकी छुट्टियोंके लिए आश्रमका स्कूल बन्द हो जाता है। मैं ३० मिनटकी एक कक्षा लेता हूँ और वह मेरे लिए कोई थकानेवाला काम नही है। यह कक्षा मै छोड़ना नही चाहूँगा। इसके अलावा और कुछ छोटी-छोटी चीजें हैं जिन्हें मैं जानेसे पहले पूरा कर लेना चाहूँगा। तीसरी बात, और वह स्वास्थ्यकी दृष्टिसे सबसे ज्यादा महत्त्वकी है, यह है कि यहाँ मौसम सुहावना और ठंडा है। इस समय भारतके इस हिस्सेमें ऐसा मौसम होना असामान्य बात है, लेकिन मारवाड़में खूब वर्षा होनेसे गुजरातका मौसम विशेष रूपसे ठंडा हो गया है। सुबहके समय कम्बलकी जरूरत पड़ती है। और दिनमें परेशान करनेवाली गर्मी नहीं होती। अभी कुछ समयतक इस तरहका मौसम बना रहेगा, ऐसी सम्भावना है। इसलिए सच पूछिए तो यह मौसम अभी मेरे लिए बहुत अनुकूल है। पत्र लिखाते समय भी ठण्डी हवा चल रही है और मैं इससे अधिक अच्छी जल-वायुकी कल्पना अन्यत्र नहीं कर सकता। मैं प्रति-दिन कमसे-कम एक घंटा मजेमें घूम लेता हूँ। ठीकसे भोजन कर रहा हूँ और अच्छी तरह बातचीत कर लेता हूँ। लगभग प्रति सप्ताह एक पौंडके हिसाबसे मेरा वजन बढ़ रहा है। इसलिए मैं तब तक आश्रम छोड़ना नही चाहूँगा जबतक ऐसी अनुकूल परिस्थितियाँ बनी हुई हैं। इसके अलावा यदि किसी तरहसे भी सम्भव हो तो मुझे यहाँसे तभी क्यों न हटाया जाये जब मसूरीमें आजकलकी अपेक्षा ठंड कुछ कम हो जाये और इस तरह बजाय इसके कि बीचमें कुछ दिन कहीं और रुकूँ, मैं यहाँसे सीधे मसूरी ही चला जाऊँ? यदि मेरा स्वास्थ्य बहुत ही नाजुक होता और मैं यहाँकी गर्मी बर्दाश्त न कर सकता, तो इस सबकी जरूरत शायद हो सकती थी। मैं न तो इतना कमजोर हूँ और न यहाँ गर्मी है। अब मैं यह मामला उन मित्रोंके हाथोंमें छोड़ता हूँ जो फिलहाल मेरी गतिविधियोंका संचालन कर रहे हैं।

और जहाँतक आपका सम्बन्ध है, मैं समझता हूँ, आपको यह कहनेका कोई हक नही कि मुझे अपने स्वास्थ्यके लिए क्या करना चाहिए और क्या नही, क्योंकि आपका स्वास्थ्य मुझसे कही ज्यादा नाजुक है। और मुझे मिले सारे ब्योरोंसे पता लगता है कि आपने यूरोपमे जितनी भी सेहत बनाई थी, लगभग सब गँवा दी है, और आप अपनी सेहतपर बिलकुल ध्यान नहीं दे रहे हैं, आराम बिलकुल नही करते और दिनमे हर समय, यहाँतक कि रातमें भी, मरीजों और मित्रोसे मिलते रहते हैं। इसलिए जबतक आप अपना तौर-तरीका नही सुधारते, तबतक मैं स्वास्थ्य-के सम्बन्धमें आपकी कोई हिदायत सुननेको तैयार नहीं हूँ। मैं तो इस सिद्धान्तका अनुयायी हूँ कि 'वैद्य, पहले अपना इलाज कर।'

अब देशकी वर्तमान दशाके बारेमें मैं अपने मनका बोझ आपके सामने हलका करूँ तो क्या कोई हर्ज है? इस सम्बन्धमें अबतक मैं संयमसे काम लेता रहा हूँ।

व्यर्थकी कागजी बहससे क्या लाभ? इसलिए मैं धीरज धरकर चुपचाप सब देख रहा हूँ और प्रभुसे प्रार्थना करते हुए यह आशा रखता हूँ कि आज हम अपने चारो ओर जो घोर अन्धकार देखते हैं, ईश्वर उस अन्धकारको दूर करनेकी तैयारी कर रहा है।

ख्वाजा कहाँ हैं? क्या उन्होंने जामियाको छोड़ दिया है और अपनी प्रैक्टिस फिर शुरू कर दी है। अब सस्थाका प्रधान कौन है? शुएब कहाँ है? उसने अनुसूयाबाईके पत्रकी प्राप्ति भी स्वीकार नही की है। मैंने उसे पत्र नही लिखा है, क्योकि मैं आशा कर रहा हूँ कि शिष्टमण्डलके कामोंसे मुक्त होनेपर वह मुझे पत्र लिखेगा।

हृदयसे आपका

हकीमजी अजमलखाँ साहब
दिल्ली

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३८५) की फोटो-नकलसे।

१९८. पत्र : मरियम आइजकको

साबरमती आश्रम
२६ मार्च, १९२६

प्रिय बहन,

आपका पत्र मिला। यदि आप गरीबोंकी सेवा व्यापकतम अर्थोंमें करना चाहती हैं, तो मैं आपको चरखा और खादी-प्रचार करनेका ही सुझाव दे सकता हूँ। यह कार्य करना कठिन है, लेकिन आप इससे गरीबीकी बीमारीका इलाज शुरू तो कर सकती हैं। मुझे खुशी है कि आप कताई शुरू करनेका विचार कर रही हैं। अनुशासन और त्यागके एक तरीकेके रूपमे और गरीबोको मजदूरी देनेके लिए आपको हर घरमें इसे शुरू कराकर अपने कार्यको सम्पन्न करना चाहिए। आप स्वयं भी खादी अपना सकती हैं और अपने मित्रोंमें भी उसका प्रचार कर सकती हैं। इस तरह लगातार गरीबोंसे तादात्म्य रखनेसे आप उनकी सेवाके कई और तरीके खुद खोज सकेंगी।

मैं आपको 'यंग इण्डिया' की एक प्रति मुफ्त भेजनेका प्रबन्ध कर रहा हूँ। आशा है, आप उसकी फाइल बनायेंगी या अन्य लोगोंको दे देंगी, जो इसे पढ़ना तो चाहते हों पर शायद खरीदनेमें असमर्थ हो।

हृदयसे आपका,

श्रीमती मरियम आइजक
मार्फत श्री ए० एम० पॉल
अरीक्कल मेकावे
अंगमलि, उ० त्रावणकोर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३८६) की माइक्रोफिल्मसे।

१९९. पत्र : डी० वी० रामस्वामीको

सावरमती आश्रम,
२६ मार्च, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका दुःखद पत्र मिला। मैंने आपका पत्र पानेसे पहले कृष्णके जरिये आपको एक पत्र भेज दिया था। हनुमन्तरावकी पत्नीके नाम भी एक पत्र भेजा था। मेरे मनमें कोई भी सन्देह नहीं था कि हनुमन्तराव बहादुरीसे मरे हैं। मैं अब आपसे आशा करता हूँ कि हनुमन्तरावने अपना काम जहाँपर छोड़ा है, आप उसे उससे आगे, जहाँ तक आपसे बन सकेगा, जारी रखेंगे। मुझे अपना हाल-समाचार बताइएगा। आप क्या कर रहे हैं? आशा है, परिवारके सभी सदस्य उनकी मृत्युको प्रसन्न मनसे सहन कर रहे हैं। हनुमन्तरावकी जैसी बहादुरीकी मौतपर शोक मनाना अनुचित होगा। मैंने हनुमन्तरावको जो दूसरा पत्र लिखा था, कृपया उसे राजमुन्दरीवाले मित्रके पास भेज दीजिए और मुझे उनका पता भी लिखिए। मैं चाहूँगा कि जहाँतक हो सके, प्राकृतिक चिकित्साके लिए उससे अधिक कार्य करूँ जितना कि अबतक करता रहा हूँ; क्योंकि जबतक हनुमन्तराव जीवित थे, मुझे लगता था कि उस काममें मुझे हस्तक्षेप करनेकी जरूरत नहीं है जिसमें वे विशेष योग्यता प्राप्त कर रहे हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत डी० वी० रामस्वामी
विशाखापट्टनम्

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३८७) की माइक्रोफिल्मसे।

२००. पत्र : चीनी मित्रोंको[1]

२६ मार्च, १९२६

मुझे प्रतिनिधियोंकी ओरसे निमन्त्रण मिलना चाहिए।[2] मेरा शान्तिका सन्देश यदि अन्य लोगोंको नहीं तो मुझे बुलानेवालोंको तो पसन्द आना चाहिए। यदि ऐसा हो तो वे लोग आकर पहले मेरे दृष्टिकोणको समझ लें; बादमें मैं आनेका विचार करूँगा।

[गुजरातीसे]
बापुनी प्रसादी

१. गुजराती अनुवादसे अनुवादित।
२. गांधीजीकी प्रस्तावित चीन-यात्राके लिए, देखिए "पत्र: ए० ए० पॉलको", ३-३-१९२६, ९-५-१९२६ और ३०-५-१९२६।

२०१. पत्र : मीठाबाईको

साबरमती आश्रम
शुक्रवार चैत्र सुदी १२ [२६ मार्च, १९२६][1]

गंगास्वरूप बहन मीठाबाई,

आपका पत्र मुझे मिला है। आपके दुःखसे मुझे दुःख होता है। भाई शिवजीके प्रति आपकी भक्ति देखकर मुझे आनन्द होता है। लेकिन आपके पत्रका यदि मेरे ऊपर कोई असर नहीं हुआ तो इसमें मैं क्या कर सकता हूँ? आप जो-जो बातें लिखती हैं, वे सब वैसी ही हों, तो भी और अपने प्रयत्नके बावजूद उन्हें यदि मैं वैसा न देख सकूँ तो उसमें क्या मुझे दोष दिया जा सकता है? मैं ऐसा मानता हूँ कि जब मावजी भाई आदि यहाँ आये थे तब मैं तो स्वस्थ ही था, जबकि आपको लगता है कि मैं पागलपन-भरी बातें कहता था। मैंने अपनी पत्नीके बारेमें जो बात की, उसमें मैंने न तो उसकी निन्दा की और न ही कुछ अनुचित काम किया, ऐसा मुझे अभी भी लगता है।

आपका पत्र, यदि पंचायत बैठी तो, अवश्य उसके पास भेजूँगा, आप स्वयं आकर पंचोंसे जो कहना चाहें सो कह सकेंगी।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९३८१ आर०) से।

२०२. पत्र : मावजीको

साबरमती आश्रम
शुक्रवार, चैत्र सुदी १२ [२६ मार्च, १९२६][2]

भाईश्री ५ मावजी,

एक ओरसे तो भाई शिवजीके मामलेका स्पष्टीकरण करनेके लिए मुझपर दबाव डाला जा रहा है और दूसरी ओरसे भाई शिवजीके भक्तजन मुझपर शब्द प्रहार कर रहे हैं, जो स्वाभाविक ही है। मेरी स्थिति त्रिशंकुकी जैसी हो गयी है। मैं न तो भक्तोंको सन्तुष्ट कर सकता हूँ और न उनके टीकाकारोंको। भाई . . .[3] ने एक कटु पत्र लिखा है, और उसमें कहा है कि पंचायत बैठानेकी बात मैंने कही है। मैं कह सकता हूँ कि मेरे मनमें इसका खयाल बिलकुल भी नहीं आया। यदि भाई शिवजीको पंचायत नहीं चाहिए तो वे अवश्य इस प्रस्तावको खत्म कर दें। इस छोटे-से कामको यदि आप जल्दी निपटा सकें तो मैं आपका ऋणी होऊँगा। मैं स्वयं पंचायतका तनिक

१. शिवजीके मामलेके उल्लेखके आधारपर।
२. देखिए पिछले शीर्षककी पाद-टिप्पणी।
३. यहाँ नाम छोड़ दिया गया है।

भी समय नहीं लेनेवाला हूँ। ऐसा समझिए कि वह जब भी बैठे उसके लिए मैं तैयार ही हूँ। यदि पंचायत जल्दी नहीं बैठ सकती तो क्या आप स्वयं ही जाँच करके मुझे नहीं समझा सकते? पंचायत बैठानेके पीछे तो यही उद्देश्य है कि अगर मेरे सन्देहका कारण केवल वहम ही है तो वह वहम दूर हो जाये। यह काम क्या आप स्वयं ही नहीं कर सकते? जो उचित जान पड़े सो कीजिए लेकिन इस असमंजसकी स्थितिको समाप्त कीजिए। मैं धीरज बिलकुल नहीं खोना चाहता। भाई शिवजीके साथ अन्याय हो, यह तो कैसे चाह सकता हूँ? मैं तो इस अनिश्चित स्थितिका अन्त चाहता हूँ।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९३८२ आर०) से।

२०३. पत्र : हरबर्ट ऐंडर्सनको[1]

साबरमती आश्रम
२७ मार्च, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। धन्यवाद। मैं इसके साथ प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियोंके मन्त्रियों और उनके पतोंकी सूची भेज रहा हूँ। आपके लिए ठीक यही होगा कि आप विधानसभा और प्रान्तीय परिषदोंके प्रत्येक सदस्यको सीधे पत्र लिखें और पूछें कि क्या वे पूर्ण मद्य-निषेधका समर्थन करेंगे। मालूम नहीं कि आपने दिल्लीमें मद्यनिषेध लीगकी कार्यवाहियोंके सम्बन्धमें 'यंग इंडिया'में लिखी मेरी टिप्पणी[2] देखी है या नहीं। इसमें मैंने यह दिखानेका प्रयत्न किया है कि जबतक आप यह नहीं बताते कि पूर्ण मद्य-निषेधसे होनेवाले घाटेको, जो कमसे-कम कुछ समयतक बना रहेगा, कैसे पूरा करेंगे और राजस्वका इन्तजाम कहाँसे करेंगे, तबतक आपका आन्दोलन. . .।[3]

यदि आपने वह अंक नहीं देखा है तो मैं आपको उस अंककी एक प्रति, यदि मिली तो, सहर्ष भेजूंगा; नहीं तो उस टिप्पणीकी एक टाइप की हुई प्रति ही भेज दूंगा।

हृदयसे आपका,

रेवरेंड हरबर्ट ऐंडर्सन
५९, किंग्स रोड
हावड़ा, कलकत्ता

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १२१६४) की फोटो-नकलसे।

१. गांधीजीने यह पत्र भारतकी मद्य-निषेध लीगके अवैतनिक महामन्त्री हरबर्ट ऐंडर्सनके १९-३-१९२६ को लिखे पत्रके उत्तरमें लिखा था। अपने पत्रमें हरबर्ट ऐंडर्सनने गांधीजीसे अनुरोध किया था कि वे उनके मद्य-निषेध आन्दोलनके समर्थनमें अपने "निजी प्रभाव" का उपयोग करें।

२. देखिए खण्ड २९, पृष्ठ ४२९-३२।

३. साधन-सूत्रमें यहाँ स्थान रिक्त है।

२०४. पत्र : फ्रेड्रिक हाइलरको

साबरमती आश्रम
२७ मार्च, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र और पुस्तक मिली; दोनोंके लिए धन्यवाद। मुझे खेद है कि मैं खुद जर्मन भाषा नहीं समझता, लेकिन मैं आपकी पुस्तकको अपने एक मित्र द्वारा समझनेका प्रयत्न करूँगा।

मैं समझता हूँ, साधु सुन्दर सिंहके बारेमें मैं कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे सकता। मुझे उनसे केवल एक ही बार मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। अपने एक ईसाई मित्रके अनुरोधपर मैंने उन्हें आश्रम आने और हमारे साथ चन्द घंटे बितानेको निमन्त्रित किया था; और उन्होंने यूरोप जाते हुए मेरा अनुरोध पूरा करनेकी कृपा की थी। लेकिन मैंने उनके अनुभवोंके बारेमें कोई पूछताछ नहीं की, और न बादमें ही कभी इसकी जरूरत महसूस की है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत फ्रेड्रिक हाइलर
प्रोफेसर ऑफ कम्पेरेटिव रिलीजन
मारबर्ग यूनिवर्सिटी, जर्मनी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १२४३५) की फोटो-नकलसे।

२०५. पत्र : जी० पी० नायरको

साबरमती आश्रम
२७ मार्च, १९२६

प्रिय मित्र,

मेरे नाम आपने जो खुला पत्र लिखा था उसका कोई उत्तर न देनेसे आपके मनको चोट पहुँची, इसका मुझे दु:ख है। फिर भी मैं आपको बता दूँ कि खुले पत्रपर ध्यान देना अथवा उसे पढ़ लेनेकी सूचना देना जरूरी नहीं होता। खुले पत्र लोक-सेवी व्यक्तियोंको इस खयालसे लिखे जाते हैं कि वे, जिन विषयोंकी इन पत्रोंमें चर्चा होती है, उनपर विशेष रूपसे ध्यान दें। कभी-कभी, जब मुझे लगता है कि पत्रमें मेरे उद्देश्यकी अवमानना की गई है या उसे गलत रूपसे पेश किया गया है और मैं जवाब देकर उस उद्देश्यकी सेवा करूँगा तब मैं जवाब देता हूँ। आपके प्रति अभद्रता दिखलानेका मेरा कोई इरादा न था। इस बार आपने जो अनुरोध किया

है, वह सचमुच नाजुक किस्मका है। आप जो पत्र प्रकाशित करनेका विचार रखते हैं, उसकी नीतिके बारेमें जब मुझे कुछ मालूम ही नहीं है तो फिर मैं आपका पथ-निर्देशन कैसे कर सकूँगा या आपको प्रेरणा कैसे दे सकूँगा? पत्रके लिए आपने जो नाम चुना है, उस नामसे ही मुझे डर लगता है। यह बात नहीं कि मैं रिपब्लिकेनिज्म (गणतन्त्रवाद)का कायल नहीं हूँ, परन्तु मेरे विचारसे इस समय भारतके लिए गणतन्त्र एक अर्थ-हीन शब्द है। मैं जानता हूँ कि इस मामलेपर मतभेद है, लेकिन मुझे अपने मतपर दृढ़ रहना चाहिए। मैं समान उद्देश्यकी पूर्तिके लिए युवा पीढ़ीके साथ मिलकर काम करनेको तैयार हूँ, लेकिन मैं उनसे पूरी तरह सहमत नहीं हो सकता। ज्यादासे-ज्यादा मैं यही कर सकता हूँ कि अपनेको पृष्ठभूमिमें रखूँ और नौजवान लोग जिस बातको दूसरोंके अनुभवसे सीखनेसे इनकार करते हैं, उसे उन्हें खुद अपने कड़वे अनुभवोंसे सीखने दूँ।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत जी० पी० नायर
सम्पादक, 'रिपब्लिक'
माल रोड, कानपुर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३८८) की फोटो-नकलसे।

२०६. पत्र : मौलाना मुहम्मद अलीको

साबरमती आश्रम
२७ मार्च, १९२६

प्रिय मित्र और भाई,

एक पत्र-लेखकने कड़ा पत्र लिखा है, जिसमें उन्होंने पूछा है कि 'यंग इंडिया' में हर हफ्ते अखिल भारतीय चरखा संघके सदस्योंकी जो सूची प्रकाशित की जाती है, उसमें आपका नाम क्यों नहीं है। मैं भी आपसे यही प्रश्न पूछता हूँ। जबतक मुझे यह पत्र नहीं मिला था, तबतक मुझे मालूम नहीं था कि आपने एक भी महीनेका चन्दा नहीं भेजा है। यदि आप यह कहें कि आजकल आप बहुत ज्यादा परेशान अथवा व्यस्त हैं, तो मैं यह बहाना माननेको तैयार नहीं हूँ। दो बातें हो सकती हैं: या तो चरखा चलाना एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है और इसका प्रसार करनेके लिए चरखा संघ ठीक संस्था है, अथवा चरखा चलाना जरूरी नहीं है और यदि जरूरी है भी तो इसका प्रसार करनेके लिए चरखा संघ ठीक संस्था नहीं है। यदि पहली बात ठीक है, तो फिर आपकी-जैसी स्थितिवाले व्यक्तिके संघमें न बने रहनेका कोई भी बहाना स्वीकार नहीं किया जा सकता। यदि दूसरी बात सही है तो संघको छोड़नेके लिए किसी बहानेकी जरूरत नहीं है, बल्कि तब तो सही बात यही है कि संघकी स्पष्ट शब्दोंमें भर्त्सना की जाये। मैं जानता हूँ कि आप चरखेका पूरा समर्थन करते हैं। मैं जानता

हूँ कि आप चरखा संघको एक ठीक संस्था मानते हैं और यही कारण है कि मैं आपकी ओरसे कोई भी बहाना स्वीकार नहीं करूँगा।

आपका स्वास्थ्य कैसा चल रहा है? आप देशकी वर्तमान स्थितिके सम्बन्धमें कैसा महसूस करते हैं, मैं इसके बारेमें कुछ पूछना नहीं चाहता। जो स्थिति है, वह तो बिलकुल हमारे आमने-सामने चुनौती देती हुई खड़ी है। शुएब कहाँ है? मैं अगले महीने किसी समय मसूरी जानेवाला हूँ। यदि जानेकी नौबत आई तो मैं दिल्लीसे गुजरते समय आपसे स्टेशनपर मिलनेकी उम्मीद करता हूँ। मेरे प्रसिद्ध तानाशाह कैसे हैं? और बेगम साहिबा कैसी हैं? मेरा खयाल है कि वे अपने हिस्सेका सूत नियमित रूपसे भेजती रही हैं। लड़कियाँ भी ऐसा क्यों न करें, सो मेरी समझमें नहीं आता।

आपका,

मौलाना मुहम्मद अली
दिल्ली

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३८९) की फोटो-नकलसे।

२०७. पत्र: आर० डी० टाटाको

साबरमती आश्रम
२७ मार्च, १९२६

प्रिय श्री टाटा,

आपको शायद याद होगा, जब मैं जमशेदपुरमें था तब आपने मुझसे कहा था कि मुझे एक लाखके भीतर जितने तकुओं और तकलियोंकी जरूरत होगी, उतने आप मुझे खुशी-खुशी देंगे। अगर मुझे ठीक याद है तो इतनी ही संख्या कही गई थी। मैंने यह बात सतीश बाबूपर छोड़ दी थी कि वे जिस तरहके तकुए और तकलियाँ बनवाना चाहते हैं, उसका नमूना आपको भेज दें। मैं समझता हूँ कि इस बारेमें उस बातचीतसे आगे कुछ नहीं किया गया है। इस समय मेरे पास तकुओं और तकलियोंकी बहुत ज्यादा माँग आ रही है और मैं उसे पूरा नहीं कर पा रहा हूँ। क्या आप मुझे तकुए और तकलियाँ देंगे? हालाँकि मैंने आपको हमारे बीच हुई बातचीतकी याद दिलाई है, लेकिन मैं यह नहीं चाहता कि आप दिक्कत उठाकर ये वस्तुएँ मुझे दें। मैं चाहूँगा कि आप इसपर एक स्वतन्त्र सुझावके रूपमें विचार करें और यदि आपको लगे कि बहुत ज्यादा असुविधा अथवा खर्च उठाये बिना इस कुटीर उद्योग आन्दोलनकी, जितनी मदद देनेका सुझाव मैंने रखा है, उतनी मदद आप कर सकते हैं तो मैं आभारी होऊँगा।

मैंने श्री अलेक्जैंडरको सीधे एक पार्सल भेजा है, जिसमें तकुओं और तकलियोंके नमूने हैं। ये चार प्रकारके हैं और यदि आप इन्हें देनेका विचार रखते हैं तो

यह तय कर दीजिए कि आप कुल कितने तकुए और तकलियाँ देंगे। फिर मैं चाहूँगा कि चारों नमूनेकी चीजे बराबर-बराबर संख्यामें दी जायें।

मैं यह भी बता दूं कि हमें प्रत्येक तकुए और तकलीकी कीमत लगभग दो या ढाई आने पड़ती है। इसलिए यदि आप मुझे हमारे उपयोगके लिए एक लाख तकुए और तकलियाँ देंगे तो यह कमसे-कम १२,५०० रुपयेका दान होगा और जैसा कि मुझे बताया गया है, आपके इसपर कुछ मिलाकर ३,००० रुपयेसे कम नही खर्च होंगे।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३९१) की माइक्रोफिल्मसे।

२०८. पत्र: सी० ए० अलेक्जेंडरको

साबरमती आश्रम
२७ मार्च, १९२६

प्रिय श्री अलेक्जेंडर,

मैं आपको इस पत्रके साथ एक पार्सल भेज रहा हूँ, जिसमें तकुओं और तकलियोंके चार नमूने हैं। आपको याद होगा, मैं जब जमशेदपुर गया था उस समय आपकी उपस्थितिमे श्री टाटाके साथ मेरी बातचीत हुई थी कि आपके कारखानेसे मुझे एक लाख तकुए और तकलियाँ मिलेंगी। मैं नही समझता कि इस बातचीतके बाद इस दिशामे कुछ किया गया है। मैंने श्री टाटाको पत्र लिखा है, जिसमें उनसे पूछा है कि क्या वे इन वस्तुओंके दिये जानेके बारेमें निर्देश देना चाहेंगे। समय बचानेकी खातिर और यह मानकर कि श्री टाटा तो 'हाँ' कहेंगे ही, आपको यह पार्सल भेजा है। सो अब यदि आपको श्री टाटाकी स्वीकृति मिल जाये तो क्या आप मुझे ये वस्तुएँ जल्दसे-जल्द भेजनेकी कृपा करेंगे? मेरे पास इनके लिए अत्यधिक आवेदन-पत्र आ रहे हैं और मेरे लिए इनकी माँगको पूरा करना कठिन हो गया है।

यदि पूरे एक लाख तकुए और तकलियाँ भेजनी हों तो मैं चाहूँगा कि चारों नमूनोंके पच्चीस-पच्चीस हजार तकुए और तकलियाँ दी जाये। यह कहनेकी जरूरत नहीं कि वे बिलकुल नमूनेके अनुसार होने चाहिए। तकुओंमें जरा भी फर्क होनेसे वे हिलने लगते हैं और उनपर गतिके साथ काम करना मुश्किल हो जाता है। कोई जरूरी नहीं कि तकलीके रिम भी ताँबे अथवा शतघ्नी धातुके ही बने हुए हों। ढले हुए लोहेसे भी काम चल जायेगा।

हृदयसे आपका,

श्री सी० ए० अलेक्जेंडर
जमशेदपुर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३९०) की माइक्रोफिल्मसे।

२०९. पत्र : नाजुकलाल नन्दलाल चौकसीको

साबरमती आश्रम
शनिवार, चैत्र सुदी १३ [२७ मार्च, १९२६]

भाईश्री ५ नाजुकलाल,

भगवान करे तुम्हारे सब शुभ प्रयत्न सफल हों और तुम्हारा शरीर बिलकुल स्वस्थ हो जाये।

मोतीने सप्ताहमें एक बार ही लिखनेकी छूट माँगी है, यह बात मुझे कैसे पसन्द आ सकती है? लेकिन जबर्दस्ती पत्र लिखवानेकी अपेक्षा बिलकुल न लिखनेकी बातको मैं ज्यादा अच्छा समझता हूँ, क्योंकि जबर्दस्ती पत्र लिखनेसे पत्रके प्रति ही अरुचि उत्पन्न हो सकती है और इससे पत्र लिखनेका हेतु ही निष्फल हो जाता है। मैं तो पत्र लिखता ही रहूँगा। मोती पढकर हमेशा जो सार लिखा करती थी, वह मुझे पसन्द नहीं, यह बात तुमसे किसने कही? मुझे तो ऐसा खयाल है कि मैंने इसकी प्रशंसा की थी। मुझे कुछ ऐसा भी याद है कि मैंने मोतीको यह सार अधिक अच्छी तरह लिखनेके लिए लिखा था। मुझे लगता है कि अब तो मोतीका सप्ताह भी बीत गया है। अकसर लिखनेकी अपेक्षा प्रत्येक सप्ताह लिखनेकी बात याद रखना ज्यादा मुश्किल है, ऐसा मेरा अनुभव है; लेकिन अब देखेंगे कि मोती किस तरह अपने नियमका पालन करती है। तुम उसे शर्मिन्दा करके मत लिखवाना। वह भूल जायेगी तो कोई परवाह नहीं। भूलते-भूलते भूल सुधारनेकी बात भी सूझेगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० १२१२१) की फोटो-नकलसे।

२१०. पत्र : प्रभुदास गांधीको

साबरमती आश्रम
शनिवार, चैत्र सुदी १३ [२७ मार्च, १९२६]

चि० प्रभुदास,

तुम्हारा काशीको लिखा पत्र मैंने पढा। काशीको वहाँ बुलानेके लिए तुम्हारी अधीरता समझी जा सकती है। तुमने सर्दीके बारेमें लिखा था, इसीलिए उसे आनेमें संकोच हो रहा था। अब तुम वहाँ ज्यों ही इसके लिए तैयार हो जाओगे, त्यों ही वह निकल सकेगी। परन्तु अभीतक तो मकानका भी बन्दोबस्त नहीं हुआ है। मैंने तो आज ही इस बातकी जाँच की है। अर्जीका फार्म आदि भरना बाकी है। यह अर्जी किसे भेजनी है? मकान देनेका प्रबन्ध किसके हाथ है, उसका पता-ठिकाना

लिख भेजो तो तुरन्त बन्दोबस्त हो सकता है। मुझे तो कुछ ऐसा खयाल था कि सारा जिम्मा स्वामीने अपने ऊपर ले लिया था और हमारे लिए तो केवल यहाँसे रवाना-भर होनेकी बात थी। इस कार्यमें तुम्हें बहुत खटपटमें पड़नेकी जरूरत नही है। तात्पर्य यह कि ऐसा कोई परिश्रम नही करना है, जिससे तबीयत खराब हो जाये। जितनी खबर तुम वहाँसे भेज सकते हो उतनी ही मिल जाये तो बाकी सब यहाँ कर लिया जा सकेगा। तुम फिलहाल लोनावला नही छोड़ सकते, यह बिलकुल ठीक है। तुम्हें बुखार कैसे आ गया है, यह तो जब तुम मुझे पत्र लिखोगे तभी मालूम होगा। इस तरह जब बुखार आ जाये, उस समय घबराना नही चाहिए। तुम्हारे पत्रसे ऐसा लगता है कि तुम कुछ घबरा गये थे।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९३९२) की माइक्रोफिल्मसे।

२११. पत्र : देवदास गांधीको

साबरमती आश्रम
शनिवार, २७ मार्च, १९२६

चि० देवदास,

तुम्हारे पत्र दिन-ब-दिन कम होते जाते हैं। बादमें कही ऐसा तो नही करोगे कि वर्षमें केवल दीवालीपर एक पत्र लिख दिया और बस हो गया। रामदास और जयसुखलाल आज आये हैं। उनको देखनेके बाद मैं उनसे अभी कुछ बात नही कर सका हूँ। मेरा मसूरी जाना कदाचित् १५ अप्रैलतक न हो। आजकलमें तार आयेगा; उसपर से ज्यादा मालूम होगा। अभय आश्रमवाले डाक्टर सुरेश बनर्जी अभी यहीं हैं। मंगलवारतक रहेंगे।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९३९३) की माइक्रोफिल्मसे।

२१२. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

साबरमती आश्रम
शनिवार, चैत्र सुदी १३ [२७ मार्च, १९२६][1]

चि० मथुरादास,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारे लिखनेमें अविवेक हो ही नही सकता तो फिर अविवेकके लिए क्षमा क्या माँगनी? तुम्हारे भयको मैं समझ सकता हूँ। धर्मपुरमें तुम्हारे रहनेकी व्यवस्था आसानीसे हो सकती है, ऐसा मैं मानता हूँ। लेकिन धर्मपुर जा सकते हो, तो पंचगनी क्यों नहीं? पंचगनीमें सर प्रभाशंकरका बंगला मिल

१. पत्रमें आये गांधीजीकी प्रस्तावित मसूरी-यात्रा और मथुरादासके किसी स्वास्थ्यवर्धक स्थानमें रहनेकी आवश्यकताके उल्लेखसे।

सकता है। वे मुझे देनेके लिए कह गये हैं। इसलिए वहाँ जाया जा सकता है। अथवा यदि सिंहगढ़ जानेका विचार हो तो वहाँ भी जा सकते हो। वहाँ कमसे-कम हवा ठंडी तो रहती है। जीवराज स्वयं मेरे साथ ही थे। जहाँ काका रहते हैं, वहाँ मैं रह सकूँ, ऐसी सुविधा है; इसलिए तारामतीके साथ तुम तो वहाँ रह ही सकते हो। यदि सिंहगढ़ जानेका इरादा हो तो देवदास जाकर देख आये। तुम्हारे जानेसे काकाको कोई असुविधा होगी अथवा नही, यह भी वह देख लेगा। वहाँ जानेकी इच्छा न हो तो धर्मपुर अथवा पचगनीके बारेमें सोचूँ। धर्मपुर जानेका मतलब मैं यह लगाता हूँ कि वहाँ तुम मलबारीके सेनीटोरियममें रहोगे। मसूरीकी बात भूलनेवाला नही हूँ। किन्तु वहाँ जाकर यदि मुझे अच्छा लगा तो ही तुमसे आग्रह करूँगा।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९३९४) की माइक्रोफिल्मसे।

२१३. कुछ धार्मिक प्रश्न

एक भाईने कुछ धार्मिक प्रश्न पूछे हैं। इस तरहके प्रश्न अनेक बार पूछे जाते हैं। मुझे ऐसे प्रश्नोंके उत्तर देनेमें हमेशा संकोच हुआ करता है। लेकिन मैंने ऐसे प्रश्नोंपर विचार किया है और उनके सम्बन्धमें कुछ निष्कर्षोंपर भी पहुँचा हूँ। इसके बावजूद इनका उत्तर न देना उचित नही जान पड़ता। अतः नीचे दिये जा रहे प्रश्नोके उत्तर यथामति और यथाशक्ति दे रहा हूँ।

प्र० — प्राचीन समयमें होनेवाले यज्ञोंके सम्बन्धमें आपके क्या विचार हैं? इससे वायु-शुद्धि होती है अथवा नहीं? क्या आजकल ऐसे यज्ञोंका स्थान है? कुछ संस्थाएँ यज्ञका पुनरुद्धार कर रही हैं। इससे कुछ लाभ होगा क्या?

यज्ञ शब्द सुन्दर है, उसमें शक्ति है। इसलिए जैसे-जैसे ज्ञान और अनुभव बढ़ता जाता है वैसे-वैसे अथवा युग बदलनेके साथ-साथ उसका अर्थ भी विस्तृत हो सकता है और बदल सकता है। यज्ञका अर्थ पूजन, बलिदान या पारमार्थिक कर्म किया जा सकता है। इस अर्थमें यज्ञका पुनरुद्धार करना हमेशा उचित हो सकता है। लेकिन यज्ञके नामपर जो भिन्न-भिन्न यज्ञ अथवा जो भिन्न-भिन्न क्रियाएँ शास्त्रोंमें वर्णित हैं, उनका पुनरुद्धार इष्ट नही है और शक्य भी नही है। इनमें से कितनी ही क्रियाएँ तो हानिकर भी हैं। इसके सिवा आज इन क्रियाओका जो अर्थ किया जाता है, वैदिक कालमें भी उनका वही अर्थ होता था अथवा नही, इसमें भी सन्देह है। सन्देह सही हो या न हो, लेकिन इनमें से कुछ क्रियाएँ ऐसी हैं जिन्हें आज हमारी बुद्धि अथवा नीति स्वीकार नहीं कर सकती। प्राचीन शास्त्रवेत्ता कहते हैं कि पूर्व कालमें नरमेध होता था। क्या आज यह सम्भव है? यदि कोई अश्वमेघ करनेका आयोजन करे तो यह क्रिया हास्यास्पद लगेगी। यज्ञसे वायु-शुद्धि होती है अथवा नही, इस सवालके झमेलेमें पड़ना अनावश्यक है, क्योकि यज्ञ एक धार्मिक क्रिया है और किसी धार्मिक क्रियाके सम्बन्धमें इस सवालपर विचार करना बिलकुल अप्रस्तुत है कि उससे वायु-

शुद्धि-जैसा तुच्छ फल प्राप्त हो सकता है या नहीं। और वायु-शुद्धिकी दृष्टिसे तो आज भौतिक शास्त्रका आधुनिक ज्ञान हमें अच्छी मदद दे सकता है। शास्त्रोंके सिद्धान्त व्यवहारसे पृथक् वस्तु हैं। सिद्धान्त सर्वकाल और सर्वस्थानपर एक ही होते हैं। क्रियाएँ काल और स्थानके अनुसार बदलती रहती हैं।

प्र० — हम लोगोंमें सामान्यतः ऐसा कहा जाता है कि मनुष्यका जन्म बार-बार नहीं मिलता, इसलिए प्रभुका भजन करो। यह मनुष्य जन्म गँवा दोगे तो फिर चौरासी लाख योनियोंमें चक्कर काटना पड़ेगा। इस कथनमें क्या सत्य है? कबीर भी एक भजनमें कहते हैं: (भजनकी आखिरी कड़ी)

"कहे कबीर चेत अजहूँ, नहिं फिर चौरासी जाई।
पाय जन्म शूकर-कूकरको भोगेगा दुःख भाई।"

इससे क्या सार ग्रहण करने योग्य है?

इस बातको मैं अक्षरशः माननेवाला हूँ। अनेक योनियोंमें भटकनेके बाद मनुष्य-जन्म मिल सकता है और मोक्ष अथवा द्वन्द्व आदिसे सर्वथा मुक्ति मनुष्य-देहके द्वारा ही मिल सकती है। यदि आत्मा अन्ततः एक ही है तो अनेक आत्माओंके रूपमें उसका असंख्य योनियोंमें भटकना असम्भव अथवा आश्चर्यजनक नहीं लगना चाहिए। इस बातको बुद्धि भी स्वीकार करती है और कुछ लोग तो अपने पूर्वजन्मकी स्मृति भी प्राप्त कर सकते हैं।

प्र० — प्राणायामसे समाधि-लाभ करनेवाला योगी तथा इन्द्रिय-संयमी, इन दो मनुष्योंमें से कौन अपनी आत्माका अधिक कल्याण करता है?

इस प्रश्नमें संयम और योगकी कल्पना दो विरोधी वस्तुओंके रूपमें की गई है। वस्तुतः एक दूसरेका कारण है, अथवा एक दूसरेका पूरक है। संयमविहीन समाधि कुम्भकर्णकी निन्द्रा है और समाधिके बिना संयम कठिन है। यहाँ समाधिका व्यापक अर्थ हठयोगीकी समाधिका ही नहीं लेना चाहिए। हठयोगीकी समाधि इन्द्रिय-संयमके लिए अनिवार्य भी नहीं है। यह समाधि भले ही सहायक हो सकती है, लेकिन आज तो सामान्य समाधि ही इष्ट है। सामान्य समाधि अर्थात् अभीष्ट कार्यमें तन्मय होनेकी शक्ति। यह नहीं भूलना चाहिए कि इन्द्रिय-संयमके बिना योगकी साधना निरर्थक है।

प्र० — कोई स्वावलम्बी मनुष्य अपनी आवश्यकताका अन्न खेती करके स्वयं पैदा करे, खेतीके लिए जरूरी औजार हल आदि भी स्वयं बनाये, बढ़ईका काम भी खुद करे, अपने कपड़े भी स्वयं बनाये और रहनेके लिए घर भी खुद बना ले — संक्षेपमें उसे जिन चीजोंकी जरूरत पड़ती है, उन्हें यदि वह खुद बनाता है, अपनी जरूरतकी चीजें बनानेके लिए यदि वह दूसरोंकी सहायताका उपयोग नहीं करता तो उसका ऐसा करना उचित है अथवा अनुचित? स्वावलम्बीकी आपकी व्याख्या क्या है?

स्वावलम्बनका अर्थ है — किसीकी मदद लिये बिना अपने पाँवपर दृढ़तापूर्वक खड़े रहनेकी शक्ति। इसका अर्थ यह नहीं कि मनुष्य दूसरोंकी मददके बारेमें उदासीन

रहे, उसका त्याग करे, उसकी इच्छा न करे अथवा उसे माँगे ही नहीं। लेकिन इच्छा करनेके बावजूद और माँगनेके बावजूद वह न मिले तब भी जो मनुष्य स्वस्थ-चित्त रह सकता है और स्वाभिमान बनाये रख सकता है, वही स्वावलम्बी है। जो किसान दूसरेकी मदद मिल सकनेकी सुविधाके बावजूद खुद ही खेती करता है, बोता और काटता है, खेतीके औजार भी स्वयं बनाता है, अपने कपड़े भी कात-बुनकर खुद तैयार करता है, अपना अनाज उगाता है और घरकी चिनाई भी खुद करता है, वह या तो बेवकूफ है या अभिमानी है या जगली है। स्वावलम्बनमें शरीर-यज्ञ तो आ ही जाता है। शरीर-यज्ञका मतलब यह सिद्धान्त है कि प्रत्येक मनुष्यको अपनी आजीविकाके लिए शारीरिक श्रम करना ही चाहिए। इसलिए जो मनुष्य आठ घटे खेतीमें काम करता है, उसे बुनकरकी, बढ़ईकी, लुहारकी और राजकी मदद लेनेका अधिकार है। यह मदद लेना उसका धर्म है और यह मदद उसे सहज ही मिलती भी है। दूसरी ओर, बढ़ई, लुहार आदि कारीगर किसानके श्रमके फलस्वरूप अन्नादि प्राप्त कर सकते हैं। जो आँख हाथकी मददके बिना काम चलानेका इरादा रखती है, वह आँख स्वावलम्बी नहीं है, वरन् अभिमानी है। और जिस तरह हमारे शरीरमें हमारे अवयव अपने-अपने कार्यके विषयमें स्वाश्रयी हैं, स्वाश्रयी होते हुए भी एक-दूसरेकी सहायता करनेके कारण परोपकारी हैं और उसी तरह एक-दूसरकी सहायता लेनेके कारण पराश्रयी हैं, ठीक उसी प्रकार हम हिन्दुस्तान-रूपी शरीरके तीस करोड़ अवयव हैं; हमें अपने-अपने क्षेत्रमें स्वाश्रयी बननेके धर्मका पालन करना चाहिए और यह सिद्ध करनेके लिए कि हम सब एक राष्ट्रके अग हैं, हमें परस्पर एक-दूसरेकी मदद करनी चाहिए और लेनी चाहिए। तभी हम कह सकते हैं कि हमने अपना एक राष्ट्रके रूपमें विकास कर लिया है, और हम राष्ट्रवादी हैं।

प्र० -- आजकल विवाहकर्म, सन्ध्या, यज्ञ-कर्म, प्रार्थना आदि संस्कृत मंत्रोंमें की जाती है। करानेवाले मन्त्रोंको बोलते हैं और करनेवाले इनका रहस्य जाने बिना इनमें शामिल होते हैं। आज संस्कृत मातृ-भाषा नहीं रही। अनेक संस्थाएँ लोगोंको प्रार्थना, सन्ध्या, यज्ञ आदि संस्कृतके मन्त्रोंमें ही करनेके लिए कहती हैं। इन लोगोंको संस्कृत भाषाका ज्ञान तो होता नहीं, अतः वे एकाग्रचित्त कैसे हो सकते हैं? इसके अतिरिक्त संस्कृत बहुत ही कठिन भाषा है। इसलिए मैं उसके मन्त्रोंको मुखाग्र करना तथा उसके अर्थको याद रखना दुहरी मुसीबत मानता हूँ। जिस समय संस्कृत मातृ-भाषा थी, उस समय जन-समाजका सारा कामकाज इस भाषाके द्वारा होता था और यह ठीक भी था। परन्तु आज स्थिति ऐसी नहीं रही। अतः प्रत्येक मनुष्य अपनी क्रिया अपनी मातृ-भाषामें करे, यह लाभदायक है। परन्तु फिलहाल तो इसके विपरीत ही कार्य किया जा रहा है। जन-समाजमें उपरोक्त धार्मिक कार्य संस्कृतके माध्यमसे ही कराये जाते हैं।

हिन्दुओंकी समस्त धार्मिक क्रियाओमें संस्कृतका व्यवहार किया जाना चाहिए, ऐसा मेरा मत है। अनुवाद चाहे कितना ही अच्छा हो, परन्तु विशेष शब्दोकी ध्वनिमें जो रहस्य होता है, वह अनुवादमें नही मिलता। इसके सिवा इन मन्त्रोको ऐसी एक भाषासे जो हजारों वर्षोंके प्रयोगसे संस्कार-समृद्ध हुई हो और जिसमें ही वे

मन्त्र सदा बोले जाते रहे हों, प्राकृत भाषाओंमें अनूदित करनेसे और इन अनुवादोंसे ही सन्तोष मान लेनेसे उन मन्त्रोंका गाम्भीर्य कम हो जाता है। परन्तु प्रत्येक मन्त्रका और जिनके लिए वे मन्त्र बोले जायें, उन सारी क्रियाओंका अर्थ उन्हें उनकी भाषामें अवश्य समझाया जाना चाहिए, इसके बारेमें मेरे मनमें तनिक भी शंका नहीं है। मेरी राय यह भी है कि किसी भी हिन्दूकी शिक्षा जबतक उसे संस्कृत भाषाके मूल तत्त्वोंका ज्ञान नहीं कराया जाता, तबतक अधूरी ही है। मेरे लिए तो संस्कृतके विशाल ज्ञानके बिना हिन्दू-धर्मके अस्तित्वकी कल्पना करना भी सम्भव नहीं है। भाषा कठिन तो हमने अपने पाठ्यक्रमके द्वारा बना दी है; वह वस्तुतः कठिन नहीं है। परन्तु यदि वह कठिन हो भी तो धर्मका पालन इससे भी कठिन है। अतएव, जिन्हें धर्मका पालन करना है, उन्हें तो इसका पालन करनेके लिए जो साधन आवश्यक हों वे कठिन होते हुए भी आसान ही लगने चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २८-३-१९२६

२१४. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

साबरमती आश्रम

[२८ मार्च, १९२६][1]

भाई घनश्यामदास,

आपका पत्र मिला। अभी जमनालालजीका तार आया है कि मैं एप्रिल १५ तारीखके बाद यहाँसे रवाना हो जाउ तो काफी होगा। इस वक्त तो यहांकी हवा बहुत ही अच्छी है। प्रातःकालमें खूब ठण्डी रहती है। और दिनभरमें कुछ ज्यादह गरमी नहीं होती है।

आप अवश्य विश्वास करें कि अगर मैं दोनों पक्षको[2] एकदम मिला सकूं तो पूरा प्रयत्न कर लूं। परंतु इस समय यह कार्य मेरी शक्तिके बहार मालुम होता है। स्वराज्य पक्षके लिये तो हमारा मतभेद रहेगा ही। मौलाना महमदअलीकी भाषामें, व्यक्तिओंको छोड़कर जब दो क्रीड — सिद्धान्तकी तुलना करनेका समय आता है तब कहना पड़ता है कि स्वराजदलका सिद्धान्त दूसरेके मुकाबलेमें अवश्य प्रशंसनीय हैं। भले दोनों असहयोगके मुकाबलेमें, कनिष्ठ हो।

आपका,

मोहनदास

मूल पत्र : (सी० डब्ल्यू० ६१२३) से।
सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला।

१. स्पष्ट है कि यह घनश्यामदास बिड़ला द्वारा गांधीजीको लिखे २४-३-१९२६के पत्र (एस० एन० १०८५७) के उत्तरमें लिखा गया था।

२. मदनमोहन मालवीय तथा मोतीलाल नेहरूका पक्ष।

२१५. पत्र : कुँवरजी वी० मेहताको

साबरमती आश्रम
रविवार, चैत्र सुदी १४ [२८ मार्च, १९२६]

भाईश्री ५ कुँवरजी,

अभी-अभी भाई कल्याणजीका पत्र मिला। उसमें उन्होंने भाई डाह्याभाईकी मृत्युका समाचार दिया है। डाह्याभाईकी स्थितिका वर्णन भी किया है। यह भी लिखा है कि तुम पति-पत्नी दोनोंने बहुत धीरजसे काम लिया। उस समय हुए गीता-पाठके बारेमें भी लिखा है। जहाँ धीरज सहज ही रहता है, वहाँ मुझे धीरजका उपदेश देनेकी जरूरत नहीं होती। लेकिन तुम दोनोंके विश्वासको अधिक निर्मल बनानेके लिए इतना तो अवश्य लिखूंगा कि जिसे आत्माके अस्तित्वके बारेमें पूरा विश्वास है वह, चाहे कितनी ही अनपेक्षित मृत्यु क्यों न हो, उससे न तो डरता है, न विचलित होता है। ठेठ युवावस्थामें अथवा बचपनमें भी जो मृत्यु होती है, वह भी प्रकृतिके नियमके अनुसार ही होती है। इन सब नियमोंको हम जानते नहीं, इसी-लिए भयभीत रहते हैं। लेकिन हम यह विश्वास क्यों न रखें कि डाह्याभाईकी आत्माके लिए उस शरीरका कोई उपयोग न रह गया था, इसीलिए वह चला गया। निरुपयोगी वस्तुका तो त्याग करना ही उचित है। इस बातका विचार करें तो हम देख सकते हैं कि दुःखी होनेका कोई ठीक कारण नहीं है। हम उस शरीरका उपयोग करते थे, इस हृदतक हमें उसके न रहनेका दुःख लगना ठीक है। लेकिन यह तो स्वार्थका दुःख हुआ। सेवकको स्वार्थ किस बातका? इस तरह ज्ञानपूर्वक समझकर तुम सब पूरी तरह निश्चिन्त हो जाओ और अपने-अपने काममें लग जाओ, ऐसी मेरी इच्छा है। यदि निश्चिन्त न हो सको तो यह जानो कि तुम्हारे दुःखमें जैसे अन्य लोग भागीदार हैं, वैसे मैं भी हूँ। थोड़ा-थोड़ा करके सबमें बाँट लेना। सच्ची शान्ति तुमको रामनाम देगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (जी० एन० २७१५) की फोटो-नकलसे।

२१६. पत्र : मीठूबहन पेटिटको

साबरमती आश्रम
रविवार, २८ मार्च, १९२६

प्रिय बहन,

तुम्हारा पत्र मिला। आन्ध्रसे ज्यादा कलात्मक कपड़ा न मँगवाओ, यह सामान्य रूपसे तो अच्छी बात ही है, लेकिन पैसेकी परवाह किये बिना यदि कोई व्यक्ति कोई खास वस्तु माँगे तो जो भाव बैठे वह भाव देकर मँगाना। अन्ततः ये पैसे भी बुनकरोंके घर ही जायेंगे। लेकिन हाँ, हम हमेशा अपनी स्वतन्त्रताको बनाये रखकर मँगवायें। भाई करसनदासने तुम्हारा भेजा हुआ सूत दिया है। उन स्त्रियोंके नाम सदस्योंके रूपमें तो नहीं लिखने हैं? सदस्य बनना हो तो प्रतिज्ञापत्रपर हस्ताक्षर करने चाहिए और हमेशा खादीका ही उपयोग करना चाहिए। नरगिस बहनका पता मुझे देना। तुम स्वयं धीरज रखकर अपने 'स्वास्थ्यके लिए प्रकृतिपर ही निर्भर करना। निश्चिन्त रह सको तो यह अवश्य एक अच्छी बात है। तुमने जो खादी मँगवाई है, उसमें ३६ इंच अर्जकी खादी बहुत नहीं है। २७ इंच अर्जवाली है; वह भेज रहा हूँ। क्या ३०-३२ इंचका अर्ज चल नहीं सकता? ३६ इंच अर्जवालीका नमूना इसके साथ भेज रहा हूँ। इसका धुली हुईका भाव १२ आने और कोरीका साढ़े ग्यारह आने है। लेकिन भावकी चिन्ता नहीं। तुम्हें तो, जिस भावसे तुम चाहती हो, उसी भावसे खादी दी जायेगी। इसे मैं भाई करसनदासके हाथ भेज रहा हूँ और उनसे कहा है कि यदि बम्बईमें मिलती हो तो वहाँसे खरीदकर तुम्हें दें। मुझे उम्मीद है कि तुम्हारी तबीयत महाबलेश्वरमें ठीक हो गई होगी। मुझे पत्र अवश्य लिखती रहना।

गुजराती प्रति (एस० एन० १०८५८) की फोटो-नकलसे।

२१७. पत्र : मोतीबहन चौकसीको

साबरमती आश्रम
रविवार, २८ मार्च, १९२६

चि० मोती,

तुम्हारा पत्र मिला। लिखावटके सम्बन्धमें तुम्हें मुझे सन्तोष देना ही होगा। कभी-कभी ठीक होती है, इससे यह प्रकट होता है कि प्रयत्न करनेसे वह अवश्य सुधरेगी। लिखावटसे अनेक बार मनुष्यके आचारको परखा जा सकता है। इस लिखावटमें मैं बहुत अव्यवस्था देखता हूँ। कलम एक; लिखनेवाला एक; फिर भी कोई अक्षर बड़ा है तो कोई छोटा; कुछ दूर-दूर लिखे गये हैं तो कुछ पिच-पिच। काट-छाँटकी तो कोई हद ही नहीं है। कुल मिलाकर तुम्हारे कार्डमें १७ पंक्तियाँ हैं। जिस व्यक्तिकी गुजरातीकी लिखावट ऐसी अव्यवस्थित हो, पर जो अंग्रेजीके अक्षर ठीक लिख सकता हो वह मेरी बधाईका पात्र नहीं हो सकता। यदि मैं उसका शिक्षक होऊँ तो जबतक वह गुजराती लिखने-पढ़नेमें पक्का न हो जाये तबतक अंग्रेजी लिखने-अथवा पढ़नेकी सख्त मनाही कर दूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० १२१२२) की फोटो-नकलसे।

२१८. पत्र : फूकनको

साबरमती आश्रम
२९ मार्च, १९२६

प्रिय मित्र,

श्री बैंकरने मुझे बताया है कि काफी समयसे खादी बोर्डके, जिसने अब अखिल भारतीय चरखा संघका रूप ले लिया है, ४,००० रुपये आपके पास बकाया चले आ रहे हैं। बजट पूरा करनेके लिए इस समय एक-एक पैसेकी जरूरत है। क्या आप इस समय रकमका भुगतान नहीं कर सकते?

हृदयसे आपका,

श्रीयुत फूकन
असम

अ० भा० च० सं० के कार्यालयको सूचनार्थ एक प्रति।
अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११९५८) की माइक्रोफिल्मसे।

२१९. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

साबरमती
२९ मार्च, १९२६

प्रिय सतीश बाबू,

आपका पत्र मिला। उत्कलके सम्बन्धमें भेजा आपका तार पढ़ा। आँकड़ोंकी जाँच करनेके बाद मैंने श्री शंकरलालको सलाह दी है कि वे आपको दो हजार रुपये दिये जानेकी अनुमति दे दें।

जैसा कि आप जानते हैं, उत्कलके प्रबन्धसे मैं व्यक्तिगत रूपसे अत्यन्त असन्तुष्ट हूँ। हमने उत्कलपर बहुत ज्यादा खर्च किया है। निरंजन बाबूने जो हिसाब-किताब भेजा है, मेरे विचारसे वह सन्तोषजनक नहीं है। इससे तो यह जानकारी भी नहीं मिल पाती कि प्रत्येक कार्यालयपर कितना खर्च आता है। हिसाबकी बहियोंसे यह पता लगाना भी असम्भव है कि बिक्री नकद हुई है या उधारपर। आप कृपया निरंजनबाबूसे निम्नलिखित ब्योरे प्राप्त करें:

(१) (क) प्रत्येक कार्यकर्त्ताका नाम और योग्यता तथा प्रत्येक कार्यकर्त्ताको दिया जानेवाला वेतन।
(ख) जहाँ जिसकी नियुक्ति की गई है उस स्थानका नाम।
(ग) प्रत्येक केन्द्रको भुगतान कहाँसे किया जाता है?

(२) (क) प्रत्येक केन्द्रमें होनेवाली बिक्रीका ब्योरा।
(ख) नकद अथवा उधार?
(ग) खाता-ऋणोंको कब ठीक मानें, अर्थात् ऐसा ऋण मानें जिनके वापस मिलनेकी उम्मीद हो?
(घ) जिन ऋणोंका भुगतान सन्दिग्ध है, उनके बारेमें बतायें।
(ङ) ३७,००० रुपये तकके कर्जदारोंके नाम और पते हमारे पास होने चाहिए।
(च) अच्छे, बुरे और सन्दिग्ध ऋणोंके वर्गीकरणका क्या आधार है?

(३) (क) इन संस्थाओंके मातहत कितने बुनकर और कातनेवाले काम कर रहे हैं?
(ख) कातनेवालों और बुनकरोंको क्या पारिश्रमिक दिये जाते हैं?
(ग) तैयार की गई खादीके नमूने और उनकी बिक्री-दर।
(घ) बिक्री-दर कैसे निर्धारित की जाती है?

और आपको जैसा जरूरी लगे, उस हिसाबसे आप इनमें और भी जो जानकारी जुड़वाना चाहें, जुड़वा लें। और जब सारी जानकारी मिल जायेगी तब यह

निश्चय करना सम्भव होगा कि इस कार्यपर और अधिक पैसा लगाया जाना चाहिए अथवा नहीं।

आपका,

श्रीयुत सतीशचन्द्र दासगुप्त
कलकत्ता

अ० भा० च० सं० को सूचनार्थ एक प्रति।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९३९५) की माइक्रोफिल्मसे।

२२०. पत्र : प्रभालक्ष्मीको

साबरमती आश्रम
मंगलवार, चैत्र बदी १ [३० मार्च, १९२६]

चि० प्रभालक्ष्मी,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारे पत्रमें अविनय मैं कहीं नहीं देखता, इसलिए तुम नियमित रूपसे लिखती रहना। किन्तु मुझे उसमें स्वप्नावस्था, अस्वस्थता और अस्पष्टता बहुत दिखलाई पड़ती है। तुम क्या कहना चाहती हो, यह समझना मुश्किल हो जाता है। इन दोषोंको तुम दृढ़तापूर्वक दूर करो, ऐसी मेरी इच्छा है। तुम्हारे पत्रमें ऐसी ध्वनि देखता हूँ कि वैधव्यजीवन हमेशा दुःखमय है, किन्तु अनुभव तो इससे ठीक उलटा है। इसमें शक नहीं कि बाल-वैधव्य अधिकांशतः दुःखमय होता है। लेकिन मैं यह जानता हूँ कि बचपनमें विधवा हुई अनेक बहनें अब बड़ी होकर अपने वैधव्यको शोभान्वित कर रही हैं। हिन्दू-समाजमें यह कोई आश्चर्यकी बात न होनी चाहिए। स्त्रीका पति एक ही होता है और पतिकी पत्नी एक ही होती है, लेकिन भाई अथवा बहन तो अनेक हो सकते हैं। तुम क्यों अनेक भाइयोंकी खोज नहीं करती? उनकी सहायता क्यों नहीं माँगती? इसके सिवा, जहाँ ध्येय सेवा करना है, वहाँ सहायता भी क्या चाहिए? तुम अपने स्थानपर रहकर क्या कम सेवा कर सकती हो? शिक्षिकाका कार्य कोई छोटी चीज नहीं है। अपने पास आनेवाली बालिकाओंमें तुम जितनी [शिक्षा] उँड़ेलना चाहो उँडेल सकती हो। सेवाको ही जिसने धर्म मान लिया है, उसे तो हर घड़ी सेवाके अवसर मिलते रहते हैं। मैं चाहता हूँ कि तुम नींदसे जाग जाओ।

गुजराती प्रति (एस० एन० १०८४८) की माइक्रोफिल्मसे।

२२१. पत्र : जमनादासको

साबरमती आश्रम
मंगलवार, ३० मार्च, १९२६

चि० जमनादास,

तुम्हारा पत्र मिला। पाठशालाका मामला तो मैं स्वयं निपटा सका; उसके लिए तुम्हें यहाँ आनेकी जरूरत नहीं। लेकिन तुम स्वयं जब आश्वासनकी जरूरत महसूस करो तब आ सकते हो। झवेरी दीपचन्दको मैं जानता हूँ। मैं विलायतमें उनके यहाँ रहा था। मेरे ऊपर उनकी छाप अच्छी नहीं पड़ी। लेकिन मेरी सलाह यह है कि जिस नवयुवकके साथ सगाई करनेकी बात हो, उसके गुणोंकी जाँच करना ज्यादा आवश्यक है। यदि वह अच्छा हो तो उसके पिताके बारेमें हमें सोचनेकी जरूरत नहीं। इसके सिवा, यदि दीपचन्द झवेरीका लड़का गुणवान हो तो मुझे ऐसा नहीं लगता कि दीपचन्दमें ससुरके रूपमें कोई भारी दोष होगा। इसलिए लीलाधर भाईको मेरी तो यह सलाह होगी कि उन्हें दीपचन्द झवेरीके बारेमें विचार न कर, उसके पुत्रके सम्बन्धमें ही जाँच-पड़ताल करनी चाहिए।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९३९६) की माइक्रोफिल्मसे।

२२२. पत्र : कुँवरजीको

साबरमती आश्रम
मंगलवार, चैत्र बदी १ [३० मार्च, १९२६]

चि० कुँवरजी,

तुम्हारा पत्र मिला। मुझे इसीके बारेमें चि० बलीने भी पत्र लिखा था। तुमने मुक्त-भावसे लिखा सो ठीक ही किया। मुझसे जितनी हो सकेगी उतनी मेहनत करूँगा। मेरी सलाह है कि तुम भी रानीको पत्र लिखना शुरू कर दो। उसे भी मैंने तुम्हें पत्र लिखनेको कहा है। तुम अपने पत्रोंमें, जो-जो दोष तुम्हें दिखाई दिये हों, निस्संकोच होकर कहना। बड़ोंके होते हुए विवाहित लड़के-लड़कियोंको परस्पर पत्र न लिखनेका रिवाज अच्छा रिवाज नहीं है। हिन्दू-परिवारमें सचमुच देखा जाये तो लड़कीकी शिक्षा विवाहके बाद ही पूरी होती है। जो पति उस शिक्षाके सम्बन्धमें उदासीन रहता है अथवा विषयासक्तिके कारण भूल जाता है वह अपने, पत्नीके और धर्मके प्रति द्रोह करता है, ऐसा मैं अनुभवसे देख सका हूँ। तुम्हारा पत्र-व्यवहार इस शिक्षाका साधन हो सकता है।

तुम्हें वह जगह भा गई है और तुम्हारी तबीयत अच्छी रहती है, यह जानकर मुझे खुशी हुई है।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९३९७) की फोटो-नकलसे।

२२३. पत्र : प्राणजीवनदास मेहताको

साबरमती आश्रम
मंगलवार, चैत्र वदी २ [३० मार्च, १९२६][1]

भाईश्री ५ प्राणजीवन,

आजकल तो आपका कोई पत्र ही नहीं आता। मैंने कुछ-एक पत्र लिखे थे, सो आपने उनकी पहुँचतक नहीं दी। आपको मिले तो होंगे? ऐसा सुनता हूँ कि आपकी तबीयत अच्छी रहती है, इसलिए पत्र न मिलनेकी चिन्ता नहीं करता।

इसके साथ चि० जेकी और नटेसा अय्यरका पत्र है। यद्यपि मुझे इनके सम्बन्धमें मणिलालके उत्तरको आपको न दिखानेके लिए कहा गया है, तथापि चूँकि मुझे लगता है कि आपको वह पत्र पढ़ना ही चाहिए, इसलिए उसे भी भेज रहा हूँ। भाई मणिलाल जो-कुछ लिखते हैं, उसकी परवाह करनेकी कोई जरूरत नहीं, लेकिन उसके बारेमें क्या करना चाहिए — इसपर विचार करना चाहिए। मैं समझता हूँ कि यदि उन्हें कुछ मासिक वृत्ति दे दी जाये तो वे लड़कोंको अपनी इच्छानुसार शिक्षा दे सकें।

मेरा दायें हाथसे लिखना फिलहाल बन्द है और बायें हाथसे लिखनेमें समय जाता है। अतः उसे बचानेकी खातिर बोलकर लिखवाना शुरू किया है। मेरी तबीयत तो अच्छी ही है। शायद अप्रैलके अन्तमें मसूरी जाना होगा।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९३९८) की फोटो-नकलसे।

२२४. पत्र : लक्ष्मीदासको

३० मार्च, १९२६

चि० लक्ष्मीदास,

तुम्हारी तबीयत अच्छी होती जा रही है, यह जानकर बहुत अच्छा लगा। जबतक बिलकुल ठीक नहीं हो जाती तबतक वहाँसे भागनेका विचार न करना।

आनन्दी फिर बीमार पड़ गई है। इसे जब बुखार आता है तब खूब ऊँचा जाता है। आज अरण्डीका जुलाब दिया है। तीन ग्रेन कुनैन भी दी है और वल्लभभाईको डाक्टरसे दवा लेकर भेजनेको कहा है। जब दवा आयेगी तब तुम्हारी इच्छानुसार उसे जारी रखूँगा।

१. पत्रमें आये मसूरीकी प्रस्तावित यात्राके उल्लेखसे।

मणी खूब हिल गई है, लेकिन अभी उसकी नाककी वह कुरूप बाली मेरे हाथ नहीं लग सकी है। लड़की बहुत प्रेमल है। चंचल भी है और वाचाल तो है ही।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९३९९) की फोटो-नकलसे।

२२५. पत्र: निर्भयराम वि० कानाबारको

आश्रम
३० मार्च, १९२६

भाई निर्भयराम,

आपका पत्र मिला। नाक-कान छिदवाना वेद-विहित है, ऐसा तो मैं नहीं जानता। लेकिन वह वेद-विहित है, ऐसा यदि सिद्ध हो जाये तो भी मैं कहूँगा कि जिस तरह आज नरमेघ नही होता, उसी तरह नाक-कान भी नहीं छेदे जा सकते। कान छिदवानेवाले ऐसे अनेक पुरुषोंको मैं जानता हूँ जिन्हें अण्डकोषकी वृद्धिका रोग हुआ है। और यह तो सब जानते हैं कि जिन्होंने नाक-कान नहीं छिदवाये हैं, ऐसे असंख्य लोग इस रोगसे मुक्त हैं। और मैं यह भी जानता हूँ कि इस रोगसे पीड़ित अनेक लोग कान छिदवाये बिना ही ठीक हो गये हैं। आपने जो वाक्य उद्धृत किया है, उसमें यह कहा गया है कि मालूम होता है कि कान आदि बिंधवानेका रिवाज बाहरसे दाखिल हुआ है। जब हमें तीन व्यक्तियोंपर विश्वास हो और उनमें मतभेद हो तब या तो हम अपनी बुद्धिका उपयोग करें या फिर जिसपर अधिक श्रद्धा हो उसका अनुसरण करें।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

निर्भयराम विजयराम कानाबार
समी
हारीज स्टेशन
उत्तर गुजरात

गुजराती पत्र (एस० एन० १९८८३) की माइक्रोफिल्मसे।

२२६. पत्र: कान्तिलाल मो० दलालको

आश्रम

३० मार्च, १९२६

भाई कान्तिलाल,

आपका पत्र मिला। मेरी अवश्य यह मान्यता है कि मनुष्य-योनिमे जन्म लेनेके बाद आत्माका पतन पशु, वनस्पति आदि योनियोंमें भी हो सकता है।

मोहनदासके वन्देमातरम्

श्री कान्तिलाल मोहनलाल दलाल
२९, घांचीनी पोल
अहमदाबाद

गुजराती पत्र (एस० एन० १९८८४) की माइक्रोफिल्मसे।

२२७. पत्र: मोतीबहन चौकसीको

आश्रम

बुधवार, ३१ मार्च, १९२६

चि० मोती,

तुम्हारा यह पहला पत्र है जिसमें मैं अच्छी लिखावट देखता हूँ। अब इससे कम सुन्दर लिखावटमें जो पत्र आयेंगे उन्हें वापस भेज दूंगा। नाजुकलाल रोगसे बिलकुल मुक्त हो गये हैं, यह जानकर बहुत खुशी हुई है। मैंने लिखावटकी जो प्रशंसा की है, उससे यह मत समझना कि अब उसमें सुधारकी गुंजाइश नहीं है। लेकिन हाँ, मैं यह देख सका हूँ कि आजके पत्रमें लिखावटके सम्बन्धमें पूरा प्रयत्न किया गया है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० १२१२३) की फोटो-नकलसे।

२२८. पत्र : अब्दुल हुसैनको

आश्रम
३१ मार्च, १९२६

भाईश्री अब्दुल हुसैन,

आपका पत्र मिला। आपको जो धर्म-संकट है, उसमें आप स्वयं ही निश्चय कर सकते हैं। मांसाहारका त्याग यदि आपको धर्म-रूप जान पड़े तो आपको माताके प्रेमानुरोधके आगे झुकना न चाहिए। यदि मांसाहारका त्याग एक प्रयोगके रूपमें ही है तो माताके मनको दुखाना पाप कहा जायेगा।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (एस० एन० १९८८५) की माइक्रोफिल्मसे।

२२९. पत्र : वसनजीको

आश्रम
३१ मार्च, १९२६

भाई वसनजी,

आपका पत्र मिला। जहाँ शुद्ध प्रेम होता है, वहाँ अधैर्यको स्थान नहीं होता। शुद्ध प्रेम देहका नहीं, वरन् आत्माका ही हो सकता है। देहका प्रेम तो विषय है। देहमूलक प्रेमकी अपेक्षा तो वर्ण-बन्धन ही ज्यादा महत्त्वकी वस्तु है। आत्म-प्रेममें किसी बन्धनकी बाधा नहीं है। लेकिन इस प्रेममें तपश्चर्या होती है और धीरज तो इतना होता है कि यदि मृत्युपर्यंत भी वियोग रहे तो भी कुछ परवाह नहीं। आपका पहला काम अपनी मुश्किलोंको बड़ोंके आगे रखना और वे जो कहें, उसे सुनने और उसपर विचार करनेका है। अन्तमें यम-नियमादिके पालनके द्वारा जब आपका अन्तःकरण शुद्ध हो जाये तब उससे जो आवाज निकले उसे मान देना आपका धर्म है।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (एस० एन० १९८८६) की माइक्रोफिल्मसे।

२३०. मेरा राजनीतिक कार्यक्रम

कुछ अमेरिकी मित्रोंने १४५ डालरकी भेंटके साथ एक पत्र भेजा है। उसे मैं यहाँ साभार प्रकाशित कर रहा हूँ:

> साथके कागजपर हस्ताक्षर करनेवाले लोगोंमें कुछ बोस्टनके रहनेवाले हैं और कुछ पश्चिमी प्रदेशके। वे सब आपके बहुत ऋणी हैं। आपके कार्यके साथ अपने-आपको संयुक्त करनेकी इच्छाकी अभिव्यक्ति-स्वरूप हम आपको यह बहुत छोटी-सी भेंट भेज रहे हैं। कृपया इसे स्वीकार करें। भेंट बहुत छोटी है, लेकिन इतना कम देनेके लिए भी हममें से कुछ लोगोंको सचमुच बहुत त्याग करना पड़ा है। अगर यह रकम आपके कार्यके उन हिस्सोंपर खर्च की जाये जो हमारे मनपर सबसे सीधा प्रभाव डालते हैं — अर्थात् अगर इसे अस्पृश्यता-निवारण और हिन्दू-मुस्लिम एकताके हकमें लगाया जाये — तो हमें बड़ी खुशी होगी। प्रोफेसर हॉकिंगकी तरह डीन साइमन्ड्स और कुछ अन्य हस्ताक्षर-कर्त्ताओंको भी लगता है कि वे भारतकी परिस्थितियोंके बारेमें इतना कम जानते हैं कि अभी वे आपके राजनीतिक कार्यक्रमको समग्रतः स्वीकार कर लेनेकी स्थितिमें नहीं हैं। लेकिन, मैंने जिस कार्यका उल्लेख किया है, उसमें कुछ सहयोग दे सकनेकी हमारी हार्दिक इच्छा है।
>
> ईश्वर आपके साथ है, और आप भारतके लिए जिस शुभ दिनके अग्रदूत बनकर आये हैं, वह दिन ईश्वर उसे अवश्य दिखायेगा। क्या आप कभी-कभी इस अमेरिकाके लिए भी प्रभुसे प्रार्थना नहीं करेंगे? वास्तवमें इसे प्रभुकी सहायताकी भारतसे कुछ कम आवश्यकता नहीं है।

मैंने उन्हें सूचित कर दिया है कि उनकी इच्छानुसार यह रकम उक्त दोनों कार्योंके निमित्त बराबर-बराबर बाँट दी जायेगी। लेकिन उनका पत्र पढ़कर मेरे मनमें यह खयाल आया कि इस आन्दोलनसे अतिशय सहानुभूति रखनेवाले अतीव सुसंस्कृत अमेरिकी मित्र भी इसको इतना कम समझते हैं, और ऐसा सोचकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। इसीलिए, जब अमेरिकी मित्र मुझसे मिलने आते हैं और पूछते हैं कि हम किस तरह भारतकी सहायता कर सकते हैं तब मैं उनसे कहता हूँ कि आप इस आन्दोलनका अध्ययन कीजिए; लेकिन अध्ययन सतही तौरपर या अखबारी खबरोंपर आधारित नहीं होना चाहिए और न दुनियाका दौरा करनेवालोंके तरीकेसे बहुत जल्दीमें ही यह अध्ययन करना चाहिए। इसके विपरीत, सब-कुछ ठीक-ठीक देखपरख-कर और सभी पक्षोंसे तथ्यपूर्ण जानकारी प्राप्त करके स्थितिको अच्छी तरह समझनेकी कोशिश करनी चाहिए।

मेरा राजनीतिक कार्यक्रम अत्यन्त सीधा-सादा है। अगर भेंट भेजनेवाले इन सज्जनोंने अस्पृश्यता और एकताके साथ चरखेका भी उल्लेख कर दिया होता तो मेरे राजनीतिक कार्यक्रमका चित्र लगभग पूरा हो जाता। मेरा यह विश्वास दिन-प्रतिदिन दृढ़से दृढ़तर होता जा रहा है कि हम सच्ची स्वतन्त्रता आन्तरिक प्रयत्नोंसे, अर्थात् आत्मशुद्धि द्वारा और अपनी सहायता आप करके, और इसलिए सत्य और अहिंसाका पूरी तरह पालन करके ही प्राप्त कर सकते हैं। इसमें कोई सन्देह नही कि इस सबके पीछे सविनय अवज्ञा तो है ही। सविनय अवज्ञा नही कहती कि उसकी मददके लिए कोई एक पैसा भी दे, उसे वास्तवमें एक भी पाईकी जरूरत नही है। अगर उसे किसी चीजकी जरूरत है, अगर वह किसी चीजकी माँग करती है तो वह है ऐसी आस्थासे युक्त मजबूत हृदय, जो किसी भी खतरेसे विचलित न हो और जो कठिनसे-कठिन परीक्षाके समय अधिकसे-अधिक तेजोमय हो उठे। सविनय अवज्ञा कष्ट-सहनका ही एक डरावना नाम है। लेकिन अगर लोग किसी चीजके शुभ पक्षको ठीक-ठीक समझना चाहते हों तो इसके लिए पहले उसके डरावने पहलूको समझना अकसर अच्छा होता है। अवज्ञाका अधिकार हर मानवको है और जब वह विनय, या दूसरे शब्दोंमें कहें तो, प्रेमसे उद्भूत होती है तब तो वह एक पुनीत कर्त्तव्य बन जाती है। अस्पृश्यता-विरोधी सुधारक बद्धमूल कट्टरताके खिलाफ सविनय अवज्ञा कर रहे हैं। हिन्दू-मुस्लिम एकताके समर्थक अपने मन-प्राणसे उन लोगोंका प्रतिरोध कर रहे हैं जो समाजको वर्गों और सम्प्रदायोंमें बाँटना चाहते हैं। और जिस प्रकार अस्पृश्यता-निवारण या एकताकी स्थापनाके मार्गमें बाधा डालनेवालोंका ऐसा प्रतिरोध किया जा सकता है, उसी प्रकार उस शासनका भी सविनय प्रतिरोध करना चाहिए जो भारतको पौरुष-विहीन बना रहा है। यह शासन हर दिन इस विशाल देशके करोड़ों क्षुधार्त्तमानवों-को रौंद रहा है। भावी परिणामोंकी ओरसे आँखें बन्द करके शासक लोग शराब और मादक पदार्थोंके सम्बन्धमें जिस नीतिपर चल रहे हैं, उसे अगर रोका नहीं गया तो देशके श्रमिक निश्चय ही भ्रष्ट हो जायेंगे और राजस्वके इस अनैतिक साधनका उपयोग अपने बच्चोंकी शिक्षा-दीक्षाके लिए करनेवाले हम लोगोंकी याद करके भावी पीढ़ियोंका मस्तक लज्जासे झुक जायेगा। लेकिन, इस भीषण प्रतिरोधकी — कट्टर-पंथियोंके प्रतिरोधकी, एकताके शत्रुओंके प्रतिरोधकी और सरकारके प्रतिरोधकी — एक शर्त है। यदि इस शर्तको पूरा करना हो तो उसका एक-मात्र रास्ता आत्मशुद्धि और कष्ट-सहनकी कठिन, और आवश्यकता हो तो सुदीर्घ प्रक्रियासे गुजरना है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १-४-१९२६

२३१. जडाऊ जूतियाँ बनाम चिथड़े

अपने इस सिद्धान्तके समर्थनमें कि जब पादरी अपने श्रोताओंको प्रसन्न करनेके लिए धर्मग्रन्थोंको व्याख्या तोड़-मरोड़ कर करता हो और व्यापारी अधिक ग्राहक पानेके लिए सत्यके साथ खिलवाड़ करता हो तब भी ये दोनों ईमानदार माने जा सकते है, श्री मतलबीने[1] अपना वक्तव्य इन शब्दोंसे समाप्त किया कि:

> दूसरे लोगोंको धर्म तब रुचता है जब वह चिथड़ोंमें लिपटा, तिरस्कृत अवस्थामें सामने आता है; मेरे मनको वह तब भाता है जब वह जड़ाऊ जूतियाँ पहनकर, जय-जयकारके बीच पूरी चमक-दमकके साथ सामने आता है।

श्री मतलबीके समर्थक भी थे — जैसे सर्वश्री ससारासक्त[2], अर्थ-प्रेमी[3] आदि-आदि। वैसे तो श्री धर्मात्मा[4] और श्री आशावादी[5] सर्वश्री मतलबी तथा उनके साथियोंकी वक्तृतासे काफी अभिभूत हो गये थे, फिर भी वे अपनी टेकपर बने रहे और अपने तनमनसे धर्ममें अपनी आस्थाकी रक्षा करते रहे — विशेषकर तब, जबकि धर्म चिथड़ोंमें लिपटा, तिरस्कृत अवस्थामें सामने आया। उनके सामने श्री आस्थावानका[6] शानदार उदाहरण था। उसे मिथ्याहकार-नगरके निवासियोने यातना दे-देकर मार डाला था, लेकिन वह कभी भी अपने पथसे विचलित नही हुआ था। बिहार विद्यापीठके दीक्षान्त समारोहमें श्रीयुत राजगोपालाचारीने भी चिथड़ोंमें लिपटी और तिरस्कृत देशभक्तिका कुछ इसी प्रकार बचाव किया। उन्होने कहा:

> यह विद्यापीठ कुछ थोड़ेसे आस्थावान लोगोंकी शक्ति और विश्वासके बलपर ही जीवित है। अपना अस्तित्व बनाये रखनेके लिए इसे बहुत कठिन संघर्ष करना पड़ रहा है। सरकारी विश्वविद्यालयों और कॉलेजोंकी तरह इसके पास कीमती उपकरण नहीं है, यहाँ वैसी तड़क-भड़क नहीं है। इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं कि वहाँ शान-शौकत है और उनके राजसी परिधानकी तुलनामें हमारा विद्यापीठ चिथड़ोंमें लिपटा हुआ है, लेकिन, हमारा यह चिथड़ा वह गरुआ वस्त्र है जो अपना काम मजेमें कर लेता है और संन्यासियोंके तनको ढँकता है। यह बहुत स्वच्छ और पवित्र है और हमें बहुत प्रिय है।

हाँ, विद्यापीठके स्नातकोंको रेशमी चोगे नही मिलेंगे, जड़ांऊ जूतियाँ नही मिलेंगी, न उपकुलपतिको सोनेकी चमकती हुई जंजीर ही मिलेगी। उपकुलपति महोदयको कातनेवालों और बुननेवालोंकी मेहनत करते-करते सख्त पड़ गई अँगुलियोंसे काती और बुनी खुरदरी खादीका भार सहना पड़ेगा और स्नातकोंको, अगर वे अपने विश्वविद्यालयके सिद्धान्तके प्रति ईमानदार रहना चाहते हैं तो, अपने कन्धोंपर जन-सेवाका भार उठानेमें ही सन्तोष मानना होगा। वे उस सिविल सर्विसके सदस्य हैं,

१ से ६. प्रसिद्ध धार्मिक पुस्तक पिलग्रिम्स प्रोग्रेसके कुछ पात्र।

जिसके अन्तमें पेंशनके रूपमें शायद उन्हें बार-बार होनेवाला मलेरिया या क्षयरोग या इसी तरहका कोई और रोग ही मिले। यही उन्हें प्राप्त होनेवाला वह प्रमाण-पत्र होगा जो इस बातकी साक्षी भरेगा कि उन्होंने दलदली क्षेत्रोंमे रहनेवाले उन करोड़ों अवभूखे लोगोंकी अनवरत सेवा की है, जिन्हें नई दिल्लीके निर्माणके लिए आवश्यक साधन मुहैया करने पड़ते हैं, जिन्हें उन सैनिकोंके प्रशिक्षणका खर्च उठाना पड़ता है, जो उनकी स्वतन्त्रताका अपहरण करनेके लिए रखे जाते हैं और जिनकी खून-पसीनेकी कमाईसे राजसी भवनोंमें युवकों और युवतियोंको इन करोड़ों लोगोंपर शासन करनेकी कला सिखाई जाती है।

विद्यापीठके संचालकोंने वार्षिक समारोहके अवसरपर एक खादीकी प्रदर्शनीका आयोजन किया था, जिसका उद्घाटन सतीश बाबूने किया था। पिछले सप्ताह मैंने सतीश बाबूके इस उद्घाटन-भाषणके कुछ अंश उद्धृत किये थे। इस सप्ताह मैं चक्रवर्ती राजगोपालाचारीके भाषणके अंश दे रहा हूँ। दोनों भाषणोंमे युवा पीढ़ीके लोगोंके सोचने और अपनानेके लिए काफी मसाला है। आचार्यों और शिक्षकोंको भले ही जीने-भरको मिले और छात्रोंकी संख्या भले ही इतनी कम रह जाये कि उन्हें एक ही हाथकी अँगुलियोंपर गिना जा सके, लेकिन राष्ट्रीय संस्थाओंको कायम रखना ही है। आवश्यकता सिर्फ इस बातकी है कि अध्यापक और छात्र अपने सीधे-सादे आदर्शोंके प्रति ईमानदार रहें। ये आदर्श हैं: चरखेके रूपमें अभिव्यक्त सत्य और हिंसाका आदर्श, अस्पृश्यताके कलंकको मिटाकर हिन्दू-धर्मको शुद्ध बनानेका आदर्श और भारतके विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायोंके माननेवाले वर्गोंके बीच हार्दिक एकता स्थापित करके देशको एक सूत्रमें बाँधनेका आदर्श। इसलिए राष्ट्रीय शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे वह इन आवश्यकताओं और आकांक्षाओंकी पूर्तिमें सहायक हो सके। अगर कोई राष्ट्रीय विश्वविद्यालय छात्रों आदिकी संख्या बढ़ानेके खयालसे आदर्शोंके साथ खिलवाड़ करता है तो उसका मतलब होगा कि उसने कुछ तात्कालिक लाभके लिए अपनी सारी परम्परा और पूंजी गँवा दी। ऐसा विश्वविद्यालय तो बन्द कर देने लायक ही माना जायेगा। बिहार विद्यापीठ भारी कठिनाइयोंके बीच अपने आदर्शपर दृढ़ रहा है। उसके संघर्षोंके बारेमें मैं जानता हूँ। बिहार गरीब प्रदेश है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि वहाँ श्री-सम्पन्न जमींदार लोग नहीं हैं या दूसरे प्रान्तोंसे आये ऐसे समृद्ध और उद्यमी लोग वहाँ कुछ कम संख्यामें हैं जो उस प्रान्तमें व्यापार-व्यवसाय करके अपनी सम्पत्ति बढ़ा रहे हैं। विद्यापीठने दीक्षान्त समारोहमें पढ़ी गई अपनी वार्षिक रिपोर्टमें जो-कुछ दावा किया है, उसपर ये लोग विचार करें और अगर इन्हें लगे कि उसका दावा सही है और अगर वे ऐसा मानते हों कि अभी मैंने जिन आदर्शोंका उल्लेख किया है, वे ऐसे हैं जिनके लिए मनुष्यको जीना और मरना चाहिए, जिनकी ज्योति अपने हृदयमें जगाना देशके हर नौजवानका श्रेय होना चाहिए तो वे इस संस्थाको योग्य सहायता दें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १-४-१९२६

२३२. बिहार विद्यापीठ

म पाठकोंसे कहूँगा कि वे श्री राजगोपालाचारीके निम्नलिखित भाषणको[1] अवश्य पढ़ें। उन्हें विद्यापीठके वार्षिक दीक्षान्त समारोहमें बोलनेके लिए विशेष रूपसे आमन्त्रित किया गया था।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १-४-१९२६

२३३. टिप्पणियाँ

बंगालका अनुकरणीय उदाहरण

खादी-प्रेमियोंने इस मनोरंजक तथ्यकी ओर पता नहीं ध्यान दिया है या नहीं कि समस्त प्रान्तोंमें एक-मात्र बंगाल ही ऐसा है जिसने अपनी खादीकी बिक्रीके लिए बंगालसे बाहरके ग्राहकोंपर निर्भर रहनेसे लगातार इनकार किया है। यद्यपि बगालमें खादीका उत्पादन लगातार बढ़ता रहा है, फिर भी वहाँके लोगोंने अपनी समस्त खादी बगालमें ही बेची है। इस भारी समस्याको सुलझानेका सबसे उचित तरीका यही है। देशबन्धु जब दार्जिलिंगमें थे तब मुझसे कहा करते थे कि बंगालसे इस बातकी बड़ी आशा है कि वह अन्य कई विषयोंकी तरह खादीके मामलेमें भी अन्य प्रान्तोंसे आगे रहेगा, क्योंकि बंगालके मध्यम वर्गके लोग लोक-हितके मामलोंमें बहुत दिलचस्पी लेते हैं। उन्होंने कहा कि मुझे मध्यम वर्गके जरिये जन-साधारणतक पहुँच पानेकी आशा है, क्योंकि इस वर्गके लोग न केवल सबसे आगे बढ़कर खादी पहनेंगे, बल्कि सबसे पहले वे ही स्वेच्छासे सूत कातेंगे। वे आशा करते थे कि मध्यम वर्गके प्रभावसे ही खादी और चरखेका जनसाधारणमें प्रसार होगा। यह कार्य जितने बड़े पैमानेपर आज बंगालमें होता दीख रहा है, उतने बड़े पैमानेपर और किसी प्रान्तमें नहीं।

बंगालमें खादीके कार्यका संगठन करनेवाली दो प्रमुख संस्थाएँ हैं: एक खादी प्रतिष्ठान और दूसरी अभय आश्रम। इन दोनों संस्थाओंने किसी-न-किसी तरह यह निश्चय कर लिया है कि वे बगालकी खादी बंगालसे बाहर नहीं बेचेंगी। इसका परिणाम यह है कि वे वैसी ही खादी बुनवाती हैं, जैसी खादीकी जरूरत बंगालके मध्यम वर्गको होती है। इसलिए वे समय-समयपर अपने कामोंका जायजा ले पाती हैं और फलतः उन्हें अपने उत्पादनका स्तर ऊँचा रखना होता है। उनके उत्पादन-केन्द्र जितने सुव्यवस्थित हैं, उतने ही सुव्यवस्थित उनके बिक्री-विभाग भी हैं। मैं समझता हूँ कि यदि समस्त भारतके कार्यकर्त्ता बंगालके उदाहरणका अनुकरण करें और अपनी

१. भाषणका अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

खादी अपने ही प्रान्तमें बेचनेका प्रबन्ध करें तो इससे बहुत-सा समय और पैसा बचेगा और खादीकी प्रगति बहुत जल्दी होगी।

बेजवाड़ा नगरपालिका और खादी

बेजवाड़ाकी नगरपालिकाकी निम्नलिखित रिपोर्ट[1] बड़ी दिलचस्पीके साथ पढ़ी जायेगी :

यह कार्य-विवरण बड़ा ही प्रशंसनीय है। नगरपालिका यदि तकली काममें लाना शुरू कर दे तो वह बड़ी आसानीसे सूतको पाँच गुना बढ़ा सकती है, और उससे शिक्षकों और विद्यार्थियोंके लिए फिर कोई बहाना भी नहीं रह जायेगा। तकली कोई जगह नहीं घेरती है और उसमें कोई खास खर्च भी नहीं होता है और कोई हिस्सा टूट जानेके कारण होनेवाली कोई तकलीफ भी नहीं उठानी पड़ती।

खादी अप्राप्य है

संयुक्त प्रान्तसे एक भाई लिखते हैं :

> मैं देखता हूँ कि यहाँ वकीलोंमें खादीकी बड़ी माँग है। मैंने उनके हाथ कुछ खादी बेची भी है। उन्होंने शिकायत की कि उनके शहरमें कोई खादी-भण्डार नहीं है, और मुझे बताया कि हम ५,००० रुपये इकट्ठा करके एक कम्पनी बनाना चाहते हैं।

मैं आशा करता हूँ कि वह कम्पनी बनाई जायेगी। बिहार-यात्राके दौरान भी मेरे पास ऐसी शिकायतें आई थीं। देशमें जगह-जगह खादी-भण्डार नहीं खोले गये हैं, इसका कारण यह है कि अभी खादीकी उतनी माँग नहीं है कि जगह-जगह भण्डार खोलनेकी जरूरत हो। अनुभवसे तो यह मालूम हुआ है कि जब ऐसे भण्डार खोले जाते हैं और नियमित प्रचार-कार्यके अभावमें वे स्वावलम्बी नहीं बन पाते तब कुछ दिनोंके बाद उन्हें बन्द कर दिया जाता है और फलतः जितना रुपया उसमें लगा होता है वह सब डूब जाता है और खादी-आन्दोलनकी बदनामी होती है। इसलिए बेहतर तो यह है कि अखिल भारतीय चरखा संघके एजेन्ट खादी-प्रेमियोंसे सम्पर्क रखें, खादीके नमूनों और कीमतोंका विज्ञापन दें और समय-समयपर जिन जगहोंमें खादीकी बिक्रीकी सबसे ज्यादा सम्भावना हो, वहाँ फेरी लगायें। जब उन्हें किसी स्थानके बारेमें ऐसा मालूम हो जाये कि वहाँ खादीकी नियमित और काफी बड़ी माँग है तो वे वहाँके स्थानीय धनी लोगोंको खादी-भण्डार खोलनेकी सलाह दें। नियमित प्रचार करना उस भण्डारका कार्य होना चाहिए।

प्रदर्शनियाँ

यदि समय-समयपर जुदा-जुदा स्थानोंमें प्रदर्शनियाँ की जा सकें तो सम्भव है कि वे ज्यादा कारगर साबित हों। कहा जाता है कि अभी-अभी दिल्ली और काशीमें जो प्रदर्शनियाँ की गई थीं, वे काफी सफल रहीं। प्रदर्शनियोंपर अधिक खर्च करनेकी

१. रिपोर्टका अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

जरूरत नहीं है और उन्हें स्वावलम्बी भी बनाया जा सकता है। दिल्लीकी समिति लाला लाजपतरायको और बनारसकी समिति आचार्य ध्रुवको अपनी-अपनी प्रदर्शनियोंका उद्घाटन करनेके लिए बुला सकी, यह उन समितियोंके लिए कुछ कम सौभाग्यकी बात नहीं थी। यदि प्रदर्शनियोका प्रबन्ध अच्छी तरह हो तो उनका बड़ा शैक्षणिक महत्त्व होता है। एक सामान्य ध्येयके लिए एकत्र होकर काम करनेके लिए सभी दलों और वर्गोंको प्रदर्शनियाँ एक निष्पक्ष मंच भी प्रस्तुत करती हैं। मैं ऐसे एक भी सार्वजनिक नेताको नहीं जानता हूँ जो सिद्धान्ततः खादीके खिलाफ हो।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १-४-१९२६

२३४. सन्देश: त्रिवेन्द्रमकी एक सभाके लिए[1]

१ अप्रैल, १९२६

त्रावणकोरके सुधारकोंने अस्पृश्यता-निवारणके सम्बन्धमें अच्छा काम किया है। धार्मिक दृष्टिसे मैं इस प्रश्नपर जैसे-जैसे ज्यादा विचार करता जाता हूँ, वैसे-वैसे मुझे यह महसूस होता जाता है कि अस्पृश्यता हिन्दू-धर्मरूपी चन्द्रमाका एक कलंक है। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि जबतक अस्पृश्योंको शेष हिन्दुओंके साथ समानाधिकारके आधारपर प्रत्येक मन्दिर और प्रत्येक सार्वजनिक स्कूलमें प्रवेश नही दिया जाता तबतक सुधारक आरामसे नही बैठेंगे।

[गुजरातीसे]

गुजराती, ११-४-१९२६

२३५. पत्र: बुद्धूको

साबरमती आश्रम
१ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैं आपकी संस्थाकी सफलताकी कामना करता हूँ, तथापि मुझे लगता है कि अपना नाम संरक्षकके रूपमें इस्तेमाल करनेकी अनुमति मुझे नही देनी चाहिए। जहाँ मैं कोई सेवा नहीं कर सकता वहाँ ऐसे सम्मानको कभी स्वीकार नही करता और मैं यह बात साफ-साफ स्वीकार करता हूँ कि मैं आपकी सस्थाकी कोई सेवा करनेमें असमर्थ हूँ, यहाँतक कि मैं वहाँ किसीको भेंज भी नही सकता। कारण, आज जबकि स्थिति यह है कि अपनी शक्ति और सेवा देनेके इच्छुक सभी

१. सभामें अस्पृश्योंके लिए मन्दिरमें प्रवेश दिलानेके कार्यक्रमपर विचार किया गया था।

नवयुवकोंकी जरूरत खुद भारतमें ही है तब उन्हें बाहर जानेके लिए राजी करना बहुत कठिन कार्य है।

हृदयसे आपका,

श्री बुद्धू
पेन विंडसर फॉरेस्ट
वेस्ट कोस्ट डेमेरारा
ब्रिटिश गियाना

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १२४५५) की फोटो-नकलसे।

२३६. पत्र: एफ० ए० बुशको

साबरमती आश्रम
१ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

पत्रके लिए धन्यवाद। यह बिलकुल सच है कि भारतीय जो-कुछ कहते हैं, उसकी अक्सर गलत रिपोर्ट दी जाती है और भारत-सम्बन्धी चीजोंको गलत रूपमें पेश किया जाता है, तथापि यहाँ आपने जिस प्रसंगकी चर्चा की है, उसमें तो कांग्रेस अध्यक्षने[1] जो-कुछ कहा उसकी सही रिपोर्ट ही दी गई है। उन्होंने राष्ट्रीय नागरिक सेना तैयार करनेकी वकालत अवश्य की थी।

मैं एक मुधारक हूँ, जो चाहता है कि सारा संसार अहिंसाको अन्तिम धर्मके रूपमें स्वीकार कर ले; तथापि मैं ऐसे मंचोंसे भी बोलनेसे नहीं हिचकिचाता जहाँ स्पष्ट शब्दोंमें हिंसाकी सीख दी जाती है। किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि इस सीखसे मैं भी सहमत हूँ; बल्कि जिस प्रकार संसारमें रहते हुए भी संसारमें हो रही तमाम हिंसासे मेरा कोई सरोकार नहीं है, उसी प्रकार उस सीखसे भी मेरा कोई वास्ता नहीं है। मैं मानता हूँ कि मेरे लिए इतना ही यथेष्ट है कि मैं अपने-आपको हर प्रकारकी मानसिक और शारीरिक हिंसासे अलग रखूँ और प्रसंग आनेपर उसके प्रति अपनी असहमति व्यक्त कर दूँ।

मुझे नहीं मालूम कि आप यह जानते हैं अथवा नहीं कि कांग्रेसका सिद्धान्त "शान्तिपूर्ण और वैध साधनों द्वारा पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करना है।" इसलिए हिंसाका राष्ट्रीय कार्यक्रममें पूर्णतया त्याग किया गया है। लेकिन इसके साथ ही मुझे यह भी स्वीकार करना चाहिए कि हिंसाके पूर्ण त्यागका मतलब यह नहीं है कि लोग कांग्रेस-मंचसे रक्षाके निमित्त राष्ट्रीय सेना बनाये जानेकी बात नहीं कर सकते। मेरे विचारसे राष्ट्रीय सेनाकी कोई जरूरत नहीं है, लेकिन जो लोग अहिंसाको अन्तिम

१. श्रीमती सरोजिनी नायडू।

धर्मके रूपमें स्वीकार नही करते, उन्हें अहिंसक नही बनाया जा सकता। अहिंसाका प्रसार इसके पक्षमें धीरे-धीरे लोकमत तैयार करनेपर निर्भर करता है। व्यक्तिगत रूपसे मुझे इस बातका यकीन है कि ऊपरसे भले ही दिखता न हो, लेकिन अहिंसाकी भावनाका दिन-प्रतिदिन प्रसार होता जाता है।

हृदयसे आपका,

श्री एफ० ए० बुश
मॉर्डेन सरे
इंग्लैंड

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १२४५६) की फोटो-नकलसे।

२३७. पत्र : डॉ० पॉल लिंडको

साबरमती आश्रम
१ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

मुझे आपका दिलचस्प और बोधप्रद पत्र मिला। मैं आपकी इस बातसे तो पूरी तरह सहमत हूँ कि लेखक जिस अर्थको ध्यानमें रखकर शब्दोका प्रयोग करता है, वह अर्थ पाठकोंके सामने स्पष्ट होना चाहिए, किन्तु साथ ही मैं ठीक-ठीक जानता हूँ कि असहयोग आन्दोलनके विफल होनेका कारण यह नही था कि लोग अहिंसा और उसके फलितार्थोंको समझ नही पाये, बल्कि उसकी वजह यह थी कि यद्यपि वे सब-कुछ जानते थे, फिर भी वे उसके अनुसार आचरण नही कर पाये।

हृदयसे आपका,

डॉ० पॉल लिंड,
हैम्बर्ग
ल्यूबेकरस्ट्रास
(जर्मनी)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १२४५७) की फोटो-नकलसे।

२३८. पत्र : दूनीचन्दको

सावरमती आश्रम
१ अप्रैल, १९२६

प्रिय लाला दूनीचन्द,

आपका पत्र मिला। यदि मैं स्वतन्त्र व्यक्ति होता तो मैं आपके निमन्त्रणको सहर्ष स्वीकार कर लेता। परन्तु ऐसी बात नहीं है। मेरे किसी पर्वतीय प्रदेशमें जानेकी व्यवस्थाका सारा प्रबन्ध श्री घनश्यामदास बिड़ला और श्री जमनालालजी बजाजने अपने हाथमें ले लिया है तथा मेरा खयाल है कि वे मसूरीमें पहले ही कुछ व्यवस्था कर चुके हैं। इसलिए, आप कृपया मुझे क्षमा करेंगे। मुझे उम्मीद है कि श्रीमती दूनीचन्द चरखेके सम्बन्धमें किये गये अपने वादेको निभा रही हैं।

हृदयसे आपका,

लाला दूनीचन्द, वकील
अम्बाला सिटी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४०२) की माइक्रोफिल्मसे।

२३९. पत्र : एस० पी० एन्ड्रयूज-ड्यूबको

सावरमती आश्रम
१ अप्रैल, १९२६

प्रिय ड्यूब,

तुम्हारा पत्र मिला। मैं नहीं जानता कि मसूरीमें मेरे रहनेकी कहाँ व्यवस्था की गई है। सारी व्यवस्था सर्वश्री बिड़ला और जमनालालजी बजाज कर रहे हैं। लेकिन मुझे उम्मीद है कि मैं जब मसूरी पहुँचूँगा तब मैं आपको वहाँ पाऊँगा। तभी आप मुझे अपने दुःखद अनुभवोंके बारेमें सब-कुछ बताइएगा।

रामदास अमरेलीसे अभी-अभी यहाँ आया है। मैं उसे आपका पत्र पढ़ा रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

श्री एस० पी० एन्ड्रयूज-ड्यूब
सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी
लखनऊ

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४०३) की माइक्रोफिल्मसे।

२४०. पत्र : बिनोदबिहारी दत्तको

साबरमती आश्रम
१ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र और 'टाउन प्लानिंग इन एनशिएंट इंडिया' (प्राचीन भारतमें नगर-योजना) नामकी पुस्तक मिली। इनके लिए आपको धन्यवाद।

मन तो बहुत चाहता है कि मैं आपको यह वचन दूँ कि आपकी पुस्तकको जल्दी ही पढ़ लूँगा, लेकिन ऐसा करना सचमुच सम्भव नहीं है। अभी तो मेरे पास तत्काल निपटानेके लिए बहुत सारे कार्य पड़े हुए हैं और इन्हींमें मेरा सारा समय लग जाता है। लेकिन मैं आपकी किताबको अपने सामने ही रखूँगा, ताकि जब-कभी मुझे क्षण-भरका भी समय मिले तो मैं इसकी विषयवस्तुके बारेमें कुछ जान सकूँ।

हृदयसे आपका,

प्रोफेसर बिनोदबिहारी दत्त
४-१ ए, बाघाप्रसाद लेन
कलकता

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४०४) की माइक्रोफिल्मसे।

२४१. पत्र : जंगबहादुर सिंहको

साबरमती आश्रम
१ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र और कतरन मिली। मेरे विचारसे आपके लिए यह ज्यादा अच्छा होगा कि आप लालाजी और पण्डित सन्तानम्से मिले तथा उनके सहयोगसे एक सार्वजनिक अपील निकालें। इतना तो मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि संस्थाको बने रहना चाहिए, लेकिन यह कैसे किया जाये, यह बात स्थानीय परिस्थितियोंपर निर्भर करती है। निःसन्देह, लोग जानना चाहेंगे कि लालाजी और पण्डित सन्तानम् क्या कहते हैं।

हृदयसे आपका,

श्री जंगबहादुर सिंह
सम्पादक "नेशन"
रेलवे रोड, लाहौर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४०५) की माइक्रोफिल्मसे।

२४२. पत्र : रेवरेंड जॉन एम० डार्लिंगटनको

साबरमती आश्रम
१ अप्रैल, १९२६

प्रिय भाई,

पत्रके लिए धन्यवाद। मुझे आपके साथ अपनी मुलाकात याद है।

आपने जिस घटनाकी चर्चा की है, वह कभी हुई ही नहीं है। मैं नहीं जानता कि उसके बारेमें खबर कहाँ प्रकाशित हुई है। यद्यपि ईसा मसीहके उपदेशोंके प्रति मेरे मनमें अगाध श्रद्धा है, फिर भी जैसा विश्वास रखनेकी बात मेरे बारेमें कही गई है, मेरा वैसा कोई विश्वास कभी नहीं रहा है।

हृदयसे आपका,

रेवरेंड जॉन एम० डार्लिंगटन
१४-२, सदर स्ट्रीट, कलकत्ता

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४०६) की फोटो-नकलसे।

२४३. पत्र : एस० वी० वेंकटनरसय्यनको

साबरमती आश्रम
१ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैं नहीं समझता कि किसी व्यक्तिके लिए अन्य धर्मोंके प्रति सहिष्णुताका भाव रखनेके लिए अपने धर्मको भूल जाना आवश्यक है। सच तो यह है कि जब कोई व्यक्ति अपने धर्मको भूल जाता है तब दूसरे धर्मोंके प्रति उसकी सहिष्णुताका मूल्य नहीं रह जाता। मेरे विचारसे, सहिष्णुताका तकाजा यह है कि हम दूसरोंके धर्मके प्रति वैसा ही आदर-भाव रखें, जैसा कि हम अपने धर्मके प्रति औरोंसे रखनेकी अपेक्षा करते हैं।

मेरा तो मत है कि किसी मध्यस्थकी सहायताके बिना ही ईश्वरतक पहुँचा जा सकता है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एस० वी० वेंकटनरसय्यन,
७, मिलर रोड
किलपॉक, मद्रास

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४०७) की फोटो-नकलसे।

२४४. पत्र : कालीशंकर चक्रवर्तीको

साबरमती आश्रम
१ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

"विधवा विवाह" के सम्बन्धमें आपका पत्र मिला। क्या आप अपने पत्रमें निहित तर्क-दोषको नहीं देख पाते? जब लड़की यह जानती ही नहीं हो कि पति क्या होता है, जब उसने उस व्यक्तिको शायद देखा भी नहीं हो जो उसके जीवन-साथीकी तरह रहनेवाला हो और जब पति-पत्नी एक रातको भी साथ नहीं रहे हों, तब क्या आप उसे विवाह कहेंगे? मुझे तो ऐसे सम्बन्धको विवाहकी तरह स्वीकार करनेका हिन्दू-धर्ममें कोई आधार नहीं दिखाई देता। और फिर पुरुषोंकी पवित्रताके नामपर कच्ची उम्रकी लड़कियोंके वैधव्यको ठीक बतानेसे क्या लाभ? पुरुषोकी पवित्रताकी बात बिलकुल ठीक है, लेकिन उसका उपयोग स्त्री-जातिके साथ किये जानेवाले अन्यायपर परदा डालनेके लिए नहीं किया जा सकता। वैधव्यकी पवित्रताकी अनुभूति तो खुद विधवाको ही होनी चाहिए। यह पवित्रता जबरन थोपी नहीं जा सकती। पश्चिमी दुनियामें प्रचलित तलाककी प्रथा और अन्य अनियमितताओंका निश्चय ही हमारी हजारों बहनोंके साथ बुनियादी न्याय करनेके सवालसे कोई सम्बन्ध नहीं है। हमारी अपनी ही हठधर्मिताके कारण, और हिन्दू-धर्मके प्रत्येक रीति-रिवाजको, वह दुनियाकी नैतिकताकी भावनाके कितना भी प्रतिकूल क्यों न हो, सही बतानेकी हमारी आदतके कारण हिन्दू-धर्मकी जड़ें खोखली हो जानेका गम्भीर खतरा है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत कालीशंकर चक्रवर्ती
ज्योति, चटगाँव

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४०८) की फोटो-नकलसे।

२४५. पत्र : सुधांशु कुमारी घोषको

आश्रम
१ अप्रैल, १९२६

प्रिय बहन,

आपका पत्र मिला। यह सुनकर बड़ा दुःख हुआ कि शरत बाबू उपवास कर रहे हैं। मैं तो सोचता हूँ कि यह बिलकुल गलत बात है। और मुझे उम्मीद है कि आपको यह पत्र मिलनेसे बहुत पहले ही वे अपना उपवास तोड़ चुके होंगे।

आपका,

श्रीमती सुधांशु कुमारी घोष
बारीसाल

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९८८७) की माइक्रोफिल्मसे।

२४६. पत्र : किशोरलाल मशरूवालाको

आश्रम
बृहस्पतिवार, चैत्र बदी ३ [१ अप्रैल, १९२६]

चि० किशोरलाल,

गोमतीकी[1] खबर मुझे मिलती ही रहती है। मच्छरोंके लिए क्या मच्छरदानीका उपयोग नहीं किया जा सकता? वहाँ खुराक कम हो गई, यह आश्चर्यजनक बात है। हम अनेक विदेशी वस्तुओंका उपयोग तो करते ही हैं। तो लीठीया-वाटरका उपयोग करके देखना; यह एक झरनेका पानी है। बड़ो दादा हमेशा इसका उपयोग करते थे, एन्ड्र्यूजने मुझसे इसे पीनेका बहुत आग्रह किया था। लेकिन मुझे जरूरत नहीं जान पड़ी, इसलिए नहीं पिया। किन्तु गोमती उसका उपयोग करके देखे तो ठीक होगा। वहाँ भूख कम हो गई है, उसका कारण तो वहाँका पानी ही होगा। तुमने नासिकके पिंजरापोलके बारेमें लिखा है। यह पिंजरापोल मेरे ध्यानके बाहर नहीं है। इसके व्यवस्थापक मुझसे मिल गये हैं। दूसरी जगह कहीं भी सत्याग्रहाश्रमकी शाखा खोलनेका तो विचार ही नहीं था; लेकिन जमनालालजीका यह सुझाव अवश्य था कि किसी अच्छे प्रदेशमें, जहाँ रोगी रह सकते हों, एक जगह ली जानी चाहिए और इस सन्दर्भमें नासिकके बारेमें विचार अवश्य किया गया था। यदि ऐसी जगह हम ऐसे ही

1. किशोरलाल मशरूवालाकी पत्नी।

व्यक्तियोंको रखें तो उनसे सेवा नहीं हो सकती। इसलिए जहाँ भी हम जगह लें, फिलहाल किसी दूसरे काममें नहीं पड़ सकते।

अभी तो मैं यहाँ कमसे-कम १५ तारीखतक रहूँगा ही। जानेकी तारीख इसके बाद ही किसी दिनकी होगी।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९४०९) की फोटो-नकलसे।

२४७. पत्र : पी० एस० वारियरको

[१ अप्रैल, १९२६ या उसके पश्चात्]

प्रिय भाई,

आपकी पुस्तक 'अष्टांगशरीर' की प्रतिके साथ आपका पत्र मिला। तदर्थ धन्यवाद। आपको बता दूँ कि 'यंग इंडिया' समालोचना-पत्र नहीं है। इसमें यदा-कदा उन पुस्तकोंकी चर्चा की जाती है जो अत्यन्त महत्त्वकी होती हैं और जो उन्हीं विषयोंपर होती है, जिन विषयोंपर सामान्यतया 'यंग इंडिया' लेखादि प्रकाशित करता रहता है।

आपका,

पी० एस० वारियर
कोटक्कल

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९८८८) की माइक्रोफिल्मसे।

२४८. पत्र : मिर्जा कासिम अलीको

[१ अप्रैल, १९२६ या उसके पश्चात्]

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैं अब बिलकुल ठीक होता जा रहा हूँ। 'यंग इंडिया' मुफ्त भेजना मेरे लिए मुश्किल है। आपको किसी वाचनालयमें जाकर इसे पढ़ना चाहिए। देशमें हजारों गरीब विद्यार्थी हैं और उन सबको मुफ्त प्रतियाँ बाँटना मेरी सामर्थ्यके बाहर है।

मिर्जा कासिम अली
विद्यार्थी
हैदराबाद

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९८८९) की माइक्रोफिल्मसे।

२४९. पत्र : शाह जमील आलमको

साबरमती आश्रम
२ अप्रैल, १९२६

आपका पत्र मिला। शुद्ध हृदय हो तो मनुष्य सत्यको जान और देख सकता है। इसलिए हम सबको हृदयकी पवित्रताकी ओर ध्यान देना चाहिए। शेष सब अपने-आप आ जायेगा।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११०५७) की फोटो-नकलसे।

२५०. पत्र : ए० जोजेफको

साबरमती आश्रम
२ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला, जिसके साथ 'हिन्दू' और श्री सत्यमूर्तिको लिखे आपके पत्रोंकी प्रतियाँ भी संलग्न हैं। 'हिन्दू' की वे प्रतियाँ भी मेरे पास हैं, जिनमें वे विज्ञापन हैं, जिनकी कि आपने चर्चा की है। मैं तो पूर्ण रूपसे इस मतका हूँ कि जो चीजें राष्ट्रके लिए हानिकर हैं, लोकहितको ध्यानमें रखकर चलनेवाले पत्रोंको उनके विज्ञापन बिलकुल नहीं लेने चाहिये। लेकिन ऐसे मामलोंमें हस्तक्षेप करना मेरे लिए बहुत मुश्किल है। मैं तो 'यंग इंडिया' के स्तम्भोंमें अपना मत ही व्यक्त कर सकता हूँ। और ऐसा मैं समय-समयपर करता रहता हूँ जैसा कि आपने देखा होगा, मैंने अभी हालमें ही ऐसे अनैतिक विज्ञापनोंके[1] बारेमें लिखा है।

हृदयसे आपका,

श्री ए० जोजेफ
५११, सिल्वर स्ट्रीट
सेंट टॉमस माउंट
मद्रास

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १२१६२) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए "स्वत्वाधिकारका आग्रह रखें", २५-३-१९२६।

२५१. पत्र : धीरेन्द्रनाथ दासगुप्तको

साबरमती आश्रम
२ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

खादी-सम्बन्धी कार्यकी रिपोर्टके साथ आपका पत्र मिला। सतीश बाबू अभी हालमें ही यहाँ आये थे और मैंने आपके बारेमें उनसे बातचीत की थी। उन्होंने मुझे बताया कि उनसे जहाँतक बन सकता है, वे आपको पूरी सहायता देनेको उत्सुक हैं। चरखा संघके कोषके अलावा मेरे पास सचमुच और कोई पैसा नहीं है जो मैं आपको भेज सकूँ; और चरखा संघके कोषका उपयोग तो सामान्य रीतिसे ही किया जा सकता है। अतएव मुझे उम्मीद है कि आप सतीश बाबूको पत्र लिखकर, जो सहायता आप चाहते हैं, उनसे प्राप्त करेंगे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत धीरेन्द्रनाथ दासगुप्त
विद्याश्रम
बैनी बाजार, डाकघर, सिलहट

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४०९) की माइक्रोफिल्मसे।

२५२. पत्र : सी० बी० कृष्णको

साबरमती आश्रम
२ अप्रैल, १९२६

प्रिय कृष्ण,

मुझे उम्मीद है कि हनुमन्तरावके बारेमें लिखा मेरा पत्र तुम्हें मिल गया होगा। यह पत्र मैंने तुम्हारा तार मिलते ही लिख दिया था। मुझे यह भी उम्मीद है कि तुम्हें मेरा तार मिल गया होगा। तुम्हारे पत्रके साथ मैंने एक पत्र श्रीमती हनुमन्तरावको और एक हनुमन्तरावके भाईको भेजा था। मैं यह जाननेको उत्सुक हूँ कि वे पत्र उन्हें मिल गये हैं या नहीं। अब मैं तुम्हें एक और पत्र भेज रहा हूँ, जो हनुमन्तरावको लिखा गया था, परन्तु जो मेरे पास लौट आया है। मैं यह पत्र तुम्हें इसलिए भेज रहा हूँ कि इसमें आश्रमकी चर्चा की गई है। मैं तुम्हारे पत्रकी उत्सुकतासे प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत कृष्ण
नेल्लूर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४१०) की माइक्रोफिल्मसे।

२५३. पत्र : एन० एस० वरदाचारी और एस० वी० पुणताम्बेकरको

साबरमती आश्रम
२ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

अब आप दोनोंकी संयुक्त रचनाका[1] पुनरीक्षण किया जा रहा है और मुझे यह देखकर दुःख हुआ है कि उसमें बहुत ज्यादा त्रुटियाँ हैं। आपने प्रूफ-संशोधकसे यह अपेक्षा की है कि आप अपनी रचनामें जिन पुस्तकों और प्रमाणोंको उद्धृत करना चाहते हैं, उन्हें ढूँढ़कर वही भरे। पुस्तकोंका कैसे पता चले? जहाँ आपने पृष्ठ-संख्या नहीं दी है, वहाँ कोई अपेक्षित अवतरणोंको कैसे ढूँढ़ सकता है? क्या आप नहीं समझते कि खुद आपको ही ये अवतरण सुलेखमें उतारकर देने चाहिए थे तथा सन्दर्भ भी भर देने चाहिए थे? और फिर आपने पाद-टिप्पणियोंमें सन्दर्भ देकर अपने सभी कथनोंके प्रमाण भी प्रस्तुत नहीं किये हैं। व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ भी इस तरह लिखी गई हैं, मानो वे साधारण शब्द हों। इससे उनका पता लगाना बहुत मुश्किल है। आप दोनोंके निबन्धोंके एकीकरणका काम भी जल्दीमें किया गया जान पड़ता है। इन त्रुटियोंके कारण छपाई लगभग रुकी पड़ी है। मुझे समझमें नहीं आता कि मेरे सामने जो कठिनाई है, उसका हल मैं किस तरह निकालूं। मैं सन्दर्भ और प्रमाण कहाँसे प्राप्त करूँ? क्या आप इस कठिनाईको दूर करनेकी कोई राह सुझा सकते हैं? यदि आप दोनोंमें से कोई यहाँ आ जाये और जहाँ जो-कुछ भरना है, भर दे तो काम जल्दी हो सकेगा। अथवा यदि आप चाहें तो मैं आप दोनोंमें से किसी एककी रचनाकी एक प्रति भेज दूं। आप दोनोंको यह पत्र आपके अलग-अलग पतोंपर डाला जा रहा है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एन० एस० वरदाचारी
इरोद

श्रीयुत पुणताम्बेकर
हिन्दू विश्वविद्यालय
बनारस

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४११) की माइक्रोफिल्मसे।

१. उक्त दोनों सज्जनों द्वारा लिखी हैंड स्पिनिंग एण्ड हैंड वीविंग।

२५४. पत्र : देवचन्द पारेखको

साबरमती आश्रम
शुक्रवार [२ अप्रैल, १९२६][1]

भाई देवचन्दभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। १३ तारीखको दो बजे यहाँ समितिकी[2] बैठक होनेका समाचार जाना। मैं तैयार रहूँगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (जी० एन० ५७११) की फोटो-नकलसे।

२५५. पत्र : हरबर्ट ऐंडर्सनको[3]

साबरमती आश्रम
३ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैं 'यंग इंडिया' के बारेमें पूछताछ कर रहा हूँ। यह सच है कि ग्राहकोंसे जो भी चन्दे आते हैं, उनका हिसाब तीन-तीन महीने या एक-एक साल बाद किया जाता है; नहीं तो हिसाब-किताब रखना बहुत मुश्किल हो जाये। इसलिए सबसे अच्छा तरीका तो यह है कि १ मार्चसे चन्दा देकर 'आत्मकथा' से शुरू होनेवाले पिछले अंकोंको प्राप्त कर लिया जाये। मैं इसके साथ या तो मद्य-निषेध सम्मेलनकी मैंने जो आलोचना की है, उसकी एक प्रति अथवा अगर सम्भव हुआ तो 'यंग इंडिया' की वह प्रति भेज रहा हूँ, जिसमें आलोचना छपी है।

अब आपके पत्रके अन्तिम अनुच्छेदके सम्बन्धमें। आपने जिस मद्य-निषेध आन्दोलन-की चर्चा की है, धरना देना उस आन्दोलनका मूल तत्त्व था। श्री एन्ड्रयूजने असममें जो जाँच की थी, उसकी रिपोर्टपरसे आपने देखा होगा कि यह आन्दोलन अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थितियोंमें किया गया था; यहाँतक कि लोग इसका विरोध भी कर रहे थे, कुछ मन-ही-मन और कुछ खुल्लम-खुल्ला। अन्तिम और स्थायी उपाय पूर्ण मद्य-निषेध ही है, क्योंकि शराबीको एक प्रकारका रोगी ही समझना चाहिए, जो

१. डाककी मुहरसे।

२. काठियावाड़ राजनीतिक परिषद्की कार्य-समिति।

३. ३०-३-१९२६ को लिखे हरबर्ट ऐंडर्सनके पत्रके उत्तरमें। इसमें हरबर्ट ऐंडर्सनने अपनी त्रैमासिक पत्रिका प्रोहिबिशनके प्रथम अंकके लिए गांधीजीसे सन्देश देनेका अनुरोध किया था।

अपनी सहायता आप करनेमें पूरी तरह असमर्थ होता है। शराबियोंमें से बहुत-से लोग पूर्ण मद्य-निषेधके रूपमें बाहरी सहायताका खुशीसे स्वागत करेंगे। इसलिए मेरे विचारमें, इन दोनों चीजोंको साथ-साथ चलाना होगा।

हृदयसे आपका,

रेवरेंड हरबर्ट ऐंडर्सन
५९ किंग्स रोड
हावड़ा

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १२१६६) की फोटो-नकलसे।

२५६. पत्र : एल० गिबार्टीको[1]

साबरमती आश्रम
३ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। धन्यवाद। आपके सुझावमें जो भावना निहित है, मैं उसकी कद्र करता हूँ। लेकिन मैं इस बोझको उठानेके लिए अपनेको सर्वथा अयोग्य समझता हूँ। उत्पीड़ित व्यक्तियोंकी सेवाके लिए मैं जिन तरीकोंमें विश्वास करता हूँ, वे भी समाजवादियों द्वारा सामान्य रूपसे स्वीकृत उपायोंसे बहुत भिन्न हैं। और फिर वे अभी प्रयोगकी ही स्थितिमें हैं। इसलिए मैं किसी ऐसी संस्थामें शरीक होनेसे बचता हूँ, जिसे मैं अच्छी तरह नहीं जानता और जिसकी मैं अच्छी तरहसे सेवा नहीं कर सकता।

हृदयसे आपका,

श्री एल० गिबार्टी
सेक्रेटरी
इंडियन डिपार्टमेंट
लीगागेगन कोलोनियलग्रोइल उंड
उंटरड्रुकुंग
बैम्बरगर स्ट्रास, ६०
बर्लिन, डब्ल्यू०, ५०

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १२४५८) की फोटो-नकलसे।

१. उपनिवेशोंमें लोगोंपर किये जानेवाले अत्याचार और दमनके विरोधमें स्थापित की गई लीगकी ओरसे श्री एल० गिबार्टीने गांधीजीको पत्र लिखा था। पत्रमें उन्होंने गांधीजीसे लीगका अन्तर्राष्ट्रीय अध्यक्ष बननेका अनुरोध किया था। गांधीजीने यह पत्र उसीके उत्तरमें लिखा था। लीगकी शाखाएँ बहुत-से देशोंमें थीं।

२५७. पत्र : हेलेन हाउसडिंगको

साबरमती आश्रम
३ अप्रैल, १९२६

प्रिय बहन,

आपका पत्र मिला। मुझे खुशी है कि आपकी लगन फलीभूत हुई है और आप जल्दी ही हम लोगोंके बीच होंगी। मैं अब आपको और ज्यादा निरुत्साहित नही करूँगा और न ही कोई चेतावनी ही दूँगा। मुझे उम्मीद है कि आप यहाँ अपना स्वास्थ्य बनाये रख सकेंगी और आपको निराशाका कोई कारण नही मिलेगा। मैं आपको हर तरहका आराम और सुविधा देने तथा ठीक-ठीक व्यस्त रखनेकी भरसक कोशिश करूँगा।

आपने अपनी काती हुई ऊनका जो नमूना भेजा है, वह काफी अच्छा है।

हाँ, बैंकका नाम "बैंक ऑफ बड़ोदा, अहमदाबाद" ही है।

आप अपनी सिलाईकी मशीन, सगीत-पुस्तक और अपने निजी पुस्तकालयकी सारी पुस्तकें भी अवश्य ले आयें। आपके हिन्दुस्तानी सीखनेके लिए हर आवश्यक सुविधा प्रदान की जायेगी।

हृदयसे आपका,

फ्रॉयलाइन हेलेन हाउसडिंग
२६, लिंडनवर्गस्ट्रास
वेरनिग रोड, ए० हार्त्स

अग्रेजी प्रति (एस० एन० १२४५९) की फोटो-नकलसे।

२५८. पत्र : डी० वी० रामस्वामीको

साबरमती आश्रम
३ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैं देखता हूँ कि मैंने कृष्णकी मार्फत[1] आपको और हनुमन्तरावकी विधवाको जो पत्र[2] भेजे थे, वे आपको अबतक नही मिले हैं। मेरा निश्चित मत है कि कमसे-कम फिलहाल तो आपको कुछ कमाई करते रहना चाहिए

१. देखिए "पत्र : सी० वी० कृष्णको", २१-३-१९२६।

२. देखिए "पत्र : श्रीमती हनुमन्तरावको", २१-३-१९२६ और "पत्र : डी० वी० रामस्वामीको", २१-३-१९२६। ये दोनों पत्र गांधीजीने २१ मार्चको ही कृष्णको लिखे पत्रके साथ भेजे थे।

और जो लोग आपपर निर्भर हैं, उनके जीवनको यथासम्भव अधिकसे-अधिक सादा बनाना चाहिए।

हनुमन्तरावकी विधवाको लिखे पत्रमें मैंने कहा है कि यदि वे आश्रममें रहनेके लिए आना चाहें तो उनका स्वागत किया जायेगा और आश्रमके लोग यथासम्भव उनका ध्यान रखेंगे। कृपया समझ लें कि यह सुझाव औपचारिक नहीं है। इसलिए यदि सम्भव हो तो इसे स्वीकार करनेमें तनिक भी संकोच नहीं होना चाहिए।

आप यह तो नहीं ही चाहते होंगे कि मैं आपकी पुस्तक पढ़े बिना उसकी भूमिका लिख दूं?

हृदयसे आपका,

श्रीयुत डी० वी० रामस्वामी
विजगापट्टम

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४१२) की माइक्रोफिल्मसे।

२५९. पत्र: आर० डी० सुब्रह्मण्यम्को

साबरमती आश्रम
३ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र और आपका भेजा हुआ सूतका पैकेट मिला। अब इस सूतकी जाँच हो रही है। मैं आपके और भी सूत भेजनेकी राह देखूंगा।

मैं समझता हूँ मेरे पिछले पत्रमें ऐसी कोई बात नहीं है जिसका यह अर्थ निकाला जा सके कि सूत २० अंकसे ज्यादा का नहीं होना चाहिए। खयाल यह था कि सूत २० से कम अंकका न हो। आपने जो सूत भेजा है, वह सब अगर ५५ अंकका हो तो यह और भी खुशीकी बात होगी।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत आर० डी० सुब्रह्मण्यम्
वेस्ट श्रीरंगप्पालयम् रोड एक्सटेंशन
सेलम

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४१३) की माइक्रोफिल्मसे।

२६०. पत्र : जी० पी० नायरको

साबरमती आश्रम
३ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। 'गणतन्त्र' शब्दके अर्थके सम्बन्धमें आपने मुझे पहलेसे भी ज्यादा दुविधामें डाल दिया है। मैं देखता हूँ कि इस सम्बन्धमें आपके और मेरे विचारोंमें बहुत अधिक अन्तर है। तब मैं आपको प्रोत्साहनके दो शब्द कैसे लिखकर भेज सकता हूँ?

मुझे एक क्षणके लिए भी ऐसा नहीं लगता कि असहयोग आन्दोलन अपना आकर्षण खो बैठा है, और न मैं यही मानता हूँ कि बारडोली-निर्णय[1] एक बड़ी भूल थी। और मेरा यह विश्वास तो पहलेसे भी ज्यादा गहरा हो गया है कि जो लोग गरीबोंकी परवाह करते हैं और उन्हें समझते हैं उन लोगोंके लिए चरखे और खादीके प्रसार तथा विदेशी कपड़ेके बहिष्कारमें अपनी सारी शक्ति लगा देनेसे ज्यादा अच्छा काम और कुछ हो ही नहीं सकता।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत जी० पी० नायर
सम्पादक, 'रिपब्लिक'
माल रोड, कानपुर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४१४) की माइक्रोफिल्मसे।

२६१. पत्र : पी० गोविन्दन कुट्टी मेननको

साबरमती आश्रम
३ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मेरे उत्तर ये रहे:

१. मैं ईश्वरका साक्षात्कार करना चाहता हूँ — लेकिन जिस रूपमें मैं उसके साक्षात्कारकी कल्पना करता हूँ उस रूपमें नहीं बल्कि वह जैसा है, बिलकुल उसी रूपमें।

२. ब्रह्मचर्यकी मेरी जो कल्पना है, अगर सारी दुनिया उस अर्थमें ब्रह्मचारी बन जाये तो उसका रूप आजकी अपेक्षा लाख दर्जे अच्छा हो जायेगा, लेकिन मैं समझता हूँ, ऐसी कोई सम्भावना नहीं है कि सारी दुनिया एकाएक पूर्ण संयमका

जीवन बिताने लगेंगी। इसीलिए हम पूर्ण ब्रह्मचर्यके बादकी अवस्थाकी — गृहस्थाश्रमकी — बात करते हैं।

३. निकट भविष्यमें मेरे केरल जानेकी ज्यादा सम्भावना नहीं है। आपका यह खयाल गलत है कि अस्पृश्यों और अनुपगम्योंको अपने जीवनमें पवित्रता लानेकी शिक्षा नहीं दी जाती। उन्हें इसकी शिक्षा ही नहीं दी जा रही है, बल्कि वे इसपर आचरण भी कर रहे हैं।

४. मैं अंग्रेजीको इस देशसे पूरी तरह निकाल नहीं देना चाहता, लेकिन अगर आप हरएक प्रान्तके लाखों-करोड़ों लोगोंको ध्यानमें रखकर सोचेंगे तो पायेंगे कि उन लोगोंके लिए अंग्रेजी कभी भी शिक्षाका माध्यम नहीं हो सकती। हिन्दी प्रान्तोंके आपसी व्यवहारकी भाषा होनी चाहिए और अंग्रेजी भारत तथा दुनियाके दूसरे देशोंके बीच होनेवाले व्यवहारकी भाषा रहनी चाहिए। इसलिए समय और महत्त्वकी दृष्टिसे इसका स्थान तीसरा है।

५. मैं नहीं समझता कि भारतमें अथवा कहीं भी केवल एक ही धर्म हो सकेगा। लेकिन, एक-दूसरेके धर्मके प्रति हार्दिक श्रद्धा और सहिष्णुता जरूर होगी और होनी चाहिए।

६. हर व्यक्तिके नियमित रूपसे कातनेपर भी हाथ-कता सूत बेकार जमा नहीं होगा, बल्कि तब सबके लिए पर्याप्त सूत होगा और सो भी इतनी कम कठिनाई और खर्चमें जिसकी दुनियाने अबतक कल्पना नहीं की है। और अगर सूत फालतू हो भी जायेगा तो हम, हर व्यक्ति कताईपर जितना समय लगाता है, उसे मजेमें कम कर सकते हैं।

७. मैंने जनताके सामने ऐसा कुछ नहीं रखा है, जिसे साधारणसे-साधारण व्यक्ति भी न कर सके। उदाहरणके लिए, हर व्यक्ति चरखा चलाये, इसमें क्या कठिनाई है? अथवा इन बातोंमें ही क्या कठिनाई है कि वह विदेशी वस्त्रोंका त्याग कर दे, मद्य-पान छोड़ दे, हिन्दू-मुस्लिम एकतामें विश्वास करे और उसके लिए काम करे, अस्पृश्यको अपना भाई माने, अपनी भाषाके अलावा हिन्दी भी सीखे?

८. आहारमें अन्न, फल, दूध और काम न चले तो बहुत थोड़ा मसाला लेना चाहिए। अधिक स्निग्ध पदार्थ नहीं लेना चाहिए। मात्रा और किस्मको ध्यानपूर्वक प्रयोग-परीक्षा करके निर्धारित करना चाहिए।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० गोविन्दन कुट्टी मेनन
पंडारथिल हाउस
पुदुक्कोड
बरास्ता — ओट्टापालम
दक्षिण मलाबार

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४१५) की फोटो-नकलसे।

२६२. पत्र : धर्मवीरको

आश्रम
३ अप्रैल, १९२६

भाई धर्मवीरजी,

आपका पत्र मिला। चित्तकी एकाग्रता अभ्याससे ही मिल सकती है।

(१) शुभ और इष्ट विषयमें लीन होनेसे एकाग्रताका अभ्यास हो सकता है। जैसे कोई मरीजोंकी सेवामें एकाग्र बनते हैं, कोई अन्त्यजोंकी सेवामें, कोई चरखा चलानेमें और खद्दर प्रचारमें।

(२) श्रद्धापूर्वक हार्दिक भावसे रामनामके उच्चारणसे एकाग्र होते हैं।

(३) कोई योगादिकी क्रियासे।

आपका,
मोहनदास गांधी

श्री धर्मवीर
वैदिक पुस्तकालय
लाहोर रोड, लाहोर।

मूलपत्र (एस० एन० १९८९४) की माइक्रोफिल्मसे।

२६३. पत्र : रामरीष ठाकुरको

आश्रम
३ अप्रैल, १९२६

महोदय,

आपका पत्र मिला है। मौलाना शौकतअलीने अपना सूत चंद महीनोंका भेजा है, और जो बाकी है वह भी मिल जानेकी उमीद है। जो अपना सूत नहिं भेजेंगे वे, कोई भी हो, आखिरतक सदस्य नहीं रह सकेंगे। मौ० महमदअलीका सूत नहीं आया है, इसलिये वह सदस्य भी नहीं है।

आपका,
मोहनदास गांधी

श्री रामरीष ठाकुर
नं० २२, गोएनका लेन, बडा बाजार
कलकत्ता

मूलपत्र (एस० एन० १९८९५)की माइक्रोफिल्मसे।

२६४. पत्र : मणिलाल गांधीको

३ अप्रैल, १९२६

चि० मणिलाल,

रामदासको लिखा तुम्हारा पत्र मिला। 'फ' का भी। मुझे यह शंका तो थी ही; 'ज' ने कुछ इशारा किया था। तुम स्वतन्त्र हो, इसलिए तुम्हारे ऊपर अपनी राय जबरदस्ती तो नहीं लाद सकता। लेकिन एक मित्रके रूपमें लिखता हूँ।

तुम्हारी इच्छा धर्म-विरुद्ध है। तुम हिन्दू-धर्मका पालन करो और 'फ' इस्लाम धर्मका, तो यह एक म्यानमें दो तलवारवाली बात हुई, या फिर तुम दोनोंने धर्मको छोड़ दिया। और फिर तुम्हारी सन्तान किस धर्मका पालन करेगी? किसकी छायामें पले-बढ़ेगी? 'फ' केवल तुमसे विवाह करनेके लिए अपना धर्म बदले तो वह धर्म नहीं, अधर्म है। धर्म ऐसी वस्तु नही जो वस्त्रकी तरह अपनी सुविधाके लिए बदला जा सके। धर्मके लिए तो मनुष्य विवाह छोड़ देता है, घर-संसार छोड़ देता है, देश छोड़ देता है, लेकिन किसीके लिए धर्म नही छोड़ा जा सकता। तब क्या 'फ' अपने पिताके घर मांसाहार नहीं करेगी? यदि नहीं करेगी तो यह धर्म बदलनेके समान ही है।

समाजकी दृष्टिसे भी यह विवाह अनुचित है। तुम्हारे इस विवाह-सम्बन्धसे हिन्दू-मुस्लिम प्रश्नको भारी धक्का पहुँचेगा। दोनों समाजोंमें बेटी-व्यवहार इस प्रश्नका उपयुक्त समाधान नहीं है। तुम मेरे पुत्र हो, यह बात तुम नही भुला सकते, समाज भी नही भुला सकता।

तुम यदि यह सम्बन्ध करते हो तो तुमसे सेवा नहीं हो सकती और मुझे तो ऐसा लगता है कि तुम 'इंडियन ओपिनियन' चलानेके लिए भी अयोग्य हो जाओगे।

विवाहके बाद तुम्हारा भारतमें आकर बसना तो फिर मैं असम्भव ही मानता हूँ।

बासे मैं अनुमति नही माँग सकता, वह देगी भी नहीं। उसके लिए तो सारा जीवन एक कड़वा घूंट हो जायेगा।

इस सम्बन्धमें तुमने केवल क्षणिक सुखका ही विचार किया है। अन्तिम सुखको तुमने स्थान नही दिया है।

शुद्ध प्रेम तो भाई-बहनका ही होता है; इसमें तो विषय-सुख ही प्रधान है।

तुम मूर्छासे जागो, ऐसी मेरी इच्छा है। जहाँतक मैं समझा हूँ, रामदास और देवदास भी, स्वतन्त्र रूपसे विचार करनेपर, इसी निर्णयपर पहुँचे हैं।

बाके सामने इस सम्बन्धमें बात करनेकी मेरी हिम्मत नहीं हुई।

भगवान तुम्हें सच्ची राह दिखाये!

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ११९८) से।
सौजन्य : सुशीला बहन गांधी

२६५. पत्र : मानसिंह जसराजको

आश्रम
३ अप्रैल, १९२६

भाईश्री ५ मानसिंह,

आपका पत्र मिला। आपका अनुमान बिलकुल सही है। मेरे कोई पुत्री नहीं है और यह महिला तो इस तरहकी धूर्तता जगह-जगह ही कर रही है। 'नवजीवन' में एक बार तो इसके बारेमें लिखा जा चुका है; फिर लिखूंगा।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

श्री मानसिंह जसराज
मार्फत-श्रीयुत शामलभाई बाबरभाई
अदन कैम्प

गुजराती पत्र (एस० एन० १९८९०) की माइक्रोफिल्मसे।

२६६. पत्र : नरभेराम पो० मेहताको

आश्रम
३ अप्रैल, १९२६

भाई नरभेराम पोपटलाल,

ऋषि दयानन्दजीकी पुस्तकके बारेमें मैं जो लिख गया हूँ, उससे ज्यादा कुछ कहनेकी कोई इच्छा नहीं है।

२. मासिक धर्म स्त्रियोंके लिए मासिक व्याधि है। इस समय उसे अत्यन्त शान्तिकी आवश्यकता होती है; ऐसे समय कामी पुरुषका संग उसके लिए भयंकर वस्तु है।

३. यही कारण प्रसूताको भी लागू होता है और उसे कमसे-कम २० दिन आराम दिया जाता है, इस रिवाजको मैं बहुत अच्छा मानता हूँ। लेकिन जिनका उससे निकटतम सम्बन्ध है, ऐसी स्त्रियाँ भी उसे नहीं छू सकती, यह तो अतिशयता है।

४. आचार, अर्थात् जो मानो सो करो — आचारकी यह व्याख्या मुझे ठीक मालूम होती है।

५. अमरेली कार्यालयमें किसीको योग्यतासे अधिक वेतन दिया जाता है, ऐसा नहीं है, और वहाँ उन्हें, वे जितना उत्पादन करते हैं, उससे ज्यादा खर्च दिया जा रहा है, यह बात भी नहीं है।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

श्री नरभेराम पोपटलाल मेहता, राणसीकी
डाकघर-कुम्भाजीनी देरडी (काठियावाड़)

गुजराती पत्र (एस० एन० १९८९१) की माइक्रोफिल्मसे।

२६७. पत्र: चिमनलाल भो० पटेलको

आश्रम
३ अप्रैल, १९२६

भाईश्री ५ चिमनलाल,

उत्तम शिक्षा विद्यार्थियोंके साथ तन्मय होनेपर ही दी जा सकती है। इसके लिए शिक्षकको पाठ्य विषयोंकी पूरी तैयारी करनी चाहिए।

२. 'गीता' और 'रामायण' को यदि विचारपूर्वक पढ़ा जाये तो उसमें से सब-कुछ मिल जाता है।

३. खुराकमें मुख्यत: गेहूँ, दूध और हरी सब्जियाँ ही काफी हैं। मसालों और तेलका त्याग करना आवश्यक है।

४. शामको बहुत भूख लगे तो थोड़ा दूध लो और यदि यह भारी लगे तो नारंगी या अंगूर या ऐसा ही कोई रसीला फल खाओ। सुबह-शाम यथाशक्ति खुली हवामें उत्साहपूर्वक घूमना चाहिए।

५. हृदय पवित्र करने और एकाग्रचित्त होनेके लिए उपर्युक्त पुस्तकोंका पठन और मनन तथा जब शुभ कार्योंमें न लगे हों तब रामनामका जाप बहुत सहायक होता है।

६. हमें तो प्रयत्नशील होना चाहिए और यह श्रद्धा रखनी चाहिए कि प्रयत्नका फल मिले बिना नहीं रहता।

७. राग-द्वेष आदिका सम्पूर्ण नाश — आत्मदर्शनका यही एक उपाय है।

८. शुभ प्रवृत्तिसे परम शान्ति अवश्य मिल सकती है।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

श्री चिमनलाल भोगीलाल पटेल
कमरा नं० ३; डाह्या मकनजीनी चाल
घाटकोपर, बम्बई

गुजराती पत्र (एस० एन० १९८९२) की माइक्रोफिल्मसे।

२६८. पत्र : डाह्याभाई म० पटेलको

आश्रम
३ अप्रैल, १९२६

भाई डाह्याभाई,

तुमने आत्म-निरीक्षण ठीक किया है। तुम चरखेके कार्यमें ही तल्लीन हो सकोगे और इससे भारी लोक-सेवा हो सकती है — ऐसी श्रद्धा रखोगे तो मुझे विश्वास है, तुम्हें सन्तोष होगा और अन्तमें उसका सुन्दर परिणाम भी तुम देखोगे। लेकिन हो सकता है, तुम अपने धीरजकी सीमा बाँध लो। जहाँ सीमा बाँधी गई हो वहाँ धीरज नहीं होता। भगवान करे, तुम अपने निश्चयमें सफल बनो।

बापूके आशीर्वाद

श्री डाह्याभाई मनोहरदास पटेल
धोलका

गुजराती पत्र (एस० एन० १९८९३) की माइक्रोफिल्मसे।

२६९. पत्र : एक बहनको

साबरमती आश्रम
शनिवार, चैत्र बदी [५][1] [३ अप्रैल, १९२६]

प्रिय बहन,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारे दुःखसे मुझे सहानुभूति है। तुम अपने पतिको लेकर यहाँ आओ, अथवा अपने पतिको भेज दो तो मैं उसके साथ अवश्य बातचीत करूँगा। और शान्ति प्रदान करनेका प्रयत्न करूँगा। यहाँ वे लम्बे अरसेतक तो नहीं रह सकते। मुझे खुद थोड़े दिनोंमें मसूरी जाना है। इसलिए यदि तुम दोनों अथवा तुम्हारे पति यहाँ आना चाहें तो तुरन्त आ जाना चाहिए। श्रद्धा और धीरज न खोना। दुःखमें ही सुख मानना। ऐसा मान बैठनेका कोई कारण नहीं कि सावित्री-जैसी शक्ति तुममें आ ही नहीं सकती।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९४१६) की माइक्रोफिल्मसे।

१. साधन-सूत्रमें ऐसा ही है।

२. साधन-सूत्रमें चैत्र बदी ६ दिया है, किन्तु शनिवार चैत्र बदी ५ को ही पड़ता था।

२७०. पत्र : देवदास गांधीको

साबरमती आश्रम
शनिवार, चैत्र बदी [५][1] [३ अप्रैल, १९२६]

चि० देवदास,

तुम्हारा पत्र मिला। रामदासने भी अपना पत्र दिखाया। उसके बारेमें तो रामदास ही लिखेगा। तुम्हारा रह जाना निश्चित हुआ, यह ठीक ही है। सिद्धैया काकाके पास रहता है। उसे तुरन्त वापस आना है। इसलिए आज स्वामी उसे पत्र लिख रहा है। यह पत्र सिद्धैयाको सोमवारको मिलेगा। इसलिए मंगल-बुधतक प्रभुदासको यहाँ आ जाना चाहिए। उसके लिए क्या करना चाहिए, इसपर तो प्रभुदासके यहाँ आनेके बाद ही विचार किया जायेगा। उसकी तबीयतमें कोई भारी बिगाड़ हुआ हो, ऐसी बात तो नहीं है। भले-चंगे व्यक्तिकी भी तबीयत वहाँ अच्छी न रहे, इसमें तो भले-चंगे व्यक्तिका ही दोष होगा न? और तुम्हें कोई बीमारोंमें तो नहीं गिना जा सकता। नीमका रस पीना शुरू किया, यह ठीक हुआ। यह आवश्यक है कि मानसिक व्याधि तनिक भी न भोगी जाये। वह जर्मन महिला हेलेन हाउसडिंग आना चाहती थी। उसे अनुमति मिल चुकी है। इसलिए जान पड़ता है कि वह अब महीने-भरमें यहाँ पहुँच जायेगी। मालूम होता है कि यह महिला मीराबाईकी जोड़की है। पंचगनीमें रहनेके लिए उपयुक्त जगहकी खोज शुरू कर दी है। मथुरादासको अलगसे पत्र नहीं लिखता।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९४१७) की माइक्रोफिल्मसे।

२७१. पत्र : ठाकोरलालको

साबरमती आश्रम
शनिवार, चैत्र बदी [५][2] [३ अप्रैल, १९२६]

भाई ठाकोरलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। मैं देखता हूँ कि तुम्हें पत्रोंकी मार्फत सलाह देना या तुम्हारा मार्ग प्रदर्शन करना सम्भव नहीं है। तुम अपना अभ्यास छोड़कर आश्रममें रहो, यह तो मैं कदापि नहीं चाहता। जब तुम्हें छुट्टियाँ हों तब तुम यहाँ आ जाओ तो हम बात कर सकते हैं और इससे कदाचित् तुम्हें कुछ आश्वासन मिलेगा। खादी-भण्डारोंमें रेशमका माल रखनेमें कुछ दिक्कतें आईं, इसलिए उसे हटाना पड़ा।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९४१८) की माइक्रोफिल्मसे।

१ व २. देखिए पिछले शीर्षककी पाद-टिप्पणी।

२७२. राष्ट्रीय सप्ताह[1]

शनिवार, चैत्र बदी [५][2] [३ अप्रैल, १९२६]

हमें अपना बहुमूल्य समय यों ही नष्ट नहीं करना चाहिए। हमारा मत और विश्वास चाहे जो भी हो, जो सप्ताह अब शीघ्र ही शुरू होनेवाला है, उसके दौरान हमें गम्भीरतासे आत्म-निरीक्षण करना चाहिए। हर स्त्री और पुरुष अपने-आपसे यह पूछे कि उसने अपनी जन्मभूमिके लिए क्या किया है। सिर्फ व्याख्यान देनेसे, विधान सभामें जानेसे, स्वराज्यपर लेख लिखनेसे या कि समाचारपत्रोंका सम्पादन ही करनेसे स्वराज्य प्राप्त नहीं होगा, यद्यपि इन सब कामोंसे इसमें मदद मिल सकती है, और इनमें से कुछ काम आवश्यक भी माने जा सकते हैं। लेकिन वह कौन-सा काम है, जिसे हर व्यक्ति आसानीसे कर सकता है, जिससे भारतकी सम्पत्तिमें वृद्धि होगी, जिससे सहयोग और संगठनकी शक्ति बढ़ती है और जिससे हम एक-दूसरेके प्रति अपनापन महसूस करते हैं? उत्तरमें बिना किसी हिचकिचाहटके कहा जा सकता है कि वह काम है, चरखा चलाना। इसीलिए मैंने इस सप्ताह जोर-शोरसे खादीका प्रचार करनेकी सिफारिश की है। अतएव, यदि आपने अबतक किसी भी प्रकारका खादी-कार्य करना शुरू न किया हो, तो अब भी बहुत विलम्ब नहीं हुआ है। छोटी-छोटी चीजोंसे भी मदद मिलती है। खादीके मुख्य केन्द्रोंमें — जैसे तमिलनाड, बिहार, पंजाब, गुजरात, बंगाल इत्यादि स्थानोंमें — बहुत-सी बिना-बिकी खादी पड़ी हुई है। आपको किसी प्रान्त-विशेषका विचार करनेकी जरूरत नहीं है। आप कहीं भी क्यों न हों, यदि आप खादी नहीं पहनते हैं तो अब कुछ रुपये उसमें लगाकर खादी खरीद लीजिए। इससे आप सारे भारतके खादी-भण्डारोंमें जमा खादीकी खपतमें मदद पहुँचायेंगे। यदि आपके पास काफी खादी हो और आप खादी खरीदना न चाहें, लेकिन आपके पास देनेको कुछ पैसा हो तो आप वह पैसा चरखा-संघको दान-स्वरूप दे दीजिए। उसका उपयोग खादी तैयार करनेमें किया जायेगा। यदि आपके पास अवकाशके कुछ क्षण हों (और कौन है जिसके पास ऐसे कुछ क्षण न हों?) तो आप उनका उपयोग चरखा चलानेमें कीजिए और कता हुआ सूत अ० भा० चरखा संघको भेज दीजिए। यदि आपके कुछ ऐसे मित्र हों जिनपर आपका असर हो तो आप उनसे ये सब या इनमें से कोई भी काम करनेके लिए कहें, जिनका उल्लेख मैंने अभी किया है। यह स्मरण रखिए कि खादी-कार्यमें योग देकर आप गरीब लोगोंसे अपना

१. देखिए "सत्याग्रह-सप्ताहमें आंशिक उपवास", ४-४-१९२६।

२. देखिए शीर्षक २६९ की पाद-टिप्पणी।

तादात्म्य प्राप्त करते हैं, स्वराज्यप्राप्तिके पक्षमें मदद पहुँचाते हैं और देशबन्धुकी स्मृतिको स्थायित्व प्रदान करनेमें योगदान करते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८-४-१९२६

२७३. ब्रह्मचर्यके विषयमें

आजकल ब्रह्मचर्य और उसकी सिद्धिके साधनोंके विषयमें मुझपर पत्रोंकी वर्षा हो रही है। उनमें से एक पत्रमें पूछे गये कुछ प्रश्नोंका उत्तर यहाँ देता हूँ।[1]

ब्रह्मचर्यका अर्थ है आत्माको (ब्रह्मको) पहचाननेका मार्ग, अर्थात् सब इन्द्रियोंका निग्रह। मुख्यतः, स्त्री अथवा पुरुष द्वारा मन, वचन और कायासे विषय-भोगका त्याग।

मेरे आदर्श ब्रह्मचारीको वीर्यका उपयोग करनेकी अर्थात् प्रजोत्पत्ति करनेकी जरूरत ही नहीं रहती। आदर्श ब्रह्मचारी तो प्रजाका दुःख देखकर उसे दूर करनेमें ही लीन हो जायेगा और उसे प्रजाके दुःख-निवारणका कार्य छोड़कर प्रजोत्पत्तिकी झंझटमें पड़ना जहरकी तरह कड़वा मालूम होगा। जिसने संसारके दुःखोंका सम्पूर्ण दर्शन कर लिया है, उसमें विकार पैदा ही नहीं होंगे। वह तो सदा अपने वीर्यका संग्रह ही करेगा। जिस पदार्थसे सन्तानकी उत्पत्ति हो सकती है, उस पदार्थका जो पुरुष अपने शरीरमें संग्रह कर सकता है, वह ऐसा वीर्यवान और शक्तिमान बन जाता है कि उसे सारा जगत प्रणाम करता है। वह चक्रवर्ती सम्राट्से भी अधिक सत्ता भोगता है। जो पुरुष केवल विषय-भोगके क्षणिक सुखके लिए ही वीर्यका क्षय होने देता है, वह शक्तिहीन हो जाता है; उसके शरीरकी अपेक्षा उसका मन और भी अधिक शक्तिहीन हो जाता है और वह दयाका पात्र है। मूर्च्छित होनेके कारण वह भले ही इसमें सुख माने, अनीतिको नीति मानकर अपनेको और समाजको भले ही धोखा दे, परन्तु उसकी स्थिति उस ज्ञानहीन किसानकी तरह दयाजनक है, जो अपने बीजको खेल खेलनेके लिए पानीमें या पत्थरोंमें फेंक दे।

विषय-भोगके लिए होनेवाला आकर्षण इतना अधिक अस्वाभाविक है कि यदि प्रत्येक पुरुष प्रत्येक स्त्रीके प्रति और प्रत्येक स्त्री प्रत्येक पुरुषके प्रति आकर्षित हो तो आज ही इस जगतमें प्रलय हो जाये। स्त्री-पुरुषके बीच स्वाभाविक आकर्षण तो वही हो सकता है, जैसा भाई-बहन, माता-पुत्र अथवा पिता-पुत्रीके बीच होता है। ऐसी मर्यादासे ही जगती टिक सकती है। मैं सारे जगतकी स्त्रियोंको माँ, बहन या पुत्री समझकर ही अपना व्यवहार चला सकता हूँ। अगर मैं सारी स्त्रियोंके प्रति विकारी बन जाऊँ तो मेरी स्थिति कैसी हो? वे मेरी कैसी फजीहत कर दें? उनके किसी प्रयत्नके बिना भी मेरी क्या स्थिति हो?

१. प्रश्नोंका अनुवाद नहीं दिया जा रहा है; उत्तरोंसे उनका अनुमान किया जा सकता है।

प्रजोत्पत्ति स्वाभाविक क्रिया तो जरूर है, लेकिन उसकी मर्यादाएँ स्पष्ट हैं। इन मर्यादाओंका पालन नहीं किया जाता, इस कारणसे स्त्रीजाति भयभीत रहती है और सन्तान निःसत्व बनती है। इससे रोग बढ़ते हैं, पाखण्ड फैलता है और जगत ऐसा बन जाता है जैसे ईश्वर हो ही नहीं। मनुष्य जब विषय-भोगमें लिप्त हो जाता है, तब वह आत्म-विस्मृत हो जाता है। ऐसा आत्म-विस्मृत मनुष्य कुछ लिखे, उसे प्रकाशित करे और हम उससे मोहित होकर उसका अनुकरण करें तो हमारी क्या दशा होगी? परन्तु आजके पाठक-समाजमें व्यवहारमें तो ऐसा ही होता दिखाई देता है। पतंग जिस समय दीपकके आसपास नाच रहा होता है यदि वह अपने उस समयके क्षणिक सुख और आनन्दका वर्णन लिखे और हम उसे ज्ञानी समझकर उसका वर्णन पढ़ें तथा उसका अनुकरण करें तो हमारी क्या हालत हो? मैं तो अपने अनुभव और अपने साथियोंके अनुभवके आधारपर यहाँतक कहना चाहता हूँ कि पति-पत्नीके बीच भी व्यभिचारपूर्ण आकर्षण स्वाभाविक नहीं है। विवाहका अर्थ यह है कि पति-पत्नी अपने प्रेमको निर्मल और शुद्ध बनायें और ईश्वर-प्रेमका अनुभव करें। पति-पत्नीके बीच निर्विकार प्रेम होना असम्भव नहीं है। मनुष्य पशु नहीं है। वह अनेक पशु-जन्मोंके बाद मनुष्य बना है। केवल वही सीधा खड़ा रहनेके लिए पैदा हुआ है। पशुता और पुरुषार्थके बीच उतना ही भेद है, जितना जड़ और चेतनके बीच।

ब्रह्मचर्यका पालन करनेके लिए कुटुम्बका त्याग करना आवश्यक है, और नहीं भी है। जो मनुष्य अपने विकारोंको वशमें रख सकता है, उसे बाहरी त्यागकी कम आवश्यकता है। जो अपने विकारोंको रोकनेमें असमर्थ है वह, जिस प्रकार आदमी आगसे दूर भागता है उसी प्रकार, जहाँ भी अपने भीतर विकार पैदा होते देखे वहाँसे सौ कोस दूर भाग जाये।

मैं अन्तमें ब्रह्मचर्य-पालनके लिए कुछ आवश्यक साधन बता दूँ।

ब्रह्मचर्यके मार्गपर चलनेके लिए पहला कदम है, उसकी आवश्यकताका ज्ञान होना। इसके लिए ब्रह्मचर्य-सम्बन्धी पुस्तकोंका पठन और मनन आवश्यक है।

दूसरा कदम है धीरे-धीरे इन्द्रियोंपर काबू पाना। ब्रह्मचारी स्वादपर अंकुश रखे; वह जो-कुछ खाये पोषणके लिए ही खाये। आँखोंसे गन्दी वस्तु न देखे। आँखोसे सदा शुद्ध वस्तु ही देखे। किसी गन्दी वस्तुके सामने आँखें बन्द कर ले। इसीलिए सभ्य स्त्री-पुरुष चलते-फिरते इधर-उधर देखनेके बदले जमीनपर ही नजर रखें और शरीरकी तुच्छताका ही दर्शन करें। वे कानसे कोई बीभत्स बात कभी न सुनें; नाकसे विकार उत्पन्न करनेवाली वस्तुएँ न सूंघें। स्वच्छ मिट्टीमें जो सुगन्ध है, वह गुलाबके इत्रमें भी नहीं है। जिसे आदत नहीं होती, वह तो इन बनावटी सुगन्धोंसे अकुला उठता है। वे अपने हाथ-पाँवका भी कभी बुरे काममें उपयोग न करें; और समय-समयपर उपवास करें।

तीसरा कदम यह है कि ब्रह्मचारी अपना सारा समय सत्कार्यमें, जगतकी सेवामें ही बिताये।

चौथा कदम यह है कि ब्रह्मचर्यके पालनका आकांक्षी सत्संगका सेवन करे, अच्छी पुस्तकें पढ़े, और आत्म-दर्शनके बिना विकार जड़मूलसे नष्ट नहीं हो सकते, ऐसा समझकर सदा रामनामका जप करे और ईश्वर-प्रसादकी याचना करे।

इन सबमें एक भी बात ऐसी नहीं है, जिसपर सामान्यसे-सामान्य स्त्री-पुरुष भी अमल न कर सकें। परन्तु इनकी यह सरलता ही एक बड़े पहाड़ के समान मालूम होती है। ब्रह्मचर्यकी आवश्यकताके बारेमें पूरी श्रद्धा न होनेसे मनुष्य अनेक प्रकारके व्यर्थ प्रयत्न किया करता है। इसमें शंका करनेका कोई कारण नहीं कि जिसके मनमें ब्रह्मचर्यकी इच्छा पैदा हो गई है, उसके लिए ब्रह्मचर्यका पालन साध्य हो जाता है। जगत ब्रह्मचर्यके कम या अधिक पालनसे ही टिका है। यह बताता है कि ब्रह्मचर्य आवश्यक है और उसका पालन करना सम्भव है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ४-४-१९२६

२७४. सत्याग्रह सप्ताह

यह सप्ताह अब निकट आ रहा है। इस सप्ताहको मनानेकी मुझे जो अच्छीसे-अच्छी विधि दिखाई दी है, वह मैंने सुझाई है। सत्याग्रह एक महान् और सार्वभौम धार्मिक सिद्धान्त है। वह समस्त धर्मोंमें उपलब्ध है। उसके बिना कोई धर्म नहीं टिक सकता। यह धर्मका आधार है। धार्मिक भावनाकी वृद्धि न हो तो सत्याग्रह कदापि नहीं चल सकता। सत्याग्रहके बिना स्वराज्य नहीं मिल सकता, यह तो असंख्य मनुष्य मानते हैं। हिन्दुस्तान तलवारके बलसे स्वराज्य प्राप्त नहीं कर सकता, यह बात भी असंख्य लोग मानते हैं; लेकिन सत्याग्रह कैसे किया जा सकता है, यह बात गिने-चुने लोग ही जानते हैं।

मेरा दृढ़ मत है कि जबतक हम चरखेके शान्तिदायक कार्यक्रमका अनुकरण नहीं करते, चरखेके द्वारा गरीबोंके साथ अपना सम्बन्ध शुद्ध नही बनाते और खादीको सम्मानका स्थान प्रदान नहीं करते तबतक हममें सत्याग्रह करनेकी योग्यता कदापि न आयेगी।

इसलिए मैंने सुझाव दिया है कि जिनका खादीमें जरा भी विश्वास है, उन्हें सत्याग्रह-सप्ताह खादी-प्रचारके द्वारा मनाना चाहिए। खादी-प्रचार कई तरहसे किया जा सकता है:

१. स्वयं हमेशासे अधिक सूत कातकर और दूसरोंसे कतवाकर;
२. स्वयं खादी पहनकर और दूसरोंको पहनाकर;
३. जहाँ खादी ज्यादा इकट्ठी हो गई है, वहाँ फेरीके द्वारा उसे बेचकर;
४. सप्ताहमें खादीका उत्पादन स्वयं करके तथा दूसरोंसे करवाकर;
५. अपने सामर्थ्यानुसार खादी-कार्यके लिए धन देकर।

इस सप्ताहमें जितनी खादी इकट्ठी हो गई है वह सब बिक जानी चाहिए।

यदि जनता इतना भी नही कर सकती तो वह क्या करेगी? खादी अन्य शुभ प्रवृत्तियोंकी विरोधी नही है। वह उनकी पोषक है, क्योंकि खादी-प्रचारसे देशका धन बढ़ता है और इस बढ़े हुए धनका उपयोग सहज रूपसे गरीबोंके लिए होता है।

इसलिए जो लोग दान देना चाहते हैं, मैं तो उन्हें भी खादीका दान देनेका सुझाव देता हूँ। जिन्होंने अभीतक विदेशी वस्त्रका त्याग नही किया है, क्या वे इस सप्ताहमें विदेशी वस्त्र न पहननेका व्रत लेकर और खादी धारण करके स्वराज्य-यज्ञमें अपना योगदान नहीं करेंगे?

खादीके सम्बन्धमें जिन्हें शंका हो, उन्हे अपने-आपसे यह प्रश्न पूछना चाहिए: यदि स्वराज्य खादीसे नही मिलेगा तो फिर दूसरी किस प्रवृत्तिसे मिलेगा और क्या हम उस प्रवृत्तिको चला सकेंगे अथवा उसमें भाग ले सकेंगे? मैंने तो अनेक बार अपने-आपसे ऐसा प्रश्न किया है, लेकिन मुझे तो ऐसी कोई दूसरी प्रवृत्ति नही मिल सकी है। अकेली खादीसे स्वराज्य नही मिलेगा, जिन्हे ऐसा लगे उन्हें, जान लेना चाहिए कि यहाँ वह प्रश्न ही नही उठता। खादी बिना स्वराज्य न मिलेगा। खादीसे नुकसान हो ही नही सकता; इसलिए हम चाहे और कुछ करे या न करे; लेकिन हमें खादीका प्रचार तो अवश्य करना चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ४-४-१९२६

२७५. सत्याग्रह-सप्ताहमें आंशिक उपवास

सत्याग्रह सप्ताहमें ६ और १३ तारीखको एकाशन व्रत रखनेका सुझाव देनेकी हिम्मत ही नहीं पड़ती, इसीलिए मैंने 'यंग इंडिया' में इसके बारेमें लेख[1] लिखा, तब उसका उल्लेख ही नहीं किया। लेकिन जो लोग धार्मिक स्वराज्य चाहते हैं, जो आत्म-शुद्धिके द्वारा स्वराज्य-प्राप्तिकी इच्छा करते हैं वे लोग तो अवश्य दोनों दिन एकाशन करेंगे और उस दिन अपने दोषोंका दर्शन कर उन्हें दूर करनेका प्रयत्न करेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ४-४-१९२६

१. देखिए "राष्ट्रीय सप्ताह", ३-४-१९२६।

२७६. पहाड़ी जातियाँ

भाई अमृतलाल ठक्कर अपने संन्यासको सुशोभित कर रहे हैं। इन्होंने भगवाँ वस्त्र तो नहीं पहना है और अपनेको संन्यासी कहते भी नहीं लेकिन फिर भी वे काम तो जो संन्यासीको शोभा दे, वैसा अर्थात् परोपकारका ही कर रहे हैं। वे बूढ़े हो गये हैं, तथापि आरामसे नहीं बैठते और न अपने आसपासके लोगोंको आरामसे बैठने देते हैं। जहाँ चारों ओर दुःखोंकी दावाग्नि सुलग रही हो, वहाँ आरामसे कौन बैठ सकता है? यदि कोई बैठ सकता है तो आलसी ही बैठ सकता है। भाई अमृतलाल अन्त्यजोंके आचार्य तो हैं ही; वे अब पहाड़ी जातियोंके आचार्य बननेकी भी साधना कर रहे हैं। मुझे उम्मीद है कि सब लोग उनके मर्मस्पर्शी लेखोंको[1] पढ़ेंगे और उनपर विचार करेंगे। जिन्होंने उनका गत सप्ताहका लेख न पढ़ा हो, वे उसे अब पढ़ जायें। वे इस सप्ताहका लेख भी पढ़ें और उसपर विचार करें। भाई अमृतलालने जो कार्य सुझाया है, हम उसमें क्या और किस तरह भाग ले सकते हैं, इसपर बादमें विचार करेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ४-४-१९२६

२७७. अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारक

स्टैंडरटन, ट्रान्सवालसे इस कोषके लिए भाई दयाल नारणकी मार्फत निम्नलिखित भाइयोंने चन्दा भेजा है:

	पौ०शि०पें०		पौ०शि०पें०
श्री दयाल नारण	१०–०–०	श्री वल्लभ भुला	५-११-३
श्री देवचन्द दुर्लभ	२–२–०	श्री नगीन नरसिंह	५–०–०
श्री दयाराम भगवान	०-१०-६	श्री वल्लभ भगवान	०-१५-०
श्री उका नारण	१–१–०	श्री परभु हरखा	१–१–०
श्री भुला हीरा	३–३–०	श्री वशन डाह्या	५–५–०
	१६-१६-६		१७-१२-३
		कुल :	३४–८–९

१. "हमारी आदिम जातियाँ", नवजीवन, २८-३-१९२६ और "अन्य जातियोंका धर्म-परिवर्तन", नवजीवन, ४-४-१९२६।

मुझे उम्मीद है कि इसी तरह अन्य लोग भी इस कार्यमें अपना-अपना चन्दा भेजेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ४-४-१९२६

२७८. सन्तोंका स्मरण

सत्याग्रह-सप्ताह किस तरह मनाया जाये, इसपर विचार करते हुए मेरी नजर काकासाहब कालेलकर द्वारा विद्यार्थियोंके लिए लिखे गये लेखके एक अंशपर पड़ी। यह अंश मैं 'नवजीवन' के पाठकोंके सम्मुख पेश करता हूँ।[1]

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ४-४-१९२६

२७९. पत्र : लाला लाजपतरायको

साबरमती आश्रम
४ अप्रैल, १९२६

प्रिय लालाजी,

साथकी कतरनमें मैंने जिस बातकी चर्चा की है, उसके बारेमें मैं 'यंग इंडिया' में लिख चुका हूँ। क्या आपने पूर्ण मद्य-निषेधके प्रश्नका अध्ययन किया है? पंजाबमें इस ओर जो घोर उदासीनता छाई हुई है, उसका क्या कारण है?

हृदयसे आपका,

लाला लाजपतराय
लाहौर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४२०) की फोटो-नकलसे।

१. यहाँ इसका अनुवाद नहीं दिया जा रहा है। इसमें महाराष्ट्रके प्रख्यात सन्त एकनाथकी चर्चा करते हुए उनकी अन्त्यज-सेवाके उदाहरण दिये गये हैं।

२८०. पत्र : जमनालाल बजाजको

साबरमती आश्रम
रविवार, ४ अप्रैल, १९२६

चि० जमनालाल,

तुम्हारा पत्र मिला। २२ तारीखको मैं यहाँसे रवाना हो सकूँगा, इस आशयका तार मैंने तुम्हें भेजा है। उसके पहले निकल सकना सुविधाजनक नही है। और अभी तो यहाँ गर्मीके बदले ठंडक रहती है, ऐसा कहा जा सकता है। इस बार भी मेरा वजन आधा पौंड बढ़ा है। इससे अब १०४ पौंडतक हो गया है। आराम तो खूब ले रहा हूँ। हकीम साहबको लिखे हुए तुम्हारे पत्रका मसविदा मैं पढ़ गया हूँ। यह ठीक है। इसके साथ उसे वापस भेज रहा हूँ। मेरे साथ शायद प्यारेलाल, महादेव, सुब्बैया, प्यार अली, नूरबानु बहन और उनका नौकर होगा। प्यार अलीका इरादा तो किराया देकर अलग रहने और अपना खाना बनानेका है। अगर तुम्हें हालमें बम्बई रहनेकी जरूरत न हो तो तुम मेरे साथ मसूरीमें रहो, यह मुझे जरूर अच्छा लगेगा। कितने ही काम तो तुम्हारे रहनेपर हम जरूर कर लेंगे। लेकिन अगर कामके सिलसिलेमें बम्बई या कलकत्ता जाना हो तो मैं तुम्हें खास तौरसे रोकना नहीं चाहूँगा। इसलिए अन्तिम निर्णय तो अपनी सुविधा देखकर तुम्हें ही करना होगा।

गुरुकुलका काम तुमसे ठीक सध रहा है, ऐसा लगता है। राजगोपालाचारीको अपने आश्रमकी बहुत झंझट है। इसलिए उन्हें तुरन्त जाना होगा। अब्बास तैयबजी दौरेके लिए तैयार हो सकें, ऐसी सम्भावना है। मणिलाल रंगूनसे आ गए हैं। परन्तु वे तुरन्त दौरेके लिए निकल सकें, ऐसा नही लगता। उन्हें अब थोड़ा समय रेलवेके नौकरोंके लिए भी देना पड़ेगा। इसलिए वे अभी तुरन्त भ्रमण नही कर सकते। वे यहाँसे मंगलवारको रवाना होंगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (जी० एन० २४५८) की फोटो-नकलसे।

२८१. पत्र : मिल्टन न्यूबेरी फ्रैंजको

साबरमती आश्रम
६ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपने जिस धार्मिक मान्यताके बारेमें मुझे लिख भेजा है, मुझे लगता है, मैं उसको स्वीकार नहीं कर सकता। उसको स्वीकार करनेवालेसे यह माननेकी अपेक्षा की जाती है कि ईसा मसीहमें अदृश्य परमात्म-तत्त्वकी सबसे अच्छी अभिव्यक्ति हुई थी। सारे प्रयत्नोंके बावजूद मैं इस कथनकी सत्यताको अनुभव नही कर पाया हूँ। मेरा विश्वास इससे आगे नही बढ सका है कि ईसा मसीह मानव जातिके महान् शिक्षकोंमें से एक थे। क्या आप यह नही मानते कि सभी लोगोंके केवल एक ही सम्प्रदायके सदस्य होने और उसकी मान्यताओंमें यन्त्रवत् विश्वास करने मात्रसे धार्मिक एकता नही आ सकती, बल्कि इसके बजाय सबके एक-दूसरेके धार्मिक विश्वासोंका सम्मान करनेसे ही आ सकती है? मेरे विचारसे तो जबतक लोगोंके पास अपनी-अपनी बुद्धि है और वे उस बुद्धिसे अलग-अलग सोचते-विचारते हैं, तबतक धार्मिक विश्वासोंमें भी भिन्नता अवश्य बनी रहेगी। लेकिन यदि ये सब...[1] प्रेम और पारस्परिक सद्भावके सामान्य मार्गपर चलते हैं, तो धार्मिक विश्वासोंकी भिन्नतासे क्या फर्क पड़ सकता है?

आपने जो टिकट भेजा है, उसे मैं वापस भेज रहा हूँ। इसका भारतमें उपयोग नही किया जा सकता।

हृदयसे आपका,

श्री मिल्टन न्यूबेरी फ्रैंज
कॉलेकॉविले

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १२४६१) की फोटो-नकलसे।

१. साधन-सूत्रमें यहाँ स्थान रिक्त है।

२८२. पत्र : गो० कृ० देवधरको

साबरमती आश्रम
६ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मुझे यह जानकर खुशी हुई कि सेवासदनके कार्यके बारेमें 'यंग इंडिया' में लिखी मेरी टिप्पणियाँ आपको पसन्द आईं। शोलापुर आकर आपकी संस्था देखना और आपके कार्यकर्त्ताओंसे मिलना मेरे लिए सचमुच बड़ी प्रसन्नताकी बात होगी।

मैं एक महीनेके लिए मसूरी जानेका इरादा रखता हूँ। मुझे उम्मीद है कि इस बार मलेरिया होनेके बाद मुझमें जो-कुछ कमजोरी अभी भी बनी हुई है, वह वहाँ दूर हो जायेगी।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत गो० कृ० देवधर
अवैतनिक संगठनकर्त्ता और महामन्त्री
पूना सेवासदन सोसाइटी
७८९–७९०, सदाशिव पेठ, पूना सिटी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४२१) की माइक्रोफिल्मसे।

२८३. पत्र : ग्रीव्ज कॉटन व कम्पनीको

साबरमती आश्रम
६ अप्रैल, १९२६

महोदय,

एक सज्जनने मुझे पत्र[1] लिखा है, जिसमें उन्होंने बताया है कि आपके कार्यालयमें स्टेनोग्राफरके पदके लिए अर्जी देनेपर उन्हें बुलाया गया, परन्तु मैनेजरके पास जाते ही उनसे कहा गया कि जबतक वे खादी वस्त्र पहनना नहीं छोड़ते तबतक उन्हें नौकरी नहीं दी जा सकती। पत्र-लेखकने जो शब्द उद्धृत किये हैं, उन्हें मैं ज्योंका-त्यों दे रहा हूँ: "हम सिद्धान्ततः अपने किसी भी कार्यालयमें इसकी इजाजत नहीं देते और यदि आप यूरोपीय फर्मोंमें काम करना चाहते हैं तो खादी पोशाक वहाँ नहीं चलेगी।"

१. देखिए "खादीके पक्ष और विपक्षमें", २२-४-१९२६।

चूँकि यूरोपीय संघके अध्यक्ष तथा कुछ यूरोपीय व्यापारियोंके साथ मेरी इस विषयपर बातचीत हुई है और उन सबने कहा है कि कोई बात नहीं कि हम अपने कर्मचारियोंको खादी पहननेकी अनुमति न दें, इसलिए पत्र-लेखक द्वारा लिखी गई बातपर मुझे सहसा विश्वास नहीं हुआ। यदि आप मुझे यह बतानेकी कृपा करें कि पत्र-लेखक द्वारा भेजी गई जानकारीमें कोई सचाई है या नहीं तो मैं आभारी होऊँगा।

हृदयसे आपका,

मेसर्स ग्रीव्ज कॉटन व कम्पनी
फोर्ट, बम्बई

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४२२) की माइक्रोफिल्मसे।

२८४. पत्र : पुरी जिला बोर्डके उपाध्यक्षको

साबरमती आश्रम
६ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

अपने जिलेकी कन्या पाठशालाओंमें कताईके बारेमें आपने अखिल भारतीय चरखा संघके अध्यक्षको जो पत्र लिखा है, वह मुझे दिलचस्प लगा। मैं आपसे कहना चाहूँगा कि अगर आप चरखेके स्थानपर तकलियाँ चलवायें तो आप कताईके लिए मजूर रकममें से बहुत सारा पैसा बचा सकते हैं। चरखा संघने अब एक प्रामाणिक 'तकली शिक्षक' पुस्तक प्रकाशित की है, जिसे दो विशेषज्ञोंने लिखा है। इसमें तकलीके बारेमें काफी विस्तृत जानकारी और सुझाव दिये गये हैं। चरखा संघका अनुभव यह है कि तकलीपर कातना स्कूलोंके लिए सबसे ज्यादा अच्छा और प्रभावकारी है, क्योंकि स्वाभाविक है कि स्कूलोंमें लड़के और लड़कियाँ थोड़ा-सा समय ही दे सकती हैं। इसलिए तकलीपर कातनेसे कुल उत्पादन चरखेपर कताई करनेसे कहीं ज्यादा होता है। उसका कारण सिर्फ यह है कि तकलियोंपर तो एक ही समयमें सैकड़ों बच्चे कात सकते हैं और इसके लिए अतिरिक्त स्थानकी भी आवश्यकता नहीं होती। इसके अलावा, तकलीकी कीमत कुछ आने होगी, जबकि चरखेकी कीमत कुछ रुपये है तथा तकली खराब भी शायद ही कभी होती है। आपके लिए यह बेहतर होगा कि बोर्डने आपको तो जो अनुदान दिया है, उसमें से एक छोटी रकम खर्च करके अपने शिक्षकोंको अहमदाबादके स्कूलोंमें होनेवाली तकली कताईको देखनेके लिए यहाँ भेजें।

हृदयसे आपका,

उपाध्यक्ष
जिला बोर्ड, पुरी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४२३) माइक्रोफिल्मसे।

२८५. पत्र : पी० एस० एस० राम अय्यरको

साबरमती आश्रम
६ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

दुःख है कि आपका पत्र मैं इससे पहले नहीं देख सका। चरखा आपको तबतक सन्तोष नहीं दे सकेगा, जबतक कि दीन-दुःखियोंके साथ आपको उसका घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं दीखता और आप यह नहीं मानते कि यह उन्हें आर्थिक कष्टोंसे छुटकारा दिलानेका साधन है। क्या गरीबोंके लिए मेहनत करके उन्हें सहायता देनेमें कोई सन्तोष नहीं है? एक लैटिन कहावत है, जिसका अर्थ है — श्रम ही प्रार्थना है। यहाँ श्रमसे तात्पर्य है, दूसरोंके लिए किया गया श्रम।

आप जानना चाहते हैं कि प्रार्थना किससे की जाये। प्रार्थना तो सिर्फ उस सर्वशक्तिमानसे ही की जा सकती है। हम चौबीसों घंटे अपने चारों ओर मनमें आदर और भय उत्पन्न करनेवाले प्रकृतिके जो व्यापार अपनी आँखों देखते रहते हैं, अगर उससे सन्तोष न हो तो हमें अपने मनमें ऐसी आस्था जगानी चाहिए कि उस सर्वशक्तिमानका अस्तित्व है। निश्चय ही, इस सबसे परे कोई चेतन शक्ति है और वह है ईश्वर। लेकिन अगर प्रकृतिके ये प्रत्यक्ष व्यापार हममें विश्वास उत्पन्न न कर पाते हों, तब हमें मनुष्य जातिके तमाम महान् शिक्षकोंके अनुभवोंके आधारपर अपने भीतर यह विश्वास जगाना चाहिए। वही चेतना शक्ति हमारी प्रार्थना सुनती है और उसका उत्तर देती है। जब आप चरखा चला रहे हों, उस समय उस सर्वव्यापी शक्तिका ध्यान करके देखिए और फिर मुझे लिखिए कि चरखा आपको सन्तोष दे पाया है या नहीं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० एस० एस० राम अय्यर
एस० आई० रेलवे एजेंसी
कोचीन

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४२४) की माइक्रोफिल्मसे।

२८६. पत्र : राजेन्द्र प्रसादको

साबरमती आश्रम
६ अप्रैल, १९२६

प्रिय राजेन्द्र बाबू,

साथके पत्रमें अस्पृश्यतासे सम्बन्धित जो अंश चिह्नांकित है, उसे पढ़कर मुझे बताइए कि सचाई क्या है।

हृदयसे आपका,

संलग्न : १. श्रीयुत राखालचन्द्र मैती, सदाकत आश्रम, डाकघर — दीघाघाट, पटनाका पत्र

बाबू राजेन्द्र प्रसाद
मुरादपुर, पटना

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४२५) की माइक्रोफिल्मसे।

२८७. पत्र : राखालचन्द्र मैतीको

साबरमती आश्रम
६ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। सदाकत आश्रममें भोजन-व्यवस्थाके वर्गीकरणके बारेमें आपने जो-कुछ लिखा है, उससे मुझे आश्चर्य हुआ है। आपका पत्र मैं राजेन्द्र बाबूको भेज रहा हूँ। उन्हें इसका जवाब देनेको लिखा है।

मैं आपकी इस बातसे सहमत हूँ कि प्रार्थना छोटी और समझमें आने लायक होनी चाहिए और वह सीधे हृदयसे निकलनी चाहिए। प्रार्थना सर्वशक्तिमान प्रभुसे करनी चाहिए और कॉलेजों तथा ऐसी किसी भी संस्थामें प्रार्थना की जाये तो वह ऐसी हो जिसमें सब शरीक हो सकें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत राखालचन्द्र मैती
सदाकत आश्रम
डाकघर-दीघाघाट, पटना

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४२६) की माइक्रोफिल्मसे।

२८८. पत्र : वामन लक्ष्मण फड़केको

साबरमती आश्रम
मंगलवार, ६ अप्रैल, १९२६

भाई मामा,

तुम्हारा पत्र मिला। यदि आसानीसे आ सकते हो तो भले आ जाना। १० तारीखतक तो नानाभाई भी सिंहगढ़से वापस आ जायेंगे। नानाभाईके साथ हुई बातचीतके सम्बन्धमें मैंने जो पत्र लिखा है, उसे साथ लेते आना। स्वामी यहीं है। मुझे जब मिलेगा तब छगनके बारेमें पूछूंगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (जी० एन० ३८१३) की फोटो-नकलसे।

२८९. पत्र : लल्लू मोरारको

सावरमती आश्रम
मंगलवार, ६ अप्रैल, १९२६

भाई लल्लूभाई मोरार,

तुम्हारा पत्र मिला। वहाँके अनैक्यकी बात सुनकर दुःख होता है। तुममें से यदि एक व्यक्ति भी नम्र बनकर सत्यके मार्गपर चलते हुए अन्य लोगोंकी सेवामें रत हो जाये तो अन्य लोग भी अवश्यमेव उसके आसपास इकट्ठे हो जायेंगे। यहाँसे अभी तुरन्त किसीको भेजा जा सके, ऐसी स्थिति नहीं है; लेकिन तुम्हें यदि मुझसे कुछ पूछना हो तो पूछना। तुम 'नवजीवन' मँगाते हो न? न मँगवाते हो तो उसके ग्राहक बनो, यह अभीष्ट है। इसका वार्षिक चन्दा १० शिलिंग है।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९४२७) की माइक्रोफिल्मसे।

२९०. पत्र : खंडेरियाको

आश्रम
६ अप्रैल, १९२६

भाई खंडेरिया,

. . .[1] आश्रमके अथवा अन्य जो लोग यहाँ-वहाँ कहीं भी भोजन करते हों, उन्हें यदि तुम अलग पंक्तिमें बिठाकर जिमाते हो तो इसमें उन्हें दुःख नही मानना चाहिए। उन्हें इसमें बुरा लगता हो तो भी उन्हें अलग बिठाकर खिलानेमें मैं कोई दोष नहीं देखता। अन्त्यज चाहे जो खाते-पीते हों, लेकिन हम अन्य वर्णोंके साथ उनके खानपानका विचार किये बिना, जिस तरहका व्यवहार करते हैं उसी तरहका व्यवहार हमें अन्त्यजोंके साथ भी करना चाहिए।

अन्त्यजशाला
लखतर

गुजराती प्रति (एस० एन० १९८९६) की माइक्रोफिल्मसे।

२९१. पत्र : जी० जी० जोगको

साबरमती आश्रम
७ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपने जो दिलचस्प कतरन भेजी है, वह मुझे बिलकुल प्रलापपूर्ण मालूम होती है। उन दिनों ३३ शाकाहारी उपाहारगृह थे। इस समय कितने हैं, मुझे नही मालूम। और जहाँतक मैं जानता हूँ, लेखकने जिन व्यंजनोंका वर्णन किया है, वे ही व्यंजन लोग बड़े चावसे खाया करते थे और उससे उन्हें लाभ भी होता था। लेकिन यह सब तो मन मानेकी बात है। उन्होंने बड़े उत्साहसे जिन चटनियोंका वर्णन किया है, उनका खयाल करके ही मेरा तो मन खराब हो जाता है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत जी० जी० जोग
मोतीमहल, कानपुर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४३२) की माइक्रोफिल्मसे।

१. साधन-सूत्रमें ऐसा ही है।

२९२. पत्र : एक मित्रको

सावरमती आश्रम
७ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र पाकर बड़ी खुशी हुई। इस महीनेकी २१ तारीखतक मैं सावरमती आश्रममें हूँ। वैसे तो सोमवारके अलावा और सब दिन शामके ४ बजे मुझसे मुलाकात हो सकती है; लेकिन, आप चाहें तो इन दिनोंमें से किसी भी दिन कोई और समय भी मुलाकातके लिए दे सकता हूँ। २२ के बाद मुझसे मसूरीमें मिल सकते हैं। इसलिए, आप जैसा ठीक समझें, खुद ही तय कर लें।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४३३) की माइक्रोफिल्मसे।

२९३. पत्र : अमृतलाल नानावटी और अन्य लोगोंको

सावरमती आश्रम
बुधवार, ७ अप्रैल, १९२६

भाईश्री ५ अमृतलाल और अन्य भाई,

आपका पत्र मिला। मैं जैसे किसी भी कार्यमें अपनी ओरसे नहीं पड़ता, इसी तरह चाहे जिस कार्यमें पड़ना भी मैं उचित नहीं समझता। पालीताणाके बारेमें मैं जानता हूँ कि संघके नायक कुछ आन्दोलन कर रहे हैं। किन्तु मैं उसमें कैसे बीचमें पड़ सकता हूँ? मेरी रायमें आपको भी जो करना हो सो इन नायकोंकी मार्फत ही करना चाहिए। यह कार्य ऐसा नहीं है कि जो श्रावक चाहे वही अपनी इच्छासे सत्याग्रह शुरू कर दे। आपको ऐसा लगे कि सत्याग्रहका समय आ गया है तो भी आपको यह काम संघकी मार्फत ही करना चाहिए। कुछ समय पहले उसके बारेमें सलाहके लिए मेरे पास कुछ सज्जन आये थे; उन्हें मैंने यह सब बात समझाई थी।

गुजराती प्रति (एस० एन० १०८७१) की माइक्रोफिल्मसे।

२९४. पत्र : सोमनाथ पंचालको

आश्रम
७ अप्रैल, १९२६

भाई सोमनाथ,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम उस वृद्ध व्यक्तिकी जैसी हालत बताते हो, वैसे व्यक्तिकी आर्थिक मदद करना मैं अवश्य उचित समझता हूँ। जो अपंग हो, उसका पोषण करना समाजका धर्म है। जिसके हाथ-पैर चलते हैं उससे काम लिये बिना उसका पोषण करना मैं अधर्म समझता हूँ।

संयम धर्मका पालन यदि एक ही घरमें रहनेके कारण न हो सकता हो तो अलग रहना आवश्यक है। उसका पालन न होता हो, फिर भी जबरदस्ती एक ही घरमें रहना धर्म नहीं कहा जा सकता।

गुजराती प्रति (एस० एन० १०८७२) की माइक्रोफिल्मसे।

२९५. पत्र : प्राणजीवन के० देसाईको

साबरमती आश्रम
बुधवार, ७ अप्रैल, १९२६

भाईश्री ५ प्राणजीवन,

जो दम्पती, जैसा कि आप लिखते हैं, उस प्रमाणमें विषयासक्त होकर व्यवहार करते हैं, वे स्त्री-पुरुषके धर्मका पालन नहीं करते। वे पशुसे भी बदतर हैं, ऐसा कहते हुए मुझे तनिक भी संकोच नही होता। बारह-तेरह वर्षकी बालिका स्त्री-धर्मका पालन करनेमें बिलकुल असमर्थ है, उसके साथ विषय-व्यवहार रखनेवाला व्यक्ति घोर पाप करता है। रजस्वला स्त्रीके सम्बन्धमें आप जो लिखते हैं, उस बातसे मैं तो परिचित ही न था। चार दिनोंके बाद पुरुषको उसके साथ रहना ही चाहिए, ऐसे धर्मको मैं स्वीकार नही कर सकता। जबतक स्राव जारी रहता है, तबतक मैं पतिके लिए उसका स्पर्श त्याज्य समझता हूँ। स्राव बन्द होनेके बाद दोनोंको प्रजा-प्राप्तिकी इच्छा हो और वे मिलें तो मैं इसमें दोष नही मानता।

मो० क० गांधी

गुजराती पत्र (एस० एन० १२१८४) की फोटो-नकलसे।

२९६. पत्र : मणिलाल गांधीको

साबरमती आश्रम
७ अप्रैल, १९२६

चि० मणिलाल,

तुम्हारे दो पत्र मुझे सीधे मिले। तुम्हें पत्र लिखनेके बाद तुम्हारी ओरसे देशबन्धु स्मारकके लिए पैसे मिले थे। तुम्हें उसकी रसीद नहीं मिली यह आश्चर्यकी बात है। बहुत करके मैं रसीद प्राप्त करके इसके साथ भेज दूंगा। इससे मालूम होगा कि कितने पैसे मिले हैं।

श्री एन्ड्रयूजको अब यहाँ आ जाना चाहिए। लेकिन, उनके रवाना होनेका तार अभी मैंने देखा नहीं है। उनकी मेहनतकी तो कोई सीमा नहीं है। तुम्हें एक पत्र मैंने चि० रामदासकी मार्फत भी भेजा है। मैं उसके उत्तरकी राह देखूंगा। हो सके तो तार भेजना। शान्तिसे कहना कि पत्र लिखे। उसे मैंने एक पत्र लिखा है; उसका उसने उत्तर नहीं दिया। क्या किसी भी तरह उसका दमा मिट नहीं सकता है? सब नौकरोंने तुमसे अधिक वेतनकी माँग की थी, उसका क्या हुआ? रामदास थोड़े दिन रहकर अभी-अभी अमरेली गया है। देवदास देवलाली में है। वह मथुरादासकी देखभालमें लगा हुआ है, लेकिन स्वयं कुछ बीमार पड़ गया है। चिन्ताका कोई कारण नहीं है।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९४२८) की माइक्रोफिल्मसे।

२९७. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

साबरमती आश्रम
बुधवार, ७ अप्रैल, १९२६

चि० मथुरादास,

तुम्हारा पत्र मिला। देवदासके पत्रमें प्यारेलाल अथवा सुरेन्द्रको भेजनेकी खास माँग की गई है। इसलिए आज प्यारेलालको भेज रहा हूँ। मेरी अपनी सलाह तो यह है कि वहाँ राजगोपालाचारीके आनेके बाद देवदास यहाँ आ जाये और फिलहाल तुम्हारे पास प्यारेलाल रहे। तुम्हें प्यारेलाल अनुकूल आयेगा अथवा नहीं, यह तो तुम ही बता सकते हो। पंचगनीके बारेमें सर प्रभाशंकरको पत्र लिखा है। उसका उत्तर आज-कलमें आना चाहिए।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९४२९) की माइक्रोफिल्मसे।

२९८. पत्र : माणेकलालको

साबरमती आश्रम
बुधवार, ७ अप्रैल, १९२६

चि० माणेकलाल,

राजकोटके घरमें ब्रजलालके हिस्सेके किरायेके बारेमें मैंने चिरंजीव आनन्दलाल को लिखा था। उसका जो उत्तर मिला है, उसे रख रहा हूँ।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९४३०) की फोटो-नकलसे।

२९९. पत्र : देवदास गांधीको

साबरमती आश्रम
बुधवार, ७ अप्रैल, १९२६

चि० देवदास,

तुम्हारा पत्र मिला। ऐसी बीमारीकी खबर यदि तुमने मुझे उसके होते ही तुरन्त दे दी होती तो कितना अच्छा होता? छिपानेकी कोई जरूरत न थी। मैंने यह बहुत बार अनुभव किया है कि मेरे प्रति लोगोंकी ऐसी झूठी दया वस्तुतः निर्दयता सिद्ध होती है। कमलाकी बीमारी बहुत आसानीसे दूर हो सकती है। उसके लिए उपवास-जैसी और कोई दवा नहीं है। उपवास करने, एनीमा लेने और खूब पानी पीनेसे बीमारी तुरन्त चली जायेगी और भूख वापस आयेगी। भूखा रहने या उपवास करनेसे रोगी ज्यादा कमजोर हो जाता है, इस बातको तो मैंने कभी नहीं माना। यदि छाछ भी लेनी हो तो उसमें से मक्खन बिलकुल निकाल देना चाहिए। दही तो नहीं ही दिया जा सकता। चावल व्यर्थका बोझ है। मुझे याद है कि १८९६ में मुझे जबर्दस्त पोलिया हुआ था। उस समय मणिशंकर वैद्यकी दवामें ही मेरा विश्वास था। उन्होंने मुझे कोई क्षारवाली दवा दी थी। . . .[1] मुख्य बात तो खुराक बन्द करना ही थी। उन्होंने मुझे कोई दस दिनतक दूध, छाछ या भात कुछ भी नहीं लेने दिया। ये दस दिन मैंने केवल हरे फल यथा नारंगी, सन्तरा, अंगूर और गन्ना चूसकर काटे। चीनी बन्द थी। मुझे एक भी दिन शय्यावश नहीं होना पड़ा और हर समय मैं अपना काम करता रहा। इस समय मैं अपने दक्षिण आफ्रिकाके कामके लिए काफी घूम-फिर रहा था। मेरी सलाह है कि तुम्हें यहाँ आ जाना चाहिए। उपचार करके तुरंत स्वस्थ हो सकोगे। वहाँ जबतक राजगोपालाचारी रहें, तबतक रहो। एक-दो दिन प्यारेलालके साथ बातें करनेमें और प्यारेलालको कामसे

१. साधन-सूत्रमें यहाँ जगह खाली है।

अवगत करानेके लिए व्यतीत करना चाहो तो करना। बा को मैंने तो खबर नहीं दी, लेकिन उसे मालूम हो गया, इसलिए बा मुझसे कह रही है कि मैं तुम्हें तुरन्त बुला लूं। राजगोपालाचारीने भी बा से यही बात कही जान पड़ती है। तुम अपना निर्णय मुझे तुरन्त बताना।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९४३१) की फोटो-नकलसे।

३००. पत्र : रुस्तमजी डी० बाटलीवालाको

आश्रम
७ अप्रैल, १९२६

भाईश्री रुस्तमजी,

आपका पत्र मिला। उसमें दी गई हकीकतके अनुसार तो आपको जो दोष दिखाई दिये, उन्हें जाहिर करनेका आपको अधिकार था। क्लबमें बीड़ी पीना खानगी बात नहीं कही जा सकती। इसलिए आप जो कहते हैं, उसपर से तो मैं माफीका कोई कारण नहीं देखता।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

श्री रुस्तमजी डी० बाटलीवाला
हिल रोड
बांदरा, बम्बई

गुजराती पत्र (एस० एन० १९८९७) की माइक्रोफिल्मसे।

३०१. पत्र : बेचर भाणजीको

७ अप्रैल, १९२६

भाईश्री बेचर भाणजी,

आपका पत्र मिला। मुझे नहीं लगता कि इससे पहलेके आपके लिखे कुछ पत्र मेरे पास हैं। आपको उत्तर नहीं मिला, यह आश्चर्यकी बात है। अपने अन्तिम पत्रमें आपने जो प्रश्न उठाये हैं मेरी समझके अनुसार उनका उत्तर यह है।

हरिश्चन्द्र और शृगालशा सेठका आशय यह है कि धर्मकी खातिर हमें अपने प्रियसे-प्रिय जनोंका त्याग करना चाहिए। उनका नाश हो जाये तो भी धर्मका त्याग नहीं करना चाहिए। दोनों किस्से ऐतिहासिक हैं, ऐसा मानना आवश्यक नहीं है, लेकिन ऐसा होना सम्भव है। जहाँ राग-द्वेष हो वहाँ, भगवत्ता नहीं हो सकती, इस सिद्धान्तको ध्यानमें रखकर ही कथाका अर्थ करना चाहिए। नीतिके चौकठेमें

जो कथा नहीं बैठती उसका हमें त्याग करना चाहिए। कथाको सही साबित करनेके लिए नीतिका त्याग नहीं किया जा सकता।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (एस० एन० १९८९८) की माइक्रोफिल्मसे।

३०२. पत्र : एक विद्यार्थीको

साबरमती आश्रम
बुधवार, ७ अप्रैल, १९२६

भाई . . .[१]

तुम्हारा पत्र मिला। उससे मैं यह समझा हूँ कि तुमने अपनी स्त्रीके साथ बिलकुल भी भोग नहीं किया। तुम [उसके साथ] एकान्तमें कभी नहीं रहे। फिर भी वह सगर्भा है, ऐसी तुम्हें आशंका है और इससे तुम चिन्तामें पड़ गये हो। लेकिन इसमें मैं तो चिन्ताका कोई कारण नहीं देखता। यदि तुम्हारी स्त्री गर्भवती है तो तुम उसका त्याग कर सकते हो और वह भी उसका तिरस्कार करके नहीं बल्कि दयाभावसे। जिस पुरुषके साथ उसने संग किया है अगर उसके साथ वह रह सकती है तो रहे और यदि वह पुरुष विवाहित हो तो वह अपने माँ-बापके यहाँ रहे। तुम्हें उसके माँ-बापको विनयके साथ किन्तु दृढ़तापूर्वक यह खबर दे देनी चाहिए।

गुजराती प्रति (एस० एन० १०८५३अ) की माइक्रोफिल्मसे।

३०३. शंका-समाधान

आप कहते हैं, स्वराज्य या तो खूनी संघर्ष के पुराने और बुरे रास्तेसे प्राप्त हो सकता है या फिर अपने गाँवोंकी झोंपड़ियोंमें, हम जितना कात सकें, उतना सूत कातनेके महात्माजी द्वारा सुझाये नये और अच्छे रास्तेसे मिल सकता है। यह तो लोगोंपर एक खूबसूरत फिकरेसे भ्रम पैदा करनेका ही एक नमूना है। आपने या दूसरे सम्बन्धित लोगोंने बराबर कातते जानेका यह कार्यक्रम (१) सम्भव है, (२) वांछनीय है, और (३) यह कारगर भी साबित होगा, इस सिद्धान्तको दोहराते जानेके अलावा और क्या कदम उठाये हैं, जिससे लोगोंमें विश्वास पैदा हो? आजतक मेरे देखनेमें तो ऐसा कोई भी सीधा-सादा, समझमें आने लायक और पर्याप्त तर्क-सम्मत वक्तव्य नहीं आया है जिसमें ऐसी

१. नाम छोड़ दिया गया है।

शंकाओं और प्रश्नोंके उत्तर मिलते हों कि (१) लगान और राजस्व-सम्बन्धी कानूनोंको देखते हुए आवश्यक रुईको देशके भीतर और सही लोगोंके हाथोंमें रोक रखना क्या सम्भव है? (२) देशमें जो दूसरे उद्योग विकसित हुए हैं उनपर पड़नेवाले प्रभावको देखते हुए ऐसा करना कहाँतक और किस तरह वांछनीय है? और (३) क्या यह पुरअसर होगा? . . . मुझे केवल एक बार इस सिद्धान्तके मूल प्रतिपादक अर्थात् महात्माजीसे इस विषयमें कुछ पूछनेका अवसर मिला और उस अवसरपर भी मैं केवल इतना ही पूछ पाया कि क्या यह सम्भव है और उन्होंने बस इतना कहकर ही सन्तोष मान लिया कि "हाँ, यह सम्भव है।". . .[1]

ऊपरका अंश मौलाना मुहम्मद अलीको लिखे और 'कॉमरेड'में प्रकाशित किये गये बाबू भगवानदासके एक तथ्यपूर्ण पत्रसे उद्धृत किया गया है। यह पत्र एक बहुत पहलेके अंकमें (गत १८ दिसम्बरके अंकमें) प्रकाशित हुआ था, किन्तु खेदके साथ कहना पड़ता है कि उसे मैंने इसी सप्ताह देखा। आरम्भमें ही मैं यह बता दूँ कि मुझे बाबू भगवानदास द्वारा उल्लिखित बातचीत याद नहीं है। मेरे लिए तो राजनीतिक दुनियामें कोई भी चीज चरखेके बराबर महत्त्व नहीं रखती। मुझे ऐसे बहुत-से प्रसंग याद हैं जब मैंने अपने आर्थिक या राजनीतिक जीवनके केन्द्र-बिन्दु अर्थात् चरखेपर चर्चा करनेके लिए दूसरे मामलोंको मुल्तवी कर दिया है। जब मैं बाबू भगवानदासका अतिथि था, उस समय उनके पूछे प्रश्नका चाहे जो हश्र हुआ हो लेकिन उनके उठाये मूल प्रश्नोंके उत्तर अवश्य दिये जाने चाहिए। चरखा-कार्यक्रम सम्भव है, यह बात तो दिन-दिन अधिकाधिक उजागर होती जा रही है। जो बहुत-सी बातें देखनेमें असम्भव लगती हैं — जैसे हिन्दू-मुस्लिम एकता, आदि — उनमें एक चरखा कार्यक्रम ही सम्भव दिखाई दे रहा है। इसका प्रमाण तमिलनाड, आन्ध्र, कर्नाटक, पंजाब, बिहार, बंगाल आदिमें कताई-संस्थाओंकी बढ़ती हुई संख्या है, और अगर इन संस्थाओंकी संख्या इससे अधिक नहीं हो पाई है तो उसका कारण यह है कि कार्यकर्त्ता बहुत कम हैं। खुद इस कार्यक्रममें ऐसा कुछ नहीं है जिससे यह सम्भव न हो सके। इससे पहले लोगोंने यह काम अत्यन्त सफलतापूर्वक किया है। आज भी करोड़ों लोग चरखा चला सकते हैं, उनके पास इसके लिए पर्याप्त अवकाश है और उन्हें एक गृह-उद्योगकी आवश्यकता भी है।

यह वांछनीय है, यह बात तो इसी तथ्यसे साबित की जा सकती है कि यह धन्धा सात लाख गाँववाले इस विशाल देशके लिए सबसे अधिक उपयुक्त है।

यह तो कोई भी निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि यह कार्यक्रम कारगर होगा या नहीं। अनेक प्रान्तोंमें जो अनुभव प्राप्त हो रहे हैं, उनसे अगर ऐसा निष्कर्ष निकाला जा सकता है तो ऐसा कहनेमें कोई हर्ज नहीं होना चाहिए कि बहुत सम्भावना इसी बातकी है कि यह कार्यक्रम कारगर साबित होगा और यह बात तो

१. इस पत्रके कुछ अंश और वाक्य छोड़ दिये गये हैं।

बेहिचक कही जा सकती है कि तत्सम्बन्धी अर्थात् रोजगार देने और गरीबी दूर करनेके उद्देश्यमें अबतक कोई भी दूसरा उद्योग उतना कारगर साबित नही हुआ है, जितना कि चरखा-उद्योग।

बाबू भगवानदासने लगान और राजस्व-सम्बन्धी कानूनोंके प्रतिकूल प्रभावका उल्लेख किया है। इस तरह उन्होंने उस एकमात्र राष्ट्रीय उद्योगको जो आजसे एक सदी पूर्व भारतीय किसानोंका शक्ति-स्तम्भ था, पुनः प्रतिष्ठित करनेके मार्गकी कठिनाई बताई है, लेकिन वे यह नही साबित कर पाये हैं कि उसे पुनः प्रतिष्ठित करना असम्भव है। लगान और राजस्व-सम्बन्धी कानून अपरिवर्तनीय नही हैं। जिस हदतक वे कताई उद्योगके मार्गमें बाधक हैं, उस हदतक उन्हें बदलना ही पड़ेगा। इसपर कहा जा सकता है कि "स्वराज्यके बिना तो उन्हें बदला नही जा सकता"। इसका उत्तर यह है कि इन कानूनोके बावजूद कताई-कार्यका सगठन किये बिना स्वराज्य नही मिल सकता। कारण, स्वराज्य प्राप्तिके लिए संघर्ष करनेका मतलब ही कठिनाइयोसे, चाहे वे जितनी भी बड़ी हों, संघर्ष करना है। हिंसा इस संघर्षका जाना-माना किन्तु बर्बर तरीका है। कताई-कार्यका संगठन करना स्वराज्यके लिए संघर्ष करनेका नैतिक तरीका है। इस कार्यका सगठन करना सर्व-साधारणको संगठित करनेका सबसे आसान और कम खर्च तरीका है और अगर रुईका निर्यात हजारों मील दूर किया जा सकता है और वहाँसे कतकर वह सूतके रूपमें बिक्रीके लिए पुनः उन्ही निर्यातकोके यहाँ आ सकती है तो फिर उसे भारतके अन्दर ही उत्पादनके स्थानसे कुछ मील दूर जहाँ उसकी जरूरत हो, वहाँ ले जानेमें निश्चय ही कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। चावल पैदा न करनेवाले प्रान्तको चावल पैदा करनेवाले प्रान्तसे चावल मँगानेमें तो कोई कठिनाई नही होती। फिर रुई एक स्थानसे दूसरे स्थानको ले जानेमें कोई कठिनाई क्यो होनी चाहिए? यह काम आज भी किया जा रहा है। बिहारको वर्धा या कानपुरसे रुई मँगवानी पड़ती है।

लेकिन फिर बाबू भगवानदास कहते हैं कि "देशमें जो दूसरे उद्योग विकसित हुए हैं उनपर पड़नेवाले प्रभावको देखते हुए" ऐसा करना अवांछनीय हो सकता है। ऐसे कौन-से दूसरे उद्योग हैं? और अगर उनपर प्रतिकूल प्रभाव भी पड़ता है तो क्या इसी कारणसे एक ऐसे उद्योगको बढ़ानेका प्रयत्न नही करना चाहिए जो राष्ट्रीय जीवनके लिए फेफड़ेकी तरह जरूरी है? क्या हमें इसी वजहसे पूर्ण मद्यनिषेधके लिए काम करनेसे जी चुराना चाहिए कि जमे-जमाये शराबके कारखानोंका उससे नुकसान होगा? या कि किसी सुधारकको लोगोंसे अफीम खानेकी आदत छोड़नेको कहनेमे इस बातकी बाधा माननी चाहिए कि उससे अफीम-पैदा करनेवालोका नुकसान होगा? बाबू भगवानदासने चम्पारनके उस किसानका उदाहरण दिया है, जो अपने लिए जरूरी अन्न भी अपने पास नही रख पाया था। ऐसा उसने इस कारण किया कि उसके पास अपनी जरूरत पूरी करनेके लिए काफी साधन नही थे। अगर वह कातता होता या करका बोझ हलका होता तो वह अपनी जरूरतके लायक काफी अन्न अपने पास रख सकता था। नील पैदा करनेकी बाध्यता समाप्त हो जानेसे उसे कुछ राहत मिल गई।

कताईसे अधिक लाभदायक धन्धा न मिलनेतक यदि वह अपने खाली समयमें (जो उसके पास काफी होता है) सूत काते तो वह अपनी अवस्थामें और भी सुधार कर सकता है। लेकिन जबतक शिक्षित वर्गके लोग कताईका फैशन नहीं चलाते और उसे इस बातका विश्वास नहीं दिला देते कि चरखा कुछ दिनोंका तमाशा-मात्र नहीं है तबतक वह यह काम नहीं करेगा।

लेकिन बाबू भगवानदास आगे कहते हैं:

> अगर कातनेका कार्यक्रम इतना आसान है, इतना वांछनीय और इतना कारगर है तो आखिरकार कुछ कारण तो होगा जिससे तीस करोड़ लोग इसे तुरन्त अपना नहीं लेते। क्या कारण है कि कांग्रेसके सदस्योंकी संख्या आज सिर्फ नौ हजारसे कुछ अधिक रह गई है?

निश्चय ही उन्हें ऐसे बहुत-से "सम्भव, वांछनीय और कारगर" कामोंकी जानकारी अवश्य होगी, जो सिर्फ इसलिए नहीं किये जा रहे हैं कि इच्छा और प्रयत्नका अभाव है। सबका शिक्षित होना "सम्भव, वांछनीय और कारगर" चीज है, फिर भी लोग इसमें तुरन्त प्रवृत्त नहीं हो जाते। लोगोंको शिक्षा प्राप्त करनेकी आवश्यकता समझानेके लिए प्रशिक्षित कार्यकर्त्ताओंकी एक पूरी फौजकी-फौज लगा देनी पड़ेगी। सफाई सम्बन्धी सावधानी बरतना "सम्भव, वांछनीय और कारगर है।" लेकिन, क्या कारण है कि यह बात जैसे ही ग्रामवासियोंके ध्यानमें लाई जाती है, वे तुरन्त इसपर अमल शुरू नहीं कर देते? उत्तर बहुत सीधा-सादा है। प्रगतिकी रफ्तार बहुत धीमी है, वह रेंगकर चलती है। वह जितनी अधिक महत्त्वपूर्ण होती है, उतने ही अधिक प्रयत्न, संगठन, समय और खर्चकी अपेक्षा रखती है। वैसे तो कताईने खूब प्रगति की है, लेकिन अगर यह और ज्यादा तेजीसे प्रगति नहीं कर रही है तो उसका सबसे बड़ा कारण यह है कि सुसंस्कृत वर्गोंके लोग, जो जनताके स्वाभाविक नेता हैं, राष्ट्रीय पुनर्निर्माणकी किसी भी योजनामें चरखेके सर्वोपरि स्थानको या तो समझना नहीं चाहते या समझनेमें असमर्थ हैं। लगता है, इसकी सादगीसे ही वे हैरान हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८-४-१९२६

३०४. लेखाचित्रकी आवश्यकता

एक सज्जनने इस आशयका पत्र लिखा है कि पाठकोको तथ्योका बोध करानेके लिए आँकड़े देनेके बजाय खादीके उत्पादन और बिक्रीके उतार-चढ़ाव दिखानेवाले लेखाचित्र (चार्ट) देने चाहिए। वे उन लोगोंकी दु:शंकाओको माननेके लिए तैयार नही है जो कहते है कि खादी तो दम तोड़ रही है किन्तु साथ ही वे कहते है कि जिन लोगोंने अखिल भारतीय चरखा संघकी वार्षिक रिपोर्ट पढ़ी है वे यद्यपि ऐसी दु:शकाओंका खण्डन कर सकते है, लेकिन रिपोर्टको पढ़नेका धैर्य तो कुछ ही लोगोमें है। वे कहते हैं:

> लोग सोचते है कि जितने अधिक लोग खादी टोपी पहनेंगे, खादीका उत्पादन और बिक्री उतनी ही ज्यादा होगी। लेकिन, यह बात बराबर सच ही नहीं होती। खादी टोपी पहननेवाले सभी लोग पूरी तरह खादीकी ही पोशाक नहीं पहनते और मैंने देखा है कि बहुत-से लोग टोपीके अलावा और सब-कुछ खादीका ही पहनते है।[1] . . . .

पत्र-लेखककी बातें बहुत सही हैं। जैसे लेखाचित्र देनेकी बात पत्र-लेखकने कही है, वैसा लेखाचित्र तैयार करनेकी व्यवस्था की जा रही है। इस बीच श्री राजगोपालाचारीने तामिलनाडके सम्बन्धमें जो आँकड़े दिये हैं वे खादीकी प्रगतिकी स्पष्ट साक्षी देते है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८-४-१९२६

३०५. क्या भारत मद्यनिषेध चाहता है?

भारतमें पूर्ण मद्य-निषेधके विरोधियोंने पंजाबके वित्त आयुक्त श्री किंगके भाषणको आवश्यकतासे अधिक महत्त्व दे दिया है। खबर है कि श्री किंगने कहा कि पंजाबका स्थानीय स्वैच्छिक शराबबन्दी अधिनियम (लोकल ऑप्शन ऐक्ट), जिसको पास हुए साल-भरसे ऊपर हो गया है, पूरी तरह विफल रहा है। आयुक्त महोदयने अपने कथनके समर्थनमें निम्नलिखित तथ्य प्रस्तुत किये हैं:

कुल २०० नगरपालिकाओं, स्थानिक निकायों आदिमें से केवल १९ ने इस अधिनियमके अधीन प्राप्त होनेवाले अधिकारोकी माँग की है। इन १९ में से केवल ६ ने अधिकार माँगनेसे आगेकी कार्रवाई की है और इन ६ में भी जो जनमत-संग्रह किया गया, उसमें भाग लेनेवालोंकी संख्या नगण्य थी। उदाहरणके लिए, रावलपिंडी के ७००० मतदाताओंमें से केवल ६ ने मतदान किया। लुधियानामें पहले जनमत-संग्रहके

१. अंशतः उद्धृत।

दौरान १२,५०० मतदाताओंमें से एक भी मत देनेको नहीं आया। फिर जब दूसरी तिथि निश्चित की गई तो केवल चार व्यक्तियोंने मतदान किया। शेष चार स्थानोंमें से केवल छोटे-से तोहाना शहरमें १०५२ मतदाताओंमें से ८०२ ने पूर्ण मद्य-निषेधके पक्षमें मत दिया।

इस सबके आधारपर श्री किगने कहा कि पंजाबमें लोग पूर्ण मद्यनिषेध नहीं चाहते। ऐसा निष्कर्ष निकालना तो उसी व्यक्तिको शोभा देता जो भारत और भारतकी परिस्थितियोंसे अपरिचित होता। दुर्भाग्यवश भारतमें हालत यह है कि लोग ऐसी चीजोंके प्रति भी उदासीन रहते हैं, जिनका कि समाजके रूपमें उनसे सम्बन्ध होता है। जनमत-संग्रहके लिए अपनाये गये तरीके उनके लिए नये हैं। मतदातागण शायद इस विषयमें कुछ नहीं चाहते थे कि पूर्ण मद्य-निषेधके लिए जनमत-संग्रह किया जा रहा है। जो लोग भारतको जानते हैं वे यह भी जानते हैं कि भारतमें रहनेवाले लोगोंमें से बहुत ज्यादा लोग मद्यपान नहीं करते और मद्यपान इस्लाम और हिन्दू-धर्मके विरुद्ध है। श्री किग भी इस बातको अवश्य जानते होंगे। इसलिए उन्होंने जिस तथाकथित विफलताका उल्लेख किया है, उससे यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि पंजाब पूर्ण मद्यनिषेधके विरुद्ध है, बल्कि यह समझना चाहिए कि चूंकि पंजाबी लोग एक वर्गके रूपमें शराब आदिसे बिलकुल दूर रहते हैं, इसलिए वे उन लोगोंके लिए कोई परेशानी अनुभव नहीं करते जो इस मद्यपानके अभिशापके शिकार बनकर अपने-आपको बरबाद कर रहे हैं। वे यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि नगरपालिकाओंके आयुक्त और स्थानिक निकायोंके सदस्य सामाजिक दृष्टिकोणसे इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मामलेमें मतदाताओंके प्रति अपने कर्त्तव्योंकी अपराधपूर्ण उपेक्षा करते रहे हैं। लेकिन, इन तथ्योंके आधारपर ऐसा कहना कि पंजाब पूर्ण मद्य-निषेधके खिलाफ है, यहाँकी परिस्थितियोंसे नावाकिफ लोगों या अज्ञानी लोगोंकी आँखोंमें धूल झोंकना है। मगर दुर्भाग्यवश अधिकारियोंका तरीका ही यही है। वस्तुस्थितिको निष्पक्ष और जनताके दृष्टिकोणसे देखनेके बजाय, सरकार जिन बातोंको लेकर चलती है या वह किसी भी कीमतपर जिन तरीकोंका बचाव करना चाहती है, अधिकारीगण अपने-आपको उनका पक्ष-पोषक बना लेते हैं। यह तो एक सर्वविदित तथ्य है कि हिन्दू-लोग गाय और उसकी सन्ततिकी हत्याके खिलाफ हैं। अब मान लीजिए कि इस विषयपर उसी तरह जनमत-संग्रह किया जाता है जिस तरह पंजाबमें शराबके सम्बन्धमें किया गया और उसमें करोड़ों हिन्दू अपने मत नहीं दे पाते हैं तो इसके आधारपर क्या ऐसा कोई भी व्यक्ति, जो भारतकी परिस्थितियोंसे वाकिफ है, यह कहेगा कि हिन्दू ऐसे बूचड़खाने चाहते हैं जहाँ पवित्र गायोंकी हत्या की जाये? सचाई यह है कि यहाँके लोगोंमें अभी वह जागरूकता नहीं आ पाई है जो मनुष्यको सामाजिक अन्यायोंके प्रति अधीर बना देती है। इसमें सन्देह नहीं कि यह स्थिति बहुत दुःखद है, मगर इसमें धीरे-धीरे सुधार हो रहा है। लेकिन यह तो दुष्टतापूर्ण आचरण हुआ कि ऐसे तथ्योंको दबा दिया जाये जिनके आधारपर ऐसा निष्कर्ष निकलता हो जो उन तथ्योंके अभावमें दूसरे प्रकारके तथ्योंसे निकाले गये निष्कर्षके बिलकुल विपरीत हो। जैसा कि बड़े

हीं नरम शब्दोंमें 'मैंचेस्टर गार्जियन' ने कहा है, पूर्ण मद्यनिषेधके खिलाफ जितना अमेरिका या इंग्लैंडमें कहा जा सकता है, उसकी अपेक्षा भारतमें उसके विरोधमें कहनेको बहुत कम है, क्योंकि उक्त दोनों देशोंके तो सम्भ्रान्त लोग भी थोड़ी-बहुत पीनेमें कोई बुराई या नुकसान नहीं देखते।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८-४-१९२६

३०६. सन्देश : वकीलोंके सम्मेलनको[1]

साबरमती आश्रम
८ अप्रैल, १९२६

अध्यक्ष
स्वागत समिति
चतुर्थ मैसूर वकील-सम्मेलन,
तुमकुर

आशा है, सम्मेलनमें शामिल होनेवाले वकील चरखेके सन्देशको समझेंगे और खादीको अपनायेंगे तथा कुछ समय निष्ठापूर्वक कताईके काममें लगाकर, गरीबोंसे उन्हें जो लाभ होता है, उसके बदले उन्हें भी कुछ देंगे और अपनी आयका एक हिस्सा खादीको लोकप्रिय बनानेके उद्देश्यसे स्थापित देशबन्धु स्मारक कोषको देंगे।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४३५) की माइक्रोफिल्मसे।

३०७. पत्र : गोपालकृष्ण देवधरको

साबरमती आश्रम
८ अप्रैल, १९२६

प्रिय देवधर,

आपका पत्र मिला। मनोरमाने पिछली रात मुझसे आपके पत्रकी चर्चा की और मैंने उसे न केवल सेवासदन जानेकी छूट दी बल्कि यह भी कहा कि चूंकि वह संस्था विशेष रूपसे स्त्रियोंके लिए बनाई गई है, इसलिए वह शायद उसकी जरूरतोंको देखते हुए आश्रमकी बनिस्बत कहीं ज्यादा उपयुक्त होगी। उसने मुझसे कहा कि एक-दो दिनमें अन्तिम निर्णय करके वह मुझे सूचित करेगी। आपका पत्र उसे देकर उससे फिर बातें करूँगा। मुझे मालूम था कि वह सेवासदनमें पहले भी रह चुकी है।

१. यह सन्देश तुमकुरमें आयोजित वकीलोंके सम्मेलनको भेजा गया था।

दरअसल मैं उसको आश्रममें लेनेके लिए तैयार भी नहीं था — और किसी कारणसे नहीं तो इस कारणसे कि यहाँ आजकल बहुत ज्यादा लोग रह रहे हैं और आप जानते ही हैं कि युवतियोंकी देख-रेख करना बहुत कठिन है। लेकिन, वह आग्रह करती रही। निदान मैंने उसे श्रीमती गांधीके साथ रख दिया। कुमारी रहकर सेवाका जीवन व्यतीत करनेकी उसकी आकांक्षा मुझे बहुत रुची।

उससे बात करके आपको फिर पत्र लिखूंगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत गोपालकृष्ण देवधर
बम्बई

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४३४) की माइक्रोफिल्मसे।

३०८. आमुख

साबरमती आश्रम
८ अप्रैल, १९२६

हेमेन्द्र बाबूने मुझसे अपनी 'देशबन्धुकी जीवनी' पुस्तकका आमुख लिखनेको कहा है। दुर्भाग्यवश मैं बंगला नहीं जानता। मुझे उम्मीद थी कि इसके कुछ आवश्यक अंश मैं किसीसे पढ़वाकर सुन लूंगा, पर इसके लिए समय निकाल पानेमें मैं असमर्थ रहा। हेमेन्द्र बाबू देशबन्धुके भक्तोंमें से हैं। दिवंगत नेताके प्रति उनके मनमें कितना सम्मान तथा प्रेम था, यह मैं जानता हूँ। इसलिए मुझे इस बातमें कोई सन्देह नहीं है कि उन्होंने देशबन्धुके बारेमें जो-कुछ लिखा है, वह पठनीय होगा। देशबन्धुके समान नेक और महान् पुरुषकी स्मृतिको समय कभी नहीं मिटा सकता। जैसे-जैसे समय बीतता जायेगा, उनकी स्मृति और भी पुनीत होती जायेगी। आज देश कठिन परीक्षाकी घड़ीसे गुजर रहा है और इस समय ऐसा कोई भारतीय नहीं है जो उनके देहावसानसे उत्पन्न रिक्तताको महसूस न कर रहा हो। मेरी कामना है कि देशबन्धु जिस देशके लिए जिये और मरे, उसके प्रति हमें हमारे कर्त्तव्यका भान करानेमें हेमेन्द्र बाबूकी यह पुस्तक सहायक हो।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४३६) की फोटो-नकलसे।

३०९. पत्र : नागजीभाईको

आश्रम
८ अप्रैल, १९२६

भाई नागजीभाई,

आपका पत्र मिला। यदि आप विश्वामित्र, वसिष्ठ आदिको ऐतिहासिक पुरुष मानते हैं तो आपके किये हुए प्रश्नोंका उत्तर देना मुश्किल है। लेकिन यदि यह समझनेमें आपको दिक्कत न हो कि 'रामायण' एक धार्मिक ग्रन्थ है और विश्वामित्र तथा परशुराम आदिकी कहानियाँ रूपक हैं तो आप स्वयं ही उनका अर्थ लगा सकेंगे।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९८९९) की माइक्रोफिल्मसे।

३१०. पत्र : हरनारायणको

[८ अप्रैल, १९२६ या उसके पश्चात्][1]

आपका पत्र मिला। जिस मित्रके बारेमें आप लिखते हैं यदि वह सचमुच बचना चाहता है तो जिस स्थानमें वह है उस स्थानका उसे त्याग करना चाहिए और ऐसे धन्धेकी तलाश करनी चाहिए जिसमें स्त्रियोंके साथ उसका सम्पर्क कमसे-कम अथवा बिलकुल भी न हो। इसके सिवा, उसे ऐसा ही धन्धा चुनना चाहिए जिसमें उसका शरीर सारा दिन व्यस्त रहे एवं एकान्त तो मिले ही नहीं।

दूसरे भाईके बारेमें तो — उनमें अर्थात् पति-पत्नी दोनोंमें केवल हिम्मतकी ही आवश्यकता है। जब भी कोई उनके लिए बाँझ शब्दका प्रयोग करे, उन्हें उसे भूषण मानकर उसका स्वागत करना चाहिए। जिसे व्रतका पालन करना है, और ब्रह्मका साक्षात्कार करना है वह जगतकी निन्दासे कभी नहीं डरता।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (एस० एन० १२०९५) की माइक्रोफिल्मसे।

१. यह पत्र जिस पत्रके उत्तरमें लिखा गया है, उसपर लेखनकी तिथि चैत्र-वदी ११, ८२ दी गई है।

> **शंकाओं और प्रश्नोंके उत्तर मिलते हों कि (१) लगान और राजस्व-सम्बन्धी कानूनोंको देखते हुए आवश्यक रुईको देशके भीतर और सही लोगोंके हाथोंमें रोक रखना क्या सम्भव है? (२) देशमें जो दूसरे उद्योग विकसित हुए हैं उनपर पड़नेवाले प्रभावको देखते हुए ऐसा करना कहाँतक और किस तरह वांछनीय है? और (३) क्या यह पुरअसर होगा? . . . मुझे केवल एक बार इस सिद्धान्तके मूल प्रतिपादक अर्थात् महात्माजीसे इस विषयमें कुछ पूछनेका अवसर मिला और उस अवसरपर भी मैं केवल इतना ही पूछ पाया कि क्या यह सम्भव है और उन्होंने बस इतना कहकर ही सन्तोष मान लिया कि "हाँ, यह सम्भव है।". . .[1]**

ऊपरका अंश मौलाना मुहम्मद अलीको लिखे और 'कॉमरेड' में प्रकाशित किये गये बाबू भगवानदासके एक तथ्यपूर्ण पत्रसे उद्धृत किया गया है। यह पत्र एक बहुत पहलेके अंकमें (गत १८ दिसम्बरके अंकमें) प्रकाशित हुआ था, किन्तु खेदके साथ कहना पड़ता है कि उसे मैंने इसी सप्ताह देखा। आरम्भमें ही मैं यह बता दूं कि मुझे बाबू भगवानदास द्वारा उल्लिखित बातचीत याद नहीं है। मेरे लिए तो राजनीतिक दुनियामें कोई भी चीज चरखेके बराबर महत्त्व नहीं रखती। मुझे ऐसे बहुत-से प्रसंग याद हैं जब मैंने अपने आर्थिक या राजनीतिक जीवनके केन्द्र-बिन्दु अर्थात् चरखेपर चर्चा करनेके लिए दूसरे मामलोंको मुल्तवी कर दिया है। जब मैं बाबू भगवानदासका अतिथि था, उस समय उनके पूछे प्रश्नका चाहे जो हश्र हुआ हो लेकिन उनके उठाये मूल प्रश्नोंके उत्तर अवश्य दिये जाने चाहिए। चरखा-कार्यक्रम सम्भव है, यह बात तो दिन-दिन अधिकाधिक उजागर होती जा रही है। जो बहुत-सी बातें देखनेमें असम्भव लगती हैं — जैसे हिन्दू-मुस्लिम एकता, आदि — उनमें एक चरखा कार्यक्रम ही सम्भव दिखाई दे रहा है। इसका प्रमाण तमिलनाड, आन्ध्र, कर्नाटक, पंजाब, बिहार, बंगाल आदिमें कताई-संस्थाओंकी बढ़ती हुई संख्या है, और अगर इन संस्थाओंकी संख्या इससे अधिक नहीं हो पाई है तो उसका कारण यह है कि कार्यकर्त्ता बहुत कम हैं। खुद इस कार्यक्रममें ऐसा कुछ नहीं है जिससे यह सम्भव न हो सके। इससे पहले लोगोंने यह काम अत्यन्त सफलतापूर्वक किया है। आज भी करोड़ों लोग चरखा चला सकते हैं, उनके पास इसके लिए पर्याप्त अवकाश है और उन्हें एक गृह-उद्योगकी आवश्यकता भी है।

यह वांछनीय है, यह बात तो इसी तथ्यसे साबित की जा सकती है कि यह धन्धा सात लाख गाँववाले इस विशाल देशके लिए सबसे अधिक उपयुक्त है।

यह तो कोई भी निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि यह कार्यक्रम कारगर होगा या नहीं। अनेक प्रान्तोंमें जो अनुभव प्राप्त हो रहे हैं, उनसे अगर ऐसा निष्कर्ष निकाला जा सकता है तो ऐसा कहनेमें कोई हर्ज नहीं होना चाहिए कि बहुत सम्भावना इसी बातकी है कि यह कार्यक्रम कारगर साबित होगा और यह बात तो

१. इस पत्रके कुछ अंश और वाक्य छोड़ दिये गये हैं।

अलावा और कुछ नही सोच सकता और खादीके बिना यह काम असम्भव है। इसलिए मेरे पास तो सभी बुराइयोंका, जिनमें लोगोंको जेलोमें बन्द करनेका यह घृणित कार्य भी शामिल है, एक ही इलाज है और वह है चरखा। लेकिन मैं लोगोको समझाऊँ तो कैसे समझाऊँ कि यही सर्वोपरि उपचार है। फिर भी, इसमें मेरा विश्वास तो अखण्ड है। यह दिन-दिन बढ़ता ही जाता है। इसलिए राष्ट्रीय सप्ताहमें आश्रममें कुछ चरखे दिन-रात चलते रहते हैं। यह काम हम इस अन्ध आस्थाके साथ कर रहे हैं कि इसके माध्यमसे किसी दिन एक ऐसी शक्ति उत्पन्न होगी, जो हमें अपनी चिर-पोषित आकाक्षाको मूर्त करनेकी सामर्थ्य प्रदान करेगी।

मैं जानता हूँ कि चरखेका एक विकल्प भी है और वह है गुंडागर्दी। लेकिन, मैं तो इस कामके लिए बेकार हूँ और इससे भी बड़ी बात यह है कि इसमें मेरा विश्वास नही है और एक व्यावहारिक व्यक्तिके नाते मैं जानता हूँ कि सरकारकी गुडागर्दीके मुकाबले हमारी हुल्लड़बाजीकी कोई बिसात नही है। इसलिए मैंने सभी-कुछ छोड़कर अपना सारा दाँव चरखेपर लगा दिया है। जो लोग राष्ट्रके चतुर्दिक कष्टकी इस अनुभूतिसे व्यथित हैं, उन सबको मैं इस प्रयत्नमें हाथ बँटानेके लिए आमन्त्रित करता हूँ। सच मानिए, इसके लिए हम जितने भी कार्य-कौशल, अनुशासन और संगठन शक्तिका परिचय दे सकते हैं, सब दरकार है।

आशा है, 'फॉरवर्ड' और मेमोरियल अस्पतालका काम ठीक चल रहा होगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत शरत् बोस
कलकत्ता

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४३७) की माइक्रोफिल्मसे।

३१३. पत्र : वी० एन० एस० चारीको

साबरमती आश्रम
९ अप्रैल, १९२६

प्रिय भाई,

आपका पत्र मिला। मैंने भी छिपकलीको तिलचट्टोंपर और तिलचट्टोंको अपनेसे क्षुद्रतर प्राणियोंपर लपकते देखा है, लेकिन मेरे मनमें कभी भी ऐसी बात नही आई कि यह जो बड़े प्राणियोके छोटे प्राणियोंपर जीनेका नियम है, उसमें व्यवधान डालूं। इस आश्चर्यजनक रहस्यकी तहतक मैं पहुँच पाया हूँ, ऐसा मेरा दावा नही है। लेकिन इन्ही व्यापारोंको देखकर मैंने यह भी समझा है कि पशु-जगतका नियम मानव-जगतका नियम नही बन सकता; मनुष्यको कठिन प्रयत्नके द्वारा अपने भीतरके पशुपर विजय प्राप्त करके अपने मनुष्यत्वको अक्षुण्ण रखना है, और उसके चारों ओर

हिंसाका जो दुःखद व्यापार चलता रहता है, उसमें से उसे अहिंसाका पाठ सीखना है, इसलिए यदि मनुष्य अपनी गरिमा और मानव-जीवनके उद्देश्यको चरितार्थ करना चाहता है तो उसे इस विनाशके व्यापारसे मुँह मोड़ लेना चाहिए और अपनेसे दुर्बल प्राणियोंको मारने और खानेसे इनकार कर देना चाहिए। इस चीजको वह अपने लिए मात्र आदर्शके ही रूपमें स्वीकार कर सकता है और फिर उसकी सिद्धिके लिए दिन-प्रतिदिन प्रयत्न कर सकता है। पूर्ण सफलता तो तभी सम्भव है जब वह मोक्षको — अर्थात् उस अवस्थाको प्राप्त हो जाये जिसमें आत्मा शरीरके बन्धनोंसे मुक्त बनी रहती है।

हृदयसे आपका,

श्री बी० एन० एस० चारी
७, हाई रोड
एग्मोर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४३८) की माइक्रोफिल्मसे।

३१४. पत्र : एस० गोविन्दस्वामी अय्यरको

साबरमती आश्रम
१० अप्रैल, १९२६

प्रिय भाई,

आपका पत्र मिला। आपने जो जानकारी दी है, वह अगर सच हो तो मुझे बहुत दुःख होगा। आपने जिन सज्जनोंके नाम मुझे बताये हैं, उनके पते मैं नहीं जानता। मेरा मतलब श्री के० एन० नम्बूद्रीपाद और अगर श्री वेलु पिल्लेसे है — अगर श्री वेलु पिल्लेने भी वैसे भाषण दिये हों जैसे भाषण देनेकी बात श्री नम्बूद्रीपादके विषयमें कही जाती है। अगर आप मुझे उनके पते भेज दें तो निश्चय ही मैं पूछ-ताछ करूँगा।

आपने अपना नाम प्रकट न करनेको कहा है। मैं इसका खयाल रखूँगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एस० गोविन्दस्वामी अय्यर, बी० ए० बी० एल०
गोपी विलास
पुलीमूड
त्रिवेन्द्रम्

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४३९) की माइक्रोफिल्मसे।

३१५. पत्र : हकीम अजमलखाँको

साबरमती आश्रम
१० अप्रैल, १९२६

प्रिय हकीमजी साहब,

आपका पत्र मिला था। उर्दूमें लिखनेका आनन्द प्राप्त करनेके मोहमें पड़कर इसका जवाब देनेमें मुझे देर नहीं करनी चाहिए। आपका पत्र पढ़कर दुःख होता है। आप हताश हैं। लेकिन आपके लिए इसकी गुंजाइश कहाँ है? मैं और आप दोनों यही चाहते हैं कि हिन्दू और मुसलमान अपना यह पागलपन छोड़ दें और मित्रोंकी तरह मिल-जुलकर शान्तिपूर्वक रहें। हमें स्वराज्य स्थापनाका समारोह भी देखना ही है।

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि मसूरीमें मैं आपसे जब-तब मिलता रहूँगा। क्या आप मुझसे पहले ही वहाँ पहुँचकर थोड़ा आराम नहीं करेंगे? क्या ही अच्छा हो, अगर मैं आपसे यह वचन ले सकूँ कि आप अभी दो महीने मसूरीसे नहीं हिलेंगे — रंगपुर जानेके लिए भी नहीं।

हृदयसे आपका,

अंग्रेज़ी प्रति (एस० एन० १९४४०) की फोटो-नकलसे।

३१६. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

साबरमती आश्रम
१० अप्रैल, १९२६

प्रिय सतीश बाबू,

श्री चटर्जीने 'वेलफेयर' की एक कतरनके साथ एक पत्र भेजा है। कृपया आप बंगालके अखबारों द्वारा की गई आलोचनाका उत्तर अवश्य दीजिए और उसकी एक प्रति मेरे पास भेज दीजिए ताकि मैं 'यंग इंडिया' में उसका उपयोग कर सकूँ। अपने उत्तरकी प्रति भेजते समय साथमें अखबारोंकी कतरनें भी वापस भेज दीजिए।

आपका,

संलग्न प्रति १ (वापसीके लिए)
श्रीयुत सतीशचन्द्र दासगुप्त
कलकत्ता

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४४१) की माइक्रोफिल्मसे।

३१७. पत्र : जे० चटर्जीको

साबरमती आश्रम
१० अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। तदर्थ धन्यवाद। आपका पत्र और कतरन मैंने डॉ० रायके विशेषज्ञ सतीशबाबूको, जो सहायता डिपोकी देखरेख कर रहे हैं; भेज दी है। मैं खुद इस डिपोके बारेमें जानता हूँ और मैं आपको यह बता दूँ कि आलोचनाका उत्तर देनेमें कोई कठिनाई नहीं है। स्वयं 'वेलफेयर' में दिये गये आँकड़ोंके आधारपर उसका उत्तर भली-भाँति दिया जा सकता है। लेकिन मैं इस बातसे सहमत हूँ कि जो लोग इस डिपोको चला रहे हैं उनकी ओरसे अधिकृत तौरपर दिया गया उत्तर अधिक सन्तोषजनक होगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत जे० चटर्जी
१, जॉन्स्टनगंज
इलाहाबाद

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४४२) की माइक्रोफिल्मसे।

३१८. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

सबरमती आश्रम
१० अप्रैल, १९२६

प्रिय सतीश बाबू,

निरंजन बाबूके बारेमें लिखा आपका पत्र मिला। आपके ऊपर कोई लांछन लगानेके खयालसे मेरा पत्र[1] नहीं लिखा गया था। यह शुद्ध रूपसे पिछले महीनेके आँकड़ोंपर आधारित था जो मेरे सामने रखे गये थे। यदि शंकरलालसे बातचीत करनेके लिए तथा उन कागजातोंको देखनेके लिए मेरे पास वक्त होता, जिन्हें आपने मेरे पास भेजा है और जिनमें, जैसा कि आप कहते हैं, वह सभी जानकारी है तो मैं उसे अवश्य जान जाता। पर इस समय मैं स्वयंको जिस कठिन परिस्थितिमें पा रहा हूँ, आप उसे जानते हैं। रोजमर्राके नियमित कामोंके अलावा अन्य किसी कामके लिए मेरे पास वक्त ही नहीं रहता। इसलिए मैंने जल्दीमें बोलकर निरंजन बाबूसे

१. देखिए "पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको", २९-३-१९२६।

जानकारी भेजनेके लिए पत्र लिखा दिया था क्योंकि वे बहुत कागज पत्र देखनेकी जहमत उठाये बगैर वह जानकारी मुझे दे सकते थे। मैंने पत्र आपके नाम इसलिए लिखा था क्योंकि निरंजन बाबू उस समय आपके साथ थे और मैंने यह भी सोचा था कि जब पत्र आपको मिलेगा उस वक्त वे आपके साथ ही होंगे। अथवा यदि वे चले भी गये होंगे तो आप इस पत्रको उनके पास भेज देंगे। आपको किन-किन चीजोंकी और किस हदतक कितनी देखभाल करनी पड़ेगी और कितनी नहीं, यह मुझे बिलकुल मालूम नहीं। मेरा खयाल है कि आपको सभी बंडल प्राप्त हो गये होंगे।

निरंजन बाबूने तार भेजा है कि वे मेरे पास सारी जानकारी भेज रहे हैं। अतः मैं उनके पत्रकी प्रतीक्षा करूँगा। इस बीच क्या मैं यह मानूं कि यदि हम उत्कल-को २५० रु० प्रतिमास सितम्बरतक देते रहें तो वह आत्म-निर्भर हो जायेगा। मैंने आपके पत्रसे यही अर्थ निकाला है। और इसका अर्थ यदि ऐसा है तो यह बहुत आसान बात है और यदि इतनेसे ही उत्कल आत्म-निर्भर हो सका तो यह निश्चय ही आश्चर्यजनक रूपसे अच्छा काम होगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सतीशचन्द्र दासगुप्त
कलकत्ता।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४४३) की माइक्रोफिल्मसे।

३१९. पत्र : जगजीवनदासको

साबरमती आश्रम
शनिवार, चैत्र बदी १ [३][1] [१० अप्रैल, १९२६]

भाई श्री ५ जगजीवनदास,

आप चूंकि भ्रमणपर ही रहनेवाले हैं और कुछ अर्सेतक अमरेली नहीं पहुँचेंगे इसलिए मैंने जान-बूझकर देर की है। आज आपके द्वारा दिये गये पतेपर पाँच सौ रुपयेकी हुंडी भेज रहा हूँ।

गुजराती प्रति (एस० एन० १०८९५) की फोटो-नकलसे।

१. साधन-सूत्रमें चैत्र बदी १२ है किन्तु शनिवार चैत्र बदी १३ को था।

३२०. पत्र : गुलाबदासको

सावरमती आश्रम
शनिवार चैत्र वदी १ [३][1] [१० अप्रैल, १९२६][2]

भाई गुलाबदास,

तुम्हारा पत्र मिला। ब्रह्मचर्यका पालन तो सत्संगसे, अच्छी पुस्तकें पढ़ने और रानामका जप करनेसे ही हो सकता है। शरीर अथवा मन एक क्षणके लिए भी निठल्ला न रहे, ऐसी योजना करनी चाहिए। यदि तुम चरखेका आग्रह रखना चाहते हो तो अवश्य रखो। पिताजीको नम्रतासे समझाया जा सकता है। सरकारके साथ जिसका कोई सम्बन्ध नहीं है, ऐसा एक आयुर्वेदिक विद्यालय कलकत्तामें है लेकिन उसमें खर्च ज्यादा आता है। उसी तरह दिल्लीमें तिबिया कॉलेज है, वहाँ भी खर्च इतना ही आता है।

गुजराती प्रति (एस० एन० १०८६९) की फोटो-नकलसे।

३२१. आशाकी किरण

भाई डाह्याभाई धोलकासे लिखते हैं :[3]

यह उदाहरण अवश्य उल्लेखनीय है। जो लोग गरीब नहीं हैं वे भी शौकसे अथवा देशप्रेमसे प्रेरित होकर चरखा चलाते हैं तो यह बात स्वागत करने योग्य है। मुझे उम्मीद है कि भाई डाह्याभाई चरखेके प्रति अपना श्रद्धाभाव खोयेंगे नहीं और उसके प्रचार कार्यमें प्रगति करते रहेंगे। मुझे यह भी उम्मीद है कि रामपुर गाँवके लोग इस कार्यका आरम्भ करनेके बाद अब उसे बराबर जारी रखेंगे तथा आलोचकोंको अपने विषयमें ऐसा कहनेका अवसर नहीं देंगे कि उन्होंने आरम्भ करनेमें तो शूरता दिखाई किन्तु बादमें सुस्त साबित हुए। मुझे इतनी चेतावनी इसलिए देनी पड़ती है कि डाह्याभाईने जिस पत्रमें रामपुरकी जागृतिका उल्लेख किया है उसीमें वे यह भी लिखते हैं कि "एक भाईने अपनी इच्छासे सूत कातनेकी प्रतिज्ञा ली, उन्हें सूत कातना आता भी है और उसका अभ्यास है; यह सब होनेके बावजूद उन्होंने कातना आलस्यवश छोड़ दिया है।" हिन्दुस्तानमें ऐसे उदाहरण हर जगह मिलते हैं। लोग प्रतिज्ञा लेते समय रुककर नहीं सोचते और प्रतिज्ञा लेनेके बाद उसका

१. देखिए पिछले शीर्षककी पा० टि० ।

२. गुलाबदासके उस पत्रपर, जिसके उत्तरमें यह लिखा गया है, ६-४-१९२६ की तारीख है।

३. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इसमें पत्र-लेखकने लिखा था कि रामपुरके किसानोंने खादीका काम अपना लिया है और वे उसे उत्साहसे कर रहे हैं।

पालन नही करते। यह कोई कम दु.खकी बात नही है।, हमारे ऐसे दोषोंके कारण ही हमारी धर्म-भावना शिथिल हो गई है और हमारा देश दास हो गया है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ११-४-१९२६

३२२. गुरुकुल और खादी

श्री जमनालालजी हरिद्वारसे लिखते है:[1]

जमनालालजीकी भेजी हुई सूचीमें ४०[2] नाम है। सूचीके सब नाम तो यहाँ नही दिये जाते परन्तु उसका विश्लेषण अवश्य ध्यान देने योग्य है। उसमें प्रथम सदस्य तो गुरुकुलके आचार्य है, पाँच उपाध्याय है, और सात नये स्नातक है जिन्हें वेदालकार या विद्यालकारकी उपाधि दी गई है। फिर, पाँच चतुर्दश श्रेणीके, सात त्रयोदश श्रेणीके, चार द्वादश श्रेणीके और पाँच एकादश श्रेणीके ब्रह्मचारी है। गुरुकुलमें दो बहनें सदस्या बनी है। और दिल्लीमें ये तीन: श्रीमती विद्यावती सेठी (बी० ए०), आचार्या, कन्या गुरुकुल और दूसरी दो अध्यापिकाएँ श्रीमती सीतादेवी और श्रीमती चन्द्रावती।

पजाबके खादी निरीक्षक लिखते है:[3]

मै इन सस्थाओको बधाई देता हूँ।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ११-४-१९२६

३२३. निरामिषाहार अर्थात् अन्नाहार

मैंने 'नवजीवन'के पाठकोंसे प्रार्थना की है कि वे निरामिषाहारके लिए इससे कोई सरल शब्द सुझायें। 'निरामिषाहार' शब्द कुछ पाठकोको पसन्द नही आया है। इसके बजाय 'निर्मांसाहार' या 'अमासाहार' शब्द सुझाये गये है। ये दोनो शब्द भी अच्छे नही लगते है। जिन्हें मांस जन्मसे ही त्याज्य है, उन्हें मास शब्द अच्छा नही लगता। इसलिए उनके लिए कोई अपरिचित शब्द ही उपयुक्त रहेगा। जिस मनुष्यको किसी वस्तुसे घृणा होती है, उसे उसका नाम लेनेमें भी झिझक होती है। मास शब्द मांस न खानेवालोके लिए ऐसा ही है; वे इसीलिए उसे 'पर-

१. पत्र यहाँ नहीं दिया गया है। जमनालालजीने लिखा था कि गुरुकुलवासी खादीके कार्यमें बहुत रुचि ले रहे हैं।

२. चरखा संघके नये बने सदस्योंकी सूचीमें।

३. यहाँ इसका अनुवाद नहीं दिया गया है। पत्र-लेखकने लिखा था कि गुरुकुल मुल्तान (छावनी) में और एक अन्य स्थानमें आर्य समाज द्वारा संचालित एक अनाथालयमें कपड़ेकी जरूरत पूरी करनेके लिए खादी खरीदी जाने लगी है।

गाटी' कहते हैं। 'झाड़े जाना' प्रयोग असभ्यतापूर्ण लगता है; इसलिए उसके बजाय 'जंगल जाना' कहना अधिक उपयुक्त लगता है। अब तो इसकी जगह सभ्य भाषामें शौचका प्रयोग होने लगा है। इसी दृष्टिसे मैंने 'निरामिषाहार' शब्दका उपयोग किया था। एक भाईने इसे नापसन्द किया और 'वनस्पत्याहार' प्रयोग सुझाया है। किन्तु यह 'निरामिषाहार' से सरल नहीं जान पड़ता। इस कारण अन्य शब्दका विचार करनेपर 'अन्नाहार' ठीक लगता है। 'अन्नाहार' में दूधका समावेश नहीं होता। ठीकसे देखें तो उसमें फलाहार भी नहीं आता। किन्तु दूसरी दृष्टिसे देखें तो खाद्य-पदार्थोंमें दूध और फल आ जाते हैं। अन्तमें यदि हम किसी शब्दका प्रयोग किसी खास अर्थमें करें और उस अर्थको प्रकाशित कर दें एवं साथ ही उस शब्दमें से वह अर्थ कुछ खींचतान कर भी ध्वनित होता हो तो हमें उस शब्दका प्रयोग उस अर्थमें करनेका अधिकार मिल जाता है। इस अधिकारसे ही हम भविष्यमें 'निरामिषाहार' के बजाय और उसमें निहित अर्थमें ही 'नवजीवन' में 'अन्नाहार' शब्दका प्रयोग करेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ११-४-१९२६

३२४. गलतफहमी

मैं देखता हूँ कि मेरी कच्छकी यात्राके[1] बारेमें अभी भी लोगोंमें गलतफहमी है और भाई मानसिंह कचराभाई तथा भाई मणिलाल कोठारीको दोष दिया जा रहा है। इसलिए मैं फिरसे यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि कच्छकी यात्राका मुझे कोई पश्चात्ताप नहीं है; बल्कि इसे मैं अपने जीवनका एक मूल्यवान् अनुभव समझता हूँ। स्वागत-मण्डलने तो अपनी कोशिशमें कोई भी बात उठा नहीं रखी और इसलिए उसे लेशमात्र भी दोष नहीं दिया जाना चाहिए। जिस प्रेमका अनुभव और जिस सुविधाका उपभोग मैंने अन्य स्थानोंपर किया है उसी सुविधा और प्रेमका अनुभव कच्छमें भी किया। अनेक दिक्कतें उठाकर भी स्वागत-मण्डलने मेरे आरामके लिए मुझे हर सुविधा देनेका प्रयत्न किया। मुझे जितना आराम दिया जा सकता था उसे देनेमें उन्होंने कोई कोर-कसर नहीं रखी। मुझे मूल निमन्त्रण देनेवाले व्यक्ति भाई मानसिंह नहीं थे; और मैं जानता हूँ कि भाई मणिलालको भी इस मामलेमें बादमें शामिल होना पड़ा था। मैं कच्छ गया सो केवल अपनी इच्छासे ही। मुझे वहाँ जो दुःख हुआ वह तो केवल आध्यात्मिक था। लोगोंमें वहमोंकी जड़ें मजबूत हों तो इसमें स्वागत-मण्डलका क्या दोष? कितने ही गाँवोंमें मैंने दंभ और ढोंगके दर्शन किये, वह भी मेरे लिए कोई नया अनुभव न था। हिन्दू-धर्ममें मैं जहाँ-जहाँ धर्मान्धता देखता हूँ वहाँसे भाग खड़ा होना मेरे स्वभावके विपरीत है। धर्मान्धको भी प्रेमपूर्वक समझाना मैं अपना धर्म समझता हूँ। इसलिए अपने कच्छके प्रवासके लिए आज मेरे मनमें

१. देखिए खण्ड २८, पृष्ठ ४२८-३३ और ४८६-८९।

प्रसन्नताको छोड़कर अन्य कोई भाव नही है। मैं अपनी इस यात्राको निष्फल मानता ही नही हूँ। अन्य स्थानोंकी भाँति मैंने कच्छमें भी त्यागी सेवक देखे। उनकी सेवाके स्थानोको देखना भी मेरे लिए आनन्दकी बात थी। जितना मैं सोचता था उतना चन्दा इकट्ठा नही हुआ, यह कोई शिकायतका कारण नही हो सकता। कच्छी भाइयोसे मुझे अपने कार्योंमें उदार सहायता मिली है। हमेशा मनुष्य जितना सोचता है यदि उतना न हो तो इसमें निराश होनेकी क्या बात है? मुझे जो निराशा हुई वह इतनी ही है कि अभी हिन्दू लोग अस्पृश्यताके पापको पुण्य मानते हैं। लोगोके कठोर हृदयोको कोमल बनानेका काम स्वागत-मण्डलका न था; यह काम तो मेरा था। इस कामके लिए ही कार्यकर्त्ता मुझे अपने-अपने स्थानोपर ले जाते हैं। यदि लोगोके हृदय नहीं पिघले हैं तो उसकी शिकायत मुझे अपने आपसे ही है। इसलिए इस निराशाका कारण तो मैं खुद ही सिद्ध होता हूँ। लेकिन मैं इतना तो भोला नहीं हूँ कि खुद अपनेसे ही शिकायत करूँ? मेरी शिकायत तो ईश्वरसे है। उसने मुझे ऐसा अशक्त क्यों बनाया है, उसने मेरी वाणीमे इतनी शक्ति क्यो नही दी कि उससे लोगोके हृदय द्रवित हो उठते। हिन्दू अस्पृश्यताको न छोड़ें, हिन्दू मुसलमान परस्पर लड़ें, सारे भारतीय खादी न पहनें तो उसके लिए मैं किसको दोष दूं? हिन्दू-धर्ममें इसके लिए यही एक उपाय है।

देवोंपर जब भी सकट आये उन्होंने अन्तर्यामीका
स्मरण किया,
और पृथ्वीको धारण करनेवाले नरसीके नाथने उनके
संकटको दूर किया।

विश्वामित्रने स्वयं ब्रह्मर्षि बननेके लिए तपश्चर्या की, पार्वतीने शिव-समान पति पानेके लिए तपस्या की। तात्पर्य यह कि जो लोग देशहित अथवा धर्महितको साधना चाहते हैं उन्हें तपश्चर्या करके ही सिद्धि प्राप्त करनी होगी, लोगोके दोष बताकर नहीं। कच्छकी यात्राके प्रति मेरे मनमें कोई निराशा नही है, इतना ही नही, अपितु कच्छ छोड़ते समय मैंने जो वचन दिया है उसके अनुसार यदि कच्छके स्वयसेवक अपना कार्य करते जायेंगे और वहाँ मुझे फिर बुलाना चाहेंगे और यदि मुझे अवकाश होगा तो मैं वहाँ फिर जरूर जाऊँगा और ऐसे जो भी इलाके पिछली बार रह गये जहाँ पहुँचना कठिन था, वहाँ जाऊँगा तथा जहाँ-जहाँ गया था वहाँके भाई-बहनोसे उनके कामका हिसाब मागूँगा।

[गुजरातीसे.]

नवजीवन, ११-४-१९२६

३२५. पत्र : एस० नागसुन्दरम्को[1]

साबरमती आश्रम
११ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपने जिस विषयका उल्लेख किया, उसपर 'यंग इंडिया' में लिखना मेरे लिए ठीक नही होगा। १९२१की घटनाके बारेमें मुझे जो-कुछ कहना था सब कह चुका हूँ। मैं कभी भी समझौता-विरोधी मनःस्थितिमें नही होता। वाइसराय महोदयने कभी भी कोई ऐसा प्रस्ताव सामने नही रखा जो किसी आत्म-सम्मानी व्यक्तिको स्वीकार हो सकता था। जब मैंने अली बन्धुओंको "सफाई"[2] के नामसे विख्यात उस कागजपर हस्ताक्षर करनेकी सलाह दी तब वास्तवमें मैं कमजोरी दिखानेकी स्थितिके अत्यन्त निकट पहुँच गया था। लेकिन, मुझे उसका दुःख नही है। उस "सफाई" से अली बन्धुओंको और राष्ट्रको बड़ा लाभ हुआ। और जब उनपर मुकदमा चला तब वह चीज सरकारके लिए जितनी शर्मनाक थी, दोनो भाइयोंके लिए उतनी ही सम्मानजनक थी।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एस० नागसुन्दरम्
पहली मंजिल, लक्ष्मीनिवास बिल्डिंग
किंग्स सर्किलके पास, माटुंगा (बम्बई)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४४४) की माइक्रोफिल्मसे।

१. यह एस० नागसुन्दरम्के उस पत्रके उत्तरमें लिखा गया था, जिसमें उन्होंने गांधीजीसे ३ अप्रैलके इंडियन सोशल रिफॉर्मरमें प्रकाशित "द चेंज ऑफ वाइसराय" शीर्षक लेखका उत्तर देनेका अनुरोध किया था। लेखका पहला अनुच्छेद इस प्रकार था: "आज लॉर्ड रीडिंग वाइसराय पदका कार्य-भार लॉर्ड इर्विनको सौंप रहे हैं। आज देशके राजनीतिक वातावरणमें पूरी शान्ति है, जब कि जिस समय लॉर्ड रीडिंग आये थे, उस समय बहुत अशान्ति छाई हुई थी। असहयोग आन्दोलन तेजीसे अपने चरम-बिन्दुकी ओर बढ़ता जा रहा था। वाइसराय पदका कार्य-भार सँभालनेके बाद कई महीनेतक लॉर्ड रीडिंग महात्मा गांधीसे समझौता करनेकी कोशिश करते रहे, लेकिन गांधीजी समझौता-विरोधी मनःस्थितिमें थे। अली बन्धुओंपर मुकदमा चलनेके बाद तो समझौता असम्भव ही हो गया। कुछ महीनेमें युवराज इस देशकी यात्रा करनेवाले थे, और महाविभवकी यह यात्रा शान्तिपूर्वक सम्पन्न हो जाये, इस उद्देश्यसे कमसे-कम एक अस्थायी समझौता भी करनेके लिए वाइसराय महोदयने एड़ी-चोटीका जोर लगा दिया। उन्होंने राजनीतिक प्रगतिके अगले कदमपर विचार करनेके लिए गोलमेज कांफ्रेंसका प्रस्ताव रखा और यद्यपि स्वर्गीय चित्तरंजन दासने प्रस्ताव स्वीकार कर लेनेकी सलाह दी, श्री गांधीने प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया और इस तरह एक बहुत बड़ा मौका हाथसे निकल गया। लगता है, इससे लॉर्ड रीडिंगको विश्वास हो गया कि समझौता और बातचीतका तरीका सफल होनेवाला नहीं है, और युवराजके यहाँसे प्रस्थान करते ही महात्माजीपर मुकदमा चलाया गया और उन्हें जेल भेज दिया गया।"

२. देखिए खण्ड २०, पृष्ठ ९२।

३२६. पत्र : रिचर्ड बी० ग्रेगको

साबरमती आश्रम
११ अप्रैल, १९२६

प्रिय गोविन्द,

यह भी खूब मजेदार रहा कि जैसे ही यन्त्रो सम्बन्धी तुम्हारे लेखपर बोलकर टिप्पणियाँ[1] लिखवानेका काम मैंने पूरा किया कि तुम्हारा पत्र आ गया। जर्मन पुस्तककी फिक्र न करो, चाहो तो उसे लौटा दो। अगर जरूरत हुई तो मैं किसी औरसे उसका अनुवाद करवा लूँगा। तुमने जिस कामका जिक्र किया है वह इतनी कठिनाइयोंके बीच, जिनसे तुम घिरे हो — उन पत्रोंका अनुवाद करनेके कामसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण है।

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि तुम बागबानी कर रहे हो और अपना खाना खुद पकाते हो। समय मिले तो वहाँकी पाठशालाके बारेमें लिखना। कितने विद्यार्थी कक्षाओंमें उपस्थित रहते हैं, उनमें कैसी क्षमता है, कौनसे विषय पढ़ाये जाते हैं, इन सबकी जानकारी देना। यह भी लिखना कि उनमें कौनसी ऐसी विशेषताएँ हैं जिन्हें हम भी अपना सकते हैं।

मैं इस माहकी २२ तारीखको मसूरीके लिए रवाना होऊँगा। मीरा तो बहुत अच्छा काम कर रही है। क्या तुमको मालूम है कि 'सत्याग्रह सप्ताह' के दौरान पाँच चरखे दिन-रात चल रहे हैं? यह मनको झकझोर देनेवाला दृश्य है। मैं समझता हूँ, दैनिक उत्पादन कमसे-कम पाँच गुना बढ़ गया है। ठीक आँकड़े अगले हफ्ते मिलेंगे। इस सप्ताह कान्तिने सूतके ४४४४ फेरे (लगभग ५९२५ गज) काते। इसका मतलब यह हुआ कि लड़केने लगभग १४ घंटेतक काम किया।

तुम्हारा,

श्री रिचर्ड बी० ग्रेग

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४४५) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए "टिप्पणियाँ", १५-४-१९२६ का उप-शीर्षक "मशीनोंसे मिलनेवाले सबक"।

३२७. पत्र : शौकत अलीको

साबरमती आश्रम
११ अप्रैल, १९२६

प्यारे दोस्त और भाई,

ऐसा लगता है बिना किसी चिट्ठी-पत्रीके हमारे मनकी बातें एक-दूसरेतक पहुँच गई हैं। मैं तो इतना कम और इतनी बेपरवाहीसे काता सूत भेजनेके लिए आपकी खबर लेनेके खयालसे आपके नाम एक चिट्ठी लिखानेकी ,सोच रहा था। मगर आपने पहले ही चिट्ठी लिखकर उन सभी बातोंका जवाब दे दिया है, जो मैं अपनी चिट्ठीमें लिखनेवाला था। इस तरह आपने मेरे उलहानेमें तल्खीकी गुंजाइश ही नहीं रहने दी।

मुहम्मद अलीकी परेशानियोंके बारेमें मैंने सुना। मेरा दिल उनके साथ है, लेकिन बुद्धिको उनका रवैया पसन्द नहीं। वे बहुत ज्यादा लापरवाह हैं और कोई काम ढंगसे न करनेके मामलेमें तो वे शायद सभी सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओंसे बाजी मार ले जाते हैं।

हर रोज चुपचाप एक घंटा चरखेपर जरूर लगायें, और उस समय आप अपना सारा ध्यान उसीपर दें। इसकी उपेक्षा करनेसे काम नहीं चलेगा। अभी कुछ ही दिन पहले एक आदमीने मुझे इस बातके लिए उलाहना देते हुए पत्र लिखा था कि आपने और मुहम्मद अलीने तो कुछ भी सूत नहीं भेजा है। मुहम्मद अलीको [इसके बारेमें] मैंने कोई पन्द्रह दिन पहले पत्र लिखा था।

१६ को आपसे मिलनेकी उम्मीद रखूंगा। आशा है, उस समय आपको स्वस्थ और प्रसन्न देख पाऊँगा।

हालमें हकीम साहबका एक निराशा-भरा पत्र मिला था। दिल्ली जानेपर आप उन्हें हिम्मत दिलाइए। शुएब कहाँ है? आप सहित दफ्तरके सभी लोगोंको मेरा प्यार।

आपका,

मौलाना शौकत अली
मार्फत — केन्द्रीय खिलाफत समिति
सुलतान मैंशन डोंगरी
बम्बई

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४४६) की फोटो-नकलसे।

३२८. पत्र: प्यारेलाल नैयरको

साबरमती आश्रम
११ अप्रैल, १९२६

प्रिय प्यारेलाल,

तुम्हें हिन्दीमें लिखना जारी रखना चाहिए। समय बचानेके लिए मुझे तो बोलकर अंग्रेजीमें ही लिखाना पड़ेगा — कमसे-कम आज। देवदासकी बीमारीके बारेमें जानकर मुझे कोई परेशानी नही हुई। परेशानी इस बातसे हुई कि जबतक उसका रोग बहुत बढ़ नही गया तबतक उसने उसे छिपाकर रखा।

यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि मथुरादास अब पहलेसे कही बेहतर है। अगर मथुरादासको अभी भी रोगी कहा जा सकता हो तो उसकी सेवा-शुश्रूषाका ध्यान रखते हुए, जहाँतक बन पड़े वहाँतक तुम अपने स्वास्थ्यका पूरा खयाल रखो, ठीक समयपर खाना खाओ और हर काम नियत समयसे करो। अपनी दिनचर्या भेजना, गोमती बहनका हाल भी बताना, खासकर जबतक किशोरलाल वहाँ नही है।

तुम्हारा,

श्रीयुत प्यारेलाल नैयर,
मार्फत — श्री मथुरादास त्रिकमजी
विंडी हॉल .
देवलाली
नासिक रोड

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४४७) की माइक्रोफिल्मसे

३२९. पत्र : ए० इर्बीको

साबरमती आश्रम
११ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

पत्रके लिए धन्यवाद। मैं नहीं समझता मुझे फिनलैंड जाना पड़ेगा। लेकिन अगर गया और अगर मुझे लैटवियासे होकर गुजरना हुआ तो मैं निश्चय ही आपके पिताजीसे मिलना चाहूँगा। आप अखबार देखती रहें; अगर मैं जाता हूँ, तब तो आप मुझे जो पत्र जरूरी समझेंगी वह शायद भेज ही देंगी।

हृदयसे आपका,

श्रीमती ए० इर्बी
बुनाई स्कूल
सी० एस० एम०
मायावरम्

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४४८) की फोटो-नकलसे।

३३०. पत्र : बगलाप्रसन्न गुहारायको

साबरमती आश्रम
११ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। कृपया यह बतायें कि प्रकाश बाबूको मंत्रीपदसे त्यागपत्र देनेके लिए क्यों मजबूर किया गया और वे अब कहाँ हैं।

तिपेरा खादीसे सम्बन्धित आपकी कठिनाइयोंको मैं समझता हूँ। इस मुसीबतसे छुटकारा पानेका एकमात्र उपाय यह है कि आप लोग, स्वयं बुनकर बन जायें और मध्यम वर्गीय लोगोंको मुफ्त कताई करनेके लिए तैयार करें। इस प्रकार जो सूत हमें मिलता है उसे खरीदसे प्राप्त होनेवाले सूतमें मिलाया जा सकता है। तब आप भी तिपेरा खादीके समान ही अपनी खादी भी सस्ती बेच सकेंगे। मैं यह मानता हूँ कि ऐसा कहना आसान है किन्तु करना कठिन है, पर इन कठिन समस्याओंके समाधानका कोई आसान तरीका है भी तो नहीं। आप ऐसी जमीनका भी पता लगानेकी कोशिश करें, जहाँ रुई आसानीसे उगाई जा सके।

और अन्तमें, खादीका कार्य उस जिलेमें नहीं चल सकता जहाँ गरीब लोगोंके पास फालतू समय न हो। खादीकी सारी योजना ही इस मान्यतापर आधारित है

कि भारतमें ऐसे करोड़ों गरीब लोग है, जिनके पास सालमें कमसे-कम चार महीने कोई काम नही होता। भारतके उस भागमें जहाँ आप रहते हैं यदि ऐसे लोग न हों तो आपको खादी उत्पादनके लिए परेशान होनेकी जरूरत नही। इस हालतमें आपको उन जिलोंमें तैयार की गई खादीको बेचना-भर है, जो उतने खुशहाल नहीं है।

आप सतीश बाबूसे मिलकर सलाह-मशविरा करें। उनसे सभी बातोंपर बातचीत करें और उनकी रायके मुताबिक चलें।

आपका,

श्रीयुत बगलाप्रसन्न गुहाराय
मंत्री, जातीय शिक्षामठ, लक्ष्मीपुर, उपासी डाकघर
फरीदपुर (बगाल)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४४९) की माइक्रोफिल्मसे।

३३१. सन्देश : जलियाँवाला बागके सम्बन्धमें[1]

साबरमती आश्रम
११ अप्रैल, १९२६

आपके सचिवने १३ तारीखके लिए जलियाँवाला बागके सम्बन्धमें सन्देश माँगा है। सन्देश यह है:

१३ अप्रैल, १९१९ को जलियाँवाला बागमें जो नृशंस हत्याकाण्ड हुआ, वह हमें निरन्तर इस बातकी याद दिलाता रहता है कि जब भी हम बन्धन-मुक्त होनेकी इच्छा करेंगे और अपना सिर उठानेका प्रयत्न करेंगे तब हमेशा ऐसे हत्याकाण्डकी पुनरावृत्ति होगी। भारतपर अंग्रेजोंका शासन उसकी सेवाके लिए नही, वरन् उसका शोषण करनेके लिए थोपा गया है। वस्तुतः यह भारतपर थोपे गये व्यापारको सुरक्षा प्रदान करनेके लिए है। इस व्यापारकी मुख्य मद मैंचेस्टरका कपड़ा है। यदि हम जलियाँवाला बाग और 'रेंगनेवाली गली' के अपमानका प्रतिकार करना चाहते हैं तो हमें कमसे-कम विदेशी कपडा पहनना छोड़ देना चाहिए तथा हाथ-कती खादी पहननेकी प्रतिज्ञा करनी चाहिए। विदेशी कपड़ा पहनना छोड़नेसे भारतमें ब्रिटेनका व्यापार पंगु हो जायेगा और खादी पहननेकी प्रतिज्ञासे हम उन गरीबोंके नजदीक आयेंगे, जिनकी हमने इतने दिनोंतक उपेक्षा की है। यद्यपि हम ससारके अन्य देशोके शोषणकर्त्ता कभी नही रहे, परन्तु हमने अपने सुख और आरामके लिए अपने ही देशके किसानोका शोषण किया है। यदि हम विदेशी कपडेका बहिष्कार करनेसे मुकरते हैं, यदि हमें खादी पहनना बहुत ही कष्टकर लगता है तो वैसी हालतमें मुझे तो यही लगता है

१. यह सन्देश बम्बई प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके तत्वावधानमें १३ अप्रैलको मारवाड़ी विद्यालयके अहातेमें हुई सार्वजनिक सभामें श्रीमती सरोजिनी नायडूने, जो सभाकी अध्यक्षा थी, पढ़ा था।

कि हमें सदाके लिए गुलाम बने रहनेको तैयार रहना चाहिए। यदि हम अपने देशके लिए सुख और आराम तथा और भी बहुत-कुछ त्यागनेसे घबराते हैं तो भविष्यमें हमें कितने भी सुधार हासिल हों, सब व्यर्थ सिद्ध होंगे।

श्रीमती सरोजिनी नायडू
ताजमहल होटल
बम्बई

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४५०) की फोटो-नकलसे।

३३२. पत्र : गोपालकृष्ण देवधरको

साबरमती आश्रम
११ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

मनोरमासे मैंने बातचीत की है। वह आपको पत्र लिख रही है। वह टूटी-फूटी गुजराती और हिन्दुस्तानी बोलती है और उससे जो-कुछ मैं समझ पाया हूँ वह यह है कि वह पूना रवाना होनेके पहले यह पक्का कर लेना चाहती है कि सेवासदनमें उसे फिरसे दाखिला मिल जायेगा। ऐसा लगता था कि वह आरोप उसे अच्छा नहीं लगा कि पहले वह स्थिरचित्त नहीं थी।

यहाँ फिलहाल तो वह बुनाई सीख रही है। वह अपने चार घंटे इसमें लगाती है। यदि वह इसी तरह साल-भर बुनाई करती रही और यह काम उसे पसन्द आया तो वह अपनी जरूरत-भर बड़ी आसानीसे कमा सकेगी। परन्तु यदि उसने जमकर यह काम नहीं किया तो बुनाई सीख नहीं पायेगी, क्योंकि इसमें सतत प्रयास और काफी मेहनतकी जरूरत पड़ती है।

आपका,

श्रीयुत गोपालकृष्ण देवधर
बम्बई

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४५१) की माइक्रोफिल्मसे।

३३३. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

साबरमती आश्रम
रविवार, ११ अप्रैल, १९२६

भाई घनश्यामदासजी,

आपका पत्र मिला। जिससे बहुतसी बातें स्पष्ट हो जाती है। अखबारोसे मैं झगड़ेका बयान पढ़ लेता था। मैंने दिलमें निश्चय कर लिया है कि दोनोंको लड़नेसे कमसे-कम मैं तो रोक नही सकता हूँ। इसलिए अब कलकत्तेके झगड़ेका कोई असर मेरे पर नही हुआ। मैंने यह भी तो कबसे कह दिया है कि यदि हिन्दु लड़ना ही चाहते है तो निर्दयताको दोष न समझें, परन्तु गुण समझकर उसकी वृद्धि करनी होगी। और यही बात कलकत्तेमें हो गई है ऐसा प्रतीत होता है। आपने दोनोंको निष्पक्ष-पात होकर बचायें और समस्त मारवाड़ियोने तीनसो करीब मुसलमानोकी प्राणरक्षा की, यह बात हिन्दु जातिके लिये गौरवकी है।

आपने खद्दरका व्रत ले लिया इससे आपको और आग्रह करनेवालोंको धन्यवाद देता हूँ। इस व्रतका फल आपको तो मिलेगा ही। परन्तु जनताको भी इसका फल अवश्य मिलेगा। मैं मसूरी २२ तारीखको जाऊंगा। मेरा स्वास्थ्य बहुत अच्छा है। सत्याग्रह सप्ताह होनेके कारण मैं आजकल दो घंटा कातता हूं और आश्रममें पांच अखंड चरखे चलते हैं। आपने टाइटल लेनेका इनकार किया। मुझको बहुत अच्छा लगा। इनकार करनेके लिये न गवर्नमेंटको दुश्मन समझनेकी आवश्यकता है, न टाइ-टलको बूरे समझनेकी है। अगरचे मैं तो टाइटलको अवश्य बूरा समझता हूं, हमारी इस हालतमें।

आपका,
मोहनदास

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६१२४) से।
सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

३३४. पत्र : मोतीबहन चौकसीको[1]

आश्रम
रविवार, चैत्र बदी १४ [११ अप्रैल, १९२६]

चि० मोती,

पत्र मिला लेकिन इस बार जरा देरसे मिला। इस बारकी लिखावट पिछली बार जैसी अच्छी नहीं कही जा सकती।

गुजराती प्रति (एस० एन० १२१२४) की फोटो-नकलसे।

३३५. पत्र : मोतीबहन चौकसीको

रविवार, ११ अप्रैल, १९२६

चि० मोती,

तुम्हारा पत्र आया तो सही। तुम्हारी वृत्तिको मैं समझ गया था और मैंने अपनी आशंका लक्ष्मीदासको बताई भी थी। संस्कृतमें एक श्लोक है उसका अर्थ यह है: सम्भावित व्यक्तिको अपकीर्तिसे मरण प्रिय लगता है।[2] सम्भावित अर्थात् जिसे स्वमान प्रिय है। मोहको जीतना हमारा काम है। जिस मुँहने पानका स्वाद लिया है वह कोयला कैसे खा सकता है। तुम्हें याद रखना चाहिए कि तुम्हारे पतनका दूसरोंपर बहुत असर होगा। इस बातका विचार करना कि इससे बड़ोंको दुःख होगा और समझ लेना कि इससे तुममें आत्मसम्मान-जैसी कोई वस्तु नहीं रह जायेगी। आभूषणोंके शौकके पीछे विषय-भोगकी वासना निहित है, ऐसा मैं मानता हूँ। इस बातको तुम भले ही अभी न जानो लेकिन विषय-वासना रूपी साँप अभी भीतर छिपा हुआ है ही। ऐसा न हो तो आभूषणोंका शौक ही न हो। ऐसे मोहमें न पड़नेकी खातिर ही मनुष्य विद्याध्ययन और अन्यान्य उद्यम करता है। तुम्हें अन्त्यजोंकी सेवा नहीं करनी है? कंगालोंके पैर नहीं धोने हैं? जवाहरात पहनकर क्या ये कार्य तुम कर सकती हो? मेरी तुम्हें एक ही सलाह है। तुम मोहको मैल समझकर निकाल डालना। मैंने तुम्हारा पत्र किसी औरको नहीं पढ़ाया है। लक्ष्मीदासको भी पढ़ानेका विचार नहीं है। उसे मैंने फाड़ डाला है। तुम्हारे शुभ निश्चयकी राह देखूँगा;

१. पत्रके अन्तमें गांधीजीकी सहीकी जगह ये शब्द हैं: 'बापूजीकी ओरसे मणिने लिखा।'
२. भगवद्गीता, २-३४।

लेकिन यदि निश्चय न कर सको तो कमसे-कम धोखा मत देना। भगवान तुम्हारी सहायता करे!

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

भाई नाजुकलाल, इसमें सब-कुछ आ जाता है। समय बीत रहा है। इससे तुम्हें अलगसे नहीं लिखता।

बापू

गुजराती पत्र (एस० एन० १२१२५) की फोटो-नकलसे।

३३६. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

१२ अप्रैल, १९२६

प्रिय सतीश बाबू,

असमके बारेमें आपका पत्र मिला। देखता हूँ, आपमें और शंकरलालमें सहमति नहीं है। राजेन्द्रबाबूकी नियुक्तिका सुझाव मैंने दिया था। मुझे यह मालूम था कि असमके कार्यकर्त्ताओंके मनमें आपके खिलाफ पूर्वग्रह है। इस हालतमें, जबतक कोई जिम्मेदार व्यक्ति वहाँके कामका दायित्व अपने सिर न ले तबतक वहाँ कुछ भी पैसा लगाया नहीं जा सकता था। इसलिए मैंने सुझाव दिया कि राजेन्द्रबाबू वहाँकी स्थिति-की जाँच करके अपनी रिपोर्ट दें। पिछले दिनकी बातचीतके बारेमें मुझे कुछ मालूम नहीं था। शंकरलालसे मिलनेपर मैं पूछताछ करूँगा। अभी तो यह पत्र आपको सिर्फ यह सूचित करनेके लिए लिख रहा हूँ कि राजेन्द्रबाबूकी नियुक्तिमें मेरा हाथ था। और इसे लिखनेका उद्देश्य यह है कि इस तथ्यको जान लेनेके बाद आप शंकरलालके बारेमें अपना खयाल जितना बदल सकते हो, बदल लें। मुझे इस बातकी बड़ी फिक्र है कि कौंसिल एक व्यक्तिकी तरह काम करे। शंकरलालकी मर्यादाओंसे मैं वाकिफ हूँ। वह जल्दबाज आदमी है, भावनामें बह जानेवाला और घबरानेवाला भी। वह बातोंको भूल भी जाता है। लेकिन उसका हृदय कुन्दन-जैसा है। वह अच्छा संगठनकर्त्ता भी है। खादीसे उसे प्रेम है। तो हमें एक-दूसरेका बोझ तो उठाना ही है। यह पत्र मैं शुद्धि सप्ताहमें सोमवारको लिख रहा हूँ। मैं चाहता हूँ, आप पूर्ण बनें, सर्वथा दोष-रहित बनें। लेकिन हम [किसीके इशारा-भर देनेसे] यन्त्रकी तरह तो कुछ भी नहीं कर सकते सो इस पत्रको, जिस लायक यह हो, उतना ही महत्त्व दीजिए।

आपका,
बापू

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० १५५८) की फोटो-नकलसे।

३३७. पत्र : के० टी० पॉलको[1]

साबरमती आश्रम
१३ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। जब श्री बुकमैन मुझसे मिले थे, उस समय मेरा मन पूरी तरह सम्मेलनमें न शामिल होनेके पक्षमें था, लेकिन उनके आग्रहको देखते हुए मैंने उस समय शामिल होनेका निर्णय नहीं किया था। अभी भी इस दिशामें मैं किसी निश्चयपर नहीं पहुँच पाया हूँ। लेकिन कुछ मित्र, जिनके साथ मैंने इस बातपर चर्चा की है, इस पक्षमें हैं कि मैं निमन्त्रण स्वीकार कर लूँ। इसके पीछे उनके मिले-जुले कारण हैं। उनके ऐसी सलाह देनेका शायद सबसे प्रबल कारण यह है कि समुद्र-यात्रा और देशाटन मेरे स्वास्थ्यके लिए लाभदायक साबित हो सकता है। मेरे लिए एकमात्र निर्णायक बात यही होनी चाहिए कि वहाँ जाकर मैं कोई सेवा कर सकता हूँ या नहीं, दूसरे शब्दोंमें यह कि ईश्वरकी इच्छा ऐसी है या नहीं कि मैं वहाँ जाऊँ। मुझे कुछ साफ दिखाई नहीं दे रहा है। इसलिए अब मैं एक मित्रके नाते इसका निर्णय आपपर ही छोड़ता हूँ और मुझे सलाह देने या मेरी ओरसे किसी निर्णयपर पहुँचनेमें स्वभावतः, आप उन तमाम बातोंका खयाल रखेंगे जो मैं कहने जा रहा हूँ।

आप मेरे विचित्र पहनावेके बारेमें तो जानते ही हैं। उसमें कोई खास परिवर्तन कर सकना मेरे लिए सम्भव नहीं है। मैं ऐसे ही परिवर्तन कर सकता हूँ जो आबोहवाको देखते हुए जरूरी होंगे। पता नहीं, आपके निर्णयपर इस बातका कहाँतक असर होगा, लेकिन मुझे लगा कि यह बात आपके ध्यानमें ला देना ठीक रहेगा।

अगर वे मुझे भाषण देनेके लिए बुलाना चाहते हों तब तो मैं बेकार ही साबित होऊँगा। मैं एक ही तरहसे वहाँ कुछ सेवा कर सकता हूँ। वह है, खुले हृदयसे छात्रोंके साथ बातचीत करना। मेरा असली उपयोग इस तरहके वार्तालापोंमें ही है। भाषण देना मैं अपना सबसे कम महत्त्वका काम मानता हूँ। यह बात मैंने श्री बुकमैनके सामने बिलकुल स्पष्ट कर दी थी।

मेरे भोजनमें भी बड़ी झंझटें हैं। मैं सिर्फ शाकाहारी ही नहीं हूँ, मैं जो चीजें खाता हूँ, वे भी सीमित हैं। मेरे आहारका मुख्य हिस्सा बकरीका दूध है और अगर आपको यात्रा आदिका प्रबन्ध करना पड़ा तो भोजन सम्बन्धी अत्यन्त असुविधाजनक व्यवस्थाका पूरी तरह खयाल रखना पड़ेगा।

1. यह पत्र के० टी० पॉलके ६-४-१९२६ के पत्रके उत्तरमें लिखा गया था। उस पत्रमें पॉलने गांधीजीसे यह अनुरोध किया था कि आगामी अगस्त महीनेमें हेलसिंगफोर्स, फिनलैंडमें होनेवाले यंगमैन्स क्रिश्चियन एसोसिएशनके विश्व-सम्मेलनमें भाग लेनेके निमन्त्रणपर विचार करें। (एस० एन० ११३४१)

अगर मैं वहाँ जाऊँगा तो साथमें एक या सम्भवतया दो साथी भी रहेंगे।

अगर आप इस निष्कर्षपर पहुँचें कि मुझे निमन्त्रण स्वीकार कर लेना चाहिए तो कृपया सूचित कीजिए कि प्रस्थान कब करना है, सम्मेलन कितने दिन चलेगा, पासपोर्टोंकी व्यवस्था कौन करेगा। क्या पासपोर्टोंमें कोई शर्तें भी लगी रहेगी?

इस मासको २२ तारीखतक यहाँ हूँ। २२को मसूरी प्रस्थान कर जाऊँगा। कृपया यह बताइएगा कि निमन्त्रण भेजनेवाली यह केन्द्रीय समिति क्या है। कौन अध्यक्ष है और कौन मन्त्री? कहनेकी आवश्यकता नहीं कि आपके पत्रके विषयमें मैं अखबारोंको कुछ नहीं कहूँगा। सच तो यह है कि अखबारोंमें इसकी पहली चर्चा देखकर ही मैं परेशान हो उठा था। कुछ दिन तो मैं अखबारवालोंसे कतराता रहा और मैंने जो बहुत नपा-तुला वक्तव्य दिया वह भी तब दिया जब देखा कि उससे बचनेका कोई रास्ता नहीं है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्री के० टी० पॉल
कलकत्ता

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११३४२) की फोटो-नकलसे।

३३८. पत्र : महासुखको

साबरमती आश्रम
मंगलवार, १३ अप्रैल, १९२६

भाईश्री ५ महासुख,

आपका पत्र मिला। आप अपनी शंकाएँ प्रगट करते हैं, इसके लिए मैं आपको बधाई देता हूँ। लेकिन जिस व्यक्तिको हम पत्र लिखें उसके उत्तरपर हमें क्रोध नहीं करना चाहिए और न अपने मनमें उसकी प्रामाणिकताके विषयमें शंका ही लानी चाहिए या फिर जिनके वचनोंके बारेमें हमें शंका हो उन्हें हम कुछ भी न लिखें। आपने किस बातसे यह जाना कि मैंने आपको जो-कुछ लिखा वह शब्दजाल ही था? आपको यह कैसे मालूम हुआ कि स्वराज्य आदि आन्दोलनको मैं खोजने गया था? मैं आपको फिर बताता हूँ कि मैंने आपको जो उत्तर दिया है सो विचारपूर्वक ही दिया और मैं उसे अक्षरशः सही मानता हूँ और मैं आपको मेरे वचनको सही माननेकी सलाह देता हूँ।

गुजराती प्रति (एस० एन० १०८८४) की माइक्रोफिल्मसे।

३३९. पत्र : भगवानदास ब्रह्मचारीको

साबरमती आश्रम
मंगलवार, १३ अप्रैल, १९२६

भाई भगवानदास ब्रह्मचारी,

तुम्हारा पत्र मिला। संस्कृतके बारेमें [तुम्हारी बात] समझ गया। इसमें तो मुझे कोई बात कहनेकी सूझती नहीं। "वेजीटेरियन" शब्द अपूर्ण है क्योंकि विलायतके 'वेजीटेरियन' लोग सामान्यतः दूध और अण्डा लेते हैं, मछली नही लेते। इसलिए इन लोगोंने एक नवीन शब्द बनाया भी है: वे इसे "वी० ई० एम० डाइट" कहते हैं; यानी 'वेजीटेबल्स, एग्ज और मिल्क'। सामान्य वेजीटेरियन मछली नहीं खाते, प्याज खाते हैं। लहसुनका जान-बूझकर त्याग नहीं करते। "सात्विक आहार" शब्दका प्रयोग नहीं चल सकता क्योंकि मिर्च खानेवालोंको सात्विक नहीं कहा जा सकता और अनेक मांसाहारी मांसको सात्विक कहकर खाते हैं। मैंने "अन्नाहारी" शब्द पसन्द किया है, अपने मनमें 'अन्न' शब्दका एक विशेष अर्थ मानकर। 'अन्न' शब्दका मेरा यह अर्थ इस प्रकार है — मांसादिको छोड़कर हम जो भी खाते हैं वह सब 'अन्न' है। यह भी अपूर्ण व्याख्या तो है ही। लेकिन आजतक मुझे जितने शब्द मिले हैं उन सबकी अपेक्षा "अन्नाहारी" शब्द मुझे ज्यादा ठीक लगा है।

गुजराती प्रति (एस० एन० १०८८५ ए) की फोटो-नकलसे।

३४०. पत्र : छगनलाल जोशीको

साबरमती आश्रम
मंगलवार, १३ अप्रैल, १९२६

भाईश्री छगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हें बुखार आया है, यह खबर मुझे भाई भणसालीने दी थी। सावधानी रखना। बुखार छुट्टियोंसे पहले और छुट्टियोंके दौरान नही आया, यह बात भी मैंने देखी। पैसे सम्बन्धी तुम्हारी आवश्यकता बढ़ जायेगी, यह तो मैंने पहले ही सोच लिया था। इस बारेमें यदि उतावली न हो तो जब तुम आओगे तब हम बात करेंगे। इस बीच मैं किशोरलाल आदिके साथ तो बात करूँगा ही। यदि जल्दी हो तो मुझे लिखनेमें तनिक भी संकोच न करना।

मढडावाले शिवजीभाईके सम्बन्धमें अभी मुझे शान्ति रखनी होगी। मुझे क्रोधभरे पत्र प्राप्त होते ही रहते हैं, जिनसे मैं समझ सकता हूँ कि वहाँ क्या हो रहा होगा। मेरी शान्तिका क्या अनुचित लाभ उठाया जा सकता है, जो व्यक्ति अनुचित

लाभ उठाना चाहेगा तो उसपर यदि मैं क्रोध 'न' करूँ तो उस व्यक्तिको ही नुकसान पहुँचेगा। "देहान्तर प्राप्ति" का यदि बहुत विचार करो तो यह सोचकर करना; इसमें बहुत आनन्द है और यदि खेद होता है तो हमारी अशक्ति और अज्ञानके कारण ही होता है।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९४५२) की माइक्रोफिल्मसे।

३४१. पत्र : नरगिस कैप्टेनको

साबरमती आश्रम
१४ अप्रैल, १९२६

पत्रके लिए आभारी हूँ। यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि पेरिन पहलेसे अच्छी और प्रसन्न थी, क्या ही अच्छा होता, अगर वह आपके साथ कुछ दिन और रह पाती। मुझे यकीन है कि उपवाससे आपके सिर-दर्दको लाभ पहुँचेगा। ऐसा सोचना भ्रम है कि दुबले-पतले लोग उपवास नहीं कर सकते।

आप मसूरी मत आइए। अगर आप दो महीनेके लिए भी कश्मीर चली जायें तो मुझे भरोसा है कि उससे आपको लाभ होगा। मसूरीमें अगर मैं बहुत ज्यादा ठहरा तो भी वहाँ मध्य जूनसे आगे मेरे ठहरनेकी सम्भावना नहीं है। क्या डॉ० बहादुरजी अब भी सूत कातते हैं? जब वे और मानिकबाई वहाँ आयें तो मेरी याद दिला दें।

आपका,

श्रीमती नरगिस कैप्टेन
पंचगनी।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४५८) की माइक्रोफिल्मसे।

३४२. पत्र : मोतीलालको

साबरमती आश्रम
बुधवार, १४ अप्रैल, १९२६

भाई मोतीलाल,

आपका पत्र और खादी-कार्यके लिए १०१ रुपये मिले। आभार मानता हूँ।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९४५३-आर) से।

३४३. पत्र : लाभशंकर मेहताको

साबरमती आश्रम
बुधवार, १४ अप्रैल, १९२६

भाईश्री लाभशंकर,

१. आपने जो अंग्रेजी वाक्य उद्धृत किया है वह सामान्यतः रोगोंपर घटित होता है। ऐसे वाक्य ठीक कहाँ घटित होते हैं, यह बात तो प्रायः अनुभवसे ही मालूम हो सकती है।

२. पसीनेसे साहूकार होनेकी बात मैंने न तो कहीं देखी है और न सुनी है। लेकिन ऐसी कहावत अवश्य है कि लोगोंको अपनी आजीविका पसीनेसे प्राप्त करनी चाहिए।

३. 'हिन्द स्वराज्य' में बताये गये विचारोंपर मैं सम्पूर्ण रूपसे अमल नहीं कर सकता, अतः यह कहना कि ये विचार सही हैं अनुचित है — यह बात मुझे तो ठीक नहीं लगती। आपने जो कहावत उद्धृत की है, वह मुझपर तो लागू हो ही नहीं सकती। क्योंकि मैं अपने-आपको कदापि क्षमा नहीं करता; मैं तो अपना अपराध पूरी तरह स्वीकार कर लेता हूँ।

४. व्रत लेना और निश्चय करना, इन दोनोंमें जहाँ भेद माना जाये वहाँ व्रत लेनेकी ही कीमत है। जो निश्चय छोड़ा जा सके वह निश्चय नहीं कहा जा सकता; उसकी कोई कीमत नहीं हो सकती।

५. आपका पाँचवाँ प्रश्न मेरी समझमें नहीं आया। आपने जो लेटिन कहावत उद्धृत की है, क्या उसमें सचमुच कोई सिद्धान्त है? उसका क्या अर्थ होगा?

६. आप जिस सम्बन्धका वर्णन करते हैं, ऐसे सम्बन्धको मैं स्तुत्य नहीं मानता।

७. खगोल विज्ञानका अध्ययन मैं आवश्यक मानता हूँ।

गुजराती प्रति (एस० एन० १०८८३) की फोटो-नकलसे।

३४४. पत्र : रामदास गांधीको

साबरमती आश्रम
बुधवार, १४ अप्रैल, १९२६

चि० रामदास,

पिछले पोस्टकार्डके बाद फिर तुम्हारा कोई पत्र नहीं आया। सप्ताह पूरा हुआ, अतः कुछ फुर्सत मिली है ऐसा कहा जा सकता है। हालाँकि सप्ताह पूरा होते ही मैं तो समितियोंकी सभाओंमें व्यस्त हो गया हूँ। परिषद्की बैठक कल तो थी ही, आज भी हुई। अब विद्यापीठकी समितिकी बैठक है।

आज देवदास आ गया है। इसको बहुत जोरका पीलिया हुआ था। शरीर बहुत दुर्बल हो गया है। चेहरा देखा नहीं जाता। लेकिन अब पीलिया उतारपर है। पेट साफ हो गया। इसलिए थोड़े अर्सेमें ठीक हो जायेगा। प्यारेलालको देवलाली भेजा है। देवदासको मसूरी ले जानेका इरादा है। वहाँ इस सप्ताहमें क्या हो सका है, यह जाननेके लिए उत्सुक हूँ। यहाँ तो काफी अच्छा काम हुआ है। कान्ति, केशू, कृष्णदास, अन्त्यज विद्यार्थी केशवलाल, सोमाभाई, जयसिंह आदिने दस-दस घंटे तक और इनमें से कुछ लोगोंने २२ घंटेतक काता है—अर्थात् वे मुश्किलसे एक घंटेके लिए सोये। केशूने साढ़े २२ घंटोंमें ९१११ तार काते, यानी १२०२४ गज। यह रफ्तार बहुत अच्छी कही जा सकती है। केशूके सूतका अंक १७ था। बाने भी खूब काता। मनुने एक दिन हजारसे भी ऊपर काता।

उम्मीद है, तुम्हारी तबीयत अच्छी होगी। देवचन्दभाई आदि बहुत करके आज जायेंगे।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९४५४) की माइक्रोफिल्मसे।

३४५. पत्र : प्रतापसिंहको

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
बुधवार, द्वितीय चैत्र सुदी २ [१४ अप्रैल, १९२६][1]

कुमारश्री प्रतापसिंहजी,

आज काठियावाड़ राजनीतिक परिषद्की [कार्यकारिणी] समितिकी बैठक हुई। मैंने तो यह आशा की थी कि इससे पहले मेरे पत्रका उत्तर आ जायेगा, लेकिन आया नहीं। इसलिए मैं समितिके सदस्योंको सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे सका। मुझे २२ तारीखको मसूरीके लिए रवाना हो जाना है, उससे पहले यदि आप उत्तर दे सकें तो आभारी होऊँगा।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (एस० एन० १९४५५) की माइक्रोफिल्मसे।

३४६. पत्र : जयसुखलालको

साबरमती आश्रम
बुधवार, १४ अप्रैल, १९२६

चि० जयसुखलाल,

परिषद्की [कार्यकारिणी] समितिकी बैठकमें अमरेली कार्यालयको परिषद्ने अपने नियन्त्रणमें ले लेनेका निश्चय किया है और यह भी निश्चय हुआ है कि उसका ट्रस्ट बना दिया जाये। चर्चा तो खूब हुई। गारियाधार और पाँच तलावडीको जो भी कमीशन देना निकले, उसे राजकीय परिषद्के खातेमें जमा करना, कुछ भी नकद नहीं चुकाना।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९४५६)की माइक्रोफिल्मसे।

१. काठियावाड़ राजनीतिक परिषद्की बैठक तथा गांधीजीकी प्रस्तावित मसूरी-यात्राकी चर्चासे।

३४७. पत्र : आदमसालेह अली पटेलको

आश्रम
१४ अप्रैल, १९२६

भाई आदमसालेह अलीभाई,

आपने तो मुझे हरा दिया। मैंने तो एक ही व्यक्तिको सुधारनेका ठेका लिया है और वह मैं स्वयं हूँ और उसे सुधारनेमें भी कितनी मुश्किल होती है, यह तो मेरा मन ही जानता है। अब तो आपके प्रश्नोका उत्तर देनेकी जरूरत नही रही न?

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

श्री आ० अ० पटेल
पानोली
जिला : भड़ौच

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९०१) की माइक्रोफिल्मसे।

३४८. पत्र : कायम अली मु० सलेमवालाको

आश्रम
१४ अप्रैल, १९२६

भाईश्री ५ कायम अली,

आपका पत्र मिला। जलियाँवाला बागके लिए जो पैसे इकट्ठे किये गये थे उनमें से यह बाग खरीदा गया है, जमीन साफ की गई है और उसपर बगीचा लगाया है। स्मारक मन्दिर नहीं बनवाया क्योंकि आजकल हिन्दुस्तानके ग्रह उलटे हैं।

इस समय तो हम स्वतन्त्रताकी नीवको उखाड़नेमें लगे हुए हैं; ऐसी हालतमें उसके भव्य मन्दिरको कैसे खड़ा किया जा सकता है? मेरा खयाल है कि निधिके न्यासी कोई भी मन्दिर बनानेमें इसी कारण सकोच कर रहे हैं।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

श्री कायम अली मुम्मद अली सलेमवाला
मार्फत-मुहम्मद अली एण्ड सन्स
सॉमरसेट स्ट्रीट, कैम्प
कराची

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९०२) की माइक्रोफिल्मसे।

३४९. "तकली शिक्षक"

यह एक पुस्तिकाका नाम है, जिसमें ८० पृष्ठ हैं। इसे अखिल भारतीय चरखा संघ अहमदाबादने प्रकाशित किया है और यह उसीके कहनेपर सर्वश्री रिचर्ड बी० ग्रेग और मगनलाल खु० गांधीने तैयार की है। इसमें बहुत सोच-समझकर २३ साफ-सुथरे चित्र दिये गये हैं। इन चित्रोंमें तकलीकी अलग-अलग किस्में बताई गई हैं और घरेलू उपयोग और राष्ट्रीय महत्त्वके इस छोटे-से यन्त्रको हाथसे पकड़ने और चलानेकी तरह-तरहकी मुद्राएँ दिखाई गई हैं। पुस्तिकामें तकलीसे सूत कातनेकी बिलकुल सही-सही विधि दी गई है, ताकि इसे ध्यानसे पढ़नेवाला कोई भी व्यक्ति तकलीसे कातनेकी कलामें सिद्धहस्त हो सके। इसमें तकलीके विभिन्न उपयोग भी बताये गये हैं और कई स्थलोंपर चरखेके मुकाबले तकलीसे काम लेनेके लाभ भी दिखाये गये हैं। इसमें यह भी बताया गया है कि तकली कैसे बनाई जाये और अन्तमें इस यन्त्रके बारेमें ऐतिहासिक जानकारी देते हुए कहा गया है कि इसीके सहारे ढाकाके कातनेवाले लोग ऐसा बारीक और अच्छा सूत कातते थे, जिसकी बराबरी आजतक कोई मशीन भी नहीं कर पाई है। ऐसी बहुत-सी बातें बताई गई हैं जो तकलीपर कातनेवाले और चरखा चलानेवाले, दोनोंके लिए उपयोगी हैं।

तकलीका शैक्षणिक महत्त्व समझाते हुए लेखकद्वय कहते हैं कि तकली चलानेसे आदमीमें धैर्य, लगन, एकाग्रता, संयम, शान्ति और किसी कामसे सम्बन्धित छोटी-छोटी क्रियाओंको भी ध्यानपूर्वक करनेके महत्त्व और मूल्यकी समझ आती है। वह एक साथ एकाधिक काम कर सकनेकी क्षमता प्राप्त करता है और तकली चलानेका तो वह इतना अभ्यस्त हो जाता है कि वह काम उससे लगभग अनायास ही बड़ी खूबीके साथ होता चला जाता है। तकली उसकी इन्द्रियोंको अधिक संवेदनशील बनाती है; उसका स्पर्श अचूक हो जाता है और उसमें एक लाघव आ जाता है। अपने स्नायुओंपर उसका ठीक काबू हो जाता है और वह उनमें आवश्यकतानुसार ताल-मेल बैठा पाता है। उसे इस बातकी प्रतीति हो जाती है कि सबके मिल-जुलकर कोई काम करनेका और व्यक्ति द्वारा किसी कामको नियमपूर्वक दीर्घ कालतक करते रहनेका, भले ही वह एक बारमें उस कामको बहुत थोड़े समयतक करे, क्या महत्त्व होता है। इस तरह सहकारी प्रयत्नका महत्त्व उसकी समझमें आता है और उसमें आत्म-सम्मान तथा स्वावलम्बनकी भावना आती है, क्योंकि वह देखता है कि उसमें आर्थिक महत्त्वका कोई ऐसा काम करनेकी क्षमता है, जो खुद उसके लिए, उसके परिवारके लिए, उसके स्कूलके लिए और उसके गाँव, प्रान्त या राष्ट्रके लिए लाभदायक है। इस परिच्छेदमें तकलीकी बहुत-सी अन्य खूबियोंका भी उल्लेख है, जिन्हें राष्ट्रीय कताई-आन्दोलनमें दिलचस्पी रखनेवाले पाठक उस पुस्तकमें खुद ही देख सकते हैं।

प्रकाशक तकलीपर कताई करनेकी कलामें प्रवीण लोगोंको इस पुस्तककी आलोचना भेजनेके लिए आमन्त्रित करता है। उसके पास जो भी सुझाव, सलाह या

जानकारी भेजी जायेगी, वह उसका स्वागत करेगा और उसे अगले संस्करणमें शामिल कर लेगा।

पुस्तक अंग्रेजीके साथ ही हिन्दीमें भी प्रकाशित हो रही है। हिन्दी पुस्तकमें भी वही सारे चित्र रहेंगे और उसका आवरण भी वैसा ही रहेगा। हिन्दी हो या अंग्रेजी, पुस्तक ७ आनेमें आश्रम, साबरमती, से प्राप्त की जा सकती है जिसमें डाक-खर्च भी शामिल है।

मुझे उम्मीद है कि जिन म्युनिसिपल स्कूलों और राष्ट्रीय पाठशालाओंमें तकली दाखिल कर दी गई है, ऐसे सभी स्कूलों और पाठशालाओंका प्रत्येक कताई शिक्षक अपने और अपने विद्यार्थियोंके मार्ग-दर्शनके लिए यह पुस्तिका प्राप्त करेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १५-४-१९२६

३५०. पण्डित नेहरू और खादी

पण्डित मोतीलालजी कभी भी 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के प्रिय पात्र नहीं रहे हैं। उन्होंने जो सबसे ताजा अपराध किया है वह यह कि जिस इलाहाबाद नगरमें अभी कुछ ही वर्ष पहले उन्हें अपनी शानदार मोटर गाड़ीके बिना शायद ही कहीं आते-जाते देखा जा सकता था, उसी नगरमें उन्होंने खादी बेचनेके लिए फेरी लगाई। लेकिन, लेखककी सुष्ठु और श्लील भाषामें, "भारतमें भी लोग अवश्य स्वीकार करेंगे कि पण्डितजी अपने आपको खूब गधा बना रहे हैं।" कितना अच्छा हो कि बहुत-से लोग पण्डितजीका अनुकरण करके वह उपाधि अर्जित करें, जिस उपाधिसे 'टाइम्स ऑफ इंडिया' ने इतनी शिष्टताके साथ पण्डितजीको विभूषित किया है! यह समय आम तौरपर ऐसा है जब विरोधियोंसे ऐसे अपशब्द सुनकर लोगोंको प्रसन्न होना चाहिए। उनकी प्रशंसाको सन्देहकी दृष्टिसे देखना चाहिए। यूनानी लोग जब कोई उपहार लेकर आते थे तो रोमवालोंको विशेष डर लगता था।

'टाइम्स' के लेखकने कांग्रेस, खादी और कांग्रेसियोंपर कीचड़ उछालनेमें अपने-आपको भी मात कर दिया है। पाठक स्वयं ही इसकी परीक्षा करके देखें। लेखक कहता है:

> इलाहाबादसे सच्चे हृदयसे भेजे एक तारसे यह बात बिलकुल साफ हो जाती है कि कांग्रेसका पूरा पतन हो चुका है, तथाकथित कांग्रेसका सिद्धान्त सर्वथा निरर्थक है और कांग्रेसके समर्थकोंके पास कोई भी बुद्धि-संगत राजनीतिक विचार नहीं है।

लेखक आगे कहता है:

> अगर ब्रिटेनकी जनताको मालूम हो कि लॉर्ड बर्कनहेड, ब्रिटिश झंडेका वास्कट पहने हुए, ट्रैफालगर स्क्वेयरकी सिंह-मूर्तियोंके नीचे खड़े होकर टोरी

दलके बिल्ले — नीले फीतोंसे बने फूल — बेच रहे थे, श्री बाल्डविन साम्राज्यके उद्योगोंको बढ़ावा देनेके लिए पिकेडिलीमें थाल भर-भरकर ब्रिटेनके बने खिलौने बेच रहे थे, श्री रैमजे मैक्डानॉल्ड कॉर्डरायकी पोशाक पहने, गुलूबन्द लगाये लाइम हाउसमें मजदूरोंके बीच लाल झंडे बेच रहे थे या क्लैडेसाइडके बोलशेविकोंने अपने चिह्न हँसिये और हथौड़ीकी अनुकृतियाँ बेचनेके लिए क्लैडेसाइडमें एक दुकान खड़ी कर ली थी तो सभी वर्गोंके लोग यही मानेंगे कि उनके नेता पागल हो गये हैं।

स्वभावतः, इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि खादी बेचनेके लिए फेरी लगानेवाले गण्यमान्य लोग — जैसे कि पण्डित नेहरू और फेरी लगानेमें उनका साथ देनेवाले श्री रंगास्वामी अय्यंगार — पागल हो गये हैं। लेखकने जैसी भाषाका प्रयोग किया है, वह न केवल अपमानजनक बल्कि भ्रामक भी है। ब्रिटेनके एक टोरी द्वारा बेचे जानेवाले "टोरी दलके चिह्न, नीले फीतोंसे बने फूलों" और खादीके बीच कैसे समता हो सकती है? खादी किसी दलका प्रतीक नहीं है। चाहे सही हो या गलत, हजारों भारतीय उसे विशिष्ट वर्गों और सर्वसाधारणको एक-दूसरेसे जोड़नेवाले सच्चे स्नेह-बन्धनका प्रतीक मानते हैं। कारण, जिस विशिष्ट वर्गके जरिये ब्रिटिश सरकार करोड़ों मेहनतकश मूक मानवोंपर अपना आधिपत्य जमाये हुए है और जनसाधारणको ब्रिटिश सरकारका खर्च चलानेके लिए जिस तरह चूसा जाता है, उसका कुछ प्रतिदान ये विशिष्ट वर्गके लोग खादीके द्वारा ही दे सकते हैं। लेखक हमारे नेताओंका ऐसा अपमान सिर्फ इसी कारण कर पाया है कि लिबरल दलीय राजनीतिज्ञोंने खादी और उससे सम्बन्धित तमाम चीजोंको हिकारतकी नजरसे देखनेका फैशन चला दिया है। इस बातको कौन भूला है कि जब विश्व-युद्ध छिड़ा था, उस समय बूढ़े-जवान, औरत-मर्द, छोटे-बड़े बल्कि ऐसे सभी लोगोंसे, जिन्हें फौजमें भरती नहीं किया गया या किया नहीं जा सका, विभिन्न अस्पतालोंमें दाखिल किये जानेवाले घायल सिपाहियोंके लिए कपड़े सीनेकी अपेक्षा की जाती थी, और वास्तवमें वे सबके-सब कपड़े सीते भी थे। उस समय लोग यह छोटी-सी सेवा करनेके लिए एक-दूसरेसे होड़ करते थे और जिन्हें सिलाई नहीं आती थी, वे अपने पड़ोसियोंसे सिलाईकी प्रारम्भिक बातें सीखकर अपनेको कृतार्थ मानते थे। ब्रिटेनकी जनतापर जो भयंकर विपत्ति आई थी, उससे छोटे-बड़ेका सारा भेद-भाव मिट गया। अतएव मैं तो कहूँगा कि अगर उस समय इंग्लैंडमें यह बात हर व्यक्तिके लिए देशभक्तिपूर्ण और आवश्यक थी कि वह सिलाई और ऐसे ही दूसरे छोटे-मोटे सैकड़ों काम करे, जो सामान्य परिस्थितियोंमें वह कभी नहीं करता था, तो यहाँ आज हरएक भारतीयके लिए यह बात उसकी अपेक्षा हजार-गुना ज्यादा देशभक्तिपूर्ण और आवश्यक है कि तमाम विदेशी कपड़ोंका त्याग करके वह सिर्फ खादी पहनने और इस प्रकार वह देशको एकमात्र धन्धा अर्थात् हाथ-कताईका धन्धा — सुलभ कराये, जिसे भारतके करोड़ों लोग अपना सकते हैं।

अंग्रेजी पुस्तकोंमें हमने पढ़ा है कि जब किसी आन्दोलनके विरोधी उसका उपहास करते हों तब कहा जा सकता है कि वह आन्दोलन आगे बढ़ रहा है और

जब उसपर विरोधी लोग क्षुब्ध होने लगें तब कहा जा सकता है कि उसका मनोवांछित प्रभाव हो रहा है। अगर 'टाइम्स ऑफ इंडिया' किसी भी तरह ब्रिटिश जनमतका प्रतिनिधित्व करता हो तो स्पष्ट है कि खादीका मनोवांछित प्रभाव हो रहा है।

इस लेखके लेखकने पाठकोंको यह विश्वास दिलाया है कि "भारतके दूसरे हिस्सोंकी तरह ही इलाहाबादकी जनता भी कांग्रेसके इस कफनको पसन्द नहीं करती।" हाँ, लेखकने खादीको कांग्रेसका कफन ही कहा है। लेकिन, अगर ऐसा है तो समझमें नहीं आता कि खादीपर यह रोष क्यों प्रकट किया जा रहा है। लेकिन, अब यह साबित करना तो कांग्रेसी नेताओंका ही काम है कि खादी कांग्रेसका "कफन" नहीं है, बल्कि यह वह चीज है, जो कांग्रेस और जन-साधारणके बीच अटूट सम्बन्ध कायम करती है, और इस प्रकार कांग्रेसको ऐसी प्रतिनिधि संस्था बनाती है, जैसी वह पहले कभी नहीं बन पाई थी।

लेकिन, यूरोपीयोंके साथ न्याय करनेके लिए मैं यह बता दूँ कि 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के लेखकने खादीके प्रति जो जहर उगला है, वह आम यूरोपीय जनमतका द्योतक नहीं है। मैं भारतमें रहनेवाले ऐसे बहुत-से यूरोपीयोंको जानता हूँ जो खादीके सन्देशमें विश्वास रखते हैं और कुछ ऐसोंको भी जानता हूँ जो खुद खादीका इस्तेमाल करते हैं। खादीका सन्देश यूरोप भी पहुँच गया है। दूर देश पोलैंडसे एक प्रोफेसरने खादीके बारेमें निम्नलिखित पत्र भेजा है:

> क्या आप ऐसा नहीं समझते कि अगर भारतीय वस्त्रको भारतके यूरोपवासी हमदर्दोंके हाथों बेचनेकी कोशिश की जाये तो अच्छा रहेगा? अगर आप मुझे अपने यहाँके कुछ कपड़े भेजें और उनपर ब्रिटिश मुद्रामें उनके दाम लिख दें तथा बिक्रीके पैसे भेजनेके लिए अंग्रेजीमें कोई एक पता लिख भेजें तो मैं इस चीजको छोटे पैमानेपर आजमा कर देख सकता हूँ। मेरा खयाल है कि अगर बिक्रीसे ज्यादा पैसे न मिले तो भी प्रचारकी दृष्टिसे यह काम बहुत लाभदायक साबित होगा और मुझे आशा है कि कमसे-कम पोलैंडमें तो आपके कार्यके प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करनेके लिए बहुत-से लोग भारतीय वस्त्र पहननेमें गर्व और सुखका अनुभव करेंगे . . . भारतकी मुक्तिके लिए सबकी सहानुभूति प्राप्त करनेका यह शायद सबसे कारगर तरीका है। खुद मेरे लिए कातनेका काम शुरू करना तो आसान नहीं है, लेकिन मैं घर-घर जाकर लोगोंको भारतीय वस्त्र — चाहे वह हमारे देशमें तैयार किये गये वस्त्रसे महँगा ही क्यों न हो — खरीदनेके लिए प्रेरित करनेका काम कर सकता हूँ।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १५-४-१९२६

३५१. कैसा लगता है ?

एक अंग्रेजने न्यूयार्कमे ४८ घंटे रहनेके वाद अपनी भावनाएँ अपने लन्दनवासी कुटुम्बियोंको इस तरह लिखकर भेजी हैं :

> हाँ, अब देखता हूँ, यह सब बिलकुल सच है — गगन-चुम्बी अट्टालिकाएँ, बर्फ डालकर ठंडा किया हुआ पानी, २५वीं मंजिलतक सीधा ले जानेवाली लिफ्ट, जमीनके भीतर बने हुए रास्ते, नीग्रो लोग; इससे पहले मुझे इन सब बातोंपर कभी विश्वास ही नहीं होता था। किन्तु मैं अभीतक इतना ही जान पाया हूँ। मुझे यहाँ ४८ घंटे हो गये; इससे पहले मेरे जीवनमें ४८ घंटे इस तरह कभी नहीं बीते — मैं इसे अब बहुत अधिक नहीं सह सकता। मुझे बहुत घुमाया गया है, मुझपर बहुत फब्तियाँ कसी गई हैं, मुझे दिनमें, रातमें बहुत बार भोज दिये गये हैं, मुझे रंगशालाओंके प्रदर्शन दिखाये गये हैं; मैं इतना थक गया हूँ कि आँख खुली होनेपर भी कुछ देख नहीं सकता। यह सब अविश्वनीय और अकल्पनीय है। मेरे हर एक क्षणका कार्यक्रम निश्चित है। मैं जहाँ भी होता हूँ मुझसे टेलीफोनसे पूछा जाता है कि क्या मैं अपना अगला कार्यक्रम पूरा करने जा रहा हूँ। मैं एक बहाना बनाकर अभी-अभी बच निकला हूँ। घंटे-सवा-घंटेमें भोजनके लिए बाहर जानेवाला हूँ। मुझसे तो बस पोस्टकार्डोंकी ही आशा रखिए। बाहर जमानेवाली सर्दी पड़ रही है और भीतर उबालनेवाली गर्मी है। . . .

अगर मैं कहूँ कि जब मैं पहली बार लन्दन पहुँचा तो मुझे वैसी ही बेचैनी महसूस हुई थी जैसी कि उपर्युक्त पत्रके लेखकको न्यूयार्क पहुँचनेपर हुई तो मुझे आशा है कि अंग्रेज लोग मेरे प्रति सहानुभूतिका अनुभव करेंगे और मैं जानता हूँ कि जब कोई ग्रामीण बम्बई जाता है तब अपने-आपको वहाँके शोर-गुल और हलचलके बीच पाकर वह भी उसी तरह भौंचक्का और हक्का-बक्का रह जाता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १५-४-१९२६

३५२. टिप्पणियाँ

मशीनोंसे मिलनेवाले सबक[1]

"करेंट थॉट" के फरवरी महीनेके अंकमें श्री रिचर्ड बी० ग्रेगका एक पत्र प्रकाशित हुआ है। यह पत्र उन्होंने "मशीनोंसे मिलनेवाले सबक" के बारेमें अपने एक मित्रको लिखा था। श्री ग्रेग अमेरिकाके एक भूतपूर्व वकील हैं, और उन्हें अपने देशका काफी व्यापक अनुभव है। अपने पत्रमें उन्होंने जिन चीजोंकी चर्चा की है, वे उन्ही चीजोंके बीच रहे और जिये हैं और एक समय उन्होंने उनके विकासमें भी योग दिया था। इसलिए, उन्होंने उनके बारेमें बहुत अधिकारपूर्वक लिखा है। वे कहते हैं :

> अधिकांश लोग मशीनोंके तात्कालिक परिणामोंको देखकर ही उन्हें स्वीकार कर लेते हैं और धीरे-धीरे बादमें चलकर उनके जो परिणाम होते हैं, उनकी ओरसे वे अपनी आँखें बन्द किये रहते हैं, लेकिन वास्तविकता यह है कि उनके ये दूरवर्ती परिणाम ही ज्यादा महत्त्वपूर्ण हैं।

इसके बाद उन्होंने मशीनोके बढ़नेसे पैदा होनेवाली बुराइयोंका उल्लेख किया है। इस सूचीमें सबसे पहला स्थान उन्होने चन्द लोगोंके हाथोंमें भौतिक शक्ति और सम्पत्तिके भारी केन्द्रीकरणको दिया है। श्री ग्रेगने ठीक ही कहा है :

> मशीनों और आधुनिक उद्योगोंने पैसेको करोड़ों लोगोंके हाथोंसे छीनकर उसकी व्यवस्था और नियन्त्रणका अधिकार अपेक्षाकृत बहुत थोड़े लोगोंके हाथोंमें रख दिया है और बैंक-प्रणाली तथा साखको आधुनिक प्रवृत्तियोंके कारण तो सारे साधनों, कारखानों और मिलोंके नियन्त्रणका अधिकार और भी कम लोगोंके हाथोंमें चला गया है।

क्या हम नहीं देख रहे हैं कि हमारे देशमें भी यही प्रक्रिया चल रही है? क्या यहाँ भी करोड़ों लोगोंको चूसकर उनके झोपड़ोंसे हजारों मील दूर स्थित बड़े-बड़े उद्योगोंका पेट नहीं भरा जा रहा है? श्री ग्रेग कहते हैं :

> यूरोप, अमेरिका और एशिया तथा आफ्रिकाके अधिकांश हिस्सोंमें चल रहे सारे उद्योगोंका अन्तिम और वास्तविक नियन्त्रण जिन लोगोंके हाथोंमें है, उनकी संख्या शायद १,५०० से अधिक न होगी, कदाचित् कम ही हो।
>
> ऐसी व्यापक शक्तिका लोभ संवरण करना मानव-स्वभावके लिए शक्य नहीं है। इसका नतीजा एक ओर तो अत्याचार, झूठे बड़प्पन, अहंकार, लालच,

१. गांधीजीने इसे ११ अप्रैल, १९२६ को बोलकर लिखवाया था। देखिए "पत्र: रिचर्ड बी० ग्रेगको", ११-४-१९२६।

स्वार्थपरता और निर्मम स्पर्धाके रूपमें प्रकट होता है और दूसरी ओर स्वतन्त्रताके अपहरण, अरक्षाकी भावना, तरह-तरहके भय, स्वावलम्बन और आत्मनिर्भरताके ह्रास, पतन, दरिद्रता, तथा मानवीय गरिमा और आत्मसम्मानके क्षयके रूपमें सामने आता है।

कारखानों आदिमें दुर्घटनाएँ हो जानेसे मरनेवालों और अपंग तथा लूले-लंगड़े हो जानेवालोंकी संख्या, युद्धमें मरनेवालों तथा अपंग और लूले-लंगड़े हो जानेवालोंकी अपेक्षा बहुत अधिक है। प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे आधुनिक उद्योग प्रणालीके कारण होनेवाले रोगों और शारीरिक क्षयको देखकर दंग रह जाना पड़ता है। कारण, बड़े-बड़े नगर बसनेका कारण उद्योग ही है और धुआँ, धूल, शोरगुल, दूषित वायु, सूर्यके प्रकाशका अभाव, घरसे बाहरकी जिन्दगी, गन्दी बस्तियाँ, रोग, वेश्यावृत्ति और अस्वाभाविक जीवन, यही तो इन नगरोंकी खूबियाँ हैं।

विज्ञापनके पीछे जितना पैसा बरबाद किया जाता है, वह सचमुच "हैरतमें डालनेवाला" है।

ब्रिटिश इन्कारपोरेटेड सोसाइटी ऑफ एडवर्टीजमेंट कंसल्टेंट्सके अध्यक्षने हालमें हिसाब लगाकर देखा है कि सिर्फ ब्रिटेनमें विज्ञापनोंपर प्रति वर्ष १७५,०००,००० पौंड खर्च किया जाता है।

इसकी दूसरी उल्लेखनीय विशेषता "परोपजीविता" है।

मनुष्यको मशीनका गुलाम बना दिया जाता है। धनी और मध्यम वर्गके लोग असहाय हो जाते हैं और वे श्रमिक वर्गोंकी मेहनतके आसरे जीते हैं तथा श्रमिक वर्गके लोगोंमें भी चूँकि खास-खास काम करनेकी ही कुशलता और क्षमता रह जाती है, इसलिए वे भी असहाय हो जाते हैं। शहरमें रहनेवाला सामान्य व्यक्ति अपनी जरूरतका कपड़ा तैयार नहीं कर सकता और न अपनी जरूरतका खाद्य पदार्थ पैदा या तैयार कर सकता है। नगर, गाँवोंके आसरे जीने लगते हैं; औद्योगिक राष्ट्र कृषक-राष्ट्रोंके श्रमकी बदौलत पलते हैं। समशीतोष्ण जलवायुमें रहनेवाले लोग उत्तरोत्तर गर्म देशोंके लोगोंपर निर्भर होते जाते हैं। सरकारें जनताकी कमाईके सहारे चलती हैं, सेना नागरिकोंका कमाया हुआ खाती है। आमोद-प्रमोदके मामलेमें भी लोग परावलम्बी और निष्क्रिय हो जाते हैं। अपने रंजनकी सृष्टि स्वयं करनेके बजाय वे उसे बाहरी साधनोंसे पाना चाहते हैं। वे सिनेमा-घरों, रंगशालाओं और संगीत भवनोंमें उमड़ पड़ते हैं। वे दूसरोंको क्रिकेट आदि खेलते हुए देखते हैं।

इस परोपजीविताके साथ-साथ बहुत अधिक गैर-जिम्मेवारी भी आ गई है। उद्योगपति या बैंकोंके स्वामी यूरोपमें बैठकर ऐसे हुक्म निकालते हैं जो मध्य आफ्रिकाके नीग्रो लोगोंके जीवनको गम्भीर रूपसे प्रभावित करते हैं।

उपभोक्ताओंकी भी दशा इससे कुछ अच्छी नही है। उन्होने भी उत्तरदायित्वकी भावना खो दी है।

> जब मैं फ्रांसके किसी जलपानगृहमें बैठा हुआ अपने सूपमें काली मिर्चें डालता हूँ तब क्या क्षण-भरको रुककर यह सोचता हूँ कि जावामें किस बेचारे कुलीने जो किसी ज्वरसे पीड़ित रहा होगा और जिसे शायद बागानोंकी देख-भाल करनेवाले निर्मम अधिकारियोंके अपमानजनक और क्रूर व्यवहारका भी शिकार बनना पड़ा होगा, इन्हें इकट्ठा करनेमें कितना कष्ट झेला होगा?

लेकिन इस तथ्यपूर्ण पत्रसे और ज्यादा अंश उद्धृत करनेका लोभ मुझे संवरण करना चाहिए। मैंने जो नमूने पेश किये हैं, उन्हे देखकर अगर पाठकोंमें और अधिक जाननेकी जिज्ञासा जग पडी हो तो मैं उनसे कहूँगा कि वे मूल पत्र देखें। पाठक यह न समझें कि श्री ग्रेग सभी मशीनोंके खिलाफ हैं। वे मशीनोंकी बेकाबू बाढ़के खिलाफ हैं। उनका कहना है कि जिस प्रकार हम अपने मनोवेगोपर अकुश रखते हैं और उनका नियमन करते हैं, उसी प्रकार हमें मशीनोके उपयोगका भी नियमन करना चाहिए और उसकी मर्यादाओंका पालन करना चाहिए। मशीनोंका उपयोग वहीतक ठीक है, जहाँतक उससे सबका हित-साधन होता है।

कैसे सहायता करें?

लन्दनमें रहनेवाले एक भारतीय सज्जन लिखते हैं :

> मुझसे हर आदमी पूछता है कि अमेरिका, जर्मनी, फ्रांस, इटली और इंग्लैंडमें रहनेवाले भारतको अपना उद्देश्य पूरा करनेमें कैसे सहायता दे सकते हैं? वे हमारे स्वातन्त्र्य संघर्षमें हमें किस तरह मदद पहुँचा सकते हैं? वे यह भी पूछते है कि भारत दुनियाको क्या-कुछ सिखा सकता है? क्या संघर्ष-रत लोगोंके लिए भारतका कोई सन्देश है? और अगर है तो वह विश्व-शान्तिकी स्थापनामें क्या योग दे सकता है?

पहले प्रश्नका उत्तर देना बहुत आसान है। अगर ईश्वर भी उन्हींकी सहायता करता है, जो अपनी सहायता आप करते हैं, तब फिर मनुष्य जिनकी शक्ति और सामर्थ्यकी इतनी मर्यादाएँ हैं, एक-दूसरेकी सहायता तबतक कैसे कर सकते हैं जबतक कि वे अपनी सहायता आप ही करनेको तैयार नही हैं? लेकिन, आखिरकार दुनियामें सही लोकमत तैयार करनेका कुछ महत्त्व तो है ही और इसमें सन्देह नही कि उस लोकमतका प्रभाव दिन-दिन बढ़ता जा रहा है। श्री पेजकी पुस्तिकासे मैं किसी हदतक सारांश-रूपमें जो परिच्छेद 'यंग इंडिया' में उद्धृत कर रहा हूँ,[1] उनसे स्पष्ट हो जाता है कि गलत जानकारी दे-देकर लोगोंको किस तरह गुमराह किया गया। उनकी सरकारें युद्धके दौरान उन्हें सरासर झूठी बातें बताती रहीं। इसलिए आश्रम देखनेके लिए आनेवाले हरएक यूरोपीय भाईसे मैंने कहा है कि वे हमारे आन्दोलनका

१. देखिए खण्ड २९, पृष्ठ २५६-५७।

अध्ययन करें — लेकिन अखबारी खबरोंके आधारपर नहीं, बल्कि मूल लेखोंके आधार-पर। कारण, जिन बातोंमें अखबारोंकी दिलचस्पी नहीं होती, उनके बारेमें उनमें सही और पूरी जानकारी नहीं दी जाती। मुझे दुःखके साथ कहना पड़ता है कि अंग्रेजी सरकारकी प्रकट और गुप्त, दोनों तरहकी एजेंसियाँ परिस्थितिका बिलकुल गलत चित्र पेश करनेमें लगी हुई हैं। इसकी गुप्त एजेंसी अत्यन्त संगठित है, इसके सदस्योंको मोटी-मोटी तनख्वाहें मिलती हैं। इस एजेंसी द्वारा फैलाये गये झूठोंका निराकरण भारतका कोई भी देशभक्त-संगठन नहीं कर सकता। इस एजेंसीकी शनि-दृष्टिसे एशिया, बल्कि विश्वका महान् कवि[1] भी नहीं बच सका। ब्रिटिश सरकारकी ओरसे जिन बातोंका प्रचार किया जा रहा है, उनका खण्डन अगर कर सकते हैं तो वह विभिन्न यूरोपीय देशोंके निष्पक्ष और समझदार लोग ही कर सकते हैं।

दूसरे सवालका जवाब देना जरा ज्यादा कठिन है।

अगर यह पूछा गया होता कि भारतने दुनियाको क्या सिखाया है तो मैं प्रश्नकर्त्तासे मैक्समूलर-कृत, 'व्हाट इंडिया केन टीच अस?' ('भारत हमें क्या सिखा सकता है?') पढ़नेको कहता। लेकिन, यहाँ सवाल भारतके अतीतके बारेमें नहीं, बल्कि वर्तमानके बारेमें पूछा गया है। इसलिए मैं स्पष्ट शब्दोंमें स्वीकार करूँगा कि अभी तो भारत दुनियाको कुछ नहीं सिखा सकता। वह विशुद्ध रूपसे अहिंसात्मक और सत्यनिष्ठ तरीकेसे स्वतन्त्रता प्राप्त करनेकी कोशिश कर रहा है। उस आन्दोलनसे सम्बद्ध हममें से कुछ लोगोंका उन तरीकोंमें अटूट विश्वास है, लेकिन उस विश्वासको भारतके बाहरके लोगोंके बीच आनन-फानन फैला देना सम्भव नहीं है। अभी तो यह कहना भी सम्भव नहीं है कि भारतके सभी शिक्षित लोग भी वैसा विश्वास करते हैं। लेकिन, इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि भारत अहिंसात्मक तरीकोंसे अपनी स्वतन्त्रता फिर प्राप्त कर लेता है तो इसका मतलब यह होगा कि स्वातन्त्र्य संघर्षमें लगे अन्य देशोंतक उसने अपना सन्देश पहुँचा दिया है, और उससे भी बढ़कर शायद यह कि उसने विश्व-शान्तिमें ऐसा योग दिया है, जैसा आजतक दुनियामें किसी देशने नहीं दिया है।

खादीके उत्पादन और बिक्रीके मासिक आँकड़े

जनवरी महीनेमें खादीके उत्पादन और बिक्रीके सम्बन्धमें अबतक जो आँकड़े प्राप्त हुए हैं, नीचे दिये जा रहे हैं।[2] मुझे पूरी आशा है कि अन्य प्रान्त या संस्थाएँ भी, जिन्होंने अबतक अपने आँकड़े नहीं भेजे हैं, शीघ्र ही उन्हें भेज देंगी ताकि हम अद्यतन आँकड़े दे सकें।

आंध्रके आँकड़े अधूरे हैं। ६१ में से सिर्फ २५ केन्द्रोंने प्रान्तीय कार्यालयको अपनी रिपोर्ट भेजी है। बम्बईके आँकड़ोंमें सिर्फ प्रिंसेस स्ट्रीट, खादी भण्डार और चरखा संघ भण्डार, १४, दादी सेठ अगयारी लेन, कालबादेवी रोड़ और राष्ट्रीय स्त्री-सभाके ही आँकड़े शामिल हैं। सैंडहर्स्ट रोड खादी भण्डारके आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं। बंगालके

१. रवीन्द्रनाथ ठाकुर।

२. आँकड़े यहाँ नहीं दिये गए हैं।

आँकड़ोंमें खादी प्रतिष्ठान और अभय आश्रमके आँकड़े दिये गये हैं। तमिलनाडके आँकड़े पूरे हैं और विक्रीके आँकड़ोंको इस दृष्टिसे सुधार लिया गया है, जिससे विभिन्न शाखा भण्डारों आदिके बीच आपसमें की गई बिक्रीका हिसाब इन आँकडोंमें शामिल न हो पाये। संयुक्त प्रान्तके आँकड़ोंमें सिर्फ गांधी आश्रम, बनारस और कानपुर भण्डारके आँकड़े ही आते हैं। इलाहाबाद भण्डारके आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं, लेकिन वहाँ प्रतिमास औसतन ७०० रुपयेकी बिक्री होती है। दिल्लीमें सिर्फ हापुड़के श्रीयुत चिरजीलाल प्यारेलालके आँकड़े उपलब्ध हैं और स्वराज्य भण्डार तथा श्रीयुत विश्वम्भर दयालके खादी भण्डारके आँकड़े अभीतक नहीं मिल पाये हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १५-४-१९२६

३५३. पत्र : के० वेंकटेशनको

साबरमती आश्रम
१५ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। खेदके साथ कहना पड़ता है कि आपको 'यंग इंडिया' नि:शुल्क भेज सकना सम्भव नहीं है। लेकिन, अगर आप आधा चन्दा अर्थात् २½ रुपये भेज देंगे तो मैं व्यवस्थापकसे आपकी सोसाइटीको उसकी प्रति भेजनेको कहूँगा। नवजीवन प्रेससे मेरी कोई भी पुस्तक अंग्रेजीमें प्रकाशित नहीं हुई है। सबका प्रकाशन अलग-अलग प्रकाशकोंने किया है। इसलिए आप मुफ्त या रियायती दरोंपर पुस्तकें भेजनेके लिए उन्हींको लिखें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० वेंकटेशन
अवैतनिक मंत्री
आन्ध्र ड्रैमेटिक एण्ड लिटरेरी सोसाइटी
क्वार्टर नं० ९, एम० रोड
डाकघर — जमशेदपुर
(बरास्ता) टाटानगर, बी० एन० रेलवे।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४५७) की माइक्रोफिल्मसे।

३५४. पत्र: धनगोपाल मुखर्जीको[1]

साबरमती आश्रम
१६ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैंने आपको उसी पतेपर लिखा, जो आपने दिया था। आपका यह अनुमान सही है कि आप जो जीवनी लिखना चाहते हैं उसकी सामग्री एकत्र करनेके लिए खास तौरपर आपका यहाँ आना मुझे उचित नहीं लगता।

मैं 'यंग इंडिया' के प्रबन्धकको पत्र लिखकर उन्हें आपके निर्देश सूचित करने जा रहा हूँ। धन्यवाद। मैं बिलकुल ठीक हूँ। लगातार यात्रा करनेका सिलसिला तोड़ देनेसे जो आराम मिल रहा है, उससे मुझे काफी लाभ हो रहा है।

हृदयसे आपका,

धनगोपाल मुखर्जी
१९०४, टाइम्स बिल्डिंग
टाइम्स स्क्वेयर
न्यूयार्क सिटी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १२४६५) की फोटो-नकलसे।

१. यह पत्र धनगोपाल मुखर्जीके उस पत्रके उत्तरमें भेजा गया था जिसमें उन्होंने लिखा था: "कोई तीन हफ्ते पहले आपका तार मिला था, जिसमें आपने कहा था, 'पत्रकी प्रतीक्षा करें?' लेकिन, अबतक तो पत्र आया नहीं. . . मुझे लगता है, इसका मतलब यह हुआ कि मैं आपसे मिल नहीं सकता— कमसे-कम अभी. . . उन लोगोंने मुझे अखबार भेजना क्यों बन्द कर दिया है? . . . क्या आप प्रबन्धकसे मुझे मेरे चन्देके बारेमें लिखनेको कहेंगे? वे पहली किस्तसे ही आपके संस्मरण भेज दें।" (एस० एन० १२४६५)

३५५. पत्र : गिरिराज किशोरको

साबरमती आश्रम
१६ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। पुनर्विवाह न करनेके आपके निर्णयके लिए आपको बधाई। पता नहीं, आप यहाँ सुखी रह पायेंगे या नहीं। यहाँ तो हर आश्रमवासीसे कड़ी मेहनतकी अपेक्षा रखी जाती है। पाखाना उठाने, खेतमें काम करने आदिसे शुरू करके धुनाई, कताई और बुनाईके काममें कुशलता प्राप्त करनी होती है। मेरा व्यक्तिगत मार्ग-दर्शन तो आपको कम ही मिल पायेगा। अगर यह जीवन आपको रास आये तो भीड़-भाड़, जो इन दिनों बहुत ज्यादा है, कम होते ही आपको बुलाया जा सकेगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत गिरिराजकिशोर,
मार्फत श्रीयुत आनन्दीलालजी
स्टेशन मास्टर
मोरक बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४५९) की माइक्रोफिल्मसे।

३५६. पत्र : गोपालकृष्ण देवधरको

साबरमती आश्रम
१६ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

आपके दोनों पत्र मिले। उनके मजमून मैंने मनोरमाको समझा दिये। वह कहती है कि श्रीमती देवधरके उत्तरकी प्रतीक्षा करेगी। आपके सुझावपर उसने उन्हें पत्र लिखा है। लगता है, यहाँसे जानेकी उसकी इच्छा नहीं हो रही है। लेकिन, अगर आप और श्रीमती देवधर उसको लिखें तो शायद सेवासदन चली जाये।

मैं जानता हूँ कि वह वहाँका पूरा शिक्षण-प्रशिक्षण प्राप्त करके जितनी कमाई कर सकेगी, उतनी कमाई करने लायक यहाँ रहनेसे तो कभी भी नहीं बन पायेगी। मैंने उसे यह बात बता भी दी है। लेकिन यहाँ उसे अच्छा लग रहा है, शायद इसीलिए वह यहाँसे कहीं जाना नहीं चाहती। हाँ, अगर आप उसे कोई निश्चित निर्देश दें तो वह जा सकती है, क्योंकि जैसे ही मैंने उससे आपके पत्रकी चर्चा की,

उसने कहा कि आपने सीधे तो उससे कुछ कहा नहीं है, और वह श्रीमती देवधरके जवाबकी राह देख रही है। आशा है, वे स्वस्थ और प्रसन्न होंगी। आप उनसे कह दें कि वे जब कभी आश्रम आना चाहें, आ सकती हैं। इसे वे अपना ही घर समझें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत गोपालकृष्ण देवधर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४६०) की माइक्रोफिल्मसे।

३५७. पत्र : सुरेशचन्द्र बनर्जीको

साबरमती आश्रम
१६ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

अभय आश्रममें तैयार चीजोंकी कीमतोंकी सूची पढ़कर लोगोंने जो पत्र लिखे, उसका एक नमूना साथमें भेज रहा हूँ। क्या आप बाहरसे आये आर्डरोंपर माल देना चाहते हैं। अगर देना चाहते हों तो इस पत्र-लेखकको लिखिए और मुझे भी सूचित कीजिए ताकि जिन दूसरे लोगोंने पत्र लिखे हैं, उन्हें भी तदनुसार सूचना दी जा सके।

आशा है, बम्बईमें आपको पैसा आसानीसे मिल गया होगा।

हृदयसे आपका,

डॉ० सुरेशचन्द्र बनर्जी
अभय आश्रम, कोमिल्ला

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४६१) की माइक्रोफिल्मसे।

३५८. पत्र : प्यारेलाल नैयरको

साबरमती आश्रम
१६ अप्रैल, १९२६

प्रिय प्यारेलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। कुल मिलाकर सोचनेपर लगता है कि अगर डॉ० मेहता कोई पक्का निर्देश नहीं भेजते तो मथुरादासके लिए देवलालीमें बने रहना भी शायद उतना ही अच्छा होगा। लेकिन, अगर खुद उसीकी इच्छा हो और उसमें पर्याप्त शक्ति हो तो मैं जानता हूँ कि मई महीना बितानेके लिए सिंहगढ़ एक आदर्श स्थान है। वहाँ उसके रहनेका बिलकुल अलग प्रबन्ध हो सकता है। उसे किसीसे मिलनेकी जरूरत नहीं होगी। वहाँ पूरी शान्ति है, धूल-गर्द कुछ नहीं है और स्थान बहुत ठंडा

भी है। पानी बहुत हल्का है। वहाँ जानेसे काकाको बहुत लाभ हुआ है। लेकिन, इस सम्बन्धमें निर्णय तो सिर्फ मथुरादासको ही लेना है।

देवदास अब यहाँ आ गया है, बिलकुल ठीक है। वह दूध ले रहा है। बहुत पीला और कमजोर दिखता है, लेकिन अब चूँकि उसने दूध लेना शुरू कर दिया है, उसे शीघ्र ही तन्दुरुस्त और ठीक हो जाना चाहिए। मोतीलालजी शायद अगले हफ्ते यहाँ होंगे। इस सप्ताह मेरा वजन एक पौंड बढ़ा है।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत प्यारेलाल नैयर
देवलाली

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४६२) की माइक्रोफिल्मसे।

३५९. पत्र: मु० रा० जयकरको

साबरमती
१६ अप्रैल, १९२६

प्रिय श्री जयकर,

मेरे तारके[1] जवाबमें भेजा आपका तार मिला। मैंने तदनुसार सर्वश्री केलकर, मुंजे और अणेको तार[2] भेज दिये हैं। यह भी बता दूँ कि इस प्रस्तावित सम्मेलनके बारेमें कल प्राप्त हुए मोतीलालजीके तारसे जितना कुछ ज्ञात हुआ, उससे आगे मुझे कोई जानकारी नही है। तारमें उन्होंने कहा है कि वे यह सम्मेलन कराना चाहते हैं। तिथियाँ मैं ही निश्चित करूँ और फिर उसकी सूचना आपको दे दूँ। सो ऐसा मानकर कि तिथियोंके अलावा, इस सम्मेलनके विषयमें आपको सब-कुछ मालूम है, मैंने आपको तिथियाँ सूचित कर दी। अब आपके तारके अनुसार मैंने तीनों मित्रोंको आगामी मंगलवार और बुधवारकी तिथियाँ बताते हुए तार[3] कर दिये हैं। ऐसा खयाल है कि मैं २२ तारीखको मसूरीके लिए रवाना होऊँगा। अगर ये तिथियाँ उपयुक्त नही जान पड़ी और यह देखते हुए कि सम्मेलनमें बहुत कम लोग आमन्त्रित हैं, यदि उसमें मेरी उपस्थिति जरूरी समझी गई तो यह सम्मेलन शायद मसूरीमें भी हो सकता है।

मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० १९४६३) की फोटो-नकलसे।

१, २ व ३. ये तार उपलब्ध नहीं हैं।

३६०. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

साबरमती आश्रम
शुक्रवार, १६ अप्रल, १९२६

भाई श्री घनश्यामदास,

आपका पत्र और २६ हजार रुपयेका चेक मिला है। हिन्दु-मुसलमान झगड़ेके आपने जो प्रश्न पूछे हैं उसका उत्तर मैं देता हूँ, परन्तु अखबारोंके लिये नहीं। मैंने आपको कहा था कि आजकल हिन्दु जनतापर या तो हिंदु जनताके उस विभागपर, कि जो इन झगड़ोंमें दखल देता है, मेरा कोई असर नहीं है। इसलिए मेरे कहनेका अनर्थ हो जाता है। इसलिये मैं शांत रहना ही मेरा कर्त्तव्य समझता हूँ।

(१) जुलूस यदि सरकारने बन्द कर दिये हैं और कोई धार्मिक कार्यके लिये जुलूस आवश्यकता हो तो सरकारकी मनाई होते हुए भी जुलूस निकालना मैं धर्म समझूँगा। परन्तु जुलूस निकालनेके आगे मैं मुसलमानोंकी मुश्किलकी[1] बात कर लूँगा। और इतने भी विनय करनेपर वह न माने तो मैं जुलूस निकालूँगा और वे मारपीट करें उसको बरदाश्त करूँगा। यदि इतनी अहिंसाकी मेरेमें शक्ति न हो तो मैं लड़ाईका सामान साथ रखकर जुलूस निकालूँगा।

(२) मुसलमान सईस इ० नौकरोंके बारेमें मैं किसीको केवल उसके मुसलमान होनेके कारण नहीं निकालूँगा। परंतु किसी मुसलमानको मैं नहीं रखुंगा जो वफादारी-से अपना काम नहीं करेगा, या तो मेरेसे उद्दंड बनेगा। मेरा ऐसा अभिप्राय नहीं है कि मुसलमान अन्य कौमोंसे ज्यादे कृतघ्न हैं। ज्यादह लड़ाकु हैं यही बात मैंने उनमें देखी। किसी मुसलमानका मुसलमान होनेके कारण ही त्याग करना मुझको तो बहुत ही अयोग्य मालुम होता है।

(३) जो हिन्दु शांतिमार्गको नापसंद करता है या तो उसके लिये तैयार नहीं है, उसको लड़ाई करनेकी शक्ति हासिल कर लेनी चाहिये।

(४) यदि सरकार मुसलमानोंका पक्षपात करती है तो हिन्दुओंको बेफिकर रहना चाहिये। सरकारसे बेपरवा रहें। खुशामद न करें, परन्तु अपनी शक्तिपर निर्भर होकर स्वाश्रयी बनें। जब हिंदु इतना हिंमतवान बन जायगा तब सरकार अपने आप तटस्थ रह जायगी। और मुसलमान सरकारका सहारा लेना छोड़ देगा। सरकारकी मदद लेनेमें न धर्मका पालन होता है, न कुछ पुरुषार्थ बनता है। मेरी तो सलाह है कि आप इस चीजको तटस्थतासे देखें और कार्य करें। इसीमें हिंदु जातिका भला है, हिंदु धर्मकी सेवा है। यह मेरा दीर्घकालका — कमसे-कम ३५ वर्षका — अनुभव है। झगड़ा होनेके समय जिस शांतिसे और वीरतासे आपने काम किया वह मुझको बहुत

१. यहाँ साधन-सूत्रमें यह शब्द ठीक पढ़ा नहीं जाता। प्रस्तुत शब्द अनुमानपर आधारित है।

ही प्रिय लगा। इसी शांतिको कायम रखकर आप जो कुछ योग्य हो वह करें। यदि मेरे उत्तरमें कही भी स्पष्टताका अभाव है तो अवश्य दुबारा पूछिएगा।

जो लोन चरखा सघको देनेका आपने कहा है उसमें से कुछ हिस्सा बम्बईके मालपर लेनेका इरादा है। बंबईमें चरखासघके दो गोडाऊन हैं। आप चाहें तो उसमें से आप एकका कबजा ले ले, और इसीमें लोन कवर[1] करनेके लिये जितना माल चाहिए इतना रखा जाय; और उससे जादा माल भी आप समत हो तो रखना चाहते हैं, जिससे एक गोडाऊनका किराया हम बचा सकें। और वह माल हम जब चाहें तब ले सकें ऐसा प्रबध होना चाहिये। जो माल चरखा संघ सीक्योरिटिके[2] बाहर रखे उसमें हमेशा वधघट होनी होगी इसलिये हमेशा उसमें प्रवेश करनेका सुभीता मिलना चाहिए।

आपका,
मोहनदास

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६१२५) से।
सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

३६१. पत्र : मणिलाल डाक्टरको

साबरमती आश्रम
शुक्रवार, १६ अप्रैल, १९२६

भाईश्री मणिलाल,

आपका पत्र मिला। मेरी यह धारणा थी अवश्य कि मैं जेकीको बच्चोंका कब्जा सौंपनेकी बात समझा सकूँगा लेकिन बादमें महसूस हुआ कि मैंने अपने बूतेसे बाहरकी बात की थी। जिस बातपर तुम दोनोके विचार मेल खायें उसी बातपर मैं अमल कर सकता हूँ। इसलिए मेरा वर्तमान प्रयत्न थोड़ी-बहुत मदद प्राप्त करनेतक ही सीमित है। आपके विश्लेषणके साथ मै सहमत नही हो सकता। मेरा अनुभव इससे विपरीत है। व्यक्तियोमें दोष तो सब जगह देखने में आते हैं। अपने लोगोंमें जो कुछेक दोष दीखते हैं, वे हमारी गुलामीकी परिस्थितिका परिणाम है। और हमारी गुलामी भी कोई पाँच-पच्चीस वर्षकी थोड़े ही है? लेकिन हमारे लिए इस बहसमें पड़ना निरर्थक होगा। आपके विचार अत्यन्त दृढ़ हो गये हैं। मै जानता हूँ कि मुझमें ऐसी शक्ति नही है कि उन्हें बदल सकूँ। मै तो इतना ही चाहता हूँ कि कैसे भी हो आपका मन स्वस्थ हो जाये और आप शान्तिसे रहें। आपपर जो बीती है उसमें कुछ भी बाकी नही रहा है।

गुजराती प्रति (एस० एन० १०८८८ ए) की माइक्रोफिल्मसे।

१ व २. मूलमें ये शब्द अंग्रेजीमें लिखे हैं।

३६०. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

साबरमती आश्रम
शुक्रवार, १६ अप्रल, १९२६

भाई श्री घनश्यामदास,

आपका खत और २६ हजार रुपयेका चेक मिला है। हिन्दु-मुसलमान झगड़ेके आपने जो प्रश्न पूछे हैं उसका उत्तर मैं देता हूँ, परन्तु अखबारोंके लिये नहीं। मैंने आपको कहा था कि आजकल हिन्दु जनतापर या तो हिंदु जनताके उस विभागपर, कि जो इन झगड़ोंमें दखल देता है, मेरा कोई असर नहीं है। इसलिए मेरे कहनेका अनर्थ हो जाता है। इसलिये मैं शांत रहना ही मेरा कर्त्तव्य समझता हूँ।

(१) जुलूस यदि सरकारने बन्द कर दिये हैं और कोई धार्मिक कार्यके लिये जुलूस आवश्यकता हो तो सरकारकी मनाई होते हुए भी जुलूस निकालना मैं धर्म समझुँगा। परन्तु जुलुस निकालनेके आगे मैं मुसलमानोंकी मुश्किलकी[1] बात कर लूँगा। और इतने भी विनय करनेपर वह न माने तो मैं जुलूस निकालुँगा और वे मारपीट करें उसको बरदाश्त करूँगा। यदि इतनी अहिंसाकी मेरेमें शक्ति न हो तो मैं लड़ाईका सामान साथ रखकर जुलूस निकालुँगा।

(२) मुसलमान सईस ई० नौकरोंके बारेमें मैं किसीको केवल उसके मुसलमान होनेके कारण नहीं निकालुँगा। परंतु किसी मुसलमानको मैं नहीं रखुँगा जो वफादारी-से अपना काम नहीं करेगा, या तो मेरेसे उद्दंड बनेगा। मेरा ऐसा अभिप्राय नहीं है कि मुसलमान अन्य कोमोंसे जादे कृतघ्न हैं। ज्यादह लड़ाकु हैं यही बात मैंने उनमें देखी। किसी मुसलमानका मुसलमान होनेके कारण ही त्याग करना मुझको तो बहुत ही अयोग्य मालुम होता है।

(३) जो हिन्दु शांतिमार्गको नापसंद करता है या तो उसके लिये तैयार नहीं है, उसको लड़ाई करनेकी शक्ति हासिल कर लेनी चाहिये।

(४) यदि सरकार मुसलमानोंका पक्षपात करती है तो हिन्दुओंको बेफिकर रहना चाहिये। सरकारसे बेपरवा रहें। खुशामद न करें, परन्तु अपनी शक्तिपर निर्भर होकर स्वाश्रयी बनें। जब हिंदु इतना हिंमतवान बन जायगा तब सरकार अपने आप तटस्थ रह जायगी। और मुसलमान सरकारका सहारा लेना छोड़ देगा। सरकारकी मदद लेनेमें न धर्मका पालन होता है, न कुछ पुरुषार्थ बनता है। मेरी तो सलाह है कि आप इस चीजको तटस्थतासे देखें और कार्य करें। इसीमें हिंदु जातिका भला है, हिंदु धर्मकी सेवा है। यह मेरा दीर्घकालका — कमसे-कम ३५ वर्षका — अनुभव है। झगड़ा होनेके समय जिस शांतिसे और वीरतासे आपने काम किया वह मुझको बहुत

१. यहाँ साधन-सूत्रमें यह शब्द ठीक पढ़ा नहीं जाता। प्रस्तुत शब्द अनुमानपर आधारित है।

३६४. पत्र: दयालजीको

साबरमती आश्रम
शुक्रवार, १६ अप्रैल, १९२६

भाईश्री ५ दयालजी,

आपके पत्रसे मैं देखता हूँ कि सूरतके विनय मन्दिरके[1] लिए जो लोग चन्दा देते हैं, उनकी सभा अभी शीघ्र ही होनेवाली है। जो भाई पैसा देते हैं उन्हें मेरी ओरसे यह सन्देश दीजिए:

विनय मन्दिर सुचारु-रूपसे चले और उसमें मूल सिद्धान्तोंपर अच्छी तरह अमल किया जाये इस उद्देश्यसे मन्दिरकी प्रबन्ध समितिने उसका प्रबन्ध मुझे सौंपनेका निश्चय किया है और मैंने प्रबन्ध अपने हाथमें ले लेना स्वीकार भी किया है। मैं भाई वल्लभभाईके साथ मिलकर इस सम्बन्धमें एक विशेष समिति बनानेकी व्यवस्था भी कर रहा हूँ। यह बात सर्वविदित है कि मैं स्वयं तो देखरेख नहीं कर सकता इसलिए समिति – जैसा कुछ साधन तो चाहिए ही। मैंने भाई नरहरिको[2] जबतक और प्रबन्ध नहीं हो जाता तबतक आचार्यपद लेनेके लिए लिखा है। इस विषयपर और अधिक विचार कुलनायक भाई नृसिंह प्रसादजीके साथ कर रहा हूँ। मुझे उम्मीद है कि चंदा देनेके बारेमें सब भाइयोंने १९२० में जो प्रस्ताव पास किया था उसके अनुसार ही वे चन्दा देते रहेंगे। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि मन्दिरके प्रबन्धका हिसाब-किताब अच्छी तरह रखा जाये, इसका बन्दोबस्त अवश्य किया जायेगा।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९४६५)की माइक्रोफिल्मसे।

१. माध्यमिक पाठशाला।
२. नरहरि परीख।

३६५. पत्र : आर० एस० अय्यरको

साबरमती आश्रम
१७ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र और सूतका पैकेट भी मिला। कताई विभागके प्रबन्धकका कहना है कि यह सूत महीने-भर बाद ही बुना जा सकेगा। इस विभागमें कामकी बराबर भरमार रहती है और बाहरसे आये आर्डरोंको अपनी बारीका इन्तजार करना पड़ता है।

५० इंच चौड़ाईकी खादी प्रति गज ६½ आनेके हिसाबसे बुनी जाती है। आपका उत्तर आनेपर आपके आर्डरको बारीमें लगा दिया जायेगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत आर० एस० अय्यर
मार्फत, 'टाइम्स ऑफ इंडिया'
बम्बई

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४७१) की माइक्रोफिल्मसे।

३६६. पत्र : कृष्णदासको

साबरमती आश्रम
१७ अप्रैल, १९२६

प्रिय कृष्णदास,

यही सोच रहा था कि इतने दिनोंसे तुमने कोई चिट्ठी-पत्री क्यों नही लिखी। अब जान गया। यहाँसे बतानेको कोई खास खबर तो है नहीं। देवदासको पीलिया हो गया था, इसलिए वह यहाँ आ गया है और उसका काम सँभालनेके लिए प्यारेलाल देवलाली चला गया है। प्रभुदास लोनावलासे लौट आया है। अभी भी उसकी काफी हिफाजत और देखभालकी जरूरत है। देवदास अब पहलेसे काफी अच्छा है, मगर बहुत कमजोर हो गया है। जमनाबहन अभी आज ही यशवन्त प्रसादके साथ आई है। मीरा ठीक-ठाक है। वह सुरेन्द्रसे हिन्दी नियमपूर्वक सीख रही है। आशा है तुम्हें 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' नियमित रूपसे मिल रहे होंगे।

तुम्हारा,

श्रीयुत कृष्णदास
दरभंगा

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४७२)की माइक्रोफिल्मसे।

३६७. पत्र : न० चि० केलकरको

साबरमती आश्रम
१७ अप्रैल, १९२६

प्रियश्री केलकर,

आपका तार मिला। उत्तरमें मैंने निम्नलिखित तार भेजा है:

"जरूर आइए, मनुष्य कुछ सोचता है, प्रभु कुछ और करता है।"

इस अनौपचारिक सम्मेलनके बारेमें मैं कुछ नही जानता था। पण्डितजीने मुझे तार भेजा है कि मसूरी जानेसे पहले अपनी सुविधानुसार तिथियाँ तय करके उनको तथा जयकरको सूचित कर दूँ। मैंने तदनुसार दोनोको तार भेज दिये। इसपर जयकरने तार द्वारा मुझे खबर भेजी है कि वे आयेंगे लेकिन मुझे अपनी ओरसे आपको, डॉ० मुंजे तथा श्री अणेको भी तार भेज देना चाहिए था। सो मैंने आप तीनोंको तार भेज दिये। सम्मेलन सफल होगा या नही, यह तो इस बातपर निर्भर करता है कि जब हम सब लोग एकत्र होंगे तब किस तरीकेसे काम लेते हैं। मुझको इस विषयमें पण्डितजीने कुछ भी नही लिखा है कि वे सम्मेलनमें क्या करना चाहते हैं, उससे किस बातकी अपेक्षा रखते हैं अथवा किन कारणोंसे उन्होने यह अनौपचारिक सम्मेलन करना तय किया।

अभी-अभी मुझे डॉ० मुंजे और श्री अणेके तार मिले हैं। वे कहते हैं, सम्मेलनमें शरीक होंगे। श्री अणेका कहना है कि बगाल तथा अन्य स्थानोंके मित्रोंको भी आमन्त्रित करना चाहिए। लेकिन, मेरा खयाल है, पण्डितजीने खुद ही निमन्त्रण भेज दिये हैं।

मंगलवारको आपसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त करनेकी आशामें,

हृदयसे आपका,

श्रीयुत न० चि० केलकर
'केसरी' कार्यालय
पूना

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४७४)की फोटो-नकलसे।

३६८. पत्र : सतीशचन्द्र मुखर्जीको

सावरमती आश्रम
१७ अप्रैल, १९२६

प्रिय सतीश वावू,

आपका लम्वा पत्र और कृष्णदासकी चिट्ठी पाकर मैं कितना खुश हुआ, वता नहीं सकता। आपने जो पुस्तिका भेजी है, उसे पढ़कर अपने विचार आपको वताऊँगा।

आशा है, इस वारके दरभंगा-निवाससे आप पूर्ण स्वस्थ हो जायेंगे।

हाँ, हिन्दू-मुस्लिम समस्याका हल अव अपने-आप ही होना है। ईश्वरकी गति कोई नहीं जानता और जिस विपयमें रास्ता दिखानेके लिए भीतरसे कोई निश्चित आवाज नहीं आती हो, उस विपयमें कोई हस्तक्षेप न करनेमें ही मैं विश्वास रखता हूँ।

मैं इसी महीनेकी २२ तारीखको मसूरीके लिए रवाना होनेकी आशा रखता हूँ।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४७५)की माइक्रोफिल्मसे।

३६९. पत्र : गोविन्दजी पीताम्बरको

सावरमती आश्रम
शनिवार, १७ अप्रैल, १९२६

भाई गोविन्दजी पीताम्वर,

आपका पत्र मिला। सप्तपदीके साथ-साथ गणेशकी प्रतिष्ठासे लगाकर होमतक की सव क्रियाएँ आश्रमकी सीमामें, वस्तुतः आश्रमके मैदानमें हुई थीं। यहाँसे शास्त्रीजी-को भेजना तो मैं मुश्किल मानता हूँ। आप मोरवीमें कोशिश करना। न हो सके तो लिखना। मैं यथाशक्ति प्रयत्न करूँगा। यहाँ हुई विधिमें प्रयुक्त सारे श्लोक मेरे पास छपे हुए रूपमें नहीं हैं। उन्हें छपवानेका इरादा है, लेकिन इसमें कुछ समय लगेगा। मालियाके मेहमानोंको धीरजपूर्वक यह वात समझा देना। यहाँ हुई विधिमें प्रयुक्त श्लोकोंको यदि वहाँ कोई ब्राह्मण तैयार हो तो उसके उपयोगके लिए भेज सकूँगा।

गुजराती प्रति (एस० एन० १०८८९)की फोटो-नकलसे।

३७०. पत्र : नाजुकलाल नन्दलाल चौकसीको

साबरमती आश्रम
शनिवार, १७ अप्रैल, १९२६

भाई नाजुकलाल,

ऐसा समझना कि यह पत्र तुम दोनोंको लिखा गया है। उस समय मैं इतना व्यस्त था और अब भी हूँ कि यह सोचकर मुझे हैरानी होती है कि मैं दो पंक्तियाँ[1] लिखनेका भी समय कैसे निकाल पाया। इसलिए "वास्तविक मामा न होनेसे तो मुँह बोला मामा ही अच्छा" इस कहावतको याद रख मैंने दो पंक्तियाँ लिखकर ही सन्तोष मान लिया। वैसे, मोतीके गुणका विचार करता हूँ तथा उसका डेढ़ पक्तियोंका पत्र देखता हूँ तो मुझे अपनी दो पक्तियाँ ही अधिक जान पड़ती हैं और अब तो तुमने मोतीको उसके वर्तमान नामसे भी बढ़कर नाम दे दिया है। सुकन्या[2] जब पत्र लिखती होगी तब उसके पत्रोंसे तो प्रौढ़ स्त्री-पुरुष भी ज्ञान प्राप्त करते होंगे। तुम दोनों इस बातपर विचार करना कि ऐसी आशा मुझे इस सुकन्यासे कब रखनी चाहिए और इसका उत्तर देना। तुम्हारी तबीयत अच्छी हो गई है, इसका यही अर्थ मानें न कि अब तुम बिलकुल अच्छे हो गये हो? अब इसे ऐसी ही बनाये रखना। लगता है, हम मसूरीके लिए २२ तारीखको निकलेंगे। लक्ष्मीदास काठियावाड़में भ्रमण कर रहे हैं। २० तारीखको यहाँ आयेंगे और बहुत करके मेरे साथ जायेंगे। लिखावटसे मेरा अन्दाज है कि मोतीका अंग्रेजी-अभ्यास ठीकसे चल रहा है किन्तु उसके गुजराती अक्षर अभी मोतीके दानोंसे दूर जान पड़ते हैं, यह मोतीको बता देना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० १२१२६) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए "पत्र : मोतीबहन चौकसीको", ११-४-१९२६।
२. महाराजा शर्यातिकी पुत्री जो च्यवन ऋषिको ब्याही थी।

३७१. पत्र : जयसुखलालको

साबरमती आश्रम
शनिवार, १७ अप्रैल, १९२६

चि० जयसुखलाल,

इसके साथके पत्रको पढ़ना। वहाँ यदि किसी आदमीकी जरूरत हो तो तुम वल्लभजीको रखना। मुझे उसका थोड़ा अनुभव तो है ही। तुम भी कदाचित् उसे जानते होगे। लगता है, रामदास जानता है। वल्लभजीको निभानेकी खातिर रखनेकी जरूरत नहीं है। आदमीकी जरूरत हो और वल्लभजी तुम्हारी नजरमें उपयुक्त हो तो ही रखना अन्यथा नहीं। यदि रखनेका विचार हो तो उसे सीधा पत्र लिखना और मुझे भी सूचित कर देना।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९४६६) की माइक्रोफिल्मसे।

३७२. पत्र : मनुको

साबरमती आश्रम
शनिवार, १७ अप्रैल, १९२६

चि० मनु,[1]

तुम्हारी तबीयत बहुत खराब हो गई थी यह खबर मुझे मिल गई थी और तबसे जब-तब आने-जानेवालोंसे तुम्हारी तबीयतके बारेमें पूछ लेता था। अब तुम्हारी तबीयत ठीक हो गई है, यह मुझे स्वामी आनन्दने बताया था और आज भाई चन्द्रकान्तके पत्रसे इसकी पुष्टि हो गई है। मैं जब अस्पतालमें था तब तुम मेरी अनेक प्रकारसे सेवा करते थे, यह मैं भूला नहीं हूँ। तुम्हारी वह शानदार चाल और हँसमुख चेहरा भी नहीं भूला हूँ। भगवान तुम्हें बिलकुल नीरोग बनाये और देशसेवाके लिए दीर्घायु प्रदान करे।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९४६८)की माइक्रोफिल्मसे।

१. प्रोफेसर जे० पी० त्रिवेदीके पुत्र; देखिए "पत्र : हरिभाऊ गणेश पाठकको", १७-५-१९२६; और "उसका रहस्य", २७-५-१९२६।

३७३. पत्र : चन्द्रकान्तको

सावरमती आश्रम
शनिवार, १७ अप्रैल, १९२६

भाईश्री चन्द्रकान्त,

आपका पत्र मिला और ५०० रुपयेका चेक भी मिला। माताजीको मेरी दलील पसन्द आई, यह जानकर खुश हुआ। इन ५०० रुपयोका उपयोग मैं ऐसे व्यक्तियोकी मददके लिए करूँगा जो अकाल पीडित हैं लेकिन थोड़ा-बहुत काम कर सकते हैं। चि० मनुकी तबीयत कुछ ठीक हुई है, यह खबर मुझे मिल गई थी। आने-जानेवाले लोगोसे मैं उसकी तबीयतके बारेमें पूछता ही रहता हूँ। आपने विशेष रूपसे उसकी खबर भेजी इसलिए इस पत्रके साथ मैं उसे पत्र भेज रहा हूँ। यह उसे दे दीजिएगा।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९४६७) की माइक्रोफिल्मसे।

३७४. पत्र : प्रभालक्ष्मीको

सावरमती आश्रम
शनिवार, १७ अप्रैल, १९२६

चि० प्रभालक्ष्मी,

मुझे तुम्हारा वह पत्र मिल गया था जिसमें तुमने अपने जीवनका वृत्तान्त लिखा है। उसे मैं कल ही पूरा पढ पाया हूँ। आज तुम्हारा दूसरा पत्र मिला है। तुम्हारी कहानी करुणाजनक है। नामधाम बताये बिना प्रसंगोपात्त उसका उपयोग करूँगा। मुझे लगता है कि जबतक कोई बहुत भारी कारण न हो तबतक वर्णोंका पालन करना ही अच्छा है। जहाँ पहलेसे ही हृदयमें ऐसे दाम्पत्य प्रेमको निषिद्ध मान लिया गया हो, वहाँ ऐसे प्रेमके लिए अवकाश नहीं हो सकता — वैसे ही जैसे भाई-बहनके बीचमें। भक्तकी भावनाके अनुसार ईश्वर साकार और निराकार दोनो ही माना जाता है। निराकारका ध्यान सच्चिदानन्द स्वरूपके सम्बन्धमें हो सकता है ऐसा मैं मानता हूँ। 'फलान्नाहार' शब्द बहुत कठिन और आडम्बरयुक्त हो जाता है। अन्नमें फलोंको मान लेना, यही सीधा रास्ता है। तुम खूब स्वस्थचित्त हो जाना।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९४६९) की माइक्रोफिल्मसे।

३७५. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

साबरमती आश्रम
शनिवार, १७ अप्रैल, १९२६

चि० मथुरादास,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हें जितनी शक्ति चाहिए उतनी शक्ति आनेमें तो समय लगेगा। दिलीपको तुम उठा सको और उससे थकावट न हो, ऐसी स्थिति आनेमें समय लगेगा। मसूरी छोटी लाइनसे जानेकी बात तय की है। तुमसे मिलनेका लोभ फिलहाल छोड़नेकी बात सोचता हूँ। बम्बईके रास्ते जानेसे समय ज्यादा लगेगा, इतना ही नहीं; उसमें और भी विघ्न हैं। मैं तुम्हारे पास ठहरूँ तो फिर वहाँसे एक ही दिनमें नहीं निकल सकता। मसूरीसे लौटते हुए, यदि तुम देवलालीमें हुए तो देवलाली होकर आश्रम आनेकी बात सोचता हूँ। देवदासके साथ बातचीत करनेके बाद ऐसा मानता हूँ कि तुम देवलालीमें ही रहोगे। मसूरी आनेकी हिम्मत करो तो यह सचमुच मुझे अच्छा लगेगा। अलबत्ता, ताराबहनको वहाँ लानेमें मुश्किल तो होगी लेकिन मसूरी पहुँचनेके बाद वहाँकी परिस्थिति देखकर तुम्हें उस विषयपर और लिखनेका विचार रखता हूँ। किन्तु यदि तुम स्वतन्त्र रीतिसे मसूरी जानेकी बात सोच सको तो जरूर चले आओ। उस हालतमें मेरे निर्णयकी बाट जोहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। जमनालालजी कल यहाँ आ रहे हैं; उनके साथ भी चर्चा करूँगा। यदि तुम आओ तो वहाँ रसोइया आदिको लानेकी जरूरत नहीं है। जुहूके अस्पतालसे तुम्हें डरका कोई कारण नहीं है। अभीतक तो यहाँसे २२ तारीखको निकल जानेका निश्चय है। मोतीलालजी, जयकर आदिकी विचार-गोष्ठी मंगल, बुधको यहाँ होनेवाली है। इससे कदाचित् ढील हो जाये तो नहीं कहा जा सकता।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९४७०) की माइक्रोफिल्मसे।

३७६. मेरी कामधेनु

मैंने चरखेको अपने लिए मोक्षका द्वार कहा है। मैं जानता हूँ इसपर कुछ लोग हँसते हैं। किन्तु जो मनुष्य मिट्टीका गोला बनाकर उसे पार्थिवेश्वर, चिन्तामणि जैसा बड़ा नाम देता है और उसपर ध्यान एकाग्र करके उसके द्वारा परमेश्वरके दर्शनकी शुभाशा रखता है, मूर्तिकी महिमा न जाननेवाले उसकी भी तो निन्दा ही करते हैं। लेकिन क्या इस कारण आत्मदर्शनके लिए पागल वह मनुष्य ध्यान करना छोड़ देता है? नहीं; और वह अवश्य ही ईश्वरका साक्षात्कार करेगा जबकि उसकी निन्दा करनेवाले रह जायेंगे। उसी प्रकार यदि चरखेके प्रति मेरी भावना शुद्ध होगी तो चरखा मेरे लिए अवश्य ही मोक्षदायी सिद्ध होगा। रामधुन सुनते ही जो हिन्दू

होगा उसके कान उसकी ओर आकर्षित होंगे और जबतक वह चलती रहेगी तबतक वह अवश्य ही विकार-रहित रहेगा। यदि इस धुनका असर अन्य धर्मावलम्बियोंपर न हो तो इससे क्या? 'अल्लाहो अकबर'का घोष सुनकर हिन्दुओंपर भले ही उसका असर न हो, परन्तु मुसलमान तो उसे सुनकर अवश्य ही सावधान हो जायेगा। भावुक अंग्रेज 'गॉड'का नाम लेते ही अपने क्रोधको दबाकर थोड़ी देरके लिए तो अवश्य ही विकारोंका त्याग कर देगा, क्योंकि जिसकी जैसी भावना होती है उसे फल भी वैसा ही मिलता है।

इसी न्यायसे चरखेमें कुछ नहीं हो तो भी मैंने उसमें कुछ मनचाही शक्तियोंका आरोपण किया है, इसलिए वह मेरे लिए अवश्य ही कामधेनु-रूप होगा। मैं सूतका प्रत्येक तार कातते हुए हिन्दुस्तानके कंगालोंका चिन्तन करता हूँ। हिन्दुस्तानके गरीब लोगोंका ईश्वरपर से विश्वास उठ गया है; फिर मध्यमवर्ग अथवा धनिक वर्गपर तो वे विश्वास क्यों करने लगे? जिसका पेट भूखा है और जो उसकी भूख मिटाना चाहता है उसके लिए तो पेट ही परमेश्वर है। जो मनुष्य उसको रोटीका साधन देगा वही उसका अन्नदाता होगा और उसके द्वारा शायद वह ईश्वरके दर्शन भी करेगा। इन भूखे लोगोके हाथ-पैर स्वस्थ होनेपर भी इन्हें केवल अन्नदान देना, स्वयं दोषमें लिप्त होने और उन्हें भी दोषी बनानेके बराबर है। उन्हे तो कुछ मजदूरी मिलनी चाहिए। करोड़ोंको मजदूरी तो केवल चरखा ही दे सकता है और उस चरखेपर उनकी श्रद्धा भाषणोंके द्वारा नहीं, बल्कि स्वयं सूत कातकर ही जमा सकूँगा। इसीलिए मैं सूत कातनेकी क्रियाको तपश्चर्या अथवा यज्ञ कहता हूँ और चूँकि मैं यह मानता हूँ कि जहाँ गरीबोंका शुद्ध चिन्तन किया जाता है वहाँ ईश्वर है, इसलिए मैं सूतके प्रत्येक तारमें ईश्वरका दर्शन कर सकता हूँ।

आप किसलिए कातें?

यह मैंने अपनी भावनाकी बात कही और यदि इसे आप भी स्वीकार करें तो फिर और क्या चाहिए? यदि आप इसे स्वीकार न कर सकें तो भी आपके लिए सूत कातनेके दूसरे बहुत-से कारण हैं। उनमें से कुछ मैं यहाँ दे रहा हूँ:

(१) आप कातेंगे तभी तो दूसरोंसे कतवा सकेंगे।

(२) आपके सूत कातनेसे और अपने काते सूतको चरखा-संघको देनेसे अन्तमें खादी सस्ती हो सकेगी।

(३) यदि आप सूत कातनेकी कला सीख लेंगे तो भविष्यमें अथवा अभी, जब चाहें तब खादी-प्रचारके कार्यमें योगदान कर सकेंगे, क्योंकि अनुभवसे यह मालूम हुआ है कि जिन्हें इन क्रियाओंका कुछ भी ज्ञान नहीं है, वे उसमें कोई योगदान नहीं कर सकते।

(४) यदि आप सूत कातेंगे तो सूतकी किस्म सुधरेगी। कमाई करनेके इरादेसे सूत कातनेवाले लोगोंमें अधीरता होगी; इसलिए वे तो जिस अंकका सूत कातते होंगे उसी अंकका सूत ही कातते जायेंगे। सूतके अंकोंमें सुधार करनेका काम शोधकका है या उसका है जिसको उसका चाव है। यह भी अनुभवसिद्ध बात है। यदि सेवा-वृत्तिसे

सूत कातनेवाले कुछ स्त्री-पुरुष तैयार न हुए होते तो सूतकी किस्ममें जो प्रगति हुई है, वह असम्भव थी।

(५) यदि आप सूत कातेंगे तो आपको बुद्धिका उपयोग चरखेमें सुधार करनेमें हो सकेगा। यह बात भी अनुभवसे सिद्ध हुई है। अबतक चरखेमें जो सुधार हुआ है और उसकी गतिमें जो वृद्धि हुई है वह केवल यज्ञार्थ कातनेवाले याज्ञिकोंकी शक्तिके कारण ही हुई है।

(६) भारतकी प्राचीन कलाका लोप होता जा रहा है। सूत कातनेकी कलाके पुनरुद्धारपर ही बहुतांशमें उस कलाका पुनरुद्धार निर्भर है। सूत कातनेमें कितनी कला है यह तो यज्ञार्थ सूत कातनेवाला ही जान सकता है। सत्याग्रह सप्ताहमें सूत कातनेवाले कातते-कातते थकते ही नहीं थे। चरखेके प्रति उनका प्रेम उनके न थकनेका एक कारण अवश्य था। परन्तु यदि सूत कातनेमें कोई कला न होती, सूत कातते समय जो ध्वनि होती है उसमें कोई संगीत न होता तो कुछ युवकोंका २२½ घंटेतक स्थिर होकर आह्लादपूर्वक सूत कात सकना असम्भव होता। यहाँ हमें इस बातका स्मरण रखना चाहिए कि इन कातनेवालोंके सम्मुख किसी प्रकारका लालच न था। उनका सूत कातना एक शुद्ध यज्ञ था।

(७) हमारे देशमें शरीर-श्रमका काम छोटा गिना जाता है। कवियोंने तो यहाँतक निर्णय कर दिया है कि सुखी मनुष्यको तो इतना आराम होता है कि उसे कभी चलनातक नहीं पड़ता और उसके पैरोंके तलुवेमें भी बाल उग आते हैं। इस प्रकार जो उत्तमसे-उत्तम कर्म है और जिस कर्मके साथ प्रजापतिने प्राणि-मात्रको उत्पन्न किया है, हम उस कर्मको शिष्टाचारके रूपमें प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। जिसे दूसरा कोई काम नहीं मिलता वही पेटके लिए सूत कातता है, ऐसा गलत खयाल न फैल जाये इसके लिए भी आपको सूत कातना चाहिए। आप राजा हों या रंक, आपको यज्ञार्थ अवश्य कातना चाहिए।

किशोर समाजसे

तुम चाहे बालक हो या बालिका, ऊपर बताये गये ये सब कारण तुमपर भी लागू होते हैं। परन्तु तुम्हारे लिए सूत कातनेके दूसरे भी कुछ विशेष कारण हैं। मैं उनकी ओर तुम्हारा ध्यान खींचना चाहता हूँ।

(१) यदि तुम बचपनसे ही गरीबोंके लिए शरीर-श्रम करो तो कैसा अच्छा हो, क्योंकि सूत कातनेकी क्रियासे तुम्हारे मनमें बचपनसे ही परोपकार-बुद्धि पुष्ट होगी।

(२) तुम नित्य नियमित समयपर सूत कातते रहोगे तो उससे तुम्हें अपने जीवनमें नियमपूर्वक कार्य करनेकी आदत पड़ जायेगी, क्योंकि यदि तुमने सूत कातनेके लिए समय निश्चित किया होगा तो तुम और कामोंके लिए भी समय निश्चित करोगे। जो प्रत्येक कार्यके लिए समय निश्चित करते हैं वे अनियमित काम करनेवालोंकी बनिस्बत दूना काम करते हैं, यह सभीका अनुभव है।

(३) तुममें सफाईकी आदतें बढ़ेंगी, क्योंकि सफाईके बिना सूत काता ही नहीं जा सकता। तुम्हारी पूनियाँ साफ होनी चाहिए, तुम्हारे हाथ साफ होने चाहिए, उनमें

पसीना न होना चाहिए, आसपास कही गर्द न होनी चाहिए; तुम्हें सूत कातनके बाद बहुत सफाईसे सूत अटेरनपर चढ़ाना चाहिए, उसे फूंकसे साफ करना चाहिए और आखिर उसकी सुन्दर लच्छियाँ बनानी चाहिए।

(४) तुम्हें इससे यंत्र सुधारनेका सामान्य ज्ञान प्राप्त होगा। भारतमें बालकोको सामान्यतः यह ज्ञान नही दिया जाता। यदि तुम आलसी बनकर, तुम्हारे यहाँ नौकर हो तो उससे अथवा अपने बड़ोंसे चरखा साफ कराओगे तो तुम्हें वह ज्ञान प्राप्त न होगा। परन्तु जो बालक सूत भेज रहे हैं अथवा सूत भेजेंगे उनका चरखेपर प्रेम है, मैंने यह मान लिया है। और जो बड़े प्रेमके साथ सूत कातता है वह अपने यंत्रके प्रत्येक भागपर पूरा अधिकार प्राप्त कर लेता है। बढ़ई अपने औजार स्वयं ही साफ करता है। जो सूत कातनेवाला अपना चरखा दुरस्त नही कर सकता, उसकी माल नही बना सकता और उसका तकुआ ठीक नही कर सकता वह सूत कातनेवाला ही नही कहा जा सकता, अथवा यही कहा जा सकता है कि वह सूत नही कातता, बेगार करता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १८-४-१९२६

३७७. टिप्पणियाँ

भीलोंमें प्राणप्रतिष्ठा

रामनवमीके दिन भाई अमृतलाल फिर भीलोंका मेला करनेवाले हैं। उस समय राममन्दिरका द्वारोद्घाटन होगा अर्थात् उस दिन रामकी मूर्तिकी प्राणप्रतिष्ठा की जायेगी। इसे हम भीलोंकी प्राणप्रतिष्ठा क्यो न कहें? भाई अमृतलालने हमें भीलोंके प्रति अपने कर्तव्यका भान कराया है। हम भीलोको शायद ही मनुष्य मानते हैं। सरकार भी भील जातिको जगली जाति मानती है। इसलिए भीलोंकी गिनती न तो तीनमें है और न तेरहमें। ऐसी जगली कही जानेवाली जातियोकी ओर पादरियोंकी नजर जाती ही जाती है, क्योकि उन्हें उनको अपनी ईसाई-सेनामें भरती करनेकी जरूरत है। इस तरह जो भरती की जाती है उसे मैं धर्म नही कहता; लेकिन यदि हिन्दू धर्मावलम्बी भीलोकी परवाह न करें तो इसमें पादरियोका क्या दोष? वे तो ऐसा मानते हैं कि कोई भी व्यक्ति किसी भी तरीकेसे ईसाई धर्ममें शामिल किये जानेसे ईसाई हो जाता है। वह नया जन्म पाता है और सभ्य बन जाता है। यदि ऐसा करनेसे उन्हें आत्मदर्शन होता हो अथवा उनकी नीतिमत्तामें वृद्धि होती हो तो मेरे लिए शिकायतकी कोई बात न रहे। किन्तु मैं मानता हूँ कि वस्तुतः ऐसा नही होता, इसीसे राममन्दिरमें प्राणप्रतिष्ठाकी क्रियाको मैं भीलोंकी प्राणप्रतिष्ठाकी क्रिया कहता हूँ, क्योंकि मेरा विश्वास है कि उस समय वे रामनामकी महिमा जानेंगे, ईश्वरको समक्ष मानकर शराब और मांसादि त्याग करेंगे तथा इस प्रकार उस दिनसे

उनमें नये प्राणोंका संचार होगा। लेकिन इस मन्दिरकी स्थापना सेवाका आरम्भ है, अन्त नहीं। सेवा करनेके प्रसंग तो बहुत हैं; किन्तु सेवक थोड़े हैं, यही मुश्किल है।

अन्त्यज सेवककी कठिनाई

एक अन्त्यज सेवक लिखता है:[1]

इस युवकको यह परेशानी कोई मामूली परेशानी नहीं है। उसे उसके निश्चयके[2] लिए जितनी बधाई दी जाये उतनी कम है। यदि वह अपने निश्चयपर दृढ़ रहेगा और अपनी इन्द्रियोंपर अंकुश रखेगा तो भगवान उसकी सहायता अवश्य करेंगे। धर्मकी परीक्षा और धर्मकी रक्षा ऐसे संकटका सामना करनेसे ही हो सकती है।

ऐसा लगता है कि पत्र-लेखक वैश्य जातिका है। अन्त्यज सेवाका कार्य सौभाग्यसे उच्च वर्गके अनेक लोग कर रहे हैं। वर्ण-व्यवस्था धर्म है। किन्तु आजकल हम जो सैकड़ों जातियाँ देखते हैं वे धर्मका अंग नहीं हैं। वे तो रूढ़ियाँ हैं। कुछ हदतक ये रूढ़ियाँ हानिकर सिद्ध हुई हैं। रूढ़ियोंमें परिवर्तन और परिवर्धन किया जा सकता है और किया जाना चाहिए। यदि पत्र-लेखक वैश्य जातिका ही हो और अपनी उप-जातिसे बाहर जानेकी हिम्मत करे तो उसे विवाहके लिए अधिक बड़ा क्षेत्र मिल सकता है। उप-जातियोंमें अर्थात् वैश्य, ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्र वर्णोंकी उप-जातियोंमें बेटी-व्यवहारकी परम्परा डालनेकी आवश्यकता बहुत अधिक है। तात्पर्य यह है कि वर्ण-व्यवस्थाकी मर्यादाके अनुसार जहाँ रोटी-व्यवहारकी अनुमति है वहाँ बेटी-व्यवहारकी अनुमति भी होनी चाहिए। यह अन्त्यज सेवक अपना इतिहास और अपनी योग्यता अपनी उप-जातिमें पंचोंको बताये। यदि उसे उनसे मदद न मिले तो निराश या क्रुद्ध हुए बिना गुजरातके वैश्य समाजके पंचोंके सम्मुख अपना मामला रखे और उनकी मदद माँगे। यदि उसमें योग्यता होगी तो समाजके उचित बन्धनों का उल्लघन किये बिना ही उसे मदद मिल जायेगी, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

यह सेवक और ऐसी विपत्तिमें पड़े अन्य सब सेवक इतना याद रखें कि यदि वे अन्त्यज सेवा अथवा दूसरे प्रकारकी सेवा केवल धार्मिक भावसे ही कर रहे हों तो उन्हें चाहे कितना ही कष्ट क्यों न उठाना पड़े, किन्तु वे असत्यका प्रयोग न करें और क्रोध न करें अर्थात् हिंसा न करें। यदि वे इस तरह सत्यका और मर्यादित अहिंसाका पालन करेंगे तो वे अपनी, अपने धर्मकी और अपने देशकी प्रतिष्ठामें वृद्धि करेंगे और कमसे-कम कठिनाई उठाकर संकटका निवारण कर सकेंगे। इसलिए उपर्युक्त सेवकको बिना किसी अतिशयोक्तिके अपना पूरा वृत्त प्रकाशित करना चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १८-४-१९२६

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने इसमें कहा था कि अन्त्यजोंमें काम करनेके कारण उन्हें अपनी जीवन-संगिनी खोजनेमें बहुत कठिनाई हो रही है।

२. लेखकने पत्रमें अपना यह निश्चय व्यक्त किया था कि वह जीवन-भर अन्त्यजशाला चलानेका कार्य करेगा।

३७८. विविध प्रश्न [-१][1]

क्या प्रतिज्ञा भंग की जा सकती है?

एक भाई लिखते हैं:[2]

प्रतिज्ञा हमेशा किसी सत्कार्यके लिए ही की जाती है। कुकर्म करनेकी प्रतिज्ञा तो की ही नही जा सकती। यदि अज्ञानवश कोई ऐसी प्रतिज्ञा कर ले तो उसे भग करना उसका कर्त्तव्य हो जाता है। उदाहरणके तौरपर यदि कोई व्यक्ति व्यभिचार करनेकी प्रतिज्ञा ले ले तो ऐसी प्रतिज्ञाको तोड़ देनेमें ही उस व्यक्तिकी सजगता और शुद्धि छिपी हुई है। ऐसी प्रतिज्ञाका पालन करना पाप है।

पुनर्विवाह करना चाहिए या देशसेवा?[3]

कुछ दर्द ऐसे होते हैं जिनकी दवा समय ही सुझा सकता है। किन्तु इस बीच हमें शान्ति रखनी चाहिए। यदि आपका निश्चय अटल है और जब कि अबतक आपने कोई कार्यक्षेत्र नही चुना है तथा आजीविकाका कोई प्रबन्ध नही किया है तबतक विवाह न करनेका ही निश्चय कर लिया हो तो अपने बड़े-बूढ़ोको विनय और दृढता-पूर्वक अपना निश्चय कह सुनाइए। वे सुनकर खुश होंगे। किन्तु यदि आपका मन इस हदतक स्थिर न हुआ हो और भीतर मनकी गहराईमें विवाहकी इच्छा हो तो अपने बड़े-बूढ़ोंकी बात मानना ही अच्छा होगा। धनी कुटुम्बके किसी विधुरके लिए पुनर्विवाहसे बचना निःसन्देह बहुत कठिन काम है। इससे तो वही मनुष्य बच सकता है जो पुनर्विवाहको सिरपर वार झेलनेके समान मानता हो।

इसलिए मेरी सलाह तो यह है कि इसपर एकान्तमें बैठकर शान्त चित्तसे विचार करना चाहिए और मन जो कहे तदनुसार चलना चाहिए। मैं तो केवल मार्ग सुझा सकता हूँ। किन्तु, निश्चय करते समय मेरी या किसी दूसरेकी सलाहका विचार न करके आपका दिल जो कहे वही निर्भय होकर करना चाहिए।

क्या नाक-कान छिदवाने चाहिए?

बालिकाओंके अंगोंको छिदवाना मुझे तो जंगलीपन लगता है।

१. यह प्रश्नोत्तरमाला नवजीवनके २१ तथा २८ मार्च और ४, ११ तथा १८ अप्रैल, १९२६ के पाँच अंकोंमें प्रकाशित हुई थी। इसपर एक परिचयात्मक टिप्पणी देते हुए महादेव देसाई लिखते हैं: "ये प्रश्न गांधीजीको प्राप्त पत्रोंसे लिये गये हैं। प्रश्नोंका सार मैंने अपनी भाषामें दिया है जब कि उत्तर गांधीजीके शब्दोंमें ही हैं।"

२. यदि कोई व्यक्ति मानसिक दुर्बलताके क्षणोंमें आवेशमें आकर कोई प्रतिज्ञा ले ले या फिर कुछ दिनोंतक उस प्रतिज्ञाका पालन करनेके बाद यह मानने लगे कि उक्त प्रतिज्ञा लेकर उसने भूल की है तो क्या उस प्रतिज्ञाको भंग किया जा सकता है।

३. पत्र-लेखकने अपने मनकी उलझनको गांधीजीके सामने रखते हुए लिखा कि कुटुम्बीजनोंका आग्रह मानकर क्या मुझे पुनर्विवाह कर लेना चाहिए अथवा देशसेवामें लग जाना चाहिए।

किसे उत्तर दें?

एक सज्जन लिखते हैं:[1]

इश्तिहार पढ़ा। निःसन्देह वह बहुत गन्दा है। लेकिन मेरी रायमें इसपर कोई ध्यान नहीं देना चाहिए। ऐसी बातोंका उत्तर देनेसे उन्हें कुछ-न-कुछ महत्त्व मिल जाता है। और कुछ लोग तो प्रकाशमें आनेके लिए ही ऐसी बातें लिखते हैं। प्रसंग-वश यदि कोई बात स्पष्ट करने लायक लगी तो मैं स्पष्ट कर दूंगा।

एक वकीलको[2]

आपका पत्र मिला।

आपको बहुत-से उपचार सुझाये जा सकते हैं, बशर्ते कि आप यह भूल जायें कि आपने वकालत पास कर ली है। किन्तु क्या आपसे मजदूरी करनेको भी कहा जा सकता है? आप खुद कातें, दूसरोंसे कतवायें, पींजें और दूसरोंसे पिंजवायें; क्या ऐसे कामोंमें आपको रस मिलेगा? जैसे मजदूरोंको मजदूरी करके सन्तोष होता है, क्या आपको भी वैसे ही सन्तोष मिल सकेगा? मेरे द्वारा सुझाये गये सभी उपाय जितने सहज हैं उतने ही कठिन भी हैं। यदि आप मजदूरका-सा जीवन बितानेको तैयार हों तो मुझे लिखें।

एक रोगीको[3]

आपसे मिले बिना सलाह देना मुश्किल है। किन्तु आपको निम्नलिखित सुझाव अवश्य दिये जा सकते हैं, उनमें से बहुत से सुझावोंपर आप अमल कर सकेंगे।

जहाँतक हो सके खुली हवामें अधिकाधिक रहने और सोनेका प्रयत्न करें। बहुत ही हल्का खाना खायें और सो भी भरपेट नहीं, बल्कि इतना जिससे शरीर चलता-भर रहे। तमाम मसाले खाना छोड़ दें। यदि किसी प्रकारकी दाल खाना जरूरी ही हो तो बहुत थोड़ी मात्रामें खायें। चरबीवाली, तली हुई तथा भारी चीजें खाना बिलकुल छोड़ दें। रोजाना सुबह-शाम थोड़ी-थोड़ी हलकी कसरत करें।

केवल सत्संग करें। सत्संग अर्थात् सज्जनों और अच्छी पुस्तकोंका संग। अच्छी पुस्तकें अर्थात् नीतिपरक पवित्र पुस्तकें।

यदि आपका शरीर बहुत कमजोर न हो गया हो तो रोजाना ठंडे पानीसे स्नान करें।

जाग्रतावस्थामें अपने मन और शरीरको पूरी तरहसे सद्प्रवृत्तियोंमें लगाये रखें।

१. पत्र-लेखकने एक इश्तिहार भेजा था, जिसमें गांधीजीके वक्तव्योंको तोड़-मरोड़कर छापा गया था। पत्र-लेखकने लिखा था कि यदि आप इसका उत्तर नहीं देंगे तो अन्य पक्षको बहुत नुकसान उठाना पड़ेगा।

२. एक वकालत पास आदमी बीमार पड़ गया और काम-धन्धा न कर पानेके कारण अपनेको असहाय मानने लगा। ऐसी स्थितिमें उसने गांधीजीसे पथ-प्रदर्शन करनेका अनुरोध किया था।

३. एक विद्यार्थी बुरी आदतोंके फेरमें पड़कर अपना स्वास्थ्य चौपट कर बैठा था। इस बारेमें उसने गांधीजीकी सलाह माँगी थी।

जल्दी सो जायें और रोजाना चार बजे बिस्तर छोड़ दें। 'भगवद्गीता', 'रामायण' आदि जिस पुस्तकमें आपकी अटल श्रद्धा हो, इस समय उस पुस्तकका पाठ करे और उसपर मनन करें।

इतना करे और विवाह करनेका विचार बिलकुल छोड़ ही दें। यह बिलकुल गलत खयाल है कि पवित्र जीवन बितानेके लिए विवाह करना आवश्यक है।

सूतके रूपमें चन्दा

'यंग इंडिया' के चन्देमें अपने हाथका कता सूत भेजनेका आपका प्रस्ताव सर्वथा मौलिक है। इस बारेमें कोई नियम नहीं रखा गया है तथा 'यंग इंडिया'के कार्यालयमें भी चन्देके खातेमें सूत लेनेका कोई प्रबन्ध नहीं है। किन्तु यदि आप २० नम्बरका ५०,००० गज अच्छा कता हुआ सूत मुझे भेज दें तो मैं 'यंग इंडिया' के व्यवस्थापकसे उसे चन्दे खातेमें स्वीकार कर लेनेकी प्रार्थना करूँगा। अर्थात् आश्रम उस सूतको खरीद लेगा और प्राप्त रकम 'यंग इंडिया'के कार्यालयमें चन्देके रूपमें जमा हो जायेगी। चन्देके लिहाजसे ५०,००० गज सूत अधिक ही है, कम नहीं; किन्तु यह निर्णय करना सम्भव नहीं कि ठीक पाँच रुपयेमें कितना सूत लिया जाये। फिर, सूतकी परीक्षा करके और जँचवाकर ही स्वीकार किया जा सकता है। यदि आप सूत भेजनेका निश्चय करें तो ५००–५०० गजकी लच्छियाँ बनाकर भेजें। गिनने अथवा जाँचनेमें कोई कठिनाई होनेपर हम उस सूतको चन्दे खातेमें स्वीकार नहीं कर सकेंगे। किन्तु यदि आप चाहें तो वह सूत आपके खर्चपर आपको लौटा दिया जायेगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २१-३-१९२६

३७९. विविध प्रश्न [-२]

कुनैनका नियमित रूपसे प्रयोग करें![1]

मैं अब कुनैन नहीं लेता। क्या आपको इस बातका विश्वास हो गया है कि कुनैन प्रयोग करनेसे मनुष्य सदाके लिए मलेरियासे छुटकारा पा जाता है या आप कोई ऐसा उदाहरण दे सकते हैं? बुखारके समय मैंने थोड़ी मात्रामें तीन-चार दिन कुनैन ली थी। अब तो बुखार चला ही गया है। डाक्टरने कुछ इंजेक्शन भी दिये थे, लेकिन मैं नहीं कह सकता कि उससे कितना लाभ हुआ, परन्तु किसी तरहकी लम्बी दलील किये बिना ही मैंने इंजेक्शन ले लिये थे।

१. पत्र-लेखकने आग्रह करते हुए लिखा था कि मलेरियासे हमेशाके लिए छुटकारा पानेके लिए गांधीजीको नियमित रूपसे कुनैनका प्रयोग करना चाहिए।

कुनैन क्यों ली?[1]

और ये हैं एक दूसरे मित्र जो कुनैनसे होनेवाले नुकसान गिना रहे हैं। यह नुकसान अधिक मात्रामें लम्बे समयतक कुनैन लेनेसे होता है, जबकि मैंने तो केवल पाँच-पाँच ग्रेनकी मात्रामें ही कुनैन ली थी और एक दिनमें दस ग्रेनसे अधिक कुनैन कभी नहीं ली। और सभी नींबूका रस, सोडा और पानीमें मिलाकर ली थी। पाँच दिनमें कुल मिलाकर ३० ग्रेनसे अधिक कुनैन नहीं खाई थी। चार दिन पाँच-पाँच ग्रेन कुनैन ही ली थी। इतनी कुनैन लेनेके बाद मुझे कोई बुरा परिणाम दिखाई नहीं दिया; और जो बहुत से मित्र तथा डाक्टर पन्द्रह-पन्द्रह ग्रेन कुनैन लेनेको कहते थे उन्हें भी सन्तुष्ट कर सका यह अतिरिक्त लाभ हुआ।

किन्तु इस प्रकार आँखें मूँदकर कुनैनपर हमला नहीं बोला जा सकता, क्योंकि कुछ समयके लिए मलेरियासे बचावके तौरपर कुनैनकी उपयोगिता स्पष्ट ही है। मलेरियाके भयंकर परिणामसे लोग तत्काल बच जायें तो भविष्यमें होनेवाले बुरे परिणामोंपर वे ध्यान नहीं देते। अतः उसपर सीधा हमला बोलना चाहिए और उससे यह सिद्ध होना चाहिए कि कुनैन कुछ भी लाभ नहीं पहुँचाती।

मैं जब जेलमें था तब जिस वजहसे मैंने ऑपरेशन कराया था[2], उसी वजहसे मैंने कुनैन ली। जेलके लोगोंके दबावके कारण ही मैंने ऑपरेशन करवाया था तो फिर कुनैन लेनेके लिए मित्रोंके प्रेमका दबाव मेरे लिए कितना वजनदार रहा होगा, इसकी आप कल्पना करें। परन्तु यह सही है कि यदि मुझे यह विश्वास न होता कि ऑपरेशन करनेकी अनुमति देना भी तो मेरी कमजोरीकी निशानी है तो मैं ऑपरेशन ही न कराता। परन्तु यह कमजोरी, जिसे आप प्राकृतिक चिकित्सा कहते हैं, उसके प्रति पूर्ण विश्वासकी कमी है। यह चिकित्सा-पद्धति भी परिपूर्णतातक नहीं पहुँच सकी है। प्रकृतिके अतिरिक्त यदि और कुछ हमारे पास है तो वह है ईश्वरके प्रति श्रद्धा और इस श्रद्धाके बलपर जो-कुछ घटे उसे निर्लिप्त भावसे देखते और सहते रहनेकी भावना। इस स्थितितक मैं अभी नहीं पहुँच सका हूँ। प्रयत्न करनेपर ही इस स्थितितक पहुँचा जा सकता है। यह कोई ऐसी चीज नहीं है जिसे आवश्यकता होनेपर वस्तुकी तरह पहना जा सके और यह विश्वास कि जगतका प्रतिपालक हमारी रक्षा करता है, तर्कसे उत्पन्न नहीं होता, बल्कि दर्शनसे ही आता है।

एक अन्य स्पष्टीकरण[3]

बर्माके मित्रसे कहना कि यद्यपि मैंने लोहे और संखियाके इंजेक्शन लिये थे फिर भी औषधि और डाक्टरोंके बारेमें अपने लेखमें व्यक्त किये गये विचारोंपर मैं दृढ़ रहना चाहता हूँ। अपने सामने आदर्श रखना एक बात है और उन आदर्शोंका

१. प्राकृतिक चिकित्सामें विश्वास रखनेवाले एक अन्य मित्रने गांधीजीके कुनैन लेनेपर दुःख प्रकट करते हुए पत्र लिखा था।

२. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ २०२-२०५।

३. यह एक अन्य मित्रके पत्रके उत्तरमें लिखा था।

पालन करना दूसरी बात है। आज तो मेरे मित्र कहते हैं कि मेरे शरीरपर मेरा कोई अधिकार नहीं है, वह तो देशका है और उसके हितकी बात सोचनेका अन्य लोगोंको उतना ही अधिकार है जितना कि मुझे स्वयं। वे अपनी आकर्षक दलीलसे मुझे यह समझाना चाहते हैं कि जहाँतक शरीरकी रक्षाका प्रश्न है मैं उसका न्यासी-भर हूँ और उस दृष्टिसे उसे दुलरानेका मुझे अधिकार है। इसलिए वर्मी मित्र-जैसे अन्य मित्रोंको मेरे आदर्श और आचारमें विरोध दिखाई देता है। अतः उनसे कहना कि वे जबतक मेरी तरह महात्मा न बनें तबतक दवाको न छूने तथा डाक्टरको न बुलानेके अपने निश्चयपर दृढ़तासे जमे रहें और यदि वे इस सीधे-सहज किन्तु दुर्गम मार्गपर डटे रहें तो इससे उनका कल्याण होगा। उनसे निजी तौरपर यह भी कह देना कि मैंने अपने मित्रोंके आग्रहको मानकर भी पाँच दिनमें सिर्फ ३० ग्रेन कुनैन खाई थी और पाँच सप्ताहमें पाँच इंजेक्शन लिये थे।

कुरती पसन्द है तो साड़ी क्यों नहीं?[१]

आपका पत्र मिला। आपको खादीकी कुरती पसन्द है तो क्या अब साड़ी भी पसन्द न करेंगी? स्वदेशी लोगोंको विदेशी कपड़ोंका शौक कैसे हो सकता है? यदि हमें अपना देश प्यारा है तो हमें अपने देशकी चीजोंका ही शौक होना चाहिए। हिन्दुस्तानके गरीबोंके हाथके कते और बुने कपड़ोंसे जिन्हें अरुचि है, ऐसे लोग क्या भारत-सन्तान कहला सकते हैं?

खादी भवन कहाँ बनना चाहिए?

जिला समितिके एक मंत्री लिखते हैं[२]:

आपका पत्र और अपील मिली। आप कहते हैं कि आपके जिलेमें कुछ काम ही नहीं होता। कार्यकर्त्तागण सिर्फ अपनेको ही खुदमुख्तार मानते हैं और नादानी करते रहते हैं। ऐसी स्थितिमें भवन बनवानेसे क्या लाभ? इसमें मैं अपनी सहमति कैसे दे सकता हूँ? क्या भवन बनवानेसे नादानी करना दूर हो जायेगा? क्या उससे सेवा-भाव बढ़ेगा? भवन तो वहीं बनना चाहिए जहाँ सेवकोंकी संख्यामें वृद्धि होती हो, सभी नियमोंका पालन होता हो, लोगोंका सभी सेवकोंपर विश्वास हो, सभीका एक-दूसरेके प्रति विश्वास हो और सब संगठित होकर रहते हों। मैं तो आपको साफ-साफ यही सलाह दूंगा कि जबतक ठीक ढगसे काम करनेवाले सेवक एकत्र न हो तबतक भवन बनवानेका विचारतक न करें।

१. एक युवतीने गांधीजीको लिखा था कि खादीकी कुरती तो उसे पसन्द है, लेकिन साड़ी नहीं।

२. पत्रका अनुवाद यहाँ नहीं दिया गया है। एक जिला समितिके मन्त्रीने खादीकी धीमी प्रगतिकी शिकायत करते हुए गांधीजीसे अनुरोध किया था कि वे जिला कार्यालयका स्थायी भवन बनानेके लिए खादी बोर्डसे ५०००) देनेको कहें

आबोहवा बदलनेके लिए पुरी क्यों जाऊँ?[1]

आबोहवा बदलनेके लिए यदि मुझे समुद्र-तटपर जाना हो तो मैं पुरी क्यों जाऊँ? मेरे जन्मस्थानके पास ही एक छोटा-सा गाँव है, मैं वहाँ क्यों न जाऊँ? वहाँ जो शान्ति और ग्राम्य जीवनका लाभ मिलेगा वह पुरीमें, जहाँ एक ओर धनी लोगोंके घूरते हुए बंगले तथा दूसरी ओर मंदिरके आसपासके यात्रियोंसे मुट्ठी-भर गन्दे चावल पानेके लिए धक्कम-धक्का करते हुए अकाल-पीड़ित लोग देखनेको मिलेंगे, कैसे मिलेगा? पुरीको देखकर उसका तत्कालीन इतिहास ही नहीं, अपनी भयंकर अवनतिका इतिहास भी याद आता है। क्योंकि आज यह स्थान हमारी स्वतन्त्रताको दबानेके लिए, हमसे वेतन लेकर खानेवाले फौजियोंका आरोग्य-भवन बन गया है। इन सब विचारोंसे मुझे बहुत कष्ट होता है। जब मैं वहाँ था तो मित्रोंने मुझे समुद्रके किनारे एक सुन्दर स्थानमें टिकाया था और अगाध प्रेमसे मुझे स्नान कराया था, किन्तु फिर भी मुझे चैन नहीं पड़ा। वहाँकी फौजी बैरकें, भूखों मरते उड़िया और वहाँके पत्थर-दिल बनियोंके विचारसे मुझे जो मनोवेदना होती थी, उसका वे कैसे और क्या उपाय करेंगे?

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २८-३-१९२६

३८०. विविध प्रश्न [-३]

एक वकीलकी उलझन[2]

रामनाम लेते हुए आनन्दपूर्वक रहनेमें भूलकी कोई बात नहीं है। धन प्राप्त नहीं होता यह भी कोई दुःखकी बात नहीं है। धर्मकी रक्षा होती है या नहीं, यह भी आप स्वयं ही जान सकते हैं। आपने बकरेको निकाल कर ऊँटको प्रवेश देनेकी जो बात कही सो ठीक नहीं है। यह मानना भयंकर भूल है कि विषय-भोग करनेकी अपेक्षा स्वप्नदोषसे अधिक कमजोरी आती है। कमजोरी तो दोनोंसे ही आती है पर ज्यादातर तो विषय-भोगसे ही अधिक कमजोरी आती है। परन्तु परम्पराके कारण विषय-भोग हमें खटकता नहीं है; जबकि स्वप्नदोषसे मनको आघात पहुँचता है। इसलिए उसके कारण जितनी कमजोरी आती है हम उससे कहीं अधिक कमजोरीकी कल्पना कर

१. एक बहनने आबोहवा बदलनेके खयालसे गांधीजीको जगन्नाथपुरी जानेका निमन्त्रण दिया था। यह उसीके उत्तरमें लिखा गया था।

२. प्रश्नकर्त्ताने लिखा था कि चौदह वर्षसे अधिक समयतक अपना धंधा किया; वह नहीं चला। नौकरी की, पैसा नहीं मिला। बच्चे हैं। ब्रह्मचर्य-पालनका विचार बनता है तो स्वप्नदोष होता है और बकरा निकालकर ऊँटको प्रवेश देनेकी स्थिति बन बैठती है। . . . क्या ब्रह्मचर्य-पालनमें स्त्रीकी सहमति आवश्यक है?

लेते हैं। यह तो आपने भी देखा होगा कि विषय-भोग करते रहनेपर भी स्वप्नदोष हो जाता है। इसलिए यदि आप ब्रह्मचर्यके मूल्यको स्वीकार करते हों और उसका पालन करनेकी आपकी इच्छा हो तो सतत प्रयत्न करते हुए भी यदि स्वप्नदोष हो तो उस ओरसे निश्चिन्त रहते हुए आपको ब्रह्मचर्यका पालन करते रहना चाहिए। ब्रह्मचर्यको आचार मान लेनेके बहुत दिनों बाद ही आप मनपर अधिकार कर सकेंगे। मनपर अधिकार कब कर पायेंगे, यह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि सबके लिए समयकी एक ही मर्यादा नही होती। सबकी अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार समय थोड़ा-बहुत घट-बढ़ सकता है। कोई-कोई तो आजीवन मनको काबूमें नही कर पाते, फिर भी आचरणमें लानेपर ब्रह्मचर्यका अमोघ फल तो उन्हें मिलता ही है और भविष्यमे आसानीसे मनको रोक सकें, वे शरीरके ऐसे स्वामी बन जाते हैं।

मेरे विचारसे तो ब्रह्मचर्य-पालनके लिए न तो पुरुषको स्त्रीकी और न स्त्रीको पुरुषकी सम्मतिकी आवश्यकता है। इस मामलेमें दोनों एक-दूसरेकी सहायता करें, यही इष्ट है। ऐसी सहायता प्राप्त करनेके लिए प्रयत्न करना उचित है, किन्तु अनुमति मिले या न मिले, जिसकी इच्छा हो वह उसका पालन करे और उससे दोनों लाभ उठायें। संगसे दूर रहनेमें सम्मतिकी आवश्यकता न होनेपर भी संग करनेमें दोनोंकी सम्मति आवश्यक है। जो व्यक्ति अपनी पत्नीकी अनुमतिके बिना संग करता है, वह बलात्कारका पाप करता है और इस प्रकार वह ईश्वरीय और सांसारिक दोनों नियमोंको भंग करता है।

नाक-कान छिदवाना शास्त्रीय विधान !

मैं नहीं जानता कि नाक-कान छिदवाना वैदिक विधि है या नही। परन्तु यदि यह साबित भी हो जाये कि वह वैदिक विधि है तो भी जिस प्रकार आज नरमेध नहीं किया जाता उसी प्रकार मेरा यह कहना है कि नाक-कान भी नही छिदाये जाने चाहिए। मैं ऐसे अनेक लोगोंको जानता हूँ जिनके कान छिदे हुए थे और जिन्हे अण्डकोषादि-वृद्धिका रोग हुआ है। और यह भी सब लोग जानते हैं कि जिन्होने नाक-कान नहीं छिदवाये थे, ऐसे असंख्य पुरुष भी अण्डकोषादि-वृद्धिके रोगसे मुक्त हैं। मैं यह भी जानता हूँ कि अण्डकोषादि-वृद्धिका रोग बिना कान छिदवाये ही ठीक हो गया। आपने जिस वैद्यके वाक्यका उल्लेख किया है उसके उस वाक्यमें कहा गया है कि नाक-कान छिदवानेका रिवाज चल पड़ा ज्ञात होता है। जब तीन व्यक्तियोंपर हमारा विश्वास हो और उन व्यक्तियोमें मतभेद हो तो ऐसी स्थितिमें या तो हमें अपनी बुद्धिसे काम लेना चाहिए या ऐसा न कर सकें तो फिर जिसपर हमारी अधिक श्रद्धा हो हमें उसीका अनुसरण करना चाहिए।

अधम योनिमें जन्म

मेरी यह मान्यता अवश्य है कि मनुष्य-योनिमे जन्म लेनेके बाद पशु, वनस्पति आदि योनियोंमें आत्माका पतन हो सकता है।

प्रेम या धर्म?[1]

आपके सामने जो धर्म-संकट आ खड़ा हुआ है उसका निर्णय आप स्वयं ही कर सकते हैं। यदि मांस छोड़ देना आपको धर्म-रूप जान पड़े तो आप किसी तरह भी अपनी मांके स्नेहके आगे न झुकें। यदि आप प्रयोग करनेके विचारसे मांसाहारका त्याग करना चाहते हों तो माताको दुखी करना पाप ही माना जायेगा।

प्रेमियोंकी उलझन[2]

जहाँ शुद्ध प्रेम होता है वहाँ अधीरताकी गुंजाइश नहीं होती। शुद्ध प्रेम दैहिक नहीं, बल्कि आत्माका ही सम्भव है। दैहिक प्रेम तो विषय-भोग ही है। उसकी अपेक्षा जातिका बन्धन ही विशेष महत्त्वका है। आत्मिक प्रेममें किसी तरहका बन्धन आड़े नहीं आता। परन्तु इस प्रेममें तपश्चर्या होती है और धैर्य तो इतना होता है कि वह मृत्यु-पर्यन्त वियोगकी भी परवाह नहीं करता। आपका पहला काम तो यह है कि आप अपनी कठिनाइयाँ बुजुर्गोंके सामने रखें और जो-कुछ वे कहें उसे आप सुनें और उसपर विचार करें। आखिर जब यम-नियमादिका पालन करनेसे आपका अन्तःकरण शुद्ध हो जाये तब उससे निकलनेवाली आवाजका आदर करना ही आपका धर्म होगा।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, ४-४-१९२६

३८१. विविध प्रश्न [-४]

श्राद्ध और मुक्ति

मैं श्राद्धके मामलेमें तटस्थ हूँ। उसकी कोई आध्यात्मिक उपयोगिता हो भी तो उसकी मुझे जानकारी नहीं है। यह बात भी मेरी समझमें नहीं आती कि श्राद्धसे मृतककी सद्‌गति होती है। मृत देहके फूल गंगाजीमें प्रवाहित करनेसे एक प्रकारकी धार्मिक भावनामें वृद्धि होती होगी, उसके अतिरिक्त यदि कोई अन्य लाभ होता तो वह मैं नहीं जानता।

मेरी राय तो यह है कि सगर राजाकी कहानी एक रूपक है, ऐतिहासिक नहीं। नारायणके नामके उच्चारणके बारेमें जो बात कही जाती है वह श्रद्धा बढ़ानेके लिए कही जाती है। यह बात मेरे गले नहीं उतरती कि उक्त मन्त्रोच्चारका अर्थ समझे बिना भी यदि कोई व्यक्ति लड़केका नाम नारायण होनेकी वजहसे मृत्युके

१. पत्र-लेखक एक मुसलमान युवक था, जिसे मांसाहारसे बड़ी अरुचि थी, किन्तु उसकी माँ चाहती थी कि वह मांस खाये।

२. पत्र-लेखक युवक-युवती भिन्न जातिके होते हुए भी एक-दूसरेको चाहने लगे थे और विवाह कर लेना चाहते थे। किन्तु वे अपने बुजुर्गोंको नाराज करके विवाह नहीं करना चाहते थे।

समय यह नाम ले तो उसे मुक्ति मिल ही जाये। जिसके हृदयमें नारायणका वास है और इसलिए जो मनुष्य उस मन्त्रको रटता है उसे मोक्ष मिलेगा ही।

विवाहितोंका धर्म[1]

जो दम्पती, जैसा आपने लिखा है, उस हदतक विषयासक्त हों, वे स्त्री-पुरुषके धर्मका पालन नहीं करते। मुझे यह कहनेमें जरा भी संकोच नहीं कि वे पशुसे भी बदतर हैं। बारह-तेरह वर्षकी बालिका स्त्री-धर्मका पालन करनेमें असमर्थ है। उससे विषय-वासनापूर्ण व्यवहार करनेवाला घोर पाप करता है।

रजस्वला स्त्रीके बारेमें आपने जो लिखा है इसका तो मुझे पता ही नहीं था। चार दिन बीत जानेपर पुरुषको उसके साथ रहना ही चाहिए, ऐसे धर्मको मैं स्वीकार नहीं कर सकता। जबतक स्राव जारी रहे तबतक पति द्वारा उसे छूना भी मैं त्याज्य मानता हूँ। स्राव बन्द हो जानेके बाद यदि दोनों सन्तानोत्पत्तिकी इच्छा हो और वे मिलें तो इसमें मैं कोई दोष नहीं मानता।

रजस्वला और प्रसूता

ऋतुमती होना स्त्रियोंकी मासिक व्याधि है। ऐसे समय रोगीको शान्तिकी बड़ी आवश्यकता होती है। और कामी पुरुषका संग उसके लिए भयंकर बात है।

प्रसूताके सम्बन्धमें भी यही कारण लागू होता है और उसे कमसे-कम २० दिनका आराम दिया जाता है। मैं इसे बहुत उपयुक्त प्रथा मानता हूँ। सगी-सम्बन्धी स्त्रियोंमें से भी किसीका भी उसे न छू सकना तो ज्यादती है।

एक शिक्षकके प्रश्न[2]

१. विद्यार्थियोंमें तन्मय होकर ही उत्तम शिक्षा दी जा सकती है। इसके लिए जो विषय पढ़ाना हो शिक्षकको उसकी पूरी तैयारी कर लेनी चाहिए।

२. यदि 'गीता' और 'रामायण'का विचारपूर्वक अध्ययन किया जाये तो उनसे सब-कुछ प्राप्त हो सकेगा।

३. खुराकमें खासकर गेहूँ, दूध, और हरी सब्जियाँ काफी होंगी। तेल और मसाले छोड़ देना आवश्यक है।

४. यदि शामको बहुत भूख लगती है तो थोड़ा-सा दूध पीना चाहिए और यदि दूध कुछ भारी लगे तो सन्तरा या अंगूर अथवा ऐसा ही कोई रसदार फल खाना चाहिए। सुबह-शाम खुली हवामें उत्साहपूर्वक यथाशक्ति घूमना चाहिए।

१. पत्र-लेखकने विवाहित स्त्री-पुरुषोंके असंयमका उल्लेख करते हुए लिखा था कि कुछ लोग उसे अपना अधिकार मानते हैं और कुछ लोग कर्तव्य। उसने गांधीजीसे इस भ्रमको दूर करनेका अनुरोध किया था।

२. प्रश्न संक्षेपमें इस प्रकार थे: १. उत्तम शिक्षा किस प्रकार दी जाये? २. परम श्रेय प्राप्त करनेके लिए क्या पढ़ना चाहिए? ३. सबसे अच्छी खुराक क्या है? ४. चाय पीनेसे सरदर्द होता था, इससे चाय छोड़ दी और एक बार भोजन करने लगा। शामको भूख लगती है, किन्तु सवेरे पेट भरा मालूम होता है; ऐसा क्यों होता है? ५. चित्तको एकाग्र करनेके मार्ग कौनसे हैं? ६. जब आपको ही आन्तरिक सन्देश प्राप्त नहीं हुआ तो फिर मुझ-जैसेको वह कैसे मिल सकता है? ७. परमात्माके दर्शन करनेका उपाय क्या है? ८. क्या काम-काज करनेसे शान्ति मिल सकती है?

५. हृदयको पवित्र रखने और चित्तकी एकाग्रताके लिए उपर्युक्त पुस्तकोंका पठन और मनन करना तथा जब किसी शुभ कार्यमें न लगे हों उस समय रामनामका जाप सहायक सिद्ध होता है।

६. हम तो प्रयत्न करते रहें और उस बातमें श्रद्धा रखें कि प्रयत्नका फल मिले बिना नहीं रहेगा।

७. रागद्वेषादिका सर्वथा क्षय हो जाना ही आत्मदर्शनका एकमात्र उपाय है।

८. शुभ प्रवृत्तियोंमें लग जानेसे परम शान्ति अवश्य मिल सकती है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ११-४-१९२६

३८२. विविध प्रश्न [-५]

तब हम क्या करें?[१]

भाई मणिलाल कोठारीने मुझे आपका सन्देश दिया। मैं आपको कोई प्रेरणाप्रद निश्चयात्मक और बिजलीकि वेगका प्रभाव रखनेवाला हल सुझा सकता तो कितना अच्छा होता। किन्तु आज जो परिस्थिति है उसमें मेरे पास ऐसा कोई हल नहीं है। सार्वजनिक सभाओंमें प्रस्ताव पास करके और विधान सभाओंमें भी इस चीजका काफी विरोध किया गया है। अब तो हमें ऐसा-कुछ करना चाहिए जिससे हमें अपनी शक्तिका अनुभव हो। इसलिए मुझे तो विदेशी कपड़ेके बहिष्कारके अलावा कुछ सूझता नहीं और खादीके बिना विदेशी कपड़ेका बहिष्कार असम्भव है।

इसलिए सरकार यदि लोगोंको बिना किसी अपराधके जेलमें डालती है तो इस, और ऐसे ही अन्य कष्टोंका तो मुझे चरखेके अतिरिक्त और कोई उपचार नहीं सूझता। किन्तु मैं लोगोंको कैसे समझाऊँ कि यह उपाय अमोघ है। मेरा तो इसमें अविचल विश्वास है और वह दिन-प्रतिदिन बढ़ता जाता है। इसलिए हमने तो राष्ट्रीय सप्ताहकी अवधिमें सात दिनतक रात-दिन चरखा चलाया और इस श्रद्धाके साथ चलाया कि किसी दिन चरखेमें से ही हमें वह शक्ति प्राप्त होगी जिससे हम अपना मनोरथ पूरा कर सकेंगे।

हाँ, चरखेके सिवाय एक रास्ता और है — हिंसा। किन्तु वह मेरे वशका नहीं है और उसमें मुझे श्रद्धा भी नहीं है, और मैं तो हरएक चीजको व्यवहारकी दृष्टिसे परखनेवाला आदमी हूँ; इसलिए मैं जानता हूँ कि सरकार जो हिंसा कर सकती है, उसकी तुलनामें हमारी हिंसा नगण्य है। इसलिए मैं तो और सारे साधनोंको छोड़कर केवल उस चरखेकी नावके सहारे समुद्रमें कूद पड़ा हूँ। आपकी तरह और

१. सुभाषचन्द्र बोस निर्दोष होते हुए भी मांडले जेलमें बन्दी थे। उनके भाई शरत्चन्द्र बोसने पूछा था कि ऐसे कैदियोंको मुक्त करानेके सभी संवैधानिक उपाय व्यर्थ साबित हुए हैं, इसलिए अब क्या हम उनकी रिहाईके लिए कुछ नहीं कर सकते। इसपर गांधीजीने उन्हें यह सन्देश भेजा था।

भी जिन-जिन लोगोंको यह उलझन महसूस होती हो, उन सबको मैं अपने साथ इस नावमें बैठनेका निमन्त्रण देता हूँ। आप सब मेरे इस कथनका विश्वास कीजिए कि यह नाव ऐसी है जो हमें अवश्य पार ले जायेगी। अलबत्ता, उसे चलानेमें हमारी सारी शक्ति, व्यवस्था-कौशल और अनुशासनकी आवश्यकता होगी।

जलियाँवाला बाग[1]

जलियाँवाला बाग स्मारकके लिए जो पैसा इकट्ठा किया गया था उससे यह बाग खरीदा गया। जमीन साफ कर ली गई है और वहाँ बगीचा बनाया गया है। मन्दिर अभी नहीं बनाया है, क्योंकि हिन्दुस्तानके ग्रह इस समय विपरीत हैं। आज तो हम स्वतन्त्रताकी नींव खोद रहे हैं। ऐसी हालतमें स्वतन्त्रताके भव्य मन्दिर-का निर्माण कैसे किया जा सकता है! मेरा विश्वास है कि ट्रस्टियोंको इसी विचारके कारण किसी भी तरहके मन्दिरका निर्माण करनेमें संकोच हो रहा है। जमीनकी कीमत चुकानेके बाद जो पैसा बाकी रह गया है, उसका हिसाब अच्छी तरह रखा जाता है और मन्त्रीकी मार्फत यह हिसाब ट्रस्टियोंको नियमित रूपसे भेजा जाता है तथा प्रकाशित भी किया जाता है।

हिंसा[2]

मैं भी तो ऐसी हिंसा होते हुए देखता ही हूँ। छिपकलीको तिलचट्टोंका और तिलचट्टोंको दूसरे कीड़ोंका शिकार करते हुए मैंने अकसर देखा, किन्तु प्राणी-जगत्‌में व्यवहृत 'जीवो जीवस्य जीवनम्' के नियमको रोकना मुझे कभी कर्त्तव्य नहीं जान पड़ा। मैं ईश्वरकी सृष्टिकी इस अगम्य पहेलीको सुलझानेका दावा नहीं कर सकता, किन्तु ऐसी हिंसा देख-देखकर मुझे तो यह प्रतीत होता है कि पशुओं और अन्य निम्नतर प्राणियोंका नियम मनुष्यपर लागू नहीं हो सकता। मनुष्यको तो लगातार प्रयत्न करके अपने भीतर रहनेवाले पशुको जीतनेका और उसे मारकर आत्माको जीवित रखनेका प्रयत्न करना है। इसके आसपास जो हिंसाका दावानल प्रज्वलित हो रहा है, उसमें से उसे अहिंसाका महामन्त्र सीखना है। इसलिए यदि मनुष्य अपनी प्रतिष्ठा समझ ले और उसे जीवनकार्यका ज्ञान हो जाये तो उसका कर्त्तव्य यह है कि वह इस हिंसामें स्वयं कोई भाग न ले और अपनेसे निम्नतर तथा अपने अधीनस्थ प्राणियोंको किसी प्रकार का कष्ट न दे। यह आदर्श वह केवल अपने लिए ही रख सकता है और यदि ज्यादा नहीं तो इतना तो वह अवश्य कर सकता है कि वह अपनेसे कमजोर मनुष्य बन्धुओंको किसी तरहका कष्ट न पहुँचाये। यह भी आदर्श ही है, क्योंकि इसके सम्पूर्ण पालनके लिए उसे दिन-रात सतत प्रयत्न करना होगा। तभी वह उसे किसी दिन

१. एक पत्र-लेखकने गांधीजीसे पूछा था कि जलियाँवाला बाग स्मारकके लिए इकट्ठा किये गये कोषका क्या हुआ।

२. एक पत्र-लेखकने पूछा था कि वह अकसर जीव-जन्तुओंको अपनेसे कमजोर और छोटे जीव-जन्तुओंको पकड़कर उनका भक्षण करते देखता है। ऐसी हालतमें उसे क्या करना चाहिए — चुपचाप देखते रहना चाहिए या उसे मारनेवाले जन्तुको मारकर हिंसाको रोकना चाहिए?

सिद्ध कर सकेगा। इसमें पूरी सफलता तो मनुष्यको तभी मिल सकती है जब वह मोक्ष पा जाये और देहके सारे बन्धनोंसे मुक्त हो जाये।

सिद्धान्त और प्रतिज्ञा[1]

'हिन्द स्वराज्य' में मैंने जो विचार प्रगट किये हैं उन्हें मैं पूरी तरह व्यवहारमें न ला सकता होऊँ तो भी मुझे ऐसा नहीं लगता कि इन विचारोंको सही कहना गलत है। आपने जो कहावत उद्धृत की है वह मुझे लागू नहीं होती, क्योंकि मैं अपनेको माफ करता ही नहीं, बल्कि अपना अपराध पूरी तरह स्वीकार करता हूँ।

निश्चय करने और व्रत लेनेमें जहाँ भेद माना जाये वहाँ मूल्य व्रत लेनेका ही है। जिस निश्चयको भंग किया जा सकता हो, वह निश्चय निश्चय ही नहीं माना जा सकता, उसका कोई मूल्य नहीं हो सकता।

एकाग्रता[2]

चित्तकी एकाग्रता अभ्याससे सधती है। शुभ और इष्ट विषयमें अपने मनको लीन करके एकाग्रताका अभ्यास किया जा सकता है। उदाहरणके लिए, कोई निष्ठापूर्वक बीमारोंकी सेवा करके एकाग्रता सिद्ध कर सकता है तो कोई अन्त्यजोंकी सेवा करके और दूसरा कोई अपने मनको चरखा चलानेमें या खादीका प्रचार करनेमें लगाकर अथवा श्रद्धापूर्वक रामनामका जप करनेसे एकाग्रता प्राप्त कर सकता है।

सुधारनेका ठेका[3]

आपने तो मुझे हटा दिया। मैंने तो एक ही आदमीको सुधारनेका ठेका लिया है---स्वयंको ही। और उसीका सुधार करनेमें मुझे कितनी कठिनाई उठानी पड़ रही है, यह तो मैं ही जानता हूँ। क्या अब भी आपको अपने सवालका जवाब चाहिए?

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १८-४-१९२६

१. एक पत्र-लेखकने गांधीजीसे पूछा था कि चूँकि रेलगाड़ी, दूध, दवा आदिके उपयोगके सम्बन्धमें अपने हिन्द स्वराज्यमें बताये सिद्धान्तोंका पालन करनेमें वे खुद असमर्थ हैं, इसलिए उन्हें अब भी उन सिद्धान्तोंपर आग्रह क्यों रखना चाहिए। उसने यह भी पूछा था कि कोई काम करनेका निश्चय-भर कर लेना क्या पर्याप्त नहीं है? क्या उसके लिए प्रतिज्ञा करना जरूरी है?

२. एक पत्र-लेखकने चित्तकी एकाग्रता प्राप्त करनेके उपाय सुझानेका अनुरोध किया था।

३. एक मुसलमानने यह दलील दी थी कि चूँकि गांधीजीने कहींपर ऐसा कहा है कि मनुष्यकी आत्मा किसी पशुके गर्भमें भी जा सकती है, इसलिए गायकी पूजा करनेका मतलब क्या पापीकी पूजा करना नहीं हो सकता, क्योंकि किसी पापीकी आत्मा भी तो गायके गर्भमें पहुँच सकती है। उसने गांधीजी पर व्यंग्य करते हुए लिखा था कि चूँकि आपने दुनियाको सुधारनेका ठेका ले रखा है, इसलिए आप इसका उत्तर दें।

३८३. वक्तव्य : मसूरी-यात्रा स्थगित करनेके सम्बन्धमें

अहमदाबाद
१८ अप्रैल, १९२६

जमनालालजी तथा कुछ दूसरे मित्र मुझे मसूरी भेजना चाहते थे। मेरी यात्राकी सूचना प्रकाशित भी हो चुकी है। लेकिन, अपनी पिछली बीमारीके बादसे मैंने अपनी पुरानी शक्ति प्राप्त करनेमें जो प्रगति की है, उसको देखते हुए और खुद मेरे इरादोंका खयाल करके उन्होंने तय किया है कि जबतक मेरे दुबारा बीमार हो जानेका खतरा न हो तबतक वे वहाँ जानेके लिए मुझपर कोई दबाव नही डालेंगे।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, १९-४-१९२६

३८४. पत्र : गांधी-आश्रम, बनारसको

साबरमती आश्रम
१९ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्रगण,

मुझे आशा थी कि कृपलानीजीको[1] विद्यापीठके कामसे मुक्त कराकर उन्हें फिरसे पूरी तरह आपकी संस्थाको सौंप दूँगा। लेकिन, इस विषयमें हम सभीने अपने-आपको लाचार पाया है। इस समय तो उन्हें विद्यापीठके कामसे मुक्त करना सम्भव नही है। हो सकता है, अगले दो वर्षोंतक यह सम्भव न हो सके। आज जबकि हम अपनी खोई हुई स्वतन्त्रता पुनः प्राप्त करनेके लिए इतने आतुर है और हमारी यह आतुरता स्वाभाविक ही है — हमारे राष्ट्रीय जीवनमें दो वर्षोंकी अवधि काफी लम्बी अवधि है। मै आपको भरोसा दिलाता हूँ कि अगर कृपलानीजीको उससे पहले मुक्त करना सम्भव हो सका तो मैं खुशी-खुशी उन्हें मुक्त कर दूँगा; क्योकि मुझे मालूम है कि आपका काम कितना महत्त्वपूर्ण है और आपके श्रमका आजतक जो सुफल निकला है, अगर भविष्यमें उससे अधिक सुफल निकलना है तो यह बात कितनी जरूरी है कि वे बराबर आपके बीच रहे। इसलिए मुझे आशा है कि कृपलानीजी वहाँका कार्य अच्छी तरह संगठित कर सके, इस दृष्टिसे आप उनका मार्ग सुगम बनायेंगे।

हृदयसे आपका,

गाधी-आश्रम, बनारस

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४७६) की फोटो-नकलसे।

१. आचार्य जीवतराम बी० कृपलानी।

३८५. पत्र : विलियम डॉलको

साबरमती आश्रम
१९ अप्रैल, १९२६

प्रिय श्री डॉल,

सोराबजीने मुझसे मिलकर अपनी कठिनाइयाँ बताईं। आप जानते ही हैं कि उनपर बहुत कर्ज है। वे कर्जके तौरपर अपने पिताकी जायदादसे मदद चाहते हैं। वे सूद देना नही चाहते, लेकिन पूरी जमानत देनेको तैयार हैं। जमानत किस प्रकारकी होगी, यह वे खुद ही बतायेंगे। सोराबजीका कहना है कि अगर उनके पिता जीवित रहते और अगर सोराबजीने शादी करना तय कर लिया होता तो वे स्वयं उनका कर्ज उतार देते। मैं उनकी बात सच मानता हूँ। उन्होंने मुझे बताया है कि वास्तवमें अपनी मृत्युसे कुछ दिन पहले रुस्तमजीने उनको ऐसा आश्वासन भी दिया था, इतने आतुर थे वे इनके विवाहके लिए। अब सोराबजीकी सगाई हो गई है और उन्होंने बड़ी समझदारीके साथ ऐसा तय किया है जबतक सारे कर्ज चुक न जायें, वे शादी नही करेंगे।

देखता हूँ, न्यासपत्रकी एक धाराके अनुसार न्यासियोंको यह अधिकार है कि वे अपनी इच्छानुसार मुझे उपयोग करनेके लिए जितनी रकम देना जरूरी समझें, दे सकते हैं। मैंने न्यासपत्रको ध्यानसे नहीं पढ़ा है और न मैं अपने-आपको इस बातका फैसला करनेके लिए उपयुक्त व्यक्ति ही मानता हूँ कि मैं उस कोषका उपयोग कानूनन कर सकता हूँ या नहीं, जो प्रस्तावित न्यासके अधीन मेरे जिम्मे रखा गया है। लेकिन, अगर आपके विचारसे, मैं कानूनन ऐसा कर सकता हूँ और अगर अधिकांश न्यासी इस प्रस्तावसे सहमत हों तो मैं न केवल सोराबजीके लिए कुछ प्रबन्ध कर देनेको तैयार हूँ, बल्कि चाहूँगा कि कोई प्रबन्ध कर ही दिया जाये। कारण, मैं जानता हूँ कि अगर उनके पिता जीवित होते तो वे अवश्य चाहते कि मैं उनके लिए ऐसा कोई प्रबन्ध कर दूं।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४७७) की माइक्रोफिल्मसे।

३८६. पत्र : पारसी रुस्तमजीके न्यासीको

साबरमती आश्रम
१९ अप्रैल, १९२६

आप मुझे कम ही पत्र लिखते हैं। मगर मैं भी यही करता हूँ; इसलिए मैं समझता हूँ मुझे शिकायत नही करनी चाहिए। खुद सोराबजीकी जबानी आपके और आपके करोबारके विषयमें सारे शुभ समाचार मालूम हुए। मन बड़ा प्रसन्न हुआ।

यह पत्र आपको यह सूचित करनेके खयालसे लिख रहा हूँ कि अगर सम्भव हुआ तो जैसा सुझाव है, उस ढगसे मैं सोराबजीकी मदद करना चाहूँगा। श्री डॉलको लिखे मेरे पत्रकी[1] नकलसे आपको मालूम हो जायेगा कि क्या सुझाव रखा गया है। आप सोचकर देखिए कि यह काम किया भी जा सकता है या नही।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४७७) की माइक्रोफिल्मसे।

३८७. पत्र : देवचन्द पारेखको

[१९ अप्रैल, १९२६][2]

श्री देवचन्दभाई,

भाई फूलचन्दने आपके बड़े भाईका[3] स्वर्गवास हो जानेका समाचार दिया है। समवेदना तो क्या प्रकट करूँ? हम तो यही चाहते हैं कि हमारे सगे-सम्बन्धी हमेशा बने रहें लेकिन हमारी चाही एक भी बात कही होती है क्या? और यदि हम अपने स्वार्थको भूल जायें तो मृत्यु-जैसी अनिवार्य और जीवनप्रद वस्तुका विलाप किसलिए करें? यह सूत्र क्या आपको सिखाना होगा? लेकिन इस घड़ी उसका स्मरण कराना उचित है।

पोरबन्दरसे कोई जवाब नही आया है।

मैंने मसूरी जानेका विचार छोड़ दिया है।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (जी० एन० ५७०९) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

२. डाककी मुहरसे।

३. बड़े भाई नहीं, छोटे भाई हेमचन्द।

३८८. पत्र : हेनरी लॉरेंसको[1]

साबरमती आश्रम
अहमदाबाद
२० अप्रैल, १९२६

प्रिय सर हेनरी लॉरेंस,

इसी महीनेकी १६ तारीखके पत्रके लिए मैं आपका बड़ा आभारी हूँ। अगर हमारी वार्ताके बारेमें कोई जल्दी न हो तो यह मौसम खत्म होनेपर जब आप सामान्य रूपसे पूना या बम्बईमें रहने लगें तभी मैं आपसे मिल लूं। लेकिन, किसी भी हालतमें मैं आपको खासकर मुझसे मिलनेके लिए पूना आनेका कष्ट देनेकी नहीं सोच सकता। इसलिए, अगर आपको ऐसा लगे कि हमें जल्दी ही मिलना चाहिए तो मैं यहांसे ६ मईको चल दूं और रेलगाड़ी तथा मोटरसे जितनी जल्दी वहाँ पहुँच सकता हूँ, पहुँच जाऊँ। मैं कभी महाबलेश्वर नहीं गया हूँ, इसलिए मुझे समय-सारिणीकी जानकारी नहीं है।

यह कहनेकी जरूरत नहीं कि कृषि-सम्बन्धी शाही आयोगसे मेरा कोई सरोकार नहीं हो सकता। इस शासन-प्रणालीके सम्बन्धमें तो मेरे विचार उग्र हैं ही, इसके अतिरिक्त आयोग वगैरहमें मेरा विश्वास कब-का उठ चुका है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

लॉर्ड हैलीफेक्सके कागजातके निजी तौरपर छपवाये संग्रहकी फोटो-नकलसे।

सौजन्य : इंडिया ऑफिस रेकार्ड

३८९. पत्र : डी० वी० रामस्वामीको

साबरमती आश्रम
२० अप्रैल, १९२६

प्रिय रामस्वामी,

हनुमन्तरावके जीवन-वृत्तान्तपर आपके तैयार किये गये नोट्स मुझे मिल गये हैं। वे काफी रोचक हैं, लेकिन उन्हें प्रकाशित नहीं करना चाहिए और जिस कृतिमें भारत सेवक समाज (सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी)की आलोचना हो या उसपर

1. बम्बईके गवर्नर सर हेनरी लॉरेंसने यह पत्र लॉर्ड इर्विनके नाम लिखे अपने २२-४-१९२६के पत्रके साथ भेजा था।

प्रहार किया गया हो, उसकी प्रस्तावना तो मैं किसी हालतमें नहीं लिख सकता। मेरी सलाह यह है कि अगर आप विवादास्पद विषयोंको स्थान दिये बिना हनुमन्तरावके सम्बन्धमें कुछ पठनीय चीजें प्रस्तुत नहीं कर सकें तो इस विषयपर कोई चीज प्रकाशित ही न करें। बेहतर यही होगा कि कुछ भी प्रकाशित न किया जाये या फिर पत्र-पत्रिकाओंमें कुछ लिखकर सन्तोष कर लिया जाये। आपने जो प्रति मुझे भेजी है, उसे अगर आप वापस चाहते हों तो कृपया लिख भेजें। मैं उसे लौटा दूंगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत डी० वी० रामस्वामी
विशाखापट्टम

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४७८) की माइक्रोफिल्मसे।

३९०. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

साबरमती आश्रम
२० अप्रैल, १९२६

प्रिय सतीश बाबू,

आपके दोनों पत्र मिले। उत्कलके सम्बन्धमें आपकी बात मैंने ध्यानमें रख ली है। अभी मैं निरंजन बाबू द्वारा भेजे कागज-पत्र देख रहा हूँ।

आपकी पटना-यात्राको मैं काफी सफल मानता हूँ। चन्दा इकट्ठा करनेकी दृष्टिसे देखें तो भी; आखिरमें ये छोटे-छोटे संग्रह ही हमारे लिए आधार-स्तम्भका काम करेंगे। इसलिए, सौ रुपये उगाह पाना अच्छी शुरुआत है।

मैंने आपसे इस बातका जिक्र तो किया ही नहीं कि आपने रेलगाड़ीमें धुननेकी जरूरत पड़ते ही तत्काल जो धुनकी बना ली थी और जिससे आपने अपनी तकलीके लिए रुई धुनी थी, वह मुझे मिल गई है। यह बहुत अच्छा साधन है। हाथ-कताईकी खूबी इसी बातमें है कि हम मामूलीसे-मामूली चीजोंका भी इस्तेमाल अपने औजार-उपकरणकी तरह कर सकें। यह चीज हमारे देशवासियोंकी प्रकृतिके अधिक उपयुक्त है। उनकी कला औजारों और उपकरणोंमें नहीं, बल्कि उनके दिमाग और हाथमें होती है।

हेमप्रभा देवी कैसी हैं? उनका स्वास्थ्य अच्छा तो है? क्या उन्हें कभी आश्रमकी भी याद आती है? मेरी मसूरी-यात्रा स्थगित हो गई है। जमनालालजीका मन इस विषयमें पूरी तरह आश्वस्त नहीं था कि मुझे जो वहाँ ले जा रहे हैं, वह ठीक कर रहे हैं या नहीं। खुद मुझे तो इसकी जरूरत कभी महसूस नहीं हुई। इसके विपरीत मुझे लगता था कि इस तरह मसूरी जा बैठना जीवनके प्रति मेरे दृष्टिकोणसे संगत नहीं है और चूंकि कोई भी निश्चयपूर्वक यह नहीं कह सका कि क्या करना ठीक है, इसलिए इसका फैसला सिक्का उछालकर कर लिया गया। नतीजा मसूरी

जानेके खिलाफ निकला। अतएव, अगर मैं संकटमें ही न पड़ जाऊँ तो यह यात्रा अन्तिम रूपसे रद कर दी गई है। वैसे अगर ऐसा संकट आ जाये तब भी मेरा यही विचार रहेगा कि मुझे साबरमतीमें रहकर ही अपना स्वास्थ्य सुधारना है या अगर ईश्वरकी इच्छा कुछ और हो तो यहीं दम तोड़ देना है।

आपका,

श्रीयुत सतीशचन्द्र दासगुप्त
कलकत्ता

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९,४७९)की फोटो-नकलसे।

३९१. पत्र : एस० वी० फडनीसको

साबरमती आश्रम
२० अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके बारेमें मुझसे जो-कुछ भी बन पड़ेगा करूँगा। यद्यपि मैं किसी अखबारी विवादमें नहीं पड़ना चाहता, फिर भी इतना जरूर कहूँगा कि यह आरोप मुझे कतई स्वीकार नहीं कि मैंने समझौतेके मार्गमें बाधा डाली है। खादीके सम्बन्धमें मेरा निजी विचार तो यह है कि खादी-सम्बन्धी शर्तको किसी भी कारणसे हटाना नहीं चाहिए, लेकिन इस विषयमें भी तो मुझे एक ही मत देनेका अधिकार है।

हृदयसे आपका

श्रीयुत एस० वी० फडनीस
४२३ वालकेश्वर रोड
बम्बई–६

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४८०) की माइक्रोफिल्मसे।

३९२. पत्र : मीठूबहन पेटिटको

साबरमती आश्रम
मंगलवार, चैत्र सुदी ८ [२० अप्रैल, १९२६][1]

प्रिय बहन,

तुम्हारा पत्र मुझे मिला। मैंने तो तुम्हे यदि आवश्यक हुआ तो नुकसान उठाकर खादी भेजनेकी बात लिखी थी। इसलिए यदि बम्बईकी खादी तुम्हे महँगी लगती तो उसमें से कुछ पैसे मै चुका देता। इस पत्रके साथ एक दूसरा बिल भेज रहा हूँ —जो खादी आश्रमसे भेजी गई थी उसका। आश्रमसे जो खादी आई है उस खादीके बारेमें कुछ कहने लायक बात है क्या? इतना तो तुम समझती ही हो कि आश्रमसे जो भी वस्तु जाये वह यदि ठीक न हो अथवा पुसाती न हो तो अवश्य वापस भेजी जा सकती है और यदि रख ली जाये तो भी उसमें यदि कोई दोष दिखाई दे तो वह मुझे बताना चाहिए।

मेरा मसूरी जाना रद हो गया है, यह खबर तुमने समाचारपत्रोमें तो देखी ही होगी। राष्ट्रीय स्त्री-सभाको अब तो प्रथम श्रेणीका प्रमाणपत्र मिलना चाहिए। दूसरी श्रेणीके प्रमाणपत्रसे तुम्हें अथवा मुझे सन्तोष नहीं होगा। फिलहाल शहद मत भेजना। कदाचित् मुझे ही दो-तीन दिनोके लिए महाबलेश्वर आना पड़े। निश्चित होनेपर तुम्हें बताऊँगा, इस बारेमें कही बात न करना। यह बात ठीक है कि स्ट्रॉबेरी यहाँतक नही पहुँच सकती। अपनी तबीयतको खूब सुधारना।

गुजराती प्रति (एस० एन० १०८९०) की फोटो-नकलसे।

३९३. पत्र : काका कालेलकरको

साबरमती आश्रम
मंगलवार, चैत्र सुदी ८ [२० अप्रैल, १९२६]

भाईश्री काका,

तुम्हारा आधा पत्र मिल गया है, यानी जिसमें तबीयतका वर्णन है। बाकी, मैं मानता हूँ बादमें आयेगा। बहुत दिन हो गये तुम्हें पत्र ही नही लिखा इसलिए आज थोड़ा-सा लिखाये दे रहा हूँ।

यदि डाक्टरने ऑलिव् आयल लेनेके लिए विशेष रूपसे कहा है तो मैं विवादमें नही पड़ना चाहता; अन्यथा इसे छोड़ देना ही श्रेयस्कर है। यहाँका ऑलिव आयल मुझे तो तनिक भी माफिक नहीं आया। यहाँका, अर्थात् इटली अथवा स्पेनसे आया हुआ;

१. वर्षका अनुमान मसूरी-यात्राके रद होनेके उल्लेखसे लगाया गया है।

क्योंकि हिन्दुस्तानमें तो यह होता ही नहीं है इसलिए ताजा मुश्किलसे ही मिलता है। यह भी देखनेमें आता है कि घी और तेलके हजम होनेमें अलग-अलग समय लगता है और पाचन-क्रिया भी दोनोंकी अलग-अलग होती है। इसलिए ऑलिव आयल छोड़ देना कदाचित् अच्छा हो। वैद्यकी दवाके बारेमें तुम जो कहते हो, सो ठीक है। इसकी दवाका असर जादू-मन्तरके समान होता है। डाक्टर तलवलकरको हमारी ओरसे पूरा सम्मान नहीं मिला है, ऐसा कहनेमें तुमने सिडनी स्मिथकी भाषाका प्रयोग किया जाना पड़ता है। "हम" अर्थात् लिखनेवाला और जिसे लिखा जाये वे दोनों, तुम यही कहना चाहते हो न? या तुम्हारा मतलब 'मेरी ओरसे' है? यदि तुम्हारा यही मतलब है कि डॉ० तलवलकरको मेरी ओरसे सम्मान नहीं मिला है तो तुमने सिडनी स्मिथको बीचमें बेकार ही घसीटा; मैं तुम्हारे आरोपको स्वीकार करता हूँ। उसका कारण यह है कि डॉ० तलवलकरके प्रति मेरे हृदयमें बहुत मान है परन्तु उनके ज्ञानके प्रति नहीं है। इसीलिए मैंने जब-तब कानूगाको बुलाया है और दोनोंमें से किसी एकको चुनना हो तो मैं अपना जीवन कानूगाको सौंपनेमें नही हिचकिचाऊँगा। डॉ० तलवलकर क्षयरोगके पीछे दीवाने बन गये हैं, जिस तरह मैं चरखेके पीछे बन गया हूँ। वह सबमें क्षयरोग ही देखते हैं और कौन जाने क्या है, लेकिन, उनके इंजेक्शनमें मुझे तनिक भी विश्वास नहीं होता। उन्होंने वैद्यक-शास्त्रका बहुत अध्ययन किया है लेकिन उसे पचाया नहीं है, ऐसा मुझे हमेशा लगा करता है। ऐसी स्थितिमें क्या करना चाहिए? १० दिन पहले वे यहाँ आये थे तब मैंने उन्हें अपने अविश्वासके बारेमें बताया था। उन्होंने मेरा मत-परिवर्तन कर सकनेकी बात मुझसे कही है, यदि मैं उन्हें पूरा समय दूँ तो। लेकिन समय कहाँसे मिले? अतएव कदाचित् मुझे अपनी अश्रद्धाको मिटा देना चाहिए। सच बात तो यह है कि डाक्टरमात्रमें अर्थात् वैद्यकके धन्धेमें ही मेरा विश्वास बहुत कम है और मेरा यह अविश्वास बढ़ता ही जाता है। आत्माको ध्यानमें रखे बिना वे केवल शरीरके ही नियमोंकी खोजमें लगे रहते हैं इसीलिए सच्चे उपाय उनके हाथ नहीं आते।

मेरा मसूरी जाना स्थगित हो गया है। कल हमने पर्चियाँ निकाली थीं। जमनालालजीको मुझे ले जानेके बारेमें कम विश्वास था इसलिए पर्ची निकालनी पड़ी। वहाँ जानेकी आवश्यकता है, यह बात तो मैं पहलेसे ही नहीं मानता था। इसलिए मैं वहाँ जानेकी बातका उत्तरदायित्व कैसे लेता? जमनालालजी उत्तरदायित्व लेनेको तैयार न थे। जहाँ सिद्धान्त-भेद न हो और एक या दूसरा निर्णय न किया जा सके तो पर्ची डालकर ईश्वरके अभिप्रायको जान लेनेकी बात मुझे हमेशा पसन्द आई है।

शंकर ज्यादासे-ज्यादा पहली जूनको भावनगर चला जायेगा, ऐसा नानाभाईने तय किया है। बालके बारेमें स्वामी विचार कर रहे हैं। बालको लिखे तुम्हारे पत्रकी बात चन्द्रशंकरने अभी-अभी मुझसे कही है। इसलिए अब इस विषयपर स्वामीके साथ बातचीत करनेके बाद ही विचार किया जायेगा।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

गायके दूधके बारेमें तो मुझे तुम्हारे लिए पत्र नहीं, पुस्तक लिखनी चाहिए।

गुजराती पत्र (एस० एन० १९४८१) की फोटो-नकलसे।

३९४. पत्र : देवचन्द पारेखको

साबरमती आश्रम
मंगलवार, २० अप्रल, १९२६

भाईश्री ५ देवचन्दभाई,

यह रहा दीवान साहबका पत्र। अब तो जब वे आयेंगे तब ही देखा जायेगा। तुम खुद ही पोरबन्दर हो आना। साथके पत्रको तुमने पढा है, ऐसा कहना और चूंकि तुम मिलोगे ही इसलिए पत्रकी पहुँच मैं नहीं लिखता। तुम्हारा वहाँ जाना मेरी पहुँच जैसा ही है।

गुजराती पत्र (एस० एन० १९४८२) की माइक्रोफिल्मसे।

३९५. पत्र : प्रफुल्लचन्द्र मित्रको

साबरमती आश्रम
२१ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। वास्तवमें मुझे ऐसी कोई जानकारी नहीं है कि मेरे किसी साथीने ढाकामें विदेशी मच्छरदानीके बजाय खादीकी मच्छरदानी लेनेसे इनकार कर दिया। मच्छरदानीको मैं पहनने-ओढ़नेके आम वस्त्रोंमें शामिल नहीं करता, इसलिए जहाँतक खुद मेरी बात है, जिस प्रकार मुझे विदेशी छातेके उपयोगपर कोई आपत्ति नहीं है, उसी प्रकार विदेशी मच्छरदानीके भी इस्तेमालपर कोई एतराज नहीं है। वैसे मैं कोशिश तो यही करूँगा कि इन दोनोंका भी त्याग कर दूं और जेलमें बदलेमें स्वदेशी मच्छरदानी और छाता ही प्राप्त करूँ। पर विदेशी कपड़ेके अतिरिक्त किसी अन्य वस्तुका बहिष्कार मेरे लिए धर्मका विषय नहीं है। और विदेशी कपडेके बहिष्कारको मैं धर्म इसलिए मानता हूँ कि मेरे विचारसे विदेशी कपड़ा हमारी गुलामीकी सबसे बड़ी निशानी है। यह कहना बिलकुल गलत है कि मेरे साथी गरीब लोगोंको मुझसे मिलने नहीं देते, क्योंकि मैं जानता हूँ कि मैं जितनी देर ढाकामें रहा, बराबर गरीब लोगोंसे घिरा रहता था।

१९२० और १९२१ के बहिष्कारोंमें मेरा आज भी दृढ़ विश्वास है। कांग्रेसने उनमें ढील दे दी है, क्योंकि ऐसा करनेका उसे पूरा अधिकार है। जिसने भी असह-

योग किया था, इसीलिए किया था कि उसका उसकी उपयोगितामें विश्वास था। बलिदान तो असहयोगकी एक अनिवार्य शर्त है।

मैं जानता हूँ कि बहुत-से छात्रों, वकीलों और अन्य लोगोंको कष्ट उठाने पड़े हैं। उस कष्ट-सहनसे उनको और राष्ट्रको बहुत लाभ पहुँचा है। प्रत्येक असहयोगी विद्यार्थीके सामने, यदि करना चाहें तो, राष्ट्र-सेवा करनेका बहुत बड़ा क्षेत्र पड़ा हुआ है। चरखेका सही-सही इस्तेमाल करनेसे निश्चय ही उसे वह जो-कुछ चाहता है, सब मिल जायेगा, लेकिन चरखेमें जिसका विश्वास नहीं है, वह कोई भी ऐसा अन्य राष्ट्रीय कार्य अपना सकता है जो उसे अच्छा लगे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत प्रफुल्लचन्द्र मित्र
नेशनल मेडिकल इन्स्टीटयूट
ढाका

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४८३) की फोटो-नकलसे।

३९६. पत्र: एस० मेहताको

साबरमती आश्रम
२१ अप्रैल, १९२६

प्रिय महोदय,

आपने मुझसे यह जानना चाहा है कि १८९६ में जब मैं भारतसे नेटाल लौटा तब 'कूरलैंड' नामक जहाजसे मेरे साथ आपके भाई शेख अमीर अली खाँ भी यात्रा कर रहे थे या नहीं। उत्तरमें मैं सूचित करता हूँ कि आपके उक्त भाईने उक्त जहाजसे उस वर्ष मेरे साथ यात्रा की थी।

हृदयसे आपका,

श्री एस० मेहता
२२२, ग्रे स्ट्रीट
डर्बन

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४८४) की माइक्रोफिल्मसे।

३९७. पत्र : बी० सुब्बारावको

साबरमती आश्रम
२१ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। क्या आप निम्नलिखित प्रश्नोंके उत्तर देंगे? क्या आप विवाहित हैं? अगर विवाहित हैं तो क्या आपके बच्चे हैं? क्या आप यहाँ अकेले रहना चाहते हैं? क्या आप शारीरिक श्रम कर सकते हैं? क्या आपका स्वास्थ्य अच्छा है? आपके पास चिकित्सा-शास्त्रकी जो उपाधि है, वह तो है ही; लेकिन क्या आप अपनेको हर तरहसे बहुत अच्छा चिकित्सक मानते हैं? आपने अपनेको नेत्र-रोगोंका शल्य-चिकित्सक (ऑपथैलमिक सर्जन) बताया है। क्या इस विषयमें आपने कोई विशेष योग्यता हासिल की है?

हृदयसे आपका,

श्रीयुत बी० सुब्बाराव
ऑपथैलमिक सर्जन
८६, पिल्लेयर कोइल स्ट्रीट,
ट्रिप्लिकेन, मद्रास

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४८५) की माइक्रोफिल्मसे।

३९८. सूत इकट्ठा करनेवालोंको चेतावनी

अखिल भारतीय चरखा संघको चन्देके रूपमें जो सूत मिलता है, उसमें से अधिकांश सूत उसी जगहके स्वयंसेवक इकट्ठा करते हैं। उससे बहुत-सा समय, शक्ति और पैसा बच जाता है। परन्तु सूत इकट्ठा करनेवाले इन स्वयंसेवकोंको खुद भी अच्छा कातनेवाला होना चाहिए। उन्हें अच्छे और बुरे सूतकी पहचान होनी चाहिए और अलग-अलग अंकोंके सूतको भी उन्हें पहचानना चाहिए। कारण, यदि ये सूत इकट्ठा करनेवाले स्वयंसेवक सूतकी परीक्षा करना जानते हों और सदस्योंसे चन्देके तौरपर सूत लेनेसे पहले उसकी परीक्षा कर लें तो सूतका मूल्य तत्काल बढ़ाया जा सकता है। उन्हें ऐसा सूत ही स्वीकार करना चाहिए जो एकसार कता हुआ हो और चार फुट लम्बी लच्छियोंमें बँधा हुआ हो। इन छोटी-छोटी बातोंपर जितना अधिक ध्यान दिया जायेगा, सस्ती और मजबूत खादी तैयार करनेकी उतनी ही अधिक सम्भावना होगी। कातनेवालोंको यह याद रखना चाहिए कि वे जितना अच्छा कातेंगे तो संघको उनके द्वारा उतना ही अधिक चन्दा दिया गया माना जायेगा। सूतके रूपमें चन्दा

देनेकी यही खूबी है। यदि चन्दा वसूल करनेवाले और कातनेवाले सदस्य बड़े ध्यानपूर्वक अपना-अपना कार्य करें तो वे चन्देका मूल्य दुगुना कर सकते हैं, जबकि इसमें खर्च कुछ नहीं होगा। इसके विपरीत, अगर सूत लापरवाहीसे काता जायेगा या उसको जैसे-तैसे समेटकर बन्द कर दिया जायेगा तो उससे चरखा संघका बोझ बेकारमें बढ़ेगा और साथ ही उसका मतलब होगा राष्ट्रीय शक्ति और धनकी बर्बादी, जिससे बहुत आसानीसे बचा जा सकता था।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २२-४-१९२६

३९९. क्या करें?

श्रीयुत शरत्‌चन्द्र बोसने श्रीयुत मणिलाल कोठारीकी मार्फत मुझे एक सन्देश भेजा है। उन्होंने मुझसे पूछा है कि जिन लोगोंको बिना मुकदमा चलाये, बिना इतना भी बताये कि उन्होंने क्या अपराध किया है, नजरबन्द रखा जा रहा है और जिनके साथ गम्भीर अपराधियोंकी तरह बर्ताव किया जा रहा है, उन लोगोंको स्वतन्त्र करानेके लिए क्या किया जाना चाहिए अथवा विशेषतः बंगालको क्या करना चाहिए। श्री शरत्‌चन्द्र बोस अपने इन देशवासियोंको स्वतन्त्र करानेके लिए उतने उत्सुक नहीं हैं, जितना कि वे उन नजरबन्द देशवासियोंके प्रति राष्ट्रकी सहानुभूतिका ठोस और प्रभावकारी प्रमाण चाहते हैं। उनका खयाल है और वह ठीक भी है कि जबतक हमारे ये वीर देशभक्त जेलोंमें बन्द हैं, तबतक यदि समस्त भारतका नहीं तो कमसे-कम बंगालका सम्मान दाँवपर लगा हुआ है। मैंने उन्हें जो निम्नलिखित उत्तर[1] भेजा है, इससे अच्छा उत्तर मेरे पास नहीं था। चूँकि श्री बोस चाहते हैं कि मैं इसे प्रकाशित कर दूँ, इसलिए मैं इसे प्रकाशित कर रहा हूँ।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २२-४-१९२६

१. देखिए "पत्र: शरत्‌चन्द्र बोसको", ९-४-१९२६ और "विविध प्रश्न [-५]", १८-४-१९२६ का उपशीर्षक "तब हम क्या करें?"

४००. मादक पदार्थ, शराब और शैतान

मादक पदार्थ और शराब, ये दोनों शैतानके दो हाथ हैं, जिनसे प्रहार करके वह अपने असहाय शिकारोंको जड़बुद्धि और मत्त बना देता है। और जेनेवामें आयोजित दो अफीम सम्मेलनोंकी जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई है, उसमें लिखे एक लेखके अनुसार अफीम तो, जो सभी मादक पदार्थोंमें प्रमुख है, सबसे बाजी मार ले गई। लेखकके ही शब्दोंमें :

> तमाम कूचों और जवाबी कूचोंके दौरान, तलवारें खींचने और उन्हें पुनः म्यानमें रखनेके क्रममें तथा पराजयों और विख्यात विजयोंकी अफवाहोंके बीच अफीम तथा अन्य मादक पदार्थोंके व्यापारको नया बल, नई गति मिली है।

लेखकका कहना है कि विभिन्न राष्ट्रों द्वारा प्रचारित हैरान कर देनेवाली खबरोंसे पैदा हुई गड़बड़के बीच :

> सम्बन्धित लोगोंमें से जो लोग ठीक-ठीक यह जानते थे कि वे क्या चाहते हैं और क्या नहीं, और जो लोग साफ-साफ देख रहे थे कि उन्हें क्या मिल रहा है तथा जो-कुछ मिल रहा था, उससे सन्तुष्ट भी थे, वे ऐसे लोग थे जो किसी-न-किसी प्रकारसे मादक पदार्थोंके व्यापारसे लाभ उठाते हैं।

लेखक आगे कहता है :

> खासकर विश्वयुद्धके दौरान यह व्यापार लगभग बिना किसी रोक-टोकके चलता रहा है। पाँच सालके उस उथल-पुथलके कालमें, जहाँतक अन्तर्राष्ट्रीय दिलचस्पी या कार्यका सम्बन्ध था, मादक पदार्थोंके व्यापारके खिलाफ कोई प्रयत्न ही नहीं हुआ। उसे उतना ही अनिवार्य मान लिया गया जितना उस मूल पापको जिसके साथ कि ईसाई विश्वासके अनुसार मनुष्यका जन्म हुआ है।. . .सच तो यह है कि खुद इस युद्धसे इस बुराईको बहुत बढ़ावा मिला। मानवीय दुःखोंसे राहत पाने और किसी हदतक युद्धकी भयंकर निराशा और घुटन, ऊब और एकरसताके बीच मानसिक शान्ति पानेके लिए सेनामें मारफिया और कोकेनका इतना अधिक प्रयोग किया जाने लगा कि अन्तमें बहुत-से देशोंमें ऐसे नशाखोरोंका एक दल तैयार हो गया जिसकी नशाखोरीकी आदत छूट नहीं पाई और जिसकी यह आदत कमोबेश लाइलाज हो गई। ये लोग नशीले पदार्थ खाते रहे और दूसरोंके बीच भी इस कुटेवका प्रचार करते रहे। कारण, इस बुराईके साथ जो एक और चीज जुड़ी होती है, वह यह कि नशाखोर लोगोंमें दूसरोंको यह लत डालकर नशाखोरीका प्रचार करनेका एक विकृत उत्साह होता है।

यह बुराई गत युद्धके अत्यन्त घातक परिणामोंमें से है। इसने करोड़ोंकी जिन्दगी बर्बाद कर दी है, इसके कारण मनुष्यकी आत्मा और भी तेजीसे जड़ होती जा रही है। लेकिन, लेखक श्री गेविटने दिखाया है कि तेरह वर्ष पूर्व जब हेग-सम्मेलनमें इस विषयपर अन्तर्राष्ट्रीय समझौता हुआ था तबसे "इस समस्याका स्वरूप बहुत बदल गया है।" श्री गेविट सिर्फ यूरोपीय दृष्टिकोणसे ही कुछ कह सकते हैं। इसलिए वे कहते हैं :

> यह बुराई अब विदेशोंकी, सुदूर पूर्वके देशोंकी समस्या नहीं रह गई है; अब यह भारत, चीन तथा दूसरे पूर्वी देशोंमें युगोंसे प्रचलित तरीकोंसे कच्ची और शोधी हुई अफीम खाने, पीने तथा चिलम में पीनेतक ही नहीं सीमित रह गई है।
>
> अब तो इसका प्रयोग
>
> अपने-आपको "सभ्य" कहनेवाले देशोंकी वैज्ञानिक ढंगसे चलाई जानेवाली बहुत ही कीमती साधनोंसे युक्त औषध-निर्माणशालाओंमें तैयार किये गये बहुत ही तेज और हानिकर सत्तके रूपमें होता है। पहले जहाँ अफीम सुदूर पूर्वसे पश्चिमी दुनियामें आती थी और यहाँके लोगोंको अफीम खानेकी आदत भी सुदूर पूर्वके संसर्गसे ही पड़ती थी, वहाँ अब यह धारा बिलकुल उलटकर बह रही है। और बात यहीं खत्म नहीं हो जाती। जहाँ ये मादक पदार्थ तैयार होते हैं, वहाँके लिए और पड़ोसी देशोंके लिए भी ये उतने ही घातक सिद्ध हो रहे हैं और वहाँ भी बड़े खतरनाक पैमानेपर इनका प्रचार होता जा रहा है। . . .दरअसल तो इससे समस्त मानव-समाजके लिए खतरा पैदा हो गया है। इस शैतानके लिए तो कोई गोरा शिकार भी उतना ही उपयोगी है जितना कि काली या पीली जातिका कोई शिकार, . . . इसके साम्राज्यमें सूर्यास्त कभी होता ही नहीं।

इसके बाद लेखकने इस "बुराईकी जड़" पर विचार करते हुए बताया है कि इसकी जड़ तो दवा और वैज्ञानिक शोधोंके लिए इस तरहकी चीजोंका जितना उत्पादन सर्वथा उचित है उसके अनुपातमें उनका बहुत अधिक उत्पादन होना है।

> . . .इस प्रकार दुनियाको जितने मादक पदार्थोंकी जरूरत है उसे अगर अधिकसे-अधिक बढ़ाकर आँका जाये तो भी आज उसकी अपेक्षा उनका दस गुना ज्यादा उत्पादन हो रहा है।

फिर लेखकने दिखाया है कि बड़े-बड़े देशोंमें से किसीने भी — अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेनने भी — इस समस्याको सुलझानेके लिए ठीकसे प्रयत्न नहीं किया है। लेखकने इन देशोंपर हेग-सम्मेलनमें हुए समझौतेके अनुच्छेद ९ के अन्तर्गत दिये गये वचनको तोड़नेका आरोप लगाया है। इस अनुच्छेदके अधीन उन्होंने "इन पदार्थोंका उत्पादन दवा और वैज्ञानिक शोधकी वास्तविक आवश्यकताओंके लिए अपेक्षित

परिणामतक ही सीमित रखनेका" वचन दिया था। उसने इस बातपर बड़ा दुःख प्रकट किया है कि ये सभ्य राष्ट्र न केवल कच्ची और शोधी हुई अफीमके आवश्यकता से अधिक उत्पादनको रोकनेमें असमर्थ रहे हैं, बल्कि ये उन बड़ी-बड़ी औषध-निर्माण-शालाओंमें घातक औषधोंका उत्पादन भी, जिन्हें सरकारसे लाइसेंस लेने पड़ते हैं और जिनकी जाँच की जा सकती है और इसलिए अगर कोई सरकार चाहे तो जिनपर नियन्त्रण रखना सबसे आसान काम है, नहीं रोक पाये हैं।

जिन पाठकोंने कांग्रेसके अनुरोधपर श्री एन्ड्रयूज द्वारा असममें अफीमके व्यापार और प्रयोगके विषयमें तैयार की गई रिपोर्ट पढ़ी होगी, वे जानते हैं कि इस आदतसे वहाँ लोगोंको कितनी हानि हुई है। उन्हें यह भी मालूम है कि सरकार इस बढ़ती हुई बुराईको रोकनेमें किस प्रकार बिलकुल असमर्थ रही है और किस प्रकार उसने उन सुधारकोंके मार्गमें भी रोड़े अटकाये जिन्होंने इस बुराईको दूर करनेकी कोशिश की। इसलिए यह देखकर लोगोंके मनको बड़ा तोष मिला कि राष्ट्रीय सप्ताहके दौरान सार्वजनिक सभाओंमें बोलनेवाले लोगोंने शराब और मादक पदार्थोंके पूर्ण निषेधपर जोर दिया। यह सुधार तो कबका सम्पन्न हो जाना चाहिए था और अगर कौंसिलोंमें जाना किसी भी प्रकारसे श्रेयस्कर है तो निर्वाचकोंके बीच अपने-अपने प्रचारके लिए पूर्ण मद्य-निषेधको एक मुख्य आधार बनाना चाहिए। हर सदस्यको यह प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि वह पूर्ण मद्य-निषेध आन्दोलनको न केवल अपना समर्थन देगा, बल्कि खुद ऐसा आन्दोलन शुरू करेगा और उसे चलायेगा। पूर्ण मद्य-निषेधका तो बस एक ही उपाय है कि इस अनैतिक साधनसे जितना राजस्व प्राप्त होता है, उसी अनुपातमें सैनिक व्ययमें कमी कर दी जाये। इसलिए पूर्ण मद्यनिषेधकी माँगके साथ ही साथ सैनिक व्ययमें कटौतीकी माँग भी करनी चाहिए, फिर इस विषयपर जनमत-संग्रह आदिकी योजनाके चक्करमें पड़कर समस्याके समाधानमें विलम्ब नहीं करना चाहिए। भारतमें इस विषयपर जनमत-संग्रहका कोई कारण ही नहीं हो सकता, क्योंकि मद्यपान और नशाखोरीको तो यहाँ सभी बुरा मानते हैं। पश्चिमी दुनियाकी तरह भारतमें शराब पीनेका कोई फैशन नहीं है। इसलिए, भारतमें जनमत-संग्रहकी बात करना इस समस्याकी उपेक्षा करना है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २२-४-१९२६

४०१. टिप्पणियाँ

जलियाँवाला बाग

कराचीके एक पत्र-लेखकने लिखा है:

> आपने कई साल पहले जलियाँवाला बाग स्मारकके लिए लाखों रुपये इकट्ठे किये थे। मुझे बताया गया था कि वहाँ एक स्कूल बनाया जायेगा। क्या अब आप मुझे बतायेंगे कि उस स्मारक कोषका क्या किया गया? वह स्थान खरीदा भी गया या नहीं? वहाँ स्वतन्त्रताका मन्दिर कब बनाया जायेगा?

इन प्रश्नोंसे ऐसा अज्ञान झलकता है, जिसकी मुझे कोई आशा नहीं थी। लेखकको मालूम होना चाहिए था कि १३ अप्रैल, १९१९ को जिस स्थानपर हत्या-काण्ड हुआ था, वह पर्याप्त पैसा इकट्ठा होते ही तत्काल खरीद लिया गया था। उस स्थानसे कूड़ा-करकट हटवा दिया गया है और उसे समतल करवा दिया गया है और वहाँ अब एक सुन्दर लॉन देखा जा सकता है। उसकी देखभालके लिए व्यक्ति नियुक्त कर दिया गया है। शेष पैसा अच्छी साखवाले बैंकोंमें जमा है और उसमें हर साल ब्याज जुड़ता रहता है। वहाँ कोई इमारत नहीं बनाई जा सकी है। इसका सीधा-सादा कारण यह है कि जब हम हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरेके गले काटनेका प्रयत्न कर रहे हैं और स्वतन्त्रताकी जड़ें ही खोद रहे हैं तब वहाँ ईंट और गारेसे स्वतन्त्रताका मन्दिर नहीं बनाया जा सकता। जब यह स्मारक बनाया जाये तो इसे वास्तवमें भारतकी समस्त जातियों और समस्त धर्मोंकी एकताका स्मारक होना चाहिए। जब ऐसा स्मारक बनेगा, तब वह इस बातका द्योतक होगा कि भारतके लोग तमाम विघ्न-बाधाओंके बावजूद स्वतन्त्रता और सम्मान प्राप्त करनेको कटिबद्ध हैं। अगर इस समय कोई इमारत बनानेका प्रयत्न किया गया तो मैं जानता हूँ कि वह प्रयत्न हम सबको दृढ़ताके एक सूत्रमें बाँधनेके बजाय झगड़ेका एक कारण बन जायेगा।

फरवरीके आँकड़े

विभिन्न प्रान्तोंमें खादीके उत्पादन और बिक्रीके फरवरी महीनेके आँकड़े इस प्रकार हैं:[1]

आन्ध्रके आँकड़े हमेशाकी तरह अपूर्ण हैं, क्योंकि सिर्फ १६ भण्डारोंने ही प्रान्तीय कार्यालयको अपनी रिपोर्टें भेजी हैं। बंगालके आँकड़े सिर्फ खादी प्रतिष्ठानके ही आँकड़े हैं; अभय आश्रमके आँकड़े प्राप्त नहीं हुए हैं। सैंडहर्स्ट रोड भण्डारके आँकड़ोंके सिवा बम्बईके आँकड़े पूर्ण हैं। दिल्लीके आँकड़ोंमें केवल हापुड़के आँकड़े ही दिये गये हैं। पंजाब और तमिलनाडके आँकड़े पूर्ण हैं और उनके बिक्रीके

१. ये आँकड़े यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं।

आँकड़ोंको इस दृष्टिसे ठीक कर लिया गया है कि हिसाबमें कोई आँकड़ा कहीं दो बार न जोड़ लिया जाये। उत्तर महाराष्ट्रके आँकड़ोंमें केवल जलगाँव और वर्धाके भण्डारोंके ही आँकड़े दिये गये हैं और मध्य महाराष्ट्रमें सिर्फ पूनाके भण्डारके आँकड़े दिये गये हैं।

उत्पादन और बिक्री दोनोंके लिहाजसे फरवरीके आँकड़े करीब-करीब जनवरीके आँकड़ोंके ही समान हैं। सिर्फ बम्बईके आँकड़ोंमें फर्क है। इस महीनेमें उसके बिक्रीके आँकड़े ४१,४४८ रुपयेसे घटकर सिर्फ २६,०२९ रुपये रह गये हैं। परन्तु गत वर्षके फरवरी महीनेके आँकड़ोंकी तुलनामें, इस सालके आँकड़ोंमें, खासकर उत्पादनके आँकड़ोंमें, काफी वृद्धि हुई है। कुछ प्रमुख प्रान्तोंमें खादीके उत्पादनके आँकड़े नीचे दिये जा रहे हैं:[1]

बिक्रीके मामलेमें जहाँ पंजाब और उत्कलके आँकड़े लगभग पिछले वर्षके समान ही हैं, वहाँ बम्बईमें बिक्री घटी है। लेकिन पंजाब, बिहार और तमिलनाडके आँकड़े देखकर पता चलता है कि वहाँ बिक्री काफी बढ़ी है। इन प्रान्तोंके आँकड़े इस प्रकार हैं:[2]

मैं फिर अपनी यह आशा व्यक्त करता हूँ कि जिन केन्द्रोंने अभीतक अपनी रिपोर्ट नियमित रूपसे भेजना आरम्भ नहीं किया है, वे अब शीघ्र ही भेजना आरम्भ कर देंगे ताकि अखिल भारतीय चरखा संघ जहाँतक हो सके, सही आँकड़ोंको प्रकाशित कर सके।

दूसरे प्रान्तोंमें बिक्रीके आँकड़ोंकी बढोतरीकी तुलनामें बम्बईके आँकड़ोंमें बराबर जो कमी आती जा रही है उसका ध्यानपूर्वक विचार करना चाहिए। एक समय था जब सारे हिन्दुस्तानमें तैयार हुई खादीकी बम्बई ही में सबसे ज्यादा खपत थी। अब भी इस लिहाजसे उसका स्थान काफी ऊँचा है और तमिलनाडके बाद दूसरा नम्बर उसीका है। गत वर्षके आँकड़ोंकी तुलनामें बम्बईके आँकड़े कुछ भी नहीं हैं। गत वर्षमें फरवरी महीनेके आँकड़े ४४,२२० रुपये थे, इस साल सिर्फ २६,०२९ रुपये हैं, जब कि तमिलनाडमें गत वर्ष फरवरी महीनेमें जहाँ सिर्फ ३४,८२५ रुपयेकी बिक्री हुई वहाँ इस वर्ष फरवरीमें ५३,५१२ रुपयेकी हुई है।

खादीकी व्यवस्थित बिक्री

खादीके प्रचार-कार्यसे सब दिशाओंमें कार्यकर्त्ताओंकी कार्य करनेकी शक्तियोंका जिस प्रकार विकास हो रहा है, वह बड़ा ही आश्चर्यजनक है। केवल खादीका उत्पादन ही काफी नहीं है। खादीकी किस्म भी धीरे-धीरे सुधरनी चाहिए। उत्पादन-पर होनेवाले खर्चको नियमित करना चाहिए और उत्पादन-वृद्धिके साथ-साथ उसकी बिक्री भी बढ़ती रहनी चाहिए। खादी प्रतिष्ठान उसका मार्ग दिखा रहा है। मैं पहले ही लिख[3] चुका हूँ कि बंगाल किस तरह अपने यहाँ तैयार की गई खादीको वहीं

१. ये आँकड़े यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं।
२. ये आँकड़े यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं।
३. देखिए "टिप्पणियाँ", १-४-१९२६, उपशीर्षक "बंगालका अनुकरणीय उदाहरण"।

बेच देनेका प्रयत्न कर रहा है। जनवरीसे १७ मार्चतक प्रतिष्ठानके कार्यकर्त्ताओंने १४ जिलोंके ४१ स्थानोंमें फेरी लगाकर २५,००० रुपयेकी खादी बेची। कार्यकर्त्ताओंने अपनी समस्त बंगालकी यात्राकी एक योजना तैयार की है। वे आशा करते हैं कि कुछ ही महीनोंमें वे यह यात्रा पूरी कर लेंगे। इसलिए फिलहाल तो वहाँ जरूरतसे ज्यादा उत्पादन हो ही नहीं सकता बल्कि जितना उत्पादन हो सकेगा, वह कम ही पड़ेगा। इस तरह वे यह कह सकेंगे कि यदि अधिक पूँजी लगाई जाये तो अधिक खादी तैयार की जा सकेगी और बेची भी जा सकेगी। वह सचमुच आदर्श स्थिति होगी जब न केवल खादी वहींकी-वहीं बिक जायेगी, बल्कि मददके लिए पैसा भी स्थानिक स्तरपर ही इकट्ठा किया जा सकेगा। ऐसी स्थिति आनी निश्चित है, क्योंकि खादी की बिक्रीसे मध्यम वर्गके बहुत-से लोगोंका खादीसे ठीक परिचय होगा और वे जब खादीमें दिलचस्पी लेने लगेंगे तो स्वभावतः वे बिना कठिनाई आवश्यक पूँजी भी सुलभ कर लेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २२-४-१९२६

४०२. खादीके पक्ष और विपक्षमें

खादीके विपक्षमें

एक सज्जनने गुजरातीमें एक पत्र लिखा है। नीचे उसका स्वतन्त्र अनुवाद दे रहा हूँ:[1]

> मैं एक शीघ्रलिपिक हूँ। एक विख्यात यूरोपीय पेढ़ीका विज्ञापन देखकर मैंने उसके कार्यालयमें शीघ्रलिपिकके पदके लिए अर्जी दी। जैसे ही मुझे प्रबन्धकके सामने ले जाया गया, उसने बड़े ध्यानसे मेरे पहनावेपर नजर डाली, और यह देखकर कि वह पूरी तरह खादी का बना हुआ था, उसने कहा, "तुम हमारे किसी कामके नहीं हो। क्या तुम्हें मालूम नहीं है कि खादीकी पोशाक पहननेवालोंको यूरोपीय पेढ़ियोंमें नौकरी पानेकी आशा नहीं करनी चाहिए?" और यह कहकर उसने मुझे चलता कर दिया। मैं तो सोचता ही रह गया कि जो-कुछ लिखाया जाये, उसे सही-सही लिखनेकी मेरी योग्यतासे मेरी पोशाकका क्या सम्बन्ध हो सकता है? मैं इस बातके लिए अपने-आपको बधाई देता हुआ घर लौटा कि मैंने आरामदेह नौकरीके लोभमें खादीकी पोशाक-को न छोड़नेका साहस दिखाया। मुझे उम्मीद है कि ईश्वर मेरे इस साहसको कायम रखेगा और कठिनसे-कठिन परीक्षाका प्रसंग आ जानेपर भी मैं खादीको

१. यहाँ यह अनुवाद यंग इंडियाके अंग्रेजी अनुवादसे दिया जा रहा है।

नही छोड़ूँगा, क्योकि मैं जानता हूँ कि यह वह चीज है, जो मुझे गरीबोंके साथ संयुक्त करके रखती है। मैं आपको यह जानकारी इसलिए भेज रहा हूँ कि इसे पढ़कर दूसरे लोग भी यह समझ रखें कि अगर वे यूरोपीय पेढ़ियोंमें नौकरी पाना चाहते हैं तो वह उन्हें अपमानजनक शर्तोंपर ही मिल सकती है।

मैं इस नौजवान शीघ्रलिपिकको उसके त्यागके लिए बधाई देता हूँ और यह आशा करता हूँ कि शीघ्रलिपिकके तौरपर नौकरी पानेकी कोशिशमें भले ही उसे बार-बार निराश होना पड़े, किन्तु ईश्वर उसका साहस बनाये रखेगा।

खादीके पक्षमें

लेकिन, सभी यूरोपीय पेढ़ियोंके मालिक एक ही साँचेमें ढले हुए नही हैं। पिछले वर्ष जब मैं कलकत्तामें था, मुझे कई यूरोपीय व्यापारियोके सम्पर्कमें आनेका अवसर मिला। उनमें से कुछ प्रमुख लोगोको अपने कर्मचारियोको खादी पोशाक पहननेपर एतराज होना तो दूर, उलटे उन्होने बताया कि खादी-आन्दोलनसे उन्हें सहानुभूति है और वे इस भावनाकी कद्र करते हैं कि भारतीय लोग, बल्कि भारतमें व्यापार-व्यवसाय करके, सम्पत्ति अर्जित करनेवाले विदेशी लोग भी करोड़ो मेहनतकश लोगों द्वारा काती और बुनी गई खादीका ही उपयोग करें। 'यग इंडिया' के पाठकोको एक भारतीय कर्मचारीका भेजा निम्नलिखित पत्र पढकर खुशी होगी[1]:

मैं इस यूरोपीय पेढ़ीको उसके उदार दृष्टिकोणके लिए बधाई देता हूँ, क्योकि जब असहयोग आन्दोलन पूरे जोरपर था और जब बहुत-से यूरोपीयोको खादीकी पोशाकमें हिंसात्मक उद्देश्य दिखाई देते थे, उस समय मनमें किसी प्रकारके पूर्वग्रहको स्थान न देना कुछ मायने रखता था।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २२-४-१९२६

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने लिखा था कि उसने १९१८ में एक यूरोपीय पेढ़ीमें शीघ्रलिपिककी हैसियतसे नौकरी कर ली। असहयोग आन्दोलनके दौरान उसमें देशभक्तिकी भावना जगी और यद्यपि वह मन-ही-मन बहुत डर रहा था, फिर भी उसने खादीकी पोशाक पहनना शुरू कर दिया। लेकिन, उसने देखा कि उसका भय निराधार था। उसके वेतनमें वार्षिक वृद्धि भी होती गई और अवसर आनेपर उसे तरक्की भी दी गई।

४०३. पत्र : नाजुकलाल नन्दलाल चौकसीको

सावरमती आश्रम
बृहस्पतिवार, द्वितीय चैत्र सुदी १० [२२ अप्रैल, १९२६][1]

भाईश्री नाजुकलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। मैं ऐसा हूँ ही नहीं कि मोतीकी आशा छोड़ दूँ। लेकिन मोतीमें आलस्य है और उसके इस आलस्यको मैं जैसे-तैसे करके निकालना चाहता हूँ। यदि वह उसे मेरे अनुनय-विनयसे नहीं निकालती तो फिर तुम शिक्षक तो हो ही अर्थात् तुम्हारे हाथमें बेतकी छड़ी देनी पड़ेगी। और यदि बेतकी छड़ीसे काम नहीं चलता तो तुम्हारे ही जिलेमें बैलोंको हाँकनेकी आरवाली छड़ी मैंने देखी है। मैं तुम्हें उपहारके रूपमें यही छड़ी भेज दूँगा। लेकिन मोतीके आलस्यको तो दूर करना ही होगा। उसे अपना लेख तो सुधारना ही होगा। अभी उसने लक्ष्मीको जो पत्र लिखा था उसके अक्षर तो ऐसे थे मानो मक्खीकी टाँगें। बड़ी बहन छोटी-बहनको क्या यही पदार्थ पाठ पढ़ायेगी? यह बात कैसे चल सकती है? इस प्रकरणको मैं यहीं पूरा करता हूँ।

अब चूँकि मसूरी नहीं जा रहा हूँ इसलिए बेला बहनने अभी भ्रमण करना बन्द कर दिया है। इसके सिवा, आनन्दी बीमार पड़ी है, इस कारण भी बाहर जाना नहीं हो सकता। लक्ष्मीदास परसों ही आये हैं। इसलिए यदि बन सके तो तुम दोनों अभी आ जाओ अथवा मोतीके बिना चल सके तो उसे भेज दो और तुम बादमें आओ अथवा तुम्हें जब फुर्सत हो तब चले आओ। जैसा अनुकूल हो वैसा करना। तुम्हारी तबीयत सुधर गई है, यह खबर मेरे लिए तो बहुत अच्छी है। आज इतना ही। यह पत्र तुम दोनोंके लिए है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० १२१२७) की फोटो-नकलसे।

१. वर्षका अनुमान मसूरी यात्राके रद होनेके उल्लेखसे लगाया गया है।

४०४. भेंट : कृषि आयोगके सम्बन्धमें

अहमदाबाद
२२ अप्रैल, १९२६

परमश्रेष्ठ गवर्नर महोदयसे मिलनेके लिए श्री गांधीको जो निमन्त्रण आया है, उसके सम्बन्धमें जब एक पत्र-प्रतिनिधिने उनसे भेंट की तो उन्होंने कहा :

इस सम्बन्धमें मुझे अधिक कुछ नही कहना है, क्योंकि मैंने शाही आयोगके कार्य-क्षेत्रका अध्ययन नही किया है और न मैंने इसमें कोई दिलचस्पी ही ली है। पक्का असहयोगी होनेके नाते मैं स्वभावतया सरकार द्वारा नियुक्त अनेक आयोगों और समितियोंके कार्यकलापोंमें कोई दिलचस्पी नही लेता। खेतीमें मुझे अवश्य दिलचस्पी है, यहाँतक कि खेतीके बारेमें बहुत कम जानते हुए भी अपने-आपको किसान कहनेमें मुझे खुशी है। और यदि परमश्रेष्ठ कार्यवाहक गवर्नर महोदय कृषि-सम्बन्धी अनौपचारिक चर्चाके लिए मुझे बुलाते हैं तो मैं अवश्य ही अपने विचार उनके सम्मुख रखूँगा।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २३-४-१९२६

४०५. पत्र : फ्रेड कैम्बेलको

साबरमती आश्रम
२३ अप्रैल, १९२६

मेरे प्यारे नौजवान दोस्त,

तुम्हारा पत्र मिला। बहुत चाहता हूँ कि तुम्हारी इच्छा पूरी कर सकूँ, लेकिन तुमने तो लगभग असम्भवकी माँग कर दी है। तुम्हें अंग्रेजीमें पत्र लिखनेके लिए मैं कोई भी सोलह वर्षीय किशोर नही ढूँढ़ सकता। इसका सीधा-सादा कारण यह है कि उसकी मातृभाषा तो कोई भारतीय भाषा ही होगी और स्पेनिशमें लिखनेवालेका तो कोई सवाल ही नही उठता। इसमें सन्देह नही कि अंग्रेजी रंगमें रंगे कुछ ऐसे भारतीय परिवार भी हैं, जहाँ शैशवकालसे ही अंग्रेजी सिखाई जाती है। लेकिन ऐसा कोई लड़का ढूँढ़नेके लिए तो मुझे तुम्हारा पत्र लेकर फेरी लगानी पड़ेगी और मुझे विश्वास है कि तुम न चाहोगे कि मैं ऐसा करूँ और न मुझसे ऐसा करनेकी अपेक्षा ही रखोगे। लेकिन अगर तुम किसी ऐसे व्यक्तिके साथ पत्र-व्यवहार करना चाहो,

जो किशोरोंवाली ताजगी और उमंगके साथ लिख सकता हो तो शायद मैं सफल हो जाऊँ।

समस्त शुभकामनाओं सहित,

हृदयसे तुम्हारा,

श्री फ्रेड कैम्बेल
७७०१, मेन स्ट्रीट
कन्सास सिटी, एम ओ०
यू० एस० ए०

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १२४४४) की फोटो-नकलसे।

४०६. पत्र : रोमाँ रोलाँको

साबरमती आश्रम
२३ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

यह पत्र मैं आपसे अपने एक सबसे प्रिय सहकर्मी और मित्र पण्डित जवाहरलाल नेहरूका परिचय करानेके लिए लिख रहा हूँ। वे अपनी पत्नीके साथ वहाँ गये हैं। उनकी पत्नी क्षयरोगसे पीड़ित हैं। स्वाभाविक है कि मेरे मित्र आपके दर्शन करना और आपके साथ परिचय करना चाहेंगे। मैं जानता हूँ कि आप उनको और उनकी पत्नीको मित्र बना लेंगे।

मीराबाई — कुमारी स्लेडको हम यहाँ इसी नामसे पुकारते हैं — बहुत ठीक चल रही हैं और प्रसन्न हैं। हम लोग आपको अकसर याद किया करते हैं और आपके बारेमें तथा इस वर्षके अन्तमें आपके भारत आनेकी सम्भावनाके विषयमें चर्चा किया करते हैं। पता नहीं आपका स्वास्थ्य ऐसा है या नहीं कि आप इस यात्राकी परेशानियोंको बरदाश्त कर सकें।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्री रोमाँ रोलाँ
विला ओलगा
विलेन्यूंव
(वैंड)
स्विट्जरलैंड

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० १२४६७) की फोटो-नकलसे।

४०७. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

साबरमती आश्रम
२३ अप्रैल, १९२६

प्रिय जवाहरलाल,

हर हफ्ते तुम्हें लिखनेकी सोचता रहा हूँ, लेकिन अबतक नहीं लिख पाया। मगर यह हफ्ता मैं यों ही नहीं गुजर जाने दूंगा। पिताजी प्रतिसहयोगवादियों (रेस्पोंसिविस्ट्स) के साथ यहाँ आये थे; उन्हींसे तुम्हारे ताजा समाचार मिले। जो समझौता[1] हुआ है, उसे तो तुम देख ही चुके होगे।

हिन्दू और मुसलमान दिन-ब-दिन एक-दूसरेसे दूर ही होते जा रहे हैं। लेकिन इससे मुझे कोई चिन्ता नहीं होती। चाहे जिस कारणसे हो, मुझे लगता है कि यह अलगाव इसीलिए बढ़ रहा है कि आगे चलकर वे एक-दूसरेके और भी करीब आयें।

मुझे पूरी उम्मीद है कि कमलाको लाभ हो रहा होगा।

तुम्हारा बापू

[अंग्रेजीसे]
ए बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स

४०८. गश्ती-पत्र

साबरमती आश्रम
२३ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

अब वह समय आ गया है जब दक्षिणी प्रान्तमें हिन्दी प्रचार कार्यालयको ट्रस्टका रूप देकर उसका काम ट्रस्टकी तरह ही चलाया जाये। पण्डित हरिहर शर्मासे सलाह-मशविरा करके मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि ट्रस्टियोंमें उस प्रान्तके कुछ हिन्दी-प्रेमी लोग भी होने चाहिए। मैं निम्नलिखित नाम सुझाता हूँ:

श्रीयुत एस० श्रीनिवास अय्यंगार
श्रीयुत कोण्डा वेंकटप्पैया गारु
श्रीयुत च० राजगोपालाचारी
सेठ जमनालाल बजाज
श्रीयुत हरिहर शर्मा
श्रीयुत हृषीकेश शर्मा
श्रीयुत सत्यनारायण

१. देखिए परिशिष्ट २।

अगर हिन्दी साहित्य सम्मेलनवाले अपनी ओरसे कोई और नाम देना चाहें तो इनमें एक और भी व्यक्तिको शामिल कर लिया जाये। आशा है, आपको अपना नाम ट्रस्टियोंमें शामिल किये जानेपर कोई एतराज नहीं होगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४९०) की फोटो-नकलसे।

४०९. पत्र : हिन्दी साहित्य-सम्मेलनके प्रधान मन्त्रीको

साबरमती
२३ अप्रैल, १९२६

महोदय,

आपका तार मुझे मिला था। मैंने उत्तर भी भेज दिया था। और मैं आशा रखता था कि सम्मेलनकी तरफसे कोई भी यहाँ आ जाएँगे। पं० हरिहर शर्मा दो-तीन रोजसे यहाँ हैं। उनके साथ बातें करनेके बाद मेरा अभिप्राय यह हुआ है कि दक्षिण प्रान्तके हिन्दी प्रचारके लिए एक ट्रस्ट बना देना और उनके हस्तक सब तंत्र संपूर्ण स्वतंत्रताके साथ रखना। ऐसा करनेसे आजकी अनिश्चित स्थिति मिट जाएगी और प्रचारकोंको प्रोत्साहन मिलेगा। इस दृष्टिसे मैंने एक खत लिखा है[1] जिसकी नकल मैं इसके साथ रखता हूँ। इस बारेमें मैं आपका अभिप्राय चाहता हूँ। यदि मेरे साथ कुछ बात करनेकी आवश्यकता हो तो आप आ जाइए, या किसीको भेज दीजिए। मेरा मसूरी जाना मौकूफ रहा है।

आपका,

प्रधान मन्त्री
हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग

मूल प्रति (एस० एन० १९४९२) की माइक्रोफिल्मसे।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

४१०. पत्र : जी० ए० नटेसनको

साबरमती आश्रम
२३ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

साथमें कुमारी रैसेनग्रेनका एक लेख भेज रहा हूँ। यह लेख उन्होंने 'यंग इंडिया' में छापनेके लिए भेजा है। मैं इस लेखको छापना नहीं चाहता, क्योंकि इससे एक पुराना विवाद, जिसके बारेमें लगभग हरएक भारतीय अपना विचार स्थिर कर चुका है, फिरसे खड़ा हो जानेका खतरा है। लेखिकाका कहना है कि अगर मैं इसे स्वीकार न करूँ तो 'इंडियन रिव्यू' में छापनेके लिए आपको भेज दूँ। शायद आप लेखिकाको जानते हैं।

मैंने इसकी एक प्रति टाइप करवा ली थी; उसीको भेज रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

संलग्न : तीन पृष्ठ
श्रीयुत जी० ए० नटेसन
सम्पादक
'इंडियन रिव्यू'
जी० टी०, मद्रास।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४८६) की माइक्रोफिल्मसे।

४११. पत्र : एडा रैसेनग्रेनको

साबरमती आश्रम
२३ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपका भेजा लेख मुझे नहीं छापना चाहिए। लगभग हरएक भारतीय ऐसा मानता है कि इंग्लैंड गलत रास्तेपर था और उस विनाशकारी युद्धके लिए वही जिम्मेदार था। अब मैं बिना किसी कारणके एक पुराने विवादको फिरसे खड़ा नहीं करना चाहता।

जैसी कि आपकी इच्छा थी, मैंने आपके लेखकी एक प्रतिलिपि श्री नटेसनको मद्रास भेज दी है। मैंने आपका कार्ड 'यंग इंडिया' के प्रबन्धकको दे दिया है।

हृदयसे आपका,

कुमारी एडा रैसेनग्रेन
रो, लिंडिंगो विलास्टेड

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १२४६६) की फोटो-नकलसे।

४१२. पत्र : मौलाना शौकत अलीको

साबरमती आश्रम
२३ अप्रैल, १९२६

प्रिय दोस्त और भाई,

मुझे पूरी आशा है कि दिल्ली न आनेके लिए आप मुझे माफ कर देंगे। लेकिन मुझे लगा कि कानपुरके प्रस्तावके विपरीत मुझे अहमदाबाद छोड़नेके लिए मजबूर नहीं किया जाना चाहिए। पण्डितजी और श्रीमती नायडूका भी यही विचार है।

हकीमजीके नाम लिखा मेरा पत्र आपने देख ही लिया है। मैं इससे कोई और अच्छी सलाह नहीं दे सकता था। आशा है, सब-कुछ ठीक-ठाक हुआ है।

आपके चरखेकी मरम्मत कर दी गई है। कल उसे यशवन्त प्रसाद अपने साथ बम्बई ले गये हैं और वह आपको भेज दिया जायेगा।

आपका,

मौलाना शौकत अली
दिल्ली

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४८८) की फोटो-नकलसे।

४१३. पत्र : एन० एस० वरदाचारीको

साबरमती आश्रम
२३ अप्रैल, १९२६

प्रिय वरदाचारी,

आपका पत्र मिला। साथमें गणेशनको लिखे पत्रकी एक प्रतिलिपि भेज रहा हूँ। आप इस प्रस्तावपर स्वतन्त्र रूपसे विचार कर सकते हैं। अगर आप मद्रासमें उपस्थित नहीं रह सकते, तब तो बेशक यह प्रस्ताव बेकार है। मैंने यह प्रस्ताव इसीलिए रखा है कि आप अपने कार्य-क्षेत्रके निकटसे निकट रह सकें। अगर जरा भी सम्भव हो तो मैं नहीं चाहता कि आपको इतनी दूर आनेका कष्ट दूँ।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एन० एस० वरदाचारी
इरोद

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४८९) की माइक्रोफिल्मसे।

४१४. पत्र : जमनालाल बजाजको

साबरमती
२३ अप्रैल, १९२६

चि० जमनालाल,

अण्णा[1] यहाँ आये हैं और आज ही जा रहे हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलनके साथ अभी झगड़ा चलता ही रहता है। अब तो ऐसा विचार किया है कि इसका भी न्यास बना दिया जाये। इसके बारेमें मैंने परिपत्र[2] लिखा है। इसकी एक प्रति तुम्हें अण्णा देंगे। न्यासियोके बारेमें कुछ सुझाव देना चाहो तो देना। न्यासियोंमें तीन प्रचारकोंको भी रखा है, और यह ठीक है। उन्होंने जीवन-भर हिन्दी-प्रचार कार्य करनेकी प्रतिज्ञा ली है, इसलिए उन्हें न्यासियोंके रूपमें रखना उचित है। अण्णाके साथ बैठ-कर तुम इस बातका विचार कर लेना कि उन्हें जो पैसा देनेका निश्चय हुआ है वह उन्हें कितनी किस्तोंमें दिया जाये। इस तरह उन्हें भी कोई तकलीफ नहीं होगी और तुम्हें भी फिर उसकी चिन्ता करनेकी जरूरत न रहेगी। निश्चित अवधिपर उन्हें पैसे मिलते रहेंगे। हिसाबके बारेमें अण्णासे जो पूछना हो सो पूछना। हिसाब मैं नहीं देखूंगा। हिसाबकी जाँच करनेके सम्बन्धमें अण्णाकी जो कल्पना है उसे वह तुम्हारे सामने रखेंगे। मैं और भी बड़े न्यासके बारेमें सोच-विचार कर रहा हूँ। मुझे यह भी आवश्यक लगता है कि हम अपने हाथसे होनेवाले खर्चका हिसाब नियमित रूपसे प्रकाशित करें। आजतक खर्चमें बचतके लोभसे मैंने इस बातपर बहुत जोर नहीं दिया। मैं जानता हूँ कि हिसाब प्रकाशित करनेके बावजूद भ्रष्टाचार हो सकता है। इसलिए हमने कार्यकर्त्ताओंकी प्रामाणिकतापर ही आधार रखा है। लेकिन हिसाब प्रकाशित करनेमें जो थोड़ी-बहुत सुरक्षितता है, उसका लाभ हमें ले लेना चाहिए। छोटे-छोटे न्यास तो कितने ही हैं जिनका कि मुझे भी भान नहीं रहा है। मुझे ऐसा लगता रहता है कि यदि ये सब चीजें समय-समयपर विधिपूर्वक प्रकाशित हुई होतीं तो कितना अच्छा होता। लेकिन अब तो ऐसा होगा ही।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९४९१) की माइक्रोफिल्मसे।

१. दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाके हरिहर शर्मा।
२. देखिए "गश्ती-पत्र", २३-४-१९२६।

४१५. वक्तव्य : दक्षिण आफ्रिकाकी समस्यापर

अहमदाबाद
२४ अप्रैल, १९२६

दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंकी समस्याके मित्रतापूर्ण समाधानके लिए भारत सरकारने दक्षिण आफ्रिकाकी संघ सरकारके सामने एक सम्मेलन बुलानेका प्रस्ताव रखा था और हालमें ही संघ-सरकार द्वारा प्रस्ताव स्वीकार कर लिये जानेकी घोषणा की गई है। इस घोषणाके सम्बन्धमें गांधीजीने एसोसिएटेड प्रेसको निम्न वक्तव्य जारी किया है :

दक्षिण आफ्रिकासे मिला समाचार निस्सन्देह शुभ समाचार है। इससे भारतीय प्रवासियोंको दम लेनेका अवसर मिला है तथा इस सुन्दर परिणामके लिए प्रत्येक पक्ष — अर्थात् संघ-सरकार, भारत सरकार तथा प्रवासीजन — अपने-आपको बधाई दे सकता है। मेरे विचारसे इसका असली श्रेय श्री सी० एफ० एन्ड्रयूजको है, क्योंकि उनके अटूट उत्साह, श्रद्धापूर्ण सजगता और स्थितिके विशद अध्ययन तथा साथ ही अपने उद्देश्यके प्रति उनकी असाधारण निष्ठाके बिना यह शुभ परिणाम नहीं प्राप्त हो सकता था।

संघ-सरकारने प्रस्ताव स्वीकार करते हुए जो शर्त रखी है उसके पीछे यदि ईमानदारी है तो इसका भारत सरकार द्वारा मान लिया जाना कोई खास अहमियत नहीं रखता। निस्सन्देह संघ सरकारको, जिसे वह पाश्चात्य जीवन-स्तर कहती है, उसकी उचित और वैध तरीकोंसे रक्षा करनेका हक है और इसके लिए जो एकमात्र उचित और वैध तरीके स्वीकार्य हो सकते हैं, उनका सम्बन्ध स्वच्छता और स्वस्थ आर्थिक रीति-नीतिसे ही होना चाहिए। इस प्रकार, उदाहरणार्थ, भारतीय वकीलोंको यूरोपीय वकीलोंसे बराबरीकी स्थितिसे प्रतियोगिता करनी चाहिए और जहाँतक मेरी जानकारी है, कोई भी भारतीय वकील इसके विपरीत आचरण नहीं करता है। लेकिन मुझे पता चला है कि उनतकके साथ भेदभाव बरता जाता है। पैडिसन शिष्टमण्डलके साथ मैंने सहयोग नहीं किया फिर भी मैं यह स्वीकार करूँगा कि उसने बहुत अच्छा काम किया। मुझे मालूम हुआ है कि उसने यह रहस्योद्घाटन किया कि सर्वोच्च न्यायालयमें भी रजिस्ट्रारके सामने कामके सिलसिलेमें सिर्फ वही क्लर्क जा सकता है, जिसकी चमड़ीका रंग गोरा है। यदि पश्चिमी जीवन-स्तर सुरक्षित बनाये रखनेका उचित वैध उपाय इसीको कहा जाता है तो उक्त शर्त खतरनाक है। परन्तु मैं एक आशावादी व्यक्ति हूँ। मैं इस शर्तको जैसी वह दिखती है, उसी अर्थमें लूँगा और यदि भारत सरकार इस बातका आग्रह रखेगी कि इस शर्तकी बिलकुल ठीक-ठीक परिभाषा की जाये तो सब ठीक ही रहेगा। मैं आशा करता हूँ

कि यदि अन्तिम और सम्माननीय समझौता हासिल करना है तो भारत सरकार और जनता अपनी सतर्कतामें ढिलाई नहीं आने देगी।

अब चूँकि एक सम्मेलन होना है, अतः भारतको ऐसी आशा करनेका हक है कि विधेयकसे जितने सवाल उठते हैं, उन सबपर सम्मेलनमें विचार किया जायेगा और उन्हें उचित ढंगसे हल किया जायेगा। सवालकी कितनी ही बारीकीसे जाँच की जाये, उससे भारतीय प्रवासियोंको कुछ भी अंदेशा नहीं है और मैं साफ कहता हूँ कि जाँचके अन्तमें उनके विरुद्ध एक ही दोष सिद्ध किया जा सकता है और वह यह कि वे एशियाई हैं और उनकी चमड़ी रंगदार है।

१९१४में जब भारतसे दक्षिण आफ्रिकाको अनियन्त्रित संख्यामें प्रवासियोंके जानेका अंदेशा पूरी तरहसे मिटा दिया गया था, तब उसके साथ ही आर्थिक प्रश्न भी खत्म हो गया था। प्रवर समितिके सामने जो आँकड़े पेश किये गये हैं, उनसे असन्दिग्ध रूपसे सिद्ध हो गया है कि भारतीय प्रवासियोंकी संख्या घटती जा रही है, जबकि श्वेत प्रवासियोंकी बढ़ रही है। भारतीयोंके पास जो मामूली-सी अचल सम्पत्ति है, उसकी यूरोपीयोंकी अचल सम्पत्तिमें हुई असाधारण वृद्धिसे कोई तुलना ही नहीं की जा सकती है। भारतीयोंके व्यापार करनेके परवानोंकी संख्या भी हर जगह घट रही है।

दक्षिण आफ्रिकी राजनीतिज्ञ यदि तथ्योंको ईमानदारीसे देखें तो वे यही पायेंगे कि भारतीय प्रवासियोंके विरुद्ध वास्तवमें शिकायतका कोई कारण नहीं है। लेकिन अभी इस समय मैं न तो इस मामलेमें कुछ पूर्वानुमान लगाना चाहता हूँ और न आलोचना करना चाहता हूँ। अभी तो मुझमें केवल राहत और कृतज्ञताकी भावना है। मैं जनरल हर्टजोग और डॉ॰ मलानको, उनके सही प्रसंगानुकूल व्यवहारके लिए, बधाई देता हूँ।

[अंग्रेजीसे]
फॉरवर्ड, २५-४-१९२६

४१६. पत्र : अब्बास तैयबजीको

साबरमती आश्रम
२४ अप्रैल, १९२६

मेरे प्यारे भुर्रर्र[1],

आपका पत्र मिला। यद्यपि वहाँ जीवन निष्प्राण-सा लगता है, लेकिन आप तो वहाँ नया प्राण फूँकनेके लिए नौजवानोंवाला उत्साह और उमँग लेकर गये हैं और आपकी आशावादिता वहाँके लोगोंमें अवश्य ही आशाका संचार करेगी। मुझे इसकी परवाह नहीं है कि आप कितनी खादी बेचते हैं। आपने जैसा उत्साह दिखाया है और जिस तरहसे आप इस घोर गर्मीके मौसममें कठोर परिश्रम कर रहे हैं, मैं तो

१. गांधीजी और तैयबजी एक-दूसरेका अभिवादन इसी प्रकार किया करते थे।

उसीपर मुग्ध हूँ। ईश्वर आपको और आपके प्रयत्नोंको सफल बनाये। मसूरी जानेके सवालपर मैंने परची डालकर फैसला कर लिया और उसके अनुसार जानेका विचार त्याग दिया है। जिस प्रसंगसे किसी सिद्धान्तका सम्बन्ध नहीं होता और निर्णय करना कठिन हो जाता है, उस प्रसंगमें मैं इसी पद्धतिसे ईश्वरकी इच्छाको जान लेता हूँ। यह पद्धति मेरे लिए बहुत मूल्यवान साबित हुई है। इसने मेरा बहुत सारा समय बचाया है और इसके कारण मैं बहुत-सी परेशानियोंसे भी बचता आया हूँ।

आपका,
मो० क० गांधी

श्रीयुत् अब्बास तैयबजी
राष्ट्रीय शाला
बढ़वान सिटी

अंग्रेजी पत्र (एम० एन० ९५५३) की फोटो-नकलसे।

४१७. पत्र : एक्सेल एफ० कुण्डसेनको

साबरमती आश्रम
२४ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आप यहाँ आये थे, मुझे वह याद है। अगर आप किसी पत्रिकाके लिए मेरे सत्यके प्रयोगकी कहानीका अनुवाद करना चाहते हैं, तब तो आप बिना किसी कठिनाईके अनुवाद कर सकते हैं। लेकिन अगर आप अनुवादको पुस्तक रूपमें प्रकाशित करना चाहते हों, तब तो बात जरा कठिन है, क्योंकि मैकमिलन कम्पनी इसका पूर्ण स्वत्वाधिकार प्राप्त करनेके लिए बातचीत चला रही है और फिर इसके लिए अभी जल्दबाजी करनेकी जरूरत नहीं है, क्योंकि कहानी पूरी होनेमें अभी कुछ समय लगेगा।

हृदयसे आपका,

श्री एक्सेल एफ० कुण्डसेन,
शान्ति गेह,
कोडाइकनाल
जिला मद्रास

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४९५) की माइक्रोफिलमसे।

४१८. पत्र : सी० वी० कृष्णको

साबरमती आश्रम
२४ अप्रल, १९२६

प्रिय कृष्ण,

इससे पहलेवाले तुम्हारे पत्र मिले थे। और चूँकि तुमने उनमें से एकमें लिखा था कि तुम मुझे फिर लिखोगे, इसलिए मैंने उनकी प्राप्ति-सूचना नहीं दी।

क्षयरोगके रोगीके विषयमें स्वर्गीय हनुमन्तरावको लिखे मेरे पत्रका उत्तर मुझे मिल गया था। चूँकि वे जानेको तैयार नहीं थे, इसलिए केवल उतनी ही सूचना देनेके लिए तुम्हें पत्र लिखना मैंने आवश्यक नहीं समझा।

मुझे तुम्हारा कार्यक्रम मालूम है। मेरी रायमें, तुमने जैसा बड़ा कार्यक्रम बनाया है, उसके लिए तुम्हारे पास कार्यकर्त्ता बहुत कम हैं। इसलिए मेरी सलाह है कि तुम सावधानीसे कदम बढ़ाओ। वहाँपर इस समय तुम कुल कितने कार्यकर्त्ता हो? तुमने लिखा है कि रुस्तमजी-कोषके ३००० रुपये तुम्हारे पास हैं। उनका क्या करना है? क्या तुम उनका उपयोग अपने काममें नहीं कर सकते? जो भी हो, मैं चाहता हूँ कि तुम हर हालतमें भारतीय चरखा संघके एजेन्टसे पत्र द्वारा सम्पर्क कायम करो। उसे आकर अपने यहाँका काम-काज देख जाने दो और यदि एजेंट तुम्हारे प्रार्थनापत्रका समर्थन करनेको तैयार हो तो उसकी मार्फत ही अपना प्रार्थनापत्र भेज दो। तब शायद तुम्हें जितने पैसेकी जरूरत है, उतना दिला सकना मेरे लिए आसान होगा।

उस प्रार्थनापत्रमें तुम अपनी आवश्यकताओं, अपने कार्यकी सम्भावनाओं और कार्यकर्त्ताओंकी संख्या आदिका पूरा-पूरा विवरण दो। इस बीच तुम दस हजार रुपया इकट्ठा करनेका अपना काम आगे बढ़ाओ, क्योंकि उस दिशामें प्रगति होनेसे तुमको अतिरिक्त सहायता दिलानेमें मुझे अधिक आसानी रहेगी। मेरी बातें साफ-साफ समझ गये न?

तुमने मुझे लिखा है कि वहाँ रहनेवालोंकी खुराकपर ६ रुपये प्रति माह खर्च होते हैं। कीमतोंकी सूचीके साथ मुझे खुराककी माप लिख भेजो। मापसे मेरा मतलब है, हरएक व्यक्तिको कितना और क्या दिया जाता है।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत सी० वी० कृष्ण
नेलौर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४९६) की माइक्रोफिल्मसे।

४१९. पत्र : जी० स्टेनली जोन्सको

साबरमती आश्रम
२४ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपके अखबारकी प्रति भी मिली, मगर दो नहीं, एक ही।

यह साप्ताहिक है या मासिक? मेरे सामने जो प्रति है, उसमें तो इसका उल्लेख कहीं नहीं देख रहा हूँ। इस पत्रका उत्तर मिलनेपर अवकाश मिलते ही मैं आपके अखबारके लिए कुछ लिख भेजूँगा।

मैं मसूरी जा रहा था, लेकिन जो लोग मुझे वहाँ भेजना चाहते थे, उन्होंने अब अपना आग्रह छोड़ दिया है और मुझे आश्रममें ही रहने देनेके लिए तैयार हो गये हैं। मैं आपके आश्रम आनेकी प्रतीक्षा करूँगा और उस अवसरकी राह देखूँगा जब आप यहाँ आकर — चाहे जितने भी कम समयके लिए हो — हमारे बीच ठहरेंगे। आपने शायद मुझे बताया था कि आप पहले भी एक-दो दिन आश्रममें रह चुके हैं? अगर किसी कारणवश मैं जुलाईमें आश्रममें न रहूँ तो भी आशा करता हूँ कि आप यहाँ अवश्य आयेंगे। कुछ थोड़ी-सी सम्भावना है कि विश्व-छात्र सम्मेलनके सिलसिलेमें मुझे फिनलैंड जाना पड़े। 'कुछ थोड़ी-सी' इसलिए कह रहा हूँ कि अभीतक यह मामला बातचीतकी अवस्थासे आगे नहीं बढ़ पाया है।

हृदयसे आपका,

श्री जी० स्टेनली जोन्स
सीतापुर, संयुक्त प्रान्त

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४९७) की माइक्रोफिल्मसे।

४२०. पत्र : सतीशचन्द्र मुखर्जीको

साबरमती आश्रम
२४ अप्रल, १९२६

प्रिय सतीश बाबू,

कुमारी एडगर और दूसरे मित्रोंके हस्ताक्षरोसे जारी किया गया पत्रक मैंने पढ़ लिया है। इसपर किसीको कोई आपत्ति नही हो सकती। लेकिन "युद्धकी सम्भावना खत्म करनेके लिए" विभिन्न प्रकारके प्रचारोके द्वारा लोकमत तैयार करनेके उद्देश्यसे गठित किसी सस्थाकी उपयोगितामें मुझे सन्देह है। इस समय हमारे देशमें वैसा प्रचार वास्तवमें कोई मानी नही रखता।

अमेरिकासे फेलोशिप ऑफ रिकन्सीलिएशनकी तरफसे मुझे बार-बार पत्र मिलते रहे हैं। अब भी मैं उससे पत्र-व्यवहार कर रहा हूँ, लेकिन मैं उस सगठनमें शामिल नही हुआ हूँ, क्योकि मुझे लगता है कि उसमें मेरा शामिल होना, मेरे लिए उपहास्यास्पद है। क्या चूहोके खिलाफ लडाई बन्द करनेके उद्देश्यसे बनी बिल्लियोकी किसी संस्थामें एक चूहेका शामिल होना किसी भी तरह उचित होगा? इसलिए हमारे लिए इतना ही पर्याप्त है कि हम अपनी वर्तमान स्थितिको महसूस करते हुए विश्व-शान्तिके लिए "मन ही मन प्रार्थना करें।"

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सतीशचन्द्र मुखर्जी
मार्फत एस० सी० गुह
दरभंगा

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४९८) की माइक्रोफिल्मसे।

४२१. पत्र : के० टी० मैथ्यूको

साबरमती आश्रम
२४ अप्रैल, १९२६

प्रिय भाई,

आपका रोचक पत्र मिला। मुझे पूरा इत्मीनान है कि अध्यक्षके सुझावोंके मुताबिक आप अपने प्रस्तावमें परिवर्तन नहीं कर सकते, क्योंकि आप तो "देवासम" मार्गोको सभी जातियों और मतावलम्बियोंके लिए पूरी तरह खुलवाना चाहते हैं। क्या आप निषेधक नियमको निकाल देने या उसमें संशोधन करनेके लिए कोई प्रस्ताव पेश नहीं कर सकते? अगर यह प्रस्ताव पेश न किया जा सकता हो और अगर आपको कुछ समर्थक मिल जायें तो विरोध-स्वरूप आप सामूहिक रूपसे त्यागपत्र दे सकते हैं। फिर आप चाहें तो दोबारा चुनाव लड़ें और इस बीच इस उद्देश्यके पक्षमें जनमत तैयार करते रहें। आपको सरकारके नाम इन सड़कोंको खोलनेके लिए एक प्रार्थना-पत्र दिलानेके लिए भी प्रयत्न करना चाहिए और अगर आपको कुछ ऐसे बहादुर और बलिदानी लोग मिल जायें, जो तथाकथित अस्पृश्य समाजके न हो तो उन्हें कुछ अस्पृश्योंको अपनी सुरक्षामें लेकर उन सड़कोंपर से निकलना चाहिए और उसके परिणामोंका सामना करना चाहिए। लेकिन, ऐसा आप तभी करें, जब सवर्ण हिन्दू काफी संख्यामें मनसे आपके पक्षमें हों। अगर ऐसा न हो, लेकिन आपके पास ऐसे लोग हों जो अनन्त कष्ट झेलनेमें भी सुख मानेंगे तो आप सवर्ण हिन्दुओंके प्रबल समर्थनके बिना भी यह काम कर सकते हैं। अगर यह बलिदानी कदम उठाना सम्भव न हो और इस बातका पूरा भरोसा न हो कि सुधारक लोग हर हालतमें अहिंसा-धर्मपर कायम रहेंगे, तब तो आपको बस अस्पृश्योंके बीच चुपचाप काम करते जाना चाहिए और उनके चरित्रको ऊँचा उठानेमें उन्हें मदद देकर आपको उनके स्तरको ऊपर उठानेकी कोशिश करनी चाहिए।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० टी० मैथ्यू
सदस्य, विधान-परिषद्
कोचीन राज्य
कोचीन

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९४९९) की माइक्रोफिल्मसे।

४२२. पत्र : शंकरन् नम्बूद्रीपादको

साबरमती आश्रम
२४ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

आपके खिलाफ एक गम्भीर शिकायत आई है कि अभी पिछले ही दिनों त्रिवेन्द्रम्में अस्पृश्यता-निवारणके सम्बन्धमें बुलाई गई एक सभामें आपने हिंसाको भड़कानेवाला भाषण दिया और कहा कि सुधारके विरोधियोको सबक सिखानेका एकमात्र उपाय हिंसा ही है। मेरे पास आपके भाषणके अंश हैं, और मुझे बताया गया है कि आपके भाषणको मौकेपर ही शब्दशः लिख लिया गया था। अगर आप यह बतानेकी कृपा करें कि इस खबरमें कुछ सचाई है या नहीं तो आभार मानूँगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत शंकरन् नम्बूद्रीपाद
कोपरट्टु इल्लम, कोट्टयम्
उत्तर त्रावणकोर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५००) की माइक्रोफिल्मसे।

४२३. पत्र : शंकरलालको

साबरमती आश्रम
२४ अप्रैल, १९२६

प्रिय भाई,

प्रेम महाविद्यालयके बारेमें आपका पत्र मिला। आचार्य आ० टे० गिडवानीसे मेरी बातचीत हुई थी। मेरा खयाल है, आप उन्हें अच्छी तरह जानते हैं। वे प्रति-मास २५० रुपये लेंगे। अगर आप उन्हें रखना चाहें तो कहनेकी जरूरत नहीं कि बाकी छोटी-छोटी बातें तय करनी होंगी। जल्दी सूचित कीजिएगा कि गिडवानी ठीक रहेंगे या नहीं।

हृदयसे आपका,

लाला शंकरलाल
दिल्ली

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५०१) की माइक्रोफिल्मसे।

४२४. पत्र : रामदत्त चोपड़ाको

साबरमती आश्रम
२४ अप्रैल, १९२६

प्रिय भाई,

आपका पत्र मिला। मैं खुद टीकेके बिलकुल खिलाफ हूँ। लेकिन यह तो ऐसी बात है, जिसके बारेमें हर आदमीको खुद ही निर्णय लेना चाहिए, सिर्फ दूसरोंके विचारोंकी नकल नहीं करनी चाहिए। कारण, आखिरकार यह कभी-कभी जीवन-मरणका सवाल भी तो बन सकता है। निश्चयपूर्वक ऐसा कह सकना असम्भव है कि टीकेके द्वारा किसीको भी चेचक या इससे भी बुरी बीमारी लगनेसे बचाया नहीं गया है। इसलिए, जो लोग टीका नहीं लेते, वे इस बातको भली-भाँति जानते हुए ही नहीं लेते कि ऐसा करके वे अपने और अपने बच्चोंके चेहरे चेचकसे विकृत हो जाने या अपनी या अपने बच्चोंकी मृत्युतकका खतरा उठा रहे हैं। किन्तु, साथ ही यह भी सच है कि टीका लगवा लेना चेचक न होनेकी कोई पक्की गारण्टी नहीं है। इसलिए टीका लगवानेसे वे ही लोग परहेज रखें, जो शरीरको आत्माके अधीन मानते हैं और हृदयसे ऐसा विश्वास करते हैं कि टीका लगवाना आत्माके लिए हानिप्रद है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत रामदत्त चोपड़ा
हेड मास्टर
डी० बी० स्कूल, जनौरी
जिला–होशियारपुर (पंजाब)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५०२) की फोटो-नकलसे।

४२५. पत्र : जफर-उल-मुल्कको

साबरमती आश्रम
२४ अप्रैल, १९२६

प्रिय भाई,

आपका सुलिखित पत्र मिला। जो प्रश्न आपने पूछा है, उसका उत्तर देना वास्तवमें बहुत कठिन है। लेकिन यह ऐसे सवालोंमें से है, जिनके उत्तर सम्बन्धित व्यक्तिको खुद ही ढूँढ़ने चाहिए। जहाँतक कांग्रेसका सम्बन्ध है, आपको जो ठीक लगे वैसा करनेकी पूरी छूट है। लेकिन जिन लोगोंने असहयोगको लगभग अपना धर्म बना लिया है, उनका पथ-प्रदर्शन तो सिर्फ उनकी अन्तरात्माकी आवाज ही कर सकती है। अगर आप यह पूछें कि खुद मैं क्या करूँगा तो मैं केवल यही कह सकता हूँ कि गवर्नर महोदय जिस संस्थाके पदेन संरक्षक हों और जिस संस्थाके अध्यक्ष और मन्त्री भी सरकारी अधिकारी लोग हों, उस संस्थामें मैं काम नहीं कर सकता।

हृदयसे आपका,

श्री जफर-उल-मुल्क
लखनऊ

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५०३) की फोटो-नकलसे।

४२६. पत्र : अमूल्यचन्द्र सेनको

साबरमती आश्रम
२४ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। शुभकामनाओंके लिए धन्यवाद।

आपने मेरी स्थितिका जैसा चित्र खींचा है, उससे तो मैं स्तब्ध-सा रह गया हूँ। आप कहते हैं, "स्पष्ट है, आपने कभी भी असत्यको त्यागकर सत्यको नहीं अपनाया।" यह कथन सच भी है और झूठा भी है। मेरे सामने कभी ऐसा प्रसंग ही नहीं आया कि सत्य बोलनेके लिए या अमुक बात सत्य है — यह समझने और स्वीकार करनेके लिए मुझे कोई प्रयत्न करना पड़ा हो। अगर सत्यके व्यापकतम अर्थकी दृष्टिसे देखा जाये तो मुझे स्वीकार करना होगा कि मैं अब भी असत्यसे भरा हुआ हूँ और निरन्तर उससे मुक्त होनेका प्रयास कर रहा हूँ। इसलिए ऊपर मैंने जिस वाक्यका अंश उद्धृत किया है, उसके बादवाले हिस्सेसे मैं पूरी तरह सहमत हो सकता हूँ, क्योंकि मैं दिन-प्रतिदिन सत्यको अधिकाधिक स्पष्ट रूपमें देख रहा हूँ।

आत्मा जिस प्रक्रियासे गुजर रही है, वह हृदयके प्रयासकी है। प्रार्थना, आत्म-चिन्तन और सतत जागरूकताके द्वारा इस प्रयासमें बुद्धिका योग प्राप्त किया गया है। ये तीनों गुण तत्त्वतः हृदयके ही गुण हैं और यही सत्यका अधिकाधिक साक्षात्कार करानेके मुख्य साधन रहे हैं। मुझे तो ऐसा कभी नहीं लगा है कि जो भी ज्ञान प्राप्त हुआ है, सब बाहरसे थोपा गया है। मैंने तो यही जाना है कि सारा ज्ञान अपने ही भीतरसे प्राप्त हुआ है। यह हमारे भीतर विद्यमान सत्यके उद्‌घाटन, उसे बाहर लाने या यों कहिए कि उसपर जमी कड़ी और कुरूप परतोंको हटानेकी प्रक्रिया रही है। दूसरे शब्दोंमें यह प्रक्रिया आत्म-शुद्धिकी प्रक्रिया रही है।

मेरी मसूरी यात्रा रद हो गई है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत अमूल्यचन्द्र सेन
लैंग्वेज स्कूल
क्वीन्स हिल
दार्जिलिंग

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५०४) की फोटो-नकलसे।

४२७. पत्र: सोमनाथको

आश्रम
२४ अप्रैल, १९२६

भाई सोमनाथ,

तुम्हारा पत्र मिला। तुमने बहुत सारे प्रश्न पूछे हैं। अब मैं क्या तुम्हें तनिक धीरज रखनेको कहूँ? 'रामायण', 'महाभारत', मूर्ति-पूजा आदि प्रश्नोंपर 'नवजीवन' में प्रसंगोपात्त चर्चा होती रहती है। यदि तुम उन लेखोंको ध्यानपूर्वक देखोगे तो समझ सकोगे।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९९०३) की माइक्रोफिल्मसे।

४२८. पत्र : पुरुषोत्तम मू० सेठको

२४ अप्रैल, १९२६

भाईश्री ५ पुरुषोत्तम,

हिन्दू-समाजकी वर्तमान स्थिति दयनीय है, तथापि आशावादी होनेके कारण मुझे इसका भविष्य अच्छा ही दिखाई देता है। बाल-विधवा कन्याका विवाह माँ-बाप स्वयं कर डाले, यह इस मामलेमें सुधार करनेका आसानसे-आसान तरीका है। इस बीच सुधारकोंको मर्यादा बाँधकर भाषणों, लेखों और ऐसे अन्य साधनोंसे इस सुधारका प्रचार करना चाहिए। बाल-विधवाके विवाहको मैं पुनर्विवाह कह ही नहीं सकता। बाल-विवाह शास्त्र-सम्मत नहीं हो सकता और ऐसे विवाहको शास्त्रीय विधिसे हुआ विवाह नहीं कहा जा सकता। विवाहसे बाल-विधवाकी स्थिति सुधरेगी, इस बारेमें मुझे तनिक भी शंका नहीं। ऐसे विवाहसे अनाचार नहीं बढ़ता। ऐसी बालाओंको जबरदस्ती विधवा रखनेसे ही अनाचार बढ़ रहा है। आदर्श विवाहका प्रचार करनेके लिए, जहाँ जंगली विवाह हो रहा हो, वहाँ असहयोग करना चाहिए और जहाँ आदर्श विवाह हो रहा हो वहाँ सहयोग करना चाहिए। वर-वधू दोनोंकी आयु २० वर्षकी हो अथवा वरकी ३० वर्षकी हो तो इसे मैं अनमेल विवाह नहीं मानता। आदर्श स्त्री-शिक्षण मैं उसे कहूँगा कि जिससे स्त्री अक्षरज्ञान प्राप्त करनेके बाद अपनी पवित्रता-में वृद्धि कर सके और कदाचित् विधवा हो जाये तो स्वावलम्बी भी बन सके। वर्णाश्रमके बाहर विवाह होनेकी बातको मैं अनुचित मानता हूँ। वर्ण चार ही हो सकते हैं। वय-प्राप्त विधवाके विवाहको मैं उत्तेजन नहीं देता।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

श्री पुरुषोत्तमदास मूलजी सेठ
वाकेला फलीउं, भुज

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९०४) की माइक्रोफिल्मसे।

४२९. पत्र: अमृतलाल बेचरदासको

२४ अप्रैल, १९२६

भाईश्री अमृतलाल,

मैंने १९०२में अपने जीवनका बीमा करवाया था। १९०३ अथवा १९०४में दिया हुआ पैसा छोड़कर बीमा रद करा दिया था।[1]

२. मेरी मान्यता है कि जिन्दगीका बीमा करवाना ईश्वरके प्रति किसी-न-किसी मात्रामें हमारी आस्थाकी कमीका सूचक है।

मोहनदास गांधी

श्री अमृतलाल बेचरदास
केलापीठ बाजार
भड़ौच

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९०५) की माइक्रोफिल्मसे।

४३०. पत्र: डूंगरसी कचराको

आश्रम
२४ अप्रैल, १९२६

भाईश्री डूंगरसी कचरा,

आपका पत्र मिला।

१. मुझे लगता है कि माता-पिताको जो दुःख हो वह आपको सहन करना चाहिए, उन्हें विनयपूर्वक समझानेमें भी आपको अपना धर्म और टेक नहीं छोड़नी चाहिए। माँ-बापको मोहवश जो दुःख हो रहा है समय बीतनेपर वह शान्त हो जायेगा। लेकिन छोड़ी हुई टेक वापस नहीं आ सकती। माता-पिताकी शान्तिके लिए आप अपनी पवित्रतामें दिन-प्रतिदिन वृद्धि करें। और जहाँ-जहाँ हो सके वहाँ-वहाँ उनकी सेवा करें। ऐसा करनेसे वे जल्दी ही यह समझ जायेंगे कि आप जो-कुछ कर रहे हैं वह धर्म समझकर ही कर रहे हैं।

२. वड़ो दादाका कथन ठीक हो सकता है। मनुष्यको अपने जीवन कालमें ही मुक्ति नहीं मिल सकती, ऐसी कोई बात नहीं है। यदि ऐसा हो तो यह सिद्ध होगा कि आत्माकी शक्तिकी सीमा है। ज्यादासे-ज्यादा यही कह सकते हैं कि इस कालमें इसी देहमें मोक्ष मिलना इतना अधिक कठिन है कि यह लगभग असम्भव है।

१. देखिए आत्मकथा, भाग ४, अध्याय ५।

३. पशु मैला खा जाते हैं यह बिलकुल अनुचित बात है। मैला खानेवाली गायका दूध कभी अच्छा नहीं हो सकता। यदि धर्मका विवेकपूर्ण पालन किया जाये तो लोग गलियोंमें मलत्याग करना बन्द कर दें। मल-मात्रका उपयोग खाद बनानेके लिए ही होना चाहिए।

मोहनदासके वन्देमातरम्

श्री डूँगरी कचरा
मु० बाभडाई
डाकघर कच्छ बाड़ा

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९०६) की माइक्रोफिल्मसे।

४३१. पत्र : अमृतलाल ठक्करको

आश्रम
२४ अप्रैल, १९२६

भाईश्री ५ अमृतलाल,

जबसे आप बात कर गये हैं तबसे मैं इस विषयपर विचार तो करता ही रहा हूँ। जैसे-जैसे विचार करता हूँ वैसे-वैसे मुझे लगता है कि आपको उस नई प्रवृत्तिमें बिलकुल नही पड़ना चाहिए। इसमें मैं लोभ देखता हूँ। मैं तो चाहूँगा कि मैंने उसे जिस तरह करनेको कहा है उस तरह करनेके विचारमें भी आप न पड़ें। आपके पास भले नये विचारोंको क्रियान्वित करनेका उत्साह हो — और चूँकि आप अपनेको तरुण मानते हैं इसलिए होगा ही — तथापि आप अपने इस उत्साहका उपयोग अपने दो कार्यों, अन्त्यजो और भीलोंकी सेवाके सम्बन्धमें नये-नये विचार करनेमें ही करें। ऐसा करते हुए भी आपको समयकी तंगी रहेगी। ये दो कार्य ऐसे हैं जिसमें आपके-जैसे एकका ही नही बल्कि अनेक पुरुषोंका जीवन समर्पित किया जा सकता है। सेवाके लाभकी भी मर्यादा होती है और होनी चाहिए, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। यदि हम ढूँढ़ने बैठें तो जगतके दुःखोंका अन्त नहीं है। सुधार करनेको बहुत-कुछ है, ऐसा हमें कदम-कदमपर महसूस होगा। लेकिन ईश्वरने इन सारे दुःखोंको दूर करनेका बोझ हमारे ऊपर कहाँ डाला है? अथवा यदि डाला है तो उस बोझ-को उठानेकी कला भी हमें सिखाई है, और वह यह है कि दुःखके इस पहाड़में से एक छोटा टुकड़ा जिसे हम उठा सकते हों, उठा लें और उतना दुःख दूर करनेके लिए कटिबद्ध हो जायें तथा दूसरा कुछ करनेसे साफ इनकार कर दें तो ऐसा लगेगा कि हमने सारे पहाड़का भार उठा लिया है। इस सीधी-सादी, सच बातको यदि मैं आपके हृदयमें उतारनेमें समर्थ हुआ तो आपसे यह प्रतिज्ञा माँगूंगा कि यदि आपको कोई पृथ्वीका राज्य भी दे तो भी आप इन दो कार्योंके सिवा और कुछ नही करेंगे और यदि कोई ऐसा समय आये जब आपको ऐसा लगे कि इन दो कामोंके बाद भी

आपके पास समय बच रहता है तो आप मेरे पास आ जायें तब मैं आपको यह बतानेका बीड़ा उठाता हूँ कि इसी क्षेत्रमें आप बहुत-कुछ करना भूल गये हैं।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

भील सेवा मण्डल
दोहद

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९०७) की माइक्रोफिल्मसे।

४३२. पत्र: रामू ठक्करको

आश्रम
२४ अप्रैल, १९२६

भाईश्री रामू,

आपका पत्र मिला। आपने मुझे युगसृष्टा बनाया और मेरी सलाह माँगी लेकिन युगसृष्टा बनाकर उसका संहार भी अपने हाथों ही कर दिया। सलाह माँगते-माँगते आपने ही मुझे सलाह दे डाली। किसी वैद्यके पास समस्त रोगोंकी एक ही औषधि है, यह जानते हुए भी यदि कोई पुरुष उसके पास जाकर उससे उस औषधिके सिवा कोई दूसरी औषधि माँगता है तो यही कहा जायेगा कि वह उपहास करता है? क्या आपको नहीं लगता कि आपने ऐसा ही किया है और फिर अपने माने हुए युगसृष्टाका मूल्यांकन इस तरह किया है: "आपने स्वराज्य प्राप्त करनेके पीछे अनेक वर्ष, बहुत सारा पैसा और बहुत सारा उत्साह व्यर्थ ही खर्च कर डाला है।" अब कहिए ऐसे युगसृष्टासे आप कैसी शान्तिकी आशा रखते हैं? चरखा आपको अरुचिकर हो तो हो लेकिन आप राम-नामकी निन्दा क्यों करते हैं? यदि राम-नाम लें तो आपकी कल्पनामें जितनी कुमारिकाएँ और स्त्रियाँ हैं उन सबको वहाँसे इसी क्षण मुक्ति मिल जाये। आपने तो ऐसा सोच रखा जान पड़ता है कि "रामनाम" निर्विकार स्त्री-पुरुषोंके लिए है। ऐसे व्यक्तिको "रामनाम" की क्या जरूरत है? इस नामकी महिमाकी खोज करनेवाला स्वयं विकारी था और मैंने जब अपने विकारोंकी अग्निको शान्त करनेके लिए इस नामका उपयोग किया तो मुझे उससे लाभ हुआ इसीलिए मैं अपने-जैसे विकारी स्त्री-पुरुषोंको उसका उपयोग करनेकी सिफारिश करता हूँ।

दुःखी कुमारिकाओं और स्त्रियोंकी संख्या इतनी ज्यादा है जितनी आप समझते हैं। जो दुखी हैं वे कानूनकी सहायता लेना चाहें तो अवश्य ले सकती हैं। हाँ, यह सच है कि इन स्त्रियोंको अपने अधिकारोंका भान नहीं है और जिन्हें है उनमें उसे सिद्ध करनेकी शक्ति नहीं है। इसका एक ही इलाज है — शुद्ध ज्ञानका प्रचार। शुद्ध ज्ञान-प्रचार अर्थात् चरित्रका निर्माण, और चरित्रका निर्माण रामनामके बिना सम्भव नहीं है। इसके सिवा ऐसी दुखी स्त्रियाँ धनहीन होती हैं और यदि वे अपने शीलको बचाना चाहती हैं तो उसके लिए चरखा ही एकमात्र उपाय है। इन्हीं

कारणोंसे मेरी शिक्षा इन दो चीजोंसे शुरू होती है। लेकिन यह तो आपको भायेगी नहीं। इसलिए जो दुःख आपने माना है उसका इलाज आपको दूसरे स्थानपर ढूंढ़ना होगा। खोज करते-करते जब आपका प्रयत्न निष्फल हो जाये तब आप मेरे पास आना। मेरे पास श्रद्धा और धीरजका अक्षय भण्डार है, इसलिए मैं निर्भय होकर आपकी राह देखूंगा।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

श्री रामू परमानन्द ठक्कर,
सामलदास कालेज, भावनगर

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९०८)की माइक्रोफिल्मसे।

४३३. खादीके प्रति द्वेष

इस स्वदेशाभिमानी नवयुवकको[1] मैं उसकी दृढ़ता और त्यागके लिए बधाई देता हूँ और उम्मीद रखता हूँ कि वह अपनी दृढ़ता कायम रखेगा; ज्यादा वेतनके लोभमें, भविष्यमें भी अपनी टेक और अपनी खादीकी वेश-भूषा नही छोड़ेगा। खादीका अभी भी इस तरह अपमान हो सकता है, इसमें अंग्रेजोंके दोषकी अपेक्षा हमारा दोष अधिक है। अंग्रेजी पेढ़ियोंको अपनी इच्छाके अनुसार पोशाक पहननेवाले असंख्य नवयुवक मिल जाते हैं, इसलिए उन लोगोंको इसकी कोई चिन्ता नहीं होती और वे अपनी इच्छानुसार व्यवहार कर सकते हैं। यदि सब लोग खादीके मूल्यको समझें और देशके लिए थोड़ा-बहुत त्याग करनेके लिए भी तैयार हो जायें तो खादीके प्रति जो द्वेष-भाव दिखाई पड़ता है वह आज ही बन्द हो जाये।

सनातनी क्या करें?

"सनातनी हिन्दू" उपनामसे एक विद्वान् और धर्मनिष्ठ हिन्दू लिखते हैं।[2]

[गुजरातीसे]
नवजीवन, २५-४-१९२६

१. नवयुवकने अपने पत्रमें, जो यहाँ नहीं दिया गया है, बताया था कि किस तरह उसने राष्ट्रीय हितके लिए अपनी शिक्षाकी बलि दी और हमेशा खादी पहननेका नियम अपनाया। बादमें वह एक अंग्रेजी पेढ़ीमें शॉर्टहैण्ड टाइपिस्टकी जगहके लिए चुना गया लेकिन जब वह कामपर गया तो उसे खादीके पहरावेके कारण कामपर रखनेसे इनकार कर दिया गया। देखिए "खादीके पक्ष और विपक्षमें", २२-४-१९२६।

२. पत्र यहाँ नहीं दिया गया है। पत्र-लेखकने दक्षिणमें मन्दिर-प्रवेश करनेके बारेमें जो आन्दोलन चल रहा था, उसकी चर्चा करते हुए संस्कृतका यह श्लोक उद्धृत किया था:

कृष्णालय-समीपस्थान् कृष्णदर्शन लालसान्।
चाण्डालान् पतितान् म्रात्यान् स्पृष्ट्वा न स्नानमाचरेत्॥

कृष्णदर्शनकी लालसासे मन्दिरके पास खड़े हुए चांडालों, पतितों और धर्मभ्रष्टोंको छूकर नहानेका कोई कारण नहीं है।

४३४. विवाह-प्रथाको उठा दो?

एक पत्र-लेखक, जिन्हें मैं अच्छी तरह जानता हूँ, इस प्रकार लिखते हैं:

बार-बार मनमें यही सवाल होता है कि क्या प्रचलित नीति प्रकृति-सम्मत है? नीतिधर्मके बारेमें आपने जो-कुछ लिखा है उससे प्रचलित नीतिका समर्थन होता है। किन्तु क्या यह प्रचलित नीति कुदरती है? मेरा तो यह खयाल है कि वह कुदरती नहीं है। क्योंकि वर्तमान नीतिके कारण ही मनुष्य विषय-वासनामें पशुसे भी अधम बन गया है। आजकी नीतिकी मर्यादाके कारण सन्तोषकारक विवाह शायद ही कहीं होता होगा; नहीं होता है, यह कहूँ तो भी कोई अत्युक्ति न होगी। जब विवाहका नियम न था उस समय स्त्री-पुरुषका समागम कुदरतके नियमोंके अनुसार होता था और वह समागम सुखकर होता था। आज नीतिके बंधनोंके कारण इस समागमने एक तरहकी कष्टकर बीमारी का रूप ले लिया है — ऐसी बीमारीका, जिसमें सारा संसार फँसा हुआ है और वह फँसता जा रहा है।

सवाल यह है कि हम नीति कहें किसे? एक जिसे नीति मानता है, दूसरा उसे ही अनीति मानता है। एक धर्म कहता है कि एक ही पत्नी होनी चाहिए, दूसरा अनेक पत्नियोंकी इजाजत देता है। कोई चाचा-मामाकी सन्तानके साथ विवाह-सम्बन्धको त्याज्य मानते हैं तो कोई उसके लिए इजाजत भी देते हैं। तो अब इसमें नीति किसे समझें? मैं तो यह कहता हूँ कि विवाहका सम्बन्ध सामाजिक व्यवस्थासे है, उसका धर्मके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। पुराने जमानेके महापुरुषोंने देश-कालानुसार नीतिकी व्यवस्था की थी।

अब इस नीतिके कारण जगतकी कितनी हानि हुई है, इसकी जाँच करें।

१. प्रमेह, उपदंश इत्यादि रोग उत्पन्न हुए। पशुओंमें ये रोग नहीं होते हैं क्योंकि उनमें प्राकृतिक समागम होता है।

२. बाल हत्याएँ करायीं। यह लिखनेमें मेरा हृदय काँप उठता है। इस नीतिके कारण ही तो एक कोमल-हृदय माता क्रूर बनकर गर्भमें या गर्भके बाहर आनेपर अपने बालकका नाश करती है।

३. बाल-विवाह, वृद्ध पतिके साथ छोटी उम्रकी लड़कियोंका विवाह इत्यादि पसन्द न करने योग्य सम्बन्धोंका होना। ऐसे समागमोंके कारण ही आज संसार और उसमें भी विशेषकर भारतवर्ष दुर्बल बना हुआ है।

४. जर, जोरू और जमीन इनके तीन प्रकारके झगड़ोंमें भी जोरूके लिए किये गये झगड़ोंको प्रथम स्थान प्राप्त है; ये भी वर्तमान नीतिके कारण ही होते हैं।

उपरोक्त चार परिणामोंके सिवा दूसरे दुष्परिणाम भी होंगे। यदि मेरी दलील ठीक है तो क्या प्रचलित नीतिमें कोई सुधार नहीं किया जाना चाहिए?

ब्रह्मचर्यको आप मानते है, यह ठीक ही है। परन्तु ब्रह्मचर्य राजी-खुशीका होना चाहिए, जबरदस्तीका नहीं। और हिन्दू लोग तो लाखों विधवाओंसे जबरदस्ती ब्रह्मचर्यका पालन कराते हैं। इन विधवाओंके दुःखोंको तो आप जानते ही हैं। आप यह भी जानते है कि इसी कारणसे बाल-हत्याएँ होती है तो आप पुनर्विवाहके लिए एक बड़ी हलचल करें तो क्या बुरा? उसकी आवश्यकता भी कुछ कम नहीं है। आप उसके प्रति जितना चाहिए उतना ध्यान क्यों नहीं दे रहे हैं?

मेरा खयाल है कि पत्र-लेखकने ऊपर जो प्रश्न पूछे हैं, वे इस विषयपर मुझसे कुछ लिखानेके लिए ही पूछे हैं, क्योंकि पत्रमें जिस पक्षका समर्थन किया गया है उसका लेखक स्वयं समर्थन करते हों तो इसकी मुझे जानकारी नही है। परन्तु मै यह जानता हूँ कि उन्होंने जैसे प्रश्न पूछे है वैसे प्रश्न आजकल भारतवर्षमें भी हो रहे हैं। उसकी उत्पत्ति पश्चिममें हुई है और विवाहको पुरानी, जगली और अनीतिकी वृद्धि करनेवाली प्रथा माननेवालोंकी संख्या वहाँ कुछ कम नही है। शायद वह संख्या बढ़ भी रही हो। विवाह एक जगली प्रथा है, यह साबित करनेके लिए पश्चिममें जो दलीलें दी जाती है वे सब मैंने नही पढ़ी हैं। परन्तु ऊपर लेखकने जैसी दलीलें की हैं वे दलीलें वैसी ही हों तो मेरे जैसे पुराणपन्थीको (अथवा मेरा दावा माना जा सके तो सनातनीको) उनका खण्डन करनेमें कोई मुश्किल या परेशानी न होगी।

मनुष्यकी तुलना पशुसे करनेमें ही मूलतः भूल हुई है। मनुष्यके लिए जो नीति और आदर्श रखे गये हैं वे बहुतांशमें पशुनीतिसे भिन्न और उत्तम हैं और यही मनुष्यकी विशेषता है। इसलिए प्रकृतिके नियमोंका जो अर्थ पशु-योनिके लिए किया जा सकता है वह मनुष्य-योनिपर हमेशा लागू नहीं किया जा सकता। ईश्वरने मनुष्यको विवेकशक्ति दी है। पशु केवल पराधीन है। इसलिए पशुके लिए स्वतन्त्रता अथवा अपनी पसन्दगी-जैसी कोई चीज नही है। मनुष्यकी अपनी पसन्दगी होती है। वह सार-असारका विचार कर सकता है और वह स्वतन्त्र होनेसे पाप-पुण्यका कर्त्ता-अकर्त्ता भी है और जहाँ उसकी अपनी पसन्दगी रखी गई है वहाँ उसके लिए पशुसे भी अधिक गिरनेका अवकाश रहता है। उसी प्रकार यदि वह अपने दिव्य स्वभावके अनुकूल चले तो वह उससे ऊँचा भी उठ सकता है। बेहद जंगली दिखनेवाली कौमोंमें भी थोड़े-बहुत अशोंमें विवाहका अंकुश होता ही है। यदि यह कहा जाये कि यह अंकुश रखना ही जंगलीपन है, क्योंकि पशु तो किसी अंकुशको नही मानते तो उसका परिणाम यह होगा कि स्वेच्छाचारिता ही मनुष्यका नियम बन जायेगा। परन्तु यदि सब मनुष्य-मात्र चौबीस घंटोके लिए ही स्वेच्छाचारी बन जायें तो सारे जगतका नाश हो हो जाये। तब कोई किसीकी बात न मानेगा; स्त्री और पुरुषकी मर्यादा अधर्म समझी जायेगी, और मनुष्यका विकार तो अवश्य ही पशुके बनिस्बत बहुत प्रबल होता है। इस विकारका नियन्त्रण ढीला कर दें तो उसके वेगसे उत्पन्न

अग्नि ज्वालामुखीकी तरह भभक उठेगी और संसारको क्षण-मात्रमें भस्म कर देगी। थोड़ा-सा विचार करनेपर यह मालूम होगा कि मनुष्य इस संसारमें दूसरे अनेक प्राणियोंपर अधिकार प्राप्त किये हुए है तो वह केवल संयम, निस्स्वार्थता, आत्मत्याग, यज्ञ और बलिदानके कारण ही।

प्रमेह और उपदंश आदिके उपद्रव विवाहके नियमके कारण नहीं बल्कि उसका भंग करनेके कारण और मनुष्यके पशु न होनेपर भी, पशुका अनुकरण करनेके कारण ही होते हैं। मैं विवाहके नियमोंका पालन करनेवाले ऐसे एक भी मनुष्यको नहीं जानता, जिसे इन भयंकर रोगोंका शिकार होना पड़ा हो। जहाँ-जहाँ ये रोग हुए हैं वहाँ-वहाँ अधिकांशमें विवाह-नीतिका भंग करनेसे अथवा उस नीतिका भंग करनेवालोंके संसर्गसे हुए हैं। यह बात चिकित्सा-शास्त्रसे सिद्ध होती है। बाल-विवाह और बाल-हत्या जैसी निर्दयी प्रथाओंका कारण विवाह-नीति नहीं है; बल्कि वे ही विवाह-नीतिके भंगसे जन्मी हैं। विवाह-नीति तो यह कहती है कि जब किसी पुरुष अथवा स्त्रीकी आयु विवाहके योग्य हो जाये, जब उसे प्रजोत्पत्तिकी इच्छा हो और उसका स्वास्थ्य अच्छा हो तभी वह एक निश्चित मर्यादाका पालन करता हुआ अपने लिए योग्य साथी ढूँढ़ ले अथवा उसके माता-पिता ढूँढ़ दें। जो साथी ढूँढ़ा जाये उसमें भी नीरोगता आदि गुण अवश्य हों। इस विवाह-नीतिका पालन करनेवाले मनुष्य, हम संसारमें चाहे कहीं भी जाएँ और देखें, सुखी ही दिखाई देते हैं। जो बात बाल-विवाहके सम्बन्धमें है वही वैधव्यके सम्बन्धमें भी है। विवाह-नीतिके भंगसे ही दुःखजनक वैधव्य उत्पन्न होता है। जहाँ विवाह शुद्ध होता है वहाँ वैधव्य अथवा विधुरता सहज और शोभास्पद होती है। जहाँ ज्ञानपूर्वक विवाह सम्बन्ध किया गया है वहाँ वह सम्बन्ध केवल दैहिक नहीं रहता, बल्कि आत्मिक हो जाता है और आत्मिक सम्बन्ध देह छूट जानेपर भी भुलाया नहीं जा सकता। जहाँ इस सम्बन्धका ज्ञान होता है, वहाँ पुनर्विवाह असम्भव है, अनुचित है और अधर्म है। जिस विवाह-सम्बन्धमें उपयुक्त नियमोंका पालन नहीं होता उसे विवाहका नाम नहीं दिया जाना चाहिए और जहाँ विवाह नहीं होता वहाँ वैधव्य अथवा विधुरता जैसी कोई चीज ही नहीं होती। यदि हम ऐसे आदर्श विवाह बहुत होते हुए नहीं देखते तो केवल इस कारणसे विवाह-प्रथाको नष्ट करनेका कोई कारण दिखाई नहीं देता। हाँ, वह अच्छे आधारपर प्रतिष्ठित एक सबल कारण अवश्य हो सकता है।

सत्यके नामसे असत्यका प्रचार करनेवालोंकी संख्या देखकर कोई सत्यका ही दोष निकाले और उसकी अपूर्णता सिद्ध करनेका प्रयत्न करे तो हम उसे अज्ञानी मानेंगे। उसी प्रकार विवाह-नीतिके भंगके दृष्टान्तोंसे विवाह-नीतिकी निन्दा करनेका प्रयत्न करना भी अज्ञान और अविचारका ही चिह्न है।

लेखक कहते हैं कि विवाहमें धर्म या नीति कुछ नहीं है, वह तो एक रूढ़ि अथवा रिवाज है और वह भी धर्म और नीतिके विरुद्ध है और इसलिए उठा देनेके योग्य है। मेरी अल्पमतिके अनुसार तो विवाह धर्मकी बाड़ है और यदि उसे उठा दिया जायेगा तो संसारमें धर्म-जैसी कोई चीज ही न रहेगी। धर्मकी जड़ ही संयम

अथवा मर्यादा है, जो मनुष्य सयमका पालन नहीं करता वह धर्मको क्या समझेगा? पशुके बनिस्बत मनुष्यमें विकार अधिक प्रबल होते हैं। दोनोंके विकारोंकी तुलना ही नहीं की जा सकती। जो मनुष्य विकारोंको वशमें नही रख सकता वह ईश्वरकी पहचान नही कर सकता। इस सिद्धान्तका समर्थन करनेकी कोई आवश्यकता नही, क्योंकि मैं यह बात स्वीकार करता हूँ कि जो लोग ईश्वरका अस्तित्व अथवा आत्मा और देहकी भिन्नता स्वीकार नहीं करते, उनके लिए विवाह-बन्धनकी आवश्यकता सिद्ध करना मुश्किल होगा। परन्तु जो आत्माका अस्तित्व स्वीकार करता है और उसका विकास करना चाहता है उसे यह समझानेकी आवश्यकता ही न होगी कि देहका दमन किये बिना आत्माकी पहचान और उसका विकास असम्भव है। देह या तो स्वेच्छाचारकी लीला-स्थली है या आत्माकी पहचान करानेवाली तीर्थ-भूमि। यदि वह आत्माकी पहचान करानेवाली तीर्थ-भूमि है तो उसमें स्वेच्छाचारका कोई स्थान ही नही। देहको प्रतिक्षण आत्माके नियंत्रणमें लानेका प्रयत्न करना चाहिए।

जमीन, जोरू और ज़र—तीनों झगड़ेके कारण वही होते हैं, जहाँ संयम धर्मका पालन नहीं होता। मनुष्य विवाहकी प्रथाको जिस हदतक मान देता है, स्त्रीका झगड़ेका कारण होना, उसी हदतक कम हो जाता है। यदि स्त्री और पुरुष भी पशुओंकी तरह जहाँ जैसा चाहे वैसा व्यवहार कर सकते तो मनुष्योंमें बड़ा झगड़ा होता और वे अवश्य ही एक-दूसरेका नाश करते। इसलिए मेरा तो यह दृढ़ मत है कि लेखकने जिस दुराचार और जिन दोषोंका उल्लेख किया है उनकी औषध विवाह-धर्मका उच्छेद नहीं है, बल्कि उसका सूक्ष्म निरीक्षण और पालन है।

किसी जगह रिश्तेदारोंमें विवाह-सम्बन्ध करनेकी स्वतन्त्रता होती है और किसी जगह नही होती। इस तरह यह सच है कि स्थान-भेदके अनुसार नीतिमें भी भेद है। किसी जगह एक पत्नीव्रतका पालन करना धर्म माना जाता है और किसी जगह एक समयमें अनेक पत्नियाँ रखनेपर कोई प्रतिबन्ध नही होता। यह बात वांछनीय है कि नीतिमें यह भेद न हो; परन्तु यह भिन्नता हमारी अपूर्णताकी सूचक है, नीतिकी अनावश्यकताकी सूचक कभी नही। हम ज्यों-ज्यों अधिक अनुभव प्राप्त करते जायेंगे त्यों-त्यों सब कौमोंकी और सभी धर्मोंके लोगोंकी नीतिमें सामंजस्य होता जायेगा। नीतिकी सत्ता स्वीकार करनेवाला जगत तो आज भी एक पत्नीव्रतको आदरकी दृष्टिसे देखता है। किसी भी धर्ममें अनेक पत्नी रखना आवश्यक नही रखा गया है। उनमें सिर्फ अनेक पत्नी रखनेकी छूट दी गई है। देश और कालको देखकर किसी बातकी छूट दे दी जाये तो उससे आदर्श असत्य सिद्ध नहीं होता और न उसकी भिन्नता ही सिद्ध होती है। विधवा-विवाहके सम्बन्धमें मैं अपने विचार अनेक बार प्रकाशित कर चुका हूँ। मैं बाल-विधवाओंके पुनर्विवाहको इष्ट मानता हूँ, यही नहीं, मैं यह भी मानता हूँ कि उनका पुनर्विवाह करना उनके माता-पिताओंका कर्त्तव्य है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २५-४-१९२६

४३५. पत्र : अहमद मियाँको

२५ अप्रैल, १९२६

भाई अहमद मियाँ,

आपका पत्र मिला है।

१–२ मेरी दृष्टिसे हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यका मेरा प्रयत्न निष्फल नहीं हुआ है और मैं मानता हूँ कि इस समय दोनों जातियोंका मन एक-दूसरेसे कितना ही विमुख क्यों न हो गया हो लेकिन उन्हें अन्ततः एक-दूसरेके निकट आना ही होगा।[1]

३. देशके उद्धारके लिए ऐक्यकी आवश्यकता है ही।

४. जो पैसा जिस कार्यके लिए इकट्ठा किया जाये उसका उपयोग उसी कार्यके लिए किया जा सकता है।

५. कलकत्ताकी दुःखद घटनाओंके कारणोंका मैं पता नहीं लगा सका हूँ। समाचार-पत्रोंपर मुझे बहुत कम विश्वास है। आर्य समाजके जलूस पहले भी निकलते थे, ऐसी मेरी मान्यता है।

६. मैं और कोई मार्ग अपनाता तो ज्यादा अच्छा फल निकलता, इस झमेलेमें पड़ना मैं खुदाके प्रति बेवफाई मानता हूँ।

७. मेरी जगह कौन लेगा इसकी चिन्ता ईश्वर करता है, यह मैं जानता हूँ; इसलिए मैं क्यों चिन्ता करूँ?

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९०९) की माइक्रोफिल्मसे।

४३६. पत्र : जमनालाल बजाजको

आश्रम

२५ अप्रैल, १९२६

चि० जमनालाल,

तुम्हारा पत्र मिला। गवर्नरका जवाब आया है कि अभी मेरे वहाँ जानेकी जरूरत नहीं है। वह जब जून महीनेमें [पहाड़से] नीचे उतरे तब जाऊँ तो ठीक होगा। इसलिए महाबलेश्वरके जंजालसे तो छुट्टी मिली।

लालाजीके साथ मैंने उनकी शिकायतके बारेमें कुछ बातचीत तो की ही थी, पर मुझसे तो उन्होंने इनकार ही किया। रोगकी जानकारी है, इसलिए जब आयेंगे तो इलाज तो कर ही लेंगे।

१. साधन-सूत्रमें 'लड़ना ही होगा' है।

मोतीलालजीके साथ प्रसंग आनेपर बात कर लूँगा। मैं मानता हूँ कि इस सम्बन्धमें कोई अड़चन नहीं आयेगी। देवदासको अभी यहाँसे बाहर भेजनेकी इच्छा नहीं होती। उसका स्वास्थ्य फिर अच्छी तरह सुधर जाये तभी यहाँसे निकलना ठीक रहेगा। अगर यूरोप जाना हो तो क्या किया जाये और किनको साथ ले जाया जाये, यह विचार तो करना ही होगा। अभी तो विचार ऐसा है कि महादेव और देवदास साथ आवें। इस दृष्टिसे भी फिलहाल देवदासका यहाँ रहना ठीक होगा। जाना हुआ तो जुलाई महीनेके प्रारम्भमें निकलना होगा। मुझे अभी कोई जवाब नहीं मिला है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (जी० एन० २८६१) की फोटो-नकलसे।

४३७. पत्र : नगीनदासको

सावरमती आश्रम
रविवार, २५ अप्रैल, १९२६

भाईश्री नगीनदास,

इसके साथके पोस्ट कार्डको पढ़ना और जो लिखा हो सो मुझे बताना। 'नवजीवन' में प्रकाशित विज्ञप्तिके अनुसार यदि इस व्यक्तिने पुस्तकें मँगाई थी तो मुझे लगता है कि तुम्हें भेज देनी चाहिए थीं।...रुपये देकर पुस्तकें मँगवानेवाले आजतक कितने हुए हैं, यह भी बताना।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९५०६) की माइक्रोफिल्मसे।

४३८. पत्र : गुलाबदास लालजीको[1]

आश्रम
२५ अप्रैल, १९२६

भाईश्री गुलाबदास,

१. जिनका आपने उल्लेख किया है उनमें से किसी भी विषयका[2] घर बैठे अध्ययन करनेमें कोई अड़चन नहीं है।

२. इस धन्धेसे हमारी कोमल भावनाएँ कठोर न हो जायें — यह बात तो व्यक्तिपर निर्भर करती है।

खेती आदि शारीरिक श्रमके धन्धेसे मैं उपर्युक्त धन्धेको[3] अवश्य कम समझता हूँ।

१. गुलाबदास लालजीने दो भागोंमें प्रश्न किये थे। यह पत्र उनके उत्तरमें लिखा गया था।
२, ३. इंजीनीयरिंग, चिकित्सा और होमियोपैथी।

३. ब्रह्मचर्यके पालनके लिए सादा और अल्पाहार [करना] चाहिए। मसालों और मादक पदार्थोंका त्याग करना चाहिये।

४. ताजी और हरी सब्जियोंमें तथा दालोंमें अहिंसाकी दृष्टिसे जो भेद किया जाता है उसमें कुछ रहस्य अवश्य है। लेकिन आजकल तो इसमें ही धर्म माना जाता है, इससे यह भेद दूषणरूप हो गया है।

५. जबतक स्त्री पराधीनावस्थामें है और ऐसा मानती है कि वह पराधीन है तबतक उसे अधिक अंकुश सहन करना पड़ेगा, यह कथन ठीक जान पड़ता है।

१. मैं यह नहीं मानता कि धर्म ऐसा कहता है कि जो पति करे वैसा ही पत्नीको भी करना चाहिए।

२. पति पत्नीपर जोर-जबर्दस्ती नहीं कर सकता। वह उसे खादी प्रेमके बलपर पहना सके तो ही पहनाये।

३. वर और वधू दोनोंको खादीका आग्रह रखना चाहिए। किन्तु जबतक पिताको सेवाकी आवश्यकता है तबतक पुत्रको उससे अलग नहीं होना चाहिए।

४. पहली पत्नीकी अनुमति हो अथवा न हो परन्तु दूसरी पत्नी करना मुझे तो अनुचित लगता है। मेरी दृष्टिसे यदि पहली पत्नीसे सन्तान न हो तो भी पुरुषको दूसरा विवाह नहीं करना चाहिए।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९९१०) की माइक्रोफिल्मसे।

४३९. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

२६ अप्रैल, १९२६

मेरा वहाँ जानेका तनिक भी मन नहीं होता। एक घंटेके लिए आज भी आश्रम छोड़नेका जी नहीं होता।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी

४४०. पत्र : काका कालेलकरको

सोमवार, २६ अप्रैल, १९२६

भाईश्री काका,

तुम्हारे पत्र मिले हैं। गायके दूधके बारेमें जवाब देना है, लेकिन आज नही।

नये पंचांगके बारेमें स्वामीसे पूछा तो उन्होने कहा "मै नही समझता।" मै तो बिलकुल ही नही समझता। इसलिए अब स्वस्थ होनेके बाद तुम्ही हम लोगोको समझाना। और उसमें फेरफार करना। लेकिन जबतक हम 'नवजीवन'में इस समस्याकी पूरी-पूरी चर्चा नही करते तबतक क्या पचागमें फेरफार किया जा सकता है? मै अभी इसका रहस्य नहीं जानता। भाई हरीहर थोड़े दिनोंमे आनेवाले हैं। उनसे समझनेका प्रयत्न करूँगा।[1] . . .

मेरा मसूरी जाना तो फिर नही हुआ। गवर्नर महोदयसे भेंट भी पूना अथवा बम्बईमें होगी और वह भी जूनमें। अभी फिनलैंडकी यात्राकी बात जरूर बहुत जोरसे चल रही है। मेरे पास अन्तिम उत्तर नही आया है। मुझे तो अभी ऐसा लगता है कि पोशाककी मेरी शर्त वे स्वीकार नही कर सकेंगे। यदि जाना निश्चित ही हुआ तो कमसे-कम तीन महीने तो अवश्य लगेंगे।

विशेष अगले पत्रमें।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९११)की माइक्रोफिल्मसे।

४४१. पत्र : चन्द्रशंकर पण्ड्याको

आश्रम
सोमवार, २६ अप्रैल, १९२६

भाईश्री ५ चन्द्रशंकर,

आपका पत्र पाकर प्रसन्नता हुई।

आपको फिरसे बीमार पड़नेका अधिकार किसने दिया? जिसने दिया है उसे वापस सौंप दें तो क्या काम नहीं चलेगा? या ऐसा है कि इस स्वतंन्त्रताके युगमें मिले हुए अधिकारोंको छोड़ा नहीं जा सकता?

मै तो जैसा आप चाहते है वैसा अपनी बुद्धिके अनुसार प्रयत्न करता ही रहता हूँ, इतना निश्चित समझें। आपके द्वारा उद्धृत इस अन्तिम कड़ीको मै अक्षरशः मानता हूँ "भले ही बाहरसे भिन्नता हो किन्तु अन्तरमें एकता होनी चाहिए।"

१. साधन-सूत्रमें ऐसा ही है।

मोतीलालजीका भी यही प्रयत्न है। लेकिन जहाँ हृदय भिन्न हैं वहाँ एकता कैसे साधी जा सकती है? आदर्श-भेदसे भी हृदय भिन्न हो जाते हैं न! एक ओर राजा और दूसरी ओर प्रजा, ऐसे दो ही पक्ष हों, यह इष्ट है। लेकिन इस समय मैं इसे सम्भव नहीं मानता। जब हम हृदयमें इस बातको महसूस करेंगे तब दूसरा कुछ करनेको नहीं रह जायेगा। लेकिन इस समय जो नहीं है उसे अस्तित्वमें लानेका हमें निरन्तर प्रयत्न करना चाहिए।

आप यदि अहमदाबाद आयेंगे और दो-एक दिन रह सकेंगे तो ज्यादा चर्चा करेंगे।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

श्री चन्द्रशंकर पण्ड्या
हाईकोर्ट वकील
चाइना बाग, गिरगांव
बम्बई

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९१२) की माइक्रोफिल्मसे।

४४२. पत्र : एस० गणेशनको

[साबरमती आश्रम
२७ अप्रैल, १९२६

प्रिय गणेशन,

आपका तार मिला। मैं आपको निबन्धके[1] उतने हिस्सेकी नकल भेज रहा हूँ जितना अबतक टाइप किया जा चुका है। कुल मिलाकर निबन्ध सौ पृष्ठोंका होगा। इसके आधारपर आपको मुझे अपनी सही दरें भेज सकना चाहिए। शुरूमें इसे 'नवजीवन' कार्यालयकी मार्फत छपवानेका विचार था। चूँकि वरदाचारी मद्रासमें हैं और चूँकि मुझे पता चला है कि निबन्धको मद्रासमें शायद कम खर्चमें छपवाया जा सकता है, इसलिए मैंने यह सोचा कि 'नवजीवन'को छापनेके लिए देनेका निर्णय करनेसे पहले मैं आपकी दरें मालूम कर लूँ।

पुस्तकके लिए जितना कागज जरूरी है, उतना पहले ही खरीद लिया गया है। इसलिए यदि आप निबन्ध प्रकाशित करेंगे तो कागज आपके पास भेजना होगा। इसलिए कागजके मूल्यको छोड़कर २,००० प्रतियाँ छापनेकी लागत आप मुझे लिख भेजें। और आप यह भी सूचित करें कि पूरी सामग्री आपके हाथमें पहुँच जानेके बाद आप ठीक-ठीक कितने दिनोंमें प्रतियाँ तैयार करके दे देंगे।

मेरे लिए वरदाचारीसे भी यह पूछताछ करना जरूरी होगा कि वह मद्रासमें रहकर इस सब कामको अपनी जिम्मेदारीपर करवा सकते हैं या नहीं। सारा काम

१. एस० वी० पुणताम्बेकर और एन० एस० वरदाचारी लिखित **हैंड स्पिनिंग एण्ड हैंड विविंग—एन ऐसे** (हाथ-कताई और हाथ-बुनाई—एक निबन्ध)।

शीघ्रतासे करनेके लिए आप शायद वरदाचारीसे भी मिलना या पत्र-व्यवहार करना चाहेंगे।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५०७)की माइक्रोफिल्मसे।

४४३. पत्र: एस० श्रीनिवास अय्यंगारको

साबरमती आश्रम
२७ अप्रैल, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका तार मिला था। आपकी भेंटकी रिपोर्ट मैंने कल ही देखी। आशा है, आप अ० भा० कां० कमेटीकी बैठकके अवसरपर साबरमती आयेंगे।

मैं आपकी स्थिति और कठिनाईको पूरी तरह समझता हूँ। एक ही भूमिका, जो मैंने उस समय निभाई थी और जो मुझे अब भी निभानी चाहिए, वह है शान्ति-सद्भावना स्थापित करवानेवाले व्यक्तिकी भूमिका। कौंसिलोंमें मेरी कोई दिलचस्पी नहीं है। इस सम्बन्धमें मुझे एक उदासीन व्यक्ति समझा जाना चाहिए। मेरे बारेमें लगभग इतना ही कहा जा सकता है।

मैं कौंसिलके कार्यको, सार्वजनिक जीवनपर पड़े कौंसिल-प्रवेशके प्रभावको तथा हिन्दू-मुस्लिम सवालपर होनेवाले उसके असरको जितना ही गौरसे देखता हूँ, मुझे इस बातकी उतनी अधिक प्रतीति होती जाती है कि कौंसिल-प्रवेश निरर्थक ही नहीं, नासमझीका काम है। मैं उस दिनका स्वागत करूँगा जब १९२० के सहयोगियोंमें से कमसे-कम कुछ लोग कौंसिलोंको उनके भाग्यपर छोड़ देंगे और मर्जी हो तो चरखा कार्यक्रममें योग देंगे अथवा अपनी पसन्दका अन्य कोई कार्य करने लगेंगे। यदि ऐसा हुआ तो मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि जब भी लड़ाईका समय आयेगा, ये लोग आगे आनेको तैयार एक विशेष सुरक्षित सेनाका काम देंगे, तथापि यह मेरा अपना विचार है। अभी तो मैं अपने इस विचारको अपनेतक ही सीमित रखता हूँ; और व्यक्त भी करता हूँ तो सिर्फ आप-जैसे दोस्तोंके सामने ही व्यक्त करता हूँ। इसे जनताके सामने रखनेका समय अभी नहीं आया है। जनताके सामने इसे रखनेका अर्थ होगा उसका कुछ भी भला किये बिना उसे व्यथित करनेवाली अन्य बहुत-सी बातोंमें एक और जोड़ देना। इसलिए यह केवल आपके पढ़नेके लिए ही है। शेष मिलनेपर।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एस० श्रीनिवास अय्यंगार
अमजद बाग, माइलापुर, मद्रास

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५०८) की फोटो-नकलसे।

४४४. पत्र : डॉ० माणिकबाई बहादुरजीको

साबरमती आश्रम
२७ अप्रैल, १९२६

प्रिय माणिकबाई,

आपका प्रिय पत्र मिला। उसे पाकर प्रसन्नता हुई। यदि मैं एक दिनके लिए भी महाबलेश्वर जाता तो आपके यहाँ अवश्य ठहरता, परन्तु अब वहाँ जानेकी जरूरत नहीं रह गई है। मैंने गवर्नर महोदयको उनके इस गर्मीके समाप्त होनेपर पहाड़से लौटने तकके लिए भेंट स्थगित रखनेके लिए लिखा था और वे इसके लिए राजी हो गये हैं। इससे मेरा कुछ दिनका समय बचेगा, हालाँकि साथ ही मैं आपसे और श्री बहादुरजीसे मिलनेके सौभाग्यसे भी वंचित रह जाऊँगा।

उन्होंने मुझे पत्र लिखकर याद दिलाया कि वे डॉक्टर नहीं हैं, लेकिन चूँकि मैं उन्हें जाननेसे पहले आपको जानता था, इस कारण पत्र लिखवाते समय जल्दीमें मैं यह अन्तर भूल गया। पर इसके लिए मैं क्षमा नहीं माँगूंगा, क्योंकि शिष्टताके नाते एक डॉक्टरके पतिको भी डॉक्टर कहनेमें मुझे कोई हर्ज नहीं दीखता।

क्या आपको अपनी भेजी बनियानोंकी याद है? और क्या आपको यह भी याद है कि आपको मुझे और भी बनियानें भेजनी हैं? मैं आपसे अपने वादेको पूरा करनेके लिए नहीं कहूँगा, क्योंकि इस भयंकर गर्मीमें मुझे उनकी आवश्यकता नहीं पड़ सकती। पर इसकी याद मैं आपको इसलिए दिला रहा हूँ, ताकि जब भी मुझे आवश्यकता हो आपके इस वादेका सहारा तो ले सकूँ।

आप सबको स्नेह वन्दन।

हृदयसे आपका,

डॉ० माणिकबाई बहादुरजी
कोमरा हॉल, पंचगनी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५०९) की फोटो-नकलसे।

४४५. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

सावरमती आश्रम
चैत्री पूर्णिमा [२७ अप्रैल, १९२६]

भाई घनश्यामदास,

आपका पत्र मिला है। आपने जो चेक भेजा है उसमें से अ० भा० देशबन्धु स्मारकके पैसेकी जो रसीद जमनालालजीके वहाँसे आई है, आपको देखनेके लिये भेज देता हू। चेकपर जो हुडियामण काट लेते हैं वह काटकर रसीद दी जाती है उसका मुझको यह पहला अनुभव है।

हिंदु मुस्लीम झगड़ोंके लिये मैं और क्या लिखू? मैं भली भांति समझता हूं कि हमारे लिये क्या उचित है, परतु आज मेरा कहना निरर्थक है वह भी जानता हूं। शहदपर बैठी हुई माखको कौन हटा सकता है? बत्तीके इर्दगीर्द घूमता हुआ परवानाकी गतिको कौन रोकता है?

मसूरी न जानेसे मैं बहुत लाभ उठा रहा हू। आपका अभिप्राय यहां मिलनेके बाद आपने क्यों दिल्लीसे मसूरी जानेका तार भेजा? परतु जिसको ईश्वर बचाना चाहता है उसको कौन मिटा सकता है?

फिनलैंडके बारेमें मैं नही जानता हूं मैं क्या करना चाहता हूं। जाने न जानेका मेरे नजदीक बहुतसे कारन हैं। और क्योकि मै निश्चय नही कर सका हूं, इसलिये निमत्रण देनेवालोंको मैंने मेरी शर्त सुना दी। शर्तके स्वीकारके साथ अगर वे लोग मेरी हाजरी चाहें तो मैं समझुंगा कि मेरा जाना आवश्यक है।

आल इंडिया काग्रेस कमेटीमें क्या होगा देखा जायगा।

चीनी विद्यार्थीके लिये मैं जुगलकिशोरजीकी समति चाहता हूं। क्योकि ऐसी बातोका शोख उनको ज्यादह है। और उन्होंने जो कहा था उसका स्मरण करके ही मैंने लिखा है। ऐसी बातें जो मेरे सामान्य क्षेत्रके बाहरकी आ जाती है उसमें योग्य मित्रोकी सहाय मिलती है तब ही कर देता हूं। आपने मेरे कामोंके लिये जो बोज उठा लिया है उसमें मैं अनावश्यक वृद्धि नहीं करना चाहता हूं। जबतक आप भाइयोंका व्यय पृथक २ रहता है तबतक मैं भी पृथक व्यवहार करनेकी चेष्टा करता हू। इसलिए आप मुझे लिखें जुगलकिशोरजी क्या चाहते हैं।

आपका,
मोहनदास

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६१२५ ए) से।
सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

४४६. पत्र : जुगलकिशोर बिड़लाको

साबरमती आश्रम
बुधवार, २८ अप्रैल, १९२६

भाई जुगलकिशोरजी,

आपका पत्र आज मिला। अब मैं लड़कीके लिये पैसे भेज दूंगा। आज तो इस चीनी विद्यार्थीमें सब शुभ गुण प्रतीत होते हैं। उसीसे मांगनेसे उसका हिंदुस्तानी नाम दिया गया है, और हम उसको 'शांति' नामसे बुलाते हैं।

हिंदु-मुसलमानोंकी आजकलकी अशांति यद्यपि दुःखद है तदपि उसीमें से मैं शांतिके किरण देख रहा हूं। हम धर्मको न भूलें इतनी प्रार्थना ईश्वरसे निरन्तर करता हूं।

आपका,
मोहनदास

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६१२६) से
सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

४४७. पत्र : देवचन्द पारेखको

साबरमती आश्रम
बुधवार [२८ अप्रैल, १९२६][1]

भाईश्री देवचन्दभाई,

आपका पत्र मिला। आपने दीवान साहबको[2] ठीक ही लिखा है। यदि आठ-एक दिनोंमें नहीं आ जाता तो आपको खबर दूंगा।

बापू

गुजराती पत्र (जी० एन० ५७०६) की फोटो-नकलसे।

१. डाककी मुहरसे।
२. पोरबन्दरके दीवान।

४४८. पत्र : नाजुकलाल नन्दलाल चौकसीको

साबरमती आश्रम
बुधवार, २८ अप्रैल, १९२६

भाईश्री नाजुकलाल,

यह पत्र भी तुम्हारे नाम किन्तु दोनोंके लिए है। पति-पत्नी दोनोंको आवश्यकता पड़नेपर पैनी अथवा सोटीका उपयोग करनेका अधिकार है। अन्तर सिर्फ इतना है कि यह पैनी भी सत्याग्रहीकी गालीकी तरह सत्याग्रही प्रकारकी ही होना चाहिए। मोतीको तो इस पत्रसे मैं यह नोटिस दिये देता हूँ कि आलस्य और लिखावट दोनोके लिए कमसे-कम मैं तो पैनीका उपयोग अवश्य करनेवाला हूँ। भले ही वह उसके डरसे आश्रमका त्याग करना चाहे तो करे। आश्रमका त्याग करनेके बाद वह तुम्हारे ही पास तो जायेगी न? अन्धविश्वासी और ईश्वरपरायण व्यक्ति, दोनोंमें साम्य है। दोनोंके काम हास्यास्पद होते हैं और दोनोंका विश्वास अदृश्यपर होता है। जहाँ कोई निश्चय न हो सकता हो, जहाँ सिद्धान्तकी बात न हो वहाँ जो व्यक्ति ईश्वरके दिये हुए समयको बेकार सोचने-विचारनेमें बर्बाद करता है वह या तो अभिमानी होता है अथवा मूर्ख होता है। मैं मूर्ख नहीं हूँ और न अभिमानी ही हूँ। मैं तो ईश्वरपरायण व्यक्ति हूँ इसलिए मित्रोंके झगड़ेको टालनेके लिए चिट्ठी डालकर समय बचाया। मसूरी जाऊँ तो क्या? न जाऊँ तो क्या? नदीमें रहना और मगरसे वैर करना, यह बात जैसे अनुचित है वैसे ही हिन्दुस्तानमें रहना और बारह महीने ठण्ड ढूँढ़नेका प्रयत्न करना है।

बापूके आशीर्वाद

श्रीयुत नाजुकलाल नन्दलाल चौकसी
राष्ट्रीय केळवणी मण्डल
भड़ौच

•गुजराती पत्र (एस० एन० १२१२७ ए) की फोटो-नकलसे।

४४९. दक्षिण आफ्रिका

भारत सरकारने दक्षिण आफ्रिकामें जो कूटनीतिक विजय पाई है, उसपर उसका प्रसन्न होना हर तरहसे वाजिब है। अन्यत्र मैंने यह दिखाया[1] है कि सी० एफ० एन्ड्रयूजकी असाधारण निष्ठा और परिश्रमके बिना दक्षिण आफ्रिकामें कुछ भी नहीं किया जा सकता था। फिर भी, अगर भारत सरकारने भारतीयोंके दावेकी पैरवी करनेमें तनिक भी शिथिलता दिखाई होती तो निस्सन्देह दक्षिण आफ्रिकी संघ संसदने क्षेत्र संरक्षण विधेयक पास कर दिया होता। यह बहुत ही बड़ी उपलब्धि है कि विधेयकको फिलहाल स्थगित कर दिया गया है और एक सम्मेलन बुलानेपर सहमति हो गई है।

लेकिन, दूधमें एक मक्खी भी पड़ी हुई है। संघ सरकारने एक शर्त रख दी कि सम्मेलन द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव ऐसा होना चाहिए "जिसके अन्तर्गत उचित और वैध उपायोंसे पाश्चात्य जीवन-स्तरको सुरक्षा प्रदान की जा सके।" भारत सरकारने इस शर्तको स्वीकार कर लिया। इस शर्तके कारण न्यायोचित हल असम्भव हो जा सकता है। "पाश्चात्य जीवन-स्तरको सुरक्षा प्रदान करने" या "उचित और वैध उपायों"का मतलब क्या है? उदाहरणके लिए, सुरक्षा प्रदान करनेका मतलब यह भी हो सकता है कि बागानोंमें काम करनेवाले गिरमिटिया भारतीय, जिन्हें शायद प्रतिमास ३० शिलिंग मिलते हैं, यूरोपीय कारीगरोंकी तरह ईंटके बने पाँच-पाँच कमरोंके मकानोंमें रहें, सिरसे पैरतक यूरोपीय पोशाकें पहनें और यूरोपीय खाना खायें; और "वैध तथा उचित उपायों"का मतलब यह हो सकता है कि आर्थिक और सफाई-सम्बन्धी ऐसे उचित कानून बनाकर, जो सबपर समान रूपसे लागू हों, सभी लोगोंसे स्वास्थ्य और सफाई विषयक आवश्यकताओंके अनुरूप अच्छे जीवन-स्तरका पालन कराया जाये और सारे कारोबारका नियमन यूरोपीय मानदण्डको ध्यानमें रखकर किया जाये। इस दूसरी व्याख्यापर भारतीयोंको कोई आपत्ति नहीं होगी और न होनी चाहिए। इस बातपर उन्होंने कभी कोई आपत्ति की भी नहीं है कि वे सफाई या आर्थिक जीवन-सम्बन्धी सामान्य अपेक्षाओंको पूरा करें।

किन्तु अभी-अभी जो पत्र-व्यवहार प्रकाशित हुआ है, उससे मैं समझ सकता हूँ कि संघ-सरकार क्या चाहेगी। वह भारतीयोंको स्वदेश लौटाना चाहती है, उनके रहन-सहनमें सुधार नहीं चाहती है। अगर भारत सरकार इस प्रश्नपर उसकी इच्छाका विशेष ख्याल रखते हुए विचार करनेको तैयार नहीं होती तो संघ सरकार ऐसे किसी सम्मेलनके आयोजनमें शरीक नहीं होगी। लॉर्ड रीडिंग इस कठिनाईसे बड़ी चतुराईके साथ निकल गये। उन्होंने कह दिया कि जिस भारतीय राहत अधिनियम (इंडियन रिलीफ ऐक्ट)पर विचार-विमर्श किया जा रहा है, उसमें भारतीयोंके स्वेच्छासे स्वदेश लौटनेकी जैसी मर्यादित योजना है, वैसी किसी योजनापर मुझे कोई आपत्ति

१. देखिए "वक्तव्य: दक्षिण आफ्रिकाकी समस्यापर", २४-४-१९२६।

नहीं है। संघ सरकार इस बातपर आग्रह नहीं कर सकती थी कि स्वदेश-वापसीकी अमुक योजना पहलेसे ही स्वीकार कर ली जाये। निदान, उसने "पाश्चात्य जीवन-स्तर" का यह नया सूत्र ढूंढ निकाला। ऊपरसे देखनेमें तो यह शर्त बहुत निर्दोष है, लेकिन, जैसा कि मैं दिखा चुका हूँ, इसके सहारे ऐसी शर्तें भी पेश की जा सकती हैं जिनका पालन करना असम्भव हो। इसलिए बहुत-कुछ इस बातपर निर्भर करेगा कि दोनों पक्ष क्या-क्या माल-मसाला लेकर सम्मेलनमें जाते हैं और भारत सरकार कितनी ताकत दिखाती है। अबतक तो वह यही करती आई है कि जहाँ-कहीं विवाद हुआ, उसने भारतीयोंकी माँगोंपर आग्रह करना छोड़ दिया और इसीको बहुत श्रेयकी बात माना कि संघ-सरकार जो-कुछ करना चाहती थी, वह सबका-सब उसने उसे नही करने दिया। यह तो वैसा ही हुआ जैसे कोई कहे कि अमुक मामलेमें न्यायाधीशने चोरके पास चोरीका सारा माल नही रहने दिया। यह नहीं भूलना चाहिए कि दक्षिण आफ्रिकी सरकारने भारतीय अधिवासियोंको हर बार, स्पष्टतः बिना किसी उचित कारणके, दक्षिण आफ्रिकाके शान्तिप्रिय नागरिकोंके रूपमें उनके न्यायोचित अधिकारोसे वंचित करनेकी ही कोशिश की है। इसलिए अगर भारत सरकार अपने दायित्वके प्रति ईमानदार होती तो आज उसे यह दिखा सकना चाहिए था कि उसने ऐसे हर प्रसंगपर हारी हुई बाजी जीत ली। किन्तु, तथ्य यह है कि अगर १९०७ में इन अधिवासियोंने कानूनको एक तरहसे अपने हाथमें न ले लिया होता तो वे अपना सब-कुछ खो बैठते और उनके इस सर्वस्व-अपहरणके षड्यन्त्रमें भारत सरकार मौन सहमति देनेकी भागी होती। कारण, भारत सरकार और साम्राज्य-सरकार तो १९०७ के उस नृशंस एशियाई अधिनियमपर पहले ही सहमति दे चुकी थीं, जिसे तत्कालीन उपनिवेश-मन्त्री लॉर्ड एलगिनने १९०६में अपने निषेधाधिकारका प्रयोग करके अस्वीकार कर दिया था। इसलिए, यद्यपि इस विधेयकका स्थगित किया जाना और सम्मेलन बुलानेपर सहमत हो जाना इस संघर्षकी एक बहुत बडी सफलता है, लेकिन अगर ठीक मौका आनेपर भारत सरकार ढीली पड गई तो इस लाभको विफल प्रयत्न ही माना जायेगा।

इसलिए, अगर इस लाभको गँवा नही देना है तो जनताके लिए यह बहुत आवश्यक है कि वह सदाकी भाँति सतर्कतासे काम ले। बीचमें जो समय मिल गया है, उसका पूरा-पूरा उपयोग करके इस समस्याका बारीकीसे अध्ययन करना चाहिए और इस बातको सिद्ध करनेके लिए प्रमाण जुटाना चाहिए कि अगर भारतीय अधि-वासियोंका कोई अपराध साबित्त किया जा सकता है तो वह यह कि वे जन्मसे एशि-याई हैं और उनकी चमड़ी रंगदार है। यह एक कानूनी अपराध है। कारण, सार-रूपमें देखें तो दक्षिण आफ्रिकी संविधान यही तो कहता है कि "गोरी जाति और रगदार तथा एशियाई जातियोंके बीच कोई समानता न्ही हो सकती।" दक्षिण आफ्रिका जन्मपर आधारित जाति-भेदमें उतना ही विश्वास करता है जितना हम भारतीय लोग करते हैं।

और अन्तमें, मैं एक बार फिर वही बात कहूँगा जो इन स्तम्भोंमें पहले भी कह चुका हूँ अर्थात् प्रवासियोंकी मुक्तिका उपाय अन्ततः उन्हींके हाथोमें है। अगर

वे स्वयं उद्यम करेंगे तो भारत सरकार, जनमत, बल्कि संघ सरकार और दक्षिण आफ्रिकावासी गोरे भी उनकी सहायता करेंगे। अतः उनका कर्त्तव्य है कि वे स्वच्छता-सफाई, स्वास्थ्य अथवा आर्थिक जीवनके सम्बन्धमें अपने खिलाफ छोटीसे-छोटी शिकायतकी भी गुंजाइश न रहने दें। जो बातें अनैतिक नहीं हों, उन तमाम बातोंमें वे "जैसा देश वैसा वेश" वाली कहावत चरितार्थ करके दिखायें। वे एक हों और सदा एक होकर रहें और सबसे बड़ी बात तो यह है कि वे सबके हित-साधनके लिए कष्ट सहन करनेके संकल्प और दृढ़ताका परिचय दें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २९-४-१९२६

४५०. मार्चके आँकड़े

विभिन्न प्रान्तोंसे मार्च महीनेके खादीके उत्पादन और बिक्रीके जो आँकड़े प्राप्त हुए हैं वे नीचे दिये जा रहे हैं:[1]

कर्नाटकके आँकड़े अपूर्ण हैं। फरवरीकी तुलनामें स्थितिमें कोई विशेष अन्तर नहीं हुआ है, सिवा इसके कि दक्षिण महाराष्ट्र, बम्बई और उत्कलकी बिक्रीके आँकड़ोंमें फरवरीके मुकाबिले वृद्धि हुई है। दक्षिण महाराष्ट्रमें जो अपेक्षाकृत अधिक बिक्री दिखाई गई है, उसका कारण यह है कि उसके आँकड़ोंमें उन खादी प्रदर्शनियोंमें हुई बिक्रीके आँकड़े भी शामिल हैं जिनका आयोजन श्री पटवर्धन कर रहे हैं।

जिन प्रान्तोंके गत वर्षके मार्च महीनेके और इस वर्षके भी मार्च महीनेके आँकड़े उपलब्ध हैं, उन प्रान्तोंके इन दोनों आँकड़ोंकी तुलना करनेपर प्रकट होता है कि इस बार आम तौरपर उत्पादन और बिक्री दोनोंमें वृद्धि हुई है। तुलनात्मक आँकड़े नीचे दिये जा रहे हैं।[2]

तमिलनाडके १९२५के मार्चके बिक्रीके आँकड़े अपवादरूप हैं, क्योंकि उस समय वहाँ श्री भरूचाने खादीकी फेरी की थी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २९-४-१९२६.

१. ये यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं।
२. ये यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं।

४५१. अधिक लोग नहीं, गुणी और दृढ़ लोग चाहिए

मुझसे न जाने कितनी बार यह पूछा गया है कि जब हमारी संख्या ही इतनी कम है तो फिर हम क्या कर सकते है? देखिए न, चरखा सघमें कातनेवाले कितने कम लोग है? सत्याग्रही कितने कम है? पक्के असहयोगी कितने कम हैं? और शराबबन्दी चाहनेवाले भी कितने कम है? मुझे अफसोस है कि ये सब बातें बिलकुल सच है। परन्तु जब हम इसपर विचार करेंगे तो हमें मालूम होगा कि संख्यामें कुछ नही धरा है? अधिक उपयुक्त प्रश्न तो यह होगा कि देशमें सच्चे सत्याग्रही कितने हैं, सच्चे कातनेवाले कितने हैं, सच्चे असहयोगी कितने है और सच्चे अर्थोंमें शराबबन्दी चाहनेवाले कितने है? अन्तमें तो दृढ चरित्र, निश्चय और साहस ही निर्णायक होगा और कितना अच्छा होता कि मै यह कह सकता कि हमारे पास ४,००० सच्चे कतैये मौजूद हैं। सच्चा कतैया किसे कहा जा सकता है? जो केवल कातता ही है, वह सच्चा कातनेवाला नहीं है। यदि यही होता तो ४,००० कतैये ही नही, हमारे पास तो ४,००,००० कतैये मौजूद हैं। कातना ही काफी नही है। आवश्यक बात तो यह है कि भारतके दरिद्र लोगोकी खातिर नियमित रूपसे मजबूत और एकसार सूत काता जाये। इसलिए कताई परिश्रमका काम नहीं, बल्कि आनन्दका विषय होना चाहिए। चरखा संघका सदस्य बन जाना ही काफी नही है। दूसरोंको उसका सदस्य बननेके लिए कहना भी जरूरी है। सच्चा कतैया अपने जीवनमें क्रान्तिकारी परिवर्तन कर लेता है। वह सादगीके धर्मको समझता है, शारीरिक मेहनतकी गरिमाकी कद्र करता है और इस बातको स्वीकार करता है कि भारतको सबसे ज्यादा आवश्यकता स्वावलम्बी बननेकी है और इसके लिए जरूरी है कि करोड़ों लोग सादेसे-सादे औजारोंसे अपने घरमें जिस कामको कर सकते हों, उस कामको करें।

बताया जाता है कि जापानमें जो क्रान्ति हुई; वह हजारों मनुष्योंके कारण नही हुई थी परन्तु उसके नेता केवल बारह ही मनुष्य थे, जिन्होंने अपने उदाहरणसे पचपन आदमियोंके मनमें सच्चा उत्साह पैदा कर दिया था और शायद इन बारह मनुष्योंमें भी एक ही ऐसा मनुष्य था जिसने क्रान्तिकी सारी योजना बनाई थी। यदि ठीक आरम्भ कर दिया जाये तो फिर बाकी सब बातें तो बड़ी आसान होती है। इसलिए हम इसी निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि कोई भी सुधार आरम्भमें चाहे जितना असम्भव प्रतीत हो, उसे सम्पन्न करनेके लिए एक ही व्यक्ति पर्याप्त होता है। यह बात आश्चर्यजनक तो है ही लेकिन साथ ही बिलकुल सच भी है। चाहे पुरस्कार स्वरूप उस व्यक्तिको उपहास, तिरस्कार और मृत्यु ही मिले और अकसर यही सब मिलता भी है। किन्तु उसकी मृत्यु भले ही हो जाये, उसका आरम्भ किया हुआ वह सुधारका कार्य कायम रहता है और वह आगे बढ़ता रहता है। वह अपने खूनसे उसकी जड़को पक्की बना देता है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि कार्यकर्त्तागण शक्तिकी

ओर कोई ध्यान दिये बिना संख्याकी बात सोचनेके बजाय उस शक्तिके विषयमें सोचें जो थोड़े-से दृढ़ और लगनवाले व्यक्तियोंमें है। विस्तारसे अधिक गहराईकी आवश्यकता है। अगर हम पक्की नींव डालेंगे तो भावी पीढ़ी उसपर ठोस इमारत खड़ी कर सकेगी, लेकिन अगर हम नींव ही रेतपर डालेंगे तो फिर भावी पीढ़ीके सामने नई और पक्की नींव डालनेके लिए उस रेतको खोदकर निकालनेके अलावा और क्या चारा रह जायेगा?

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २९-४-१९२६

४५२. टिप्पणियाँ

सच्चा परोपकारी व्यक्ति

दक्षिण आफ्रिकी सरकारका निर्णय प्रकाशित होनेसे पूर्व ही दक्षिण आफ्रिकी भारतीय कांग्रेस, डर्बनके मन्त्रीकी ओरसे मुझे निम्नलिखित तार मिला:

> कांग्रेसकी यह बैठक श्री एन्ड्रयूजको दक्षिण आफ्रिका भेजनेके लिए आपको धन्यवाद देती है और आपके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती है। उन्होंने बड़ी ही नेकी और मेहनतसे काम करके दोनों जातियोंकी भावनाओंको काफी बदल दिया है। हमारी यही कामना है कि वे दीर्घायु हों और मानवताकी सेवाका अपना यह शुभ कार्य जारी रखें।

श्री एन्ड्रयूजकी दक्षिण आफ्रिकाकी इस अविश्रान्त यात्राके दौरान लोगोंने इस तरहके और भी बहुत-से तार भेजे, लेकिन मैंने उनको प्रकाशित नहीं किया। किन्तु, मुझे लगा कि अब उक्त तारका प्रकाशन रोक रखना ठीक नहीं है—विशेषकर उनकी यात्राके जो सुफल निकले हैं, उनको देखते हुए। मैं जानता हूँ कि इस निःस्वार्थ अंग्रेजकी सेवाओंके महत्त्वको लोगोंने बराबर ठीक-ठीक नहीं समझा है। श्री एन्ड्रयूज कोई कूटनीतिज्ञ नहीं है, इसलिए वे जो भी तार भेजते हैं, वे उनके दिन-प्रतिदिनके विचार और भावनाओंके सच्चे प्रतिबिम्ब होते हैं। इसलिए, हम उन्हें कभी निराश देखते है तो कभी अत्यन्त आशान्वित; लेकिन वे पिछले कुछ महीनोंसे जो तार भेजते रहे है, उन्हें अगर कोई एकत्र करके धैर्यपूर्वक देखे तो पायेगा कि आशाकी एक शृंखला बराबर बनी हुई है—जहाँ संशयवादियोंके लिए आशाका कोई आधार नहीं होता वहाँ भी यह शृंखला टूटी नहीं है। अपने आखिरी तारमें, जो उन्होंने दक्षिण आफ्रिकासे रवाना होनेसे पहले भेजा है, वे कहते है कि आशा मत छोड़िए, क्योंकि मुझे पूरी आशा है। अगर उनको भारतीय पक्षकी न्याय्यतामें विश्वास है तो दक्षिण आफ्रिकी राजनयिकोंमें भी कुछ कम नहीं है। एन्ड्रयूज विशुद्ध मानवतावादी व्यक्ति हैं, इसलिए वे सबका विश्वास करके चलते हैं। भले ही सारी दुनिया उनके साथ

छल करे; वे तो तब भी यही कहेंगे कि "ऐ मानव! तुम्हारे तमाम दोषोंके बावजूद मुझे तुमसे प्यार है।" और उनका यह मानव-प्रेम उन्हें भेदकी समस्त दीवारोंको लाँघकर लोगोंके हृदयमें सीधे प्रवेश करनेकी सामर्थ्य देता है। दक्षिण आफ्रिकामें भी, जहाँ दूसरोंको शायद दुत्कार दिया जाता, लोगोंने उनकी बात बहुत अच्छी तरह सुनी। उन्होंने पैडिसन शिष्टमण्डलके लिए रास्ता तैयार किया।

पैडिसन शिष्टमण्डलका उल्लेख हुआ है तो मैं यहाँ इतना और बता दूँ कि शिष्टमण्डलके प्रस्थानके समय श्रीयुत च० राजगोपालाचारीने श्री पैडिसनकी प्रशंसामें जो शब्द कहे थे, उनकी पुष्टि दक्षिण आफ्रिकाके एक भाईके पत्रसे भी होती है। उन्होंने वहाँसे लिखा है कि:

> वे जन्मसे अंग्रेज हैं, किन्तु उनका दृष्टिकोण भारतीय है। सच तो यह है कि मुझे उनके और श्री एन्ड्रयूजके बीच कोई फर्क ही नहीं दिखाई देता। यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि उनके-जैसा प्रतिभावान् व्यक्ति मात्र मद्रासके श्रम-आयुक्तके पदतक ही पहुँच पाया है। बहरहाल मैं यह कहनेकी स्थितिमें नहीं हूँ कि इसका कारण भारतके प्रति उनकी तीव्र सहानुभूति ही है या और कुछ।

मुझे जितने भी सूत्रोंसे जानकारी मिली है, सबसे यही प्रकट होता है कि शिष्टमण्डलके सदस्योंने अपने कर्तव्यका पालन बहुत अच्छी तरह और पूरी ईमानदारीके साथ किया है। लेकिन, श्री एन्ड्रयूजने जमीन तैयार करनेका जो काम किया और इस दिशामें जितना परिश्रम किया उसके बिना इस शिष्टमण्डलने जितना काम किया, उसका आधा भी न कर पाता।

अस्पृश्यताके चंगुलमें

त्रावणकोरमें सत्याग्रह हुआ था, इसलिए वहाँ फैली अस्पृश्यता और अनुपगम्यता (अनएप्रोचेबिलिटी) के बारेमें हमने बहुत-कुछ सुना है। कष्टसहन रूपी दीपशिखा त्रावणकोरकी गन्दगीको तो प्रकाशमें ले आई, लेकिन लगता है, यह गन्दगी त्रावणकोरसे भी ज्यादा कोचीनमें है। वहाँ कोचीन विधान-सभामें इस आशयका एक प्रस्ताव पेश करनेकी बार-बार कोशिश की गई कि कोचीन राज्य सार्वजनिक सड़कोंके उपयोगके लिए अस्पृश्योंपर लगे प्रतिबन्धको समाप्त करे। किन्तु, यह प्रस्ताव पेश करनेकी अनुमति कभी नहीं दी गई।

एक लगनशील सदस्यने कोचीन विधान-सभामें यह प्रश्न पूछा कि 'ऐसे कितने तालाब और कुएँ अस्पृश्योंके उपयोगके लिए बन्द है, जिनका इन्तजाम सरकार अथवा नगरपालिकाओंके पैसेसे किया जाता है?' उत्तरमें बताया गया कि ऐसे तालाबोंकी संख्या ६१ है और कुँओंकी १२३। अगर पूरक प्रश्न पूछकर यह जाननेकी कोशिश की जाती कि कितने कुँओं और तालाबोंका उपयोग अस्पृश्य लोग कर सकते हैं तो अच्छा होता।

दूसरा प्रश्न यह था कि लोक-निर्माण-कार्य विभाग द्वारा बनायी गई और उसीके रख-रखावमें रहनेवाली कुछ-एक सड़कोंका उपयोग अस्पृश्योंके लिए किस आधार

पर बन्द कर रखा गया है?' कोचीन सरकारने निर्लज्ज भावसे जो कारण बताये, वे इस प्रकार थे; ये सड़कें मन्दिरों और राजमहलके बहुत पास पड़ती हैं। अतीतसे चली आ रही रूढ़िको एकाएक नहीं तोड़ा जा सकता। पुराने रीति-रिवाजोंका खयाल तो रखना ही है। पाठक इस 'राजमहल' शब्दपर ध्यान दें। इससे तो कोई भी यही निष्कर्ष निकालेगा कि पंचमोंको व्यक्तिशः जाकर राजाको अपना निवेदन सुनानेका अधिकार नहीं है, क्योंकि उनका राजमहलमें प्रवेश करना तो दूर रहा, वे उसके आसपासकी सड़कोंपर भी कदम नहीं रख सकते। जिन अधिकारियोंने यह क्रूरतापूर्ण उत्तर दिया वे सब योग्य, शिक्षित और सुसंस्कृत लोग हैं, और जीवनके अन्य क्षेत्रोंमें उनके दृष्टिकोण काफी उदार भी हैं, लेकिन वे एक क्रूरतापूर्ण, निष्ठुर और धर्म-विरुद्ध प्रथाको मात्र इस आधारपर उचित साबित करते हैं कि वह प्रथा पुराने जमानेसे चली आ रही है।

कानूनकी किताबें तो हमें यही सिखाती हैं कि अपराधों और अनैतिकताओंके पक्षमें कोई ऐसी दलील नहीं चल सकती कि ये तो समाजमें पुराने जमानेसे प्रचलित हैं। उनके पुराने जमानेसे प्रचलित होनेसे ही वे सम्माननीय नहीं हो सकते। लेकिन, स्पष्ट है कि कोचीन राज्यमें बात इससे उलटी है। इस बातसे कौन इनकार कर सकता है कि अस्पृश्यता एक अनैतिक, बर्बर और क्रूरतापूर्ण प्रथा है? इस प्रकार कोचीन राज्यके कानून एक तरहसे दक्षिण आफ्रिकाके कानूनोंसे भी बहुत खराब हैं। दक्षिण आफ्रिकाका परम्परागत कानून गोरी और रंगदार जातियोंके बीच समानताको स्वीकार करनेके लिए तैयार नहीं है। कोचीनका परम्परागत कानून जन्मके आधारपर एक वर्ग विशेषको असमानताका पात्र मानता है। लेकिन कोचीनमें बरती जानेवाली असमानता दक्षिण आफ्रिकामें बरती जानेवाली असमानताकी तुलनामें लाख दर्जे अमानवीय है। कारण, दक्षिण आफ्रिकामें किसी रंगदार व्यक्तिको जितने मानवीय अधिकारोंसे वंचित रखा जाता है, कोचीनमें अस्पृश्योंको उससे कहीं अधिक अधिकारोंसे वंचित रखा जाता है। दक्षिण आफ्रिकामें किसी रंगदार व्यक्तिका किसी गोरेके पास न फटकने या उसकी दृष्टिसे दूर रहने जैसा तो कोई प्रतिबन्ध नहीं है। यहाँ मेरी इच्छा यह दिखानेकी नहीं है कि अकेले कोचीनमें ही अस्पृश्योंके साथ ऐसा अशोभन व्यवहार किया जाता है। सच तो यह है कि दुर्भाग्यवश आज भी भारत-भरमें हिन्दुओंका कमोबेश यही हाल है। लेकिन, कोचीनमें अस्पृश्यताको तथाकथित धार्मिक विधानकी मान्यता प्राप्त होनेके अलावा राज्यकी मान्यता भी प्राप्त है। इसलिए वहाँ जनमतको जागृत-भर कर देनेसे कुछ बन-बिगड़ नहीं सकता; वहाँ तो जनमतको इतना प्रबल होना होगा कि वह राज्यको इस बर्बर प्रथाको खत्म करनेके लिए बाध्य कर सके।

सुधारकी गुंजाइश

अखिल भारतीय चरखा संघके तकनीकी विभागके प्रबन्धकने नियमित रूपसे सूत भेजनेवाले निम्नलिखित कतैयोंके नाम[1] भेजे हैं। इन सबके सूत २५ से अधिक अंकके हैं और इनके सूतकी लच्छियाँ भी बहुत अच्छे ढंगसे बनी हुई हैं।

१. नामोंकी यह सूची यहाँ नहीं दी जा रही है।

पाठक देखेंगे कि इस तालिकामें सबसे ऊपर उस व्यक्तिको रखा गया है, जिसने ४६ अंकका सूत काता है। जिस व्यक्तिने सबसे ऊँचे अंकका सूत काता है, उसका नाम अन्तिम नामके ठीक ऊपर आता है। किसी समय कताई प्रतियोगितामें सर्वप्रथम आनेवाली अपर्णादेवीको १९वें स्थानपर रखा गया है, यद्यपि उन्होंने ११३ अंकका सूत काता है। तालिकाके साथ निम्नलिखित टिप्पणी भेजी गई है:

> इन सूतोंको इनकी सफाई और एकरूपताके कारण बुनकर अलग कर लिया गया है, लेकिन इनमें से अच्छेसे-अच्छा सूत भी मिलके सूतकी बराबरी नहीं कर सकता।

इसलिए इन अच्छे अंकोंके सूतोंको आसानीसे नहीं बुना जा सकता। इसलिए ऊपरकी तालिका प्रकाशित करनेके पीछे इन कतैयोंको प्रोत्साहन देनेका जितना खयाल रहा है उतना इस बातका नहीं कि लोग इसे एक उदाहरण मानकर उसका अनुकरण करें। चूंकि ये कतैये अपने हिस्सेका सूत अधिक नियमित रूपसे भेजते रहे हैं और इन्होंने काफी उद्यम और लगनका परिचय दिया है, इसलिए उनसे अनुरोध है कि ये अधिक कौशलसे भी काम लें ताकि वे आजकी अपेक्षा अधिक मजबूत सूत कात सकें।

श्रीयुत लक्ष्मीदास पुरुषोत्तम अब यह सिद्ध करनेके लिए प्रयोग कर रहे हैं कि अगर अच्छी रूई हो और धुनाई अच्छी तरह की गई हो तो ऐसा अच्छा सूत कातना सम्भव है जो उसी अंकके मजबूतसे-मजबूत मिलके सूतको मात दे सके। आशा है, इन प्रयोगोंके परिणाम मैं जल्दी ही प्रकाशित कर सकूंगा। इस बीच उक्त २७ कतैयोंसे यह अपेक्षा की जायेगी कि वे भी प्रयोग करें और आजतक जैसा सूत भेजते रहे हैं, उससे अधिक मजबूत सूत भेजें। मुझे आशा है कि वे इस बातको समझते होंगे कि सूतका तार खीचते समय ही बट देना चाहिए, न कि हर बार तार खीच लेनेके बाद। वे यह भी समझते होंगे कि सूतको फिरकीपर से उतारनेसे पहले उसपर पानीका छिड़काव कर देना चाहिए और जबतक नमी सूतमें समा न जाये तबतक उसे फिरकीपर से उतारा न जाये।

पूर्ण मद्य-निषेध

एक सज्जन लिखते हैं:[1]

> शराबकी दुकानें बन्द करनेके लिए मैं ग्रामवासियोंको बधाई देता हूँ। लेकिन, अगर इसी बातके लिए जनमत संग्रह किया जाता तो पंजाबकी ही तरह शायद बहुत कम लोगोंने अपने मत देनेकी तकलीफ उठाई होती। इसके लिए व्यक्तिगत रूपसे समझाकर उन्हें तैयार करना जरूरी होता।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २९-४-१९२६

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने सूचित किया था कि अमुक गाँवोंमें शराबकी दुकानें बन्द हो जानेसे लोग अत्यन्त प्रसन्न हैं।

४५३. बंगाल सहायता समिति

एक सज्जनने 'वेलफेयर' की एक कतरन भजी है, जिसमें बगाल सहायता समितिके कार्योंपर टिप्पणी की गई है। इस लेखमें समितिकी रिपोर्टकी समीक्षा की गई है। पत्र-लेखक कहते हैं:

> चूँकि इस लेखमें सहायताके उपायोंके रूपमें खादी संगठनोंकी उपादेयता-पर गम्भीर शंका उठाई गई है, इसलिए मैं आपसे निवेदन करूँगा कि आप सर प्रफुल्लचन्द्र राय या खादी प्रतिष्ठानसे तथ्यों और आँकड़ोंके साथ अपना स्पष्टीकरण देनेका अनुरोध करें। मैं इतना और बता देना चाहता हूँ कि मैं बराबर खादी ही पहनता हूँ, यद्यपि यह कहते हुए दुःख होता है कि खुद सूत नहीं कातता। वैसे मेरे परिवारकी कुछ स्त्रियाँ कातती हैं। यह सब बात आपको यह विश्वास दिलानेके लिए लिख गया कि खादीके खिलाफ मेरे मनमें कोई पूर्वग्रह नहीं है।

लेकिन स्पष्टीकरण देना अनावश्यक था। स्वाभाविक है कि श्रीयुत रामानन्द चटर्जीकी पत्रिकामें प्रकाशित किसी भी चीजको लोग महत्त्व देंगे और उसपर उनका ध्यान जायेगा ही। इसलिए मैंने वह कतरन और पत्र तुरन्त श्रीयुत सतीशचन्द्र दासगुप्तको भेज दिया और उन्होंने बड़ी तत्परताके साथ डॉ० रायके और अपने हस्ताक्षरोंसे युक्त निम्नलिखित स्पष्टीकरण[1] भेज दिया है। यहाँ 'वेलफेयर' के लेखको उद्धृत करनेकी जरूरत नहीं है क्योंकि उस लेखमें, जो शंकाएँ उठाई गई हैं, उनका सार डॉ० रायके उत्तरमें आ गया है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २९-४-१९२६

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

४५४. पत्र : अब्बास तैयबजीको

साबरमती आश्रम
३० अप्रैल, १९२६

मेरे जवान दोस्त भुर्रर्र

जवानीके जोशसे भरा आपका खत मिला। कुछ लोग साल-दर-साल बूढ़े होते जाते हैं, पर आपकी उलटी हालत है। मुझे आपसे रश्क होता है और अब तो मुझे लोगोंसे कहना ही पड़ेगा कि ज्यों-ज्यों आपकी दाढ़ी सफेद होती जाती है, त्यों-त्यों आप जवान होते जा रहे हैं। खुदा करे, ऐसा एक लम्बे अर्सेतक चलता रहे।

आबोहवाकी तब्दीलीके लिए और सलाह-मशविरा करनेके खयालसे आप चाहे तो अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें जरूर आयें, खास तौरसे जब आप इतने नजदीक हैं। आप अपने दौरेको दो-तीन दिनोंके लिए मुल्तवी कर सकते हैं।

मैं उम्मीद करता हूँ कि रामदासके बारेमें आप जो-कुछ कहते हैं, वह वाकई सही है। मैं जानता हूँ कि वह एक अच्छा तीमारदार है और वह बुजुर्गोंकी — माफ कीजिए, जहाँतक आपका ताल्लुक है, आप जैसे जवानोंकी तीमारदारी अच्छी तरह कर सकता है।

यहाँ अब गर्मी पूरे जोरसे शुरू हो गई है।

आपका,
मो० क० गांधी

श्री अब्बास तैयबजी
वढवान सिटी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ९५५४) की फोटो-नकलसे।

४५५. पत्र : प्यारेलाल नय्यरको

साबरमती आश्रम
३० अप्रैल, १९२६

प्रिय प्यारेलाल,

तुम्हारा तो कोई पत्र ही नहीं मिला है। मुझे इस तरह अन्देशेमें मत रखो। तुम्हारा स्वास्थ्य कैसा है और तुम अपना समय किस तरह बिताते हो?

कताई-सम्बन्धी निबन्धके विषयमें मैं वरदाचारी और गणेशनके साथ पत्र-व्यवहार कर रहा हूँ। इसलिए निबन्ध तुमको नहीं भेजा है। लेकिन पूरी प्रति तैयार होनेपर भेज दूँगा। सुब्बैया आजकल उसीमें लगा हुआ है।

मथुरादासका पत्र मिला है। सिंहगढ़ और माथेरानमें से मुझे तो सिंहगढ़ ही ज्यादा पसन्द है। फिर, श्री अम्बालाल यहाँ हैं भी नहीं। अगर जरूरी हो तो बेशक मैं उनका पता ढूँढ़कर उन्हें तार करके यह जाननेकी कोशिश करूँ कि उनका बंगला मिल सकता है या नहीं। इसलिए अगर डॉ॰ मेहता माथेरान जानेके पक्षमें हों और अगर अम्बालालके बंगलेकी जरूरत हो तो तुम मथुरादाससे बात करके मुझे तार कर दो।

तुम्हारा,

श्रीयुत प्यारेलाल नैय्यर
देवलाली

अंग्रेजी प्रति (एस॰ एन॰ १९५१०)की माइक्रोफिल्मसे।

४५६. पत्र : उर्मिलादेवीको

साबरमती आश्रम
३० अप्रैल, १९२६

प्रिय बहन,

आपका पत्र मिला। मेरे स्वास्थ्यकी चिन्ता न करें। पिछले सप्ताह मेरा वजन एक पौंड बढ़ा है। गर्मीसे मुझे कोई परेशानी नहीं होती, यद्यपि इस समय तो हम वास्तवमें गर्मीसे झुलस रहे हैं।

आपने अपने अस्पतालका जो विवरण भेजा है, उसे पढ़कर प्रसन्नता हुई। विवरणके आनेमें देरी होनेसे मैं कुछ परेशान-सा हो गया था। जब आप डॉ॰ विधानसे[1] मिलें तो उनसे मेरा नमस्कार कहें और उन्हें बधाई दें। मुझे खुशी है कि आप

१. डॉ॰ विधानचन्द्र राय।

इस कार्यमें इतनी दिलचस्पी ले रही हैं। यदि आप अस्पतालके काममे लग सकें तो बहुत अच्छा हो। यह काम करने लायक है। जब और बहुत चीजें भुला दी जायेंगी तब भी देशबन्धुका यह स्मारक याद किया जायेगा। यदि यह अस्पताल कलकत्ताके जीवनमें एक जीवन्त शक्ति बन जाये तो उनकी[1] स्मृति अधिक बलवती होगी।

मैं आपको अ० भा० कां० कमेटीकी बैठकमें साबरमती आनेका प्रलोभन नहीं दूंगा। मैं नहीं समझता कि आप यहाँकी खुश्क गर्मीको सहन कर सकेंगी, पर पूजाकी छुट्टियोंमें, जब यहाँ वर्षाका मौसम जोरोंपर होगा, यहाँ आना बहुत अच्छा रहेगा। तब आप जितने लम्बे समयतक चाहें यहाँ रुक सकती हैं और यदि कलकत्तेमें आपकी आवश्यकता नहीं हुई तो आप असम जानेतक भी यहाँ रह सकती हैं।

आपका,

श्रीमती उर्मिला देवी
कलकत्ता

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५११) की फोटो-नकलसे।

४५७. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

साबरमती आश्रम
३० अप्रैल, १९२६

प्रिय सतीश बाबू,

आपका पत्र मिला, साथमें बौद्ध धर्मपर लिखी पुस्तक भी। आपने बड़ी सावधानी और सफाईसे, जो आपकी अपनी खूबियाँ हैं, उसके जरूरी पृष्ठोंपर निशान लगा दिये हैं। जिस दिन पुस्तक मिली, उसी दिन मैं इन पृष्ठोंको अच्छी तरह पढ़ गया — किसी और कारणसे नहीं तो इसीलिए कि आपने मेरे लिए जरूरी पृष्ठोंको जिस प्रकार करीनेसे बाँध दिया था, वह मुझे बहुत अच्छा लगा।

मगर हेमप्रभा देवीके बारेमें तो आपने अबतक मुझे कुछ नहीं बताया। क्या बात है?

आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५१२) की माइक्रोफिल्मसे।

१. देशबन्धु चित्तरंजन दासकी।

४५८. पत्र : एस्थर मेननको

साबरमती आश्रम
३० अप्रैल, १९२६

रानी बिटिया,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारे स्वास्थ्यके बारेमें सचमुच मुझे चिन्ता बनी रहती है। तुम्हें फिरसे पहलेकी तरह चुस्त और सशक्त हो जाना चाहिए। तुम्हारी गोद कब भरनेवाली है?

कुमारी पीटर्सनके स्कूलकी हालतके बारेमें सुनकर दुःख हुआ। तुमने जिन लड़कियोंके नाम लिखे थे, उनसे मुझे अभीतक कोई सूत नहीं मिला है। जितना चाहो उतना खादीका गूदड़ और इस्तेमाल की हुई मुलायम खादी तुम्हें मिल सकती है।[1] यदि मुझे बता दो कि तुम्हें कितनी खादी चाहिए तो मैं उतनी खादी भिजवा दूं। इस्तेमाल की हुई खादीका मूल्य तय कर पाना मुश्किल है। इसलिए तुम या तो जो-कुछ भेज सको, भेज दो अथवा कुछ भी न भेजो। जो खादी तुम मँगवाओ, उसका पैसा देनेके लिए तुम किसी दूसरी मदमें कटौती नहीं करना और न इस कारण, तुम्हें ठीक-ठीक जितनी खादीकी जरूरत हो, उतनेके लिए कहनेमें ही संकोच करना।

मेनन जिस प्रकार गरीब रोगियोंकी मदद कर रहा है, उसके बारेमें जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। जबतक तुम्हारा गुजारा चल रहा है तबतक उसके ऐसा करनेसे क्या बनता-बिगड़ता है? और सेवा-कार्य करते हुए यदि किसीका निर्वाह न भी हो पाये तो भी परवाह नहीं।

एन्ड्रयूज कल बम्बई पहुँच रहे हैं।

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजी-पत्रकी फोटो-नकल तथा माई डियर चाइल्डसे।
सौजन्य : नेशनल आर्काइव्ज ऑफ इंडिया

१. भावी शिशुके लिए पोतड़े, गद्दी आदि बनानेके लिए।

४५९. पत्र : गोपालकृष्ण देवधरको

साबरमती आश्रम
३० अप्रैल, १९२६

प्रिय देवघर,

आशा है, मनोरमा सकुशल सेवासदन पहुँच गई होगी। वह यहाँसे रविवारको चली थी। प्रबन्धकको यह नहीं मालूम था कि उसे बम्बईतक का किराया जमनालालजीसे पहले ही मिल चुका है, इसलिए उसने किरायेके लिए उसे १० रुपये दे दिये। अतएव आप कृपा करके उससे यह मालूम करें कि जब उसने वहाँ लौटनेकी सोची उस समय सेठ जमनालालजी द्वारा बम्बईतक के किरायेके लिए दिये गये करीब छः रुपयेका उसने क्या किया। यदि वह पैसा अब भी उसके पास हो तो उससे ले लीजिए और उसे आप सेवासदनके लिए रख लीजिए।

बेशक, मैं आपसे सहकारिता आन्दोलनके बारेमें चर्चा करना और इस तरह उसकी वास्तविक उपयोगिता समझना चाहूँगा। मैंने इसके बारेमें बिहारमें पंजीयक (रजिस्ट्रार) या शायद सहायक पंजीयक तथा सहकारिता आन्दोलनसे सम्बन्धित अन्य मित्रोंसे चर्चा की थी, लेकिन ऐसा पाया कि इसकी उपयोगिता बहुत सीमित है। उसके आगे इस आन्दोलनको जिस रूपमें चलाया जा रहा है, उस रूपमें उसका क्या राष्ट्रीय महत्त्व है, इस विषयमें वे लोग मुझे सन्तुष्ट नहीं कर सके हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत गोपालकृष्ण देवधर
पूना

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५१३) की फोटो-नकलसे।

४६०. पत्र : भूकनशरणको

साबरमती आश्रम
शुक्रवार, ३० अप्रैल, १९२६

भाई भूकनशरणजी,

आपका पत्र मीला और इसकी साथ १०० रु० की नोट भी मिली। उसका उपयोग चरखा और खादी-प्रचारमें करना चाहता हूँ, क्योंकि उसीके मारफत ज्यादा कंगाल लोगोंकी सेवा हो सकती है।

मूल प्रति (एस० एन० १९५१५) की माइक्रोफिल्मसे।

४६१. पत्र : नागरदास लल्लूभाईको

सावरमती आश्रम
३० अप्रैल, १९२६

भाईश्री ५ नागरदास,

आपका पत्र मुझे मिला था। काठियावाड़ और गारियाधारमें मजदूरी जिस दरसे दी जाती है वढ़वानमें उसकी दर कहीं अधिक है इसलिए खादी महँगी पड़ती है। आपने जो वर्णन किया है और फूलचन्दके साथ मेरी जो वातचीत हुई है उससे मैं देखता हूँ कि जो स्त्रियाँ चरखा कातती हैं वे भूखों नहीं मरतीं अथवा वेरोजगार नहीं हैं। वे कदाचित् देशहित समझकर और हमारे अनुरोधके कारण कातती हैं। चरखेकी कल्पना ऐसी स्त्रियोंके लिए नहीं है; उसके पीछे तो यह मान्यता है कि हिन्दुस्तानमें करोड़ों स्त्री-पुरुष अधपेट खाकर रहते हैं और यद्यपि उनका शरीर अच्छी तरह काम करने योग्य है फिर भी उन्हें कोई काम नही मिलता। चरखा आन्दोलनका केन्द्रविन्दु ऐसे लोगोंसे कतवाकर और उनके काते हुए सूतकी खादी वनाकर वेचना ही है। वढ़वानकी खादी इस कल्पनाकी पोषक नहीं है, ऐसा मुझे लगा है; और यदि ऐसा हो तो हमें वढ़वानका कार्य समेट लेना चाहिए। यदि ऐसा करना पड़ा तो जो खादी पड़ी है उसकी निकासी की जा सकती है। यदि दिन-भरके वाद साँझको दो पैसा लेकर कातनेवाली स्त्रियाँ मिलें, ढाई रुपये लेनेवाले धुनिये मिलें और अन्य स्थानोंपर वुननेके जो पैसे दिये जाते हैं, यदि उस भावसे वुननेवाले मिलें तो हमें इस कामको रखना चाहिए नही तो खत्म कर देना चाहिए। इस वारेमें अन्य कार्यकर्त्ताओंके साथ वातचीत करके उनकी राय मुझे वताना।

गुजराती प्रति (एस० एन० १०८७९)की माइक्रोफिल्मसे।

४६२. पत्र : हासम हीरजीको

सावरमती आश्रम
शुक्रवार, ३० अप्रैल, १९२६

भाईश्री ५ हासम हीरजी,

आपके पहले पत्रका अभी मैं उत्तर नहीं दे पाया और इस वीच दूसरा आ गया है। पहलेके मुख्य प्रश्नका उत्तर अवकाश मिलनेपर 'नवजीवन' में दूंगा। दूसरे का यहीं दिये देता हूँ।

अपरिग्रह आदर्श स्थिति है। कहा जा सकता है कि आदर्शको सम्पूर्ण रूपसे नहीं पाया जा सकता। लेकिन इस कारण आदर्शको हम छोटा वना लें, यह तो ठीक नहीं होगा। भूमितिकी आदर्श रेखाको कोई खींच नहीं सका है। किन्तु इस

कारण हम उसकी व्याख्या नहीं बदलते। आदर्श रेखाको ध्यानमें रखकर हम सीधी रेखा खींचें तो वह हमारा काम चला देती है। लेकिन यदि हम उसकी व्याख्याको बदल दें तो हम पतवारविहीन नौकाके समान हो जायें। धातुके रूपमें तो पैसेमें कोई पाप नहीं है। जो-कुछ है सो उसके उपयोगमें है। इतना याद रखकर हम शुद्ध हृदयसे जितनी दूरतक अपरिग्रहकी स्थितिको प्राप्त कर सकते हों, करें। आपने जिन उदाहरणोकीं कल्पना की है, आइये अब तनिक उनपर विचार करें। धनिक लोग विचारपूर्वक धनका त्याग करें तो उससे जगतकी तनिक भी हानि नही होगी। अपितु लाभ ही होगा। कारण, शुद्ध हृदयसे किये गये अपरिग्रहसे नवीन और ज्यादा शक्ति प्राप्त होती है। ये चीजें कोई यन्त्रवत् नही कर सकता। जिसके हृदयमें ये स्वयं प्रस्फुटित होती हैं, वही उन्हें करता है और उसीको ये शोभा देती हैं। समस्त ससारके अपरिग्रही बननेकी न तो सम्भावना है और न आशंका है। लेकिन मान लो कि ऐसा हो सकता है तो इस बारेमें मुझे तनिक भी शंका नही है कि उस स्थितिमें ससार अपना निर्वाह सुखपूर्वक करेगा। दुनियामें ऐसे लोग हैं जो एक दिनके लिए भी संग्रह नही करते; आप ऐसा मान लीजियेगा कि यदि इस जगतमें संग्रह करनेवाले व्यक्ति नही होंगे तो ऐसे परिग्रही मर जायेंगे।

जैसे सरकारी कानूनके अनुसार अनजानमें किया हुआ अपराध अपराध ही रहता है, वैसा ही दिव्य कानूनके बारेमें भी है। नशेकी धुनमें किया गया व्यभिचार भी व्यभिचार ही है। "माफी माँगना" और "माफी मिलना" ये दोनो सुन्दर वाक्य हैं। मैं इन दोनोका उपयोग करता हूँ लेकिन माफीका सामान्यत: जो अर्थ कर लिया जाता है वह यहाँ नहीं है, ऐसा मैं हमेशा मानता आया हूँ। माफी माँगनेकी हार्दिक स्थितिमें हममें नम्रता बढ़ती है। हम अपने दोष देख सकते हैं और उसमें से अच्छे बननेका बल प्राप्त करते हैं। अल्लाहके लिए हिन्दू, मुसलमान और ईसाइयो आदिने अनगिनत विशेषणोकी रचना की है लेकिन ये सब हमारी कल्पनाकी उपज हैं। ईश्वर विशेषण रहित है, गुणातीत है। लेकिन यह मैं आदर्शकी दृष्टिसे कह रहा हूँ। तथापि यदि इस आदर्शको हम न पहचानें और ईश्वरको हमने जिन विशेषणोसे अलकृत किया है, उन विशेषणोंको सर्वथा सत्य मान लें तो वह भी हमारे समान भूलोका पुतला बन जाये। इसीलिए इसे निरंजन, निराकार, समझकर हम अपनी इच्छानुसार उसमें विशेषणोंका आरोपण करनेका अधिकार प्राप्त करते हैं, क्योंकि उसने हमें यही भाषा दी है। बाकी कर्मोंका फल तो हमें भोगना ही होगा। यह उसका अनिवार्य विधान है और इसीमें कृपा निहित है। यदि वह मनुष्यकी भाँति पक्षपात करे अथवा भूल मालूम पड़नेपर भूल सुधारनेके लिए अपने कानून और हुकममें रद्दोबदल करता रहे तो यह जगत एक क्षणके लिए भी नही टिक सकता। ईश्वर-तत्त्व एक गूढ़, अवर्णनीय और अनोखी शक्ति है। वहाँतक हमारे विचार भी नही पहुँच सकते तब बेचारी वाणी क्या करे?

गुजराती प्रति (एस० एन० १०९०२) की फोटो-नकलसे।

४६३. पत्र : जयसुखलालको

सावरमती आश्रम
शुक्रवार, ३० अप्रैल, १९२६

चि० जयसुखलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। चि० मगनलालने जो टीका की है उसे मैं तुम्हारी जानकारीके लिए भेज रहा हूँ। लगता है, अब्बास साहब बहुत सुन्दर काम कर रहे हैं। मोटरके बारेमें रामजीभाईको क्या लिखूं? तुम्हारे लिखनेका भावार्थ मैं यह समझता हूँ कि रामजीभाई फिलहाल मोटरको वैसे ही रहने दें।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९५१६) की माइक्रोफिल्मसे।

४६४. पत्र : नगीनदासको

साबरमती आश्रम
शुक्रवार, ३० अप्रैल, १९२६

भाईश्री ५ नगीनदास,

तुम्हारा पत्र मैंने भाई दर्शनसिंहको भेजा था। उसका जवाब, उसके साथ आये डाक-टिकटों-समेत, तुम्हारी जानकारीके लिए भेज रहा हूँ। उन्हें मैंने सलाह दी है कि यदि वे पुस्तकोंको उपयोगी मानें तो फिर रुपया भेजकर मँगा लें।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९५१७) की माइक्रोफिल्मसे।

४६५. पत्र : निर्मलाको

साबरमती आश्रम
शुक्रवार, ३० अप्रैल, १९२६

चि० निर्मला,

तुम्हारा पत्र मिला। मेरी तबीयत अच्छी रहती है। मेरी लिखावट खराब है इसलिए और समय बचानेकी खातिर मैं बोलकर लिखाता हूँ। वजन बढ़ता जाता है। कल वजन लेनेका दिन था; १०५ हुआ है। बुआको तनिक भी घबरानेकी कोई बात ही नहीं है। तुमने लिखा है इसलिए यह पत्र काकूको नहीं पढ़वाऊँगा, यद्यपि इच्छा तो बहुत होती है। मैंने किरायेके लिए अधिकसे-अधिक १० रुपयेकी हद रखी है।

तकली और चरखेके बारेमें जमनादासको लिख रहा हूँ। जमनादास पूनियाँ देगा और उनका जो सूत हो, वह जमनादासको पहुँचाना क्योंकि उसे सारी रुईका

हिसाब रखना पड़ता है। मशीनकी बैठक टूट जानेके कारण उसे बेचनेकी कोई जरूरत नहीं है। बैठक तो थोड़े-से खर्चसे ठीक हो सकती है। रामी, कान्ति आदि आनन्दमें हैं। रसिक आबू गया है। मथुरादासका स्वास्थ्य ठीक है। देवदास फिलहाल यहीं है।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९५१८)से।

४६६. सन्देश : 'फ्रीडम' को

१ मई, १९२६

'फ्रीडम' (स्वतन्त्रता) किसी भी पत्रके लिए एक आकर्षक नाम है। लेकिन इस शब्दका काफी दुरुपयोग किया जाता है। जब गुलामका मालिक स्वतन्त्रताकी बात करता है तो हम जानते हैं कि उसकी नजरमें स्वतन्त्रताका अर्थ बिना किसी विघ्न-बाधाके अपने गुलामसे जैसा जी चाहे वैसा काम लेनेकी स्वतन्त्रता होता है। किसी शराबीकी स्तवन्त्रताका अर्थ यह है कि जबतक वह अपना होश न खो दे तबतक तथा उसके बाद भी बहुत देरतक वह पी सके। यह पत्र किसकी और कैसी स्वतन्त्रताका समर्थन करेगा, यह संगत प्रश्न है। पण्डित मोतीलालजी इसके संस्थापक हैं, यह अपने-आपमें इस बातका एक आश्वासन है कि यहाँ स्वतन्त्रताका अर्थ जन-साधारणकी स्वतन्त्रता है। और जनसाधारणकी स्वतन्त्रताका मतलब यह है कि वह, उसमें से जो करोड़ों लोगोंको आधा पेट खाकर जीनेकी स्थितिमें रह रहे हैं, उस स्थितिका मुकाबला कर सके और उसे दूर कर सके। इस समय स्वतन्त्रताका यही पहलू मुझे सबसे अधिक सुहाता है, क्योंकि जनसाधारणकी स्वतन्त्रतामें अछूतोंकी स्वतन्त्रता तथा विभिन्न धर्मावलम्बियोके बिना किसी रोक-टोकके अपनी धार्मिक मान्यताओंके अनुसार चलनेकी स्वतन्त्रता भी स्वभावतः निहित है। जबतक हाथ-कताईको पुनरुज्जीवित नहीं किया जाता और इसलिए जबतक खादीके जोरदार प्रचारको अपने कार्यक्रमका एक केन्द्रीय बिन्दु मानकर हम नहीं चलते तबतक जनसाधारणकी वैसी स्वतन्त्रता जैसी स्वतन्त्रताका मैंने वर्णन किया है, सर्वथा असम्भव है।

मै आशा करता हूँ कि 'फ्रीडम' अपने पाठकोंको जन-साधारणके जीवनके इस मुख्य तथ्यका राष्ट्रीय महत्त्व बराबर समझाता रहेगा; क्योंकि अगर हम स्वराज्य चाहते हैं तो हमें जनसाधारणसे तादात्म्य स्थापित करना ही होगा।

मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० १९५२३) की माइक्रोफिल्मसे।

४६७. पत्र : श्रीप्रकाशको

साबरमती आश्रम
१ मई, १९२६

प्रिय मित्र,

अबतक आपका पत्र मुझे नहीं मिल पाया है। साथमें 'फ्रीडम' के लिए लिखा अपना लेख[१] — अगर इसे लेख कहा जा सके तो — भेज रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत श्रीप्रकाश
सेवाश्रम
बनारस कैंट

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५२३) की माइक्रोफिल्मसे।

४६८. सन्देश : दक्षिण आफ्रिकासे एन्ड्रयूजकी वापसीपर

[१ मई, १९२६][२]

हम श्री एन्ड्रयूजका जो सबसे अच्छा स्वागत कर सकते हैं और जो स्वागत उनके मनको सबसे अधिक रुचेगा, वह यह है कि हम दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय प्रवासियोंके न्यायोचित अधिकारोंपर आग्रह रखकर और उन्हें वे अधिकार दिलाकर भारतके सम्मानकी रक्षा करनेका दृढ़ संकल्प करें। और यह काम हम तभी कर सकेंगे जब श्री एन्ड्रयूजकी असीम शक्ति, उद्यमशीलता, अदम्य साहस, अडिग आशा, ईश्वरमें जीवन्त आस्था और मानवीयता आदि गुणोंको अपने जीवनमें उतारें।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, १-५-१९२६

१. देखिए पिछला शीर्षक।
२. सी० एफ० एन्ड्रयूज इसी दिन बम्बई पहुँचे थे।

४६९. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

साबरमती आश्रम
१ मई, १९२६

प्रिय सतीश बाबू,

छोटालालजी आपके पास आ रहे हैं। बहुत ज्यादा कामके कारण उनकी मानसिक स्थिति बहुत तनावपूर्ण रहती है और उन्होंने अपने भोजनको अधिकसे-अधिक सादा और सस्ता बनानेके सम्बन्धमें कड़े प्रयोग किये हैं, जिसका परिणाम यह हुआ है कि उनका स्वास्थ्य बहुत ही खराब हो गया है। वे आपसे बहुत स्नेह करते हैं। वे आपकी संस्थाके कार्यका अध्ययन करना चाहते हैं और वहाँ कोई ऐसा हलका काम करना चाहते हैं, जिसे लगभग मनोरंजन ही कहा जा सकता है। उनका ऐसा खयाल है कि यदि वे आशुलिपि और टाइप करना सीख लें तो मेरी निजी सेवाके लिए अधिक उपयोगी होंगे। मैंने उनसे कह दिया है कि मैं ऐसा नहीं सोचता, विशेषकर इसलिए कि अभी सुब्बैया मेरे पास है। यह जानते हुए कि वे खादी-सम्बन्धी बहुत-से कार्योंके विशेषज्ञ हैं, मैं उनका उपयोग आशुलिपिक और टाइपिस्टके रूपमें करनेकी नहीं सोच सकता। पर वे क्या करें, क्या नहीं, इसके लिए वे बिलकुल स्वतन्त्र हैं। आशुलिपि सीखना कोई पाप नहीं है। इसलिए यदि वे आशुलिपि और टाइप सीखना ही चाहते हैं तो अवश्य सीखेंगे।

इसलिए, उन्हें अपने दो-तीन महीने वहाँ कैसे बिताने चाहिए, इस विषयपर आप उनसे खुलकर बात कर लेंगे और जो जरूरी हो सो करेंगे। आप जानते हैं कि वे गुमसुम रहनेवाले व्यक्ति हैं। इसलिए आपको ऐसा प्रयत्न करना पड़ेगा कि वे खुलकर बात करें, तथा प्रसन्न रहें। उनको प्रसन्नचित्त करनेकी कोशिशसे आपपर भी अनुकूल प्रतिक्रिया होगी और यह बात मुझे बहुत अच्छी लगेगी।

कलकत्ताके इन भीषण दंगोंके सम्बन्धमें अपने विचार मुझे लिखें।

आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५२१) की माइक्रोफिल्मसे।

४७०. अ० भा० च० संघसे ऋण लेनेके लिए इकरारनामेका मसविदा

[१ मई, १९२६][1]

साथकी अनुसूचीमें बताई गई प्रवर्तक संघकी चन्द्रनगर तथा अन्य स्थानोंकी सारी सम्पत्तिके एक-मात्र स्वामीकी हैसियतसे मैं स्वीकार करता हूँ कि अखिल भारतीय चरखा संघ, अहमदाबादसे मुझे ऋणके रूपमें नकद ६,००० रुपये (छ: हजार रुपये मात्र) प्राप्त हुए। इस ऋणका भुगतान आजसे पाँच सालकी अवधिमें १७०, बहू बाजार रोड, कलकत्ता स्थित खादी प्रतिष्ठानके कार्यालयमें अथवा आपके द्वारा समय-समयपर निर्धारित किये जानेवाले स्थानपर किया जायेगा।

ऋणकी राशिपर प्रतिवर्ष एक प्रतिशतके हिसाबसे ब्याज देना होगा, जिसका भुगतान तीन-तीन महीनेमें उक्त कार्यालयमें अथवा आपके द्वारा समय-समयपर निर्धारित किये जानेवाले स्थानपर किया जायेगा।

आपके एजेंट उक्त खादी प्रतिष्ठानवाले श्री सतीशचन्द्र दासगुप्त अथवा आपके द्वारा समय-समयपर लिखित रूपमें नियुक्त किये जानेवाले अन्य व्यक्तिसे प्राप्त मूलधन और ब्याजकी रसीद उतने मूलधन और ब्याजके भुगतानका पर्याप्त प्रमाण होगी।

उक्त ऋणकी शर्तें ये हैं:

(१) प्राप्त धन-राशिका उपयोग बंगालमें हाथ-कती और हाथ-बुनी खादीके उत्पादनके लिए किया जायेगा।

(२) इस खादीका विक्रय मूल्य बुनाई होनेतक लगनेवाली लागत तथा उसका ६¼ प्रतिशत व्यवस्था व्यय, इन दोनोंके जोड़से ज्यादा नहीं होगा।

(३) प्रवर्तक संघ प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपमें अर्ध-खादी अर्थात् ऐसा कपड़ा जिसमें मिलका सूत इस्तेमाल किया गया हो अथवा मशीनसे बुने कपड़ेका अथवा भारतीय या विदेशी मिलोंके कपड़ेका व्यापार नहीं करेगा।

(४) प्रवर्तक संघ चरखा संघकी पहलेसे लिखित मंजूरीके बिना अपनी अनुसूचित सम्पत्तिको बन्धक रखकर कोई और ऋण नहीं लेगा।

(५) प्रवर्तक संघ सारी हाथ-कताई और खादीके कारोबारका पूरा-पूरा हिसाब रखेगा और खादीके उत्पादनसे सम्बन्धित इसके केन्द्रीय तथा शाखा भण्डारोंका उनके कामके समयके दौरान चरखा संघके प्रतिनिधि या प्रतिनिधियों द्वारा निरीक्षण किया जा सकेगा तथा प्रवर्तक संघ अपने खादी-सम्बन्धी पूरे कारोबारका तिमाही हिसाब अखिल भारतीय चरखा संघ, अहमदाबादके मन्त्रीको भेजेगा।

१. देखिए अगले दो शीर्षक।

(६) प्रवर्तक संघ द्वारा उपरोक्त किसी भी शर्तका उल्लंघन करनेपर अखिल भारतीय चरखा संघको यह करार देनेकी छूट होगी कि ऋणकी राशिका भुगतान माँगपर तुरन्त करना होगा। उक्त शर्तोंका उल्लंघन हुआ है या नहीं, इसके निर्णयका एक-मात्र अधिकार चरखा संघको होगा।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११९७४) की माइक्रोफिल्मसे।

४७१. पत्र : मोतीलाल रायको

साबरमती आश्रम
१ मई, १९२६

प्रिय मोतीबाबू,

आपका पत्र मिला। उत्तर देनेमें कुछ देरी हुई। कारण यह था कि श्री बैंकर साबरमतीमें नहीं हैं।

आपके हस्ताक्षरके लिए एक दस्तावेज[1] भेज रहा हूँ। दस्तावेजपर आपको दो गवाहोंके सामने हस्ताक्षर करने चाहिए तथा चन्द्रनगरके एक मजिस्ट्रेटको भी इसका गवाह होना चाहिए। यदि आप दस्तावेजपर समुचित कार्रवाई करके श्रीयुत सतीश-चन्द्र दासगुप्तको भेज देंगे तो उनको हिदायत है कि वे यह दस्तावेज लेकर आपको ६,००० रुपये दे देंगे। जिस डाकसे यह पत्र जायेगा उसी डाकसे खजाचीको उन्हें रुपये भेजनेकी हिदायत दी जा रही है।

मुझे आपको यह बतानेकी आवश्यकता नहीं कि साथमें भेजे जा रहे दस्तावेजमें जो शर्तें रखी गई हैं, चरखा संघके सभी दस्तावेजोंमें रखी जाती हैं। बल्कि जिन अन्य संस्थाओंको ऋण दिये गये हैं, उनसे कुछ निश्चित जमानत भी ली गई है। आपके मामलेमें यह अन्तिम शर्त हटा ली गई है, क्योंकि आपकी संस्था बहुत बड़ी है और ऋणकी राशि अपेक्षाकृत छोटी है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११९७३) की माइक्रोफिल्मसे।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

४७२. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

साबरमती आश्रम
१ मई, १९२६

प्रिय सतीशबाबू,

अभी तो शंकरलाल यहाँ नहीं है। प्रवर्तक संघका मामला अभीतक अधरमें लटका हुआ है और स्वभावत: संघवाले कर्जेके लिए आग्रह कर रहे हैं। इसलिए मैंने एक दस्तावेज[1] तैयार किया है, जिसकी एक प्रतिलिपि आपको साथमें भेज रहा हूँ। मोतीबाबूके[2] नाम लिखे अपने पत्रकी भी एक प्रतिलिपि भेज रहा हूँ।

आपको ६,००० रुपये भेजे जा रहे हैं। जब मोतीबाबू उस दस्तावेजपर हस्ताक्षर करके आपके पास भेज दें तो आप रुपये दे दीजिए।

आपका,

संलग्न—२

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १११७४) की माइक्रोफिल्मसे।

४७३. पत्र : कोण्डा वेंकटप्पैया गारूको

साबरमती आश्रम
१ मई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपके पत्र मिल गये थे। आन्ध्रकी महीन खादीके मूल्योंके बारेमें बम्बईकी महिलाओंकी शिकायतसे सम्बन्धित पत्र भी मिला, जिसका उत्तर दे रहा हूँ। मैंने सारा पत्र-व्यवहार इन बहनोंके पास भेज दिया है। अब उन्हें स्थिति समझमें आ गई है। मैं उन्हें आपसे मिली प्रामाणिक जानकारी देना चाहता था, ताकि वे जैसी कार्रवाई करना चाहें कर सकें।

समझौता और मौजूदा हालातोंके सम्बन्धमें जो आशंकाएँ आपके मनमें उठती हैं, वे मेरे मनमें भी उठती हैं। पर मुझे पूरा विश्वास है कि देर-सवेर सब-कुछ अपने-आप ठीक हो जायेगा। समझौतेमें मैंने केवल एक मध्यस्थका काम किया है। कौंसिल-प्रवेशके मसलेपर मैं अपने मनको मना नहीं सकता। ज्यों-ज्यों समय गुजरता जाता है, मेरा यह विश्वास और भी दृढ़ होता जाता है कि हमारी कुछ समस्याएँ

१. देखिए "अ० भा० च० संघसे ऋण लेनेके लिए इकरारनामेका मसविदा", १-५-१९२६।
२. मोतीलाल राय।

तो कौंसिल-प्रवेशके कारण ही हैं। जबतक असहयोगी लोग कौंसिलोंसे दूर रहे, जनताको उस दूषित प्रभावसे बचाया जा सका, लेकिन अब जब असहयोगी उस निषिद्ध फलका स्वाद ले चुके हैं, यह स्वाभाविक ही है कि वे जनताके कुछ भागको उसके दूषित प्रभावके दायरेमें खीच रहे हैं। इन सब बातोंसे हमें खीजना नही चाहिए। यह शुद्धीकरणकी प्रक्रियाका एक परिणाम है। जो थोड़े-से लोग अभी कौंसिलोंसे बाहर हैं, वे यदि फैशनके लिए नहीं, बल्कि अपने आन्तरिक विश्वासके कारण बाहर बने रहते हैं तो इतना ही काफी होगा।

आशा है, आपका स्वास्थ्य अच्छा चल रहा होगा। क्या आप कांग्रेसके रचनात्मक कार्यक्रममें कोई सक्रिय हिस्सा ले रहे हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत कोण्डा वेंकटप्पैया गारू
शेषम्मा धर्मशाला
बंगलौर सिटी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५२४) की माइक्रोफिल्मसे।

४७४. पत्र : रामेश्वरदास पोद्दारको

साबरमती आश्रम
शनिवार [१ मई, १९२६][1]

भाई रामेश्वरजी,

आपका पत्र मिला। ५० रुपये मिल जायेंगे। आपका मानसिक व्याधि नही मिटा है तबतक शारीरिकका मिटना कठिन है। थोड़ी मुदतके लिये आप कोई एकान्त स्थलमें रहें तो फायदा होनेका संभव है। राम नाम तो है ही है।

आपका,
मोहनदास

मूल पत्र (जी० एन० १६३) की फोटो-नकलसे।

१. डाककी मुहरसे।

४७५. पत्र : देवचन्द पारेखको

साबरमती आश्रम
शनिवार [१ मई, १९२६][1]

भाईश्री ५ देवचन्दभाई,

आपका पत्र मिला। मकानका[2] नक्शा बनाकर ठाकोर साहबको[3] अनुमतिके लिए लिखो। यदि वे अनुमति दे दें तो नींव रख ही डालें। मनसुखलाल स्मारकके जो पैसे हैं, उनका उपयोग इसमें न किया जाये?

बापू

[पुनश्च :]

पोरबन्दरसे अभीतक कोई समाचार नहीं मिला है। वहाँ हो आओ तो ठीक होगा।[4]

गुजराती पत्र (जी० एन० ५७०७)की फोटो-नकलसे।

४७६. पत्र : प्रभाशंकर पट्टणीको

साबरमती आश्रम
शनिवार, १ मई, १९२६

सुज्ञ भाईश्री,

आपका पत्र पढ़कर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई है। मैं नहीं समझता था कि आपका हाथ इतना सशक्त हो गया होगा और आप लिख सकते होंगे। मेरी माँगके अनुसार मुझे कल तार तो मिल ही गया था और आज आपके ही हाथका लिखा पत्र भी मिल गया है। मुझे उम्मीद है कि थोड़े दिनोंतक मुझे आपकी ओरसे पत्र अथवा कार्ड मिलते ही रहेंगे। खुराक जो आप ले रहे हैं, बहुत ठीक है। दूधको ओटाते तो नहीं हैं? उपवासके बाद ओटाया दूध कदापि नहीं पिया जाता। सोडेका उपयोग सहायक है। जब आप घूमने-फिरने लायक हो जायें तब मैं आपसे मिलने और आपके मुखसे इस प्रायश्चित्तकी कथाको सुननेको उत्सुक हूँ।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९५१९) की माइक्रोफिल्मसे।

१. डाककी मुहरसे।

२. राष्ट्रीय स्कूलका।

३. राजकोटके राजासाहब लाखाजीराज।

४. यह गांधीजीके स्वाक्षरोंमें है।

४७७. पत्र : किशोरलाल मशरूवालाको

साबरमती आश्रम
शनिवार, चैत्र बदी ४ [१ मई, १९२६][1]

चि० किशोरलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम व्यर्थ ही आत्मनिन्दा करते हो। मैं बहसमें नहीं पड़ना चाहता; लेकिन अपना निर्णय बताये देता हूँ कि . . .[2] भाईकी लड़की और सब बच्चोंको लेकर तुम्हें यहीं आना है। यदि वहाँ गोमतीको वैद्यकी दवा अनुकूल आ रही हो तो ठीक है, नहीं तो मैं चाहूँगा कि वायु-परिवर्तनका और वैद्यका भी विचार छोड़कर यहींकी अच्छी-बुरी हवामें रहो। गोमतीके लिए जब हमने उपवासका प्रयोग आरम्भ किया तभी मैंने दवाकी बात मनसे निकाल दी थी। अच्छीसे-अच्छी दवा हम आजमा चुके हैं। अब मेरी वृत्ति तो ऐसी है कि सारी बाजी भगवानके हाथ छोड़ दें। तथापि एक मास डुमसमें रहनेकी इच्छा होती हो तो वहाँ चले जाना। तुम इस समय जिस स्थितिमें पड़ गये हो उस स्थितिमें बालुभाईको ही रसोइया मान लेना ठीक होगा। बालुभाईके साथ इतना तो बन्दोबस्त कर ही लेना कि बच्चोंको तुम्हें सौंप देनेके बाद इस व्यवस्थामें कोई हेर-फेर न करे और इन दोनो भाइयोके लिए "क्यूरेटर बोनिस" (हित रक्षक) तो नियुक्त किया ही जाना चाहिए। मेरा सुझाव है कि जमनालालजीको कर दें। मसूरी जाना किसलिए रद हो गया है यह तो तुम्हें अच्छी तरहसे मालूम हो गया होगा। मैं तो जानता ही था कि नाथको यह अच्छा लगेगा। फिनलैंडकी बात ऐसी है: वहाँ सारी दुनियाके विद्यार्थियों. . .[3]

गुजराती प्रति (एस० एन० १९५२०) से।

४७८. पत्र : नरगिस कैप्टेनको

साबरमती आश्रम
१ मई, १९२६

आपका पत्र मिला। अब आपको मेरी मसूरी यात्रा रद होने और महाबलेश्वर न जानेके बारेमें सब-कुछ मालूम हो गया है। मैंने गवर्नरको लिखा था कि मेरे लिए उनसे पूना या बम्बईमें मिलना अधिक सुविधाजनक होगा। इसलिए उन्होंने भेंटको अपने पहाड़से लौट आनेतकके लिए स्थगित कर दिया है। समयकी बचत

१. मसूरी यात्राके रद किये जाने और फिनलैंड जानेके उल्लेखसे।
२ व ३. जैसा कि साधन-सूत्रमें है।

हुई और परेशानीसे भी मैं बच गया, इसकी मुझे खुशी है, पर इस बातका निश्चय ही दुःख है कि अब कुछ और समयतक मैं आपसे और मीठूबहनसे नहीं मिल सकूँगा। मैं माणिकबाई और श्री बहादुरजीसे भी मिलना चाहता था। मैंने भूलसे उन्हें डाक्टर कहा था, इसके लिए मैं उनसे क्षमा माँगता हूँ।

मीठूबहनने मुझे बताया है कि आप अभी भी पूरी तरह स्वस्थ नहीं दिखतीं। अच्छा होता कि आप अब भी कश्मीर जा सकतीं।

अभी कुछ दिन पहलेतक यहाँ मौसम सुहावना और ठण्डा था और हम सब लोग चिन्तित होने लगे थे, क्योंकि ऐसे ठण्डे मौसमसे वर्षाकी सम्भावना नहीं होती। पर अब यहाँ मौसम सचमुच गरम हो गया है, और इस कारण हर कोई प्रसन्न है। कारण, यदि यह गरम मौसम चालू रहता है तो जूनके शुरूमें ही बारिश आनेकी आशा की जा सकती है।

[पुनश्च :]

ऊपरका अंश कल लिखवाया था। आज मथुरादासका पत्र मिला। आप जानती ही हैं कि वह देवलालीमें है। उसने लिखा है कि डॉ० मेहता उसे पंचगनी जानेको कहते हैं। उनका कहना है कि मई और जूनके शुरूके कुछ दिनोंतक, जबतक वर्षा नहीं होती, देवलालीमें बहुत गर्मी पड़ती है। वह माथेरान या सिंहगढ़ जानेके पक्षमें नहीं है। मने उसके लिए सर प्रभाशंकर पट्टणीका मकान सुलभ करनेका प्रयत्न किया था, पर वह जूनतक नहीं मिल सकता। क्या आप स्वयं अथवा अपने किसी मित्रकी मार्फत यह पता करनेका प्रयत्न करेंगी कि मथुरादासके लिए एक महीने अथवा पाँच-छः सप्ताहके लिए कोई मकान मिल सकता है या नहीं? हो सके तो उसे जल्दीसे-जल्दी पंचगनी चले जाना चाहिए। उसका किराया तो मथुरादास ही देगा। यदि आपकी निगाहमें कोई जगह हो तो मथुरादासको विंडी हॉल, देवलालीके पतेपर तार दे दें और मुझे पत्र द्वारा सूचित करें।

आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५२२) की माइक्रोफिल्मसे।

४७९. टिप्पणियाँ

दूधका जला छाछको भी फूंक-फूंककर पीता है

अधिकारी वर्गकी ओरसे जनताको इतने अधिक कड़वे अनुभव हुए हैं कि यदि वह किसी भी ऐसे व्यक्तिको जो अबतक स्वतन्त्र रहा हो, उनके पास जाता देखती है तो डर जाती है अथवा सन्देह करने लगती है। खेतीके बारेमें जो आयोग नियुक्त किया गया है उसके सम्बन्धमें बातचीत करनेके लिए बम्बईके गवर्नर मुझे बुलानेवाले हैं, यह बात समाचारपत्रोंमें जबसे प्रकाशित हुई है मेरे पास तभीसे चेतावनीके और अन्य-अन्य प्रकारके पत्र आ रहे हैं। एक भाई लिखते हैं, 'आप गवर्नरके पास जाकर क्या करेंगे? सावधान रहें, गवर्नर आपको चक्करमें डाल देंगे, फाँस लेंगे और धोखा देंगे।' लेकिन यदि हम स्वराज्य लेनेकी आशा रखते हो तो इस तरह डरने अथवा शंका करनेसे हमारा कार्य सुधरेगा नही। हम अधिकारियोसे कोई रियायत न ले, उनका कोई एहसान न लें और उनकी नौकरी करना स्वीकार न करें, यह बिलकुल समझमें आने योग्य बात है। यह असहयोग है। लेकिन हम अधिकारियोसे मिलनेसे भी डरें, यह उचित नही माना जा सकता; इतना ही नही, बल्कि उपयुक्त अवसर-पर उनसे न मिलना अनुचित माना जायेगा। जो अपना कर्त्तव्य समझता है वह किसीसे क्यों डरे? अथवा जिसे किसी प्रकारका भी लालच न हो अर्थात् जिसकी असहयोगमे अटूट श्रद्धा हो उसके लिए डरनेका क्या कारण है? और जो व्यक्ति अपना काम शान्तिके रास्तेपर चलकर करना चाहता है उसे तो सीधे और उचित ढंगसे मिलनेवाले ऐसे एक भी अवसरको हाथसे न जाने देना चाहिए। मेरा असहयोग व्यक्तियोंसे नहीं, उनके कार्योंसे होता है। शान्तिका रास्ता यानी प्रेमका रास्ता; और यदि मुझे प्रेमके रास्ते चलना हो तो मैं जब-जब अवसर मिलेगा तब-तब विरोधीसे भी अवश्य मिलूँगा, क्योंकि मेरा धर्म ही उसके व्यवहारको बदलना है और वह भी जोर-जबरदस्तीसे नही, अपितु समझा-बुझाकर; उससे अनुनय-विनय करके अथवा स्वयं कष्ट सहनकर अर्थात् सत्याग्रह करके। इसलिए यदि माननीय गवर्नर मुझे बुलाते हैं तो मैं उनसे मिलना अपना धर्म समझता हूँ और चूँकि मैं अपने सिद्धान्तको अच्छी तरह जानता हूँ और मुझे अपने धर्मका पूरा-पूरा भान है, इसलिए मेरे लिए किसी प्रकारके प्रलोभनमें अथवा जालमें फँस जानेका कोई डर नही है।

जब मैं लॉर्ड रीडिंगसे मिलने गया था तब भी कुछ मित्रोंने ऐसा ही भय प्रकट किया था, जैसा इस पत्रके लिखनेवाले भाईने प्रकट किया है। लेकिन मेरी मान्यता है कि मैं लॉर्ड रीडिंगसे मिला, वह मैंने उचित ही किया था और उससे जनताकी कोई हानि नही हुई थी। मुझे तो इससे लाभ ही हुआ, क्योकि मैं उन्हें अच्छी तरहसे समझ सका और अब मैं कह सकता हूँ कि समझौता करनेका एक भी सच्चा अवसर मुझे जब भी मिला है तो मैंने उसे अभिमान-वश अथवा दुर्बलता-वश अपने हाथसे जाने नहीं दिया है। यदि मैं इस समय भी माननीय गवर्नरसे मिलूँगा

तो उसमें भी मेरा ही लाभ है। मैं अपने विचार उनके सम्मुख प्रस्तुत कर सकूँगा, मेरे दृष्टिकोणमें कोई भूल हुई तो उसे समझकर सुधार सकूँगा और उनके खेती सम्बन्धी विचारोंको जान सकूँगा। मैं स्वय असहयोगी हूँ। गवर्नर महोदय जानते हैं कि मेरा आयोगोंमें विश्वास नहीं है और मैं आयोगमें कोई भाग नहीं ले सकता। यह बात सभी जानते हैं। इसलिए यदि मुझे गवर्नर महोदयसे मिलना पड़े तो इसमें डरनेकी कोई बात नहीं है।

गो-सेवकोंसे

लेकिन जैसे मेरे गवर्नर महोदयसे मिलनेसे डरनेवाले लोग हैं वैसे ही उस अवसरसे लाभ उठानेका लालच रखनेवाले लोग भी हैं। मेरे पास एक पत्र और एक तार आया है। उनके प्रेषकोंकी यह माँग है कि मैं गवर्नरसे ढोरोंके विदेश भेजे जाने तथा कत्ल किये जानेसे खेतीका जो नुकसान होता है उसके बारेमें बातचीत करूँ। मैं इन गो-सेवकोंसे नम्रतापूर्वक कहना चाहता हूँ कि अगर मुझे गवर्नर महोदयसे इस तरहकी बातचीत करनेका अवसर मिला भी तो मैं जिस ढंगसे वे चाहते हैं उस ढंगसे कदापि बातचीत नही करूँगा? मैं गो-सेवकोंमें एक महान् दोष यह पाता हूँ कि वे इस प्रश्नको धीरजसे और शास्त्रीय पद्धतिसे समझानेका प्रयत्न नही करते। हिन्दुस्तानमे ढोरोंका नाश क्यों और कैसे हो रहा है इसके बारेमें आजकल वालजी देसाई सूक्ष्मतासे अध्ययन कर रहे हैं। उनके लेख 'यग इंडिया' और 'नवजीवन' में नियमित रूपसे प्रकाशित होते हैं। इनको पढ़नेसे भी गोवंशकी दयनीय स्थितिके कारणोंका पता चल जायेगा। हालाँकि मैं मानता हूँ कि इस सम्बन्धमें सरकार बहुत-कुछ कर सकती है, फिर भी अभी तो जनताको ही इस सम्बन्धमें बहुत-कुछ करना है और जबतक जनता इस सम्बन्धमें जाग्रत नही होती और शिक्षा प्राप्त नहीं करती तबतक सरकार चाहे जैसे कानून बनाये, फिर भी गोवंशकी रक्षा नही कर सकती। इसमें अर्थशास्त्र और धर्मशास्त्रके महान् प्रश्न आते हैं। हमारी स्थिति ऐसी दयनीय है कि गोवंशकी रक्षाके सम्बन्धमें अर्थशास्त्र अथवा धर्मशास्त्र क्या कहते हैं, हम इसका विचार ही नहीं करते, मानो हमारे पास इसके लिए समय ही न हो। हम धर्मान्धताके कारण अपनी धार्मिक दृष्टिसे विचारकी क्षमताको खो बैठे हैं और आलस्यके कारण अर्थशास्त्रके अध्ययनमें हमें अरुचि हो गई है। गो-माताके नाम-मात्रसे गो-माताकी या भारत-माताकी सेवा नहीं होगी। उसका रहस्य समझकर उचित उपाय करनेसे ही गो-माताकी और उसके वंशकी सेवा तथा रक्षा हो सकती है और उसके साथ ही हमारी अपनी सेवा भी हो सकती है। मैं अपने पत्र-प्रेषकोंको सुझाव देता हूँ कि वे इस पत्रमें प्रकाशित तत्सम्बन्धी लेखोंपर विचार करें। उनमें विचार-दोष अथवा तथ्य-दोष हों तो बतायें और न हों तो उनके अनुरूप आचरण करें।

सूरतका विनय-मन्दिर

एक भाईने मुझे सूरतके राष्ट्रीय विनय-मन्दिरके[1] बारेमें कुछ शिकायतें भेजी हैं। मेरे पास ये शिकायतें लिख भेजनेका उनका कारण यह है कि उन्होंने ऐसी

१. राष्ट्रीय प्राथमिक पाठशाला।

अफवाहें सुनी हैं कि इन मन्दिरोंका अधिकार और प्रबन्ध मुझे सौंपा जानेवाला है। इन शिकायतोंपर विचार करनेके बजाय आज जो वस्तुस्थिति है मैं उसे बता देता हूँ। मुझे भाई दयालजी और भाई कल्याणजीका दस वर्षका अनुभव है। उन्होंने जब समितिकी ओरसे मुझे कहा कि इस मन्दिरकी व्यवस्था ठीक करनेका रास्ता इसे मुझे सौंपनेके सिवा और दूसरा नहीं है, तब मैंने उस उत्तरदायित्वको स्वीकार कर लेना उचित समझा। पत्र-लेखक मुझे बताते हैं कि अब जब विनय-मन्दिर नष्ट होनेकी स्थितिमें आ पहुँचा है, तब उसकी मृत्युका उत्तरदायी मुझे बनानेके लिए वह मेरे हाथमें सौंपा गया है। ऐसा हो तो भी अपने साथियोंका दायित्व जहाँ भी मैं बाँट सकता हूँ वहाँ उसे बाँट लेनेसे मैं कैसे पीछे हट सकता हूँ? इसको हाथमें लेते हुए मैंने साफ-साफ बता दिया है कि मैं वल्लभभाईकी सलाहके बिना तथा विद्यापीठकी देखरेखके बाहर कोई कदम नहीं उठा सकूँगा। यह शर्त इन भाइयोंने मंजूर की है। अब मैं उसका ट्रस्ट बनानेकी इच्छासे वल्लभभाईसे बातचीत करना चाहता हूँ। इस बीच विनय-मन्दिरके कुलनायक श्री नृसिंह प्रसादकी सम्मतिसे भाई नरहरि परीखको फिलहाल मन्दिरका आचार्य नियुक्त किया गया है और उन्हें मन्दिरको चलानेके लिए जो फेरफार करना उचित लगे और शिक्षकोंमें वृद्धि अथवा कमी करना ठीक लगे वैसा करनेका अधिकार प्रदान किया गया है। पाटीदार आश्रममें जो मन्दिर चल रहा था वह गोपीपुराकी पाठशालामें मिला दिया गया है। इससे लगभग छः शिक्षकोंकी कमी की जानेकी आशा की जाती है। पाठ्यक्रममें भी जो सुधार आवश्यक जान पड़ेंगे किये जायेंगे। छुट्टियाँ खत्म होने और विनय-मन्दिरके खुलनेपर श्री नृसिंह प्रसाद मन्दिरकी हालतकी जाँच करनेके लिए जानेवाले हैं और यद्यपि मन्दिरका नियन्त्रण मुझे सौंप दिया गया है तो भी इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि भाई दयालजी और भाई कल्याणजी अब विनय-मन्दिरको भूल जायेंगे। वे भूलेंगे नहीं, इतना ही नहीं, वरन् इस कार्यमें मेरे हाथ-पाँव तो ये भाई ही रहेंगे। इसलिए मुझे उम्मीद है कि जो व्यापारी इस स्कूलका खर्च चलानेके लिए चन्दा दे रहे हैं वे अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार चन्दा देते ही रहेंगे। स्कूलका हिसाब प्रमाणपत्रके साथ, नियमित रूपसे प्रकाशित किया जायेगा।

न० अ० प० को

मुझे तो तुम्हारा प्रश्न ही विकार-पोषक जान पड़ता है। मैंने अपने इंग्लैंडके जीवनके जो उदाहरण[1] दिये हैं उनका विलासिता या अविलासितासे कोई सम्बन्ध नहीं है; वह तो केवल रिवाजकी बात है। जैसे गरम देशमें रहनेवाले मनुष्यको ठण्डे प्रदेशमें जानेपर सदा ठण्डे देशमें रहनेवाले लोगोंकी अपेक्षा हमेशा बहुत सावधानी बरतनी पड़ती है, मैंने हिन्दुस्तानके युवक वर्गके लिए वैसी ही सावधानीकी आवश्यकता मानी है। मेरा आशय यह नहीं था कि इंग्लैंडके सब अथवा अधिकांश युवक नितान्त शुद्ध रह सकते हैं अथवा रहते हैं। बल्कि मेरा आशय यह बताना था कि इंग्लैंडमें

१. देखिए, आत्मकथा, अध्याय १९।

ली जानेवाली कुछ स्वतन्त्रता निर्दोष हो सकती है; किन्तु यदि हम ऐसी स्वतन्त्रता लेनेका प्रयत्न करेंगे तो दोषके पात्र होंगे। इंग्लैंडके युवक वर्गमें जो अपवित्रता दिखाई देती है उसका कारण, मैंने जिस मर्यादित स्वतन्त्रताका वर्णन किया है, वह नहीं है; बल्कि उसके पीछे अन्य समझमें आने योग्य कारण हैं। जो मनुष्य शराबके दोषोंको जानकर उससे दूर रहता है वह भी भीरु नहीं, वरन् ज्ञानी अर्थात् विवेकी है। विकारका मूल मानसिक मूर्छामें, अविवेकमें और मनुष्यके ध्येय सम्बन्धी अज्ञानमें निहित है। मैंने ब्रह्मचर्य पालनके सम्बन्धमें जो सुझाव दिये हैं वे पढ़ी हुई बातोंके उद्धरण अथवा बुद्धिसे सोचे हुए अनुमान नहीं हैं, अपितु मेरे और अन्य लोगोंके दीर्घकालीन अनुभवोंका संग्रह है। इसलिए मेरी तुम्हें सलाह है कि तुम 'आत्मकथा'के १९ वें प्रकरणको, उसे पूरी तरह समझे विना दरगुजर मत कर देना। मैं "अन्नाहारी" और मात्र खादीका कुरता और टोपी पहननेवाले, बाहरसे सादे, परन्तु विचारोंमें विलासिताके पोषक व्यभिचारियोंको जानता हूँ और अपने देशके रिवाजके मुताबिक मांसाहारी तथा बचपनसे कोट-पतलूनके आदी ब्रह्मचारियोंसे भी परिचित हूँ। सादगी मुख्य रूपसे विचारोंकी होनी चाहिए। जो मनसे मांसाहारी हो और अपनी कल्पनामें रंगमहलके विलासोंमें लोटता हो, उसका शरीर मात्र फलाहार ही क्यों न करता हो तथा उसपर एक फटा कम्बल ही क्यों न हो तथापि तुम ऐसा न समझो कि वह व्यक्ति निर्दोष है अथवा निर्दोष रह सकता है। जो विकार रहित रहना अथवा होना चाहते हैं उन्हें सतत जाग्रत रहना होगा। तुम जाग्रत पुरुषकी सावधानीको भीरुता मानते जान पड़ते हो और यदि यह बात सच है तो तुम भयंकर भूलमें पड़े हुए हो। तुम सँभल जाओ।

चेतावनी

अदनसे एक सज्जन अपने पत्रमें लिखते हैं कि बेनीबाईके नामसे ज्ञात कोई बहन अदन पहुँची है और अपने आपको मेरी बेटी बताकर भोले-भाले लोगोंको ठग रही है। ठीक यही बात रंगून और मोम्बासामें भी हुई थी। ऐसा मालूम होता है कि वहाँ भी यही बहन पहुँची होगी। मैं कुछ समय पहले चेतावनी दे चुका हूँ कि मेरी कोई बेटी ही नहीं है और अपने नामसे पैसा उगाहने अथवा मदद माँगनेका मैंने किसीको अधिकार नहीं दिया है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २-५-१९२६

४८०. काठियावाड़ी खादी

काठियावाड़के तीन खादी केन्द्रोंका काम देखनेके बाद भाई लक्ष्मीदासने जो विवरण भेजा है, पाठक उसे लगभग पूराका-पूरा इसी अंकमें देखेंगे।

अमरेली खादी कार्यालयकी व्यवस्थाका भार काठियावाड़ राजनीतिक परिषद्ने अपने हाथमें ले लिया है। उसका हिसाब मैं थोड़े ही समयमें 'नवजीवन' में प्रकाशित करनेका इरादा रखता हूँ। इस समय तो मैं पाठकोंका ध्यान भाई लक्ष्मीदासके विवरणकी ओर ही खींचना चाहता हूँ।

पाठक देखेंगे कि जहाँ अकाल-जैसी स्थिति है, केवल वहीं कताईके पैसे देकर खादी तैयार करवाई जाती है। यह खादी महँगी है अथवा सस्ती इसका विचार हम फिलहाल नहीं करते। अभी तो इतना स्वीकार कर लेना पर्याप्त है कि यद्यपि खादीकी किस्ममें पहलेकी अपेक्षा बहुत सुधार हुआ है तथापि वह खादी उसी अंकके मिलके सूतके बने कपड़ेके बराबर मजबूत नहीं होगी। फिर भी काठियावाड़ियोंको तो काठियावाड़की ही खादी पसन्द करनी चाहिए। उपर्युक्त रिपोर्ट पढ़नेके बाद इस बारेमें किसीको शंका नहीं होनी चाहिए। यदि यह रिपोर्ट सच्ची है तो काठियावाड़की खादी पहननेवाले अकालकी-सी स्थितिसे पीड़ित लोगोंकी मदद करते हैं। अकालग्रस्त लोगोंको दान देनेकी अपेक्षा उन्हें काम देकर स्वावलम्बी बनाना कहीं अधिक अच्छा है। इस बारेमें तो विवाद हो ही नहीं सकता और दान देनेकी शक्ति सबमें नहीं होती। परन्तु महँगी खादी लेकर और उसकी पूर्ति अपनी आवश्यकताके कपड़ेमें अन्यत्र कटौती करके, मदद देनेकी शक्ति तो सामान्य स्थितिके लोगोंमें भी होती है।

अतएव मुझे उम्मीद है कि इस समय अब्बास साहब काठियावाड़में जो फेरी लगा रहे हैं उसका स्वागत सब लोग करेंगे। मेरे पास वढ़वानकी रिपोर्ट आई है। मैं उससे देखता हूँ कि वढ़वानके लोगोंने तो अब्बास साहबका स्वागत किया है और किसीने भी उनकी अवहेलना नहीं की है। मैं उम्मीद रखता हूँ कि जैसे-जैसे उनकी यात्रा आगे बढ़ेगी वैसे-वैसे उन्हें अधिक मदद मिलती जायेगी।

भाई लक्ष्मीदासके विवरणमें खादी सेवकोंके बारेमें जो सुझाव है वह ध्यानमें रखने लायक है। कुएँमें जितना ज्यादा पानी होता है कुण्डमें उतना ही ज्यादा पानी आता है। जितनी निष्ठा सेवकोंमें होगी वे उतनी ही निष्ठा दूसरोंको दे सकेंगे। जो शक्ति उनमें नहीं है उसका विकास वे अन्य लोगोंमें नहीं कर सकते। कातनेवाली बहनें पींजना सीख लें तो उनकी कमाई दुगुनी हो जाये और जनताको अच्छा सूत मिले; तब उन्हें पींजनेके दाम भी मिलने लगेंगे, जो उन्हें आज नहीं मिलते। सेवक जबतक स्वयं अच्छी तरह नहीं पींज सकते तबतक बहनोंको प्रोत्साहन नहीं दे सकते और उन्हें सिखा तो कैसे सकते हैं?

जो बात पींजनेके बारेमें लागू होती है वही बात सूतकी मजबूती जाँचनेके बारेमें भी लागू होती है। सूत मजबूत करनेके लिए उसकी मजबूती जाँचनेकी विधिका

ज्ञान होनेकी आवश्यकता है। मजबूतीकी जाँच करना ठीक-ठीक आ जाये तो खादी सस्ती हो जाये अर्थात् मज़दूरीकी दर इतनी ही रखनेपर भी खादीकी किस्म और भाव सुधर जायें। बड़े कारखानोंमें भाव उतना रखते हुए भी कार्य-कुशलताके द्वारा लाभ बढ़ाया जा सकता है। हमारे असंख्य कताई कारखानोंमें — क्योंकि प्रत्येक झोंपड़ी कताई कारखाना है — कार्यकर्त्ता कार्यकुशलतासे अपनी आय बढ़ायें और जनताका बोझ कम करें। इन बड़े कारखानोंमें अनेक प्रकारके दावपेचों और विनिमय दरोंमें होनेवाले फेरफारसे करोड़ों रुपयोंका उलट-फेर होता है और मजदूरोंका शोषण होता है। हमारे इन कारखानोंमें कार्यकुशलतासे ऐसा उलट-फेर होनेके बजाय समभाव पैदा होता है और कार्यकुशलता बढ़नेके साथ-साथ कार्यकर्त्ताओंकी उन्नति होती जाती है। यह सुन्दर परिणाम खादी सेवकोंकी त्याग-बुद्धि, कुशलता, धैर्य, नम्रता और उत्साहपर निर्भर है।

मेरी टीका अथवा भाई लक्ष्मीदासके विवरणका कोई यह अर्थ न करे कि अबतक जो कार्य हुआ है वह व्यर्थ गया है अथवा ठीक नहीं हुआ है। दोनोंका भावार्थ इतना ही है, अब हम इतने व्यवस्थित हो गये हैं कि हम एक कदम आगे बढ़ सकते हैं। जैसे-जैसे हमें अनुभव होता जाये वैसे-वैसे हम सुधार करें, यह हमारा कर्त्तव्य है। यदि तुलना करें तो खादीकी उन्नति अच्छी ही हुई है। ग्राहक वर्गको तो इतना ही देखना है कि :

१. खादी सेवक प्रामाणिक और मेहनती हैं?

२. खादीके पैसे गरीबोंको मिलते हैं?

३. कातनेवाली बहनोंको काफी मदद मिलती है?

४. उन बहनोंको कताईका काम न मिले तो क्या उनके पोषणमें कमी रहती है? और

५. उन्हें अधिक पैसे देनेवाला धन्धा और कोई नहीं है, यह बात ठीक है?

यदि इन प्रश्नोंका उत्तर "हाँ"में मिले तो खादीके महँगे अथवा सस्ते होनका विचार किये बिना काठियावाड़ियोंको काठियावाड़की खादी ही खरीदनी चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २-५-१९२६

४८१. मजदूर भाइयोंके सम्बन्धमें

अहमदाबादके मजदूरोंमें आजकल मद्यपान त्यागका आन्दोलन सुचारु रूपसे चल रहा है। सब लोग इस बातसे परिचित नही है कि अमेरिकामें मजदूर लोगोने, जो पहले शराब पिया करते थे कुछ वर्षोंसे शराब पीना बन्द कर दिया है। नीचे दिये जा रहे तथ्य उन्हींकी एक पुस्तिकासे लिये गये हैं।

अमेरिकी रेलोंमें काम करनेवाले लाखों मजदूरोने अपने संघोंकी बैठकोंमें मद्य-निषेधकी प्रशसा की है और अपना यह अनुभव बताया है कि शराबसे अच्छे नागरिक खराब आदमी हो जाते हैं, अच्छे कंमेरे मजदूर निकम्मे बन जाते हैं तथा अच्छे पुरुष अपनी पत्नियोंपर अत्याचार करने लग जाते हैं। उन्होने यह भी बताया है कि यदि मजदूर अभीतक शराब पीते होते तो आज जो उनके अपने सैकड़ों बैंक हो गये हैं और उनमें उनके लाखों रुपये इकट्ठे हैं, यह नहीं हो सकता था। बैंक संघके मन्त्रीका कहना है कि अन्तिम पिछले चार वर्षोंमें अमेरिकी मजदूर संघोंमें तीव्र गतिसे ईमानदार और होशियार नेता पैदा हुए हैं और हो रहे हैं।

यदि अहमदाबादके मजदूर भी शराबको विष मानकर और उसका पीना पाप समझकर उसे छोड़ दें तो उनकी स्थिति कितनी सुधर जाये, इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २-५-१९२६

४८२. पत्र : रोमाँ रोलाँको

२ मई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपके १७ फरवरीके स्नेहपूर्ण और हृदय-स्पर्शी पत्रका मीरा द्वारा किया गया अनुवाद मेरे सामने है। आपका नाम जाहिर किये बिना मै बड़ी सावधानीके साथ इस पत्रके कुछ अंशोंका उपयोग इस अपेक्षासे करता रहा हूँ कि आपको इसपर कोई आपत्ति नही होगी।

यह जानकर बहुत खुशी हुई कि आप मेरे इस विचारसे सहमत हैं कि इस साल मेरा यूरोप न जाना ही ठीक है।

यूरोपमें वहाँके लोगों द्वारा भारतकी आवाजपर ध्यान देनेके सम्बन्धमें मेरा खयाल यह है कि जबतक भारत और अधिक तथा और भी बड़े पैमानेपर कष्ट सहन नही करता तबतक यूरोप या पाश्चात्य दुनियामें कही भी लोग उसकी आवाजपर कोई

ध्यान नहीं देंगे। इस समय तो उसकी आवाज अरण्य-रोदन ही होगी। लेकिन, मैं समझता हूँ कि अगर भारतका पक्ष वहाँ प्रस्तुत नहीं होता तो यूरोपके भाड़ेपर और कभी-कभी तो घूस खाकर काम करनेवाले पत्रकार भी ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रचारित तमाम प्रकट और एकतरफा अतिशयोक्तियों और झूठी बातोंको शास्त्र-वचनकी तरह सत्य मान लेनेमें हिचकेंगे। मुझे यह भी लगता है कि इस अहिंसात्मक लड़ाईको वैसे प्रचारकी आवश्यकता नहीं है जैसे प्रचारकी हिंसात्मक लड़ाईको होती है। फिर, तीसरी बात यह है कि जिसकी बात लोग सुन सकें ऐसा आदमी मिलनेमें होनेवाली जिस व्यावहारिक कठिनाईका आपने उल्लेख किया है, वह कठिनाई भी है ही। कवि-वरकी[1] सेवाएँ तो प्राप्त हो नहीं सकतीं, इसलिए इस समय मेरी नजरमें तो इस कामके लायक सिर्फ एन्ड्रयूज ही हैं। जिन लोगोंका कुछ महत्त्व है, वे उनकी बात सुनेंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

आशा है, आप स्वस्थ होंगे और ईश्वर आपको उस दिनतक डटे रहनेमें मदद करेगा जब भारतमें यह संघर्ष लगभग समाप्त हो जायेगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
ग्लीनिंग्ज

४८३. पत्र : एक मित्रको

साबरमती आश्रम
३ मई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र काफी दिन पहले आ गया था। परन्तु मैं इसे इससे पहले नहीं देख पाया।

आपके गत मासकी २९ तारीखके पत्रसे मुझे लगा कि अब मुझे आपके पत्रका उत्तर शीघ्र देना चाहिए। मुझे लगता है कि आश्रमका जीवन आपको रास नहीं आयेगा। यहाँके जीवनका मतलब कठोर श्रम है। आश्रमवासियोंको टट्टीकी बाल्टियाँ साफ करनेसे शुरू करके खेती-बाड़ी, खाना बनाना वगैरह तमाम काम करने पड़ते हैं। पढ़ने-लिखनेके लिए समय नहीं बच पाता। आपके जीवनके बारेमें मैं जो-कुछ समझ सका हूँ, उससे मुझे लगता है कि आश्रमके जीवन और वातावरणमें आप खप नहीं सकेंगे। इसलिए मेरा सुझाव है कि यदि आप अब भी आश्रममें आने और रहनेके इच्छुक हैं तो एक बार प्रारम्भिक तौरपर स्वयं यहाँ आकर सब बातोंको देख लें, और फिर फैसला करें।

१. रवीन्द्रनाथ ठाकुर।

इसके अतिरिक्त एक और कठिनाई भी है। आजकल आश्रममें बहुत भीड़-भाड़ है, अत: आपको देनेके लिए मेरे पास कोई खाली कमरा नहीं है। इसलिए शायद जो एकान्त आप चाहते हैं और जिसकी व्यवस्था मैं करना भी चाहूँगा, उस एकान्तकी व्यवस्था नहीं कर सकूँगा। अगर इसके बावजूद. . .[1]

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५२५) की माइक्रोफिल्मसे।

४८४. पत्र : डी० वेंकटरावको

साबरमती आश्रम
३ मई, १९२६

प्रिय भाई,

आपका पत्र मिला और कृष्णाबाईका भी। मैं स्थितिको समझता हूँ और उसकी कद्र करता हूँ। मैं आपके और कृष्णाबाईके इस विचारसे बिलकुल सहमत हूँ कि उसे अपनी चित्रकारीकी प्रतिभाका विकास करनेका अवसर मिलना चाहिए। इसलिए मैं उसकी इस इच्छाको समझता हूँ कि वह आपके साथ रहकर चित्रकारीका अपना काम जारी रखे। उसकी चित्रकारीके कुछ फोटो मुझे भेज दिये जायें तो अच्छा हो।

उसको मैं अलगसे नहीं लिख रहा हूँ। आप बीच-बीचमें उसकी प्रगतिकी सूचना मुझे देते रहें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत डी० वेंकटराव
डमेरला हाउस
राज-महेन्द्री

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५२६) की माइक्रोफिल्मसे।

४८५. पत्र : एस० सदानन्दको

साबरमती आश्रम
३ मई, १९२६

प्रिय सदानन्द,

तो आखिर आपकी एजेंसी खुल ही गई। अब आपका संवाददाता एसोसिएटेड प्रेसके संवाददाताकी तरह ही यहाँ आये और जो भी जानकारी मिल सके, प्राप्त करे। चूँकि मेरे पास बतानेको कुछ है ही नहीं इसलिए बेचारा महादेव या सुब्बैया अथवा प्यारेलाल आपको क्या दे सकते हैं? बेशक मैं खादीके विषयमें हररोज तार भेज सकता हूँ, लेकिन यह तो आपकी एजेंसीका भट्टा बैठा देनेवाली चीज होगी

१. साधन-सूत्रमें पत्र अधूरा है।

और मैं जानता हूँ कि आप जल्दी ही मुझसे कहेंगे कि अब ऐसे तार भेजना बन्द कीजिए। सौभाग्यसे खादी आन्दोलन अपनेसे सम्बन्धित समाचारोंके प्रचारपर उतना अधिक निर्भर नहीं करता, जितना कि इस बातपर कि चरखोंके वितरणकी ठीक व्यवस्था हो और ठीक ढंगसे सूतका संग्रह करके, उससे खादी तैयार करके बेची जाये।

मैं नहीं समझ पाता कि आपके संवाददाताको हर बुधवारकी शामको 'यंग इंडिया'की प्रति प्राप्त करनेमें क्या कठिनाइयाँ हैं। कोई कठिनाई होनी तो नहीं चाहिए। फिर भी मैं स्वामीसे बात करके आपको बताऊँगा।

आशा है, आपके कार्यालयमें सब खादी ही पहनते होंगे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एस० सदानन्द

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५२७)की माइक्रोफिल्मसे।

४८६. पत्र : आर० डी० सुब्रह्मण्यम्को

साबरमती आश्रम
३ मई, १९२६

प्रिय भाई,

आपका पोस्टकार्ड मिला। आप चरखेपर कितना समय लगाते हैं, इसका कोई महत्त्व नहीं है। मुझे जो चीज अच्छी लगी, वह है उसमें निहित आपकी यह भावना कि आप अपनी मेहनतकी बदौलत 'यंग इंडिया' की प्रति प्राप्त किया करेंगे। इसलिए आप जैसे ही ५० हजार गज सूत भेजेंगे, मैं आपको 'यंग इंडिया' की प्रति भेजने लगूँगा।

सूत तो तब भी राष्ट्रीय सम्पत्ति ही रहेगा, क्योंकि मेरा इरादा यही था कि सूत चरखा संघको या सत्याग्रह आश्रमको दे दूँ और फिर उनसे आपके नामपर 'यंग इंडिया' के लिए चन्दा ले लूँ। इसलिए इसमें कोई ऐसी बात नहीं है जो आपकी अन्तरात्माको खटके, क्योंकि आप इतने घंटोंके श्रमके बदले ही एक सालतक 'यंग इंडिया' प्राप्त करेंगे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत आर० डी० सुब्रह्मण्यम्
पश्चिमी श्रीरंगपट्टनम रोड
एक्सटेंशन, सेलम

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५२८)की माइक्रोफिल्मसे।

४८७. पत्र : उदित मिश्रको

सावरमती आश्रम
मंगलवार, ४ मई, १९२६

भाई उदित मिश्रजी,

आपका पत्र कई महिनोंके पहले मिला था। परन्तु मैं शीघ्रतासे उत्तर नही भेज सका। जिसको हम दुराचारी समझते हैं, उसकी घृ[णा] तो दिलमें नही होनी चाहिए, परन्तु ऐसे लोगोंका वगैर कारण परिचय भी नही करना चाहिए। अर्थात् उनकी आध्यात्मिक सेवा करनेका कोई प्रसंग मिलनेसे ही हम उसका परिचय करे. . .[1] सव वातोंमें ही मनुष्यकी विवेकदृष्टिकी परीक्षा हो जाती है।

वालकोंका संरक्षक वनना बड़े. विद्यार्थियोंके बननेसे कठिन है। जब एक पिता अपने वालकोंको हमारी रक्षामें रखता है तब हम वड़ी जिम्मेदारी सरपर उठा लेते हैं। हम पिताका स्थान लेते हैं। इसलिए जितना प्रेम पि[ता] का होना चाहिए इतना हमारेमें उन वालकोंके लिए होना आवश्यक है। परन्तु पिताके प्रेममें मोह आ जाता है; संरक्षकके मनमें केवल नि.स्वार्थता और शुद्धताकी ही होनी चाहिए। और क्योंकि वालक अनुकरण करनेवाले हैं इसलिए जो गुणकी वृद्धि उनमें चाहते हैं वह सवका पालन हमें करना चाहिए। इस दृष्टिसे संरक्षकमें ब्रह्मचर्य, सत्य, अहिंसा, निर्भयता, शौर्य, उदारता, नम्रता विशेष रूपमें होने चाहिए।

मूल प्रति (एस० एन० १९५२९) की माइक्रोफिल्मसे।

४८८. प्रस्ताव : दक्षिण आफ्रिकाके सम्बन्धमें

५ मई, १९२६

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठक ५ मईको अहमदाबादमें हुई तथा उसमें दक्षिण आफ्रिकाके सम्बन्धमें गांधीजी द्वारा तैयार किया गया निम्न प्रस्ताव पास किया गया :

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी भारत सरकार और संघ सरकारको दोनों सरकारोंकी एक परिषद्में कुछ निश्चय होनेतक वर्ग क्षेत्र संरक्षण विधेयकको निलम्वित रखनेके लिए वधाई देती है।

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी दक्षिण आफ्रिकी भारतीय शिष्टमण्डल और भारतीय प्रवासियोंको भी उनके प्रयत्नोंके शुभ परिणामोंके लिए वधाई देती है।

१. साधन-सूत्रमें यह अस्पष्ट है।

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी श्री सी० एफ० एन्ड्रयूजको उनके महान् त्यागके लिए और उनके परिश्रम, अटूट आशा और विश्वासके लिए, जिनके बिना अबतक जो शुभ परिणाम निकले हैं वे असम्भव होते, सादर धन्यवाद देती है।

भारत सरकार द्वारा चलाई जा रही बातचीतके अबतकके परिणामोंसे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी अनभिज्ञ नहीं है, फिर भी वह जनताको चेतावनी देती है कि उसे दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय प्रवासियोंकी ओरसे किये जानेवाले अपने प्रयत्नोंमें ढील नहीं आने देनी चाहिए। और आशा करती है कि जबतक प्रवासियोंकी स्थिति सम्माननीय और सन्तोषजनक नहीं हो जाती तबतक जनता चैन नहीं लेगी।

कांग्रेस अध्यक्षको भारत सरकारको बधाई सन्देश भेजनेका अधिकार दिया जाता है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन रिव्यू, मई, १९२६

४८९. टिप्पणियाँ

मद्य-निषेध और मद्रास सरकार

श्रीयुत चक्रवर्ती राजगोपालाचारीने एक सरकारी आदेशका पता लगाया है। वैसे वह बड़ा सीधा-सादा है, लेकिन बहुत अर्थपूर्ण है। आदेशकी नकल अखबारोंको भेजते हुए साथकी टिप्पणीमें उन्होंने निम्न प्रकार लिखा है:

> सरकारी खर्चका बोझ हमपर दिन-दिन बढ़ता ही जाता है। सुधारोत्तर कालमें हमपर जिन खर्चोंका बोझ डाला गया है, उनमें से एक है नये स्वास्थ्य अधिकारियों और उनके सहायक कर्मचारियोंके खर्चका बोझ। इन लोगोंका काम जनताको हैजा, मलेरिया आदिकी रोकथामके लिए आवश्यक शिक्षा देना है।

ऐसा जान पड़ता है कि कुछ कर्मचारियोंने यह जिज्ञासा की कि क्या उन्हें शराबखोरीके खिलाफ भी प्रचार करना चाहिए। जो नपा-तुला उत्तर मिला, वह इस प्रकार था:

> सरकारका खयाल है कि जन-स्वास्थ्य अधिकारियोंको शराबखोरीके खिलाफ प्रचार नहीं करना चाहिए।

ध्यान देनेकी बात है कि शराब-विरोधी प्रचारपर रोक लगानेका कोई कारण नहीं बताया गया है। इसके विपरीत, लोक-इच्छापर आधारित किसी सरकारके अधीन स्वास्थ्यके इन रक्षकोंसे कोई भी यही आशा करेगा कि वे लोगोंको साफ-साफ समझायें कि शरीरपर शराब आदिका कितना बुरा असर पड़ता है। उनसे यही अपेक्षा की जायेगी कि वे जनताको बतायें कि मानव-शरीरपर उसका कैसा घातक प्रभाव पड़ता है और मेजिक लैन्टर्न (जादुई लालटेन) के जरिये उसे सजीव ढंगसे दिखायें कि शराब जहाँ-कहीं प्रवेश कर जाती है वहाँ कितनी बर्बादी और तबाही होती है। लेकिन,

वर्तमान सरकारसे तो ऐसा कुछ करनेकी आशा करना पागलपन ही है। उससे ऐसी कोई आशा करना तो वैसा ही होगा जैसे शराबखाना चलानेवाले किसी व्यक्तिसे यह आशा की जाये कि शराबखानेमें आनेवाले लोगोंको वह इस मौतके जालमें न फँसनेके लिए आगाह करे। क्या वास्तवमें भारतके सभी शराबखाने सरकार ही नहीं चलाती? शराबकी बिक्रीसे प्राप्त होनेवाले २५ करोड़के राजस्वसे ही तो हम अपने बच्चोंको विश्व-विद्यालयकी शिक्षा देते हैं। इसी शिक्षाके बलपर सरकार हमें अंग्रेजी हुकूमतकी सुख-समृद्धिकी छलनाका शिकार बनाती है। जबतक लोगोंको अपने कर्त्तव्यका बोध नहीं होता और वे सरकारकी मद्य-समर्थक नीतिका विरोध नहीं करते तबतक भारत शराबके अभिशापसे सर्वथा मुक्त नहीं हो सकता।

अमेरिकामें मद्य-निषेध

अमेरिकामें मद्य-निषेध आन्दोलन विफल हो जानेके बारेमें इतना कुछ सुननेको मिलता रहता है कि उससे विपरीत निष्कर्ष देनेवाली कोई बात सुनकर मनको बड़ा सुख मिलता है। एक पत्र-लेखकने कुछ कतरनें भेजी हैं। उनसे ज्ञात होता है कि मिडिल-वेस्ट स्टुडेंट्स कान्फ्रेंसमें आये अमेरिकाके दक्षिण-पूर्व हिस्से और मध्य-पश्चिम हिस्सेके एक लाख तेईस हजार विद्यार्थियोंके प्रतिनिधियोंने विद्यार्थियों द्वारा मद्यपान किये जानेके विरुद्ध प्रस्ताव पास किये।

लोकोमोटिव इंजीनियरोंकी पत्रिकाके फरवरी महीनेके अंकमें निम्न प्रकार कहा गया है:[1]

यहाँ मेरा उद्देश्य पाठकोंको यह विश्वास दिलाना नहीं है कि अमेरिकामें मद्य-निषेध सम्बन्धी प्रयत्न पूरी तरह सफल रहे हैं। इस जबरदस्त प्रयोगके सम्बन्धमें मैंने ऐसा काफी साहित्य पढ़ा है, जिससे मालूम होता है कि चित्रका दूसरा पहलू भी है। लेकिन, दोनों पक्षोंकी अतिशयोक्तियोंके लिए पूरी गुंजाइश रखते हुए भी, इसमें कोई सन्देह नहीं है कि उस अद्भुत जातिके लिए मद्य-निषेध एक बहुत बड़ा वरदान साबित हुआ है। अभी वह समय नहीं आया है जब परिणामोंके बारेमें निश्चय-पूर्वक कुछ कहा जा सके। भारतमें इस समस्याका समाधान बहुत सरल है। आवश्यकता सिर्फ शराबकी सभी दुकानों और भट्टियोंको बन्द करवानेकी है।

आन्ध्रके स्कूलोंमें चरखा

नीचे पश्चिम गोदावरी जिला-स्थित भुमवरम् ताल्लुका बोर्ड द्वारा तैयार की गई रिपोर्टका एक अंश[2] दिया जा रहा है:

१. यह यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इसमें कहा गया था कि रेलवे कर्मचारी तथा अमेरिकाके मजदूर-संघके लाखों मेहनती मजदूर खुद शराब नहीं पीते और शराब पीनेके खिलाफ हैं, क्योंकि यह मनुष्यको हर तरहसे गिराती है। मजदूर आन्दोलनकी सफलताके लिए शराब आदिसे परहेज रखनेवाले नेताओंकी आवश्यकता बताई गई थी।

२. यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

तिरुपति नगर परिषद्की एक रिपोर्टमें उसके अधीनस्थ स्कूलोंमें कताई-सम्बन्धी आँकड़े दिये गये हैं।

> नगर परिषद्के स्कूलोंमें कताई तीन साल पहले ही लागू की गई; लेकिन इस कामको सुचारु रूप १९२४ में दिया गया। १९२४ के अन्ततक बच्चोंने ५४ वर्ग गज कपड़ेके लायक सूत काता था। प्रति घंटा औसतन सिर्फ १०० गजकी रफ्तार है और ५ से ३० अंकतक का सूत काता जाता है।

मैं शिक्षकों तथा स्कूलोंमें कताई-कार्यका समायोजन करनेवालोंका ध्यान इस बातकी ओर आकृष्ट करना चाहूँगा कि स्कूलोंमें चरखोंके स्थानपर तकलियोंका प्रयोग करना हर तरहसे बेहतर है। स्कूलोंमे सामूहिक रूपसे की जानेवाली कताईके लिए तो अन्तमें तकली ही अधिक लाभदायक, कम खर्चीली और अधिक सूत देनेवाली साबित होगी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ६-५-१९२६

४९०. सुदूर अमेरिकासे

कुछ समय पहले मैंने अमेरिकासे एक सज्जन द्वारा पूछे गये कुछ प्रश्नोंके उत्तर दिये थे।[1] अब उन्होंने अपनी आलोचना फिर दुहराई है और आगे और भी कई प्रश्न पूछे हैं। इनमें से पहला इस प्रकार है:

> वह साहसी और निर्भीक मनोवृत्ति किस कामकी है, जो उस चीजकी रक्षामें सहायक न हो सके, जिससे आपको प्रेम है? हो सकता है, आपको मृत्युका भय न हो, लेकिन अगर आप अन्ततक अहिंसापर दृढ़ रहेंगे तो फिर आप लुटेरोंके किसी दल द्वारा अपनी प्यारी वस्तु लुटनेसे किस तरह बचा पायेंगे? जिन्हें कोई लुटेरा लूट रहा हो, वे अगर हिंसात्मक तरीकोंसे उसका प्रतिरोध नहीं करते हैं तो उन्हें लूटना तो उसके लिए उस हदतक आसान ही हो जायेगा। संसारमें लूट चल रही है और जबतक ऐसे लोग रहेंगे जिन्हें आसानीसे लूटा जा सकता हो, तबतक वह चलती रहेगी। चाहे प्रतिरोध किया जाये या न किया जाये, सबल लोग दुर्बलोंको लूटेंगे ही। दुर्बल होना पाप है। इस दुर्बलतासे, चाहे जैसे भी हो, छुटकारा पानेकी कोशिश न करना अपराध है।

पत्र-लेखक भाई यह भूल जाते हैं कि प्रति-प्रहार बराबर सफल नहीं होता। यह भी तो हो सकता है कि लुटेरा यदि अधिक सबल हुआ तो रक्षकको अवश कर

1. देखिए "एक विद्यार्थीके प्रश्न", २५-२-१९२६।

दे और उस रक्षक द्वारा किये गये शारीरिक प्रतिरोधसे उत्पन्न अपना क्रोध उस बेचारी लुटती हुई नारीपर उतारे। इस प्रकार उस रक्षक द्वारा उसको बचानेके लिए किये गये शारीरिक प्रतिरोधके कारण उस नारीकी स्थिति और भी बुरी हो जाती है। यह सच है कि उस हालतमें रक्षकको इस बातका सन्तोष रहेगा कि अपना कर्त्तव्य पूरा करनेके लिए उसने कुछ भी उठा नहीं रखा। लेकिन, यह सन्तोष तो अहिंसक प्रतिरोधीको भी प्राप्त होगा। कारण, वह भी उस अबलाकी रक्षा करनेके लिए अपनी जान दे देगा। लेकिन उसे एक और भी बातका सन्तोष प्राप्त होगा। वह यह कि उसने अनुनय-विनय करके उस लुटेरेके हृदयमें दया भरनेकी कोशिश की। पत्र-लेखकके सामने जो समस्या उपस्थित हुई है वह ऐसा मान लेनेके कारण कि अहिंसक रक्षक तो उस लूटका मात्र असहाय दर्शक बनकर रह जायेगा। लेकिन, असलियत यह है कि मेरी योजनाके अन्तर्गत प्रेमको शरीर-बलकी अपेक्षा अधिक सक्रिय और प्रभावसम्पन्न शक्ति माना गया है। जिसके हृदयमें प्रेम नहीं है, उसका अनाक्रामक रहना कायरता है। वह न मनुष्य है और न पशु। उसने तो यह साबित कर दिया है कि वह किसीकी रक्षा करनेके योग्य नहीं है।

अपने प्रतिद्वन्द्वीके मुकाबले किसी अहिंसक प्रतिरोधीमें कितनी जबर्दस्त शक्ति होती है यह बात मैंने अनुभव कर ली है। लेकिन स्पष्ट है कि मेरी तरह पत्र-लेखक भाई इसे महसूस नहीं कर सकते। अहिंसात्मक प्रतिरोधमें एककी इच्छा-शक्ति दूसरे-की इच्छा-शक्तिसे टकराती है। यह प्रतिरोध भी तभी सम्भव है, जब शरीर-बलका सहारा लेना बिलकुल छोड़ दिया जाये। शरीर-बलका सहारा लेनेमें आम तौरपर यह बात निहित रहती है कि शरीर-बल क्षीण हो जानेपर प्रतिरोधी आत्म-समर्पण कर देगा। क्या पत्र-लेखकको यह मालूम है कि जिस नारीमें दृढ़ इच्छा-शक्ति होगी वह अपने साथ बलात्कार करनेको आये कितने ही शक्तिशाली व्यक्तिका भी प्रतिरोध सफलतापूर्वक कर सकती है?

मैं यह स्वीकार करता हूँ कि सबल लोग दुर्बलोंको लूटेंगे ही और दुर्बल होना पाप है। लेकिन दुर्बलता पाप है, यह बात मनुष्यकी आत्माके सम्बन्धमें कही गई है, शरीरके सम्बन्धमें नहीं। अगर शरीरके सम्बन्धमें ऐसा कहा जाये, तब तो हम दुर्बलताके पापसे कभी मुक्त हो ही नहीं सकते हैं। लेकिन आत्माकी शक्ति अपने खिलाफ हथियारबन्द होकर खड़ी सारी दुनियाकी ताकतका मुकाबला कर सकती है। यह शक्ति शरीरतः दुर्बलसे-दुर्बल व्यक्ति भी प्राप्त कर सकता है। जूलू लोग शरीरसे भीमकाय होते हुए भी इच्छा-शक्तिके मामलेमें कमजोर हैं। इसीलिए वे एक छोटेसे गोरे बच्चेके सामने अवश हो जाते हैं। हृष्टपुष्ट शरारती लड़कोको अपनी दुर्बल माताओंके सामने अवश होकर आत्मसमर्पण करते किसने नहीं देखा है? यहाँ पुत्रकी पशुतापर प्रेम विजय पाता है। जो नियम माता और पुत्रके बीच चलता है, वह सर्वत्र लागू किया जा सकता है। यह भी जरूरी नहीं कि प्रेम देनेवालेको प्रेम मिले ही। प्रेम तो अपना पुरस्कार आप ही है। बहुत-सी माताओंने प्रेमके बलपर गलत राहपर चलनेवाले अपने जिद्दी बच्चोंको वशमें कर लिया है। तो हम सब प्रेम-

शक्ति बढ़ानेका प्रयास करें। इसमें सफलताकी पूरी सम्भावना है। कारण, प्रेम-बल बढ़ानेमें प्रतिद्वन्द्विता करनेका परिणाम शुभ होता है। दुनिया आजतक शरीर-बल अर्जित करके ही शक्तिशाली बननेकी कोशिश करती रही है, मगर वह बुरी तरह विफल हुई है। शरीर-बल अर्जित करनेमें एक-दूसरेसे प्रतिद्वन्द्विता करनेका मतलब समग्र जातिके विनाशका प्रयत्न करना है।

पत्र-लेखक आगे लिखते हैं :

> ऐसा प्रतीत होता है कि अंग्रेज शासकोंमें उतना ही आत्म-बल है जितना कि आपमें। लेकिन उनके पास इसके अतिरिक्त सैनिक शक्ति और मानव-स्वभावका व्यावहारिक ज्ञान भी है। परिणाम तो स्पष्ट ही है।

सैनिक शक्ति आत्माकी शक्तिसे बिलकुल असंगत चीज है। भयंकर कृत्य करना, कमजोरोंका शोषण करना, अनैतिक ढंगसे लाभ कमाना, दैहिक सुखकी प्राप्तिके लिए निरन्तर पागल बने रहना, इस सबका आत्म-बलसे कोई मेल नहीं बैठता। इसलिए अंग्रेज शासकोंमें जो आत्म-बल है, वह बिलकुल सुप्तावस्थामें भले न हो, पर उनके शरीर-बलके सामने गौण तो है ही।

इसके बाद पत्र-लेखक भाई यह चिरन्तन समस्या सामने रखते हैं :

> दुनियामें कुछ लालची लोग हैं, जो शरारत कर रहे हैं। उनके हाथमें शक्ति है। वे पागल भले ही हों, लेकिन दुनियाका नुकसान तो कर ही रहे हैं। इस हालतमें हाथपर-हाथ रख बैठे रहने और उन्हें शैतानी करते जानेको छोड़ देनेसे हमारा काम नहीं चल सकता। हमें अहिंसाके सिद्धान्तकी बलि चढ़ाकर भी उनके हाथसे शक्ति छीन लेनी चाहिए, ताकि वे आगे और नुकसान न कर पायें।

इतिहास तो हमें यह बताता है कि जिन लोगोंने, बेशक सदुद्देश्योंसे प्रेरित होकर, शरीर-बलका प्रयोग करके इन लालची लोगोंको अपदस्थ किया है, बादमें वे खुद ही उसी बुराईके शिकार हो गये हैं, जो उन विजित लोगोंमें थी। "गुलामोंका मालिक बननेके बजाय गुलाम बनना बेहतर है", अगर यह सिद्धान्त-वाक्य सिर्फ बच्चोंके रटनेके लिए ही नहीं है तो ज्यादा अच्छा होगा कि हम, जो मानव-स्वभावके लिए सर्वथा अशोभनीय इस पाशविक संघर्षसे ऊब गये हैं, गुलामोंके मालिकोंको तबतक अपने मनकी करने दें जबतक कि हम लालची शोषकों तथा ऐसे ही दूसरे लोगोंके पशु-बलके मुकाबले आत्म-बलको खड़ा करनेकी सम्भावनाओंको ढूँढ़नेमें लगे हुए हैं।

लेकिन, इस प्रयोगके प्रारम्भमें ही पत्र-लेखकके सामने निम्नलिखित समस्या उपस्थित हो जाती है :

> महात्माजी, आप यह तो स्वीकार करते हैं कि भारतकी जनताने आपके धर्मका अनुसरण नहीं किया है। लगता है, आप इसका कारण नहीं समझते हैं। सचाई यह है कि औसत आदमी महात्मा नहीं होता। इतिहास इस तथ्यकी अचूक साक्षी भरता है। भारतमें और अन्यत्र भी कुछ महात्मा हुए हैं। ये

लोग अपवाद हैं और अपवाद तो नियमको ही सिद्ध करते हैं। आपको इन अपवादोंको आधार बनाकर कोई काम नहीं करना चाहिए।

यह भी अजीब बात है कि हम अपने आपको किस तरह भ्रममें डालते हैं। हम सोचते हैं कि हम अपने नश्वर शरीरको दुर्भेद्य बना सकते हैं, और आत्माकी छिपी हुई शक्तिको जाग्रत कर पाना हम असम्भव मानते हैं। अगर मुझमें इनमें से कोई शक्ति हो भी तो मैं यही दिखानेकी कोशिश कर रहा हूँ कि मैं भी दूसरोंकी ही तरह एक दुर्बल मर्त्य प्राणी हूँ और मुझमें न पहले कभी कोई असाधारण शक्ति थी और न आज है। मैं अपने-आपको एक साधारण व्यक्ति मानता हूँ, जिससे दूसरे मर्त्य-जनोंकी ही तरह गलतियाँ हो सकती हैं। लेकिन, साथ ही मैं यह स्वीकार करता हूँ कि मुझमें इतनी विनय अवश्य है कि मैं अपनी गलतियाँ स्वीकार करके अपने कदम वापस ले सकता हूँ। मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि ईश्वर और उसकी नेकीमें मेरा अडिग विश्वास है और सत्य तथा अहिंसाके लिए मुझमें अक्षय उत्साह है। लेकिन, क्या ये तमाम चीजें हर मानव-प्राणीके अन्दर छिपी हुई नहीं हैं? अगर हमें आगे बढ़ना है तो हमें इतिहासकी पुनरावृत्ति नहीं करनी चाहिए, बल्कि नये इतिहासका निर्माण करना चाहिए। हमें अपनी पूर्वजों द्वारा छोड़ी गई विरासतको और भी समृद्ध करना चाहिए। अगर हम भौतिक जगतमें नये-नये आविष्कार और नई-नई खोजें कर सकते हैं तो क्या आध्यात्मिक जगतमें अपनी असमर्थताकी घोषणा करना ठीक है? क्या उक्त अपवादोंकी संख्या बढ़ाकर उन्हें आम बना देना असम्भव है? क्या यह जरूरी है कि इन्सान बननेसे पहले आदमी पशु बने ही और तब, यदि बन सके तो इन्सान बने?

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ६-५-१९२६

४९१. पत्र : राधाकृष्ण बजाजको

साबरमती आश्रम

बृहस्पतिवार, ६ मई, १९२६

चि० राधाकृष्ण,

तुमने मुझे और शंकररावको जो पत्र लिखे हैं मैंने उन दोनोंको पढ़ा। अलोना भोजन लेनेका नियम सारे जीवनके लिए नहीं होता। इसका हेतु तो रसको कम करना है। इस मुख्य बातको ध्यानमें रख जब दूसरे घर जानेका अवसर आये उस समय जो सादेसे-सादा भोजन वहाँ मिले उसे ले लेना चाहिए। जो वस्तु मिश्र अथवा अमिश्र रूपसे खानेके लायक ही न हो वह वस्तु यदि भोजनमें हो तो उसका त्याग ही करना चाहिए। लेकिन, दूध, चावल और रोटी — ये तीन सब जगह मिलते हैं। मिर्च, मसाले जिसमें हों वैसी सब्जी या दालका त्याग करें। हाथसे पिसा हुआ

आटा न मिल सके वहाँ निःसंकोच मिलसे पिसे हुए आटेका उपयोग करना चाहिए। जहाँ रास्तेकी सतह बहुत गरम हो अथवा उसपर काँटे हों वहाँ जूतेका, जिसका नाम ही 'काँटारखा' अथवा 'पगरखा' है, उपयोग अवश्य करो। जब इस तरहके धर्म-संकट आ पड़ें तब मुझे लिखनेमें तनिक संकोच न करना। अपनी तबीयतका खूब ध्यान रखना।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९५३२) की फोटो-नकलसे।

४९२. पत्र : छोटालालको

सावरमती आश्रम
बृहस्पतिवार, ६ मई, १९२६

चि० छोटालाल,

तुम्हारा जयपुरसे लिखा पत्र मिला। उससे पहलेका भी एक पत्र मिला था। तुम्हारे कलकत्ता पहुँचनेके बाद मैंने तुम्हें पत्र लिखनेकी बात सोची थी। लेकिन तुम्हारा जयपुरसे लिखा पत्र ऐसा है कि मुझे आज ही उत्तर लिखवाना पड़ रहा है। मुझे तो तुम्हारा हिसाब जरा भी पसन्द नहीं है। सावधानी आवश्यक है, लेकिन बालकी खाल नहीं निकालनी चाहिए। तुम मानसिक अथवा शारीरिक व्याधि दूर करनेके लिए कहीं जाओ तब जो भी खर्च हो वह आश्रमसे ही लो। तुम अपना पैसा किस लिए जमा रखते हो? तुम अपना सर्वस्व अर्पित कर दो यह अच्छा है या यह कि 'मैं' और 'मेरा' का भाव कुछ-न-कुछ बना ही रहे? और जैसे तुम्हारे जानेका खर्च आश्रमसे दिया जायेगा वैसे ही तुम्हारे शॉर्टहैण्ड सीखनेका खर्च भी। सतीशबाबू तो जो काम तुम करोगे उसका पैसा देंगे ही। लेकिन ऐसा हिसाब करनेसे बेहतर तो यह होगा कि तुमसे जो मदद हो सके वह तुम कोई पैसा लिये बिना करो और शॉर्टहैण्ड भी मुफ्त सीखो। ऐसे सूक्ष्म जान पड़नेवाले प्रश्नोंको उठानेकी अपेक्षा ज्यादा जरूरत इस बातकी है कि तुम अपने कर्त्तव्यको अत्यन्त सूक्ष्म रूपसे पहचान लो और निश्चयात्मक बन जाओ। जो व्यक्ति तुम्हारी तरह व्यर्थकी बारीकियोंमें उतरता है वह उनमें उलझकर रह जाता है तथा अपने सामने पड़े बड़े तथा पर्वतके समान धर्मको नहीं देख सकता। मुझे पत्र नियमित रूपसे लिखते रहना। तुम प्रयागके लिए रवाना हुए और भुवरजी यहाँ आये।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९५३३) की माइक्रोफिल्मसे।

४९३. पत्र : मदनमोहन शर्माको

साबरमती आश्रम
शुक्रवार, ७ मई, १९२६

महोदय,

आपका पत्र मिला। तिलक फंडमें प्रायः एक कोटि रुपये इकट्ठे हुए थे। उसका हिसाब सब अखबारोंमें छप चुका है। उसकी किताब भी प्रकट हो चुकी है। महासभाके दफ्तरमें वह रिपोर्ट मिल सकता है। उस पैसेका अधिकांश हिस्सा खर्च हो गया है। और सब राष्ट्रीय विद्यालयोंमें, अस्पृश्यता निवारणमें और खादी प्रचारमें प्रायः खर्चा गया है।

(२) मेरा अभिप्राय है कि जो नेताका शरीर बरदास्त कर सकता है इसको हरगीज दूसरे या पहले वर्गमें मुसाफरी न करनी चाहिए।

(३) हिंदुमुस्लीम एकताको मै अवश्य संभवित मानता हूँ। क्योंकि एकता मनुष्यजातिका स्वभाव है। उसका उपाय यदि हिंदु या मुसलमान एक भी नहीं करेंगे तो भी काल तो कर ही रहा है। (४) जिनकी आर्थिक अवस्था अच्छी नही है वे और भी सादगीको अख्त्यार करके कम खद्दरसे अपना गुजारा करे, और इसी तरह रखे। आजकी परिस्थितिमें असहयोगी अपना धर्मका कष्ट उठाकर भी पालन करे।

मूल प्रति (एस० एन० १०८९९) की फोटो-नकलसे।

४९४. पत्र : फूलचन्दको

साबरमती आश्रम
शुक्रवार, ७ मई, १९२६

भाईश्री ५ फूलचन्द,

आपका पत्र मिला। भाई शिवलालको बवासीर हो और वे किसीसे उसकी बात तक न करें, इसे मै गुण नही मानता। उसे दोष मानता हूँ। अब उनके सेवा-कार्यमें विघ्न पड़ गया। कितने दिनतक शय्यावश रहेंगे, सो भी नही कहा जा सकता। इसपर पैसेका जो व्यय होगा सो अलग। लेकिन शिवलालको कौन समझा सकता है? अब तुरन्त जो उपाय उचित जान पड़े सो कर लें।

बढ़वान उद्योगालयके सम्बन्धमें आपका कहना मैं समझ गया हूँ। आपके पत्रसे मुझे कुछ ऐसी ध्वनि निकलती दिखाई देती है कि वढ़वानके बारेमें मैंने जो राय बनाई है उसमें अन्याय है और अमरेली कार्यालयका मै जो पोषण कर रहा हूँ उसमें पक्षपात है। आपको मै किस तरहसे समझाऊँ कि मै न तो किसीके साथ पक्षपात

कर रहा हूँ और न किसीका विरोध। पक्षपात तो मात्र खादीका है। अमरेली कार्यालयकी मैंने खुद जाँच की और दूसरोंसे करवाई तथा मुझे लगा कि इसे बन्द नहीं किया जा सकता। बढ़वान कार्यालयका मैंने अध्ययन नहीं किया था और आपकी कार्यदक्षतापर विश्वास होनेके कारण तथा देवचन्द भाईसे हमेशा उसकी स्थितिकी जानकारी मिलती ही रहती थी, इस कारण, मुझे उसकी व्यवस्थाकी जाँच करनेकी आवश्यकता भी महसूस नहीं हुई। जब खादी बेचनेका प्रश्न उठा तभी मेरी नजर बढ़वान खादी कार्यालयकी ओर गई तथा उसके कार्यकी जाँच करते हुए जब तुमसे उसका हिसाब सुना तब मैं चौंका। कातने, बुनने और पींजनेके बढ़वानमें ज्यादा दाम दिये जाते हैं अथवा नहीं, इस सवालका जवाब हाँमें हो तो क्या इस कार्यालयको चालू रखना बुद्धिमानी है? खादीकी प्रत्येक प्रवृत्तिके बारेमें मैं तो एकसूत्रका विचार करता हूँ। क्या कातनेवाली स्त्रियाँ बिना धन्धेके भूखों मरती हैं? यदि ऐसा हो और यदि हमारे सौभाग्यसे वे कातनेको तैयार हो जायें तब हमें खादी-प्रवृत्ति शुरू करनी चाहिए। इस सूत्रको ध्यानमें रखकर काठियावाड़में जितने कार्यालय चलाये जाने चाहिए उन्हें चलानेके लिए यदि स्वयंसेवक आवश्यक संख्यामें मिल जायें तो मैं अवश्य प्रयत्न करूँ। अब आपको जो लिखना हो सो लिखना और मुझे अपनी बात समझाना। अपनी पक्षपातहीन वृत्तिके लिए मैं अपने साथी कार्यकर्त्ताओंके प्रमाणपत्रोंका भूखा हूँ। ऐसे साथियोंमें से मैंने एक आपको भी माना है। इसीलिए आपको समझानेके अपने प्रयत्नोंमें मैं थकनेवाला नहीं हूँ।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९५३४) की फोटो-नकलसे।

४९५. पत्र: रामदत्त चोपड़ाको

साबरमती आश्रम
८ मई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैं नहीं समझता कि चेचकका टीका गायोंको मारकर बनाया जाता है। पर मैं समझता हूँ कि इसे बनानेमें उन्हें कष्ट देना जरूरी होता है।

आश्रमके नियम[1] श्री नटेसनके प्रकाशनमें परिशिष्टके रूपमें दिये गये हैं। सारी प्रतियाँ वितरित की जा चुकी हैं। नया संस्करण निकालनेका विचार किया जा रहा है, पर उसके प्रकाशनमें कुछ समय लगेगा।

मुझे खेद है कि मैं आपकी पुत्रीका जिम्मा नहीं ले सकूँगा, क्योंकि माता-पिताके बिना रहनेवाली लड़कियोंके लिए मेरे पास कोई प्रबन्ध नहीं है। और आपके लड़केकी उम्र तो इतनी कम है कि उसे किसी तरह दाखिल किया ही नहीं जा सकता।

१. देखिए खण्ड १३, पृष्ठ ९५-१०१।

मोचियोंके लिए झोंपड़ियाँ बनानेके सम्बन्धमें मैं आपको प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके अध्यक्षसे सम्पर्क स्थापित करनेकी सलाह दूँगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५४०) की माइक्रोफिल्मसे।

४९६. पत्र : मौलाना अबुल कलाम आजादको

साबरमती आश्रम
८ मई, १९२६

प्रिय मौलाना साहब,

आपका तार मिला। यह तार मुझे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीका अधिवेशन समाप्त होनेके बाद मिला। लेकिन क्या आप यह समझते हैं कि कांग्रेसका विशेष अधिवेशन बुलानेसे कोई प्रयोजन सिद्ध होगा। अधिवेशन उसी समय बुलानेसे लाभ हो सकता है जब हमारे पास ऐसी कोई नीति अथवा कार्यक्रम हो, जिसपर उसकी स्वीकृति लेनी हो। लेकिन दुर्भाग्यवश इस समय न तो हमारी कोई नीति है और न ही कार्यक्रम। इसके विपरीत हमारे शीर्षस्थ नेता भी एक-दूसरेपर अविश्वास करते हैं तथा जहाँ अविश्वास नहीं भी है वहाँ तथ्यों और विचारोंको लेकर मतभेद है।

ऐसी स्थितिमें कांग्रेस अधिवेशनसे, मौजूदा अवसादकी स्थितिमें केवल वृद्धि ही हो सकती है। ऐसा लगता है कि इस कठिनाईको, जिसका कोई हल हमें नहीं सूझ रहा है, समय ही हल करेगा।

कितना अच्छा होता कि हम कमसे-कम प्रत्येक दंगेके कारणोंका पता लगाने और उसके परिणामोंका निरूपण करनेका मार्ग निकाल सकते। परन्तु ऐसा लगता है कि इस साधारण-से कामको करनेकी क्षमता भी हममें नहीं रह गई है।

हृदयसे आपका,

मौलाना अबुल कलाम आजाद
कलकत्ता

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५४१) की फोटो-नकलसे।

४९७. पत्र : कुसुम और धीरुको

सावरमती आश्रम
शनिवार, ८ मई, १९२६

चि० कुसुम और धीरु,

तुम्हारा पत्र मिला। अब जो हो गया है मैं उसमें किसका क्या दोष है, इसका निर्णय नहीं करना चाहता। अब तो इतना ही चाहता हूँ कि वहाँ रहकर जो समय मिले उसका पूरा-पूरा लाभ उठाओ और यह लाभ इस तरह उठाओ: उठने, बैठने कातने आदिके बारेमें यहाँसे भी ज्यादा नियमका पालन करके वहाँके वातावरणपर अपनी छाप डालो और अपने निश्चयमें और भी दृढ़ बनो। मुझे पत्र लिखते रहना। मैं देखता हूँ कि अभी भी अक्षर सुधारनेकी बहुत जरूरत है। धीरुके तो बहुत कच्चे हैं। धीरु यदि अपनी सभी प्रतिज्ञाओंका वहाँ अच्छी तरहसे पालन करेगा तो उसके बम्बई जानेसे मुझे जो दुःख हुआ है, उसे भूल जाऊँगा। भानुमतीसे कहना कि यदि वह नियमपूर्वक चरखा कातने लगेगी और सवेरे चार बजे उठनेकी आदत डाल लेगी तो मैं मान लूँगा कि तुम दोनोंको वहाँ भेजनेसे बहुत लाभ हुआ है। देवदास वहाँ है। उसका ऑपरेशन होनेवाला है। उसके साथ बा तथा महादेवभाई गये हैं। यह सब तो तुम्हें मालूम ही होगा।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९५३५) की माइक्रोफिल्मसे।

४९८. पत्र : जयाको

सावरमती आश्रम
शनिवार, ८ मई, १९२६

चि० जया,

कुसुम और धीरुके वहाँ जानेसे एक लाभ तो हुआ ही है और वह यह कि तुम्हारा पत्र मुझे मिला। तुम्हारी लिखावट इतनी अविकसित है, यह मैं नहीं जानता था। इसमें सुधार तो अवश्य हो सकता है। यदि बच्चोंसे तुम बराबर नियमका पालन करवाओगी तो उनके जानेके दुःखको मैं भूल जाऊँगा। डाक्टर प्रभुदासकी तबीयत कैसी रहती है यह बताना। शेष कुसुम और धीरुको लिखे पत्रसे जानोगी।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९५३६) की माइक्रोफिल्मसे।

४९९. पत्र : मीठुबहन पेटिटको

साबरमती आश्रम
शनिवार, ८ मई, १९२६

प्रिय बहन,

तुम्हारा पत्र मिला; शहद भी मिला। मैं देखता हूँ कि आखिर मुझे महाबले-श्वर आना ही पड़ेगा। आज सर चुनीलाल मेहताका पत्र आया है। यह गवर्नरने ही लिखवाया दिखता है और इस पत्रमें उन्होंने मुझसे उनके पास ही ठहरनेके लिए कहा है। मुझे लगता है कि मुझे यह निमन्त्रण स्वीकार कर लेना चाहिए। बहुत करके आगामी बृहस्पतिवारको ही यहाँसे रवाना होऊँगा। मुझे रहना तो तुम्हारे साथ अथवा नरगिस बहनके साथ ही अच्छा लगता है। लेकिन हमें तो हर समय हमारा धर्म क्या है, यही खयाल रखना है।

मीठु बहन
फाउन्टेन हाउस
महाबलेश्वर

गुजराती प्रति (एस० एन० १९५३७) की फोटो-नकलसे।

५००. पत्र : जमनालाल बजाजको

साबरमती आश्रम
शनिवार [८ मई, १९२६]

चि० जमनालाल,

आखिर महाबलेश्वर तो जाना ही पड़ेगा। आज सर चुनीलाल मेहताका पत्र आया है। वह गवर्नरने ही लिखाया है, और उसमें सूचित किया गया है कि हो सके तो गवर्नरसे महाबलेश्वरमें ही मिल लिया जाये। उनके साथ ही रहनेका भी आमन्त्रण दिया है और आग्रह किया है। इसलिए यहींसे गुरुवारको रवाना होनेका इरादा रखता हूँ। इतनेमें देवदासका ऑपरेशन हो ही चुका होगा। आज तारकी राह देख रहा हूँ। महाबलेश्वर जानेमें बंगलेकी तजवीज नहीं करनी होगी। मोटरका क्या प्रबन्ध करना उचित होगा और तुमको साथ आना है या नहीं, इसका विचार कर लेना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (जी० एन० २८६२) की फोटो-नकलसे।

५०१. पत्र: जयसुखलालको

सावरमती आश्रम
शनिवार, चैत्र वदी ११, ८ मई, १९२६

चि० जयसुखलाल,

तुम्हारे एक प्रश्नका उत्तर देना रह गया है। गरीव कतैयोंकी मदद करनेके लिए पैसा खर्च करनेके वारेमें तुमने मुझे लिखा था। वहाँ तुम सौ रुपये तककी रकम खर्च कर सकते हो। वह कैसे खर्च की जाती है उसके वारेमें लिखना और इस सीमाके भीतर जो पैसे खर्च हों वे आश्रमसे मँगा लेना।

भाई लक्ष्मीदासने सूतकी मजवूतीकी जो जाँच की है उसके परिणाम साथ भेज रहा हूँ। इससे तुम देखोगे कि सूतकी मजवूती वढ़ानेकी ओर खूब ध्यान देनेकी जरूरत है। भाई लक्ष्मीदासकी गणनानुसार मजवूती ५० प्रतिशतसे कम नहीं होनी चाहिए। यदि सूत आठ दिनतक रखा रहा हो तो थोड़ा गीला करके क्यों नही दिया जा सकता? गीला सूत आजकलकी हवामें तो तीन घंटेमें विलकुल सूख जाता है।

अमरेली

गुजराती प्रति (एस० एन० १९५३८) की माइक्रोफिल्मसे।

५०२. पत्र: काका कालेलकरको

सावरमती आश्रम
शनिवार, ८ मई, १९२६

भाई काका,

तुम्हें पुस्तक लिख भेजना तो अभी मुल्तवी ही रखना होगा क्योंकि लिखनेके वहाने यदि तुम्हें पत्र न लिखूं तो पत्र और पुस्तक दोनोंके रह जानेकी आशंका है। मैंने सोचा था कि पत्र लिख सकनेके लालचमें मैं पुस्तक जल्दी लिखूंगा। लेकिन कांग्रेस कमेटीने तो मेरे पूरे तीन दिन ले लिये, जिससे कामका गिरनार हिमालय-जैसा वन गया है। उसपर भी आज आई डाकसे मैं देखता हूँ कि मुझे महावलेश्वर जाना ही होगा। होना तो कुछ नहीं है लेकिन जानेमें ही शिष्टता है, फिर उसका जो भी परिणाम हो।

डॉ० तलवलकरके प्रति आश्रमवासी उदासीन रहे हैं, ऐसा मुझे नहीं लगा। किन्तु मेरी उदासीनता — यदि उसे उदासीनता कहा जाये तो — आश्रमवासियोंमें भले ही प्रतिबिम्वित हुई हो।

जैतूनके तेलका उपयोग यदि मछलीके तेलके स्थानपर करना चाहते हो तो भले ही करो। कुछ लोग तो इसे मछलीके तेलसे भी अधिक अच्छा समझते हैं। भाई भंसालीने जेलमें इसीका उपयोग किया था।

तुम्हारी "वधू लक्षण परीक्षा" के साथ मेरी पर्ची डालनेकी आदतका तनिक भी सम्बन्ध नहीं है। पर्ची बेचारी इतना बोझ नहीं उठा सकती। उसमें देवताको ललचाने लायक कोई बात नहीं है लेकिन इसमें एक प्रकारकी तटस्थता है। जहाँ बुद्धिका उपयोग करनेका कोई कारण न हो, जहाँ दोनों वस्तुओंके होने या न होनेके प्रति उदासीनता हो और दो विकल्पोंमें से एकको किये बिना काम न चले, जहाँ कोई भला मित्र पंच बननेके लिए तैयार न हो वहाँ पर्ची-मित्रका उपयोग मुझे बहुत अच्छा लगता है। उससे समय बचता है और मनपर पड़नेवाले बोझसे भी व्यक्ति बच जाता है। जहाँ सिद्धान्तकी बात हो वहाँ पर्ची डालना अनैतिक माना जायेगा।

चोरी की जाये अथवा नहीं, इसके लिए पर्चियाँ डालनेके उपायका आश्रय नहीं लिया जा सकता। लेकिन 'क' के साथ घूमनेके लिए जायें अथवा नहीं, इस सम्बन्धमें वाद-विवाद करने और "हाँ, न" के समर्थनमें वेद मन्त्रोंके उद्धरण देनेसे पर्ची डालना क्या अच्छा नहीं कहा जायेगा? ऐसे कार्योंमें अन्तःकरणसे पूछने बैठें तो अन्तर्नादकी कोई कीमत न रहे और रसिक-जैसा बालक भी अन्तर्नादको बीचमें लाकर पाँव फैलाकर बैठ जाय [और कह दे कि मैं नहीं करूँगा।] असहयोग आन्दोलनमें अन्तर्नादके ऐसे दुरुपयोग क्या हमने नहीं देखे? जहाँ चौलाई और मेथी दोनों ही भाजियाँ पथ्य हों, जहाँ दोनों ही आसानीसे मिल सकती हों और जहाँ उनमें से केवल एकको ही लेना हो तथा इस बारेमें तुरन्त निर्णय न कर सकते हों, वहाँ उसे अन्तर्नादका प्रश्न बनाना ठीक है अथवा तटस्थ होकर पर्चीसे पूछ लेना ठीक है?

जब भाई हरिहर आयेंगे तब उनके बारेमें मैं देख लूंगा। भाई नरहरिने तो यह सोचा था कि हरिहरको सूरतमें एक बाल-मन्दिर खोलनेका काम सौंपा जाये। यदि सूरतके लोग ऐसा करनेको तैयार हों और इसके लिए पर्याप्त पैसा दें तो वे बाल-मन्दिर अवश्य शुरू करें, लेकिन विद्यापीठकी ओरसे हम यह प्रयोग नहीं कर सकते। भाई. . .को[1] शृंगार रसका रंग लग गया है यह बात मुझे ऐसी याद आती है कि भाई. . .ने[2] मुझे जेलमें ही कही थी।. . .[3] नामके हस्ताक्षरवाला एक अश्लील काव्य उन्होंने मुझे दिखाया था और जब मैंने पूछा कि यह. . .[4] कौन है तो उन्होंने बताया था कि यह आश्रमके ही. . .[5] हैं, ऐसा मुझे याद आता है। लेकिन सम्भवतः मैं भूल रहा होऊँ।. . .ने[6] नहीं शायद किसी दूसरेने कहा हो, इसपर तो भाई. . .के[7] आनेपर ही विचार किया जायेगा।

यूरोपकी यात्राके बारेमें अभी तो कुछ तय नहीं हुआ है। यह सच है कि स्वामीने भी मुझसे अपना विरोध प्रकट किया था। अमेरिका जानेमें केवल हजारों व्यक्तियोंके सम्मुख भाषण देनेकी ही बात थी। फिनलैंड जानेमें सारी दुनियासे आये हुए विद्यार्थी प्रतिनिधियोंके सम्मेलनमें जानेकी बात है। इन दो प्रस्तावोंमें बड़ा भेद

१ से ७. नाम छोड़ दिये गये हैं।

है। इसके अतिरिक्त अमेरिकामें भारतका सन्देश सुनानेकी बात थी और सुनानेके लिए सन्देश तो कुछ है नहीं, यहाँ तो केवल विद्यार्थियोंके साथ एक प्रकारका आध्यात्मिक-सम्बन्ध स्थापित करनेकी बात है, सन्देश नहीं है। यह सब सोचकर मैं फिनलैंड जानेको ललचाया हूँ। इसके बावजूद मनमें शंका तो है ही। इसीलिए मैंने अपनी शर्तें बताकर मुझे ले जानेकी जिम्मेदारी के० टी० पॉलपर डाली है। उन्होंने भी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेनेके बजाय मेरा पत्र जिनेवा भेज दिया है। इतना सब होनेपर भी यदि वे अपने निमन्त्रणको कायम रखते हैं तो जानेमें दैवी इच्छा है, ऐसा कहा जा सकता है न? मैं तो ऐसा ही मानूंगा।

उत्तमचन्दको यहाँ जो सुविधा है वह अन्यत्र नहीं हो सकती, ऐसा मेरा दृढ़ मत है और अब तो तलवलकरके इन्जेक्शन भी शुरू किये हैं। उसकी तबीयत तो अच्छी है ही।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९५३९) की फोटो-नकलसे।

५०३. नगरसेवा

अहमदाबाद शहरकी सफाईके सम्बन्धमें पिछले सात महीनोंसे लगातार जो उपाय किये गये हैं, डाक्टर हरिप्रसादने उनका वर्णन[1] किया है। मैं प्रत्येक नगर सेवकको उसे पढ़ जानेका सुझाव देता हूँ। जो नगर-सेवा करना नहीं जानता वह देश-सेवा भी नहीं कर सकता। सेवाका बदला सेवा ही है, ऐसा माननेवाले लोगोंकी मददसे सात महीनोंमें जो काम हो सका है उसे अहमदाबादकी नगरपालिका हजारों रुपये खर्च करके भी नहीं कर सकती थी। यह सफाई नगरपालिका और नागरिकोंके बीच सहयोगका एक नमूना है और यदि धनिक नगरवासियोंकी मदद न मिलेगी तो जो काम हुआ है वह सम्भवतः नष्ट हो जायेगा। अहमदाबादको सफाईमें आदर्श नगर बनानेके योग्य पर्याप्त धन आसानीसे मिल सकता है। डाक्टर हरिप्रसादने जो अनेक सुझाव दिये हैं धनिक वर्गकी सहायताके बिना उनपर अमल नहीं किया जा सकता। इस काममें लगाया हुआ पैसा, पैसा देनेवालोंको अच्छा लाभ दे सकता है, क्योंकि शहरमें काफी मैदान हों और उनमें वृक्ष हों, खण्डहर मकानोंका मलवा हटा दिया जाये और खराब पाखाने बन्द कर दिये जायें तो इससे नागरिकोंके स्वास्थ्यमें सुधार होगा और जमीनकी कीमतोंमें बढ़ती होगी और फिर इसपर जो रुपया खर्च होगा उसे नागरिक स्वयं अपनी देखरेखमें खर्च कर सकते हैं। इसलिए इस कार्यमें दिया गया दान नहीं बल्कि आर्थिक दूरदर्शिताका एक नमूना माना जायेगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ९-५-१९२६

१. हरिप्रसाद व्रजराय देसाईके ९-५-१९२५के नवजीवनमें प्रकाशित 'नगरकी सफाई', शीर्षक लेखमें।

५०४. टिप्पणी

पाटणवाड़ियोंमें सुधार[1]

पाटणवाड़िया कौममें जो सुधार हुए हैं उनसे पता चलता है कि यदि हम गरीब और जंगली माने जानेवाले हिन्दुस्तानके असंख्य लोगोंके जीवनमें प्रवेश करें तो कितना ज्यादा काम हो सकता है और इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि ऐसी ठोस सेवा करनेके लिए किस तरहकी शिक्षाकी आवश्यकता है। हम भाई रविशंकरकी सेवासे देख सकते हैं कि इस कार्यके लिए अक्षर-ज्ञान, अंग्रेजीका ज्ञान, डिग्रियों आदिकी अपेक्षा लोकप्रेमकी, कसे हुए शरीरकी और निर्भयताकी ज्यादा आवश्यकता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ९-५-१९२६

५०५. पत्र : ए० ए० पॉलको[2]

साबरमती आश्रम
९ मई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। कोई कार्यक्रम एक साल पहलेसे निश्चित रूपसे बना सकना मेरे लिए बहुत कठिन है। इसलिए मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि निमन्त्रणको मैं स्वीकार कर लूंगा, लेकिन अन्तिम निर्णय तो यथासमय ही होगा। हो सकता है कि कार्यक्रमकी अवधि कम करनी पड़े और ऐसा भी हो सकता है कि भारतीय मसलोंमें मैं इतना ज्यादा उलझा होऊँ कि भारतसे बाहर न निकल सकूँ। निमन्त्रणको स्वीकार करनेके साथ मेरा जो अनिश्चय जुड़ा हुआ है, पता नहीं उसके रहते सम्बद्ध संस्थाएँ मुझे निमन्त्रित करेंगी भी या नहीं।

कृपया उन मित्रोंको यह भी बता दें कि यदि मेरा भारतसे बाहर जाना हुआ भी तो मेरे साथ दो अन्य साथी भी होंगे।

१. गांधीजीने उपर्युक्त विचार, गुजरातकी एक पिछड़ी जाति 'पाटणवाड़ियों' में हो रहे सेवा-कार्योंकी मोहनलाल पण्ड्या द्वारा प्रेषित रिपोर्ट पढ़नेके बाद, व्यक्त किये थे।

२. गांधीजीने यह पत्र ए० ए० पॉलके ४-५-१९२६ के पत्रके उत्तरमें लिखा था। उस पत्रमें पॉलने लिखा था कि " . . . चीनके श्री टी० जेड० कूका उत्तर मुझे मिल गया है। उसमें उन्होंने आपके दौरेके हेतु, कार्यक्रम, तिथियों और व्याप्तिके बारेमें लिखा है और इसके लिए वे बड़े उत्सुक हैं। "

आपके साथी श्री मैक्यून जूनके शुरूमें आश्रम आ सकते हैं।

हृदयसे आपका,

श्री ए० ए० पॉल[1]
७, मिलर रोड
किलपॉक, मद्रास

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११३७०) की फोटो-नकलसे।

५०६. पत्र: मोतीलाल रायको

साबरमती आश्रम
९ मई, १९२६

प्रिय मोती बाबू,

आशा है कि ऋणके सम्बन्धमें लिखा मेरा पत्र[2] आपको मिल गया होगा। जिस इकरारनामेपर[3] हस्ताक्षर करना है, उसमें कृपया निम्न संशोधन कर लीजिए:

ब्याज प्रतिशत प्रतिवर्ष न होकर प्रति हजार प्रतिवर्ष होना चाहिए। ब्याज तो केवल नाममात्रका ही रखनेका खयाल है। एक सुधार और: जहाँ यह वाक्य आता है: "खादीका विक्रय मूल्य बुनाई होनेतक लगनेवाली लागत तथा उसका ६¼ प्रतिशत व्यवस्था व्यय, इन दोनोंके जोड़से ज्यादा नहीं होगा।" वहाँ उसकी जगह "खादीका विक्रय मूल्य संघ द्वारा समय-समयपर निर्धारित दरसे अधिक नहीं होगा", ऐसा कहिए।

इकरारनामेमें यह सुधार खादी-संस्थाओंको इस मामलेमें अपनी स्थितिमें आवश्यक परिवर्तन कर सकनेका अवकाश देनेके लिए किया गया है। इकरारनामेमें यही शर्त रखी गई है। जब आपके लिए यह मसविदा तैयार किया था, उस समय श्री बैंकर यहाँ नहीं थे और न मेरे पास संघ द्वारा निर्धारित नमूना ही था। वापस लौटनेपर उन्होंने इन कमियोंकी ओर मेरा ध्यान खींचा। कृपया मुझे क्षमा करें।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५४२) की माइक्रोफिल्मसे।

१. भारत, बर्मा और लंकाके ईसाई विद्यार्थी संघके महामन्त्री।
२. देखिए "पत्र: मोतीलाल रायको", १-५-१९२६।
३. देखिए "अ० भा० च० संघसे ऋण लेनेके लिए इकरारनामेका मसविदा", १-५-१९२६।

५०७. पत्र: रामेश्वरदास पोद्दारको

साबरमती आश्रम
रविवार [९ मई, १९२६][1]

भाई रामेश्वरजी,

आपका पत्र मिला। एकांतका अर्थ यह है कि आपकी धर्मपत्नीसे आपको वियोगमें रहना चाहिये। नासिक जाकर कोई एकान्त स्थलमें रहना अवश्य ठीक होगा। और ठंडी ऋतुका आरंभ होनेके बाद आश्रममें भी रह सकते हैं।

आपका,
मोहनदास

मूल पत्र (जी० एन० १६३ ए) की फोटो-नकल से।

५०८. पत्र: वसुमती पण्डितको

साबरमती आश्रम
रविवार, [९ मई, १९२६][2]

चि० वसुमती,

तुम्हारा पत्र मिला। इस बारकी लिखावट अच्छी कही जा सकती है। तुम जब आओगी तब यही कोठरी न सही तो भी मीरा बहनके साथवाली कोठरी तो अवश्य दूंगा। मुझे दो-तीन दिनोंके लिए महाबलेश्वर जाना होगा। देवदासको एपेन्डिसाइटिस होनेके कारण बम्बई ऑपरेशन करानेके लिए भेजा है। आज हो गया होगा। बा और महादेव साथ गये हैं। तुमने समाचारपत्रोंमें ६ तारीखको महाबलेश्वर जानेकी जो खबर पढ़ी थी वह तो गलत थी। रामदास फिलहाल महुवामें होगा।

बापूके आशीर्वाद

श्रीमती वसुमतीबहन धीमतराय नवलराम
केलापीठ

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ४७०) से
सौजन्य: वसुमती पण्डित

१. डाककी मुहरसे।
२. पत्रमें आये देवदासकी बीमारी तथा गांधीजीकी महाबलेश्वर यात्राके उल्लेखसे।

५०९. पत्र : जमनालाल बजाजको

साबरमती आश्रम
रविवार, ९ मई, १९२६

चि० जमनालाल,

तुम्हारा पत्र मिला। आज शामतक तुम्हारा तार आनेकी आशा रखूँगा। मुझे कोई चिन्ता नहीं है। वाको कहना कि रामीकी लड़कीको बिलकुल आराम है। वाका सन्देश मुझे मिला था। मणिबहन और छोटी काशी रसोई करती है। आज रामीकी मौसी कुमीबहन आई है; उसे लेनेके लिए कान्ति और मनु स्टेशन गए थे। बा यहाँकी चिन्ता न करें।

रामेश्वरप्रसाद, उसकी माताजी आदि कल यहाँ आये। आज वहाँके लिए रवाना हो रहे हैं। महाबलेश्वर जानेके बारेमें मेरा पत्र तुम्हें मिल गया होगा। मैं समझता हूँ कि महादेवको तो वहीं रुकना होगा। महादेवको कोई भी सामान वहाँ लाना हो तो तुम्हें बतला दे। ओढ़नेके लिए कुछ खास लेना होगा, ऐसा मैं मानता हूँ। ऐसा लगता है कि वहाँ तीन दिन रुकना होगा — शनि, रवि और सोम। मंगलवारको वहाँसे चलकर सिंहगढ़में काकासे मिलनेकी बात भी मनमें है और हो सके तो देवलाली भी हो आया जाये। ऐसा करनेसे शायद दो दिन और लग जायेंगे। मंगलवारको सुबह चलकर १०–११ बजे सिंहगढ़ पहुँच सकते हैं और सिंहगढ़से उसी दिन शामको उतरकर देवलाली जाना सम्भव हो सके तो जायें, यह भी मनमें आता है। लेकिन अगर महादेवको ऐसा लगे कि देवलाली जानेकी जरूरत नहीं है तो सोचता हूँ कि देवलाली जानेकी बात छोड़ दी जाये, क्योंकि अगर देवलाली एक-दो दिन न रहा जाये तो वहाँ जानेमें कुछ सार नहीं। अभी तो मथुरादासको इसके बारेमें कुछ नहीं लिख रहा हूँ। महादेवकी सलाहपर इसका निर्णय करनेका विचार किया है। पूनासे मोटरका बन्दोबस्त तुम कर लोगे न? ट्रेन सवेरे १०॥ बजे पूना जाती है। अगर ऐसा हो तो देवदासको देखकर १०॥ बजेकी ट्रेनमें बैठ जाना और उसी रात महाबलेश्वर पहुँच जाना ठीक होगा। पूनासे दो मोटरोंका इन्तजाम हो तो अच्छा रहेगा, ऐसा लगता है।

ऑपरेशनके बारेमें अभी-अभी वल्लभभाईकी ओरसे टेलीफोन मिला। ईश्वरकी कृपा!

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (जी० एन० २६८३) की फोटो-नकलसे।

५१०. पत्र : देवदास गांधीको

साबरमती आश्रम
रविवार, ९ मई, १९२६

चि० देवदास,

तुम्हारे सब पत्र अर्थात् तीनों आज एक साथ मिले। ऐसा कैसे हुआ होगा, सो समझमें नहीं आता। जब यह पत्र तुम्हें मिलेगा तबतक तुम्हारे ऑपरेशनको २४ घंटे हो गये होंगे और तुम हास-परिहास कर रहे होगे। मुझे चिन्ता जैसी कोई बात तो रही ही नही है। शुरूसे ही ऑपरेशनका डर नही लगा। हालाँकि मेरे सामने एक ऑपरेशन हुआ था और उसका परिणाम मृत्यु निकला था। लेकिन मैं देख सका था कि उसका कारण डाक्टरकी अयोग्यता थी। यह जोहानिसबर्गकी बात है। आज कुमी यहाँ आई है। उसने तो सोचा था कि बा होगी ही। पण्डितजी आज आ गये हैं और इस तरह आश्रम पुनः भरता जा रहा है। अन्य समाचार तुम्हें नही लिखता; जमनालालजीको लिख रहा हूँ। तुम्हे यह जो विश्राम मिला है इसका उपयोग तुम आत्म-निरीक्षण करनेमें करना। बहुत करके मैं शुक्रवारको तो तुम्हे मिलूँगा ही।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९५४३) की फोटो-नकलसे।

५११. पत्र : जमनालाल बजाजको

सोमवार
१० मई, १९२६

चि० जमनालाल,

तुम्हारा और महादेवका — दोनोंके पत्र मिले। मै तो निश्चिन्त ही था; और हूँ। क्लोरोफार्ममें कुछ जोखिम तो होती ही है। वह तो किसी भी ऑपरेशनमें रहता ही है। देवदासको कहना कि अभी भी दर्द होता हो तो घबराए नहीं। कितने ही रोगियोंको दर्द रहता है। पर वह दो दिनका होता है। यह पत्र मिलनेतक तो दर्द बिलकुल चला गया होगा।

महादेवका भेजा हुआ अनुवाद मिल गया है। यह और वालजीका अनुवाद मिलाकर अब (२॥ बजे) तक सत्रह कालम [मेटर] तैयार हो गया है। इसलिए अब पत्र लिखने बैठा हूँ।

तुम्हारी इन्दौर-यात्रा मुल्तवी करनेकी मै जरूरत नहीं देखता। महाबलेश्वरमें तो कुछ भी होनेवाला नहीं है। इन्दौरमें तो काम है। यहाँसे मैं किसे साथ लाऊँगा, यह निश्चय नहीं किया है। कोई एक होगा। बहुत करके तो सुब्बैया ही होगा।

मैं पहली ट्रेनसे आऊँगा। मुझे रेवाशंकरभाईके यहाँ ले जाना। देवदासकी तबीयत ठीक होगी तो नहा-खाकर उसे देखने जाऊँगा। अन्यथा सीधे स्टेशनसे ही देखने चला जाऊँगा। पूना तो उसी दिन जाना चाहिए, उसमें मुझे कोई तकलीफ नहीं होगी। उसी रात यानी शुक्रवारको ९ बजे महाबलेश्वर पहुँच जानेका इरादा है। रेवाशंकरभाईको खबर दे देना।

तुम्हारा परिचय है तो भी मेहताको मोटरके लिए न लिखा होता तो ठीक होता। वह सरकारकी ओरसे बन्दोबस्त करे तो ठीक नहीं होगा। पर अब कोई फेरफार न करना।

तुम देखोगे कि शुक्रवारको ही महाबलेश्वर पहुँच जानेसे गवर्नरको मिलनेके लिए दो ही दिन रह जायेंगे। मंगलवारको सवेरे वहाँसे चल देना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (जी० एन० २८६४) की फोटो-नकलसे।

५१२. पत्र : के० सन्तानम्को

सावरमती आश्रम
११ मई, १९२६

प्रिय सन्तानम्,

राजगोपालाचारी जब आश्रम आये थे, उस समय उन्होंने मुझसे आपकी कठिनाइयोंके बारेमें बातचीत की थी। मुझे आपसे सहानुभूति है। लेकिन, आचारके किसी सिद्धान्तका उसकी पूरी विशुद्धतामें पालन करना कठिन है। कोई इसके लिए अधिकसे-अधिक प्रयास करे, यह तो ठीक है, लेकिन जबतक उस आदर्श ऊँचाईतक न पहुँचूँगा तबतक सेवा-कार्य ही न करूँगा, ऐसा आग्रह रखनेका मतलब तो उस ऊँचाई तक पहुँचनेकी सम्भावनाको ही समाप्त कर देना है। हम सचमुच सेवा-कार्य करके और सेवा-कार्य करते हुए गलतियाँ करनेकी जोखिम उठाकर ही ऊपर उठते हैं। हममें से कोई भी व्यक्ति सर्वथा त्रुटिहीन नहीं है। हममें से किसी भी व्यक्तिमें इतनी सामर्थ्य नहीं है कि वह हमारी समस्त आध्यात्मिक महत्वाकांक्षाको साकार कर सके। फिर भी, हमें अधिकसे-अधिक विनम्र ढंगसे सेवा-कार्य जारी रखना है और यह आशा बनाये रखनी है कि इस सेवाके बलपर हम कदाचित् किसी दिन उस महत्वाकांक्षाको साकार कर सकेंगे। अगर हम सभी यही कहेंगे कि जबतक हम वैसे पूर्ण नहीं बनते तबतक सेवाकार्य करेंगे ही नहीं, तब तो कोई सेवा-कार्य होगा ही नहीं। असलियत यह है कि वह पूर्णता सेवाके द्वारा ही आती है। अगर आप यह कहें कि जबतक हम पूर्ण नहीं बन जाते तबतक हमें सत्ता नहीं लेनी चाहिए या उसे स्वीकार नहीं करना चाहिए तो मैं आपसे पूरी तरह सहमत हूँ। और इसलिए, कभी कोई सत्ता न लेना और यदि मजबूरन लेनी ही पड़े तो उसका उपयोग मात्र सेवाके लिए करना

सबसे अच्छा है। इसलिए, मैं आशा करता हूँ कि आपको अपने अन्दर जो दोष दिखाई दें, उनके बावजूद आप तबतक खादी-कार्य करना नही छोड़ेंगे जबतक कि वे दोष आपके उस सेवाकार्यमें बाधक न हो। इस प्रकार, जो व्यक्ति बेईमान अथवा शराबी है या ऐसे ही किसी अन्य दोषका शिकार है, वह स्वभावतः इस सेवाकार्य-के लिए अनुपयुक्त है। लेकिन उदाहरणके लिए जो व्यक्ति बहुत कोशिश करके भी अपनी पत्नीके साथ ऐसा सम्बन्ध नही बना पाता हो, मानो वह उस स्त्रीका भाई है, वह उस सेवाकार्यके लिए अनुपयुक्त नही है। मेरा खयाल है, मैंने अपनी बात काफी साफ समझा दी है। और अब मैं आशा करता हूँ कि आप खादीकार्यमें, जिससे आपको इतना प्रेम है और जिसे आप इतनी अच्छी तरह करते है, फिरसे लग जायेंगे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० सन्तानम्
कुम्मुट्टिट थिडाल
जिला तंजौर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५४५) की माइक्रोफिल्मसे।

५१३. पत्र : शरदेन्दु बी० बनर्जीको

साबरमती आश्रम
११ मई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि आप सचमुच चाहते क्या हैं। क्या आप कुछ दिन मेरे साथ रहना चाहते हैं? अगर आप रहना चाहते हैं तो इस बीच आपका क्या करनेका इरादा है? आप तो जानते ही हैं कि मेरा जीवन बड़ा व्यस्त है। मुझे लोगोंसे बातचीत करनेका समय नही मिलता, और जबतक मुझे किसीसे काम नही होता, तबतक मैं उससे शायद ही कभी बातचीत करता हूँ। इस-लिए अगर कोई मेरे पास आता है तो उसे तुरन्त किसी-न-किसी उपयोगी काममें लगा दिया जाता है और उसे शुरुआत आम तौरपर पाखाने आदिकी सफाई तथा सूत कातनेसे करनी पड़ती है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत शरदेन्दु बी० बनर्जी
१३, एडमन्स्टन रोड
इलाहाबाद

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५४६) की माइक्रोफिल्मसे।

५१४. पत्र : सी० बी० कृष्णको

साबरमती आश्रम
११ मई, १९२६

प्रिय कृष्ण,

तुम्हारा पत्र मिला। रुस्तमजी भवनके लिए भी सुझाव अ० भा० च० संघकी ओरसे आना चाहिए।

यदि तुम्हें महीनेमें पर्याप्त छाछ मिल जाता है तो तुम्हारी खुराक अच्छी है। यह सब तुम्हें मुफ्तमें कौन देता है? क्या आंध्र देशमें छाछ मुफ्त देनेकी प्रथा है? क्या तुम्हें उसे माँगना पड़ता है? अथवा माँगे बिना ही तुम्हे भेज दिया जाता है? विस्तारसे लिखो कि एक रुपयेमें हर महीने तुमको क्या और कितने फल मिलते हैं। तुम्हारी खुराककी तालिका शास्त्रीय रीतिसे तैयार की जानी चाहिए; और शास्त्रीय तालिका वह है, जिसमें जो वस्तुएँ तुम खाते हो उनके वजन और मूल्य सब दिये जायें। तुम हमेशा, यानी चावलका दाम दुगुना हो जानेपर भी, जैसा कि अकसर हो जाता है, सवा रुपयेका ही चावल नहीं खाते होगे। चावल आदि मुख्य खाद्य तो चाहे उनकी कीमतें कुछ भी हों, तुम्हें उतनी ही मात्रामें लेने पड़ेंगे।' इसलिए मैं चाहूँगा कि तुम मुझे, मुफ्त मिल जानेवाली वस्तुओं समेत, जो-कुछ लेते हो, सबकी सही मात्रा तथा कीमत लिख भेजो।

मैं कार्यकर्त्ताओंका मार्ग-दर्शन करनेके लिए विभिन्न संस्थाओंमें दी जानेवाली खुराकका परिमाप (स्केल ऑफ डाइट) प्रकाशित करना चाहता हूँ। सब चीजें पूरी-पूरी लिखो, इत्यादि मत लगाओ। जैसे "नमक आदि" के बजाय तुम यह लिखो कि तुम कितना नमक, हल्दी, अदरक या दूसरे मसाले खाते हो।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५४७) की माइक्रोफिल्मसे।

५१५. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

साबरमती आश्रम
११ मई, १९२६

आपके दोनों पत्र मिले। इस पत्रके साथ केलप्पनका पत्र भेज रहा हूँ। आपने जो-कुछ किया है, बिलकुल ठीक किया है। उन्हें अपने कामका ब्यौरा आपको समय-समयपर अवश्य देना चाहिए।

मैं सन्तानम्को पत्र[1] लिख रहा हूँ, जिसकी प्रति आपको साथमें भेज रहा हूँ। रामनाथनके बारेमें मैं शंकरलालसे बात करूँगा। मुझे किसी कठिनाईकी आशंका नहीं है।

फिनलैंड जानेके बारेमें पर्ची उठानेकी विधिसे कुछ तय नहीं कर सकता। और यदि करूँ भी तो उसके लिए अब बहुत देर हो चुकी है। तथापि आपकी जैसी आशंका मुझे भी है। मैंने अपनी शर्तें बता दी हैं और यदि उनके बावजूद वे मुझे बुलाना चाहते हैं तब तो जानेमें कुछ सार है, अन्यथा नहीं।

भले ही यहाँसे आपको किसीको अस्थायी तौरपर बुलाना पड़े, लेकिन आप जूनमें तो दौरेके लिए तैयार रहेंगे ही। रहेंगे न? छोटालाल आपके लिए कैसा रहेगा? वह वहाँ ज्यादा दिनोंतक नहीं रह सकेगा। लेकिन यदि वह आपके लिए कुछ सहायक हो सकता है और आपको कुछ राहत दे सकता है तो उसको दो-तीन महीनेके लिए वहाँ खुशी-खुशीसे रहनेको राजी किया जा सकता है।

मैंने अब शंकरलालसे बात कर ली है। उनका कहना है कि यदि रामनाथनका वेतन बढ़ाकर १५० रुपये कर दिया जाता है तो अन्य लोग भी अपना वेतन बढ़ानेके लिए अवश्य जोर डालेंगे। चरखा संघ-जैसी सार्वजनिक और व्यापक संस्थाके लिए स्थायी नियमोंसे अलग हटना जोखिमका काम होगा। साथ ही मैं आपकी या यों कहिए कि रामनाथनकी कठिनाई भी समझता हूँ। इसलिए मेरी सलाह है कि जबतक अत्यावश्यक हो तबतक आप रामनाथनको सेवासंघसे पैसे देते रहें। उसके लिए शायद जमनालालजीसे सलाह करनी होगी, जो आप कर लें; अथवा यदि आप चाहें तो मैं ही कर लूँ। यदि इसे कुछ दिनोंके लिए स्थगित किया जा सकता है तो अपना दौरा प्रारम्भ करनेसे पहले आप यहाँ आ जायें और शंकरलालसे इसपर चर्चा कर लें

१. देखिए "पत्र : के० सन्तानम्को", ११-५-१९२६।

मुझे विश्वास है कि रामनाथनके वेतनमें जो वृद्धि की जायेगी, उसे वह अ० भा० च० संघसे ही लेनेका आग्रह नहीं करेगा।

आपका,

श्रीयुत च० राजगोपालाचारी
गांधी आश्रम
तिरुचेनगोडु

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५४८) की फोटो-नकलसे।

५१६. पत्र : काका कालेलकरको

साबरमती आश्रम
मंगलवार, ११ मई, १९२६

भाईश्री ५ काका,

बकरी माताके बारेमें तुम्हारा दूसरा पत्र मिला है। अब तो शायद पुस्तक भेजनेके बजाय यदि मैं सिंहगढ़ आया तो इस कामको भाषणसे ही निपटा दूंगा। यहाँसे गुरुवारको निकलकर शुक्रवारको महाबलेश्वर पहुँचनेकी जो बात थी सो तो टल गई, क्योंकि गवर्नरके लिए आगामी सप्ताह अधिक सुविधाजनक है। कब रवाना हो सकूँगा, यह तो बादमें ही कहा जा सकेगा। बाकी, देवदासने ऑपरेशन कराया है इसलिए उससे भी अवश्य ही मिलना है। बम्बई रास्तेमें पड़ता है इसलिए देवदाससे मिलनेकी खातिर भी मैं कदाचित् जल्दी निकलूँ। किन्तु यह बात देवदासकी इच्छापर निर्भर करेगी।

अनुवाद-योग्य पुस्तकोंके बारेमें तुमने जो लिखा है उससे मैं अक्षरश: सहमत हूँ। मैंने तो यह जमनादास स्मारक मालाके खयालसे पूछा था। तुम्हारी तैयार की हुई सूची न तो शंकरलालके पास है और न स्वामीके। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि भाषान्तर अच्छे व्यक्तियोंसे ही कराना चाहिए और पुस्तकें भी ऐसी होनी चाहिए जो लोगोंके लिए तुरन्त उपयोगी सिद्ध हों और जो समझमें आ सकें। तुमने तो अपने पत्रमें पुस्तकोंका ढेर लगा दिया है। लेकिन इस मालाके लिए अभी फिलहाल कौनसी पुस्तकें पसन्द की जायें, इस बारेमें विचार करना बाकी है। इसलिए यदि इसपर विचार कर लो तो अच्छा है।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९५३१) की फोटो-नकलसे।

५१७. पत्र : महादेव देसाईको

आश्रम
बुधवार [१२ मई, १९२६][1]

चि० महादेव,

तुम्हारा पत्र मिला। जमनालालजीका तार भी मिला। अभी-अभी सर चुनीलालका तार आया है। गवर्नर मंगलवारको मिलेंगे। इसलिए अभी तार दे रहा हूँ कि मैं कल रवाना होऊँगा। पहली ट्रेनसे निकलूंगा। अन्य कार्यक्रम वहाँ आकर तय करेंगे। मेरी इच्छा तो यह है कि शुक्रवारकी रातको ही देवलाली हो आऊँ। और रविवारको सवेरे वापस बम्बई पहुँच जाऊँ। रविवार और सोमवार बम्बईमें बिताकर 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' को पूरा किया जाये और मौन भी रखा जाये। सोमवारकी रातको मौन छोड़कर पूना जाऊँ और पूनासे तुरन्त महाबलेश्वरकी गाड़ीमें बैठ जाऊँ। नहाना-धोना, खाना-पीना महाबलेश्वरमें ही किया जाये। ऐसा करनेसे कमसे-कम परिश्रम होगा। लेकिन इसमें जो फेर-बदल करना हो सो सब सोच रखना और जब मैं वहाँ आऊँगा तब कर लेंगे। मंगल-बुध महाबलेश्वरमें रहकर गुरुवारको सवेरे वहाँसे निकल पड़ेंगे। रास्तेमें सिंहगढ़ जायें और सिंहगढ़से दिन ढले चल पड़ें और पूनासे ट्रेन पकड़ लें, सवेरे बम्बई पहुँचें और शनिवारको सुबह अहमदाबाद। इसमें कोई दिन बच सकता है ऐसा मैं नहीं देखता। महाबलेश्वरको दो दिन देना ही चाहिए। सोमवार महाबलेश्वरमें बितानेका विचार करें तो हो सकता है, लेकिन इससे तो रविवार और सोमवार देवदासके पास बिताना ज्यादा ही इष्ट लगता है अथवा हमें एक दिन देना हो तो मथुरादासको दे सकते हैं। सोमवार तो बम्बईमें ही होना चाहिए।

अब तुम्हें लिखनेको कुछ और नहीं रहता। एक बात तो भूल ही गया। कुमीके अत्यन्त आग्रहके सामने मुझे झुकना पड़ा है और कान्ति, रसिक तथा मीनु कल राजकोट जा रहे हैं। वह शुक्रवारको उन्हें वापस भेज देगी, यह शर्त है। मैंने जब इन बच्चोंसे पूछा तब मैंने देखा कि उनकी जानेकी इच्छा है इसलिए उन्हें भेजना ही मुझे ठीक लगा।

रमणीकलालने आजसे दस दिनका उपवास आरम्भ किया है। उसका कारण मात्र यह है कि अनेक वर्षोंसे उन्हें उपवास करनेकी तीव्र इच्छा रही है। अतएव अब भणसालीको [अपने उपवासके] अन्तिम दिनोंमें एक साथी मिल गया है। भणसालीकी गाड़ी तो उत्तम ढंगसे चल रही है। आज १२ वाँ दिन है लेकिन उन्हें कुछ भी महसूस नहीं होता। चेहरेपर अभी उपवासका ऐसा असर नहीं है जो साफ-साफ

१. पत्रमें गांधीजीकी यात्राके कार्यक्रमकी चर्चा तथा देवदासकी तबीयत सुधरनेकी बातके उल्लेखसे।

दिख जाये। नींद अच्छी ले सकते हैं; एनीमा लेते हैं जिससे दस्त हो जाता है। पानी खूब पीते हैं। एक घण्टा खुद पढ़ते हैं और थोड़ा दूसरोंसे धार्मिक पुस्तकोंका वाचन करवाते हैं।

देवदासकी तबीयत अब अच्छी है, इसलिए . . .[१] आ जाये तो चलेगा। रामी अकेली होगी इससे उसे कुछ बुरा लगेगा, हालाँकि मणि, राधा आदि उसकी खूब सँभाल रखते हैं। साथमें सुब्बैयाको लानेकी बात सोचता हूँ।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९४९४) की फोटो-नकलसे।

५१८. पत्र: अ० भा० च० संघके मन्त्रीको

साबरमती आश्रम
१२ मई, १९२६

प्रिय महोदय,

आपके इस ८ तारीखके पत्र-संख्या २७४३ के सम्बन्धमें

अभय आश्रमके कर्त्ता-धर्त्ता लोगोंने व्यक्तिगत जमानतपर २०,००० रुपयेतक उधार लेनेकी अनुमति माँगते हुए जो प्रार्थनापत्र लिखा है, उसके सम्बन्धमें मेरा विचार यह है कि अगर इस पैसेका उपयोग आश्रमके कार्योंको आगे बढ़ानेमें करना हो तो यह अनुमति दे देनी चाहिए।

हृदयसे आपका,

मन्त्री
अ० भा० च० संघ
अहमदाबाद

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११९७७) की माइक्रोफिल्मसे।

१. जैसा कि साधन-सूत्रमें है।

५१९. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

साबरमती आश्रम
१२ मई, १९२६

प्रिय सतीश बाबू,

मैं चाहता हूँ, आप कलकत्ताके दंगेके विषयमें अपनी कलमसे सब-कुछ सही-सही लिख भेजें। पता नहीं छोटालालने आपको मेरा पत्र दिया या नहीं और वह अपना काम कैसा कर रहा है। खैर, यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि आपने अपना आहार बदल दिया है और अब आप अधिक पौष्टिक चीजें खा रहे हैं। कृपया इसे जारी रखें। अगर आप अपने शरीरको दुर्बल बना लेते हैं या बीमार हो जाते हैं तो यह अपराध होगा। पौष्टिक आहारपर कुछ रुपये खर्च करनेमें कोई हर्ज नहीं है। यह खर्च उचित ही होगा। मैं जानता हूँ कि आप जिह्वा सुखके लिए भोजन करनेवाले आदमी नहीं हैं, लेकिन अगर जीनेके लिए किसी चीजकी जरूरत हो तो उसकी व्यवस्था करनी ही चाहिए।

हेमप्रभा देवीने मुझे एक बहुत छोटा-सा पत्र लिखा है। उससे तो मैं कुछ समझ ही नहीं पाया। उनसे कह दीजिए कि इससे काम नहीं चलेगा। उन्हें अपने मानसिक ऊहापोह, आशाओं और आशंकाओं, पसन्द और नापसन्दगीके बारेमें विस्तारसे लिखना चाहिए।

आपका,
बापू

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० १९५५०) की माइक्रोफिल्मसे।

५२०. पत्र : लूसियन जैक्विनको

१२ मई, [१९२६]

मेरी सलाह है कि मेरे लेखोंको ध्यानसे पढ लेनेके बाद ही कोई कदम उठाइए।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १२४१६) की फोटो-नकलसे।

५२१. पत्र : जे० लाइल टेलफोर्डको[1]

१२ मई [१९२६]

अगर आप कृपापूर्वक मुझे अपनी पत्रिका भेजें तो पढ़कर देखूं कि मैं उसके लायक कोई चीज भेज सकता हूँ या नहीं।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १२४३२) की फोटो-नकलसे।

५२२. पत्र : इ० एच० जेम्सको

साबरमती आश्रम
१२ मई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मित्रगण मेरे पास जितना ज्यादा साहित्य भेजते रहते हैं, अभी उस सबको पढ़नेके लिए समय निकाल पाना मेरे लिए कठिन है।

आप मुझसे अद्वैतवाद और द्वैतवादका भेद बतानेको कहते हैं। अद्वैतवादी सब-कुछका मूल ईश्वरको मानते हैं और सिर्फ ईश्वरके अस्तित्वको ही स्वीकार करते हैं और इसलिए ईश्वर और उसकी सृष्टिमें पूर्ण तादात्म्यका आग्रह करके चलते हैं। द्वैतवादी यह दिखानेकी कोशिश करते हैं कि ईश्वर और जीव एक नहीं हो सकते।

हृदयसे आपका,

श्री इ० एच० जेम्स
कंकॉर्ड मास, संयुक्त राज्य अमेरिका

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १२४३४) की फोटो-नकलसे।

१. अपने २५-२-१९२६ के पत्रमें टेलफोर्डने गांधीजीसे सामाजिक प्रगतिके उद्देश्यसे प्रकाशित अपनी मासिक पत्रिका इन्टरनेशनल फोरमके लिए कोई लेख भेजनेका अनुरोध किया था।

५२३. पत्र : कृष्णदासको

साबरमती आश्रम
१२ मई, १९२६

प्रिय कृष्णदास,

तुम्हारा तार मिला। उसके मिलनेसे पहले हमें यह नहीं मालूम था कि हरदयाल बाबूने उपवास तुम्हारे पिताजीके व्यवहारके कारण शुरू किया था। उन्होंने पत्र लिखकर मुझसे आशीर्वाद माँगा था। मुझसे उनके इस निवेदनको टालते नहीं बना। लेकिन तुम्हारा तार पानेके बादसे मैं सावधान हो गया। मुझे अब एक तार मिला है कि उपवास तोड़ दिया गया है, क्योंकि चाँदपुरके कुछ लोगोंने स्कूलके भवनका खर्च उठानेकी जिम्मेदारी ले ली है।

मैं तुम्हारे पत्रका इन्तजार करता रहा हूँ, लेकिन वह अभीतक नहीं आया है। गुरुजी कैसे हैं? तुम्हारा कैसा चल रहा है? मैंने तुम्हें बताया था या नहीं कि प्यारेलाल कुछ समयतक मथुरादासके पास रह आया है? देवदास पीलियामें पड़ा हुआ है और वापस आ गया है। रविवारको उसका अपेन्डिसाइटिसका ऑपरेशन हुआ है। बा और महादेव बम्बईमें उसके पास हैं। देवदासकी हालत बिलकुल ठीक चल रही है। कृषि-सम्बन्धी मसलोंकी बाबत बात करनेके लिए गवर्नरके बुलावेपर मैं महाबलेश्वर जानेवाला हूँ; तभी देवदासको देखता जाऊँगा, ऐसी सम्भावना है।

तुम्हारा,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५४९) की माइक्रोफिल्मसे।

५२४. पत्र : सेवारामको

साबरमती आश्रम
१२ मई, १९२६

प्रिय मित्र,

आत्माका अस्तित्व शरीरसे अलग है तथा वह शरीरके न रहनेपर भी बनी रहती है — इस जीवन्त विश्वाससे निर्भीकता आती है। और ऐसा विश्वास सभी सांसारिक इच्छाओंको लगातार निस्सार समझनेसे प्राप्त होता है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सेवाराम
२२, जेल रोड
लाहौर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५५१) की फोटो-नकलसे।

५२५. पत्र : छोटालालको

आश्रम
बुधवार, १२ मई, १९२६

चि० छोटालाल,

तुम्हारा पत्र मिला। मेरे साथ की हुई प्रतिज्ञा याद रखना कि वनवासमें अपने शरीरको तुम्हें खूब कसना है और वह प्रसन्न रहे बिना नहीं हो सकता। दूध, दही जो भी माफिक आये निस्संकोच ठीक मात्रामें लेना ही चाहिए। अभी तो वहाँ शरीरको अच्छी तरहसे कसना और जो काम हो सके वह करना। इस समय विनोबा वहाँ होते तो तुम्हें अधिक आनन्द आता, यह मैं समझता हूँ। लेकिन अब विनोबाकी गद्दी जितनी बने उतनी उन्हें सँभालना है। "जितनी बने" यदि क्रिया-विशेषण न लगाना पड़े तो कितना अच्छा हो। ऐसा करना तुम्हारे हाथमें ही है। राजाजीको मैं पत्र लिख रहा हूँ। वे तो तुम्हें अवश्य स्वीकार करेंगे। उन्हें १५ जूनतक यहाँ आ ही जाना चाहिए। यह समय अब बहुत दूर नहीं है इसलिए मैं मानता हूँ कि वे यहाँ आकर ही निश्चय करेंगे। तथापि देखता हूँ कि क्या होता है। तुम अपनी मनोदशाका मुझे पूरा-पूरा चित्रण करते रहना।

खानेका क्या प्रबन्ध किया है सो बताना।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९५५३) की माइक्रोफिल्मसे।

५२६. कट्टरपन

पूर्वग्रह बहुत मुश्किलसे दूर होते हैं। यद्यपि यह बात आम तौरपर कट्टरपन्थी हिन्दू-समाज भी स्वीकार करता है कि दलित वर्गोंके साथ हिन्दुओंने अमानवीय अन्याय किया है, किन्तु कुछ लोग जो अन्य बातोंमें काफी उदार दृष्टिकोण रखते हैं, पूर्वग्रहसे इतने अन्धे हो गये हैं कि उन्हें हमारे दलित देशभाइयोंके साथ किये जानेवाले व्यवहारमें कोई अन्याय दिखाई ही नही देता। मसलन एक सज्जन लिखते हैं :[1]

> . . . मैं उन लोगोंसे सहमत नहीं हूँ जो कहते हैं कि अस्पृश्य लोग शोषित और दलित हैं। . . . मुझे तो लगता है कि उन्हें ऊपर उठाने, उन्हें देशके दूसरे समुदायोंकी बराबरीका दर्जा दिलानेके लिए आप जो काम कर रहे हैं, उसका विफल होना निश्चित है। व्यक्तिशः यद्यपि मैं यह महसूस करता हूँ कि सामाजिक दृष्टिसे उन्हें ऊपर उठानेके लिए बहुत-कुछ करना चाहिए, किन्तु यह काम जादूकी तरह कोई एक-दो दिनोंमें नहीं किया जा सकता। उन्हें शिक्षा देनेके लिए, उनको आर्थिक कठिनाईसे मुक्त करनेके लिए, उन्हें शराब पीने और गायोंकी हत्या करने तथा मृत पशुओंका मांस खाने-जैसी बुराइयोंका त्याग करनेपर राजी करनेके लिए करोड़ों रुपये खर्च करने पड़ेंगे . . .

बुराई तो अस्पृश्य कहे जानेवाले लोगोंको न छूनेमें है। अगर कोई शराब पीता है, गायोंकी हत्या करता है और मृत पशुओंका मांस खाता है तो भी क्या हुआ? इसमें सन्देह नही कि वह बुरा काम करता है, लेकिन छिपकर तथा और भी भयंकर पाप करनेवाले लोगोंसे अधिक बुरा काम नहीं करता। किन्तु, जिस प्रकार छिपकर पाप करनेवाले लोगोंको समाज अस्पृश्य नही मानता, उसी प्रकार उन्हे भी अस्पृश्य नही मानना चाहिए। पापियोंसे घृणा नही करनी चाहिए। इसके विपरीत उनपर तरस खाना चाहिए और पापसे मुक्त होनेमें उनकी मदद करनी चाहिए। हिन्दुओंके बीच अस्पृश्यताकी प्रथा उस अहिंसा-धर्मकी अस्वीकृति है, जिसका हमें अभिमान है। पत्र-लेखकने अस्पृश्योंकी जिन बुराइयोंकी शिकायत की है, उनके लिए खुद हम लोग जिम्मेवार हैं। उन्हें गलत रास्तेसे विमुख करनेके लिए हमने क्या किया है? क्या हम अपने-अपने परिवारोंके गुमराह सदस्योंको सुधारनेके लिए काफी पैसा खर्च नहीं करते? क्या अस्पृश्य लोग हमारे विशाल हिन्दू परिवारके सदस्य नही हैं? सच तो यह है कि हिन्दू-धर्म हमें समस्त मानव-जातिको अविभाज्य और संयुक्त परिवार माननेकी सीख देता है और समस्त मानवों द्वारा किये जानेवाले बुरे कर्मोंके लिए हममें से एक-एकको जिम्मेवार मानता है। लेकिन, अगर इस सिद्धान्तकी व्यापकताके कारण इसके अनुसार आचरण करना सम्भव न हो तो हम कमसे-कम इतना तो समझें कि अस्पृश्य लोग और हम एक हैं, क्योंकि हम उन्हें हिन्दू मानते हैं।

१. यहाँ केवल कुछ अंशोंको ही उद्धृत किया जा रहा है।

फिर, ज्यादा बुरा क्या है — मृत पशुओंका मांस खाना या मनमें गन्दे विचार लाना? हम प्रतिदिन अपने मनमें लाखों गन्दे विचार लाते हैं, उन्हें अपने मनमें स्थान देते हैं और उनका पोषण करते हैं। अगर किसीका त्याग करना हो तो हम इन्हींका त्याग करें, क्योंकि ये असली अस्पृश्य हैं, जिनसे घृणा करनी चाहिए, जिन्हें मनसे दूर निकाल फेंकना चाहिए। हमारा कर्त्तव्य है कि अस्पृश्य भाइयोंको प्रेमसे गले लगाकर, हमने अतीतमें उनके साथ जो अन्याय किया है, उसके लिए प्रायश्चित्त करें। पत्र-लेखकको अस्पृश्योंकी सेवा करनेपर कोई आपत्ति नहीं है। लेकिन अगर उन्हें देखना भी हमें नागवार गुजरेगा और ऐसा मानेंगे कि उनके देखनेसे ही हम अपवित्र हो जाते हैं तो फिर हम उनकी सेवा कैसे कर पायेंगे?

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १३-५-१९२६

५२७. मार्चके और आँकड़े

कुछ केन्द्रोंने मार्च महीनेमें हुए खादीके उत्पादन और बिक्रीके आँकड़े[1] भेजे हैं, वे नीचे दिये जा रहे हैं। मैं आशा करता हूँ, जो केन्द्र अभीतक नियमित रूपसे आँकड़े नहीं भेजते रहे हैं, वे भेजना शुरू कर देंगे।

आंध्रके आँकड़े हमेशाकी तरह अपूर्ण हैं। बंगालके आँकड़ोंमें खादी प्रतिष्ठान, अभय आश्रम और आरामबाग खादी केन्द्रके आँकड़े भी शामिल हैं।

तुलनात्मक आँकड़े

अभय आश्रमने अपनी देखरेखमें होनेवाले खादीके उत्पादन और बिक्रीके तुलनात्मक आँकड़े[2] भेजे हैं, जो निम्न प्रकार हैं:

इन आँकड़ोंसे प्रकट होता है कि अभय आश्रममें १९२५-२६ की हर तिमाहीमें १९२३-२४ की उसी तिमाहीकी तुलनामें खादीका २५ गुना ज्यादा उत्पादन हुआ। मैं देशके सभी मुख्य खादी संस्थानोंसे कहूँगा कि वे भी इसी तरहके तुलनात्मक आँकड़े भेजनेकी कृपा करें। अगर वे अभय आश्रमकी जैसी प्रगति दिखाते हैं तो जो लोग यह कहते हैं कि खादी पिछले पाँच वर्षोंमें प्रगति करनेके बजाय उत्तरोत्तर पिछड़ती ही गई है, उनको ठीक जवाब मिल जायेगा। अभय आश्रमके ऐसे प्रगति-सूचक आँकड़ोंसे खादी कार्यकर्त्ताओंको और अधिक प्रयत्न करनेके लिए प्रोत्साहन मिलना चाहिए। कारण, उनके सामने लाखों रुपयेकी नहीं, बल्कि करोड़ों रुपयेकी खादी तैयार करनेका काम है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १३-५-१९२६

१ व २. आँकड़े यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं।

५२८. पशु-समस्या

कुछ महीने पूर्व गंजामके कलक्टर श्री ए० गेलेटीने मुझे एक पर्चा भेजा था। उसमें 'स्टेट्समैन' में प्रकाशित उनका एक लेख पुनर्मुद्रित किया गया था। लेखमें उन्होने अपने इटलीके अनुभवोंके आधारपर भारतकी पशु-समस्याके सम्बन्धमें अपना मत प्रकाशित करते हुए कहा था कि (१) भारतकी कृषि अच्छे पशुओपर निर्भर करती है; (२) भारतमें पशुओंकी ठीक देख-भाल नही होती, इसलिए यहाँ उनकी अवस्था अन्य देशोंकी अपेक्षा बहुत खराब है; (३) उनकी अवस्थामें सुधार करनेका एकमात्र उपाय यही है कि भारत सिर्फ सामूहिक चरागाहोंपर निर्भर करनेके बजाय चारेकी फसल पैदा करे; और (४) फसल-परिवर्तनकी पद्धतिसे अन्नके साथ-साथ चारेकी फसल पैदा की जा सकती है और ऐसा करनेसे अन्नके उत्पादनमें भी कोई कमी नही आयेगी।

इटलीकी परिस्थितियोंको भारतकी परिस्थितियोपर लागू करना मुझे असंगत लगा, क्योंकि हमारे यहाँके खेत बहुत छोटे-छोटे हैं — यहाँतक कि सिर्फ दो-दो एकड़के या कही-कही इससे भी कम रकबेके होते हैं। मैंने अपनी शका उनतक पहुँचाई। श्री गेलेटीने उसका उत्तर[1] देते हुए निम्न प्रकार लिखा है:

भारतके करोड़ों पशुओकी यह मूक प्रार्थना सिर्फ मेरे लिए ही नही, बल्कि ऐसे हर भारतीयके लिए है जो सोच-विचार सकता है और विशेषकर ऐसे हर हिन्दूके लिए है, जिसे गायोंका विशेष रक्षक होनेका अभिमान है। आशा है, श्रीयुत वा० गो० देसाई भारतके पशुओंकी हत्याके सम्बन्धमें बहुत ही मनोयोगपूर्वक जो लेख लिखते रहे हैं, उन्हे पाठकगण ध्यानसे पढते रहे होंगे। उनमें भारतके नगरोंमें पशुओंकी अवस्था कैसी है, इसका बड़ा सजीव चित्रण हुआ है। श्री गेलेटीने फार्मोंपर रखे जानेवाले पशुओंका चित्रण किया है और विस्तारपूर्वक बताया है कि उनकी दशा कैसे सुधारी जा सकती है। पशुओंकी नस्ल सुधारने और उनके जीवनकी रक्षा करनेके प्रश्नका सम्बन्ध जितना अधिक धर्मसे है उतना ही आर्थिक जीवनसे भी है। मै नही जानता कि श्री गेलेटीका सुझाया उपाय भारतकी परिस्थितियोंपर कहाँतक लागू हो सकता है। इसपर आधिकारिक मत तो वही लोग दे सकते हैं जो खुद खेतीबाड़ी करते हैं। लेकिन एक कठिनाई स्पष्ट है। करोड़ों किसान इतने जागरूक नहीं हैं कि वे नये और क्रान्तिकारी तरीकोंको अपना सकें। अगर हम श्री गेलेटी द्वारा सुझाये उपायोंको सही मान लें तो भी इसका प्रयोग भारतके विशाल जनसमुदायको कृषिकी शिक्षा

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। श्री गेलेटीने यह बतानेके बाद कि किस प्रकार उनके पिताके फार्मोंसे ४ एकड़के सबसे छोटे फार्मका जोतदार भी फसल-परिवर्तन पद्धतिके अनुसार जरूरतके लायक काफी अन्न, चारा और फल पैदा कर लेता था, गांधीजीसे कहा था कि दस करोड़ पशु सहायताके लिए आपसे मूक प्रार्थना कर रहे हैं।

देनेपर ही निर्भर करता है। लेकिन जिन्हें कृषिका थोड़ा भी ज्ञान है और जिनके पास खेतीकी कुछ जमीन है, उन्हें श्री गेलेटीके उपायको आजमाकर उसके नतीजे प्रकाशित करने चाहिए। ऐसे लोगोंके लाभके लिए मैं श्री गेलेटी द्वारा भेजे पत्रके कुछ प्रासंगिक अंश नीचे दे रहा हूँ।[1]

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १३-५-१९२६

५२९. टिप्पणियाँ

राष्ट्रीय सप्ताहमें खादी

राष्ट्रीय सप्ताहके दौरान जो काम किया गया है, उसके कुछ विवरण अखिल भारतीय चरखा संघको मिले हैं। उनके अनुसार बनारसके बाबू शिवप्रसाद गुप्तने खादीकी बिक्रीके लिए स्वयंसेवकोंको संगठित करके वहाँ लगभग २,००० रुपयेकी खादी बेची। इलाहाबादमें १,२०० रुपयेसे अधिककी बिक्री हुई, गाजीपुरमें १६० रुपयेसे ज्यादाकी और बांदामें लगभग १००० रुपयेकी खादी बिकी। परिणामतः संयुक्त प्रान्तमें जितनी खादी तैयार की गई थी, सब खप गई। पंजाबमें लोगोंने बड़ा उत्साह दिखाया। ११,००० रु० की खादी बेची गई। बहुत-से नेताओंने खादी बेचनेके लिए फेरियाँ लगाई। तमिलनाडके सभी भण्डारोंमें कुल, १८,६२२ रु० ११ आने ११ पाईकी खादी बिकी।

अच्छा हो, भारतके दूसरे सभी खादी केन्द्र भी अपने-अपने विवरण भेजें। इन आँकड़ोंमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है, लेकिन इनसे प्रकट होता है कि अगर अग्रगण्य पुरुष और स्त्रियाँ अपने-अपने केन्द्रोंमें लगकर काम करें तो जितनी भी खादी तैयार होती है वह सब बड़ी आसानीसे जिस प्रान्तमें तैयार की जाती है उसीमें खप जाये और फिर जब ग्राहकोंका अभाव नहीं होगा तो अच्छी खादीके उत्पादनपर कोई रोक लगानेकी जरूरत नहीं रह जायेगी। खादीके उत्पादनके लिए कौशल और सतत प्रयत्नकी आवश्यकता है। बिक्रीके लिए ऐसे लोगोंकी जरूरत है, जिनकी अपने-अपने क्षेत्रोंमें विशेष प्रतिष्ठा हो और जिनमें उत्साहके साथ काम करनेकी क्षमता हो। इसलिए अच्छी बिक्रीके लिए यह आवश्यक है कि गण्यमान्य स्वयंसेवक वर्षके कुछ निर्धारित महीनोंमें अपने समयका एक हिस्सा इस काममें लगायें।

एस० एल० आर० को

अच्छा होता, अगर आपने बारीक कागजके चार सफोंके दोनों ओर लिखनेके बजाय एक ही ओर लिखा होता। इससे आपकी लिखावट आसानीसे पढ़ी जा सकती। आप अपनी बात संक्षिप्त रूपमें इसके चौथाई स्थानमें भी लिख सकते थे।

मैं तो आपसे यह कहूँगा कि किसीके कुकृत्यको याद करनेका मतलब, जिसने वह कुकृत्य किया, उसके प्रति घृणा करना नहीं होता। मेरे बहुत-से मित्रों और

१. यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं।

कुटुम्बियोंने जो "अमानुषिक कार्य" किये, उन्हे मैं भूल नही सकता लेकिन मेरे मनमें उनके प्रति घृणा तो तनिक भी नहीं है। इसके विपरीत उनके "अमानुषिक कार्यों" के बावजूद मैं उन्हें प्यार करता हूँ। लेकिन, बुरा काम करनेवाले मित्र या कुटुम्बीका समर्थन करना मेरे लिए गलत होगा। इसी प्रकार किसी राष्ट्रके लिए यह गलत होगा कि वह अपने किसी ऐसे सेवकका समर्थन करे जो जनरल डायर-जैसे अमानुषिक कार्य करनेका दोषी हो। घृणा न होनेका मतलब दोषीके दोषपर परदा डालना नहीं होता और न होना चाहिए। आपने बिना किसी तथ्य या प्रमाणके वह निष्कर्ष निकाल लिया है कि जलियाँवालाके जघन्य अपराधकी मैंने जो तीव्र भर्त्सना की है उसमें समस्त अंग्रेज जातिकी भर्त्सना शामिल है। मैं तो आपसे कहूँगा कि अगर आप 'यंग इंडिया' की फाइल उलटकर देखें तो आपको पता चल जायेगा कि आपने मुझपर जो आरोप लगाया है, मेरा आचरण उससे बिलकुल उलटा रहा है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १३-५-१९२६

५३०. स्वतन्त्र मजदूर दल और भारत

स्वतन्त्र मजदूर दल (इंडिपेन्डेन्ट लेबर पार्टी) की भारतीय सलाहकार समिति (इंडियन एडवाइजरी कमेटी) ने भारतकी अवस्थाके सम्बन्धमें जो रिपोर्ट दी है, वह बहुत परिश्रमपूर्वक और अच्छे ढंगसे लिखी गई है। रिपोर्ट ब्रिटिश प्रशासनपर बड़ी सख्त टीका है। उसमें अन्य बातोंके अलावा तथाकथित सुधारों, सिविल सर्विस, साम्प्रदायिक पक्षपात, न्यायपालिका और तथाकथित भारतीय नौ-सेनाके सम्बन्धमें विचार व्यक्त किये गये हैं:[1]

शिक्षाके विषयमें जो बातें कही गई हैं, वे उद्धृत करने योग्य हैं:[2]

भारतकी सामान्य गरीबीके सम्बन्धमें रिपोर्टमें लिखा है:[3]

जिस विभागमें खेतीकी स्थितिका वर्णन किया गया है, उसमें से नीचे लिखा अंश मैं उद्धृत कर रहा हूँ:[4]

जिस विभागमें औद्योगिक परिस्थितिके विषयमें लिखा गया है, उसमें भी कुछ बड़े दिलचस्प अनुच्छेद हैं परन्तु बाकीकी दिलचस्प बातोंको जाननेके लिए मैं पाठकोंसे उस रिपोर्टको ही पढ़ जानेके लिए कहूँगा। वह स्वतन्त्र मजदूर दलके द्वारा प्रकाशित की गई है। उसका मूल्य ६ पैंस है, और वह १४, ग्रेट जॉर्ज स्ट्रीट, लन्दन, एस० डब्ल्यू० के पतेपर लिखकर मँगाई जा सकती है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १३-५-२९२६

१ से ४. यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

५३१. पत्र : छोटालालको

साबरमती आश्रम
बृहस्पतिवार, १३ मई, १९२६

चि० छोटेलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हें मेरा तार भी मिल गया होगा। फिलहाल सबसे अच्छा यही है कि वहाँकी स्थितिका खूब गहरा अध्ययन करो और जब गये ही हो तो यह ठीक ही है कि वहाँका अनुभव प्राप्त कर लो...[1] और जो विचार अभी तुम्हारे मनमें आये हैं वे भी परिपक्व हो जायेंगे। आश्रमको सबकी गरज है और किसीकी भी नहीं है। आश्रमके विषयमें आश्रमवासियोंकी भी यही स्थिति होनी चाहिए। उन्हें आश्रमकी गरज होनी अवश्य चाहिए तथापि उन्हें निर्भय भी होना चाहिए। उन्हें आश्रमकी गरज तभीतक होनी चाहिए जबतक उन्हें ऐसा लगता रहे कि आश्रम उनके आत्म-विश्वासका पोषक है। जब आश्रम उनके आत्मविश्वासके लिए घातक सिद्ध हो उस समय उन्हें उसका निर्भयतापूर्वक त्याग करना ही चाहिए। इसलिए तुम्हें आश्रममें रखनेमें मैं तुम्हारा और आश्रमका, दोनोंका, भला देखता हूँ। इसलिए तुम्हें यह विचार करनेकी तनिक भी आवश्यकता नहीं कि मैं मात्र तुम्हारे हितको ही ध्यानमें रखकर तुम्हें आश्रममें रखना चाहता हूँ, भले ही उससे आश्रमका हित हो या अहित। तुम बहुत ज्यादा विचार करनेकी अपनी आदत छोड़ दो। इससे पहले मैंने तुम्हें जो पत्र लिखा है वह तुम्हें मिला होगा; उसपर विचार करो और निश्चिन्त बनो।

देवदासने अपेन्डिसाइटिसका ऑपरेशन करवाया है, यह खबर तुम्हें मिल ही गई होगी। ऑपरेशन रविवारको हुआ था। आज पत्र आया है। उससे पता चलता है कि उसे काफी आराम है। थोड़े दिनोंमें वह अस्पतालसे मुक्त हो जायेगा। वहाँ बा, महादेव और जमनालालजी हैं। आज मैं गवर्नरसे मिलनेके लिए महाबलेश्वर जा रहा हूँ। बीचमें देवदाससे तो मिलना ही है।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९५०५) की फोटो-नकलसे।

१. जैसा कि साधन-सूत्रमें है।

५३२. पत्र : जयसुखलालको

सबरमती आश्रम
बृहस्पतिवार, वैशाख सुदी २ [१३ मई, १९२६][1]

चि० जयसुखलाल,

इस बारके 'नवजीवन' में कार्यालयपर लेख[2] लिखा है; उसे पढ़ जाना और उसमें कुछ रह गया हो तो मुझे बताना। तुम्हारे पत्रोंमे आजकल मैं कुछ उद्वेग, कुछ अधीरता और कुछ निराशा-सी देखता हूँ। यह भी देखता हूँ कि भाई लक्ष्मीदासकी टीका तुम्हें पसन्द नहीं आई। लेकिन इसमें न तो उद्वेगका कोई कारण है और न निराशाका। टीकाके बारेमें असहिष्णुताकी भावना तो होनी ही नही चाहिए। टीकाकार स्वयं जिस वस्तुकी टीका करता है उसे वह खुद अच्छी तरहसे चलाकर दिखा दे, ऐसा हमेशा नहीं होता। तुम उसमें से जितना स्वीकार कर सको उतना स्वीकार करना तुम्हारा धर्म है। जो न कर सको वह तुम्हे लक्ष्मीदासको बताना चाहिए और उनसे उसकी चर्चा करनी चाहिए। ऐसा हो तो उसमें से तुम कुछ सीखोगे। आजकल जहाँ-तहाँ जो खादी बिक रही है वह केवल भावनाके कारण ही बिक रही है। इस भावनाका पोषण करना तुम्हारा काम है। तुम वहाँ बैठे तपस्या कर सको तो काम बढ़ा सकते हो। सूत और खादीकी किस्म सुधारकर दिखा सको तभी इस भावनाका पोषण किया जा सकता है। जिन लोगोंने कपासका सग्रह किया है उनकी खादीकी जाँच करनेके लिए तुमने यहाँसे एक व्यक्तिकी माँग की है। ऐसा व्यक्ति मैं कहाँसे दूँ? तुम्हें यहींसे समझाया था कि जब खादी तैयार हो तब उसमें से तुम्हे तीन-चार इंच चौड़ा टुकड़ा काटकर भेजना चाहिए, जिससे हरएक थानकी परीक्षा हो सके। थानपर और टुकड़ेपर नम्बर होना चाहिए जिससे जिस नम्बरका टुकड़ा जाँचमें असफल पाया जाये उस नम्बरका थान तुरन्त पहचाना जा सके। इसमें कुछ समय लगता है लेकिन मैं इसे अनिवार्य मानता हूँ। लोगोको यदि अपने पैसोकी कीमत मिले तो वे खादीमें विश्वास कैसे खो सकते हैं? यदि तुम यह नही कर सकते तो तुमसे इतना ही कहता हूँ कि जिस खादीके बारेमें तुम्हे भरोसा हो उसके पैसे चुका दो। यदि एक ही स्थानपर पैसे चुकाये जाने हो तो ऐसा करनेमें दिक्कत नही होती। जब अलग-अलग कई स्थानोंपर पैसा चुकाना हो तब खादीकी परीक्षा एक ही स्थानपर होनी चाहिए; नहीं तो व्यवस्था टूट जाती है। अब वहाँकी स्थिति देखकर जो ठीक लगे सो करना। मैं आज महाबलेश्वर जानेके लिए रवाना हो रहा हूँ। २२ तारीख शनिवारको वापस यहाँ पहुँचनेकी उम्मीद रखता हूँ। सोमवारतक मेरी डाक मुझे

१. गांधीजीकी महाबलेश्वर-यात्रा और देवदासके अस्पतालमें होनेकी चर्चाके उल्लेखसे।

२. देखिए "टिप्पणियाँ", १६-५-१९२६।

बम्बईमें मिलेगी। देवदास अस्पतालमें है, यह तो तुम जानते होगे। कुसुम और धीरू भी बम्बईमें हैं। जितने समयतक देवदास अस्पतालमें है तबतक उनकी इच्छा जयाके साथ रहनेकी है।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९५५४ एम) की माइक्रोफिल्मसे।

५३३. वक्तव्य: रंगभेद विधेयकपर

१४ मई, १९२६

गांधीजी शुक्रवारकी सुबह बम्बई पहुँचे। एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिने उनसे गाड़ीमें भेंट की और उन्हें केप टाउनसे आया एक सन्देशा दिखाया, जिसमें लिखा था कि रंग-भेद विधेयक पास हो गया है। उस समाचारसे गांधीजीको बड़ा दुःख हुआ। [उन्होंने कहा:]

विधेयकके दक्षिण आफ्रिका संघ-संसदके दोनों सदनोंकी संयुक्त बैठकमें पास हो जानेके समाचारसे मुझे दुःख हुआ है। श्री एन्ड्रयूजको और मुझे यह आशा थी कि विवेक-बुद्धिसे काम लिया जायेगा और विधेयक अस्वीकृत कर दिया जायेगा। सिद्धान्तकी दृष्टिसे देखें तो रंग-भेद विधेयक उस वर्ग क्षेत्र संरक्षण विधेयकसे भी अधिक बुरा है जिसके सम्बन्धमें गोलमेज परिषद् होने जा रही है। मैं सोचता था कि न्यायकी जिस भावनाके कारण संघ सरकारने एक विधेयकको पास करना स्थगित कर दिया है, वही भावना उसे दूसरे विधेयकको पास करनेपर जोर देनेसे रोकेगी। रंग-भेद विधेयकको पास करनेके सवालपर हुई कटुतापूर्ण बहसको देखते हुए वर्ग क्षेत्र संरक्षण विधेयकके बारेमें मनमें शंका पैदा होती है। मेरे विचारसे दक्षिण आफ्रिकाके गवर्नर जनरलका कर्तव्य बिलकुल स्पष्ट है। जनरल स्मट्सने तथा दक्षिण आफ्रिकाके अन्य नेताओंने इस विधेयकका जैसा जोरदार विरोध किया, उसे ध्यानमें रखते हुए गवर्नर जनरलको इस क्रूर विधेयकपर अपनी स्वीकृति नहीं देनी चाहिए। यदि रंग-भेद विधेयक संघके कानूनका रूप ले लेता है तो दक्षिण आफ्रिकाके सारे मूल निवासी गोरे प्रवासियोंके विरोधी हो जायेंगे। मैं इसे उनके तईं आत्मघातक कार्य मानता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १५-५-१९२६

५३४. सन्देश : भावनगर रियासत. जन-परिषद्को

[१५ मई, १९२६ से पूर्व][1]

भीलों और अंन्त्यजोके महान उद्धारक श्री अमृतलाल ठक्करको अपना अध्यक्ष बना कर परिषद्ने अपने-आपको सम्मानित किया है। आशा करता हूँ इस परिषद्में खद्दर को उसका उचित स्थान दिया जायेगा, उस खद्दरको जिसके द्वारा हजारो अस्पृश्य ईमानदारीसे अपनी आजीविका कमाते हैं और जिसके द्वारा हमारी असंख्य बहनें अपने स्त्रीत्वकी रक्षा करते हुए ईमानदारीसे चन्द पैसे कमाती हैं। मैं यह आशा भी करता हूँ कि अस्पृश्यता रूपी जो अभिशाप हिन्दू समाजमें घुस गया है, उसे समाप्त कर दिया जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १७-५-१९२६

५३५. पत्र : मीराबहनको

शनिवार [१५ मई, १९२६][2]

यह पत्र मैं देवलालीसे लिख रहा हूँ। कार्यक्रममें बहुत फेरफार हो गया। आशा है, कृष्णदासने तुम्हें बताया होगा।

महाबलेश्वर — रविवार, सोमवार और मंगलवार। बुधवारको महाबलेश्वरसे चलकर गुरुवारको बम्बई और शुक्रवारको आश्रम पहुँचनेकी आशा रखता हूँ। लेकिन हो सकता है, शनिवारतक न भी पहुँचूँ। आशा है, तुम्हारा मन शान्त होगा। देवलालीमें मौसम बहुत अच्छा है। सस्नेह।

बापू

[पुनश्च :]

कृष्णदास तुम्हें बता देगा कि पत्र किस पतेपर लिखं

बापू

अंग्रेजी पत्र (सी० डब्ल्यू० ५१८४) से।
सौजन्य : मीराबहन

१. यह सन्देश १५ मईको हुई परिषद्में पढ़ा गया था।
२. डाककी मुहरसे।

५३६. पत्र : मीराबहनको

देवलाली
१५ मई, १९२६

चि० मीरा,

मैंने आज एक पोस्टकार्ड डाक निकलनेसे पहले लिखा है। इस पत्रको मैं बम्बईमें डाकमें डलवाऊँगा, जहाँके लिए मैं अभी रवाना हो रहा हूँ।

तुम्हारा हिन्दी पत्र बहुत अच्छा लिखा हुआ है। "हस्पतालसे छोड़ेगा" नहीं, बल्कि "छूटेगा" होना चाहिए। "छोड़ेगा" सकर्मक क्रिया है और इसलिए उसके पहले 'से' विभक्ति नहीं लगती, मगर "छूटेगा" अकर्मक है, इसलिए उसके पहले 'से' लगता है।

मैं जानता हूँ तुम्हें वियोगका दुःख है। तुम उससे छुटकारा पा लोगी, क्योंकि उससे छुटकारा पाना ही है। यह थोड़े दिनका वियोग उस लम्बे वियोगकी तैयारी है, जिसे मृत्यु लाती है। असलमें वियोग ऊपरी ही है। मृत्यु हमें एक-दूसरेके और भी निकट लाती है। क्या शरीर बाधा नहीं है — यद्यपि वह परिचयका साधन भी है?

देवदास बिलकुल ठीक और प्रसन्न था। मथुरादास भी पहलेकी अपेक्षा बेहतर है। मुझे उसके लिए पंचगनीमें ठहरनेकी जगह तलाश करनी है।

सस्नेह,

तुम्हारा बापू

[पुनश्च :]

'आत्मकथा' का अध्याय इस पत्रके साथ ही डाकमें डाला जायेगा। तुम जैसे चाहो उसे दुरुस्त कर देना और स्वामीको दे देना। टाइप की हुई प्रतिमें जो सुधार हैं, मेरे किये हुए हैं। मूल प्रति भी तुम्हें भेजनेकी कोशिश करूँगा।

बापू

अंग्रेजी पत्र (सी० डब्ल्यू० ५१८५)से।
सौजन्य : मीराबहन

५३७. पत्र : मणिबहन पटेलको

देवलाली

१५ मई, १९२६

चि० मणि,

बाको जानेके लिए राजी कर लिया। लेकिन मंगलवारसे पहले [जानेको] तैयार नहीं हुई, इसलिए अब तो बुधवारको ही वहाँ पहुँच पायेगी। सूरज बहनको बता देना। शिष्य और शिष्या तुम्हें संतोष देते होंगे। सबमें घुल-मिल जाना सीखो। नन्दू बहनको मना सको तो मनाकर ले आओ। कार्यक्रममें परिवर्तन हुआ है, सो कृष्णदासने तुम्हे बताया होगा।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – ४ : मणिबेन पटेलने

५३८. पत्र : प्रभाशंकर पट्टणीको

शनिवार

[१५ मई, १९२६][1]

सुज्ञ भाईश्री,

आपका पत्र मुझे देवलालीमें मिला। यहाँ मैं महाबलेश्वर जाते हुए चि० मथुरादाससे मिलने आया हूँ। आपके शरीरमें शक्ति जितनी जल्दी आनी चाहिए उतनी जल्दी आती हुई नहीं लगती। आपका वजन कितना हुआ, यह जाननेके लिए आतुर हूँ। दूध तो गाय अथवा बकरीका ही लेना चाहिए और वह भी आधा आउन्स पानी डालकर गरम किया जाना चाहिए; ज्यादा उबालना नहीं चाहिए। मैं महाबलेश्वरसे शनिवारको वापस आश्रम पहुँचनेकी उम्मीद रखता हूँ। कल वहाँ पहुँचूंगा।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ३१९९) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : महेश पट्टणी

१. पत्रमें महाबलेश्वर जाते हुए मथुरादाससे मिलनेके उल्लेखसे।

५३९. अज्ञानका जाला

एक अंग्रेज लेखकने लिखा है कि जब सत्यका समर्थन करना हो तो उसे प्रकट करनेमें जो परिश्रम होता है उससे कहीं अधिक परिश्रम अज्ञानसे उत्पन्न भ्रमको दूर करनेमें करना होता है। सत्य तो स्वयंसिद्ध है इसलिए अज्ञानका जाला हटाते ही स्वत: दिखाई देने लगता है। चरखेकी सीधी-सादी प्रवृत्तिके विषयमें भी ऐसा ही अज्ञान फैला हुआ है। चरखेपर, जितना बोझ वह उठा सकता है उससे अधिक बोझ रखा जाता है और जब वह उससे नहीं उठता तब उसपर दोष लगाये जाते हैं, जबकि असलमें तो वह दोष उस बोझके रखनेवालेका ही होता है। इसका एक बढ़िया उदाहरण एक खादी-प्रेमी द्वारा प्रेषित पत्रके कुछ अंशोंमें मिलता है। इन अंशोंका सार इस प्रकार है:

> (१) अब तो आप चरखेको कामधेनु मनवानेका प्रयत्न करने लगे हैं। इससे हमें तो चरखेसे अरुचि ही होती है और इसी कारण हम पढ़े-लिखे लोग आपका और चरखेका त्याग करते हैं।
>
> (२) चरखा शायद छोटे-छोटे गाँवोंमें चलाया जा सकता है और यदि आप ऐसा करें तो आपकी टीका कोई न करेगा और लोग आपको शायद प्रोत्साहन भी देंगे।
>
> (३) किन्तु यदि आप यह मनवाना चाहें कि चरखेसे मोक्ष मिलता है तो हमें कहना होगा कि आपका यह प्रयत्न एकदम हास्यास्पद है। आप बड़े हैं इसलिए शायद कुछ भोले लोग इसको सहन कर लें, परन्तु हम पढ़े-लिखे लोग तो अब इसे कभी सहन न करेंगे क्योंकि आपने तो अति ही कर दी है और जबसे आपने क्षेत्र-संन्यास लिया है तबसे तो यदि किसीको ब्रह्मचर्यका पालन करना हो तो उसका उपाय भी आप चरखा चलाना ही बताते हैं, बंगालमें नजरबंद निरपराध देशभक्तोंको छुड़ाना हो तो भी आप कहते हैं कि चरखा चलाओ। आप हिन्दुस्तानकी आर्थिक स्थिति सुधारनेका उपाय भी चरखा चलाना बताते हैं और भाला-बरछी चलानेमें समर्थ रण-निपुण सिपाहीसे भी कहते हैं, चरखा सँभालो। आप अपना यह पागलपन देख क्यों नहीं पाते, यह आश्चर्यकी बात है।
>
> (४) यदि हिन्दुस्तान प्रतिवर्ष साठ करोड़ रुपयेका कपड़ा न खरीदे तो उससे ब्रिटेनका क्या बिगड़ेगा? क्या उससे अंग्रेज लोग यहाँ राज्य करना छोड़ देंगे? आप कहते हैं कि चरखेकी प्रवृत्तिसे बढ़कर दूसरी कोई राजनैतिक प्रवृत्ति नहीं, यह आपकी कितनी बड़ी भूल है?
>
> (५) चरखेसे गरीबोंको रोटी मिल सकती है, यह तो अभी आपको सिद्ध करना है। चरखेकी प्रवृत्तिसे हानि अवश्य हुई है। देखिये न, खादीकी कितनी दुकानें बन्द हो गई हैं?

(६) शायद आप यह भी कहते मालूम होते हैं कि चरखेके उद्योगके विकासके लिए दूसरे उद्योगोको भी छोड़ देना चाहिए।

जितनी आपत्तियाँ मैं उनमें से चुन सकता था उतनी चुनकर मैंने यहाँ अपनी भाषामें दे दी हैं और मेरा खयाल है मैंने ऐसा करनेमें लेखकके प्रति कोई अन्याय नही किया है। यदि अन्याय किया है तो उसकी कटुता निकाल देनेका अथवा कम करनेका ही अन्याय किया है। चिढे हुए देशभक्तोंको वड़े माने जानेवाले मनुष्योके प्रति कठोर वचन कहनेका अधिकार है। क्योंकि एक तरफ देशकी गरीबीको देखकर और दूसरी तरफ उस स्थितिको सुधारनेमें अपनेको लाचार पाकर उन्हे जो क्रोध होता है उसे वे वडे माने जानेवालोके प्रति कठोर वचनोका प्रयोग करके कुछ हदतक शान्त कर सकते हैं। मेरा धर्म उस क्रोधको विज्ञापित करना नही, उस क्रोधसे उत्पन्न हुए भ्रमको, जिस किसी उपायसे वह दूर किया जा सके दूर कर देना ही हो सकता है। इसीलिए मैंने भाषाको यथासम्भव नरम बनानेका प्रयत्न किया है।

अव हम उनके इन छः मुद्दोंकी परीक्षा करें।

(१) मैंने चरखेको कामधेनु मनवानेका कोई प्रयत्न नही किया है; परन्तु मैंने उसे अपनी कामधेनु अवश्य माना है। आज हिन्दुस्तानमें करोड़ों हिन्दू वैसा कर रहे हैं। वे थोडी-सी मिट्टी लेकर, उसकी पिंडी बनाकर, उसमें ईश्वरका आरोपण करके उसको अपना सर्वस्व अर्पण कर देते हैं और उसे अपनी कामधेनु बनाते हैं। परन्तु उस मिट्टीकी पिण्डीको पूजनेकी सलाह वे अपने पडोसियोंको भी नही देते। अपनी पूजा-विधि खतम हो जानेपर उस परमात्मामय पिण्डीको वे नदीके प्रवाहमें विसर्जित कर देते हैं। मैं उन करोड़ोंमें से एक हूँ, इसलिए यदि मैं चरखेको अपनी कामधेनु बनाऊँ तो उससे पढे-लिखे लोगोंके मनमें अरुचि क्यो उत्पन्न होनी चाहिए? क्या उनसे मैं सामान्य सहिष्णुताकी भी आशा नही रख सकता? परन्तु सभी पढ़े-लिखे लोगोने अभी मेरा त्याग नही किया है। कुछ लोगोंको उससे अरुचि हुई है, इसलिए सभीको हुई है यह विश्वास करना या दूसरोंको करानेका प्रयत्न करना अनुचित है। परन्तु थोड़ी देरके लिए मान भी लें कि सभी पढ़े-लिखे लोगोने मेरा त्याग कर दिया है तो भी यदि मेरी श्रद्धा अटल होगी तो वह ऐसे समयमें और भी अधिक तेजस्वी और ज्वलन्त वन जायेगी। सन् १९०८ में 'किलडोनन केसल' जहाजमें हिन्द-स्वराज्य लिखते समय जव मैंने चरखेके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त की थी तव तो मैं अकेला ही था। जिस परमात्माने उस समय मेरी कलमको चरखेकी वात सुझाई वह क्या उस श्रद्धाकी परीक्षाके समय मेरा साथ छोड़ देगा?

(२) चरखा छोटे-छोटे गाँवोंमें चलवानेके लिए ही है। आज वह वही चलाया भी जा रहा है। मैं जो उसे उत्तेजन देनेकी भिक्षा माँग रहा हूँ वह गाँवोमें उसका पुनरुद्धार करनेके उद्देश्यसे ही माँग रहा हूँ और शिक्षित वर्गसे प्रार्थना करनेकी आवश्यकता भी मुझे इसीलिए पड़ती है। गाँवोंके लोगोंको मलेरिया इत्यादि रोगोंसे अपना वचाव करनेका कोई ज्ञान नही है। यदि हम उन्हें वह ज्ञान देना चाहें तो हम लोगोंको — शिक्षित वर्ग और मध्यमवर्गके वहुसंख्यक लोगोंको — उन रोगोंको नष्ट करनेके नियमोंको जानना और उनका पालन करना होगा। हम ही उसके वाद गाँवोमें

जाकर ग्रामवासियोंको उनकी शिक्षा दे सकेंगे। इसी प्रकार जब हम चरखेका शास्त्र अच्छी तरह सीख लेंगे और नित्य चरखा चलायेंगे तभी हम ग्रामवासियोंको चरखा चलाना सिखा सकेंगे और उसमें उनकी जो अश्रद्धा है उसे अपने व्यवहारसे दूर कर सकेंगे और यदि हम लोग इन चरखोंसे तैयार होनेवाली खादीका उपयोग न करेंगे तो चरखा न चल सकेगा, यह तो ऐसी बात है जिसे सभी आसानीसे समझ सकते हैं। इसलिए मैं शहरमें रहनेवालोंसे तो यज्ञार्थ चरखा चलानेकी ही प्रार्थना करता हूँ। गांवोंमें रहनेवाले आजीविकाके लिए चरखा चलायेंगे। ऐसी सरल और सीधी बातकी टीका कैसे की जा सकती है? जो चरखेके रहस्यको समझता है उसके लिए तो टीका करनेका कोई कारण ही नहीं रहता।

(३) मैं चरखेको अपने लिए मोक्षका द्वार मानता हूँ। दूसरोंके लिए तो मैं इतना ही कहता हूँ कि वह हिन्दुस्तानकी आर्थिक स्थितिको सुधारने और स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए प्रचंड शस्त्र है। जो ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहता है उसको मैं चरखा चलानेके लिए कहता हूँ, यह बात तनिक भी हास्यास्पद नहीं है। बल्कि मेरे निकट एक अनुभव सिद्ध बात है। जिसे विकार-मात्रका त्याग करना है उसे शान्तिकी आवश्यकता है। उसका क्षोभ दूर होना चाहिए। चरखेकी प्रवृत्ति एक ऐसी ठंडी और शांत प्रवृत्ति है कि श्रद्धाभावसे चरखा चलानेवालोंके विकार शान्त होते देखे गये हैं। मैं चरखेपर बैठकर अपने क्रोधको शान्त कर सका हूँ और मैं दूसरे ऐसे अनेक ब्रह्मचारियोंके ऐसे ही अनुभव भी प्रस्तुत कर सकता हूँ। ऐसे अनुभव बताने-वालोंको मूर्ख मानकर उनकी हँसी उड़ाना आसान तो है, परन्तु है बड़ा महँगा, क्योंकि हँसी उड़ानेवाला विकार-वश होकर अपने विकारोंको दबाकर वीर्यवान बनने-का एक सुन्दर साधन खो बैठता है। मैं इसे पढ़नेवाले प्रत्येक युवक और युवतीको, यदि वे चरखेके विरुद्ध भ्रममें न पड़ गये हों तो, उसकी आजमाइश करनेकी सलाह देता हूँ। वे यह देखेंगे कि चरखेपर बैठनेके बाद कुछ ही समयमें उनके विकार कम होने लगे हैं। मेरे कहनेका आशय यह नहीं कि कातनेसे शान्त हुए विकार, कातना बन्द कर देनेके बाद भी २४ घंटेतक वैसे ही शान्त बने रहेंगे। विकारोंका उद्वेग तो वायुसे भी अधिक प्रबल होता है। उसे शान्त करनेके लिए धैर्यका होना आवश्यक है और इस धैर्यका विकास करनेके लिए चरखा एक प्रबल साधन है। कदाचित् कोई यह कहे कि यदि चरखेका यही उपयोग है तो मैं उसके बजाय उससे भी अधिक काव्यमय माला फेरनेकी बात क्यों नहीं कहता? मेरा उत्तर यह है कि चरखेमें दूसरी भी शक्तियाँ हैं। मैंने हिमालयकी गुफामें रहनेवाले और वहाँ उगनेवाले पेड़-पौधोंके कन्दमूल-फलोंपर ही निर्वाह करनेवाले किसी अवधूतके सामने चरखा नहीं रखा है। परन्तु मैंने तो अपने जैसे असंख्य प्राकृत मनुष्योंके सामने, जो संसारमें रहते हैं, देशकी सेवा करना चाहते हैं और देश-सेवा करते हुए ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहते हैं, यह चरखा प्रस्तुत किया है।

और नजरबन्द निरपराध बंगालियोंको छुड़ानेके लिए मैं जो चरखेको प्रस्तुत कर रहा हूँ उसे हँसीमें उड़ा देनेका तो यह मतलब हो सकता है कि हम अपनी शक्तिसे

इन कैदियोंको छुड़ानेका प्रयत्न तनिक भी नहीं करना चाहते। यहाँ तो चरखेका अर्थ विदेशी कपड़ेका बहिष्कार है। यह शक्ति कितनी बड़ी है और उसके बिना किसी दूसरी शक्तिका विकास करनेमें हम असमर्थ है यह हम आगेके मुद्देकी परीक्षा करते समय देखेंगे और इसलिए मैं भाले-बरछी चलानेमें समर्थ वीर सिपाहीको भी, जो चरखा देना चाहता हूँ वह मेरे पागलपनका लक्षण नहीं है; बल्कि मेरे ज्ञानका लक्षण है और वह ज्ञान किताबोंसे उपलब्ध ज्ञान नहीं है बल्कि यह अनुभवका प्रसाद है।

(४) हिन्दुस्तान साठ करोड़ रुपयेका कपड़ा न खरीदे तो उससे ब्रिटेनका क्या बिगड़ेगा, यह प्रश्न यहाँ असंगत है। हमें इतना ही सोचना है कि उससे हमारा क्या लाभ होगा। यदि हम खादीको अपनाकर साठ करोड़ रुपयेका विदेशी कपड़ा खरीदना बन्द कर देंगे तो उसका अर्थ यह होगा कि उतने रुपये तीस करोड़ हिन्दुस्तानियोंके घरोंमें बचेंगे तथा उससे उनकी इतनी आमदनी बढ़ेगी। उससे हिन्दुस्तानका यह उद्योग बढ़ जायेगा और उससे इतने रुपये कमाये जा सकेंगे और खादीके द्वारा इतने रुपये बचानेका मतलब यह होगा कि करोड़ों लोगोंका संगठन होगा, करोड़ों लोगोंकी शक्तिका संग्रह होगा और करोड़ों देश-सेवक सेवा-कार्यमें सँलग्न हो जायेंगे। ऐसे महान कार्यको अच्छी तरह पार उतारनेके मानी हैं, हम लोगोंको अपनी शक्तिका पूरा-पूरा ज्ञान होना। हमें कोई बड़ा काम करते हुए जो अनेक बारीक गुत्थियाँ पेश आती हैं, जबतक हमें उन्हें सुलझानेका ज्ञान न होगा, जबतक हम एक-एक पाईका हिसाब रखना न सीखेंगे, गाँवोंमें रहना न सीखेंगे, मार्गमें आनेवाली अनेक बाधाओंको दूर न कर सकेंगे और अनेक पहाड़ोंको काटकर मार्ग न बना सकेंगे तबतक यह होना असम्भव है। चरखा और खादी तो इस शक्तिके उत्पादनमें निमित्त-मात्र है। जबतक हम थोडा-सा धैर्य रखकर चरखे और खादीके रहस्योंको और उसके फलितार्थको कल्पनाशक्तिका उपयोग करके समझेंगे नहीं तबतक यदि चरखेके प्रति हमारी अरुचि हो तो यह समझमें आने योग्य है। परन्तु जब हम इस रहस्यको समझ जायेंगे तब चरखा हमारे हाथसे कभी छूटेगा नहीं। अंग्रेज बहुत चालाक हैं, अंग्रेज अधिकारी चतुर और समझदार हैं और मैं यह बात जानता हूँ इसीलिए तो मैंने लोगोंके सामने चरखा प्रस्तुत किया है। हम अंग्रेजोंको अपने वाक्‌चातुर्यसे ठग न सकेंगे, समाचापत्रोमें अपनी कलमकी शक्ति दिखाकर हरा न सकेंगे। वे हमारी धमकियोंके अभ्यस्त हो गये हैं। हमारा बाहुबल उनके हवाई जहाजोंसे गिरनेवाले गोलोंके सामने कुछ भी नहीं है। परन्तु वे लोग धैर्य, उद्यम, निश्चय और योजनाशक्ति-जैसे गुणोंको समझते हैं और उनका आदर भी करते हैं। उनका सबसे बड़ा उद्योग कपड़ा है। उन्हें उस कपड़ेके बहिष्कारसे ही हमारी शक्तिका ज्ञान हो सकता है। वे अपने अभिमानको पुष्ट करनेके लिए हिन्दुस्तानपर कब्जा नहीं किये हुए हैं। वे कोरे शस्त्रबलसे नहीं, बल्कि अपने कौशलसे हम लोगोंको अपने वशमें रखते हैं। वे हिन्दुस्तान पर व्यापारके लिए ही राज्य करते हैं। जब उनका व्यापार हमारी स्वतन्त्र इच्छा पर ही निर्भर होगा तब उनका राज्य भी वैसे ही हमारी इच्छापर निर्भर होगा। इस समय तो वे अपना व्यापार और राज्य, दोनों हमारी इच्छाके विरुद्ध चलाते

हैं। दोमें से एक भी चीज हमारी इच्छाके अनुकूल होगी तो दूसरी भी आसानीसे हमारी इच्छाके अनुकूल हो जायेगी। परन्तु जबतक उनका व्यापार हमारी इच्छाके अनुकूल नहीं होता तबतक राज्य भी हमारी इच्छाके अनुकूल न होगा और यह बात बड़ी आसानीसे समझमें आ सकती है।

चरखेसे अधिक अच्छी दूसरी राजनैतिक प्रवृत्ति मुझे मिले तो मैं चरखेको फौरन इस स्थानसे हटा दूँ। अबतक ऐसी प्रवृत्ति मेरी जानकारीमें नहीं आई है और न किसीने मुझे बताई ही है। यदि ऐसी कोई प्रवृत्ति हो तो मैं उसे जाननेके लिए बहुत ही उत्सुक हूँ।

(५) चरखेसे रोटी मिल सकती है यह बात अब 'नवजीवन' के पाठकोंके सामने सिद्ध करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। खादी कार्यालयोंके आँकड़ोंसे ही यह बात साबित हो जाती है कि हजारों गरीब औरतें खादी द्वारा अपनी आजीविका प्राप्त कर रही हैं। किसीने भी अबतक इस बातसे इनकार नहीं किया है कि चरखेसे दिनमें कमसे-कम एक आना कमाया जा सकता है और इस देशमें ऐसे गरीब लोग करोड़ों हैं जिन्हें दिनमें एक पैसा भी नहीं मिलता। जहाँ यह स्थिति है वहाँ चरखा और रोटीमें कितना निकट सम्बन्ध है यह सिद्ध करनेकी आवश्यकता ही नहीं है।

चरखेकी प्रवृत्तिसे देशको नुकसान हुआ है, यह कहनेवालोंको नुकसान सिद्ध करना चाहिए। यह प्रवृत्ति ही ऐसी है कि उसमें परिश्रम भ्रष्ट नहीं होता। उसमें विघ्न भी नहीं हो सकता और उसका अल्पमात्र पालन भी बड़ेसे-बड़े भयसे हमारी रक्षा करता है। खादीकी कुछ दूकानें खुलीं और बन्द हो गईं तो उससे क्या हुआ? ऐसा तो हर व्यापारमें हुआ करता है। दूकानें खोलनेमें जो रुपया खर्च हुआ था वह देशमें ही रहा है और उससे जो अनुभव मिला उससे हम आगे बढ़े हैं। यदि कुछ दूकानें बन्द हो गई हैं तो कुछ नई व्यवस्थित रूपमें स्थापित भी हुई हैं और ऐसे बहुत-से उदाहरण मिल सकेंगे। जिन्हें ऐसे उदाहरण इकट्ठे करने हों उन्हें 'नवजीवन' के पिछले पृष्ठ देखने होंगे।

(६) जब मैंने कताई उद्योगको विकसित करनेके लिए किसी भी पोषक उद्योगको त्यागनेकी कभी कल्पनातक नहीं की है तब मैं उसकी सिफारिश कैसे कर सकता हूँ? हिन्दुस्तानमें करोड़ों लोग निरुद्यम रहते हैं, इसी आधारपर तो चरखेकी प्रवृत्ति आरम्भ की गई है। मुझे स्वीकार करना चाहिए कि यदि भारतमें ऐसे निरुद्यमी लोग नहीं हैं तो फिर इस देशमें चरखेके लिए कोई स्थान ही नहीं हो सकता। हिन्दुस्तानके गाँवोंकी स्थितिका जिन्हें ज्ञान है वे सब यह समझते हैं कि आज भारत निरुद्यमियोंसे भरा हुआ है और उनके कारण बर्बाद हो गया है। मैं जो मध्यम-वर्गके लोगोंसे यज्ञार्थ चरखा चलानेके लिए कहता हूँ वह भी बचे हुए समयमें ही। चरखेकी प्रवृत्ति किसी उद्योगकी विनाशक प्रवृत्ति नहीं है, बल्कि वह तो पोषक प्रवृत्ति है, और इसीलिए मैंने उसे अन्नपूर्णाकी उपमा दी है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १६-५-१९२६

५४०. टिप्पणियाँ

अमरेली खादी कार्यालय

यह कार्यालय भाई चितलियाने खोला था और वह भी खादी आन्दोलनके आरम्भमें ही। उसके बाद भाई अमृतलाल ठक्कर वहाँ रहे और उन्होंने उसके काम-का खूब विस्तार किया। उस समय सब अनुभवहीन थे, इसलिए नुकसान भी हुआ। तथापि उसका परिणाम लाभदायक ही हुआ, क्योंकि उससे अनुभव मिला और गरीब बहनोंकी थोड़ी-बहुत सहायता भी हुई। भाई जीवनलाल और रामजी हंसराज भी उसमें दिलचस्पी लेने लगे। भाई जीवनलालने उसमें अपना रुपया भी लगाया। रामजीभाई व्यवस्थापक बने। उन्होंने भाई जयसुखलालको इस कार्यमें लगाया। सूतके लिए हाथ-प्रेस बनाया और गाँठोके रूपमें उसका संग्रह करना आरम्भ किया। बादमें अमरेलीके आसपास, जहाँ बहुत ज्यादा गरीबी थी और जहाँ अच्छा काम करने-वाले मिले, कार्यालयकी शाखाएँ खोली तथा सूतकी और खादीकी किस्ममें सुधार किया। वहाँ पहले तीन अकका सूत बुना जाता था; किन्तु आज आठ अकका बुना जाता है और वह पहलेकी अपेक्षा ज्यादा मजबूत होता है। इस वर्षके आरम्भमें कार्यालयका चौथा दौर शुरू हुआ। भाई जीवनलाल तथा रामजीने मुझसे अनुरोध किया कि वे कार्यालय चलानेके उत्तरदायित्वसे मुक्त कर दिये जायें और यह इच्छा प्रकट की कि इस कार्यालयका कार्य-संचालन कोई संस्था अपने हाथमें ले ले। भाई रामजीने अपनी बीमारीके कारण तथा भाई जीवनलालभाईने अपने धन्धेमें अधिक हाथ बँटानेके हेतुसे कार्यालयकी जिम्मेदारीसे मुक्ति चाही थी। इसलिए अब मेरी सलाहसे कार्या-लयकी व्यवस्था काठियावाड़ राजनीतिक परिषद्ने अपने हाथमें ले ली है और वह थोडे समयमें परिषद्की ओरसे न्यासियोंके हाथमें सौंप दिया जायेगा, जिससे उसकी व्यवस्था अच्छी तरहसे हो सके। इस कार्यालयमें भाई जीवनलालने दस हजार रुपयेकी पूँजी लगाई है और वह उसमें अभीतक लगी है। इसके अतिरिक्त उन्होंने थैलीमें जो पाँच हजारकी रकम दी थी वह भी अपनी इच्छासे कार्यालयमें ही लगाई है और वे हर साल दो हजारका अनुदान देते हैं जो तीन सालतक चलता रहेगा। इस वर्षकी योजना निम्न प्रकार है।

पुरानी रुई और पुराना सूत लगभग ४३० मन था। ८५० मन रुई नयी है अर्थात् सस्ते भावसे खरीदी गयी है, इस सबका सूत काता जायेगा; परन्तु ३५० मन सूत वर्षके अन्ततक बुनना बाकी रह जायेगा। यह कार्यक्रम पूरा करनेके लिए वर्षके अन्ततक गरीबोको नीचे लिखे अनुसार रुपया बाँटा जा चुकेगा:

पिंजारोंको २००० रु०
पूनी बनानेवाली स्त्रियोको १००० रु०
सूत कातनेवाली स्त्रियोंको ८००० रु०, और
बुनाई और धुलाई करनेवालोंको १४००० रु०

कार्यालयकी चार शाखाएँ हैं: चलाला, बगसरा, चित्तल और बाबरा। बाबरामें कमीशन देकर काम कराया जाता है। कुल मिलाकर १७ लोग काम करते हैं। इनमें रसोइया और चपरासी आ जाते हैं। ज्यादासे-ज्यादा वेतन ७० रुपये है। उसके बाद ५० रुपये और ३५ रुपये। पाँच आदमी ३०-३० रुपया वेतन पानेवाले हैं। शेषमें से एक २५, दो २०, दो १८, एक १५, दो १२ और एक १० रुपये वेतन पाते हैं। सबका मासिक वेतन मिलाकर ४५५ रुपये है। भाड़ा ७० रुपये, यात्रा खर्च ५५ रुपये और डाक खर्च १० रुपये। इस तरह ५९० रुपये खर्च होते हैं। बाबरा, गारियाधार और पाँच तलावड़ामें कमीशन देकर काम कराया जाता है, इनका खर्च कुल मिलाकर प्रतिमास ५० रुपये आता है।

आइए, अब हम लागत खर्चका विचार करें। पुरानी रुई ४३० मन, २२ रुपये प्रति मनके हिसाबसे खरीदी गयी थी। नयी ८५० मन रुई १३ रुपये मनके हिसाबसे खरीदी गयी है। इस तरह प्रति मन रुईकी कीमत लगभग १६ रुपये हुई। इसलिए :

४० सेर रुई	दाम	१६ रु०
पिंजाईमें छीजन ६ सेर	पिंजाई	३ रु०
३४ सेर पूनियाँ	दाम	१९ रु०
कताईमें छीजन १ सेर	कताई	७½ रु०
३३ सेर सूत	दाम	२६½ रु०
बुनाईमे छीजन २ सेर	बुनाई	१० रु०
बाकी कपड़ा ३१ सेर=८८ गज	दाम	३६½ रु०

इसलिए बिना धुली २८ इंच पनेकी १ गज खादी ६½ आनेकी हुई।

इसमें व्यवस्था खर्च शामिल नहीं किया गया है। पिंजाईके हमेशा ३ रुपये ही दिये जाते हैं ऐसी बात नहीं है। ढाईसे तीन रुपयेतक लगते हैं। जहाँ पिंजाई बहुत अच्छी हो केवल वहीं तीन रुपयेका भाव है। कताई प्रति नम्बर २ पैसा दी जाती है और यहाँ कताईके जो ७½ रुपये लगाये गये हैं वे ७ नम्बरके सूतके हैं। इसलिए ऊपरके भाव औसत भाव माने जाने चाहिए। इस समय खादी प्रतिगज आधा आना व्यवस्था खर्च जोड़कर बेची जाती है। परन्तु इतनेसे व्यवस्था-खर्च पूरा नहीं होता। इस घाटेको पूरा करनेके लिए भाई जीवनलालके अनुदानका उपयोग किया जायेगा और इसके बाद जो घाटा बच रहेगा वह सामान्य रूपसे संगृहीत राशिसे पूरा किया जायेगा। लेकिन आदर्श यह रहा है कि व्यवस्था-खर्च एक रुपयेके पीछे एक आनासे अधिक न होने दिया जाये। किन्तु अभीतक हिन्दुस्तानमें कहीं भी यह आदर्श प्राप्त नहीं किया जा सका है। लेकिन जैसे-जैसे अनुभव होता जायेगा, कार्यकर्त्ताओंमें कुशलता आती जायेगी और कताईमें सुधार होता जायेगा वैसे-वैसे व्यवस्था-खर्च कम होता जायेगा। यह खर्च चार वर्ष पहले जो था, वह आज नहीं है। खादी खरीदने वालोंके लिए याद रखने लायक बात यह है कि प्रति गज दो पैसे काटकर बाकीके साढ़े छः आने किसानको, पिंजारेको, कत्तिनको और बुनकरको मिलते हैं और उसमें से

यदि रुईकी कीमत अलग कर दें तो पिंजाई, कताई और बुनाई मिलकर रुईकी कीमतसे सवाई होती हैं। इस ओर ध्यान आकर्षित करनेका उद्देश्य यह है कि यदि हमारे सभी कपड़ोंमें रुई देशी हो तो रुईकी कीमत किसानोंके घरमें जायेगी ही, खादीके खरीददार बाकी खर्चका सारा रुपया भी अपने मजदूर भाइयोंकी जेबमें ही डालेंगे। किन्तु विलायती कपड़े खरीदनेवाले उसे बाहर भेज देते हैं और मिलका कपड़ा खरीदनेवाले मुख्यतः धनिक वर्गके घरमें श्रीवृद्धि करते हैं। उसमें से मजदूरको गजके पीछे शायद ही एक पैसा मिलता हो।

अब पाठक समझ सकेंगे कि अब्बास साहब खादीकी फेरी लगानेके लिए काठियावाड़में इस सख्त गर्मीमें क्यों निकले हैं? और काठियावाड़ियोंको क्यों उनसे यह खादी लेनी चाहिए। जो कातनेवाली स्त्रियाँ सूत कात रही हैं उन्हे कोई दूसरी मदद नही मिलती, और उनके पास कोई धन्धा नही है। उन्हें रोज दो-चार पैसे मिलें यह बहुत बड़ी मदद है। इसलिए खादी खरीदनेवाले लोग यदि इन बहनोसे और साथमें गरीब बुनकरों तथा गरीब पिंजारोसे इस तरह जो-कुछ थोड़ा भी काम लेते है तो उनकी मदद करते हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १६-५-१९२६

५४१. पत्र : मोतीलाल नेहरूको

महाबलेश्वर
१६ मई, १९२६

प्रिय मोतीलालजी,

देवदासके बारेमें आपका तार मिला था। डॉ० दलालको अपेन्डिसाइटिसका सन्देह हुआ और उन्होंने ऑपरेशन करवानेकी सलाह दी। मैंने बिना हिचक उनकी सलाह मान ली और इसलिए जमनालालजी और महादेवकी मौजूदगीमें ऑपरेशन कर दिया गया। मैं वहाँ मौजूद नही था, लेकिन महाबलेश्वर और बीमार पडे मथुरादासको देखने देवलाली जाते समय गुरुवारको मैं उससे मिला। देवदासकी हालत बिलकुल ठीक चल रही है और शायद इसी २५ तारीखतक उसे छुट्टी दे दी जायेगी। तनिक भी चिन्ता की बात नहीं है। मैं यह पत्र महाबलेश्वरमें लिखवा रहा हूँ। यहाँ मैं आज तीसरे पहर लगभग ५ बजे पहुँचा। मंगलवारको[1] गवर्नरसे भेंट करनी है।

विट्ठलभाईके पत्रकी[2] एक नकल साथमें भेज रहा हूँ। पत्र लिखनेके बाद वे आश्रम आये थे। [विधान सभाके] अध्यक्षके वेतनके सम्बन्धमें मेरी और आपकी जो बातचीत हुई थी, उसके विषयमें मैंने उन्हें बता दिया। उन्होंने मुझे बताया कि

१. १८ मई, १९२६; १९ तारीखको दूसरी भेंट होना तय हुआ।

२. देखिए परिशिष्ट १।

वेतनका आधा अथवा कुछ भाग दलके कोषमें देनेकी बातका उन्हें कोई पता नहीं है। इसपर मैंने उनसे कहा था, चैक लेनेसे पहले आपसे सलाह करना आवश्यक है। क्या आप कृपया मुझे बतायेंगे कि इस सम्बन्धमें क्या किया जाये?

सर चुनीलालने[1] मुझे साथ टहलने जाते समय बताया कि आपने इंग्लैंड न जानेका फैसला किया है तथा उसके बदले दलका नेतृत्व श्री अय्यंगारको[2] सौंपकर किसी पहाड़ी स्थानपर आराम करना तय किया है। क्या आप इंग्लैंड नहीं जा रहे हैं?

हृदयसे आपका,

पण्डित मोतीलाल नेहरू
आनन्द भवन
इलाहाबाद

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११३१२) की फोटो-नकलसे।

५४२. पत्र : हरिभाऊ गणेश पाठकको

महाबलेश्वर
१७ मई, १९२६

प्रिय मित्र,

आशा है, बुधवारकी सुबह पूना पहुँच जाऊँगा और वहाँसे मोटरमें बैठकर सीधे काकाको मिलने सिंहगढ़ चला जाऊँगा। फिर शामको लौट आऊँगा। आप प्रोफेसर त्रिवेदीके घर मुझे मिलें। वहाँ मैं उनके पुत्रको देखने जाना चाहता हूँ। उसी रात मैं बम्बईके लिए चल पड़ूँगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीयुत हरिभाऊ गणेश पाठक
३४१, सदाशिव पेठ
पूना सिटी

अंग्रेजी पत्र (सी० डब्ल्यू० २८००) से।

सौजन्य : हरिभाऊ पाठक

१. बम्बईकी कार्यकारिणी परिषद्के सदस्य; महाबलेश्वरमें गांधीजी उनके यहाँ ठहरे थे।
२. श्रीनिवास अय्यंगार।

५४३. पत्र : शंकरलालको

महाबलेश्वर
१७ मई, १९२६

प्रिय लाला शंकरलाल,

आपका पत्र मिल गया था। यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि श्रीयुत गिडवानी[1] प्रेम महाविद्यालयके आचार्य नियुक्त किये गये हैं। आपने उन्हें जो पत्र लिखा है उसकी नकल उन्होंने मुझे दी है। मैं आपके लिखे नियमोंको[2] सहर्ष पढ़ जाऊँगा और जरूरी समझूँगा, वैसे सुझाव भी दूँगा।

डॉ० रायको यह जाननेके बाद लिखूँगा कि वास्तवमें जरूरत किस चीजकी है। यह शायद ज्यादा ठीक होगा कि डॉ० रायको तबतक न लिखा जाये जबतक कि आचार्य गिडवानी वहाँ पहुँचकर सोच-विचार करके यह नहीं तय कर लेते कि क्या करना चाहिए।

हृदयसे आपका,

लाला शंकरलाल
दिल्ली

[संलग्न]

१. चरखेमें उतने तकुए लगाये जा सकते हैं जितने तकुओंको कोई एक व्यक्ति पैरकी मददसे या उसकी मददसे बिना चला सकता है।

२. उससे हाथसे पिंजी हुई रुईकी पूनियोंसे प्रति घंटा कमसे-कम ३००० गज एक-सार, अच्छा बँटा हुआ कमसे-कम १० नम्बरका सूत काता जा सकना चाहिए।

३. उसका मूल्य ४ पौंड, अर्थात् ६० रुपयेसे अधिकका नहीं होना चाहिए।

४. इसे ऐसा होना चाहिए जिससे इसको आसानीसे कहीं ले जाया जा सके।

५. टूटे हुए हिस्सोंकी मरम्मत आसानीसे हो सकनी चाहिए या मरम्मत न हो सके तो वे कमसे-कम आसानीसे उपलब्ध हो सकने चाहिए।

६. किसी भी सावधान व्यक्तिके हाथमें इसे बिना किसी मरम्मतके प्रति दिन ८ घंटेके हिसाबसे पूरे एक सालतक काम दे सकना चाहिए।

७. इसे चलानेवालेको अपने हाथों और पैरोंसे वह सब काम करना चाहिए जो कि किसी भी स्त्री या पुरुषसे एक हफ्तेके भीतर सीख लेनेकी आशा की जा सकती है।

८. इस चरखेको चलानेमें उससे ज्यादा शक्ति अपेक्षित नहीं होनी चाहिए, जितनी कि एक सिलाई मशीनको चलानेके लिए दरकार होती हो।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५५६)की माइक्रोफिल्मसे।

१. आ० टे० गिडवानी।

२. तात्पर्य शायद साधन-सूत्रमें दिये गये उपरोक्त नियमोंसे है।

५४४. पत्र : मीराबहनको

१८ मई, १९२६

चि० मीरा,[1]

तुम्हारा पत्र मिल गया था। "मैं यह वक्तका ऐसा उपयोग करेंगे" के[2] बजाय "मैं इस वक्तका ऐसा उपयोग करूँगी"[3] लिखना चाहिए। क्रियान्त स्त्रीलिंग होना चाहिए।

यह पत्र मैं रातमें बिस्तरपर जानेसे पहले लिख रहा हूँ। इसलिए ज्यादा नहीं लिख सकता। नरगिस यहाँ आई थी। वह अब बेहतर दीख रही है। स्थान ठंडा तो है, लेकिन सर्द नहीं।

सस्नेह,

बापू

[पुनश्च :]

साथका कागज मणिबहनको दे देना।

अंग्रेजी पत्र (सी० डब्ल्यू० ५१८६) से।

सौजन्य : मीराबहन

५४५. पंजाबके तुलनात्मक आँकड़े

इस सप्ताह मैं पंजाबमें खादीके उत्पादन और बिक्रीके तुलनात्मक आँकड़े[4] दे पा रहा हूँ :

इन आँकड़ोंसे अभय आश्रम जैसी प्रगति सूचित नहीं होती है, फिर भी १९२३-२४ की तुलनामें सम्बन्धित महीनोंके आँकड़े दुगुने हैं इसे पंजाबमें खादीकी अवनतिका चिह्न नहीं माना जा सकता।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २०-५-१९२६

१ से ३. ये अंश मूल पत्रमें देवनागरी लिपिमें हिन्दीमें ही हैं।

४. ये आँकड़े यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं। ये आँकड़े १९२२-२३, १९२३-२४, १९२४-२५ और १९२५-२६ के थे।

५४६. युद्ध या शान्ति

विश्व-युद्धपर श्री पेजकी श्रेष्ठ पुस्तिकाके[1] मुख्य अंशोंको मैंने अकारण ही नही उद्धृत किया था। आशा है, पाठकोंने इन अध्यायोंको समुचित ध्यानसे पढ़ा होगा। श्री पेजने निर्णयात्मक रूपसे यह सिद्ध कर दिया है कि दोनों ही पक्ष बराबर दोषी थे, तथा दोनोंने बर्बर और अमानवीय कृत्य किये। हमें यह जाननेके लिए श्री पेजकी सहायता जरूरी नही थी कि इतिहासमें वर्णित किसी भी युद्धमें इतनी जानें नही गईं जितनी कि इस युद्धमें गईं। नैतिक हानि तो और अधिक हुई। आत्माका हनन करनेवाली विषैली शक्तियों (झूठ और कपट)को भी इसमें उतना ही विकसित किया गया जितना कि मानव-शरीरको नष्ट करनेवाली शक्तियोको। नैतिक दृष्टिसे भी इसके परिणाम उतने ही भीषण सिद्ध हुए है जितने कि भौतिक दृष्टिसे। युद्धके कारण यौन-नैतिकताका जो पतन हुआ है, मानव-समाजपर पड़नेवाले उसके प्रभावका अभी ठीक अन्दाज नहीं लगाया जा सकता। सद्‌गुणके सिंहासनपर दुराचार जमकर बैठ गया है। फिलहाल मनुष्यके अन्दरका पशु प्रबल हो उठा है।

परवर्ती प्रभाव सम्भवतः वास्तविक और तात्कालिक प्रभावोसे भी अधिक भीषण हैं। यूरोपके एक भी राज्यमें सरकारमें स्थायित्व नही है। कोई भी वर्ग अपनी स्थितिसे सन्तुष्ट नहीं है। हर वर्ग दूसरे वर्गोंके नुकसानके बलपर अपनी स्थिति सुधारना चाहता है। राज्योंके संघर्षने अब प्रत्येक राज्यमें आन्तरिक संघर्षका रूप ले लिया है।

भारतको अपना रास्ता चुनना है। वह यदि चाहे तो युद्धका रास्ता चुनकर देख ले; नतीजा यही होगा कि जितनी गिरी हालतमें वह अभी है उससे भी अधिक नीचे गिर जायेगा। लगता है, हिन्दू-मुस्लिम झगड़ेके रूपमें वह युद्धकलाका पहला पाठ पढ़ रहा है। यदि भारत युद्धके जरिये स्वराज्य हासिल भी कर ले तो उसकी दशा फ्रांस और इंग्लैंडसे अच्छी नहीं होगी, बल्कि शायद उनसे भी बदतर होगी। पुराने उदाहरण अब झूठे पड़ गये हैं। जापान द्वारा की गई तुलनात्मक प्रगति भी हमारा मार्गदर्शन नहीं कर सकती, क्योंकि रूस-जापान युद्धके बाद युद्ध-विज्ञानने अब कहीं अधिक प्रगति कर ली है। इसके परिणामोंका अध्ययन यूरोपकी वर्तमान स्थितिसे ही किया जा सकता है। हम बेखटके ऐसा कह सकते हैं कि यदि भारत युद्धके द्वारा अपने ऊपरसे ब्रिटिश शासनका जुआ उतार फेंकता है तो निश्चित है कि उसे अवश्य ही उन स्थितियोंसे गुजरना पड़ेगा जिनका वर्णन श्री पेजने इतने सजीव ढंगसे किया है।

पर शान्तिका रास्ता भी उसके लिए खुला हुआ है। यदि वह धैर्यसे काम ले तो उसकी स्वतन्त्रता सुनिश्चित है। शान्तिका वह रास्ता यद्यपि हमें अपनी आतुरतावश सबसे लम्बा लग सकता है, तथापि वह स्वतन्त्रता-प्राप्तिका सबसे छोटा

१. देखिए खण्ड २९, पृष्ठ २५६-५७।

रास्ता सिद्ध होगा। आन्तरिक विकास और स्थायित्व शान्तिके मार्गके निश्चित वरदान हैं। हम इसको इसलिए अस्वीकार करते हैं कि हमें लगता है कि यह तो उस शासकको इच्छाके आगे झुकना है, जिसने अपने-आपको हमारे ऊपर जबरन लाद रखा है। लेकिन, जिस क्षण हमें इस बातका भान हो जायेगा कि केवल कहने भरको ही ब्रिटिश हुकूमत हमपर जबरदस्ती थोपी हुई है, किन्तु वास्तवमें अपने जान-मालकी क्षति सहनेकी अपनी अनिच्छाके कारण हम भी इसके थोपे जानेमें शरीक हैं, उस क्षण हमें सिर्फ इतना करनेकी जरूरत रह जायेगी कि चुप रहकर प्रकारान्तरसे इस गुलामीको पोषण देनेके अपने नकारात्मक रुखको बदल डाले। अपना रुख बदलनेसे हमें जो कष्ट सहने होंगे, वे युद्धका रास्ता अपनानेका प्रयत्न करनेपर होनेवाली शारीरिक तथा नैतिक क्षतिकी तुलनामें बहुत कम होंगे। और युद्धके कष्ट सहनेसे दोनों पक्षोंको नुकसान पहुँचता है। शान्तिका रास्ता अपनाकर जो कष्ट सहे जाते हैं, उनसे दोनों पक्षोंको लाभ होता है। वे कष्ट तो शिशु-जन्मके आनन्ददायक कष्टके समान होंगे।

हमें १९२०-२१ की घटनाओंसे जल्दबाजीमें कोई सामान्य निष्कर्ष निकालकर भ्रममें नहीं पड़ना चाहिए। उस शानदार अवधिकी उपलब्धि महान् थी, फिर भी यदि हम अपने अपनाये रास्तेपर ईमानदारीसे चले होते और हममें आस्था होती तो जो उपलब्धि हुई होती, उसकी तुलनामें यह उपलब्धि कुछ भी नहीं है। हम मुँहसे जब अहिंसाकी दुहाई देते थे, तब हममें से बहुतेरे लोगोंके दिलोंमें हिंसा थी। और इस तरह यद्यपि हम अपने सिद्धान्तके प्रति, जहाँतक हमने उसे स्वीकार किया था, झूठे थे, लेकिन हम दोष सिद्धान्तको देते थे और अपने-आपको दोष देने या सुधारनेके बजाय हमने सिद्धान्तमें विश्वास खो दिया। जो व्याधि हमारे अन्दर जहर फैला रही थी, चौरी-चौरा काण्ड उसका एक लक्षण था। हमारा दावा था कि हमारा रास्ता शान्ति-अहिंसाका रास्ता है। हम उस दावेको पूरी तरह सिद्ध नहीं कर पाये। हमें दुश्मनोंके व्यंग वाक्योंकी परवाह नहीं करनी चाहिए। वे तो जहाँ जरा-सी भी हिंसा नहीं थी, वहाँ भी हिंसा देखते थे। लेकिन हम अपने "अन्तरकी सूक्ष्म आवाज" के निर्णयकी अवहेलना नहीं कर सकते थे। वह अन्दर छिपी हिंसाको जानती थी।

शान्तिका रास्ता सत्यका रास्ता है। सत्यपरायणता शान्तिके पालनसे भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। वस्तुतः मिथ्याभाषण हिंसाकी जननी है। सच्चे आदमीकी वृत्ति बहुत समयतक हिंसात्मक नहीं रह सकती। सत्यके अन्वेषणके दौरान वह देखेगा कि उसे हिंसासे काम लेनेकी कोई जरूरत नहीं है, और वह यह भी जान लेगा कि जबतक उसमें जरा भी हिंसा है, तबतक वह सत्यको नहीं पा सकेगा, जिसकी वह तलाश कर रहा है।

सत्य तथा अहिंसाके और असत्य तथा हिंसाके बीचका कोई रास्ता नहीं है। हो सकता है, हममें मनसा-वाचा-कर्मणा पूरी तरहसे अहिंसक बनने योग्य शक्ति कभी नहीं आये, परन्तु हमें अपना लक्ष्य अहिंसाको ही बनाना चाहिए और उस दिशामें सतत प्रगति करनी चाहिए। स्वतन्त्रताकी प्राप्ति व्यक्तिको, राष्ट्र अथवा विश्वको ठीक

उसी अनुपातमें होती है जिस अनुपातमें उसकी वृत्तियाँ अहिंसात्मक हो पाती हैं। इसलिए आइए, जो लोग सच्ची स्वतन्त्रताकी प्राप्तिके एकमात्र साधनके रूपमें अहिंसा में विश्वास रखते हैं, वे अहिंसाकी ज्योतिको मौजूदा दुर्भेद्य अन्धकारमें भी दीप्त रखें। जिस प्रकार हवामें भूसा उड़ जाता है उसी प्रकार करोड़ों लोगोंका असत्य भी उड़ जायेगा और कुछ थोड़े-से लोगोंका सत्य ही केवल टिका रह सकेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २०-५-१९२६

५४७. एक अच्छा उदाहरण

अखिल भारतीय चरखा संघके मन्त्रीको बताया गया है कि इलाहाबाद नगरपालिकाने इस आशयका एक प्रस्ताव पास किया है कि हाथ-कते सूत और खादीपरसे चुंगी उठा ली जाये। इस देशभक्तिपूर्ण निर्णयके लिए मैं नगरपालिकाको बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि अन्य नगरपालिकाएँ भी इसका अनुकरण करेंगी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २०-५-१९२६

५४८. टिप्पणियाँ

आस्ट्रेलिया-निवासी भारतीय

एक आस्ट्रेलिया-निवासी भारतीय अपने एक पत्रमें लिखते हैं :[1]

पत्र-लेखकको खान खोदनेकी अपनी अर्जीके जवाबमें खान विभागके रजिस्ट्रारकी तरफसे जो पत्र मिला है, उसे भी उसने मेरे पास भेजा है। उसकी नकल मैं नीचे दे रहा हूँ :

> आपके गत मासकी ३१ तारीखके पत्रके उत्तरमें मैं आपको सूचित करता हूँ कि भारतीयोंको खानके स्वामित्वका अधिकार देनेमें हम असमर्थ हैं।

यह पत्र आँखें खोलनेवाला है। ऐसा खयाल था कि जो एशियाई आस्ट्रेलियामें बस गये हैं उनके प्रति वहाँ जाति-भेद नहीं बरता जाता। परन्तु लेखकके इस पत्रसे, जिसकी पुष्टि खान विभागके पत्रकी मूल प्रतिसे होती है, अब सन्देहके लिए कोई गुंजाइश नहीं रह जाती।

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने बताया था कि रंगदार जातिके अच्छेसे-अच्छे इंजीनियरको भी आस्ट्रेलियामें नौकरी नहीं मिल सकती, और न कोई रंगदार व्यक्ति वहाँ जमीन ही खरीद सकता है; और अगर वह अपने पास जमीन रखना चाहे तो किसी गोरेके नामपर ही रख सकता है।

दो नजरिये

पूरी इच्छा होते हुए भी जो दो वर्गोंके रूपमें भारतीयों और यूरोपीयोंका हार्दिक सम्बन्ध नहीं हो पाता है, उसका निर्णायक कारण यह है कि हमारे दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न हैं। हम यह कहते हैं कि जो सुधार दिये गये हैं वे अपर्याप्त हैं; शिक्षित वर्ग जनसमुदायका सबसे अच्छा प्रतिनिधित्व कर सकता है; और भाषा तथा धर्मकी अनेकताके बावजूद हम एक राष्ट्र हैं। यहाँ इन बातोंको सिद्ध करनेकी कोई जरूरत नहीं है। यही कहना काफी होगा कि भारतके शिक्षित लोग ऊपर लिखी बातोंको ईमानदारीके साथ मानते हैं।

परन्तु यूरोपीय लोगोंकी जो सच्ची राय है, वह यूरोपीय संघकी तरफसे भारतके प्रत्येक यूरोपीयको लक्ष्य करके लिखे गये इस घोषणापत्रमें स्पष्ट रूपसे और अत्यन्त संक्षेपमें प्रकट की गई है:[1]

इस प्रकार इस घोषणापत्रसे प्रकट हो जाता है कि दोनोंके विचारों और आकांक्षाओंमें जमीन-आसमानका अन्तर है; और जब दोनोंके बीच भेदकी इतनी बड़ी खाई है तब फिर उनके लिए एक-दूसरेके साथ मुक्त भावसे और स्वतन्त्र साझेदारोंके रूपमें मिलकर काम करना कैसे सम्भव हो सकता है? मात्र कृत्रिम सहयोग-समागम दोनोंके लिए पतनकारी ही हो सकता है, क्योंकि वे मनमें एक-दूसरेसे दुराव और एक-दूसरेके प्रति अविश्वास रखकर मिलते हैं। स्थिति बहुत दुःखद है, लेकिन सचाई भी यही है। इस दुःखद स्थितिको समाप्त करनेके लिए सबसे पहले जरूरत इस बातकी है कि इसमें निहित सत्यको हम देखें। दोनोंका मिलना वांछनीय है, दोनोंको मिलना ही चाहिए; लेकिन ऐसा होगा तभी जब हम एक ही तरहसे सोचना आरम्भ कर दें। और यह तभी होगा, जब हम भारतीय यह दिखा दें कि हम सचमुच ऐसी एकताकी तीव्र आकांक्षा करते हैं और एक राष्ट्रके रूपमें काम करके तथा जनसाधारणके लिए कष्ट उठाकर यह साबित कर दें कि हमारा यह विश्वास सच्चा है कि हम एक राष्ट्र हैं, और हम वास्तवमें जनसाधारणका प्रतिनिधित्व करते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २०-५-१९२६

१. घोषणापत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। उसमें कहा गया था कि यूरोपीयोंने मॉन्टेग्यु-चेम्सफोर्ड-सुधारोंका विरोध इसलिए किया कि भारतीय लोग एक राष्ट्र नहीं हैं, और शिक्षित वर्ग जनसाधारणका प्रतिनिधित्व नहीं करता। जनसाधारणने तो कभी भी प्रतिनिधि सरकारकी माँग ही नहीं की।

५४९. खादी-सम्बन्धी चित्र-तालिका

नीचे दी गई चित्र-तालिकाओं[1] (ग्राफ्स)से १९२४-२५ से १९२५-२६ में अक्तूबरसे मार्च तकके महीनोंमें तमिलनाडमें हुई खादीकी प्रगतिपर तुलनात्मक दृष्टिसे प्रकाश पड़ता है। निश्चय ही पाठकोंको ये आँकड़े दिलचस्प लगेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २०-५-१९२६

५५०. पत्र : जयसुखलालको

सावरमती आश्रम
शनिवार, २२ मई, १९२६

चि० जयसुखलाल,

मैं गवर्नरसे मिलनेके लिए महावलेश्वर गया था। वहाँसे आज वापस आया हूँ। तुम्हारा पत्र मुझे महावलेश्वरमें ही मिला था। गवर्नरके साथ चरखेकी ही वात होती रही, ऐसा कहूँ तो गलत नहीं होगा। देवदासकी तवीयत अच्छी है। दो-चार दिनोंमें अस्पतालसे वापस आ जायेगा। कुसुम और धीरु अभी जयाके पास ही हैं। उनसे भी मिला था। वे २५ तारीखको वम्वई छोड़ेंगे। देवलालीमें मथुरादासको भी देख आया, उसकी तवीयत सामान्य कही जा सकती है। प्रभुदास और विजयाको भी वहीं मिला था। प्रभुदासकी तवीयत वहाँ ठीक रहती जान पड़ती है। किसी वैद्यकी दवा लेता है।

तुम्हारे पास जो महीन सूत है, क्या वह पक्का भी है? यदि वह पक्का हो तो क्या वह वांझा लोगोंसे वुनवाया जा सकता है? वगसरामें तो ये लोग वहुत महीन सूत वुनते हैं। वे पहले हमारी मिलके सूतको हाथ नहीं लगाते थे। क्या तुम जानते हो कि उनके साथ वन्दोवस्त करके ऐसा सूत हमने [१९] १५ में वुनवाया था? अमरेलीमें मारवाड़ी मास्टरका पिता है; कदाचित् वह भी महीन सूत वुन सकेगा। इससे पहली वात तो यह जाननेकी है कि सूत पक्का है अथवा नहीं। वुनाईका काम यहाँ हो सकता है या नहीं, इस वारेमें विचारकर देखूँगा। खादीके टुकड़ेके वारेमें गारियाधारमें क्या हुआ, वह तो मैं नहीं जानता। चाहे जो हुआ हो, लेकिन मेरा तो यह खयाल है कि यदि तुम खादीके टुकड़े इकट्ठे कर सको तो अच्छा है। जो लोग खादीके टुकड़े देनेमें आनाकानी करते हों क्या उन्हे यह नहीं समझाया जा सकता कि उनमें ताना और वाना हाथका ही है अथवा नहीं, इसकी परीक्षा किसी

१. यहाँ नहीं दी जा रही हैं।

एक ही निष्णात व्यक्तिके हाथों होनेकी आवश्यकता है, अतः वे [अहमदाबाद] भेजे जाने चाहिए। लेकिन ऐसा न हो सकता हो तो जिस व्यक्तिकी सहायता लेकर तुम परीक्षण करना चाहो उसकी मदद ले लेना और परीक्षण करके पैसे चुका देना।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९५५५)की माइक्रोफिल्मसे।

५५१. पत्र : चन्दूलालको

साबरमती आश्रम
शनिवार, बैशाख सुदी १ [०],[1] २२ मई, १९२६

भाईश्री ५ चन्दूलाल,

आपका पत्र मिला। बिरादरीके लोगोंकी रायके विरुद्ध जाकर भी आपने चिरंजीव कमलाका विवाह जाति द्वारा रचित दायरेके बाहर करनेका जो निश्चय किया है उसके लिए मैं आपको बधाई देता हूँ। विवाह निर्विघ्न रूपसे हो, वर-वधू दीर्घायु हों और ऐसा आदर्श जीवन व्यतीत करें कि अन्य लोग उनका अनुकरण करें, ऐसी मेरी कामना है।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९५५७) की माइक्रोफिल्मसे।

५५२. टिप्पणियाँ

वनस्पति घी

आजकल नामका दुरुपयोग बहुत बढ़ गया है। हाथकते सूतसे हाथबुने कपड़ेको ही खादीका नाम दिया जा सकता है किन्तु मिलवाले अपने यहांके बुने हुए मोटे कपड़ेको भी खादीका नाम देते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ लोग मिलके सूतके हाथ-बुने कपड़ेको आधी खादीका नाम देकर, उसे खादीके नामपर चलाकर लोगोंको ठगते हैं। घीके मामलेमें भी यही हाल है। दूधसे बने हुए स्निग्ध पदार्थको ही घी कहा जा सकता है। किन्तु आजकल वनस्पति घी निकला है। गोलेके तेलको "वेजीटेबल घी' कहनेसे वह घी नहीं बन जाता और न उसमें घीके गुण ही आ सकते हैं। आजकल विदेशसे यह नकली घी पर्याप्त मात्रामें आ रहा है। वह बहुत अच्छी तरह डिब्बेमें बन्द किया हुआ होता है और देखनेमें घी जैसा ही लगता है इसलिए सीधे-सादे आदमी उसे खरीदते ह। चूँकि घीके नामपर चरबी बेची जा रही है या घीमें चरबीकी मिलावट की जाती है इसलिए लोग घीका प्रयोग करते हुए डरते हैं और "वेजीटेबल घी" काममें लाते हैं।

१. साधन-सूत्रमें ११ तिथि दी हुई है किन्तु उस दिन रविवार था।

यदि कोई ऐसी वनस्पति मिल सके जिसमें घी जितने ही गुण हों तो मैं न केवल उसका प्रयोग करूँगा बल्कि उसका प्रचार भी करूँगा। घीके प्रयोगमें मुझे दोष दिखाई देते हैं। किन्तु घीके गुणोंकी मैं अवहेलना नहीं कर सकता। अबतक कोई ऐसा पदार्थ वनस्पतियोंसे नहीं निकाला जा सका जो घीका स्थान ले सके। इसलिए जो चीज वैजीटेबल घीके नामपर बेची जा रही है, वह दो कारणोंसे त्याज्य है: एक तो यह कि उक्त वस्तु घी नहीं है और दूसरा यह कि उसमें घीके गुण नहीं हैं। तीसरी हानि यह है कि जहाँ हम आजकल अनेक विदेशी वस्तुओंका प्रयोग करते हैं वहाँ अपने अज्ञानवश एक और विदेशी पदार्थ प्रयोग करने लग गए जिससे हम नुकसान उठा रहे हैं। अतः वनस्पति घीका प्रयोग करनेवाले हर व्यक्तिको सावधान हो जाना चाहिए। इस घीका प्रयोग बन्द कर देना चाहिए।

ऊँच-नीच

एक भाई लिखते हैं:[1]

यह कठिन प्रश्न है। किन्तु अहिंसाकी दृष्टिसे तो उसका एक ही उत्तर हो सकता है और वह यह कि जो व्यक्ति अपने स्वार्थकी खातिर छोटे जीवोंको कष्ट पहुँचाता है वह स्वयं गिर जाता है। मनुष्य नम्रता और उच्चताका सम्मिश्रण है और उसकी उच्चता उसकी नम्रतामें निहित है। यदि उसमें नम्र बननेकी शक्ति न हो तो उसे ऊँचा उठा हुआ नहीं कहा जा सकता। ऐसी हालतमें पुरुषार्थकी भी गुंजाइश नहीं रहती। इसीलिए कहा गया है कि जो व्यक्ति अपने कारण किसी भी प्राणीको दुःख नहीं देता और जीवमात्रके लिए स्वयं दुःख उठानेको तैयार रहता है, वही आत्म-दर्शन करने योग्य बन सकता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २३-५-१९२६

५५३. गो-रक्षा

भाई जीवराज नेणशी लिखते हैं:[2]

यह सुझाव कोई नया नहीं है। अ० भा० गोरक्षा मण्डल इसी उद्देश्यसे स्थापित किया गया है। परन्तु ज्यों-ज्यों मुझे इस कार्यका अनुभव हो रहा है त्यों-त्यों मैं

१. पत्र-लेखकने पूछा था कि मनुष्यको अन्य सभी प्राणियोंसे ऊँचा माना जाता है, किन्तु वह अपने स्वार्थकी खातिर अन्य प्राणियोंको दुःख देता है। क्या उसे ऐसी स्थितिमें भी अन्य प्राणियोंसे ऊँचा माना जा सकता है?

२. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इसमें पत्र-लेखकने सुझाव दिया था कि देशमें दुर्बल पशुओंके रक्षार्थ जो विभिन्न संस्थाएँ चल रही हैं, उनको मिलाकर एक अखिल भारतीय संस्था बना ली जाये और उसके द्वारा एक ऐसी योजना बनाई जाये जिससे उन संस्थाओंमें स्वस्थ पशु रखे जायें और उनसे लोगोंको शुद्ध दूध उपलब्ध किया जाये एवं इस प्रकार जो आय हो उससे दुर्बल पशुओंकी सार-सँभाल की जाये।

यह देख रहा हूँ कि सब संस्थाओंको एक करना और उन्हें एक ही नियमके अधीन लाना कितना कठिन है। जितनी भी संस्थाओंके नाम और पते मिले, उनसे उनके कामकी जानकारी माँगी थी; परन्तु वह भी बहुत ही कम संस्थाओंने भेजी है। यह नहीं कि वे भेजना नहीं चाहतीं; परन्तु आलस्य, उपेक्षा अथवा लज्जाके कारण नहीं भेजतीं। उन्हें लज्जा अपनी अव्यवस्थाके कारण मालूम होती है, क्योंकि मैंने ऐसी संस्थाएँ देखी हैं जिनमें न व्यवस्था ठीक थी और न हिसाब ठीक था। कुछ संस्थाओंमें तो व्यवस्थापक ही इतने अनपढ़ लोग होते हैं कि उनमें सब तथ्योंको इकट्ठा करके भेजनेकी योग्यता नहीं होती। हिन्दुस्तानमें १,५०० गोशालाएँ बताई जाती हैं। यदि ये गोशालाएँ सुव्यवस्थित होकर डेरियोंमें बदल जायें तो इस देशमें गोरक्षाका प्रश्न बहुत सरल हो जाये; मुझे इसमें किसी भी प्रकारका सन्देह नहीं। परन्तु यह कार्य हो कैसे? बिल्लीके गलेमें घंटी कौन बाँधे? मैं तो इतना ही कहता हूँ कि सभी संस्थाओंको पुनरुज्जीवित करनेकी आवश्यकता है। ये जबतक आदर्श दुग्धालय और चर्मालय नहीं बनतीं तबतक इनके नियम बनाने भी कठिन हैं। अ० भा० गोरक्षा मण्डलने इस कार्यका त्याग नहीं किया है। दुग्धालयकी योजना सर हेरॉल्ड मैनसे बनवानेका प्रयत्न किया जा रहा है और चर्मालयकी योजना भी तैयार कराई जा रही है। गोरक्षाकी दृष्टिसे ऐसे प्रयोग करनेका कार्य नया है; इसलिए ये योजनाएँ शीघ्र तैयार नहीं की जा सकतीं। भाई वालजी देसाई[1] और मि० ग्रेगके लेख इस बातको सिद्ध कर रहे हैं कि ढोरोंकी हिफाजत करनेमें भारतवर्ष सबसे गया-बीता देश है। तब हमें यहाँ दुग्धालय और चर्मालयके विशेषज्ञ शीघ्र कैसे प्राप्त हो सकते हैं?

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २३-५-१९२६

५५४. पत्र : के० टी० पॉलको

सावरमती आश्रम
२३ मई, १९२६[2]

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। उसका उत्तर तार द्वारा नहीं दिया, क्योंकि पत्र ऐसा है जिसका उत्तर छोटे-से तारमें नहीं दिया जा सकता। आपके पत्रसे मुझे लगता है कि मेरी इस प्रस्तावित यात्रासे आपको बड़ी परेशानी और चिन्ता हो रही है। मगर इसपर चिन्ता नहीं कीजिए। आप किसी भी तरह ऐसा न मानें कि चूँकि निमन्त्रण आपकी मार्फत भेजा गया है, इसलिए आपको मेरा जाना पक्का ही कर लेना है।

१. देखिए यंग इंडिया, १४-१-१९२६ से ८-७-१९२६।

२. सम्भवतः यह पत्र शनिवार ता. २२ मईको लिखा गया था; देखिए अगला शीर्षक।

आपको और मुझे इस चीजको बिलकुल तटस्थ भावसे देखना चाहिए और यह काम उसी हालतमें करना चाहिए जब हमें यथासम्भव अधिकसे-अधिक स्पष्ट रूपसे दिखाई दे कि ईश्वरकी यही इच्छा है। सो अगर इस सम्बन्धमें किन्हीं परिस्थितियोंकी बाध्यताकी कोई बात हो तो आप अपने कदम वापस ले लें और अपने मनसे निमन्त्रणका खयाल निकाल दें — ऐसा समझें, मानो कोई निमन्त्रण कभी भेजा ही नही गया।

आपने पैसेके सवालकी चर्चा की है लेकिन, इसकी चिन्ता तो केन्द्रीय समितिको होनी चाहिए, मुझे और आपको नही। हाँ, अगर आपसे खर्च जुटानेकी अपेक्षा की जाती हो तो बात दूसरी है। अगर जरूरी लगता तो जितने पैसेकी आवश्यकता होती, मैं एक मित्रसे खुशी-खुशी माँग लेता। लेकिन इसे मैं सिद्धान्ततः गलत मानता हूँ, क्योंकि खर्च तो उन्हींको उठाना चाहिए जो मुझे निमन्त्रित करते हैं।

फिर, जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, मैं तृतीय श्रेणीमें भी उतने ही आरामसे यात्रा कर सकता हूँ जितना कि प्रथम श्रेणीमें। अगर स्थान साफ-सुथरा हो, पर्याप्त एकान्त मिल सके और खराब मौसमसे बचावका प्रबन्ध हो तो मैं सैलूनके बजाय डेकमें ही जाना पसन्द करूँगा। दक्षिण आफ्रिकासे लौटते समय, मैंने केप टाउनसे लन्दन तकका तीसरे दर्जेका टिकट लिया और मैंने देखा कि उससे मुझे कोई असुविधा नही हुई। डेकमें तो स्थान ही नही मिल सका था। लेकिन इस मामलेमें तो मैं समझता हूँ कि दिखावेका खयाल करके सैलूनके अलावा और किसी दर्जेकी बात नही सोची जायेगी। तथापि अगर केन्द्रीय समिति मुझे तीसरे दर्जेमें ही ले जाना तय करती है तो मैं इसमें किसी तरहका अपमान नही मानूँगा, लेकिन सब-कुछ या तो केन्द्रीय समिति करे या फिर वे लोग जिनका कि निमन्त्रण-पत्र भेजनेमें हाथ है। इसमें मैं कुछ नहीं बोलना चाहूँगा और न कोई सुझाव ही देना चाहूँगा।

जहाँतक बकरीके दूधका सवाल है, मैं यह नहीं मानूँगा कि बकरियोंके खाने-रहनेका इन्तजाम करने या उनसे दूध निकालनेकी जिम्मेदारी आपपर या मेरे किसी साथीपर है। यह काम जहाज कम्पनीपर छोड देना चाहिए। प्रबन्धक लोग जैसी व्यवस्था करना चाहें, करें। यात्रियोंके लिए जहाजपर इन चीजोंकी व्यवस्था करना कोई आसान काम नही है। मान लीजिए, तूफान आता है या बकरियाँ मर जाती हैं तो कोई क्या करेगा? ऐसी बातोंको बराबर जहाजके मालिकोंपर छोड़ देना ही सबसे अच्छा होता है। वे जानते हैं कि उनका इन्तजाम कैसे करना चाहिए।

मेरे साथ दो व्यक्ति होंगे — महादेव देसाई और मेरा सबसे छोटा लड़का देवदास। पहले तो एकको ही साथ ले जानेका इरादा था, लेकिन फिर अपने शरीरकी मौजूदा हालतको देखते हुए और इस बातको ध्यानमें रखते हुए कि चाहे मैं कही ठहरा हुआ होऊँ या यात्रापर होऊँ, मुझे कुछ-एक सार्वजनिक कार्य तो हर स्थितिमें करने ही पड़ते हैं, लगता है कि ये दोनों सहायक मेरे लिए जरूरी हैं। अगर सहायकके रूपमें आप भी मिल जायें तो अपना सौभाग्य मानूँगा, लेकिन मैं समझता हूँ, आप महादेव या देवदासके स्थानकी पूर्ति तो नही ही कर सकते। वे किस दर्जेमें यात्रा

करेंगे, इसकी मुझे कोई फिक्र नहीं है, लेकिन अगर उन्हें मेरे दर्जेसे नीचेके दर्जेमें यात्रा करनी हो तो जहाजके मालिकोंके साथ ऐसा प्रबन्ध कर लेना चाहिए जिससे मुझे जब कभी उनकी सहायताकी जरूरत हो, उन्हें आसानीसे सूचित कर सकूं। कहनेकी जरूरत नहीं कि दोनों शाकाहारी हैं।

मेरा खयाल है, अपने पहले पत्रमें[1] मैंने जो कहा था कि पासपोर्ट तथा अन्य बातोंकी व्यवस्था निमन्त्रण भेजनेवालोंको करनी होगी, वह आपको याद होगा।

अब मैं पत्रको वही बात कहकर समाप्त करता हूँ, जिस बातसे इसे शुरू किया था; मतलब यह कि सारी बातोंको ध्यानमें रखते हुए मुझे फिनलैंड ले जानेका विचार मनसे निकाल देना ही आपके लिए बेहतर होगा।

मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ११३४६) की फोटो-नकलसे।

५५५. तार: के० टी० पॉलको

२३ मई, १९२६

आपका तार मिला। शनिवारको मैंने विस्तारसे पत्र लिखा है। आपके पत्रमें उल्लिखित आर्थिक तथा अन्य कठिनाइयोंको ध्यानमें रखते हुए मेरा सुझाव है कि निमन्त्रण रद कर दिया जाये।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११३४७) की फोटो-नकलसे।

५५६. सन्देश: अब्राह्मणोंको

साबरमती
२३ मई, १९२६

यदि अब्राह्मण लोग वर्तमान सरकारकी सहायतासे राजनैतिक क्षेत्रमें अपने उत्कर्षकी बात सोचनेके बजाय देशकी अत्यन्त निर्धन जनताके बारेमें और इसलिए चरखा तथा खादीके बारेमें सोचें तो वे अपनी और उसी हदतक समूचे देशकी हालत बेहतर बना सकेंगे।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५६९) की माइक्रोफिल्मसे।

१. देखिए "पत्र: के० टी० पॉलको", १३-४-१९२६।

५५७. पत्र: अब्बास तैयबजीको

साबरमती आश्रम
२३ मई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैं जानता था कि आप इस आघातको — दुनियावी दृष्टिकोणसे तो यह अथाह ही है — बहादुरीसे झेल लेंगे। मैं तो यही मानता हूँ कि ऐसा कहना बिलकुल सही होगा कि खुदाको शम्स तैयबजीके इस शरीरसे, जो अब कब्रमें शान्तिसे पड़ा हुआ है और तेजीसे मिट्टीमें मिलता जा रहा है, आगे कोई काम नहीं लेना था। अगर खुदामें आपका विश्वास न होता, अगर आप यह न मानते होते कि शरीरके नष्ट हो जानेपर भी आत्माका अस्तित्व बना रहता है तो इस घटनापर आपका आँसू न बहाना निष्ठुरता माना जाता। लेकिन चूँकि मैं जानता हूँ कि आत्माकी अमरतामें आपका विश्वास है और आप मानते हैं कि खुदा सृष्टिमें सब जगह मौजूद है, इसलिए आपने जो अपने ऊपर दुःखको हावी नहीं होने दिया उससे यही प्रकट होता है कि आपने खुदा की मर्जीको शान्त मनसे सिर झुकाकर स्वीकार कर लिया और मृत्युके असली रूपको पहचान लिया।

जमनालालजी अब भी बम्बईमें ही हैं। आप चाहें तो खुद ही उनसे मिल सकते हैं। मैं उन्हें पत्र लिख दूँगा। क्या आपको मालूम है कि देवदास 'सर हरिकिसन दास अस्पताल' में है?

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीयुत अब्बास तैयबजी
मार्फत — एम० बी० तैयबजी
फ्रेंच रोड, चौपाटी
बम्बई

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ९५५५) की फोटो-नकलसे।

५५८. पत्र: आ० टे० गिडवानीको

साबरमती आश्रम
२३ मई, १९२६

प्रिय गिडवानी,

आपका पोस्ट कार्ड मिला। समझमें नहीं आता कि आबूके पतेपर भेजा मेरा पत्र आपको क्यों नहीं मिला। पत्र ...[1] ले गये थे। लेकिन अब उससे कोई ज्यादा फर्क नहीं पड़ता। मैं जानना चाहूँगा कि आपने कानोदरमें क्या कुछ देखा। मुझे मालूम है कि वहाँ बुनाईका काम खूब होता है। लेकिन, मशीनसे काते गये सूतको ही काममें लाया जाता है — फिर चाहे वह स्वदेशी हो या विदेशी।

मैं महाबलेश्वरसे कल ही आया हूँ। चरखेके अलावा और किसी विषयपर गवर्नरसे मेरी कोई बात नहीं हुई।

साथमें लाला शंकरलालका लिखा पत्र भेज रहा हूँ। विद्यालयमें सुधार और विस्तारकी काफी गुंजाइश दिखाई देती है। जब कागज-पत्र आपके पास पहुँच जायें तो पहले हम दोनोंको मिल-बैठकर इस विषयपर विचार कर लेना चाहिए; उसके बाद ही आप वहाँ जाकर कोई योजना बनायें, मुझे यह तो मालूम था कि इस संस्थाकी आमदनी अच्छी खासी है, लेकिन यह नहीं मालूम था कि संस्थाको शंकरलालने अपनी चिट्ठीमें जितनी बड़ी बताया है, यह उतनी बड़ी है। अब मैं आपसे यह आशा रखूँगा कि आप इस पुरानी संस्थाको पूरी तरह सफल बनायेंगे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत आ० टे० गिडवानी।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११२६३) की माइक्रोफिल्मसे।

१. यहाँ साधन-सूत्रमें ही स्थान रिक्त है।

५५९. पत्र : एडविन एम० स्टैंडिंगको

साबरमती
२३ मई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका दूसरा पत्र मिला। आपके पहले पत्रके बारेमें कुछ नही लिख रहा हूँ, क्योंकि अभीतक उसपर गौर करनेका समय ही नहीं निकाल पाया हूँ। एक-दो दिनोमें ऐसा कर पाऊँगा। आप इतनेके लिए तो आश्वस्त हो सकते हैं कि अपने विचार लिखनेमें आपने जितनी मेहनत की है, उसपर जितना ध्यान देना उचित है, अवश्य दूँगा।

आपने जो पुस्तक और सुन्दर फोटो भेजा है, उसके लिए धन्यवाद। आपने मुझसे भी फोटो माँगे हैं, लेकिन मेरे पास अभी कोई फोटो नही है अतः मैं कहीसे खोज-ढूँढ़कर ही दे सकूँगा। बल्कि अब तो मुझे यह भी याद नही रहा कि आपने कौन-से फोटो माँगे हैं। फिर लिख भेजनेका कष्ट करे तो अच्छा हो।

हाँ, मोटा बहन अपने काममें हमेशाकी तरह मनोयोगपूर्वक लगी हुई है और उनका काम आगे भी बढ रहा है। वे प्राणपणसे यह काम कर रही हैं और यह उस खमीरकी तरह है . . .।[1] अभी वे दार्जिलिंगमे श्री और श्रीमती अम्बालालके साथ हैं। वे जाना नही चाहती थीं। लेकिन जाना जरूरी था।

अब तो मेरा मन कहता है कि मैं फिनलैंड नही जाऊँगा। लेकिन अगले पखवाड़ेमें निश्चित रूपसे पता चल जायेगा। अगर गया तो जुलाईके प्रारम्भमें यहाँसे प्रस्थान करूँगा।

हृदयसे आपका,

श्री एडविन एम० स्टैंडिंग
सेफ्टन प्लेस
अरूडेल
ससेक्स
(इंग्लैंड)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १२४७४) की फोटो-नकलसे।

१. साधन-सूत्रमें यहाँ कुछ भूल दिखाई देती है, जिससे वाक्यके अगले अंशका अर्थ स्पष्ट नहीं हो पाता।

५६०. पत्र : आर० बी० ग्रेगको

साबरमती
२३ मई, १९२६

प्रिय गोविन्द,

पत्रके लिए धन्यवाद। बड़ा दिलचस्प पत्र लिखा है तुमने। अब मैं स्कूलकी रूप-रेखा और उसका उद्देश्य समझ गया। क्या ये कोयम्बटूरवाले सुन्दरम् ही हैं? अगर ऐसा हो तो उन्हें मेरी ओरसे बधाई दीजिए और उनसे यह पूछिए कि वे वहाँ कैसे जा पहुँचे। वहाँ तो वे अपनी पत्नीके साथ ही रह रहे होंगे। अगर बात ऐसी हो तो बताइएगा कि वे क्या करती हैं।

मैं जानता हूँ कि स्टोक्स बहुत बड़ा और अच्छा काम कर रहे हैं और उसमें तन-मन-धनसे जुटे हुए हैं। काश, मैं उन्हें यह समझा पाता कि उन्हें अपने स्कूलके लिए सरकारी मान्यताकी जरूरत नहीं है। कोई-न-कोई ऐसा उपाय निकलना ही चाहिए जिससे लड़के सरकारी संरक्षणके बिना जीविकोपार्जन कर सकें। यह रास्ता सुगम नहीं है, लेकिन यही एक रास्ता है जिसपर उन्हें या कहूँ कि हम सबको चलना चाहिए। लेकिन, मुझे उनकी आलोचना नहीं करनी चाहिए। उन्हें तो उनकी अन्तरात्मा जैसा निर्देश दे, उसीके अनुसार काम करना चाहिए। भले ही दूसरोंको ऐसा लगे कि वे गलती कर रहे हैं।

अगर मैं फिनलैंड गया हो तो आपकी सारी हिदायतें ध्यानमें रखूँगा, मैं बहुत सारे गरम कपड़े साथमें ले जाऊँगा और मैं आपसे वादा करता हूँ कि अगर सर्दी इतनी ज्यादा महसूस हुई तो मैं अपनेको कपड़ोंसे ऐसा लपेट लूँगा कि लोगोंके लिए पहचानना मुश्किल हो जायेगा। अगर फिनलैंड जाऊँगा तो ऐसी व्यवस्था कर दूँगा जिससे जो भी नोट्स लिये जायें, सबकी नकल आपको मिल जाये। इस बीच आप वे सारे सवाल मुझे लिख भेजें जो आपके मनमें उठे हैं।

मैं जानता हूँ कि अहिंसाका मार्ग कंटकाकीर्ण है। ये काँटे कदम-कदमपर चुभते हैं और कभी-कभी तो इस मार्गपर चलनेवालेके पैरोंसे खून भी निकलने लगता है।

लगभग एक सप्ताहतक मैं बाहर रह आया हूँ। इसमें से कुछ घंटे महाबलेश्वरमें गवर्नरके साथ बातचीत करनेमें बिताये। मैंने उन्हें यह समझानेकी कोशिश की कि कृषि सम्बन्धी शाही आयोगको अगर कोई सिफारिश करनी चाहिए तो यही कि चरखेको लोकप्रिय बनाया जाये और जनताको इस बातके लिए आश्वस्त कर दिया जाये कि वह जितना भी सूत कातेगी, सब सरकार खरीद लेगी और उससे लोगोंके लिए कपड़े बुनवायेगी।

आप सबको प्यार और बेबीको चुम्बन।
पता नहीं वह लड़का है या लड़की।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत आर० बी० ग्रेग
मार्फत श्रीयुत एस० ई० स्टोक्स
कोटागढ़, शिमला हिल्स

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५६१) की फोटो-नकलसे।

५६१. पत्र : पी० एन० राजमणिकम् चेट्टियारको

साबरमती
२३ मई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र और खादीका पार्सल मिला। धन्यवाद। अगर आप इस काममें काफी लम्बे अर्सेतक लगे रहेंगे तो देखेंगे कि आपको जितनी भी मददकी जरूरत है, सब मिल रही है। आपका सूत जितना हो सकता था, उतना एकसार नहीं है और न उतना मजबूत ही। आपको और अच्छा कातनेकी कोशिश करनी चाहिए। आपकी बुनाई भी काफी घनी नहीं है, लेकिन यह सब तो सिर्फ अभ्यासकी बात है और अभ्याससे आप इन कलाओंमें प्रवीण हो जायेंगे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० एन० राजमणिकम् चेट्टियार
भारत खद्दर प्रचार शाला
तियागादुरगन

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५६२) की माइक्रोफिल्मसे।

५६२. पत्र: गो० कृ० देवधरको

साबरमती

२३ मई, १९२६

प्रिय देवधर,

आपका पत्र मिला। आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता होगी। जब भी आ सकते हों, आइए और जब आयेंगे तो कहनेकी जरूरत नहीं कि आश्रममें ही ठहरेंगे। मैं जानता हूँ कि शायद बरसात शुरू होनेसे पहले आपके यहाँ आनेकी सम्भावना नहीं है। अभी तो हम लोग यहाँ गरमीमें झुलस रहे हैं। मैं नहीं चाहता कि आप भी हम सबके साथ इस भट्ठीमें झुलसें।

आशा है, श्रीमती देवधर अब ठीक होंगी। वे अगली सर्दियोंमें आश्रम आकर यहाँ कुछ दिन अवश्य रहें।

लौटनेपर मुझे मनोरमाका हाल अवश्य भेजिएगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत गो० कृ० देवधर
सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी, बम्बई

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५६३) की माइक्रोफिल्मसे।

५६३. पत्र: एस० जी० वझेको

साबरमती आश्रम

२३ मई, १९२६

प्रिय वझे,

आपका पत्र मिला। इस बातसे मुझे बड़ी खुशी हुई कि डॉ० नॉर्मन लीका सुन्दर पत्र मुझे आपकी मार्फत भेजा गया है। क्षमा-याचनाकी तो कोई बात ही नहीं थी। जहाँ खुला व्यवहार और ईमानदारी होती है, वहाँ नाराजगी असम्भव है। आशा है, अगली डाकसे डॉ० लीको उत्तर भेज दूँगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५६४) की माइक्रोफिल्मसे।

५६४. पत्र : ए० एल० नायरको

साबरमती
२३ मई, १९२६

प्रिय डॉ० नायर,

आपके इसी १९ तारीखके पत्रके लिए धन्यवाद। आपको जो कारण बता चुका हूँ, उन्हीं कारणोंसे मैं इस समारोहके निमित्त इस मासकी २६ तारीखतक बम्बईमें ठहरनेमें असमर्थ हूँ। मुझे आशा है कि समारोह सफल होगा और संस्थापकोंका मूल उद्देश्य फलीभूत होगा।

हृदयसे आपका,

डॉ० ए० एल० नायर
मेसर्स एन० पावेल एण्ड कं०
बम्बई

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५६५) की माइक्रोफिल्मसे।

५६५. पत्र : एम० आर० हवेलीवालाको

साबरमती
२३ मई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपके एलबममें अपना हस्ताक्षर करके भेज रहा हूँ। लेकिन, मैं आपको बता देना चाहूँगा कि मेरा साधारण नियम तो यह है कि जबतक हस्ताक्षर लेनेवाले मेरे नौजवान मित्र मुझसे यह वादा नहीं करते कि वे खादी पहनेंगे और प्रतिदिन कमसे-कम आधे घंटेतक भारतके गरीब लोगोंके नाम पर और उनकी खातिर सूत कातेंगे, तबतक मैं उन्हें हस्ताक्षर नहीं देता। खादी पहननेके बारेमें तो मैं आपकी कठिनाई समझता हूँ, लेकिन क्या कातनेके सम्बन्धमें भी आपके मार्गमें वह बाधा आती है?

यह जानकर खुशी हुई कि श्री मॉरिस डॉ० रवीन्द्रनाथ ठाकुरके सचिवके भाई हैं। आपके शाकाहार-व्रत और डॉ० बेसेंटके प्रति श्रद्धा रखनेके लिए आपको बधाई

है। डॉ० बेसेंटने भारतके लिए वैसा काम किया है, जैसा काम जन्मतः भारतीय होनेवालोंमें भी बहुत कम लोगोंने किया है।

हृदयसे आपका,

एम० आर० हवेलीवाला
गोपीपुरा
सूरत

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५६६) की फोटो-नकलसे।

५६६. पत्र : इन्द्र विद्यालंकारको

साबरमती आश्रम
२३ मई, १९२६

प्रिय इन्द्र,

तुम्हारा पत्र मिला। तुमने अंग्रेजीमें लिखना पसन्द किया, सो मैं जवाब भी अंग्रेजीमें ही दे रहा हूँ। मगर तुमने अंग्रेजीमें लिखा क्यों? मैंने जो वादा किया था कि १९२१ में स्वराज्य मिल जायेगा, वह एक शर्तके[1] साथ किया था। शर्त थी जन-साधारण द्वारा अहिंसात्मक असहयोगका पूर्णतः स्वीकार करना। वीरमगांव, बम्बई[2] और चौरी-चौरामें[3] उन शर्तोंको जन-साधारणने नहीं, बल्कि कांग्रेसके जाने-माने अनुयायियोंने तोड़ा था। जिसे वर्तमान परिस्थितिका राजनीतिक पहलू कहा जाता है, उसके बारेमें मैं आज अगर चुप हूँ तो इसलिए चुप हूँ कि अपने मौनके द्वारा मैं लोगोंको अहिंसाका सन्देश दे रहा हूँ। राष्ट्रका मानस आज जिन अनेक विवादग्रस्त प्रश्नोंसे परेशान हो रहा है, उनके सम्बन्धमें कामकी कोई बात कहनेकी स्थितिमें मैं नहीं हूँ और अगर मैं मौके-बेमौके बार-बार चरखेकी ही बात करता रहता हूँ तो उसका भी कारण यही है। मेरे लेखे चरखा अहिंसाका मूर्तरूप है, क्योंकि अहिंसाका मतलब कर्म — सच्चे अर्थमें कर्म — है, जबकि हिंसाका मतलब दुष्कर्म या कर्महीनता है।[4] अगर लोग अहिंसात्मक तरीकेसे स्वराज्य चाहते हों तब तो उसका उपाय विदेशी कपड़ोंका पूर्ण बहिष्कार और चरखे तथा उसके सारे फलितार्थोंको अंगीकार करना ही है। मुझे आशा थी कि स्वराज्य प्राप्तिके लिए निर्धारित अवधि अर्थात् १९२१के वर्षमें जनताकी चरखेकी भावना एकाएक और व्यापक रूपसे फूट पड़ेगी और उसके

१. देखिए खण्ड १८, पृष्ठ २९१-९५।
२. देखिए खण्ड २१, पृष्ठ ४८५-८९।
३. देखिए खण्ड २२, पृष्ठ ३७०-७१।
४. यहां साधन-सूत्रमें कुछ भूल-सी लगती है, जिसे सुधारकर अनुवाद किया गया है।

परिणामस्वरूप हम विदेशी वस्त्रके बहिष्कारका कार्य सम्पन्न कर देंगे। लेकिन वह होनेको नहीं था और अब हमें जनताके बीच चरखेका वातावरण तैयार करना है। मैं नहीं समझता कि चरखेको घर-घर प्रवेश करनेमें उतना समय लगेगा, जितना तुम सोचते हो, लेकिन अगर लगे भी तो अहिंसाकी भावनाके प्रचारकी दृष्टिसे मैं चरखेके अलावा किसी अन्य साधन या प्रवृत्तिकी बात सोच ही नही सकता हूँ।

मुझे लगता है कि तुम मुझसे अपने प्रश्नके सार्वजनिक उत्तरकी आशा रखते हो, क्या तुम सचमुच सार्वजनिक उत्तर चाहते हो? मगर मुझे तो तुम्हारे उठाये प्रश्नपर दूसरोंके साथ बातचीत करने या 'यंग इंडिया' में उसपर कुछ विचार करनेकी अपेक्षा तुम्हें ही अपनी स्थितिका औचित्य समझानेकी ज्यादा फिक्र है।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत इन्द्र विद्यालंकार
सरगोधा

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५६७) की फोटो-नकलसे।

५६७. पत्र: च० राजगोपालाचारीको

साबरमती आश्रम
२३ मई, १९२६

सन्तानम्‌ने मेरे पत्रका जो उत्तर दिया है, साथमें भेज रहा हूँ। अब मैं उसे और समझाने-बुझानेकी कोशिश नहीं करूँगा, लेकिन मैं उसके प्रयत्नोंकी पूर्ण सफलताकी कामना करता हूँ। उसका पत्र बड़ा अच्छा है।

कल बम्बईमें मैंने जमनालालजीको लिखा आपका पत्र पढ़ा। आशा है, अबतक आप प्लूरिसीसे छुटकारा पा चुके होंगे। यह ऐसा रोग है जिसे पर्याप्त सावधानी बरतनेपर आसानीसे ठीक किया जा सकता है। आप अपना दौरा कहाँसे शुरू करनेकी सोचते हैं? अगर दक्षिणी प्रान्तसे शुरू करना हो और दौरा शुरू करनेसे पहले आपका इरादा अहमदाबाद आनेका नहीं हो तो जमनालालजीका कहना है कि आप जहाँ-कहींसे चाहें, वे आपके साथ हो लेंगे। लेकिन, अगर आप ऐसा सोचते हों कि फिलहाल दक्षिणी प्रान्तको रहने ही दिया जाये तो फिर कोई दूसरा प्रान्त चुना जा सकता है। मगर तब दूसरे किस प्रान्तसे दौरा शुरू किया जाये, इसका निर्णय यहाँ किया जायेगा। अगर आपको लगे कि आपके पत्रके यहाँ पहुँचनेमें तो बहुत देर हो जायेगी तो आप अपना इरादा तार द्वारा सूचित करें। जबतक आपकी बीमारी पूरी तरह ठीक नहीं हो जाये तबतक आप सिर्फ इस आशासे कि अधिक यात्रा करनेसे हमारे उद्देश्यका कुछ-न-कुछ हित होगा ही, किसी भी दशामें दौरा शुरू न करें। प्लूरिसीके रोगीके लिए वर्षा-कालमें यात्रा करना खतरनाक होता है।

गवर्नरके साथ हुई अपनी बातचीतका वर्णन आपसे करना मैं जरूरी नहीं समझता। एक वाक्यमें इतना ही जान लीजिए कि मैंने चरखेसे बातचीत शुरू की और चरखेपर ही समाप्त भी की। और मैं तो एक अच्छा विज्ञापनकर्त्ता भी हूँ, सो दूसरी मुलाकातके समय मैं अपने साथ मीठूबाईकी खादीकी साड़ी भी लेता गया ताकि गवर्नर महोदय और उनकी पत्नीको आन्ध्रकी खादीकी सम्भावनाएँ दिखा सकूँ। चरखेके बारेमें मेरे पास कहनेको जो-कुछ भी है, गवर्नर महोदयने वह सब बहुत ध्यानसे सुना, लेकिन अगर आप पूछें कि उस सबका उनपर असर कितना हुआ तो इसका जवाब मैं नहीं दे सकता।

मैं मथुरादास, काका, देवदास और बहराम खम्भातासे मिला। वैसे तो इस यात्रामें भाग-दौड़ बहुत करनी पड़ी, लेकिन वह व्यर्थ नहीं गई और कुछ नहीं तो उससे इतना लाभ तो हुआ ही कि मैं इन रोगियोंको देख सका। देवदास बिलकुल ठीक है और जैसा वह अस्पतालमें दाखिल होते समय दीखता था, उसकी अपेक्षा बहुत स्वस्थ दीखता है। काकाके स्वास्थ्यमें काफी सुधार हुआ है, लेकिन अभी और सुधारकी जरूरत है। मथुरादास पहलेसे अच्छा है, लेकिन अभी यह नहीं कहा जा सकता कि वह रोगके चंगुलसे पूरी तरह निकल गया है। ऐसा नहीं है कि उसपर कोई आसन्न खतरा हो, लेकिन उसके लिए अच्छा यही होगा कि वह विशेष सावधानी बरते। बहराम खम्भाताकी आँतमें कोई ग्रन्थि पड़ गई है। आप शायद उन्हें नहीं जानते हों। वह एक निष्ठावान्, आत्मत्यागी और मौन कार्यकर्त्ता हैं और जान-बूझकर अपनेको सबसे पीछे रखते हैं। उनकी पत्नी भी उतनी ही अच्छी है — सीताकी अवतार ही समझिए।

एक खबर है, जिसे सुननेसे अगर आपको आनन्द और स्फूर्तिका अनुभव हो और आप अधिक स्वस्थ हो जायें तो सुनिए — वह खबर यह है कि अब लगभग निश्चित-सा लग रहा है कि मैं फिनलैंड नहीं जाऊँगा, क्योंकि जान पड़ता है, पॉलने सबकुछ गड़बड़ कर दिया है। बहरहाल, वे बहुत उलझनमें पड़े हुए हैं और उनकी समझमें नहीं आ रहा है कि वे मेरी या मेरी यात्राकी व्यवस्था कैसे करें। कहनेको तो कह रहे हैं कि बकरीको दोहनेका काम वे कर देंगे, लेकिन जाहिर है, उनके मनमें यही है कि यह काम तो हर रोज वहीं लोग कर दिया करेंगे जो मेरे साथ जायेंगे। लेकिन, अधिकसे-अधिक अगले पखवाड़े-भरमें अन्तिम निर्णय हो जायेगा।

आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५६८) की फोटो-नकलसे।

५६८. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

साबरमती आश्रम
२३ मई, १९२६

प्रिय सतीश बाबू,

आपका पत्र मिला। आखिरकार हेमप्रभा देवीने भी एक लम्बा खत लिख भेजा है। मुझे तो लगता है, वे वहाँ बहुत कठिन परिस्थितियोंमें रह रही हैं। अपने स्वास्थ्यको क्षति पहुँचाकर उनका वहाँ रहना ठीक नही है। अगर वहाँकी जलवायु ऐसी है, जिससे मलेरिया होनेका डर रहता है तो शिल्पशाला (वर्कशाप) बनवानेका कोई और उपाय सोचिए। इस कामके लिए उनको वहाँ रखकर उन्हें मलेरियाका पहला शिकार क्यों बनाया जाये? खुद आपका भी स्वास्थ्य ठीक रहना चाहिए। हेमप्रभा देवीका खयाल है कि इसका ध्यान नहीं रखा जा रहा है।

निर्मलकुमारने अच्छा किया है। उसे पत्र लिख रहा हूँ। अगर आप लालगोलासे कुछ प्राप्त कर सकें तो यह खासी मदद होगी। मुझे बताया गया है कि छोटालाल अब आपके पास नहीं है। मैं नहीं समझता कि वह वहाँ ज्यादा दिन रहेगा।

आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५७०) की माइक्रोफिल्मसे।

५६९. पत्र : कोंडीपार्थी पन्नियाको

साबरमती आश्रम
२३ मई, १९२६

प्रिय पन्निया,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हें अपना प्रार्थनापत्र सीधा मेरे पास नही भेजना चाहिए था। इससे तो काममें बहुत देर हो जाती है। खैर, अब जब तुमने उसे भेज ही दिया है तो यथासमय उसपर कार्रवाई की जायेगी।

तुम खुद आजकल कहाँ रह रहे हो? क्या अब भी पिनाकिनी आश्रमसे तुम्हारा कोई सम्बन्ध है? यदि नहीं, तो तुम क्या कर रहे हो? बुनाईशालाकी देख-रेख अब कौन करेगा? और तुम एक सालमें ही बुनाई सिखा दोगे ऐसा सोचनेका आधार क्या है? एक सालके बाद क्या करोगे?

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत कोंडीपार्थी पन्निया
द्वारा — मदम वेंकैया चेट्टी गारू, करनूल

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० १९५७१) की माइक्रोफिल्मसे।

५७०. पत्र : जी० एम० नलावड़ेको

साबरमती आश्रम
२३ मई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपकी गश्ती-चिट्ठीके जवाबमें इस पत्रके साथ मैं अपना संदेश भेज रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

संलग्न-पत्र १

श्रीयुत जी० एम० नलावड़े
'संग्राम' कार्यालय
शाँवर पेठ
पूना सिटी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५७३ आर०) की नकलसे।

५७१. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

साबरमती आश्रम
रविवार, २३ मई, १९२६

भाई घनश्यामदास,

आपका पत्र मिला था। खादीके विषयमें जो लोन आपने देनेकी प्रतिज्ञा की है इस बारेमें आपके खतकी नक्कल जमनालालजीको भेज दी है।

साबरमती समझौतेके बारेमें मैं तो स्तब्ध हो गया। अबतक मैं कुछ समझ सकता नहीं हूं। हिंदुमुसलमानके बारेमें मैं सब समझ सकता हूं, परंतु लाचार बन गया हूं। क्योंकि मैं आत्मविश्वासको नहीं छोड़ सकता हूँ, इस लिये निराश नहीं होता। इतना तो समझता हूं कि जिस ढंगसे आज हिंदुधर्मकी रक्षा करनेकी कोशीश होती है उस ढंगसे रक्षा नहीं हो सकती है। परंतु मैं तो 'निर्बलके बल राम' वस्तुको संपूर्णतया मानता हूं। इसलिए निश्चिंत हो बैठा हूं।

आपका,
मोहनदास

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६१२६) से।
सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

५७२. पत्र : हेमप्रभा दासगुप्ताको

साबरमती आश्रम
रविवार, २३ मई, १९२६

प्रिय बहिन,

इस वक्तका आपका पत्र बहुत ही अच्छा आया है। अगरचे आश्रममें जो सुखदुःख पाया उसका कथन तो कुछ भी नही है। मैं जानता हूं कि सोदपुरमें बहुत ही परिश्रम है। मैंने इस बारेमें सतीश बाबुको लिखा है। कैसा भी हो, तबीयत बिगाड़कर हरगीज सोदपुरमें नही रहना। बैंकमें जो रुपये रखे हैं उसमें से एक कोड़ी भी उठानी नहीं चाहिए। खद्दरका काम बगैर तपश्चर्या नही होनेवाला है यह मैं समझता हूं। परन्तु तपश्चर्या शक्ति अनुसार होनी चाहिए। ईश्वर आप दोनोंको शान्ति और शक्ति दे।

बापु

मूल पत्र (जी० एन० १६४७) की फोटो-नकलसे।

५७३. पत्र : बहरामजी खम्भाताको

साबरमती आश्रम
रविवार [२३ मई, १९२६][1]

भाईश्री ५ बहरामजी,

आपका पत्र मिला। तुम्हारे पास आना मेरा धर्म था। श्रीमती एडीकी पुस्तक मैंने शुरू कर दी है। पढ़नेके बाद उसके बारेमें मैं आपको अवश्य लिखूंगा। लेकिन अभी तो आपको मेरी यही सलाह है कि फिलहाल आपको डाक्टरोंकी सामान्य सलाह और दवाका उपयोग करते रहना चाहिए। शरीरकी जितनी बन सके उतनी सार-सँभाल करनी चाहिए, इसमें कोई दोष नहीं; लेकिन उसकी खातिर धर्म छोड़नेमें महादोष है। शरीरको आत्माकी मुक्तिका क्षेत्र मानकर उसके लिए जो निर्दोष उपाय हो सकें वे करने चाहिए। अपनी तबीयतकी खबर मुझे लिखते रहना चाहिए। तेहमीना बहनको मेरा आशीर्वाद देना।

बापूके आशीर्वाद

श्रीयुत बहरामजी खम्भाता
२७५ हॉर्नबी रोड, फोर्ट, बम्बई

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ४३६३) से।
सौजन्य : तेहमीना खम्भाता

१. डाककी मुहरसे।

५७४. पत्र : जमनालाल बजाजको

सावरमती आश्रम
रविवार, २३ मई, १९२६

चि० जमनालाल,

मसूरी जाओ तव अब्बास तैयवजीके मकानकी वात न भूल जाना, यह उन्होंने मुझे याद दिलानेके लिए लिखा है। तुम अव भी वहाँ होओ तो उनसे संवेदना प्रकट करनेको मिल आना। उनका पता इस प्रकार है:

मार्फत: एम० वी० तैयवजी
फ्रेंच रोड, चौपाटी।

वह एक ज्ञानी पुरुष हैं। मेरे तारके जवावमें लिखते हैं कि उन्हें मौतका धक्का जरा भी नहीं लगा।

भाई लालजीका ऑपरेशन झटपटमें हो गया और अच्छी तरह हुआ जान पड़ता है। देशवन्धु कोषका हिसाव तैयार करा लेना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (जी० एन० २८६५) की फोटो-नकलसे।

५७५. पत्र : देवदास गांधीको

सावरमती आश्रम
रविवार, २३ मई, १९२६

चि० देवदास,

तुम्हारा पत्र मिला। गिरवारीका भी मिला। भाई लालजीका ऑपरेशन इतने कम समयमें हो गया, यह तो वहुत-अच्छी वात हुई। मैं कल उनके वारेमें और समाचार सुननेकी आशा रखूंगा। वे तुम्हारे साथ ही के कमरेमें हैं, यह सुनकर तो मुझे वहुत खुशी हुई। इससे, एक तो हम अस्पतालकी जगह कम रोकेंगे। वहाँके लोगोंको कम असुविवा होगी और तुम दोनोंको परस्पर एक-दूसरेसे आश्वासन मिलेगा। यह तो तुम्हारी मनचाही वात हो रही है। तुम्हारी तवीयतके वारेमें मैं कोई चिन्ता लेकर नहीं आया हूँ; लेकिन में यह समझ गया हूँ कि विलकुल ठीक होनेके वाद भी तुम्हें पूरी-पूरी सँभाल करनी पड़ेगी। यदि तुम वे सारी सावधानियाँ लेते रहे जो कि तुम्हें लेनी चाहिए तो तुम्हें कोई भय नहीं रहेगा। तुम्हारा पत्र हमेशा आता रहेगा, ऐसा मानता हूँ। केशुको २५ तारीखको कुसुम और धीरुके साथ भेज देना। लेकिन यदि उसकी जरूरत हो तो अभी रोक लेना। दूसरा कोई संग मिले तो कुसुम और

धीरु आयें अथवा ३१ तारीखतक तो रुक सकते हैं। पहली तारीखको सवेरे ७ बजे स्कूल खुलेगा। उस समय ये लोग हाजिर रहें तो पर्याप्त है। कान्ति और रसिक आज आये हैं।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९५५८) की फोटो-नकलसे।

५७६. पत्र : मोतीलाल नेहरूको

२४ मई, १९२६

प्रिय मोतीलालजी,

आपने अपनी यात्रा रद करनेका जो कारण बताया है, उसके बारेमें तो मैं सोच ही नहीं सकता था। लेकिन, कारण जाननेके बाद आपके यात्रा रद करनेपर मुझे कोई अफसोस नहीं है। कृष्णाके जवाहरके पास चले जानेसे आपकी चिन्ताका कोई कारण नहीं रह जाता। मैं जानता हूँ कि आप अपने कार्यालयमें बैठे-बैठे कानूनी सलाह देकर ही अपनी जरूरतके लायक काफी बल्कि उससे ज्यादा ही कमा लेंगे।

आपने बोलकर लिखाये गये अपने जिस पत्रका जिक्र किया है वह तो अभी तक मुझे नहीं मिल पाया है, मैं उसकी प्रतीक्षा कर सकता हूँ। महाबलेश्वरके बारेमें तो मैं इतना ही कह सकता हूँ कि गवर्नर महोदयके साथ मैंने तीन घंटे बड़े मजेमें बिताये। हमने अधिकांशतः चरखेके बारेमें बातचीत की और थोड़ी-बहुत भारतकी पशु-समस्याके सम्बन्धमें भी। अगर इस मुलाकातके पीछे कोई और उद्देश्य रहा हो तो उसका अन्दाजा मुझे नही मिल पाया और उसकी कोशिश भी नही की।

देवदास हफ्ते-भरमें अस्पतालसे फुर्सत पा जानेकी उम्मीद रखता है। उसके बाद स्वास्थ्य-लाभके लिए उसके मसूरी जानेकी सम्भावना है।

फिनलैंडके बारेमें अभीतक कुछ तय नहीं हो पाया है। परिस्थितियाँ तो ऐसी ही दीख रही हैं कि मैं वहाँ नहीं जाऊँगा। शायद हफ्ते-भरमें पक्का मालूम हो जायेगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० १९५७४) की फोटो-नकलसे।

५७७. पत्र : देवदास गांधीको

साबरमती आश्रम
मंगलवार [२५ मई, १९२६][1]

चि० देवदास,

तुम्हारे दो पत्र आज एक साथ मिले। दूसरा पत्र जरा चौंकानेवाला है अवश्य लेकिन ऐसे उतार चढ़ाव तो आते ही रहते हैं। इसलिए मैं निश्चिन्त रहता हूँ। लेकिन ऐसा लगता है कि अब तो तुम्हें और भाईलालजीको एक साथ ही [अस्पतालसे] छुट्टी मिलेगी। लेकिन मुझे ब्योरेवार खबर तो मिलती ही रहनी चाहिए न? आज फिनलैंड [की यात्रा] के बारेमें तार आ गया है कि जनीवा समितिने मेरी शर्तोंको स्वीकार किया है। तिसपर भी जबतक मेरे पत्रका उत्तर नहीं मिल जाता तबतक, मैं ऐसा माननेवाला नहीं हूँ कि जा ही रहा हूँ। हाँ, ऐसा लगता है कि अब जाना ही पड़ेगा। यदि ऐसा हो तो भी तुम थोड़ा समय मसूरीमें जमनालालके साथ बिताओ, यह ठीक है। केशूके बारेमें मैं कल ही लिख चुका हूँ। वह कुसुम और धीरुको लेकर ही आए। रामदास आज मोरवीमें है, कल राजकोट पहुँचेगा। भणसालीका उपवास आज साढ़े दस बजे पूरा हुआ। उनका शरीर इतना अच्छा रहा है, कोई मान ही नहीं सकता कि उन्होंने २५ दिनोंतक उपवास किया है। वजन १६ पौण्ड कम हो गया है। यह मैं कम समझता हूँ।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९४९३) की फोटो-नकलसे।

५७८. पत्र : मूलशंकरको

आश्रम
२६ मई, १९२६

भाईश्री मूलशंकर,

तुम्हारा पत्र मिला।

चरखा संघकी ओरसे तुम्हें जो उत्तर मिला है यदि उसमें दिये हुए तथ्य सही हों तो तुम्हें कुछ कहनेको ही नहीं रह जाता है।

तुम्हारा उत्तर पानेके बाद यदि आवश्यकता जान पड़ी तो मैं भाई कोटकको लिखूँगा।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९५७५) की माइक्रोफिल्मसे।

१. भणसालीके उपवासका बारहवाँ दिन १२ मई, १९२६ को था; देखिए "पत्र : महादेव देसाईको", १२-५-१९२६ ।

५७९. पत्र : देवदास गांधीको

आश्रम
बुधवार, २६ मई, १९२६

चि० देवदास,

तुम्हारा पत्र मिला। भाईलालजीका भी मिला। कलका पत्र बहुत उतावलीमें लिखवाया था इसलिए एक बात रह गई। तुमने खड़े रहनेका प्रयत्न किया तब तुम्हे जो कमजोरी महसूस हुई वह कमजोरी नही थी; वह खड़े होने अथवा चलनेकी आदतका अभाव था। शायद तुम्हें याद न हो किन्तु जिस दिन कर्नल मैडॉकने मुझे पाखानेतक जानेकी अनुमति दी थी उस दिन उसने मुझे चेतावनी दी थी कि मेरे कदम लड़खड़ायेंगे, चक्कर आयेंगे, लेकिन उससे घबराना नहीं। एक दो बार सहारा लेकर चलनेके बाद चलनेकी आदत पड़ जायेगी। इसलिए तुम्हें खड़ा होनेपर चक्कर आयें, इससे मुझे तनिक भी घबराहट नहीं हुई। लेकिन तुम्हारा घाव अभी बिलकुल भरा नहीं है, यह मैं समझ सकता हूँ। लेकिन ऐसे ऑपरेशनोंमें यह अनुभव सामान्य है। कोई भी डाक्टर शरीरका सब-कुछ तो नही जान सकता। इसलिए बादमें कोई-न-कोई उपद्रव देखनेमें आते ही हैं। लेकिन उनका उपाय आसानीसे हो जाता है। क्या इतना ही है कि बिस्तरपर ज्यादा समयतक पड़े रहना पड़ता है। अब तो मैंने मान लिया है कि भाईलालजी और तुम, दोनों अस्पतालसे साथ-साथ छूटोगे। यह तो तुम्हारी मनचाही बात हुई। हालांकि तुम्हारा इरादा तो अस्पतालसे छूटनेके बाद भाईलालजीके लिए खासतौरसे रुकनेका था। वह लाभ तो अब शायद न मिलेगा। लेकिन यदि हमारा चाहा सब-कुछ हो जाये तो दुनियाका सत्यानाश भी हो जाये, है न? हमारी एक सच्ची और अच्छी धारणाके विरुद्ध कितनी ज्यादा व्यर्थ और दूषित धारणायें होती हैं?

पॉलका कल एक तार आया था, आज दूसरा है। इसमें वे लिखते हैं कि उन्होंने ६,००० रुपये इकट्ठे कर लिये हैं और उम्मीद करते हैं कि मैं जाना रद करनेकी आवश्यकता नहीं समझूंगा। मैं अपने पत्रके[1] उत्तरकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ लेकिन मुझे लगता है कि हमें जाना तो पड़ेगा ही। न जानेसे कदाचित् श्री पॉलकी स्थिति विषम हो जाये।

डॉ० दलालके सद्व्यवहारके बारेमें तुम जो लिखते हो उससे मुझे आनन्द होता है। अब्बास साहब आ गये, यह ठीक हुआ। इनकी बहादुरीकी सीमा नही। केशू वहाँ रहा इसलिए वह काममें आयेगा ही।

२९ तारीखको केशू यहाँ आ जाये, यही काफी है।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९५५२) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए "पत्र : के० टी० पॉलको", २३-५-१९२६।

५८०. त्रैमासिक आँकड़े

अखिल भारतीय चरखा संघको अधिकांश प्रान्तोंसे खादीके उत्पादन और बिक्रीका त्रैमासिक अर्थात् जनवरीसे लेकर मार्च १९२६ तकका हिसाब प्राप्त हो गया है। आँकड़े मैं नीचे दे रहा हूँ:[1]

आन्ध्रके आँकड़े, वहाँ कितना काम हो रहा है, इसका ठीक संकेत नहीं देते। बार-बार स्मरण दिलाये जानेपर भी उस प्रान्तसे पूरे विवरण प्राप्त नहीं हुए हैं। कर्नाटक के आँकड़े भी बहुत हदतक अपूर्ण हैं। तुलनात्मक अध्ययनके लिए निम्नलिखित प्रान्तोंके पिछले वर्षकी इसी तिमाहीके आँकड़े उपलब्ध हैं, और उनसे प्रकट होता है कि बम्बईके अलावा और सभी प्रान्तोंके इस तिमाहीके आँकड़े पिछले वर्षकी तिमाहीसे अधिक हैं।[2]

पंजाबके पिछले वर्षकी बिक्रीके आँकड़े इस वर्षकी बिक्रीके आँकड़ोंसे अधिक है। लेकिन, ऐसा देखनेमें ही लगता है क्योंकि जहाँ इस सालके आँकड़े असली बिक्रीके सूचक हैं, वहाँ पिछले सालके आँकड़ोंमें विभिन्न शाखाओंके बीच हुई बिक्री भी शामिल है। बर्मा और उत्कलकी बिक्रीमें कुछ कमी आ गई प्रकट होती है।

ये आँकड़े खादीके लिए हर प्रान्तमें हो रहे कामको घटाकर ही दिखाते हैं— विशेषकर आन्ध्रके मामलेमें। मैं हर प्रान्तके कार्यकर्त्ताओंसे फिर अनुरोध करता हूँ कि वे हिसाब देनेमें तत्परतासे काम लें। अगर अखिल भारतीय चरखा संघको भारतके एक-एक गाँवको समेट लेनेवाला कुशल और सक्षम संगठन बनना है तो इसे अपने सभी कार्यकर्त्ताओंका अनुशासनयुक्त और समझदारीभरा सहयोग प्राप्त होना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २७-५-१९२६

५८१. उसका रहस्य

मेरे महाबलेश्वरसे लौटनेपर असहयोगी मित्रोंने मुझे घेर लिया, यद्यपि उन्होंने इस मुलाकातके लिए पहले ही समय तय कर लिया था। महाबलेश्वर जाकर कार्यवाहक गवर्नर महोदयसे मिलनेका यह प्रसंग अचानक ही आ पड़ा था और इसीलिए मैंने इस यात्राके दौरान कुछ बीमार लोगोंसे ही मिलनेका कार्यक्रम बना रखा था। इसलिए पूना स्टेशन पहुँचनेसे पहले मैंने अपने किशोर मित्र मनुसे मिलनेके लिए प्रोफेसर त्रिवेदीके घर जानेकी व्यवस्था करवा ली थी। जब मैं १९२४में पूनाके सैसून अस्पतालमें[3] बीमार था, उस समय मुझे जिन लोगोंकी स्नेह-सहानुभूति प्राप्त हुई,

१. ये आँकड़े यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं।
२. आँकड़ोंकी तुलनात्मक तालिका यहाँ नहीं दी जा रही है।
३. १२ जनवरी, १९२४को इस अस्पतालमें गांधीजीका ऑपरेशन हुआ था।

उनमें एक मनु भी था। अतः इस यात्रामें मुझे मनु और असहयोगियोंके बीच अपना समय बाँट देना पड़ा। ज्यादा समय असहयोगियोंको ही मिला। मनुने तो मुझे चन्द मिनटमें ही फुर्सत दे दी। रोगीके रूपमें मेरे लिए वह स्पर्धाके योग्य था। कारण, यद्यपि वह छः महीनेसे अधिक समयसे खाटपर पड़ा हुआ था, फिर भी मैंने उसे बिलकुल प्रसन्न और निश्चिन्त पाया। इसलिए, असहयोगी मित्रोंसे बातचीत करनेके लिए उससे विदा लेते समय मुझे कोई दुःख नहीं हुआ।

असहयोगियोंने मेरा स्वागत इस प्रश्नसे किया: "एक ओर तो आप गवर्नरसे मिलने जाते हैं और दूसरी ओर अपनेको असहयोगी कहते हैं। यह कैसे हो सकता है?"

मैंने कहा: मुझे मालूम था कि आपकी व्यथा क्या है। मैं आपके सभी प्रश्नोंके पूरे-पूरे उत्तर दूँगा, लेकिन इसी शर्तपर कि मैं जो-कुछ कहूँ, उसमें से एक भी बात प्रकाशित न हो। अगर मुझे ठीक लगा तो मैं इस विषयपर 'यंग इंडिया' में भी लिखूँगा।

"ठीक है, हम कोई बात प्रकाशित नहीं करेंगे और अगर आप हमारे प्रश्नोंके उत्तर 'यंग इंडिया' में दे देंगे तो वह भी हमारे लिए काफी होगा। ऐसा नहीं कि आपके कार्यके औचित्यमें मुझे कोई सन्देह है, लेकिन अभी मैं ऐसे असहयोगियोंकी एक बहुत बड़ी संख्याकी ओरसे बोल रहा हूँ, जिन्हें आप अपने कार्योंसे परेशानी और उलझनमें डाल देते हैं।"

तो ठीक है, आप अपने सारे प्रश्न कह सुनाइए। मैं उन सबके उत्तर देनेकी कोशिश करूँगा, हालाँकि आपके सामने यह स्वीकार करता हूँ कि इस सबमें सिर्फ समयकी बरबादी होगी, और कुछ नहीं। कारण, मुझे लगता है कि अब स्पष्टीकरण और समझाने-बुझानेका समय बीत गया। असहयोगियोंको तो सहज ही यह ज्ञात होना चाहिए कि हम असहयोगियोंकी जो आचार-संहिता है, उसके विरुद्ध मैं कुछ नहीं कर सकता। और अगर वैसा कुछ करूँ भी — क्योंकि मैं यह स्वीकार करता हूँ कि मुझसे भी गलतियाँ हो सकती हैं — तो उन्हें मेरा त्याग कर देना चाहिए और अपने विश्वासोंपर दृढ़ रहना चाहिए। भले ही उन्होंने असहयोगका सिद्धान्त मुझसे ही सीखा हो, लेकिन अगर उन्होंने उसे अच्छी तरह हृदयंगम किया है तो उनको ऐसा नहीं चाहिए कि वे अपने विश्वासोंका आधार मेरी मान्यताको बनायें। उनके विश्वासको मुझसे और मेरी कमजोरियों और गलतियोंसे मुक्त होना चाहिए। अगर मैं धोखेबाज साबित होऊँ या जरा नरम शब्दोंमें कहिए, तो अगर मैं अपनी राय बदल दूँ तो भी उन्हें अपने विश्वासोंपर दृढ़ रहकर मेरे दोष बतानेको तैयार रहना चाहिए। इसीलिए मैं कहता हूँ कि हमारी बातचीतसे सिर्फ राष्ट्रके समयकी बरबादी होगी, और कुछ नहीं। आस्थावान् असहयोगी जानते हैं कि उन्हें क्या करना है। वे उस कामको पूरा करें। मगर आप अपने प्रश्न तो बता ही दीजिए।

"बम्बईमें ऐसा कहा गया है कि आप बिना किसी निमन्त्रणके गवर्नरसे मिलने गये, वास्तवमें आपने उनको अपनी बात सुननेके लिए मजबूर किया। अगर ऐसा है तो क्या इसे सहयोग नहीं कहा जायेगा — और सो भी ऐसा सहयोग जिसमें

दूसरा पक्ष अपनी ओरसे, कोई उत्साह ही नहीं दिखा रहा हो? समझमें नहीं आता कि गवर्नरसे मिलनेमें आपका क्या मकसद हो सकता था?"

मेरा उत्तर तो यह है कि जब मेरे पास शक्ति हो, मैं यह भी कर सकता हूँ कि अपने विरोधीकी अनिच्छाके बावजूद उसे अपनी बात सुननेपर मजबूर करूँ। दक्षिण आफ्रिकामें मैंने ऐसा ही किया। जब मैंने यह देख लिया कि अब मैं लड़ाईके लिए तैयार हूँ तब मैंने कोशिश कर-करके जनरल स्मट्ससे एकके बाद-एक, कई मुलाकातें कीं, मैंने उनसे अनुनय-विनय की कि अगर कूच करना पड़ा — मेरा मतलब उस महान् ऐतिहासिक कूचसे[1] है — तो भारतीय प्रवासियोंको अकथनीय कष्ट उठाने पड़ेंगे, इसलिए आप ऐसा कीजिए जिससे कूच न करना पड़े और वे लोग उन कष्टोंसे बच सकें। यह सच है कि उन्होंने अहंकारवश हमारे निवेदनको अनसुना कर दिया, लेकिन इससे मैंने कुछ नहीं खोया। मेरी विनम्रताने मुझे और भी शक्ति प्रदान की। अत: जब हममें स्वतन्त्रताके लिए सचमुच लड़नेकी शक्ति आ जायेगी तो मैं भारतमें भी वैसा ही करूँगा। याद रखिए कि हमारी लड़ाई अहिंसात्मक है। विनम्रता इसकी एक आवश्यक शर्त है। यह सत्यकी लड़ाई है और सत्यके बोधसे हमें दृढ़ता प्राप्त होनी चाहिए। हम लोग मनुष्यका संहार करने नहीं निकले हैं। हम नहीं मानते कि हमारा कोई शत्रु है। दुनियामें किसीके प्रति हमारे मनमें दुर्भाव नहीं हैं। हम स्वयं कष्ट उठाकर विरोधीको सही रास्तेपर लाना चाहते हैं। मैं तो कठोरसे-कठोर हृदयवाले या स्वार्थीसे-स्वार्थी अंग्रेजके हृदयको भी बदल देनेकी सम्भावनाके प्रति निराश नहीं हूँ। इसलिए उससे मिलनेके हर अवसरका मैं स्वागत करता हूँ।

यहाँ मैं सहयोग-असहयोगका भेद जरा स्पष्ट कर दूँ। अहिंसात्मक असहयोगका मतलब है, जिस संस्थासे हम असहयोग कर रहे हैं उससे मिलनेवाले लाभका त्याग कर देना। इसलिए हम इस प्रणालीके अन्तर्गत आनेवाले स्कूलों, न्यायालयों, खिताबों, विधानसभाओं और पदोंके लाभको अस्वीकार करते हैं। हमारे असहयोगका सबसे व्यापक और स्थायी अंग विदेशी वस्त्रका त्याग है। यह वस्त्र उस जघन्य प्रणालीका आधार-स्तम्भ है, जिसके शोषणकी चक्कीमें हम पिस रहे हैं। दूसरे मामलोंमें भी असहयोग करनेकी बात सोची जा सकती है, लेकिन अपनी कमजोरी या असमर्थताके कारण हमने अभी असहयोगको इन्हीं विषयोंतक सीमित कर रखा है। इसलिए अगर मैं किसी अधिकारीके पास उपर्युक्त लाभ प्राप्त करने जाता हूँ तो उसका मतलब है कि मैं उसके साथ सहयोग कर रहा हूँ। किन्तु, अगर मैं मामूलीसे-मामूली अधिकारीके पास भी इस उद्देश्यसे जाता हूँ कि उसको सही रास्तेपर ला सकूँ — उदाहरणके लिए, उसे खादी प्रेमी बना सकूँ, या अपनी नौकरी छोड़नेपर राजी कर सकूँ अथवा अपने बच्चोंको सरकारी स्कूलोंसे हटा लेनेको मना सकूँ — तो इसका मतलब होगा कि मैंने वही किया जो असहयोगीकी हैसियतसे मेरा कर्त्तव्य है और

१. ६ नवम्बर, १९१३ को दो हजारसे अधिक भारतीयोंने ३ पौंडी करके विरोधमें गांधीजीके नेतृत्वमें वह ऐतिहासिक कूच किया था; देखिए खण्ड १२, पृष्ठ २५२ और ६४२।

अगर मैं उसके पास उस निश्चित और स्पष्ट उद्देश्यको लेकर नहीं जाता हूँ तो अपने कर्त्तव्यसे च्युत होता हूँ।

अब मौजूदा सवालके बारेमें दो शब्द कहूँगा। मैं कार्यवाहक गवर्नरके निमन्त्रणपर ही उनसे मिलने गया था। उन्होंने मुझे गवर्नरकी हैसियतसे पत्र नहीं लिखा था और न किसी ऐसे प्रयोजनसे ही जो गवर्नरके रूपमें उनके दायित्वसे जुड़ा हुआ था। उन्होंने कृषि-सम्बन्धी मामलोंपर बातचीत करनेके लिए मुझे महाबलेश्वर आनेको निमन्त्रित किया था। जैसा कि मैंने कुछ दिन पूर्व 'नवजीवन' में स्पष्ट कर दिया था, मैंने उनसे कहा कि 'रायल कमिशन' से मेरा किसी भी तरहका कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता; मेरे असहयोग-सम्बन्धी विचार अब भी पूर्ववत् कायम हैं और आम तौरपर सरकारी आयोगों या समितियोंमें मेरा कोई विश्वास नहीं है। मैंने यह भी लिख दिया था कि जब आप पहाड़से लौट आयेंगे तब आपसे मिलना मेरे लिए ज्यादा आसान होगा। इसपर परमश्रेष्ठ ने मुझे लिखा कि मुझसे जूनमें मुलाकात करना उनके लिए सुविधाजनक रहेगा। मगर बादमें उन्होने अपना विचार बदल दिया और मुझको सन्देशा भेजा कि अगर मैं महाबलेश्वर आ सकूँ तो उनके लिए ज्यादा सुविधाजनक रहेगा। मुझे उनसे मिलनेमें कोई हिचक नहीं हुई। हमारे बीच मुलाकातोंमें बहुत लम्बी वार्ताएँ हुईं और आप अनुमान लगा सकते हैं (और वह ठीक ही होगा) कि हमारी बातचीतका विषय चरखा था। मुख्य विषय वही था। हाँ, भयंकर मवेशी-समस्यापर विचार किये बिना कृषिके विषयमें मैं कोई चर्चा कैसे कर सकता था?

अपरिवर्तनवादी मित्रोंके साथ हुई उस सुखद वार्ताका मैंने संक्षिप्त सार ही दिया है। हाँ, आम पाठक ज्यादा अच्छी तरह समझ सकें, इस खयालसे कहीं-कहीं मैंने अपने उत्तरको जरा बढ़ाकर भी समझाया है।

और भी कई बातोंकी चर्चा हुई, जिसमें एक-दोका उल्लेख मुझे अवश्य करना चाहिए। मुझसे साबरमती-समझौतेपर अपना विचार व्यक्त करनेको कहा गया। मैंने प्रकाशनार्थ कुछ भी कहनेसे इनकार कर दिया। कोई विवादास्पद बात कहकर मैं सम्बन्धित पक्षोंकी मौजूदा कटुताको और अधिक बढ़ाना नहीं चाहता। मेरे पास कहनेको ऐसा कुछ नहीं है, जिससे दोनों दल एक हो सकें। वे सब मेरे सहयोगी हैं। सबके-सब देश-भक्त हैं। यह बिलकुल आपसी झगड़ा है। देशके एक विनम्र सेवकके रूपमें मेरे लिए यही शोभनीय है कि जहाँ कुछ बोलनेसे बात न बने वहाँ चुप ही रहूँ। इसलिए मैं प्रतीक्षा और प्रार्थना करना बेहतर समझता हूँ। मुझे बताया गया कि मुझे गलत रूपमें पेश किया गया। मै यह स्वीकार करता हूँ कि समझौतेसे सम्बन्धित कागजात मैंने जान-बूझकर नहीं पढ़े। लोग जिन्दगी-भर मुझे गलत रूपमें पेश करते रहे हैं, इसलिए मैं तो उसका आदी हो गया हूँ। यह तो हर सार्वजनिक कार्यकर्त्ताको भोगना पड़ता है। उसे अपनी खाल मोटी करनी पड़ती है। अगर कोई सार्वजनिक कार्यकर्त्ता, उसे जितनी बार गलत रूपमें पेश किया जाये, उतनी बार उत्तर और स्पष्टीकरण देने लग जाये तो उसके लिए जीवन भार बन जायेगा। मेरे जीवनका सिद्धान्त यह है कि जबतक हमारे अनुष्ठानके हितमें जरूरी न हो तबतक

मैं ऐसी चीजोंका कोई स्पष्टीकरण नहीं देता। मैंने देखा है कि इस सिद्धान्तका पालन करनेसे बहुत सारा समय बच जाता है और मैं बेकारकी परेशानियोंसे भी बच जाता हूँ।

"लेकिन जब सभी लोग पदोंको स्वीकार कर लेंगे तब हमें क्या करना चाहिए और आगामी चुनावोंमें हमें क्या करना चाहिए?" मेरा उत्तर था:

जब सभी दल पद स्वीकार करना तय कर लेते हैं तब मेरा खयाल है, जिन लोगोंकी अन्तरात्मा इस बातको स्वीकार न करे, वे मतदानमें बिलकुल शामिल ही न हों। जिनको कोई आत्मिक आपत्ति हो, वे आगामी चुनावोंमें भी कोई हिस्सा न लें। दूसरे लोग स्वभावतः कांग्रेसके नेतृत्वका अनुसरण करेंगे और कांग्रेसकी सलाहके अनुसार अपने मत देंगे। इन पृष्ठोंमें मैं कांग्रेसीकी स्पष्ट परिभाषा पहले ही दे चुका हूँ। अपनेको कांग्रेसी कहनेवाला हर आदमी कांग्रेसी नहीं है। कांग्रेसी वही है, जो कांग्रेसकी इच्छाका पालन करे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २७-५-१९२६

५८२. कताई एक कला है

मद्रासके शिक्षा विभागकी एक निरीक्षिकाने ब्राह्मण लड़कियोंके चरखा चलानेके विरुद्ध आदेश निकाला है। इस महिलाके इस निर्णयके कारण उसकी बहुत आलोचना हो रही है। आलोचकोंकी दलील है कि यदि चरखा अब्राह्मण बालिकाओंके लिए उपयोगी है तो ब्राह्मण बालिकाओंके लिए क्यों नहीं है? आज जबकि जातीयश्रेष्ठताके हकोंको समाप्त करनेका प्रयत्न किया जा रहा है, यह प्रश्न उचित ही है। इसके अलावा, स्पष्ट है कि निरीक्षिका यह नहीं जानती कि आज भी सबसे अच्छा सूत ब्राह्मण बालिकाएँ ही कातती हैं और बहुत-से ब्राह्मण कुटुम्बोंमें जनेऊके लिए सूत कातनेका रिवाज आज भी मौजूद है।

लेकिन, निरीक्षिकाकी आलोचनापरसे एक दूसरा प्रश्न भी उठता है। क्या कताई एक कला है? क्या यह ऐसा शुष्क और एकरस काम नहीं है जिसमें बच्चोंके ऊब जानेकी सम्भावना रहती है? अबतक जितने भी प्रमाण मिले हैं, यही साबित करते हैं कि कताई एक बड़ी सुन्दर कला है और कातना बहुत आनन्ददायक है। अलग-अलग अंकोंके सूत कातनेके लिए पूनियोंको यन्त्रवत् खींचनेसे तो काम नहीं चलता है और जो लोग कलाके तौरपर कताई करते हैं, वे यह जानते हैं कि आँखों और अँगुलियोंके अचूक इशारेसे मनचाहे अंकका सूत कातनेमें कैसा आनन्द मिलता है। वही कला कला है, जिसमें मनको शान्ति देनेकी शक्ति हो। एक साल पहले मैंने सर प्रभाशंकर पट्टणीका साक्ष्य प्रकाशित किया था और यह दिखाया था कि दिनभरके कठिन कामके बाद वे किस तरह चरखा चलाकर अपने स्नायुओंको आराम पहुँचाते

थे और] गहरी नींद सो पाते थे। मेरी एक मित्रने मुझे लिख भेजा है कि चरखेने उनके थके-हारे मनको शान्ति प्रदान की। उस पत्रका एक अंश नीचे दे रहा हूँ :

> जब . . . तो मै तुरन्त अपने कमरेके एकान्तमें जा पहुँची और वहाँ अन्धेरेमें अपने दुःखसे जूझती रही। मैंने भगवानको पुकारा और कुछ देरतक उस तापकी ज्वालाको, जो मुझे सिरसे पाँवतक जला रही थी शान्त करनेकी कोशिश की और फिर थककर अपने चरखेपर जा बैठी। चरखा चलाना शुरू करते ही जो-कुछ हुआ उसे चमत्कारपूर्ण ही कहा जा सकता है। उसकी गतिके शान्त, संयत छंदने मुझे बल दिया। मेरा मन धीरे-धीरे सुस्थिर हो गया और इस विचारने कि मै भारतकी दरिद्र जनताकी सेवा कर रही हूँ, मुझे प्रभुके चरणोंके पास पहुँचा दिया।

यह कोई इक्के-दुक्के कातनेवालोंका ही अनुभव नही बल्कि बहुत सारे कतैयोंका ऐसा ही अनुभव रहा है। लेकिन ऐसा कहना बेकार है कि चरखा चलाना बहुतोके आनन्दका कारण रहा है, इसलिए इसमें सभीको सुख मिलेगा। सभी मानते हैं कि चित्रकारी एक उत्तम कला है परन्तु सभी तो चित्रकार नही बन जाते।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २७-५-१९२६

५८३. पत्र : देवदास गांधीको[1]

बृहस्पतिवार [२७ मई, १९२६]

चि० देवदास,

अब मैंने तुम्हारे साथ फिर ज्यादती करना शुरू कर दिया है। मानो मुझे किसीका स्वस्थ रहना सहन ही न होता हो। एक क्षणका भी अवकाश नही बचता इसीलिए मैं तुम्हें लम्बे पत्र नहीं लिख पाता।

तुम्हारे पास किसे भेजा जाये, इसपर विचार कर रहा हूँ। मैं जिसे भेजूँ उसे तुम हिमालय ले जाओ, यह बात पसन्द आने लायक तो है लेकिन हमें इस तरह पैसे खर्च करनेका अधिकार कहाँ है? तुम तो अवश्य जाना। वहाँ मददके लिए तो किसी-न-किसीको जरूर भेजूंगा। किसको भेजूं, यह तुम मुझपर छोड़ देना।

मैं देखता हूँ सुरेन्द्र तो अभी कतई नहीं निकल सकता। ब्रजकिशन आये तो ले जाना। वहाँसे किसी-न-किसीका साथ तो मिल ही जायेगा।

तुम्हारे लम्बे पत्र मुझे छोटे लगते हैं।

१. यह देवदास गांधीकी बीमारीके दिनोंमें उनको लिखे अनेक पत्रोंमें से एक है।

यूरोप जानेकी बात तो अभी तय नहीं कर सका हूँ। रोलाँके पत्र अथवा तारकी राह फिलहाल तो देख रहा हूँ। राजाका कहना है कि यदि मैं जाऊँ तो मुझे तुम्हें साथ ले ही जाना चाहिए। तुम्हारी इच्छा होती है क्या?

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (जी० एन० २०४३) की फोटो-नकलसे।

५८४. पत्र: राजारामको

साबरमती आश्रम
बृहस्पतिवार, २७ मई, १९२६

भाई राजाराम,

तुम्हारा पत्र मिला। अपने लड़केको तुम जैसी तालीम देना चाहते हो वैसी तालीममें यदि वह उद्यमी है तो दो वर्ष लगेंगे। इससे कम समयमें कातने और बुननेकी मूल बातें तो सीखी जा सकती हैं, लेकिन मैंने अनुभवसे देखा है कि इतना काफी नहीं है। और यदि अपूर्ण अभ्यासवाला व्यक्ति गाँवमें जाकर बैठे तो उसे प्रायः निराश होना पड़ता है। हर महीने १५ रुपये खर्च आनेकी सम्भावना है। यदि सुरेन्द्ररायको भेजना चाहो तो मुझे अथवा व्यवस्थापकको लिखना जिससे रहनेका प्रबन्ध करके उसे बुलाया जा सके। फिलहाल तो आश्रममें खासी भीड़ है। इसलिए उसे दाखिल करनेमें कदाचित् थोड़ा समय लग जायेगा।

गुजराती प्रति (एस० एन० १२१८६) की माइक्रोफिल्मसे।

५८५. पत्र: देवप्रसाद सर्वाधिकारीको

साबरमती आश्रम
२८ मई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला, बड़ी खुशी हुई। निश्चय ही शिष्टमण्डलने अपना फर्ज अच्छी तरह निभाया है। अब आप तथा आपके साथियों द्वारा किये गये अच्छे कार्यको जारी रखनेका दायित्व यहाँ हम लोगोंका है।

हाँ, श्री एन्ड्रयूजके अनवरत श्रम और अडिग विश्वासके बिना कुछ भी नहीं किया जा सकता था। अभी तो मैं, यहाँ और दक्षिण आफ्रिकामें जो-कुछ हो रहा है, उस सबपर नजर रखने और सारी परिस्थितियोंसे अपना सम्पर्क बनाये रखनेके अलावा और कुछ नहीं कर रहा हूँ।

मेरे लड़केने मुझे लिखा है कि उसे आपसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उसने इस बातपर दु:ख प्रकट किया है कि आप फीनिक्स[1] आश्रमको देखने न जा सके।

हृदयसे आपका,

सर देवप्रसाद सर्वाधिकारी
२०, सूरी लेन
कलकत्ता

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११९५८ ए) की फोटो-नकलसे।

५८६. पत्र : सैयद रजा अलीको

साबरमती आश्रम
२८ मई, १९२६

प्रिय भाई,

यह पत्र आपके उस पत्रके लिए आभार प्रकट करने हेतु लिख रहा हूँ जिसके साथ आपने दक्षिण आफ्रिकासे अपनी साक्षीके ज्ञापन-पत्रकी नकल भेजी थी। आप सबको अपने प्रयत्नोंमें जितनी सफलता मिली, उसके लिए आपको और आपके शिष्ट-मण्डलको मैं बधाई देता हूँ।

आपने श्री पैडिसनकी जो प्रशस्ति की थी, उसका उपयोग मैंने आपका नाम दिये बिना 'यंग इंडिया' की साप्ताहिक टिप्पणियोंमें कर लिया था।[2]

आशा है, आपकी दक्षिण आफ्रिकाकी यात्रा आनन्ददायक रही।

हृदयसे आपका,

माननीय सैयद रजा अली
मुकाम — इनवर आर्म
शिमला

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११९५९) की माइक्रोफिल्मसे।

१. सन् १९०४ में दक्षिण आफ्रिकामें गांधीजीने इसकी स्थापना की थी। देखिए खण्ड ४, पृष्ठ ५२३।
२. देखिए "टिप्पणियाँ", २९-४-१९२६; उपशीर्षक "सच्चा परोपकारी व्यक्ति"।

५८७ पत्र : डॉ० नॉरमन लीको

साबरमती आश्रम
२८ मई, १९२६

प्रिय मित्र,

श्री वझ द्वारा भेजा[1] गया गत मासकी २६ तारीखका आपका पत्र मिला। तदर्थ धन्यवाद। मैं इस पत्रकी कद्र करता हूँ, क्योंकि मैं जानता हूँ कि विचारोंके ऐसे मुक्त आदान-प्रदानसे ही हम एक-दूसरेके निकट आते हैं। मेरे लिए तो 'राजनीति' शब्द ऐसा है जिसमें सभी बातोंका समावेश हो जाता है। मैं विभिन्न प्रवृत्तियोंको — राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक आदि — एक-दूसरेसे बिलकुल अलग मानकर नहीं चलता। मैं सबको एक अविभाज्य वस्तु मानता हूँ — ऐसा समझता हूँ कि हरएक धारा दूसरी तमाम धाराओंसे मिलकर बहती है और उन्हें प्रभावित करती है। मैं आपकी इस मान्यतासे भी सहमत हूँ कि जिसे सही अर्थोंमें हमारी राजनीतिक स्वतन्त्रता कहा जायेगा, वह साम्प्रदायिक प्रश्न-जैसी बहुत-सी घरेलू समस्याओंको हल करनेकी हमारी क्षमतापर निर्भर करेगी। दूसरे शब्दोंमें, वह आन्तरिक सुधारोंपर निर्भर करेगी। अतएव, बाहरी बातें तो भीतरी बातोंकी सूचक-मात्र होंगी। मैं ऐसा बिलकुल नहीं मानता कि साम्प्रदायिक प्रश्नका समाधान नहीं हो सकता। फिलहाल वह मानवीय प्रयत्नोंके लिए एक चुनौती-सा जरूर लग रहा है। लेकिन, मुझे पूरा विश्वास है कि हममें इसे अन्ततः हल कर लेनेकी क्षमता है। अलबत्ता यह हो सकता है कि कोई समाधान ढूंढ़ पानेसे पहले दोनों सम्प्रदायोंके बीच रक्तपात हो। तमाम प्रयत्नोंके बावजूद कभी-कभी ये झगड़े दुर्निवार-जैसे बन जाते हैं।

लेकिन, अगर आप ऐसा मानते हों कि ये साम्प्रदायिक झगड़े अंग्रेजी हुकूमतपर हमारी निर्भरताके कारण नहीं हैं तो मैं कहना चाहूँगा कि आपका ऐसा मानना शायद ठीक न हो। तो मैं मानता हूँ कि अंग्रेजी हुकूमत 'फूट डालो और राज्य करो'की नीतिपर आधारित है और कभी-कभी तो अंग्रेज अधिकारियोंने स्पष्ट रूपसे इस नीतिको स्वीकार किया है। अगर सरकार चाहे तो वह इस समस्याका शीघ्र ही कोई स्थायी समाधान ढूंढनेमें बहुत सहायक हो सकती है। लेकिन यह तो मैं यह बतानेके लिए कह रहा हूँ कि आपको हमारे सामने जो कठिनाई है वह बताऊँ। इसका उद्देश्य बिना शासकोंकी सहायताके इस समस्याको हल न कर पानेकी हमारी अक्षमताका बचाव करना नहीं है।

आपका दूसरा मुद्दा ऐसा है जिसपर कोई विचार व्यक्त करना मेरे लिए कठिन है। मैं यूरोपीय राजनीति या यूरोपीय इतिहासका वैसा सजग अध्येता नहीं हूँ कि

१. देखिए "पत्र: एस० जी० वझेको", २३-५-१९२६।

उन यूरोपीय राज्यों, जहाँ रोमन कैथोलिक मतका बोलबाला है और जहाँ प्रोटेस्टेंट मतका प्राधान्य है, उनके बीच वैसा कोई भेद कर सकूँ जैसा आपने किया है। और इसी कारणसे मैं तीसरे मुद्देपर भी, जो दूसरेके समान ही दिलचस्प है, चुप रहना ही पसन्द करूँगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मानव समाज ईश्वरको किस दृष्टिसे देखता है, इस बातका उस समाजपर बड़ा असर होता है। जहाँतक भारतका सम्बन्ध है, अधिकांश लोग ईश्वरको हममें से हरएकके अन्दर बैठे कर्त्ता और संचालकके रूपमें देखते हैं; यहाँतक कि अशिक्षित जनसमुदाय भी जानता है कि ईश्वर एक है। वह सर्वव्यापी है और इसलिए सदा हमारे सारे कर्मोंको देखता रहता है।

अगर आप उन दो मुद्दोंके बारेमें, जिन्हें मैं अभी अंशतः ही समझता हूँ, विस्तारपूर्वक समझाकर लिखना चाहते हों और यदि आपके पास समय हो तो अवश्य लिख भेजिए। मैं उन्हें अपनेतई अधिकसे-अधिक ध्यानसे पढ़ूँगा और मैं जानता हूँ कि उससे मुझे लाभ होगा।

हृदयसे आपका,

डॉ० नॉरमन ली
ब्रेल्सफोर्ड
डर्बीके पास
इंग्लैंड

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १२४६८) की फोटो-नकलसे।

५८८. पत्र : एस० अरुणाचलम्‌को

साबरमती आश्रम
२८ मई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। प्रसन्नताकी बात है कि आप अखिल भारतीय चरखा संघको थोड़ा-सा सूत भेज रहे हैं। चूँकि आप बहुत कमजोर हैं, इसलिए आपके कताई करनेका सवाल ही नहीं उठता।

सत्याग्रह आश्रमके नियम[1] नटेसन द्वारा प्रकाशित मेरे भाषणों और लेखोंके संकलनके परिशिष्टमें छपे हुए हैं। पुस्तकका एक नया संस्करण शीघ्र ही तैयार किया जानेवाला है।

मेरा खयाल है कि आपको चिकित्सकसे सलाह लेने या हलका-सा इलाज करवानेमें संकोच नहीं करना चाहिए। वैसे अगर ईश्वरमें आपकी अडिग आस्था

१. देखिए खण्ड १३ पृष्ठ ९५-१०१।

हो और अगर आपका ऐसा अटूट विश्वास हो कि उसकी दयासे सारे दुःख दूर हो जाते हैं तब तो बात दूसरी है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एस० अरुणाचलम्
९५१, वीवर स्ट्रीट
अलंतुर, सेंट टॉमस माउण्ट
मद्रास

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५७६) की माइक्रोफिल्मसे।

५८९. पत्र: डॉ० माणिकबाई बहादुरजीको

साबरमती आश्रम
२८ मई, १९२६

आपका पत्र पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं खादी प्रतिष्ठानसे आपको वैसा कोई चरखा भेजनेके लिए कह दूंगा, जैसा कि मेरा है। कहाँ भेजा जाये—पंचगनी या बम्बई? आपका उत्तर मिलनेपर मैं प्रतिष्ठानको लिखूंगा और अगर आपको जल्दी हो तो आप खुद ही प्रतिष्ठानको लिख दें। खादी प्रतिष्ठानका पता है—१७०, बहू बाजार स्ट्रीट, कलकत्ता।

पंचगनीमें आपके बगीचेमें जो फल लगनेवाले हैं, उनकी चर्चा पढ़कर तो मेरे मुँहमें पानी भर आया है। वहाँ, इस बारकी यात्रामें तो मैं महाबलेश्वर और पंचगनीके आसपासके सभी मनोरम दृश्योंको तो नहीं ही देख पाया। लेकिन, यह तो अवकाश होनेपर ही किया जा सकता है।

आप सबको मेरा प्यार।

आपका,

डॉ० श्रीमती बहादुरजी
उमरा हाल
पंचगनी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५७७) की माइक्रोफिल्मसे।

५९०. पत्र : जी० आर० एस० रावको

साबरमती आश्रम
२८ मई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए मेरा सन्देश यह रहा :

"मुझे आशा है कि यह पत्र चरखा और कताई तथा इन दोनोंसे जिन अन्य बातोंका बोध होता है, उन सबका पक्ष-पोषक है।"

'यंग इंडिया' की विनिमय-सूची तो बे-हिसाब बढ़ गई है और आजकल इसकी ग्राहक संख्या भी सीमित ही है। इसलिए आपके पत्रके बदले आपको 'यंग इंडिया' की प्रति भेजना मुश्किल है। अगर आप बंगलौरमें किन्हीं मित्रसे उसे प्राप्त कर सकें तो अच्छा हो। इस तरह मैं उतने खर्चसे बच जाऊँगा।

आपको अपना अखबार भेजनेकी जरूरत नहीं है, और कारणसे नहीं तो इस बातका खयाल करके कि 'यंग इंडिया' के सम्पादनके लिए हम विनिमयमें आई पत्र-पत्रिकाओंकी खबरों और टिप्पणियोंपर निर्भर नहीं करते, क्योंकि यह दरअसल कोई समाचारपत्र नहीं है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत जी० आर० एस० राव
प्रधान सम्पादक
'प्रजा मित्र'
कमला विलास
कोट्टनपेठ
बंगलौर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५७८) की माइक्रोफिल्मसे।

५९१. पत्र : कृष्णदासको

साबरमती आश्रम
२८ मई, १९२६

प्रिय कृष्णदास,

तुम्हारे दो पत्र मिले। हरदयाल बाबेके सम्बन्धमें वह लम्बा बयान घूम-फिरकर मेरे पास महाबलेश्वरमें पहुँचा, फिरसे उसे मेरे बस्तेमें रख दिया गया, लेकिन महाबलेश्वरमें तो बस्तेको देखनेतकका अवकाश नहीं मिला। मैं ये कागज-पत्र कल देख पाया हूँ, लेकिन उस बयानको अबतक पढ़ नहीं पाया हूँ। एक-दो दिनमें पढ़ लूँगा। लेकिन, मेरा खयाल है, मैं तुम्हें लिख चुका हूँ कि अगर मुझे मालूम होता कि शिकायत तुम्हारे पिताजीके बारेमें है तो इस विषयमें तुमसे पूछताछ किये बिना मैं वह तार नहीं भेजता। मैं समझता हूँ, अपने सन्तोषके लिए इस विषयमें तुम मेरा मत जानना चाहते हो। अपना मत मैं खुशी-खुशी बताऊँगा। अपने बारेमें उस एक ही पत्रकी दो प्रतियाँ तुमने मुझे भेज दी हैं।

आज मैं तुम्हें बीमासे १०० रुपये भेज रहा हूँ, और जरूरत हो तो लिखना। अभी पिछले ही दिनों महादेव पूछ रहा था कि तुम्हारे निकट भविष्यमें लौटनेकी कोई सम्भावना है या नहीं। मैंने उससे कहा कि गुरुजीके विषयमें तुमने जो समाचार भेजे हैं, उन सबको देखते हुए तो मैं यही समझता हूँ कि तुम्हारा मेरे बजाय गुरुजीके पास रहना ज्यादा ठीक है और अब भी जबतक तुम्हें यह नहीं लगे कि तुम्हारे वहाँसे चले आनेसे बिलकुल कोई हर्ज नहीं होगा तबतक तुम उन्हें मत छोड़ना। लेकिन अगर तुम आ सको तो मुझे बड़ी सुविधा होगी, क्योंकि अभी तो प्यारेलाल और देवदासमें से कोई भी यहाँ नहीं है। लेकिन, एक और सवालपर भी ध्यान देना है। अगर मैं फिनलैंड चला जाऊँ, जिसकी कुछ-कुछ सम्भावना दिखाई देती है, तब क्या होगा? इसके बारेमें श्री पॉलसे मेरा पत्र-व्यवहार काफी तेजीसे चल रहा है। अगर मैं जाता हूँ तो पहली जुलाईको प्रस्थान कर जाऊँगा। मतलब यह कि जिस आखिरी जहाजसे चलकर मैं समयपर फिनलैंड पहुँच सकता हूँ, वह बम्बईसे उसी तारीखको छूटता है। सब-कुछ शायद इस सप्ताहके अन्ततक तय हो जायेगा — अगले सप्ताहके अन्ततक तो अवश्य ही। अगर मुझे जाना ही पड़ा तो मेरा इरादा महादेव और देवदासको साथ ले जानेका है। यहाँ काम बहुत पड़ा रह जायेगा। लेकिन, वह काम करनेके लिए तुम गुरुजीको छोड़कर आओगे या नहीं, मुझे लगता है, इस सवालपर तो इस कामका खयाल किये बिना बिलकुल अलगसे सोचना चाहिए। हरहालतमें तुम्हें तो गुरुजीके स्वास्थ्यको ही सबसे अधिक महत्त्व देना चाहिए।

देवदास बिलकुल ठीक चल रहा है हालाँकि वह अब भी अस्पतालमें ही है। हफ्तेके अन्दर ही उसके अस्पतालसे छुट्टी पा जानेकी सम्भावना है। लालजीका भी

ऑपरेशन हुआ है और वह भी उसी कमरेमें है जिसमें देवदास है। ये दोनों मरीज सर हरकिशनदास अस्पतालमें हैं। यशवन्तप्रसाद भी बीमार है। उसके कई छोटे-मोटे ऑपरेशन हुए हैं। उसे नहरुआ हो गया था।

तुम्हारी बहनके विधवा हो जानेका समाचार पाकर बड़ा दुःख हुआ। उनतक मेरी समवेदना अवश्य पहुँचाना। गुरुजीकी भेजी सभी कतरनोंको मैं ध्यानसे पढ़ता हूँ। कुछ तो बड़े महत्त्वकी हैं। "मुहम्मदका सुलहनामा" ("मुहम्मद्स ट्रीटी") मैंने पहले नहीं पढ़ा था। हाँ, यह मालूम था कि उनके उत्तराधिकारियोंने ईसाइयों और यहूदियोंके साथ उस ढंगकी कोई सन्धि की थी।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५७९) की फोटो-नकलसे।

५९२. पत्र : शार्दूलसिंह कवीसरको

साबरमती आश्रम
२९ मई, १९२६

प्रिय मित्र,

मेरे पास कुछ अरसेसे अकालियोंके लिए एक छोटी-सी रकम (५१ रुपये) पड़ी हुई है। किसी जरूरतमन्द और सुपात्र अकालीकी सहायताके लिए आप इसका जैसा चाहें वैसा उपयोग करनेकी कृपा करें।

हृदयसे आपका,

सरदार शार्दूलसिंह कवीसर
लॉज लिबर्टी
रामगली
लाहौर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५८२) की माइक्रोफिल्मसे।

५९३. पत्र: डी० वी० रामरावको

साबरमती आश्रम
२९ मई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैं समझता हूँ, आपको अपने माता-पिताको इस बातके लिए मनानेकी कोशिश करनी चाहिए कि वे आपको शान्तिनिकेतन जाने दें। लेकिन, जबतक आपको उनकी इजाजत नहीं मिल जाती, तबतक तो आपके लिए बेहतर यही होगा कि आप जहाँ हैं, वहीं रहकर अपने मनकी शान्ति बनाये रखें। माता-पिताकी इच्छाएँ चाहे जितनी भी अरुचिकर हों, किन्तु आपको उनका पालन करनेमें सुख और सन्तोष मानना चाहिए। माता-पिताकी अवज्ञा उसी हालतमें ठीक है, जब उनकी आज्ञाका पालन करना अनैतिक हो। यही बात तैराकीपर भी लागू होती है। आपको अपने माता-पिताको समझा-बुझाकर उनसे तैराकी सीखनेकी इजाजत लेनी चाहिए। अगर आप उनकी निगरानीमें तैरना सीखें तो आपके तैरना सीखनेमें शायद उन्हें कोई डर नहीं लगेगा।

जिन्हें धोखा दिया जाये उनपर अपनी धोखेबाजियोंको जाहिर कर देना आवश्यक है। इससे मनुष्य शुद्ध बनता है। माता-पिताके सामने अपनी गलती कबूल करनेसे उन्हें जो आघात लगेगा, वह क्षणिक होगा। जिस कारणसे शरीरकी गन्दी सतहको रगड़कर साफ करना जरूरी होता है, उसी कारणसे अपने किये हुए पापको स्वीकार करना भी आवश्यक होता है। भौतिक शरीरकी गन्दगीको दूर करनेके लिए जो महत्त्व बदन रगड़कर धोनेकी क्रियाका है, वही महत्त्व आत्मिक धरातलकी गन्दगीको दूर करनेकी दृष्टिसे स्वीकारोक्तिका है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत डी० वी० रामराव
डिगमार्टी हाउस
ब्रहरामपुर
(जि० गंजाम)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५८०) की माइक्रोफिल्मसे।

५९४. पत्र : कृष्णदासको

साबरमती आश्रम
२९ मई, १९२६

प्रिय कृष्णदास,

अब मैंने तुम्हारा लम्बा पत्र ध्यानसे पढ़ लिया है। तुमने जो तथ्य बताये हैं, उनके अनुसार तुम्हारे पिताजीको किसी भी तरहसे दोषी नहीं माना जा सकता। तुम ऐसा तो नहीं चाहते कि इस दुर्भाग्यपूर्ण मामलेके बारेमें मैं हरदयाल बाबूको कुछ लिखूं? अगर चाहो तो मैं उन्हें खुशी-खुशी लिखूंगा।

अब मुझे लग रहा है कि फिनलैंडका निमन्त्रण रद्द हो जायेगा। खुद श्री के० टी० पॉलकी ही कठिनाइयोंको देखते हुए मैंने उन्हें इसका सुझाव दिया है।[1] अगले हफ्ते उनका उत्तर मिल जायेगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत कृष्णदास
मार्फत एस० सी० गुह
दरभंगा

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५८१) की फोटो-नकलसे।

५९५. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

साबरमती आश्रम
२९ मई, १९२६

यह जानकर अतीव प्रसन्नता हुई कि आपका 'स्वास्थ्य बहुत अच्छा' है। शंकरलालने आपको पत्र लिखा होगा। लेकिन, जो भी हो, मैं १५ जूनको आपके आश्रम पहुँच जानेकी उम्मीद रखता हूँ। जबतक आप दौरेपर रहें, कहनेकी जरूरत नहीं कि लक्ष्मीको यहीं छोड़ दें।

छोटालाल यहाँ-वहाँ दौड़ रहा है। वह बहुत उद्विग्न मन:स्थितिमें है। वह खादी प्रतिष्ठान गया था और वहाँ कुछ दिन सतीश बाबूके साथ रहा। अब वह वर्धामें है। मैंने उससे कुछ दिन आपके साथ रहकर आपके काममें मदद देनेको कहा था। लेकिन वह इसके लिए तैयार नहीं था। उसने कहा कि अगर आपको जरूरत हो तो वह आपकी व्यक्तिगत सेवा खुशी-खुशी करेगा, लेकिन वैसे वह यह कह सकनेकी स्थितिमें नहीं था कि आपके साथ रह कर चैन महसूस करेगा या नहीं। लेकिन, अब

१. देखिए "तार: के० टी० पॉलको", २३-५-१९२६

उसने पत्र लिखकर मुझसे पूछा है कि क्या आपको उसकी जरूरत है। मगर अब भी वह व्यक्तिगत सेवा करनेकी ही बात कह रहा है। लेकिन, चाहे वह जो भी करे खादी-कार्यमें आपकी सहायता करे या आपके रसोइये, सेवक और सफाई-सम्बन्धी सहायकका काम करे अथवा आपके लिए खादी बुने — मैं तो कहूँगा कि आप उसे उसीकी शर्तोंपर साथ रख लें और यदि वह आपको अस्थिरचित्त लगे तो आप मुझसे कह दीजिए; मैं उसे वापस बुला लूँगा। अगर वह आपके साथ दौरेमें जाना चाहे तो ले जाइए। लेकिन, उसे सबसे अच्छी तरह तो आप खुद ही जानते हैं। क्या आप उसे अपने साथ रखनेको तैयार हैं? या आप यहाँ आनेपर ही इस विषयमें बातचीत करना ठीक समझेंगे।

मेरी फिनलैंड यात्राके बारेमें आपकी बद्दुआ तो, लगता है, काम कर जायेगी। कारण, के० टी० पॉल०, उनके नाम लिखे मेरे एक पत्रसे[1], परेशानीमें पड़ गये लगते हैं। मैंने उनसे कहा है कि मेरी इस प्रस्तावित यात्राको वे बिलकुल तटस्थ भावसे देखें। लेकिन, मुझे तो जान पड़ता है कि निमन्त्रण उन्हींकी प्रेरणापर भेजा गया है और यंगमैन्स क्रिश्चियन एसोसिएशनकी विश्व समिति इस मामलेमें उनके हाथोंमें एक निष्क्रिय साधन-मात्र रही है। लेकिन अब तो एक सप्ताहके अन्दर ही मुझे मालूम हो जायेगा कि जाना है या नहीं।

अभी तो हम लोग यहाँ गर्मीसे झुलस रहे हैं, लेकिन आशा है, आप स्वयं आनेसे पहले ही हमारे लिए इधर कुछ वर्षा भेज देंगे।

आपका,

श्रीयुत च० राजगोपालाचारी
गांधी आश्रम
तिरुचेनगोडु

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५८६) की फोटो-नकलसे।

५९६. अहमदाबादके मिल-मजदूरोंकी गृह-योजनाका मसविदा[2]

यदि मजदूरोंकी वेतन-वृद्धिकी माँग मान ली जाती है तो इस वृद्धिके पैसोंका उपयोग एक वर्षतक मजदूरोंके घरोंकी योजनाके लिए किया जाना चाहिए। इस योजनाके अन्तर्गत ऐसे घर बनानेका विचार है जिससे मजदूरोंके आरोग्यकी रक्षा होगी और जो उनकी सुख-सुविधाकी दृष्टिसे भी उपयोगी होंगे और फिर भी साधारण कारीगरोंको भारी नहीं पड़ेंगे।

१. देखिए "पत्र : के० टी० पॉलको", २३-५-१९२६।

२. अहमदाबादके मिल-मजदूरोंके वेतनमें सन् १९२३ में १५ प्रतिशतकी कटौती की गयी थी। मजदूरोंकी माँगके फलस्वरूप अगर यह कटौती रद हो जाये तो मजदूरोंके वेतनमें होनेवाली वृद्धिके समुचित उपयोगके लिए गांधीजीने यह योजना सुझायी थी। साधन-सूत्रमें योजनाकी मुख्य-मुख्य धारायें ही उद्धृत की गयी थीं।

जहाँ ये घर बनाये जायेंगे ऐसे प्रत्येक मुहल्लेमें वहाँ रहनेवाले श्रमिक वर्गकी सामुदायिक आवश्यकताओंको पूरा करनेकी व्यवस्थाकी जायेगी और उनकी सुविधाओंके लिए सारे सम्भव उपाय किये जायेंगे। इनमें पैसेकी सुविधानुसार स्कूल, बगीचे और मनोरंजन-गृह, वाचनालय तथा दूकानें और दवाखाने आदिका समावेश होगा।

मजदूर-महाजन और मिल-मालिक मंडलके प्रतिनिधियोंकी एक समिति — जिसमें मजदूर-महाजनके प्रतिनिधियोंका बहुमत होगा — न्यासकी शर्तोंके अनुसार इस योजनाको अमलमें लायेगी, इस सारी सम्पत्तिकी देखरेख करेगी तथा आय-व्ययकी व्यवस्था करेगी। इस सम्पत्तिका प्रबन्ध मजदूर-महाजन करेगा; चालू वर्षके दौरान मिलमें काम करनेवाले वेतन-वृद्धिके हकदार सब कारीगर न्यासके पैसोंके और उससे खरीदी गयी सम्पत्तिके संयुक्त मालिक माने जायेंगे। कोषमें भरे गये अपने पैसोंके अनुपातमें प्रत्येक कारीगर इस सम्पत्तिका भागीदार माना जायेगा; ऐसे प्रत्येक कारीगर भागीदारको तत्सम्बन्धी शेयर सर्टिफिकेट दिये जायेंगे। शेयर-होल्डर न्यासियो द्वारा तय की हुई शर्तोंके अनुसार न्यासियोके सिवा किसी दूसरेको न तो अपना सर्टिफिकेट बेच सकेगा और न गिरवी रख सकेगा। कारीगरोको पर्ची डालकर मकान भाड़ेपर दिये जायेंगे। इसमें शेयर होल्डरोंको प्राथमिकता दी जायेगी।

इस योजनाको अमलमें लानेका निश्चय विभागानुसार प्रत्येक कारीगरका लिखित मत लेनेके बाद और योजनाके हकमें दो तिहाई बहुमत है अथवा नहीं इसकी जाँच करनेके बाद लिया जायेगा। यदि वेतनमें होनेवाली वृद्धिका उपयोग इस योजनाके अनुसार किया जाये तो फिर एक वर्षतक वृद्धिके लिए कोई माँग न की जाये और यदि इस शर्तके विरुद्ध कोई मजदूर विशेष वेतनकी वृद्धिके लिए हड़ताल करें तो जितना समय इस योजनाके न्यासी तय करें उतने समयके लिए वे इस योजनाका लाभ नहीं पा सकेंगे।

[गुजरातीसे]
गुजराती, ३०-५-१९२६

५९७. टिप्पणियाँ

प्रागजी देसाई

भाई प्रागजी खंडुभाई देसाई, जिन्हें 'नवयुग' में लिखे अपने लेखके लिए दो वर्षकी सजा मिली थी, गत २२ तारीखको साबरमती जेलसे रिहा कर दिये गये हैं। हालाँकि पहले-पहल सत्ताधिकारियोंने उन्हें बहुत परेशान किया था; लेकिन उनका बादका समय — मुख्यतः कराचीकी जेलमें बदली होनेके बादका — अत्यन्त शान्ति और सुखमें व्यतीत हुआ। परिणामतः उनकी तन्दुरुस्ती बहुत अच्छी है और जेलमें शान्तिपूर्वक पढ़ने तथा सोचने-विचारनेका समय भी उन्हें खूब मिला। अब वे, उन्हें किस कार्यमें जुटना चाहिए, इस बातपर विचार करनेके लिए भाई कल्याणजी आदि साथियों तथा अपनी धर्मपत्नीसे मिलनेके लिए सूरत गये हैं।

पूर्व आफ्रिकासे प्राप्त एक प्रार्थना

एक नवयुवक नैरोबीसे लिखते हैं:[1]

मैं इस युवक-संघको बधाई देता हूँ। यदि उनका मासिक केवल लोकसेवार्थ ही प्रकाशित किया जा रहा है तो मैं उसकी सफलताकी कामना करता हूँ। लेखकने खादीके सम्बन्धमें जो टीका की है, वह मुझे प्रिय लगती है। वह खादीके प्रति मेरे प्रेमको तो समझता है परन्तु मेरे इस प्रेममें निहित विवेकको वह नहीं समझ सकता। इसे समझानेका उसने मुझे सहज ही जो अवकाश दिया है, मैं उसका स्वागत करता हूँ। उसे यह जानकर आश्चर्य होगा कि मैं पूर्व आफ्रिकाके भारतीयोंकी स्थितिको सुधारनेके लिए खादीके उपयोगकी बात नहीं सुझाना चाहता। अथवा यदि मैं मोहवश खादीके ही उपयोगकी बात करूँ तो मुझे 'खादी' शब्दका बिलकुल भिन्न और विस्तृत अर्थ करना होगा। लेकिन मुझे ऐसा मोह तनिक भी नहीं है। इसलिए यह कहे देता हूँ कि पूर्व आफ्रिकाके लोगोंके निजी दुःखको दूर करनेके लिए खादीका उपयोग लगभग निरर्थक है। उत्तर ध्रुवमें रहनेवाले लोगोंके लिए मैं चरखा चलानेकी बात नहीं लिखूँगा। पूर्व आफ्रिकामें रहनेवाले भारतीय कभी-कभी खादीका उपयोग करें, यह अभीष्ट है। यदि वे ऐसा करें तो माना जायेगा कि वे हिन्दुस्तानकी परिस्थितिको समझते हैं। लेकिन उन्हें अपनी स्थिति सुधारनेके लिए एकताको साधना चाहिए, इसमें कोई सन्देह नहीं। यह पहला कदम है, परन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं है। उनपर गन्दा रहनेका आरोप है और उसमें बहुत-कुछ सत्य है। उन्हें यह गन्दगी दूर करनी चाहिए। उनपर कंजूसी करनेका आरोप है। उसमें भी थोड़ा-बहुत सत्य है। यहाँ कंजूसीका अर्थ रहन-सहनपर खर्च करनेमें अशोभनीय कमी है। एक ही मकानमें दूकान रखना, उसीमें रहना और खाना-पीना करना यह सब परदेशमें ठीक नहीं। परदेशमें कमाई ज्यादा हो सकती है और उसके अनुपातसे रहन-सहनमें उचित सुधार करनेकी आवश्यकता है। यदि हम वैसा न करें तो हमपर अनुचित होड़ करनेका आरोप लग सकता है। यदि कोई व्यापारके सामान्य नियमोंकी अवगणना करके बहुत तंगी उठाकर बाजार भाव कम करे तो व्यापारी लोग उससे अवश्य द्वेष करेंगे। हमें ऐसा द्वेष करनेका कारण प्रस्तुत न करना चाहिए।

इसके अतिरिक्त पूर्व आफ्रिकामें रहनेवाले भारतीयोंको अपने बीच शिक्षाका प्रसार करनेके उपाय करने चाहिए। यदि उनकी सन्तान शिक्षा पाये बिना ही बड़ी होगी तो वह पूर्व आफ्रिकामे अंग्रेजोंके मुकाबलेमें खड़ी नहीं हो सकेगी, इसमें कोई सन्देह नहीं। और मैंने जो यह सुना है कि पूर्व आफ्रिकामें रहनेवाले भारतीयोंने अंग्रेजों के गुणोंका अनुकरण करनेके बजाय उनके मद्यपान, व्यभिचारादि दुर्गुणोंका अनुकरण किया है यदि वह सच है तो उन्हें उनका त्याग करना चाहिए और अन्ततः अपना अस्तित्व सम्मानपूर्वक बनाये रखनेके लिए अपने भीतर सत्याग्रह करने अर्थात्

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने इसमें गांधीजीसे वहाँके भारतीय युवक संघकी ओरसे निकाले जानेवाले एक मासिकके लिए सन्देश और लेख भेजनेकी प्रार्थना की थी।

समाजके कल्याणार्थ आत्यन्तिक दुःख भोगनेकी शक्तिका विकास करना चाहिए। यदि पूर्व आफ्रिकाके भारतीय इतना करें और खादी न पहनें तो वे अधिक दोषी नही माने जायेंगे। खादी न पहननेके बावजूद यदि वे अपने सम्मानको बनाये रखना सीख जायें तो यह समझा जायेगा कि उन्होने अपने धर्मका पालन कर लिया है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३०-५-१९२६

५९८. असहयोग और राष्ट्रीय शिक्षा[1]

'नवजीवन' के एक पाठक इस प्रकार लिखते हैं:[2]

मैं स्वयं तो असहयोगके किसी भी अंगके विषयमे जरा भी ढीला नही हुआ हूँ। शिक्षाके सम्बन्धमें १९२०-२१ में मेरे जो विचार थे, वे आज भी ज्योंके-त्यो है और यदि मुझमें विद्यार्थियोको और उनके अभिभावकोको समझानेकी शक्ति होती तो आज एक भी विद्यार्थी सरकारी पाठशालामे न रहता। यदि 'नवजीवन' में बार-बार इस इस विषयकी चर्चा नही की जाती तो इसका कारण यह है कि इस समय हमारे सामने जो कार्य उपस्थित है वह व्याख्यानोंसे और लेखोंसे लोगोको समझाकर सरकारी पाठशालाओंका त्याग करानेका नही है। तात्कालिक कार्य तो जो पाठशालाएँ असहयोगपर कायम हैं उनका पोषण करना ही है। मुझे यह बात खेदपूर्वक स्वीकार करनी चाहिए कि असहयोगी शिक्षाकी प्रवृत्तिमें खादीकी प्रवृत्तिकी वृद्धि नही हो रही है। संख्याकी दृष्टिसे तो उसमें भाटा हो रहा है। प्रसंगानुसार उसका उल्लेख करनेमें मुझे कोई सकोच नही होता; परन्तु उसका उल्लेख रोज-रोज करनेकी तो कोई आवश्यकता नहीं है। परन्तु उसमें ऐसा भाटा आनेसे मुझे कोई भय नही हो रहा है। यदि हम अपनी श्रद्धाको न छोड़ेंगे तो इस भाटेके बाद ज्वारका आना भी निश्चित ही है। आज जो पाठशालाएँ और विद्यालय असहयोगपर दृढ़ है वे उसपर शुद्धभावसे दृढ़ बने रहें और असहयोगके तत्त्वोंको जरा भी ढीला न होने दें तो परिणाम मंगलकारी ही होगा, यह मेरा दृढ़ विश्वास है। मैं यह जानता हूँ कि प्रोप्रायटरी हाई स्कूलपर विपत्तिके बादल मँडरा रहे हैं। कुछ शिक्षक और बहुत-से विद्यार्थी उसे छोड़कर चले गये हैं। लेकिन इससे क्या हुआ? अब असहयोगका कार्य

१. देखिए "राष्ट्रीय शिक्षा", ३-६-१९२६ भी।

२. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने गांधीजीसे पूछा था: लोगोंका आम खयाल यह है कि आपका शिक्षाके क्षेत्रमें असहयोगका विचार अब शिथिल हो गया है। राष्ट्रीय शिक्षामें आम जनताकी रुचि भी कम हो गई है; क्या इस बातको देखते हुए शिक्षाके क्षेत्रोंमें असहयोगकी नीतिको त्याग देनेमें और गुजरातमें शिक्षा-शास्त्रकी जो उच्च प्रतिमा उपलब्ध है, उसका अधिकतम लाभ उठानेमें बुद्धिमता न होगी? यह लाभ सरकार जो नया विश्व-विद्यालय स्थापित करनेका विचार कर रही है, उसमें सहयोग करके उठाया जा सकता है।

कोई देखा-देखी तो नहीं करना है। हमें वह किसी नीति अथवा युक्तिके रूपमें भी नहीं करना है। जो लोग दृढ़ असहयोगी हैं वे अपने आत्म-विश्वासके बलपर ही लड़ रहे हैं। सम्भव है कि उन्हें और भी अधिक कठिन समयसे गुजरना पड़े। परन्तु यदि ऐसा हो तो जिस प्रकार खरे सोनेकी परीक्षा अग्निमें तपानेपर अधिकाधिक होती जाती है उसी प्रकार असहयोगियोंकी भी परीक्षा होगी। जो आखिरतक दृढ़ रहेंगे वे ही सच्चे असहयोगी गिने जायेंगे, ऐसे लोग चाहे थोड़े हों या बहुत, परन्तु स्वराज्य उन्हींके द्वारा प्राप्त किया जा सकेगा। सरदार शार्दूलसिंहने पंजाबमें व्याख्यान देते हुए अभी जो कहा है वह सच है। शेर और बकरोंमें सहयोग नहीं हो सकता। सहयोग अपने समानवर्गीसे किया जाये तो ही ठीक होता है। वर्तमान स्थितिमें सरकारसे लोगोंके किसी भी प्रकारके सम्बन्धको सहयोग कहना उस शब्दका दुरुपयोग करना है। जब हम शक्ति प्राप्त करेंगे और अपनी शर्तें पूरी करा सकेंगे तब सहयोग स्वतः ही हो जायेगा और वही ठीक भी होगा।

परन्तु असहयोगके सम्बन्धमें आज भी गलतफहमी होती है। इससे यह प्रकट होता है कि हम अब भी असहयोगके स्वरूपको नहीं जान सके हैं। हमारा असहयोग राक्षसी, अशान्त, विनयहीन अथवा द्वेषयुक्त नहीं है। शान्त असहयोगमें किसीके भी प्रति तिरस्कारके लिए स्थान नहीं होता। आनन्दशंकरभाईके[1] ज्ञानका या शक्तिका उपयोग विद्यापीठके लिए किया जाये तो उससे असहयोगको जरा भी हानि नहीं पहुँचती। हमने उन्हें विद्यापीठ-आयोगका अध्यक्ष बनाकर सरकारसे किसी भी प्रकारसे सहयोग नहीं किया है। प्रत्युत विद्यापीठने उन्हें अध्यक्ष बननेका निमन्त्रण देकर अपना ही गौरव बढ़ाया है और यही नहीं, असहयोगका शुद्ध स्वरूप भी बताया है, क्योंकि शान्त असहयोगीका किसी भी व्यक्तिके प्रति कोई तिरस्कार-भाव नहीं हो सकता। वाइसरायमें भी मनुष्यके जो गुण हों उनका उपयोग — यदि उसमें उनकी उपाधिका उपयोग न हो तो — हमें अवश्य करना चाहिए। यदि हम ऐसा न करें तो असहयोगीकी हैसियतसे मूर्ख ही गिने जायेंगे।

हम विद्यापीठ-जैसी संस्था चलाकर राष्ट्रके धनका दुरुपयोग नहीं करते बल्कि सदुपयोग करते हैं। जो असहयोगको पाप समझते हैं हम यहाँ उनके दृष्टिकोणपर विचार नहीं कर रहे हैं। विद्यापीठको दान देनेवाले असहयोगके सिद्धान्तोंको माननेवाले लोग हैं। उनके धनका शिक्षाके इस महान प्रयोगमें उपयोग हो रहा है, यह उनके धनका व्यर्थ व्यय नहीं है। हाँ, इतना अवश्य होना चाहिए कि ज्यों-ज्यों संख्यामें कमी हो त्यों-त्यों शिक्षकोंके और विद्यार्थियोंके चरित्रबलमें वृद्धि हो। तभी राष्ट्रके धनका सदुपयोग हुआ माना जा सकेगा। यदि सरकार द्वारा स्थापित किया जानेवाला विश्वविद्यालय हमारे अध्यापकोंको खींच लेगा तो मैं यह समझूँगा कि वे असहयोगके उपासक नहीं थे। हमें सरकार द्वारा स्थापित किये जानेवाले विश्वविद्यालयसे अपने कर्त्तव्यके प्रति अधिक दृढ़ और सचेत बनना चाहिए। उसमें धन-लाभ या मान-लाभ भले ही हो; परन्तु मैं यह जानता हूँ कि वह स्वराज्यका मार्ग नहीं है। यहाँ विद्या-

१. आनन्दशंकर बापूभाई ध्रुव।

पीठमें उन्हें भले ही गरीबीसे रहना पड़े, भले ही उनकी निन्दा हो, किन्तु फिर भी हम यहाँ तो पद-पदपर स्वराज्यको नजदीक ला रहे हैं। यह मेरा विश्वास है और मैं अपने इस विश्वासको त्याग नहीं सकता।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३०-५-१९२६

५९९. गुजरातमें चरखा

भाई लक्ष्मीदासने गुजरातमें चरखेके प्रचारसे सम्बन्धित कुछ तथ्य इकट्ठे किये हैं। उन्हें पाठक इस अंकमें देखेंगे। उनसे हम देख सकते हैं कि अहमदाबाद और नडियाद आदि शहरोंमें भी कताई इने-गिने लोग ही करते हैं। यह क्षेत्र बहुत संकुचित है, हमें यह स्वीकार करना चाहिए। तो भी हम देख सकते हैं जो स्त्रियाँ चरखा चला रही हैं उनके लिए तो यह एक ही धन्धा है। इसमें जिन स्त्रियोंको किसी और धन्धेसे अधिक मजदूरी मिल सकती है, उनसे चरखा चलवानेका प्रयत्न नहीं किया जाता। चरखेका स्थान ही अनोखा है। जिसके पास और कोई भी नीतियुक्त धन्धा नहीं है उसके लिए ही चरखेकी कल्पना की गई है। परन्तु हिन्दुस्तान-जैसे विशाल और घनी आबादीवाले देशमें करोड़ोंको उद्योग केवल चरखा ही दे सकता है और यदि अहमदाबाद और नडियाद आदि शहरोंमें पैसेके लिए चरखा चलानेवाले मिल जाते हैं तो गाँवोंमें उसकी उपयोगिता कितनी ज्यादा होगी, इसका हम सहज ही अनुमान लगा सकते हैं। गरीबोंके घरोंमें यदि अन्नदाता चरखेका गुंजन नहीं हो रहा है तो उसका एकमात्र कारण परोपकारी, त्यागी और ज्ञानी कार्यकर्त्ताओंकी कमी ही है।

दूसरा ऐसा ही सबल कारण यह तो है ही कि गुजरातमें खादीकी खपत बहुत कम है। जब हममें सच्ची राष्ट्रीय चेतना आयेगी तब खादी गेहूँ और घीकी भाँति व्यापक हो जायेगी और इसकी माँग बढ़ जायेगी। अभी तो हमने गुजरातमें गरीबोंके घरोंमें प्रवेश ही नहीं किया है; उनमें प्रवेश करनेका अधिकार प्राप्त नहीं किया है, और हमारे मनमें प्रवेश करनेकी इच्छा भी जागृत नहीं हुई है। जब हममें सचमुच यह चेतना आ जायेगी तब एक नहीं अनेक नवयुवक गाँवोंमें जायेंगे और लोकसेवा करेंगे तथा उस सेवासे मिलनेवाली आजीविकापर जीवन व्यतीत करनेमें गौरव मानेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३०-५-१९२६

६००. पत्र : एस० जी० वझेको

साबरमती आश्रम
३० मई, १९२६

प्रिय वझे,

सोसाइटीके प्रकाशनोंके बारेमें आपकी गश्ती-चिट्ठी मिली। अभी-अभी मालूम हुआ है कि शास्त्री वहीं हैं। लेकिन, चूँकि उनके नाम मेरे पत्रमें लिखी गई बातें ऐसी हैं जिनपर तत्काल ध्यान देना आवश्यक है, इसलिए इस भयसे कि क़दाचित् वे वहाँ नही हों, उस पत्रकी एक नकल आपको भी भेज रहा हूँ। और अगर मेरे प्रस्तावको स्वीकार करना सम्भव लगे तो फिर आपको पूरी छूट होगी कि आप आश्रममें आकर रहें और साथमें जितने लोगोंको लाना चाहें, ले आये और जबतक पूनामें प्रेस फिरसे खड़ा नहीं कर लिया जाता तबतक यहींसे [सोसाइटीके] पत्रका सम्पादन करें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एस० जी० वझे
सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी
डेकन जीमखाना, डाकघर
पूना सिटी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०९१२) की फोटो-नकलसे।

६०१. पत्र : वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको

साबरमती आश्रम
३० मई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपकी फटकारके बावजूद मैं अखबार पढ़नेका खयाल नहीं करता, सो मुझे मालूम नहीं था कि इन दिनों आप कहाँ हैं। निदान मैंने देवधरको ही उस भीषण अग्नि-काण्डपर अपना दुःख प्रकट करते हुए पत्र लिखा, जिसमें सोसाइटीका प्रेस जल कर राख हो गया। उसमें मैंने कहा है कि आपके प्रकाशनोंके सम्बन्धमें मुझसे जो-कुछ बन सकता है, वह सेवा करनेको मैं तैयार हूँ। अब मुझे वझेकी एक गश्ती चिट्ठी मिली है। उसमें उन्होंने मुझसे यह घोषित कर देनेको कहा है कि जबतक नई व्यवस्था नहीं कर ली जाती, 'सर्वेंट ऑफ इंडिया' और 'ज्ञान प्रकाश' का प्रकाशन नहीं हो सकेगा।

मुझे मालूम हुआ है कि आप पूना पहुँच गये हैं। यद्यपि मैंने स्वामीसे बात नहीं की है, लेकिन मुझे पूरा भरोसा है कि बिना किसी विशेष कठिनाईके हम यहाँ आपके लिए 'सर्वेंट् ऑफ इंडिया' की छपाई कर सकते हैं। अगर व्यवहार्य हो तो इस छोटे-से अनुरोधको अवश्य स्वीकार कीजिए। आपसे यह कहनेकी जरूरत नहीं कि इसके स्वीकार कर लिये जानेसे मुझे अतीव प्रसन्नता होगी। कारण, यद्यपि वैसे देखा जाये तो आप लोगोंकी संस्थामें मैं शामिल नहीं हूँ। लेकिन मैं भावनात्मक रूपसे तो अपने-आपको सदासे आपकी संस्थामें शामिल मानता आया हूँ — देशके लिए महत्त्वके अनेक प्रश्नोंपर मेरे और आपके बीच जो बुनियादी मतभेद हैं, उनके बावजूद भी।

हृदयसे आपका,

परममाननीय वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री
सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी
डॆकन जीमखाना पोस्ट
पूना सिटी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०९१३) की फोटो-नकलसे।

६०२. पत्र: के० टी० पॉलको[1]

साबरमती आश्रम
३० मई, १९२६

प्रिय भाई,

आपका पत्र मिला। श्री एन्ड्रयूज पिछले तीन दिनोंसे मेरे साथ हैं। हमारे बीच हुआ सारा पत्र-व्यवहार उन्होंने पढ लिया है और हम दोनो इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि निमन्त्रण अन्तिम रूपसे स्वीकार कर लिया जाये। सो मैं उसे स्वीकार करता हूँ, लेकिन बहुत सकोच-विकोचके साथ। मेरे इस संकोच-विकोचका कारण मेरे ही मनका संशय है। कह नहीं सकता कि मुझे और मेरे साथियोंको फिनलैंड ले जानेमें जो उतना सारा खर्च उठाना पड़ेगा, वह ठीक है या नहीं। लेकिन ईश्वरकी इच्छाको मनुष्य क्या जाने? और मुझे तो सिर्फ इतनी-सी बातका सन्तोष है कि मैंने किसी तरहकी उतावली नहीं की है — बल्कि अपनी ओरसे फिनलैंड जाना भी नहीं चाहा है। अब आप जैसी चाहें वैसी व्यवस्था करें।

देखता हूँ, आप वापसी टिकट लेंगे और लन्दन तथा हेलसिंगफोर्सके बीच भी आप वापसी टिकट ही लेनेकी सोच रहे हैं। लेकिन, मैं आपको बता दूँ कि अगर

१. यह पत्र शामको ३ बजे बोलकर लिखवाया गया था, लेकिन भेजा नहीं गया। सचिवकी टिप्पणीके अनुसार गांधीजीने "एकान्तमें प्रार्थना करनेके बाद अपना फैसला बदल दिया।" गांधीजीके अन्तिम उत्तरके लिए देखिए "तार: के० टी० पॉलको", ३१-५-१९२६।

मुझे यूरोपमें अन्य स्थानोंसे निमन्त्रण आयेंगें तो उन्हें स्वीकार करना न करना मैं अपनी मर्जीपर ही रखना चाहता हूँ। उस हालतमें लन्दनसे हेलसिंगफोर्सका वापसी टिकट लेना शायद ठीक नहीं होगा। वैसे मुझे रोमाँ रोलाँ साहबको देखने जेनेवा तो हर हालतमें जाना है। इसलिए जरूरी नहीं कि यूरोपमें मेरी वापसी उसी रास्तेसे हो, जिस रास्तेसे मैं कहीं जाऊँ।

जहाँतक पासपोर्टका सम्बन्ध है आप कृपया इस बातको ध्यानमें रखेंगे कि मुझे कहाँ और कब जाना होगा। इस विषयमें कोई शर्त मंजूर नहीं कीजिएगा।

आप मुझे समय-समयपर सूचित करते रहिए कि इस दिशामें आपने कहाँतक प्रगति की है। कहनेकी जरूरत नहीं कि अगर आप १५ जूनके जहाजके बजाय १ जुलाईको छूटनेवाले जहाजसे मेरे साथ चलें तो मुझे बड़ी खुशी होगी।

मैं नहीं समझता कि यूरोपमें बकरीका दूध मिलनेमें कोई कठिनाई होगी। इसके अलावा बकरीके दूधको गाढ़ा करके अथवा सुखाकर कीटाणुविहीन बनाकर भी तो रखा जा सकता है। वैसे दूधको सुखाकर रखना तो सबसे अच्छा है। यह बिलकुल पाउडर ही हो जाता है।

हृदयसे आपका,

श्री के० टी० पॉल
थोट्टम
सेलम

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११३५२) की फोटो-नकलसे।

६०३. पत्र: के० टी० पॉलको[1]

३० मई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। श्री एन्ड्रयूज पिछले तीन दिनोंसे यहीं हैं। उन्होंने आपका पत्र और हम दोनोंके बीच हुआ शेष पत्र-व्यवहार भी पढ़ लिया है। बहुत गम्भीरता-पूर्वक और प्रार्थनापूर्ण मनसे विचार करनेपर हम दोनों इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि या तो निमन्त्रण रद कर दिया जाये या फिर मैं ही फिनलैंड न जानेका फैसला कर लूँ। मुझे लगता है कि यह निमन्त्रण वास्तवमें आपकी ओरसे भेजा गया है और इसमें विश्व-समितिका तो नाम-भर है। और फिर भी, अगर मैं जाता हूँ तो यही कहा जायेगा कि मैं आपके निमन्त्रणपर नहीं, बल्कि विश्व-समितिके निमन्त्रण-पर गया। मुझे लगता है कि यह आपके लिए भी और मेरे लिए भी गलत बात

१. यह पत्र शामके चार बजे बोलकर लिखाया गया। इसपर इस प्रकार टिप्पणी है: "नहीं भेजा गया। रोक रखा गया।"

होगी — कमसे-कम मेरे लिए तो होगी ही। मैं मानता हूँ कि अगर मुझे विश्व-समिति-की ओरसे निमन्त्रित किया जाता है तो मेरी यात्राका खर्च भी उसीको उठाना चाहिए; लेकिन अभी तो स्थिति यह है कि खर्च आपको उठाना पड़ेगा। इसलिए यहाँ तो यही लगता है कि आप परिस्थितियोसे विवश हो गये हैं। अतएव, मेरी साफ सलाह है कि आप निमन्त्रणकी बात भूल जाइये और इस मामलेको बिलकुल खत्म कर दीजिए। इसलिए अगर आपको ऐसा नही लगे कि मेरे न जानेसे आपकी स्थिति अटपटी हो जायेगी या आपको परेशानी होगी तो मैं कहूँगा कि आप इस मामलेको खत्म हुआ मान लीजिए। लेकिन, अगर किसी भी तरहसे आपकी स्थिति अटपटी होती हो या आप परेशानी महसूस करते हों तो मैं खुशी-खुशी अपने निर्णयपर पुर्नविचार करूँगा। लेकिन अगर इसपर पुर्नविचार करना हो और आपके लिए सेलमसे निकल पाना सम्भव हो तो क्या यह बेहतर नही होगा कि आप आश्रम आ जायें ताकि हम लोग सारे मामलेपर पूरी तरह विचार कर सकें।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११३५३) की फोटो-नकलसे।

६०४. पत्र : ए० ए० पॉलको

साबरमती आश्रम
३० मई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। उसके साथ चीनसे आये पत्रकी एक नकल भी मिली। मेरा खयाल है कि शायद मैं आपको पहले ही बता चुका हूँ कि अगर यहाँकी परिस्थितियाँ बाधक न हुईं तो मैं अगले वर्ष चीनी मित्रोंकी इच्छाके अनुसार चीन जानेको तैयार हूँ।

हृदयसे आपका,

श्री ए० ए० पॉल
७, मिलर रोड
किलपॉक, मद्रास

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११३७२) की फोटो-नकलसे।

६०५. पत्र : ए० आई० काजीको

साबरमती आश्रम
३० मई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पिछली २४ अप्रैलका पत्र तथा उसमें उल्लिखित सभी सह-पत्र प्राप्त हुए। आपका तार भी अभी-अभी मिला है। मेरी श्री एन्ड्रयूजसे काफी देरतक बात-चीत हुई। वे इस समय भी मेरे साथ आश्रममें ही हैं। यह विजय बहुत बड़ी है, लेकिन अभी बहुत काम करना शेष है; वास्तवमें जितना-कुछ पहले हो चुका है, उससे अधिक करना बाकी है, क्योंकि अभीतक जो काम हो पाया है, वह आवश्यक विध्वंसका काम था। अब रचनात्मक कार्य शुरू कर देना चाहिए।

आपने अपने तारमें तीन मुद्दे उठाये हैं। जहाँतक मैं समझ सकता हूँ, गोलमेज परिषद्में कांग्रेस कोई सीधा हिस्सा नहीं लेगी। लेकिन कांग्रेसको अपनी बात सामने रखनी ही होगी। मेरा ख़याल है कि सम्मेलन दोनों सरकारोंके प्रतिनिधियोंके बीच होगा। लेकिन श्री एन्ड्रयूज और अन्य लोग सावधानीसे स्थितिपर निगाह रखे हुए हैं और जो-कुछ भी किया जा सकता है, अवश्य किया जायेगा। यदि वहाँ आप लोगोंकी ओरसे कोई कदम उठाना जरूरी होगा तो आपको तदनुसार लिख दिया जायेगा।

कांग्रेसका वार्षिक अधिवेशन जोहानिसबर्गमें करनेका विचार बहुत अच्छा है। आपके प्रस्तावोंका सम्बन्ध मुख्य रूपसे उन्हीं बुनियादी मुद्दोंसे होना चाहिए, जिनपर सम्मेलनको विचार करना है और प्रस्ताव बहुत सीधे-सादे होने चाहिए। आपके प्रस्तावोंमें माँगे बहुत बढ़ा-चढ़ाकर न की जायें, उनमें दृढ़ता हो, बातें संक्षेपमें और प्रभावशाली ढंगसे कही जायें और वे यथातथ्य हों।

रंग-भेद विधेयकके पेश होनेके पश्चात् मैंने उसके बारेमें अपने विचार कड़ेसे-कड़े शब्दोंमें व्यक्त किये हैं। सभी पक्षोंने कदम उठाया है। श्री एन्ड्रयूज वाइसरायसे मिल आये हैं, लेकिन मुझे तो बहुत आशंका है कि विधेयकको सम्राट्की स्वीकृति मिल जायेगी। होगा यह कि कमसे-कम अभी कुछ समयतक वह कानून वहाँ रहनेवाले भारतीयोंपर लागू नहीं किया जायेगा और यदि हम मजबूत हों, एक होकर रहें और संयत तरीकेसे काम लें तो हो सकता है कि वह उनपर कभी भी लागू न किया जाये।

हृदयसे आपका,

श्री ए० आई० काजी
अवैतनिक महामन्त्री
दक्षिण आफ्रिकी भारतीय कांग्रेस
१७५, ग्रे स्ट्रीट
डर्बन, दक्षिण आफ्रिका

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११९६०) की माइक्रोफिल्मसे।

६०६. पत्र: महादेव वी० पाण्डलोरकरको

३० मई, १९२६

जहाँतक मैं समझता हूँ परमात्मा जीवात्माका सम्बन्ध वही है जो बूँदका समुद्रसे है। और जिस तरह एक बूँदमें बिलकुल वही तत्त्व हैं, जो समुद्रमें हैं, उसी तरह जीवात्मामें भी वैसे ही तत्त्व हैं, जैसे कि परमात्मामें हैं।

मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० १९५८४) की फोटो-नकलसे।

६०७. पत्र: सी० लक्ष्मी नरसिंहन्को

[३० मई, १९२५][1]

मेरी रायमें अंडोंको शाकाहारी भोजनकी श्रेणीमें नहीं रखा जा सकता। लेकिन निश्चय ही अंडे खानेमें वैसी हिंसा नहीं है जैसी कि मांस खानेमें है।

मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० १९५८५) की फोटो-नकलसे।

६०८. पत्र: वी० एम० तारकुंडेको

साबरमती आश्रम
३० मई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैं आपकी इस बातसे पूरी तरह सहमत हूँ कि जबतक विचारोंमें भेद रहेंगे, तबतक अलग-अलग दल भी रहेंगे ही, और मैं आपकी इस बातको भी स्वीकार करता हूँ कि मतभेद भले ही हो, लेकिन ईर्ष्या और परस्पर आरोप-प्रत्यारोप नहीं होने चाहिए और प्रत्येक दलको शेष दलोंके प्रति सहिष्णु होना चाहिए।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत वी० एम० तारकुंडे
सासवड, जिला पूना

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५८३) की माइक्रोफिल्मसे।

१. सी० लक्ष्मी नरसिंहन्से प्राप्त जिस पत्र (एस० एन० १९५८५) के उत्तरमें यह भेजा गया था उसपर प्राप्त टीपके अनुसार।

६०९. पत्र : तेहमीना खम्भाताको

साबरमती आश्रम
रविवार [३०. मई, १९२६]

प्रिय बहन,

तुम्हारा पत्र मिला। मैं तीन मंजिल चढ़कर तुमसे मिलने आया, इस बातको तुमने व्यर्थ ही तूल दे दिया है। यदि हम लोग परस्पर इतना भी नहीं कर सकते तो हमारा जन्म व्यर्थ हुआ माना जायेगा। मैं तो यह चाहता हूँ कि मेरे किन्हीं शब्दोंसे भाई बहरामजीको शान्ति मिले। दुःख-सुख तो शरीरके साथ जुड़े हुए हैं। इन्हें सहन करनेमें ही हमारा मनुष्यत्व सिद्ध हो सकता है। श्रीमती एडीकी पुस्तक पढ़कर मैं अवश्य अपना अभिप्राय लिखूँगा। लेकिन मेरा आग्रह है कि इस बीच बहरामजी उचित दवाका त्याग न करें।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ४३६४) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : तेहमीना खम्भाता

६१०. पत्र : हरिलालको

साबरमती आश्रम
रविवार, ३० मई, १९२६

भाई हरिलाल,

आपके पत्रका उत्तर 'नवजीवन' में नहीं दिया जा सकता। मुझे तो ऐसा लगता है कि शिक्षा आदिमें जैसे सुधार आप चाहते हैं वैसे फिलहाल तो नहीं हो सकते। ये सब सहिष्णुताके चिह्न हो सकते हैं किन्तु सहिष्णुताके प्रेरक कारण नहीं बन सकते। फिलहाल तो अलग-अलग रहनेके बावजूद यदि हम एक-दूसरेको सहन करें तो भी काफी है। अन्तरजातीय विवाह कैसे हो सकते हैं, यह बात मेरी समझमें तो नहीं आती। एक घरमें एक शाकाहारी हो और दूसरा मांसाहारी, यह कैसे हो सकता है? ऐसे दम्पतीकी सन्तानका लालन-पालन कैसे, किस परम्पराके अनुसार होगा? ऐसे विषम मिश्रणसे इसके अलावा अन्य अनेक प्रश्न उठ खड़े होंगे। आपने जो विचार सुझाये हैं उन सब विचारोंपर फिलहाल अमल करवानेका अर्थ विरोधके एक नये कारणको जन्म देना होगा; अथवा राजनीतिक एकताको बनानेकी बातको और कठिन बनाना होगा। जब राजनीतिक ऐक्य और अन्य प्रश्नोंका परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं

है तब उनके सम्बन्धकी कल्पना करना और उन्हें राजनीतिक एकताका आधार मानना कितनी नासमझीकी बात है?

गुजराती प्रति (एस० एन० १९५८८) की माइक्रोफिल्मसे।

६११. तार: के० टी० पॉलको

३१ मई, १९२६

पॉल
थोट्टम
सेलम

आपके पत्रसे स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि निमन्त्रण औपचारिक रूपसे समितिकी तरफसे है लेकिन वास्तवमें आपकी ओरसे है। मैं इसे गलत मानता हूँ कि लोगोंको यह मालूम हो कि निमन्त्रण समितिने भेजा है। मेरी जोरदार सलाह है कि मेरी फिनलैंड-यात्राका खयाल छोड़ दीजिए। यदि मेरे इस निर्णयसे आपको परेशानीमें पड़ना पड़े या आप अटपटी स्थितिमें पड़ जाते हों तो मैं इसपर पुनः विचार करनेको तैयार हूँ। लेकिन अगर फिरसे विचार करना अपेक्षित हो तो मेरा सुझाव है कि बने तो आप सविस्तार बातचीतके लिए साबरमती आ जायें।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११३५४) की फोटो-नकलसे।

६१२. पत्र: विल्हेम वार्टेनबर्गको

साबरमती आश्रम
३१ मई, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपकी कशमकशको मैं अच्छी तरह समझता हूँ। लेकिन, मुझे इस बातमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि आपको जो अपमान सहना पड़ रहा है, वह उस हदतक और सिर्फ उसी हदतक आपके साथियोंके लिए शायद लाभदायक सिद्ध होगा, जिस हदतक वह आपको शुद्ध करता है। मेरा अप्रतिरोध एक भिन्न धरातलपर सक्रिय प्रतिरोध ही है। बुराईके अप्रतिरोधका मतलब किसी भी प्रकारका प्रतिरोध न करना नहीं है। इसका मतलब बुराईका प्रतिरोध बुराईसे नहीं बल्कि अच्छाईसे करना है। इस तरह प्रतिरोध उच्चतर धरातलपर पहुँच जाता है, जहाँ जाकर वह सोलहो आने कारगर होता है।

इसलिए पूँजीवादका विरोध पूँजीवादियोंके तरीकोंसे नहीं, बल्कि किसी अच्छे और नये तरीकेसे करना है। अगर कर्मचारीगण अपने अन्दरकी शक्तिको पहचान लें तो वे आजकी तरह सिर्फ बाहरी रूपको ही नहीं बदल देंगे बल्कि वे वास्तविक स्थितिमें भी क्रान्तिकारी परिवर्तन कर देंगे। और इस वांछनीय सुधारके लिए तो शक्ति अंदरसे ही आती है। इसके लिए किसीको इस दिशामें सबके कदम उठाने तक इन्तजार करनेकी जरूरत नहीं पड़ती। शुभारम्भ करनेवाला एक ही व्यक्ति अन्तमें इस तन्त्रको समाप्त कर देनेके लिए पर्याप्त साबित होगा। लेकिन, मैं यह बात निस्संकोच स्वीकार करूँगा कि बीचकी अवधिमें उसे सबकी नाराजगी और अलगाव या इससे भी बुरी स्थितिका सामना करना पड़ सकता है। मगर, यह सब तो लगभग हरएक सुधारकको झेलना ही पड़ता है।

हृदयसे आपका,

विलहेम वार्टेनबर्ग
हैम्बर्ग, २३
जर्मनी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १२४७१) की फोटो-नकलसे।

६१३. पत्र: दिनशा मंचरजी मुंशीको

आश्रम
१ जून, १९२६

भाईश्री ५ मुंशी

सद्गुरु मिलना उतना आसान नहीं है जितना आप समझते हैं। मैं तो सम्पूर्ण पुरुषकी शोधमें हूँ। यह सम्पूर्ण पुरुष महान् तपश्चर्याके बिना और जबतक मैं स्वयं कुछ हदतक सम्पूर्णताको प्राप्त नहीं होता तबतक नहीं मिल सकता। गुरुकी खोज करते हुए भी मनुष्य सावधान रहता है और योग्यता प्राप्त करता है। इसलिए मैं निश्चिन्त होकर अपना काम करता जा रहा हूँ। गुरुका मिलना ईश्वरका प्रसाद है। अर्थात् जब मैं लायक बनूँगा तब मुझे घर बैठे गुरु मिल जायेंगे। इस बीच अदृश्य गुरुकी वन्दना तो मैं नित्य करता ही हूँ।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९१३) की माइक्रोफिल्मसे।

६१४. पत्र : जयसुखलाल ए० गांधीको

आश्रम
१ जून, १९२६

चि० जयसुखलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। कृष्णदासके बीमार होनेके कारण उक्त पत्र मेरे हाथमें देरसे आया। बुनाईशालाकी बात समझ गया। बुनाईशाला कहाँ खोलोगे? उसपर कितना खर्च होगा? आगामी वर्षके लिए कार्यक्रमपर विचार करूँगा। मन्दिरके बारेमें तुम ऐसा तो नहीं मानते कि अन्त्यज भाई किसी भी दिन ब्राह्मणों अथवा उच्च वर्णोंकी सेवा करनेसे इनकार कर ही नहीं सकते अर्थात् हड़ताल नहीं कर सकते? इस समय तो तुमने जो सलाह दी वह ठीक ही थी। उनमें हड़ताल करनेकी शक्ति नहीं आई है। सत्याग्रह करनेके लिए मनकी जो स्वच्छता चाहिए वह नहीं आई है। लेकिन किसी दिन तो शायद उन्हें सत्याग्रह करना पड़ेगा। तुम मन्दिर आते-जाते रहना और उसकी उन्नतिमें रस लेना।

उमियाका[1] क्या हुआ? वह कहाँ है? देवदास और उसके साथी लालजी मसूरी ही जायेंगे, ऐसा लगता है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० १९९१४) की माइक्रोफिल्मसे।

६१५. पत्र : एम० आर० जयकरको

साबरमती आश्रम
२ जून, १९२६

प्रियश्री जयकर,

आपका पत्र मिला।[2] समझौतेके सम्बन्धमें मेरा मन उतना भी लिखनेको नहीं होता जितना कि लिखा है। अब आप आगे मुझे इस सम्बन्धमें कुछ और लिखते या

१. जयसुखलालकी पुत्री।

२. २८-५-१९२६ के अपने इस पत्रमें जयकरने लिखा था, "... अखबारी रिपोर्टके अनुसार अपनी भेंटवार्तामें आपने लोगोंको कांग्रेसी उम्मीदवारोंका समर्थन करनेके लिए कहा है। अनुमानतः इसका अर्थ यही है कि यह समर्थन उन्हें उनके विपक्षियोंके खिलाफ दिया जाना चाहिए। आप मुझे यह कहनेकी इजाजत देंगे कि आपका यह कथन अनेक प्रतिसहयोगियों (रेस्पॉन्सिविस्ट्स) के लिए अन्यायपूर्ण है। आप जानते हैं कि प्रतिसहयोगी हमेशा कांग्रेसी रहे हैं ... और आपके मुँहसे निकले कोई भी शब्द जिनका उद्देश्य मतदाताको प्रभावित करना हो, हानिकर सिद्ध हो सकते हैं; उनसे अगले चुनावोंका

करते नहीं पायेंगे। मेरी बीचमें पड़नेकी कोई इच्छा नहीं है; पड़ना भी होगा तो सिर्फ शान्ति स्थापित करनेके लिए ही पड़ूँगा। *यह सारा झगड़ा मेरे लिए बहुत दुःखद है।*[1]

हृदयसे आपका,

श्री एम० आर० जयकर
३९१, ठाकुरद्वारा
बम्बई–२

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११३१७) फोटो-नकलसे।

६१६. पत्र : सी० विजयराघवाचारीको

साबरमती आश्रम
२ जून, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र[2] और तार, दोनों मिले। अब मैंने 'नॉर्टन कन्वर्सेशन' ढूंढ़ लिया है। देवदासके यहाँ न होनेसे कुछ देर हो गई। अब मैं रजिस्ट्री द्वारा उसे भेज रहा हूँ।

मैं 'यंग इंडिया' कार्यालयके प्रबन्धकको भी समुचित कार्रवाई करनेको लिख रहा हूँ। पिछले अंक दे सकना कठिन है। उसमें आत्मकथा प्रकाशित हो रही है, इसलिए लगभग सब बिक चुके हैं, लेकिन उसका पहला भाग मैं एक पुस्तकके रूपमें प्रकाशित करा रहा हूँ। इसलिए यदि पुराने अंक नहीं मिल पाते, तो आपको कुछ प्रतीक्षा करनी होगी। प्रेसमें सही स्थिति क्या है, मैं नहीं जानता।

समझौता और समझौतेका अन्त[3] बीती बातें हैं। जो बीत गई, उसे भूल ही जाइए। जो भी हो, मैं तो उसकी चिन्ता नहीं करता।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सी० विजयराघवाचारी
'फेयरी फॉल्स व्यू'
कोडाइकनाल आब्जर्वेटरी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १२०५१) की फोटो-नकलसे।

स्वाभाविक प्रवाह अपने मार्गसे हट जा सकता है। . . . यदि कांग्रेसकी इन दो शाखाओंको लड़ना ही है, *जैसा कि अनिवार्य प्रतीत होता है, तो हमारा निर्णय उसे यथाशक्ति निर्दोष और शिष्टजनोचित बनानेका* ही होना चाहिए। . . .

१. स्वराज्यवादियों और प्रतिसहयोगी सहयोगियों (रेस्पॉन्सिव को-ऑपरेशनिस्ट) के बीच हुआ साबरमतीका समझौता; देखिए परिशिष्ट २।

२. तारीख ११-५-१९२६ का।

३. देखिए परिशिष्ट २।

६१७. पत्र: नाजुकलाल नन्दलाल चौकसीको

साबरमती आश्रम
बुधवार २ जून, १९२६

भाईश्री ५ नाजुकलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। मैं नहाकर वापस आया तब समाचार मिला कि तुम आकर चले गये। ज्यादा नहीं रुके, यह ठीक ही किया। मोतीको जहाँ तुम रहो वही जगह अच्छी लगती है और [तुम्हारे बिना] यहाँ अथवा कहीं भी अच्छा नहीं लगता, यह बात मुझे पसन्द है। लेकिन वह एक शर्तपर, मोती मोती न रहकर सुकन्या बन गई है तो वह उसके समान उद्यमी बने और मोतीके दानोंके समान अक्षर लिखे। ऐसा करना उसने स्वीकार तो किया ही है। तुमने फिर इंजेक्शन लेने शुरू किये हैं या नहीं? मेरी निरन्तर यही इच्छा है कि तुम्हारी तबीयत बिलकुल ठीक हो जाये।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती प्रति (एस० एन० १२१२८) की फोटो-नकलसे।

६१८. अखिल भारतीय गोरक्षा संघ

मन्त्रीने कुछ और सज्जनोंसे सूत प्राप्त होनेकी सूचना दी है। उसका ब्योरा निम्न प्रकार है:

सदस्योंके चन्दे[1]

संख्या ४,६,८,९,३२ और ३३ ने अबतक क्रमशः २२,०००, २४,०००, १२,४००, ११,०००, २४,००० और २४,००० गज सूत भेजा है।

भेंटमें प्राप्त सूत[2]

नकद चन्दे और भेंटमें कुल ६,१०० रुपये १५ आने प्राप्त हुए हैं। चन्दे और भेंटमें मिले सूतकी बिक्रीसे २६ रुपये ६ आने ६ पाई आये हैं। जो लोग भेंट स्वरूप हाथकता सूत भेजते हैं, वे इस बातकी ओर ध्यान दें कि वे सूत कातनेमें जितनी मेहनत करते हैं, अगर ज्यादा सावधानी और कुशलतापूर्वक इतनी ही मेहनत करेंगे तो उनकी भेंटकी कीमत शायद दूनी हो जायेगी। जो सूत प्राप्त हुआ है, वह बहुत लापरवाहीसे काता गया है। कुछकी तो बाजारमें कोई कीमत ही नहीं मिल सकती, क्योंकि उससे खादी नहीं बुनी जा सकती। उसका उपयोग सिर्फ रस्सी बनाने या ज्यादासे-ज्यादा

१ और २. इनके ब्योरे यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं।

दरी बनानेमें हो सकता है और इतनी लापरवाहीसे कते सूतकी कीमत तो नाममात्र-को ही मिलेगी। इसलिए जो लोग अखिल भारतीय गोरक्षा संघको चन्दे या भेंटमें सूत भेजते रहे हैं वे कृपया ध्यान रखें कि वे कताईमें जितनी लापरवाही बरतते हैं, गोरक्षामें उनका योगदान उसी हदतक कम हो जाता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३-६-१९२६

६११. कुटिल कानून

दक्षिण आफ्रिकाके रंग-भेद विधेयकपर लॉर्ड बर्कनहेडने अपनी राय जाहिर की है। उन्होंने उसे अपना आशीर्वाद दिया है। मैं तो अपनी इस रायपर अब भी कायम हूँ कि जाति-भेद कानूनके रूपमें यह उस वर्ग क्षेत्र आरक्षण विधेयक (क्लास एरियाज़ रिजर्वेशन बिल) से भी बदतर है, जिसपर कि आगामी कान्फरेन्समें विचार होनेवाला है। हो सकता है, अभी थोड़े समयतक अथवा कभी भी उसका प्रयोग एशियाइयोंके विरुद्ध न किया जाये। हो सकता है, वतनी लोगोंके विरुद्ध भी उसपर बहुत सख्तीसे अमल न किया जाये। परन्तु इस कानूनपर जो आपत्ति उठाई गई है वह उसके मूल सिद्धान्तके कारण और उसमें निहित अनिष्टकी विस्तृत सम्भावनाओंके कारण उठाई गई है। इसलिए इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है कि उससे दक्षिण आफ्रिकामें बसे भारतीयोंका मानस आन्दोलित हो उठा और श्री एन्ड्रयूजने उसके सम्बन्धमें ऐसे सख्त शब्दोंका प्रयोग किया। उस विधेयकके खिलाफ प्रवासियोंको पूरे जोर-शोरसे अपना आन्दोलन जारी रखना चाहिए और आगामी कान्फरेन्समें अपना पक्ष पेश करनेकी पूरी तैयारी करनी चाहिए। वे अपना पक्ष चाहे जैसे भी पेश करें, उसमें रंग-भेद कानूनका उल्लेख किये बिना काम नहीं चल सकता, क्योंकि इस एक विधेयकसे ही दूसरे विधेयकमें निहित नीतिका भी आभास मिलता है। रंग-भेद विधेयक वहाँके वतनियों और भारतीय प्रवासियोंके सम्बन्धमें संघ सरकारकी कुटिल नीतिका द्योतक है और वर्ग क्षेत्र आरक्षण विधेयकपर सरकारकी रंग-भेद विधेयक सम्बन्धी नीतिके प्रकाशमें ही विचार करना चाहिए। उसको मुल्तवी कर देनेके यह मानी नहीं कि उस नीतिमें कोई परिवर्तन हुआ है। अधिकसे-अधिक उसका सिर्फ यही अर्थ हो सकता है कि वह कष्ट कुछ दिनोंके लिए मुल्तवी कर दिया गया है। इसलिए इस कठिन समस्यामें जिनकी दिलचस्पी हो उन्हें चौकसीमें तनिक भी कमी नहीं करनी चाहिए। अबतक जो-कुछ किया गया सब ध्वंसात्मक था। रचनात्मक कार्य, जो ज्यादा कठिन है, अब आरम्भ हुआ है। बहुत-कुछ भारत सरकारके रवैयेपर निर्भर करेगा। जबतक वहाँ बसे भारतीय दुर्बल हैं तबतक स्थितिका नियन्त्रण भारत सरकारके हाथमें है; जब वे समर्थ हो जायेंगे तब वे अपनी किस्मत खुद ही बना सकेंगे।

लेकिन मुझे यह जानकर दुःख हुआ कि माननीय सैयद रजाअलीका यह खयाल है कि भारतमें रंगभेद विधेयकका कोई विरोध नहीं होना चाहिए। यद्यपि वे अपनी

बातके पक्षमें यह कहते हैं कि उक्त कानून भारतीयोंके खिलाफ नहीं बनाया जा रहा है, फिर भी उन्हे इस बातको तो स्वीकार करना ही पड़ता है कि इस विधेयकके अन्तर्गत संघ सरकारको ऐसी सत्ता प्राप्त होगी जिसके बलपर, यदि उसे आवश्यक मालूम हो तो, वह भारतीयोंपर भी ऐसा प्रतिबन्ध लगा सकेगी। तब उन्हें श्री एन्ड्रचूज द्वारा कानूनका विरोध करनेपर क्यों आश्चर्य होता है? सैयद साहबको यह भी मालूम होना चाहिए कि दक्षिण आफ्रिकामें बसे भारतीयोंका मानस इस विधेयकको लेकर बहुत आन्दोलित है। अभी-अभी एक तार मिला है, जिसमें दक्षिण आफ्रिकी भारतीय कांग्रेसके मन्त्री लिखते हैं:

> **विश्वास है कि आपने रंगभेद विधेयकके सम्बन्धमें कोई सख्त कदम उठाया होगा। अभीतक उसे शाही मंजूरी नहीं मिली है।**

यदि यह आशा रखी जाये कि श्री एन्ड्रचूज हम भारतीयोकी तरफसे अपनी आवाज उठायें तो निश्चित है कि वे इस अमानवीय विधेयकपर, जिसका प्रधान लक्ष्य दक्षिण आफ्रिकाके वतनी लोग हैं, आपत्ति उठायेंगे। वे एक विश्व-नागरिककी हैसियतसे हम लोगोंमें शामिल हुए हैं, हमारे किसी खास गुणके कारण नही। लेकिन यहाँ विवादका विषय उनके इस तरह बीचमें पड़नेका कारण नही है। सैयद साहबने विवादकी जो बात उठाई है वह यह है कि यहाँ भारतमें हमें उस विधेयकका विरोध करना चाहिए या नही। हम लोगोने उसका सदा ही विरोध किया है। दक्षिण आफ्रिकाके प्रवासी भारतीयोंने भी उसका विरोध किया है; और अब कान्फरेन्स करनेकी बात तय हो जानेसे हमपर कोई ऐसा बन्धन नही लग गया कि हम उसविधेयकका विरोध ही न करें। विरोध न करनेका कोई समझौता भी नही था, न हो ही सकता था। इन दो कानूनोके बीच हम भेद कर सकते हैं, जैसा कि हमने किया भी है। रंग-भेद विधेयक प्रभावके लिहाजसे हमारे लिए उतना भयकर नही है जितना कि वर्ग क्षेत्र आरक्षण विधेयक। यही कारण है कि भारतीय शिष्ट-मण्डल और भारतीय जनता, दोनोंने उसीपर अधिक जोर दिया था। परन्तु वर्ग क्षेत्र आरक्षण विधेयकके मुल्तवी कर दिये जानेसे रग-भेद विधेयकके विरोधमें हम कमी नही कर सकते।

इस चर्चाके प्रसगमें जनरल हर्टजोगकी ईमानदारी और नेकनीयती भी कोई मतलब नही रखती। जनरल हर्टजोग दक्षिण आफ्रिकाके एक-छत्र शासक नही हैं। वे उसके स्थायी प्रधान भी नही हैं। कलको वे भी अपने-आपको जनरल स्मट्सकी स्थितिमें पा सकते हैं। सरकारके लिखित इकरारको ही हम कुछ महत्त्व दे सकते हैं, यद्यपि हमने बहुत भारी कीमत चुका कर यह जाना है कि सरकारको जरूरत होगी तो वह उसे भी कूड़ेके ढेरपर फेंक देनेमें कोई संकोच नही करेगी। विधेयकका विरोध करना हमारा कर्त्तव्य है, उसका विरोध करनेसे आगामी कान्फरेन्सको कोई खतरा नही पैदा हो सकता। कान्फरेन्सके लिए शान्तिपूर्ण और अनुकूल वातावरण बनाये रखनेके हेतु हमें सिर्फ इतना ही करनेकी जरूरत है कि पहलेसे ही किसीकी सदाशयता-में शक न करें और इस कानूनके उद्देश्य हमारे लिए चाहे जितने भी दुःखद हों, हम उनकी चर्चामें अतिरंजनासे काम न लें और कड़े शब्दोका प्रयोग न करें। इससे

आगे जानेका मतलब है, स्वतन्त्र और उचित आलोचना करना तथा निर्णयके अपने अधिकारका त्याग कर देना। अगर हम अपने इस अधिकारको छोड़ देते हैं तो उसका अर्थ यह होगा कि हम ऐसा करके जिस उद्देश्यको सिद्ध करना चाहते हैं, उसकी जरूरतसे कहीं ज्यादा बड़ी कीमत चुका रहे हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३-६-१९२६

६२०. राष्ट्रीय शिक्षा[1]

एक गुजराती पत्र-लेखकने राष्ट्रीय शिक्षाके सम्बन्धमें कुछ प्रश्न उठाये हैं। उनमें से कुछ-एक प्रश्न संक्षेपमे नीचे दिये जा रहे हैं:

> चूंकि असहयोगके कुछ कट्टर समर्थकोंका अब उसमें विश्वास नहीं रह गया है और चूंकि राष्ट्रीय पाठशालाओंमें जानेवालोंकी संख्या घटती जा रही है, इसलिए इन लड़खड़ाते हुए स्कूलों और कालेजोंका अस्तित्व बनाये रखने तथा निकम्मी संस्थाओंपर लोगोंकी गाढ़ी कमाईके पैसे बरबाद करनेसे क्या लाभ है?

मेरे श्रद्धालु मनको इस तर्कमे एक दोष दिखाई देता है। चूंकि असहयोगमें मेरा विश्वास सदाकी भाँति दृढ़ है, इसलिए मेरे लिए तो इन मौजूदा राष्ट्रीय संस्थाओंमें तब भी संतोषका आधार ढूंढ सकना सम्भव है जब इनमें पढ़नेवाले विद्यार्थियोंकी संख्या घटकर केवल आधा दर्जन रह जाये। कारण, वे आधे दर्जन विद्यार्थी ही स्वराज्यके निर्माता होंगे; उसका प्रादुर्भाव चाहे जब भी हो। जब कतिपय धार्मिक कृत्योंके सम्पादनके लिए कुमारिकाओंकी आवश्यकता पड़ती है, तब यदि कोई कुमारिका न मिल सके तो उसके स्थानपर किसी अन्यको स्वीकार नहीं किया जाता है। और यदि एक ही कुमारी मिल जाती है तो काम चला लिया जाता है। इसी तरह स्वराज्यका झंडा गाड़नेका काम भी होगा। वह झंडा उन्ही लोगोंके निष्कलुष हाथोंसे लहराया जायेगा, जो अपने मूल सिद्धान्तके प्रति सच्चे रहेंगे, भले ही ऐसे लोग बहुत थोड़े क्यों न हों।

इसलिए राष्ट्रीय पाठशालाओंको चालू रखना मैं पैसेकी बरबादी नहीं मानता। ऐसी जितनी पाठशालाएँ हैं, समझिए कि रेगिस्तानमें उतने ही नखलिस्तान हैं। वे स्वतन्त्रताके लिए प्यासी आत्माओंको जीवनामृत देती हैं। ऐसा लिखकर मैं उन लोगोंकी कोई निन्दा नहीं कर रहा हूँ जो सरकारी स्कूलोंमें पढ़ते या किसी भी प्रकारसे उनका समर्थन करते हैं। वे चाहें तो ऐसा मत रखनेका उन्हें हक है कि जिस रास्तेपर वे चल रहे हैं, स्वतन्त्रता प्राप्त करनेका एकमात्र रास्ता वही है या

१. देखिए "असहयोग और राष्ट्रीय शिक्षा", ३०-५-१९२६ भी।

वह भी स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके अनेक मार्गोंमें से एक है। ये राष्ट्रीय संस्थाएँ उन लोगोंके लिए हैं जिनकी स्वतन्त्रताकी प्यास सरकारी संरक्षण या उसके प्रबन्धमें चलनेवाले स्कूलोंसे तृप्त नहीं होती। ऐसी पाठशालाएँ भले ही बहुत कम हों, भले ही वे नगण्य-सी जान पड़ती हों, परन्तु वे एक ऐसी आवश्यकताकी पूर्ति करती हैं जिसे लोग महसूस करते हैं और जैसा कि असहयोगियोंको लगता है, उनमें सच्ची और स्थायी स्वतन्त्रताके बीज मौजूद हैं।

इन पाठशालाओंकी अन्तिम सफलता शिक्षकोंकी योग्यतापर निर्भर करती है। इसपर आलोचक कहता है, 'लेकिन वे तो राष्ट्रीय स्कूलों और कालेजोंको छोड़ रहे हैं।' हाँ, यह सच है कि कुछ लोग छोड़ रहे हैं लेकिन उनके छोड़नेसे शेष लोगोंके विश्वासकी परीक्षा होती है। क्या उनमें अकेले डटे रहनेका साहस है? जो राष्ट्रीय पाठशालाएँ शेष हैं, उनको सहायता देनेके लिए क्या काफी धनवान लोग हैं? इन प्रश्नोंके सही जवाबपर ही राष्ट्रीय पाठशालाओंका भविष्य और उनके साथ ही देशकी स्वतन्त्रताका भविष्य भी निर्भर करता है और जहाँतक मैं समझ पाता हूँ, ऐसे काफी शिक्षक हैं जो कठिनसे-कठिन कसौटीपर खरे उतर सकते हैं और उन्हें मदद देनेवाले धनवान लोग भी काफी संख्यामें मौजूद हैं। मेरे जानते तो कोई भी ऐसी संस्था धनके अभावमें बन्द नहीं हुई है। संस्थाएँ हमेशा मनुष्योंकी खामियोंके कारण अर्थात् ईमानदारी, योग्यता, आत्मत्यागके अभावके कारण बन्द होती हैं। और यह मैं निश्चित रूपसे जानता हूँ कि जहाँ शिक्षक हैं, वहाँ शिष्योंकी कमी नहीं है।

लेकिन शिष्योंके कन्धोंपर शायद सबसे ज्यादा जिम्मेदारी है। उनकी योग्यता, सच्चरित्रता, लगन और देशभक्तिपर ही भविष्य निर्भर करता है। शिष्योंमें जो गुण हों उन्हें निखारनेमें शिक्षक मदद दे सकते हैं। यदि बात इससे भिन्न होती, यदि शिक्षक अपने शिष्योंमें कुछ गुणोंका समावेश कर सकते होते तो उनसे शिक्षा पानेवाले सभी शिष्य एक-जैसे होते, जबकि हम जानते हैं कि वास्तवमें आजतक कोई भी दो शिष्य बिलकुल एक-जैसे नहीं हुए हैं। इसलिए शिष्योंमें पहल करनेकी क्षमता होनी चाहिए। उन्हें महज नकलची बनकर न रह जाना चाहिए। उन्हें स्वयं विचार करना और आगे बढ़कर काम करना सीखना चाहिए और फिर भी सर्वथा आज्ञाकारी और अनुशासित बने रहना चाहिए। सबसे ऊँची किस्मकी स्वतन्त्रताका मतलब है सबसे अधिक अनुशासन और विनम्रता। अनुशासन और विनम्रतासे उत्पन्न स्वतन्त्रताको तो मान्य करना ही पड़ता है। किन्तु संयमहीन स्वेच्छाचारिता, उद्दण्डता और अभद्रताकी निशानी है, जो खुद वैसे स्वेच्छाचारी व्यक्तिके लिए भी घातक है और उसके पड़ोसियोंके लिए भी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३-६-१९२६

६२१. टिप्पणियाँ

भारत सेवक समाज

भारत-सेवक-समाज (सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी) की तरफसे मुझे प्रकाशनार्थ निम्नलिखित समाचार भेजा गया है:[1]

मुझे इसमें जरा भी सन्देह नहीं है कि ग्राहकगण दोनों पत्रिकाओंके प्रकाशनमें जो अनिवार्य बाधा उपस्थित हुई है, उसे अवश्य क्षमा कर देंगे, इतना ही नहीं, वे दोनों प्रेसोंके नष्ट हो जानेसे समाज अथवा यों कहिए कि जन-समाजको, जो हानि हुई है, उसमें उसको ग्राहकोंकी और मेरे जैसे असंख्य मित्रोंकी सम्पूर्ण सहानुभूति भी प्राप्त होगी। मुझे आशा है कि 'सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया' और 'ज्ञानप्रकाश' का प्रकाशन शीघ्र ही फिरसे आरम्भ हो जायेगा।

देशभक्ति बनाम पूंजीवाद

ये दोनों चीजें वास्तवमें परस्पर विरोधी हैं या अबतक रही हैं। लेकिन पूंजी —पूंजीवादसे और पूंजीपति—इन दोनोंसे बिलकुल भिन्न है। पूंजी तो हर आर्थिक उपक्रमके लिए जरूरी है, श्रमको भी एक प्रकारकी पूंजी ही कहा जा सकता है। लेकिन अगर हम पूंजीको पैसेके संकुचित अर्थमें लें तो भी श्रमके विनियोगके लिए कुछ-न-कुछ, चाहे वह कितना ही कम हो, पूंजीकी जरूरत होती ही है। इसलिए पूंजी और देशभक्तिमें कोई विरोध नहीं है। कोई पूंजीपति देशभक्त हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता। बिहारकी सहकारी समितियोंके रजिस्ट्रार खान बहादुर मोहिउद्दीन अहमदने पूंजीपतियोंके लिए देशभक्तिका एक रास्ता बताया है। 'टाइम्स ऑफ इंडिया' में एक समाचार छपा है कि:

> मोतीहारी सेन्ट्रल को-ऑपरेटिव बंकके भवनके उद्घाटन समारोहके अवसरपर खान बहादुरने हानिकर और लाभदायक पूंजीवादका भेद बताया। उनका सुझाव था कि औद्योगिक उपक्रमोंको दो वर्गोंमें बाँट देना चाहिए—एकका काम तो पूंजीपति करें और दूसरेका काम भारतकी ९० प्रतिशत आबादीके लाभके लिए सहकारिताकी पद्धतिसे किया जाये। कृषि उत्पादनों, जैसे रुई, ईख, तिलहन, गेहूं आदिपर आधारित हर उद्योग सहकारिताके आधारपर चलाया जाये ताकि इन चीजोंके उत्पादकोंको अपनी उपजका अधिकसे-अधिक लाभ मिल सके। खनिज पदार्थ और लोहेसे सम्बन्धित समस्त उद्योग तथा चमड़ा-उद्योग

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इसमें ज्ञानप्रकाश और सर्वेन्ट ऑफ इंडियाके पाठकोंको उस अग्निकाण्डकी सूचना दी गई थी, जिसमें आर्यभूषण प्रेस जल गया था। ये दोनों पत्रिकाएँ उसीमें छपती थीं, इसलिए कुछ दिनोंके लिए इनका प्रकाशन बन्द कर देना पड़ा था।

और ऐसे ही दूसरे उद्योग, जिनके द्वारा कृषकोंका शोषण नहीं किया जाता, पूँजीपतियोंके जिम्मे छोड़ देने चाहिए, ताकि वे भी अपनी पूँजीका उपयोग कृषकोंका शोषण और इस तरह भारतकी सम्पत्तिके असली स्रोतको ही तबाह कर देनेके लिए नहीं बल्कि देशकी सम्पत्तिको बढ़ानेके लिए कर सकें।

अगर पूँजीपति खान बहादुरका सुझाव मानकर चलें और अपनी पूँजीका उपयोग ऐसे प्रयोजनोंके लिए करें जो उनके और सर्वसाधारणके लिए भी लाभप्रद हों तो भारतकी गरीबी तुरन्त दूर हो जाये। खान बहादुरके विचारसे :

> जूटकी मिलें, चीनीकी मिलें, रुईकी मिलें — ये सबकी-सब कृषकोंके शोषणके लिए हैं और अन्तमें इन शोषित लोगोंको कारखानोंमें गुलामोंकी तरह काम करनेको मजबूर होना पड़ता है। विश्व-युद्धके दौरान जब जूटका निर्यात बन्द हो गया था तब जूटमिलोंके मालिकोंने जूट पैदा करनेवालोंका कोई खयाल नहीं किया। . . . इस शोषणका नतीजा यह हुआ कि जूट पैदा करनेवाले लोग गरीब हो गये और जूट मिलोंके मालिकोंने शत-प्रतिशत लाभांश कमाया।

साधन जुटानेकी चतुराई

सत्याग्रह आश्रमके प्रबन्धकने मुझे बताया है कि उनके पास जितनी तकलियोंकी माँग आई है, उतनी तकलियाँ तैयार करवाना उनके लिए कठिन है। इतने सारे लोग तकलियाँ चाहते हैं, यह एक शुभ लक्षण है। लेकिन, अगर कताई एक कला है, और वास्तवमें वह कला है भी, तो इससे लोगोंमें मौका पड़नेपर अपनी जरूरतकी चीजें खुद ही तैयार कर लेने और जुटा लेनेकी चतुराई उभरनी चाहिए। कताईका महत्त्व इसी बातमें निहित है कि इसके लिए केन्द्रसे कोई सहायता न ली जाये। अखिल भारतीय चरखा संघका इरादा यथासम्भव जल्दीसे-जल्दी हर चीजका विकेन्द्रीकरण कर देनेका है। आश्रममें तकलियाँ उन लोगोंके लिए तैयार की जा रही हैं, जिन्हें इस दिशामें प्रवृत्त करनेके लिए कुछ प्रेरणा-प्रोत्साहन देनेकी जरूरत है। लेकिन यह तो ऐसा यन्त्र है जिसे हर व्यक्ति खुद ही बना सकता है और उसे बनाना भी चाहिए। सूखे बाँसका एक छोटा-सा टुकड़ा, टूटी स्लेटका एक टुकड़ा, एक चाकू, एक छोटी-सी हथौड़ी, एक छोटी-सी रेती और सम्भव हो तो एक कम्पास — एक पैसेमें अव्वल दर्जेकी एक तकली बनानेके लिए बस इतनी-सी ही चीजोंकी जरूरत है। बाँसकी तकली आधे घंटेके भीतर बनाई जा सकती है और वह उतना ही अच्छा काम करती है जितना कि इस्पातकी तकली। जो लोग कताई-कलापर अधिकार पाना चाहते हैं उन्हें चतुराईसे काम लेना चाहिए। हमें याद रखना चाहिए कि कताई गरीबोंकी कला है। वह उनके लिए सन्तोष और सान्त्वनाका आधार है। इस कलाके साधन भी गरीबसे-गरीब लोगोंके लिए सहज-सुलभ होने चाहिए। इसलिए हर लड़के और लड़कीको खुद ही तकली बनाना सिखाया जाये। उन्हे अपने लिए तकली बनानेमें आनन्दका अनुभव होगा और अपनी बनाई तकलियोंपर कातनेसे उन्हें कताईमें भी पहलेकी अपेक्षा अधिक आनन्द प्राप्त होगा।

अच्छा भी और बुरा भी

बरहमपुर नगर परिषद् (म्युनिसिपल कौंसिल) के उपाध्यक्ष अखिल भारतीय चरखा संघको अपने पत्रमें लिखते हैं :

> **सिर्फ लड़कोंकी पाठशालाओंमें ५४ चरखे दाखिल किये गये हैं। प्रतिमास दस तोले सूत काता जाता है। कताई-शिक्षकको १५ रुपये मासिक वेतन दिया जाता है। हरएक पाठशालामें प्रतिदिन ४० मिनट की एक कक्षा कताईके लिए निर्धारित है।**

बरहमपुर नगर परिषद्के अधीन चलनेवाली लड़कोंकी पाठशालाओंमें चरखेको स्थान मिला है, इस दृष्टिसे तो यह बात बहुत अच्छी है, परन्तु इस मानीमें बुरी है कि इतने चरखे होनेपर भी इतना कम सूत काता जाता है। कोई भी लड़का आधे घंटेमें आसानीसे १० अंकका आधा तोला सूत कात सकता है। इसका मतलब यह हुआ कि ५४ चरखोंपर प्रतिदिन २७ तोले सूत तैयार हो सकता है। अगर महीनेमें २५ कार्य-दिवस माने जायें तो इस हिसाबसे एक महीनेमें ६७५ तोले सूत तैयार होगा। वह कताई-शिक्षक, जो ५४ चरखोंसे प्रतिमास १० तोले सूत पाकर ही सन्तोष मान लेता है, राष्ट्रीय धनमें से प्रतिमास १५ रुपये पानेके योग्य नहीं है। मैं यह आशा करता हूँ कि जो आँकड़े भेजे गये हैं उनमें कहीं भूल है। क्योंकि एक चरखेके लिए भी तो १० तोला सूत बहुत ही कम मिकदार है। चरखे कोई शोभाके साधन तो हैं नहीं। वे तो धनोत्पादक यन्त्र हैं। और यह काम उनके मालिकोंका है कि उन्हें बेकार न पड़े रहने दें। हरएक कताई-शिक्षकको इसे अपने सम्मानका प्रश्न समझना चाहिए कि जितना वेतन उसे दिया जाता है, उसके मुकाबलेमें वह काफी सूत तैयार करा सके। और उस अवस्थामें जब उसके पास एक बड़ी कक्षा हो और लड़कोंके लिए रुई धुनने और पूनियाँ बनानेमें उसे कोई आपत्ति न हो तो वह ऐसा आसानीसे कर सकता है। कताईकी कलामें लड़कोंकी दिलचस्पी बढ़ानेका और उन्हें उसकी शिक्षा देनेका यही उत्तम मार्ग है। स्मरण रहे कि कताईमें धुनने और ओटनेका काम भी शामिल होता है और बुनाई तथा ओटाई इस कलाकी ऐसी प्रक्रियाएँ हैं जिनसे एक दिनमें कताईकी बनिस्बत अधिक आमदनी होती है।

अप्रैलके आँकड़े

अप्रैल महीनेमें खादीकी उत्पत्ति और बिक्रीके आँकड़े नीचे दिये जा रहे हैं :[1]

आन्ध्रके आँकड़े अपूर्ण हैं और कुछ अंशोंमें कर्नाटकके आँकड़े भी। बम्बईके आँकड़ोंमें अखिल भारतीय खादी भण्डार, चरखा संघ भण्डार और सैंडहर्स्ट रोडकी खादीकी दूकानके ही अंक शामिल हैं। कितना अच्छा हो कि हम सभी प्रान्तोंके पूरे आँकड़े दे सकें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३-६-१९२६

१. ये यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं।

६२२. पत्र : मोतीलाल नेहरूको[1]

साबरमती आश्रम
३ जून, १९२६

प्रिय मोतीलालजी,

आपके पत्रकी एक नकल मैंने विट्ठलभाईको भेज दी थी। उनके उत्तरकी[2] भी एक प्रति इस पत्रके साथ भेजी जा रही है।

आशा है, मसूरीमें रहनेसे आपको लाभ हो रहा है।

हृदयसे आपका,

सहपत्र – १
पण्डित मोतीलालजी नेहरू
मसूरी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११३१८) की फोटो-नकलसे।

६२३. पत्र : वी० जे० पटेलको

साबरमती आश्रम
३ जून, १९२६

प्रिय विट्ठलभाई,

आपका पत्र मिला। मैं आपके पत्रकी एक नकल फिर मोतीलालजीको भेज रहा हूँ। अखबारोंमें आपके इस दानकी सूचना प्रकाशित करनेसे पहले मैं अपने मनमें यह स्पष्ट कर लेना चाहता हूँ कि इसके सम्बन्धमें क्या करना है।

देवदाससे मैंने कह दिया है कि वह अपना काम जैसा ठीक समझे, उस तरह करे। मेरा खयाल है, आज अस्पतालसे उसे शायद छुट्टी मिल जायेगी। फिर सम्भावना यह है कि वह जमनालालजीके पास मसूरी चला जायेगा। मैं समझता हूँ शिमलाका वातावरण उसे रास नहीं आ रहा है।

१. मोतीलाल नेहरूके २२-५-१९२६ के पत्र (एस० एन० ११३१३) के जवाबमें।
२. तारीख १-६-१९२६ का पत्र (एस० एन० ११३१६)।

अब यह लगभग निश्चित दीख रहा है कि मैं फिनलैंड नहीं जाऊँगा।
शेष फिर।

हृदयसे आपका,

माननीय वी० जे० पटेल
सुखडेल
शिमला

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११३१९) की फोटो-नकलसे।

६२४. पत्र : उर्मिलादेवीको

साबरमती आश्रम
३ जून, १९२६

प्रिय बहन,

आपने मुझे बड़ा विषादपूर्ण पत्र लिखा है। जो भी हो, मुझे खुशी है कि आपकी बीमार बहनका देहावसान हो गया। अपने जीवनके अन्तिम कुछ महीने उन्हें अवश्य ही बड़ा कष्ट सहना पड़ा होगा। लेकिन परिवारके शेष लोगोंके बारेमें आपने मुझे जो समाचार दिया है, उससे मुझे बहुत दुःख हुआ है। सचमुच मेरी कामना है कि श्री दास[1] इंग्लैंड जाकर वहाँ काफी समयतक विश्राम करें। मैं बासन्ती देवी और श्री दासको भी लिख रहा हूँ। भास्करका क्या हाल है? भोंवल कैसा चल रहा है? ईश्वर आपके मनको शान्ति दे, जिसकी आज इन परेशानियों और चिन्ताओंके समय आपको सख्त जरूरत है। मुझे समय-समयपर हालचाल लिखती रहिए।

९९ फीसदी तो यही दीखता है कि मैं फिनलैंड नहीं जा रहा हूँ। शायद आपको मालूम होगा कि देवदासका अपेंडिसाइटिसका ऑपरेशन हुआ था। वह अब लगभग ठीक है। शायद आज उसे अस्पतालसे छुट्टी मिल जायेगी। वह स्वास्थ्यलाभके लिए मसूरी जायेगा। जमनालालजी मसूरीमें ही हैं। वह वहाँ उन्हींके साथ रहेगा। अस्पताल कैसा चल रहा है?

श्रीमती उर्मिला देवी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५९१) की फोटो-नकलसे।

१. न्यायमूर्ति पी० आर० दास।

६२५. पत्र: न्यायमूर्ति पी० आर० दासको

साबरमती आश्रम
३ जून, १९२६

प्रिय मित्र,

उर्मिला देवीके पत्रसे मालूम हुआ कि आपको दिलका बहुत गम्भीर दौरा पड़ा था। इस समाचारसे मन बड़ा व्यथित हुआ। लेकिन, मुझे उम्मीद है कि बुरी घड़ी निकल गई है और अब आप ठीक हो गये हैं। उर्मिलादेवीने लिखा है कि आपको इंग्लैंड जाकर कुछ दिन आराम करनेकी सख्त हिदायत दी गई है। आप चाहें इंग्लैंड या कहीं अन्यत्र जायें अथवा न जायें, मुझे पूरी उम्मीद है कि आप काफी दिन आराम करेंगे और अपने-आपको हर तरहकी चिन्ता और भारसे मुक्त रखेंगे।

हृदयसे आपका,

न्यायमूर्ति पी० आर० दास
पटना

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५८७) की फोटो-नकलसे।

६२६. पत्र: बासन्ती देवीको

साबरमती आश्रम
३ जून, १९२६

प्रिय बहन,

उर्मिला देवीने तो मुझे दुःख-ही-दुःखका संवाद दिया है। उन्होंने लिखा है कि न्यायमूर्ति दासको दिलका बहुत गम्भीर दौरा पड़ा था, मणि अस्वस्थ है और उसकी शक्ति क्षीण होती जा रही है तथा भास्कर तो खतरनाक रूपसे बीमार है। आपको यह बतानेकी जरूरत नहीं कि आपके साथ मेरी पूरी सहानुभूति है। भास्करको क्या हुआ है? दो पंक्ति अवश्य लिख भेजें।

और खुद आप ठीक-ठीक तो हैं? भोंवलका सारा हाल लिखेंगी। बेबी तो वहीं होगी। आशा है उसकी मानसिक दृढ़ता कायम है।

श्रीमती बासन्ती देवी
चित्तरंजन एवेन्यू
पुरुलिया (बिहार)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५८९) की फोटो-नकलसे।

६२७. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

सबरमती आश्रम
३ जून, १९२६

प्रिय सतीशबाबू,

खेड़ा, कच्छके निवासी श्री मुहम्मद हुसन चमनका इस आशयका पत्र आया है कि उन्होंने कुछ समय पहले आपसे निवेदन किया था कि उन्हें 'प्रतिष्ठान' का सफरी चरखा वी० पी० से भेज दिया जाये। चरखा उन्हें अभीतक नहीं मिला है। क्या आप इस ओर ध्यान देंगे? यदि आपको उनका पत्र न मिल सके तो आप मेरी इस चिट्ठीको ही उनका प्रार्थनापत्र मानकर उन्हें चरखा भेज सकते हैं। मैंने उनका जितना पता दिया है, उतना पर्याप्त मानिएगा।

श्री बिड़लाके साथ आपकी वार्ताका अन्तिम परिणाम क्या निकला सो मुझे यथा समय सूचित कीजिएगा।

आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५९०) की माइक्रोफिल्मसे।

६२८. पत्र : ब्रजकृष्ण चांदीवालाको

साबरमती आश्रम,
३ जून, १९२६

भाई ब्रजकृष्ण,

तुम्हारा खत आज मिला। मुझको तो दुःख और आश्चर्य हुआ। देवदासके बारेमें तुम्हारा एक पत्र और तार था। तारका उत्तर तारसे ही दिया गया था, और देवदासके हालकी खबर देनेका मैंने महादेवसे कह दिया था। इससे अलावा कोई पत्रका मुझको स्मरण नहीं है। न तुम्हारे किसी कार्यसे मुझको अप्रसन्नता हुई है। इसका कुछ कारण तो होना चाहिए? ऐसा कोई कारण तुमने नहीं दिया है। मैंने तुमको कह दिया है और दुबारा कहता हूँ, जब दिल चाहे तब आश्रममें आ जाना।

देवदासको आजकलमें अस्पतालसे छुट्टी मिलेगी। वह सीधा मसुरी चला जायगा। मसुरी जाते हुए अगर तुम वहां होगे तो भेंट हो जायगी। क्योंकि वह अवश्य तुमको खबर दे देगा। परंतु देवदासको देखनेके खातर यहाँ आनेमें विलंब करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। मेरा फिनलैंड जानेका फीसदी ९९ हिस्सा मोकूफ रहा है।

बापूके आशीर्वाद

मूल पत्र (जी० एन० २३५२) की फोटो-नकलसे।

६२९. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

३ जून, १९२६

मैंने फिनलैंड जानेका नहीं, न जानेका ही निश्चय किया है। एक ही रास्ता खुला रखा है और वह यह कि यदि मेरे न जानेसे आमन्त्रण देनेवालेकी[1] स्थिति किसी तरह विषम होती हो तो मैं चला जाऊँगा। लेकिन इस तरहसे विषम स्थिति उत्पन्न होनेका मैं कोई कारण नहीं देखता। इसलिए ऐसा ही समझना कि जाना नहीं ही होगा।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी

६३०. पत्र : जयन्तीलालको

साबरमती आश्रम
गुरुवार, ३ जून, १९२६

भाईश्री ५ जयन्तीलाल,

आपका पत्र मिला। यदि आप प्रेम-विवाहका कोई विरोधी अर्थ करते हो तो मैं नहीं जानता। लेकिन यदि कोई स्त्री और पुरुष एक-दूसरेके परिचयमें पवित्रतापूर्वक रहे हों और फिर एक-दूसरेके साथ विवाह करनेकी इच्छा करें तथा इस विवाहसे कोई मर्यादा भंग न होती हो तो इस विवाहको मैं इष्ट मानता हूँ। यदि सचमुच प्रेम-विवाह हुआ तो एककी मृत्युके बाद दूसरेके मनमें दूसरा विवाह करनेका विचार कैसे उत्पन्न हो सकता है, यह बात मैं नहीं समझ सकता। यदि विधवा अक्षतयोनि हो और विवाह करना चाहे तो मैं मानता हूँ कि हमें उसका विरोध नहीं करना चाहिए। चार वर्णोंके मिश्रणको मैं अनावश्यक और अनिष्ट मानता हूँ; और इसी प्रकार सगोत्र विवाहको भी अनावश्यक और अनिष्ट मानता हूँ। सिद्धान्त यह है कि विवाहके बारेमें जितनी मर्यादा रखें उतनी कम है।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९५९२) की फोटो-नकलसे।

१. के० टी० पॉल।

६३१. पत्र: वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको

साबरमती आश्रम
४ जून, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। श्री केलकरने 'केसरी' और 'मराठा' प्रेसका उपयोग करनेका प्रस्ताव रखा है, यह सचमुच उनकी नेकी और उदारता है। आप किसीसे कह दीजिएगा कि आप कोषके लिए जो भी अपील करें, उसे वह मेरे पास भेज दे। उसके सम्बन्धमें मैं जो-कुछ भी कर पाऊँगा, कर्त्तव्य मानकर करूँगा।

हृदयसे आपका,

माननीय वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री
सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी
डेकन जीमखाना पोस्ट
पूना सिटी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १२०५२) की फोटो-नकलसे।

६३२. पत्र: एच० एस० एल० पोलकको

साबरमती आश्रम
४ जून, १९२६

प्रिय हेनरी,

तुम्हारे दोनों पत्र मिले। तुमने मुझे परिवारका समाचार तो भरपूर दे डाला है। और यह मुझे अच्छा भी लगा, यद्यपि पूरा समाचार बीमारियोंसे ही सम्बन्धित है। मॉडकी बीमारीके बारेमें तो मुझे खुद उसके और मेटरके पत्रसे पूरी जानकारी मिल गयी थी। आशा है, अब वे दोनों अच्छी और स्वस्थ होंगी। मिली तो अपने साहसके बलपर ही टिकी हुई है और मैं जानता हूँ कि उसका साहस भविष्यमें अनेक वर्षोंतक ऐसी कठिन घड़ियोंमें उसे सहारा देता रहेगा। वाल्डोसे कहना कि वह मुझे ज्यादा दिनोंतक अन्देशेमें न रखे और यदि उसे लम्बा पत्र लिखनेका समय न मिल पाता हो तो कुछ-न-कुछ समय तो निकालना ही चाहिए। वह मुझे ऐसा अजनबी मानकर न लिखे जिसे सिर्फ नामसे ही जानता हो बल्कि उसे मुझको यह समझकर लिखना चाहिए कि मैं उसका एक पुराना मित्र और साथी हूँ। उसकी परीक्षा-सम्बन्धी उलझनें मेरी समझमें नहीं आतीं। लेकिन मैं इतना जानता हूँ कि वह परीक्षामें बहुत अच्छा करेगा, क्योंकि आखिर वह बेटा तो तुम्हारा ही है।

लगता है देवदासको मॉडसे ईर्ष्या होने लगी थी; इसीलिए तो उसने भी अपेंडिसाइटिसकी बला मोल ले ली। अभी कुछ दिन पहले उसका ऑपरेशन हुआ और कल अस्पतालसे अच्छा होकर बाहर आ गया है। कुमारी स्लेड, जिन्हे मीराबाई भी कहते हैं इस गर्म मौसमको बहुत ही अच्छी तरह झेल रही हे। वे वहुत अच्छा कातने लगी हैं। अपनी जरूरतकी रुई वे खुद धुन लेती हैं। एन्ड्रयूज पिछले पाँच-छः दिनोंसे यहाँ हमारे साथ ही हैं। कल शायद वे कोटगढ़के लिए रवाना होंगे। वहाँ उन्हें, स्टोक्ससे मिलना है। रामदास खादीकी फेरी लगाता है और ऐसा लगता है, उसे यह काम रुचता भी है।

तुम्हारा 'भगवद्गीता'के अनुवादोंका संग्रह मिला। बडी प्रसन्नता हुई। इस सग्रहके बारेमें तुम्हारी हिदायतोंको मैंने ध्यानमें रख लिया है। म उस प्रतिको ताले-चाबीमें रखता हूँ। उसकी नकल तैयार होते ही मैं तुम्हें तुम्हारी प्रतिलिपि रजिस्ट्रीसे वापस भेज दूँगा।

लगभग निश्चित-सा दीखता है कि मैं फिनलैंड नही जा रहा हूँ। लेकिन यदि गया और लन्दन भी आया तो स्वाभाविक ही मैं तुम्हारे यहीं ठहरूँगा। हाँ, यदि तुम सार्वजनिक या अन्य कारणोंसे चाहोगे कि मैं कही और ठहरूँ, तो बात दूसरी है।

हृदयसे तुम्हारा,

श्री हेनरी एस० एल० पोलक
४२, ४७ व ४८ डेन्स इन हाउस
२६५, स्ट्रैन्ड
लन्दन, डब्ल्यू० सी० २

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५९३) की फोटो-नकलसे।

६३३. पत्र : एस० शंकरको

साबरमती आश्रम
४ जून, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। जहाँतक स्वास्थ्यके लिए हानिकर न हो उस सीमातक अपनी आवश्यकताओंको घटाकर आप अपना जीवन सादा वना सकते है। आप अपनी पोशाकमें सादगी ला सकते हैं। आप जल्दी सोने, सुबह चार बजे उठने और बिस्तरमें जानेके ठीक पहले और बिस्तर छोड़नेके ठीक बाद प्रार्थना करनेकी आदत डाल सकते है। आप प्रतिदिन नियमित रूपसे कमसे-कम आधा घंटा सूत कात सकते हैं। हिन्दी और संस्कृतका अध्ययन कीजिए और स्वस्थ साहित्य पढिए। सूत कातनेमें

रुई ओटना और बुनना भी शामिल है। आप तथाकथित अस्पृश्योंके हितैषी भी बन सकते हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एस० शंकर
नं० ३, टॉप फ्लोर
नारायण बिल्डिंग
निआगाम रोड
दादर, बम्बई नं० १४

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५९४) की माइक्रोफिल्मसे।

६३४. पत्र : नमुदुरी वेंकटरावको

साबरमती आश्रम
४ जून, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपकी भारी क्षतिका समाचार पाकर बड़ा दुःख हुआ। मेरा निश्चित मत है कि आपको किसी भी अवस्थामें पुनर्विवाह करनेकी बात नहीं सोचनी चाहिए। और अगर आप अपने संकल्पपर दृढ़ रहेंगे तो ईश्वर आपको ऐसी शक्ति देगा जिससे आप पुनर्विवाह करनेके किसी भी प्रलोभनके वशीभूत नहीं होंगे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत नमुदुरी वेंकटराव
भटनाविल्ली
अमलापुरम् तालुक
जिला गोदावरी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५९५) की माइक्रोफिल्मसे।

६३५. पत्र: एक मुस्लिम नेताको

साबरमती आश्रम
४ जून, १९२६

भाई साहब,

आपको कई दिनोंसे खत लिखनेकी पैरवी कर रहा हूँ। अंग्रेजी जबानमें लिखनेका दिल नहीं चाहता था, न अब चाहता है। खत लंबा लिखना था। उर्दू हरफोमें इतना लंबा खत लिखना मेरे लिये दुश्वार है, अब मैं एक आश्रमवासीके मार्फत उर्दू हर्फोंमें लिखवाकर मेरा खत भेजता हूँ। भाई एण्ड्र्यूजने आपका पैगाम दिया है। मैं तो उसके आनेके पहले जब अली भाई मक्का शरीफ गये तबसे लिखना चाह रहा हूं। हिन्दू मुस्लीम मामलेमें मैंने जानबूझकर कुछ भी नहिं लिखा है। मैं क्या लिखूं? और मेरे गमका बयान किसको सुनाऊं? मेरा असर लड़नेवालोंपर कुछ भी नही है, यह मैं अच्छी तरहसे जानता हू। आपके दर्दकी बात मुझे भाई शौकतअलीने और मनजर अलीने बहुत सुनाई है। और मेरी खामोशीसे आपको कुछ दर्द हुआ है, वह भी मुझको समझाया गया है। जब मैं सुलह करानेमें लाचार बन गया हूं तब मैं कैसे कुछ भी लिख सकता हू? अखबारोमें जो हकीकतें आती हैं उसपर मेरा इतबार नहीं जमता है। मालवीयजी वगैरे मुसलमानोके दुश्मन हैं ऐसी राय मैं जाहिर करूं ऐसा मुझको कहा गया है और हिन्दुओके तरफसे मुसलमान भाइयोके लिये वैसा ही लिखूं ऐसा कहा जाता है। जो चीजको मैं मानता नही हूं उसको मैं कैसे लिखूं? मालवीयजी वगैरे मुसलमानोके दुश्मन हैं ऐसा मैं कबूल नही कर सकता हू। इसका मतलब यह नही है कि उनकी सब बातें मुझको पसन्द हैं। न मैं यह कबूल कर सकता हूं कि महमद अली हिंदुके दुश्मन हैं। अगरचे उनकी भी सब बातें मुझको पसंद नही हैं। कलकत्तेके बारेमें मेरी राय जाहिर करनेका मुझको कहा गया है।[1] मैं मेरी राय क्या जाहिर करूं? मुझे कुछ इल्म नही है कि कलकत्तेमें किसने लड़ाई शुरू की और किसने ज्यादा गुन्हा किया। मैं तो इतना जानता हू कि दोनोका दिल बिगड़ गया है, दोनों एक-दूसरेकी ऐब ही देखते हैं, एक-दूसरोका एतबार उठ गया है। इस हालतमें खामोशीके सिवा और कोई रास्ता मेरे-जैसेके सामने नही हो सकता है। मैं न बरदाश्त करता हूं एक भी मुसलमानका खून की। या एक भी हिन्दूका खूनकी — और कहो एक भी इन्सानका खून की। न मैं बरदाश्त कर सकता हू एक मस्जिद या मन्दिर या गिरजाके ढानेकी। मेरा यकीन है कि जो खुदा हिंदूके दिलमें है वही हरएक इन्सानके दिलमें हैं। और मेरा यह भी यकीन है कि जितने दरजेतक मस्जिद खुदा की . . . है इतने ही हदतक मंदिर भी वही खुदाकी . . . है। खूनका बदला खून, मस्जिदका मंदिर — इस कानूनको मैं हरगिज नही मान सकता

१. अप्रैल और मई, १९२६ में कलकत्तामें दो बार साम्प्रदायिक दंगे हुए थे।

हूं। लेकिन मेरा इस आवाजको मैं किसके पास सुनाऊँ? मेरा इतना इतवार है सही खूनका बदला खून और मस्जिदका मंदिर यह कानून खुदाको नापसन्द है और एक दिन ऐसा आयगा जब हिंदु और मुसलमान अपना गुनाह कबूल करेंगे, तोबा करेंगे और एक-दूसरोंके साथ भेंटेंगे। इसी चीजको मैं मेरी जिन्दगीमें देखना चाहता हूँ। और खुदासे मेरी हमेशा यही इबादत रहती है कि अगर वह दिन मुझे बतलाना नहीं चाहता है तो मुझको इस दुनियासे बुला ले। इसी इतबारपर मुझको जिन्दा रहना अच्छा लगता है। और मैं चाहता हूं कि आप इस इतवारमें मुझको साथ दें, और हरगिज नाउम्मेद न बनें।

भाई एण्ड्रयूजने मुझको कहा कि आप चाहते हैं कि ये और भाई स्टोक्स अपनी तरफसे चंद हिन्दु-मुसलमानोंको बुलाकर सुलहकी कोशीश करें। मेरा यह खयाल है कि उनकी कोशीशसे यह काम नहीं हो सकेगा। न आज इस तरहसे हिंदु मुसलमानोंको इकट्ठे करनेका मौका आया है। जब बुलाना होगा तो आप ही बुला सकते हैं। इस मशवरेमें जो मुसलमान हिंदुके दुश्मन माने जाते हैं और जो हिंदु मुसलमानोंके दुश्मन माने जाते हैं उनको भी बुलाना होगा। जबतक एक-दूसरोंका एतबार नहीं आता है और जबतक जबान एक बात करती है और दिल दूसरी बात सोचता है तबतक मशवरेसे क्या फायदा पहुंच सकता है।

मेरी उम्मीद है आप मसुरी गये हैं और आपकी सेहत अच्छी है।

महादेव देसाईके स्वाक्षरों (देवनागरी लिपि) में लिखे मूल पत्र (एस० एन० ११०६९) की फ़ोटो-नकलसे।

६३६. पत्र : ए० एस० डेविडको

साबरमती आश्रम
५ जून, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैं फिनलैंड नहीं जा रहा हूँ। इसलिए आप जब चाहें, मिलनेको यहाँ आ सकते हैं। लेकिन आपके इस पत्रसे मेरा मन कुछ आशंकित-सा हो उठा है। आपकी मेरे साथ फिनलैंड जाने और कुछ परिचयपत्र प्राप्त करनेकी इच्छासे तो ऐसा नहीं लगता कि आपमें केवल शरीर-श्रमसे रोटी कमानेमें सन्तोष माननेकी मनोवृत्ति है, जब कि मैं जो चाहता हूँ वह यही है कि यह आश्रम दुनियाके सामने शरीर-श्रमसे अपनी रोटी कमानेमें संतोष माननेका आदर्श रखे। फिर भी, आप जब चाहें, अपनी आँखोंसे सब-कुछ देख-परख लेनेके लिए यहाँ आ सकते हैं। हाँ, मैं आपसे इतना जरूर कहूँगा कि आप वहाँसे अपनी गृहस्थी उखाड़कर चल देनेकी तैयारी न कर लें। यहाँ तो आपको जिस कामसे अपना जीवन शुरू करना पड़ेगा, वह है पाखाने आदिकी सफाई और रुईकी ओटाई-धुनाई वगैरहका काम।

इसलिए हो सकता है कि आश्रमसे आपको निराशा हो और उस हालतमें अगर आप वहाँसे अपनी गृहस्थी उखाड़कर चल देनेकी तैयारी कर लेंगे तो आपको बादमें दुखी होना पड़ सकता है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत ए० एस० डेविड
सिविल लाइन्स
सीतापुर, अवध

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०९१७) की फोटो-नकलसे।

६३७. पत्र : पेरीन कैप्टेनको

साबरमती आश्रम
५ जून, १९२६

मैं कुछ दिनोंतक आपके पत्रपर ध्यान नहीं दे पाया। कृपया मुझे हिं... .[1] स्कूल, माटुंगाके बारेमें कुछ और जानकारी दीजिए। उसके विद्यार्थियोंकी संख्या कितनी है? स्त्री सभाके संरक्षणमें स्कूल कैसे आया? स्कूलकी देख-रेख करनेवाली समितिका परिचय दीजिए। उसमें कितने शिक्षक काम करते हैं? प्रधानाध्यापक कौन है? स्कूलमें क्या कुछ लड़कियाँ भी हैं? क्या विद्यार्थी स्कूलमें सूत भी कातते हैं? यदि कातते हैं तो महीनेमें कुल मिलाकर कितना सूत तैयार हो जाता है? वे तकली चलाते हैं या चरखा? और भी जो जानकारी देना आप मुनासिब समझें, दीजिएगा।

आप फिनलैंड-यात्रा रद्द ही मानियेगा। श्री एन्ड्रयूज शायद आज दिल्लीके लिए प्रस्थान करेंगे।

आपका,

श्रीमती पेरीन कैप्टेन
इस्लाम क्लब बिल्डिंग
चौपाटी [बम्बई]

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९५९६) की माइक्रोफिल्मसे।

१. यहाँ साधन-सूत्रमें कुछ छोड़ दिया गया है।

६३८. पत्र : प्राणजीवनदास ज० मेहताको

साबरमती आश्रम
५ जून, १९२६

भाईश्री ५ प्राणजीवन,

इसके साथ चि० जेकीका[1] पत्र है। इसमें जो-कुछ लिखा है वह सब तो मैं नहीं समझ सकता। उससे जो भी अपराध हुए हों तुम्हें उसे पत्र तो लिखना ही चाहिए, ऐसी मेरी मान्यता है।

मेरा फिनलैंड जाना रद ही हो गया समझो। अपनी तबीयतका समाचार देना। मेरी तबीयत अच्छी रहती है। आज रतिलालका[2] पत्र आया है; उसे भी इसके साथ ही भेजता हूँ। मुझे आशंका है कि रतिलाल यहाँ नहीं आयेगा। यहाँ उसे कुछ-न-कुछ अंकुश जान पड़ेगा और चूँकि वह यहाँ नहीं आयेगा; इसलिए ऐसा लगता है कि वह मणिलालके पास भी नहीं जायेगा। तथापि मैं उसे लिखता तो रहूँगा ही।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९५९७) की फोटो-नकलसे।

६३९. पत्र : जयकुँवर मणिलाल डॉक्टरको

आश्रम
५ जून, १९२६

चि० जेकी,

तुम्हारा पत्र मिला। यह पत्र मैं डाक्टरको[3] भेज रहा हूँ, जो उत्तर आयेगा तुम्हें लिखूँगा। तुम्हारे पास जो पैसा भेजनेके लिए लिखा है उसका स्कूलके कामसे कोई सम्बन्ध नहीं है। वह पत्र यदि मैंने फाड़ न दिया होता तो तुम्हे भेज देता। उसे ढूढूँगा और यदि वह बच गया होगा तो तुम्हें भेज दूँगा। डाक्टरकी तबीयतके बारेमें समाचार यह है कि उनकी तबीयत अभी अच्छी नहीं कही जा सकती। बोलनेमें कुछ हकलाते हैं और मुश्किलसे हस्ताक्षर कर पाते हैं। लेकिन चेहरा देखनेसे ऐसा मालूम नहीं होता कि उन्हें कोई रोग है। भाई मणिलाल कौंसिलमें जानेका प्रयास करें, इसे मैं तो निरर्थक ही मानता हूँ। हिन्दुस्तानसे बाहर जानेकी भी सलाह मैं नहीं दे सकता। मैं तो यही ठीक समझता हूँ कि वे यहीं रहें और चाहे कितना

१. प्राणजीवनदास मेहताकी पुत्री।
२. प्राणजीवनदास मेहताका पुत्र।
३. जैकीके पिता; डा० प्राणजीवनदास मेहता।

ही दुःख क्यों न पड़े उसे सहकर स्थिर हो जायें। हमेशा दुःख ही रहेगा, ऐसा माननेका कोई कारण नहीं।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९५९८) की माइक्रोफिल्मसे।

६४०. पत्र: अमृतलालको

साबरमती आश्रम
५ जून, १९२६

भाईश्री ५ अमृतलाल,

आपका पत्र मिला। आपको चाहिए कि आपकी बहनको जो दुःख उठाने पड़े हैं उनके बारेमें आप उसके पति और ससुरको बतायें और उसे न भेजनेकी बात लिख भेजें। किन्तु ऐसा करनेसे पहले यह भी समझना आवश्यक है कि आपकी बहन वस्तुतः क्या चाहती है। क्योंकि यदि वह आवेशमें आकर भाग आई हो और बादमें पछताये अथवा विकारवश होकर कुकर्म करे तो उसकी अपेक्षा कदाचित् यही अच्छा होगा कि वह अभी सब समझ-बूझकर वापस चली जाये और जो भी दुःख उठाना पड़े, उठाये। इस तरह आपके सवालोंका निश्चयपूर्वक एक ही उत्तर नहीं दिया जा सकता। क्योंकि बहनकी, उसके पतिकी, सास-ससुरकी प्रकृतिसे परिचित होनेके कारण आप ही सही निर्णय कर सकते हैं। मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि यदि आपकी बहन ससुराल जानेको तैयार न हो तो आपको उसे अपने पास रखना चाहिए। जबर्दस्ती वापस भेजना ठीक नहीं होगा।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९५९९) की माइक्रोफिल्मसे।

६४१. पत्र: लक्ष्मीदास पुरुषोत्तम आसरको

साबरमती आश्रम
५ जून, १९२६

चि० लक्ष्मीदास,

तुम तुरन्त लौट गये, यह अच्छा ही हुआ। इस समय तुम्हारा शरीर इतना दुर्बल था कि मुझसे देखा नहीं जाता था। एक-दो महीने पूरा आराम लेकर शरीरको स्वस्थ बनाओ और उसके बाद फिर काममें जुट जाओ, इसीमें सच्ची किफायत है। मुझे अपनी तबीयतके बारेमें नियमित रूपसे खबर देते रहना। जितना तुम्हारा शरीर सहन करे उतना घूमना-फिरना। मैंने कल ही सुना कि मणि गोकीबहनके पास बहुत ऊधम मचाती है और चोरी करना भी सीख गई है। मुझे तो उसका वहाँ रहना तनिक भी पसन्द नहीं आया। इसलिए मैंने वेलाबहनको सलाह दी है कि जितनी

जल्दी बन सके उतनी जल्दी बम्बई जाकर बच्चीको ले आये। गोकीबहन उसे भेजनेको तैयार हूँ।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९६००) की फोटो-नकलसे।

६४२. पत्र : जमनालाल बजाजको

साबरमती आश्रम
५ जून, १९२६

चि० जमनालाल,

तुम्हें कल जो तार दिया था वह मिल गया होगा। और लक्ष्मीदास तो अबतक वहाँ जम गये होंगे। उनकी तबीयत यहाँ ठिकाने आती ही नहीं और काम किये बिना वे रहते नहीं। इसलिए मैंने निश्चय किया है कि उन्हें तुम्हारे पास भेज दिया जाये और वे देवदासके साथ वहाँ आराम करें। मैं समझता हूँ कि देवदासके आनेमें जल्दी हो या देर किन्तु लक्ष्मीदासको यहाँ रोक रखनेमें कोई लाभ नही है। मसूरीमें डाक्टर तो काफी होंगे। यदि लक्ष्मीदासकी तबीयत किसी डाक्टरको दिखाने लायक मालूम हो तो दिखा देना।

गिरधारीका भगंदरका ऑपरेशन हुआ है यह खबर तो तुम्हें मिल गई होगी। मेरा विश्वास है कि इससे बहुत लाभ होगा। ऑपरेशन समयसे हो गया, यह अच्छा हुआ।

फिनलैंड जानेकी बात तो बिलकुल ही छोड़ दी है। मि० पॉलकी स्थिति इसके कारण अटपटी होती हो और इसलिए हमें इस सवालपर पुनर्विचार करना पड़े तो अलग बात है। किन्तु पुनर्विचारकी सम्भावना एक प्रतिशत ही समझो। ऐसा मान लिया है कि २२ तक तो तुम आ ही जाओगे। वहाँ किसीको असुविधा न हो तो यही अच्छा होगा कि लक्ष्मीदास वहाँ लम्बे समयतक रहे। उसकी तबीयत बिलकुल सुधर जाये, यह बहुत जरूरी है।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९६०१) की फोटो-नकलसे।

६४३. भारत सेवक समाजकी क्षति

पूनाके ऐतिहासिक किबेवाड़ा क्षेत्रमें गत सप्ताह भयंकर आग लगी और भारत सेवक समाजके ज्ञानप्रकाश और आर्यभूषण प्रेस जल गये। इससे जितना नुकसान भारत सेवक समाजका हुआ है उतना ही जनताका भी हुआ है। ज्ञानप्रकाश ८० वर्ष पुराना प्रेस था और आर्यभूषण प्रेसके साथ चिपलूणकर, आगरकर और लोकमान्य तिलक-जैसे लोकनेताओंके नाम जुड़े हुए थे। इसके द्वारा ही उन्होंने अपनी सार्वजनिक प्रवृत्ति आरम्भ की थी। इस तरह कहा जा सकता है कि इस आगमें दो बहुमूल्य स्मृति-मन्दिर नष्ट हो गये। भस्मीभूत वस्तुओंमें अनेक पुस्तकें, पुस्तकोंकी पाण्डुलिपियाँ और स्वर्गीय गोखलेकी जीवनीके लिए इकट्ठी की गई बहुत सारी सामग्री भी है।

इस अग्निकाण्डसे होनेवाली तात्कालिक हानि तो यह है कि फिलहाल समाजके दो पत्रों — 'सर्वेन्ट आफ इंडिया' तथा 'ज्ञान प्रकाश' — का प्रकाशन कुछ दिनोतक बन्द रहेगा। हम उम्मीद करते हैं कि पाठक न केवल इसका खयाल ही नहीं करेंगे, अपितु समाजके प्रति अपनी पूरी-पूरी सहानुभूति भी प्रकट करेंगे और यथाशक्ति मदद देंगे। यहाँ यह बात बताते हुए हर्ष होता है कि दोनों छापाखानोंके कर्मचारियोने ८,००० रुपयेका लाभांश छोड दिया है और अनेक प्रेसोंने भारत सेवक समाजको तात्कालिक सहायता देनेकी इच्छा प्रकट की है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ६-६-१९२६

६४४. अहिंसाकी गुत्थी

एक भाई लिखते हैं[1]:

इस प्रकारके प्रश्न बार-बार उठाये जाते रहते हैं। ऐसे प्रश्नोको तुच्छ समझकर टाल देनेसे भी काम नहीं चल सकता। पूर्व और पश्चिमके गूढ़ ग्रन्थोंमें भी ऐसे प्रश्नोंकी चर्चा की गई है। मेरी अल्पमतिके अनुसार तो इन सब प्रश्नोंका एक ही उत्तर है, क्योंकि सभीका मूल एक ही है। ऊपर कही गई सभी क्रियाओंमें हिंसा अवश्य है, क्योंकि क्रियामात्र हिंसामय है और इसलिए सदोष है। भेद है तो सिर्फ कम या अधिक परिमाणका ही। देह और आत्माका सम्बन्ध ही हिंसापर आधारित है। पाप-मात्र हिंसा है और पापका सर्वथा क्षय तो देह-मुक्तिमें ही सम्भव है। इसलिए देहधारी अहिंसाके आदर्शको दृष्टिके सम्मुख रखकर जितना दूर जा सके उतना दूर

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इसमें लेखकने गांधीजीसे पूछा था कि आपके विचारसे व्यावहारिक जीवनमें पूर्ण अहिंसाका पालन कहाँतक सम्भव है, क्योंकि जीव-नाशसे पूर्णतः बचना कदापि सम्भव नहीं है।

जाये। परन्तु अधिकसे-अधिक दूर जानेपर भी कुछ हिंसा तो अनिवार्यतः होगी ही, जैसे श्वासोच्छ्वास अथवा खाने-पीने आदिमें। अनाजके प्रत्येक कणमें जीव है। इसलिए यदि हम मांसाहारके बजाय अन्नाहार करते हैं तो उससे हम हिंसासे मुक्त नहीं हो जाते; परन्तु अन्नाहारमें होनेवाली हिंसाको अनिवार्य समझकर अन्नका आहार करते हैं। हमें जीवित रहनेके लिए अन्न खाना चाहिए और आत्माकी पहचान करनेके लिए जीवित रहना चाहिए। इसीलिए तो भोगके लिए आहार करना सर्वथा वर्जित है। इस पुरुषार्थकी साधनाके लिए जो हिंसा अनिवार्य हो वह हम लाचार होकर करें। अब हम यह समझ सकेंगे कि पूरा खयाल रखनेपर भी जलके जीवों और खटमल आदिके सम्बन्धमें जो-कुछ करना अपरिहार्य मालूम हो वह हमें करना होगा। मैं यह मानता हूँ कि ऐसा कोई दिव्य नियम नहीं हो सकता कि अमुक स्थितिमें प्रत्येक मनुष्य एक ही प्रकारका आचरण करे, दूसरे प्रकारका न करे। अहिंसा हृदयका गुण है। हिंसा-अहिंसाका निर्णय मनुष्यकी भावनाके आधारपर किया जा सकता है। इसलिए हरएक मनुष्य जो अहिंसा-धर्मको अपना कर्त्तव्य मानता हो उपर्युक्त सिद्धान्तके अनुसार अपने कार्यकी व्यवस्था स्वयं करे। मैं यह जानता हूँ कि ऐसा उत्तर देनेमें एक दोष है। इससे मनुष्य अपनी इच्छानुसार चाहे जितनी हिंसा करके भी अपनेको और संसारको ठगेगा और अनिवार्यताकी आड़ लेकर हिंसाका बचाव करेगा। परन्तु ऐसे लोगोंके लिए यह लेख नहीं लिखा गया। यह तो उनके लिए लिखा गया है जो अहिंसाको मानते हैं; परन्तु जिनके सामने समय-समयपर धर्म-संकट आ उपस्थित होता है। ऐसे मनुष्य अनिवार्य हिंसा भी बहुत संकोचपूर्वक करेंगे और अपनी प्रवृत्ति-मात्रके विस्तारको कम करेंगे, बढ़ायेंगे नहीं; यहाँतक कि वे अपनी एक भी शक्तिका स्वार्थ-दृष्टिसे उपयोग नहीं करेंगे; वे केवल समाज-सेवाके भावसे ही ईश्वरार्पण बुद्धिसे अपनी सब शक्तियोंका उपयोग करेंगे। संतोंकी अर्थात् अहिंसक और दयालु लोगोंकी सब विभूतियाँ परोपकारके लिए ही होती हैं। जहाँ अहंकार होता है वहाँ हिंसा अवश्य होती है। प्रत्येक कार्यको करते समय मनमें यह प्रश्न कर लेना चाहिए इसमें अहं है या नहीं? जहाँ अहं नहीं है वहाँ हिंसा नहीं है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ६-६-१९२६

६४५. टिप्पणियाँ

एक शिकायत

एक भाई लिखते हैं:[१]

यदि शिकायत करनेवाले महाशय 'नवजीवन' ध्यानपूर्वक पढ़ते होते तो उनके लिए यह शिकायत करनेका कोई कारण न रहता। उन्होंने इस शिकायतका उत्तर 'नवजीवन' में माँगा है। 'यग इडिया' में प्रत्येक सदस्यके नामके साथ उसका चन्दा और भेंट आदिकी प्राप्ति स्वीकार की जाती है और उसका सार समय-समयपर 'नवजीवन' में दिया जाता है। उससे सबको यह पता लग सकता है कि चरखा सघके कितने सदस्य हैं। चरखा सघके कामकाजका ब्योरा भी समय-समयपर 'नवजीवन' में प्रकाशित किया जाता है। फिर भी मैं यहाँ थोड़ा-सा खुलासा कर देना उचित समझता हूँ। कार्यालयमें अभी इतना सूत प्राप्त नहीं हुआ है कि केवल उसीके बलपर खादी सस्ती की जा सके। परन्तु प्रकारान्तरसे उस सूतका इतना अधिक प्रभाव पड़ा है कि सारे हिन्दुस्तानमें मजदूरी देकर जो सूत कतवाया जाता था उसकी अच्छाईमें बड़ा सुधार हुआ है। यह यज्ञार्थ मिलनेवाला सूत दूसरे सूतकी परीक्षा करने और उसकी अच्छाईपर नजर रखनेमें बड़ा उपयोगी साबित हुआ है। परन्तु चरखा सघको परिमाणमें इतना कम सूत प्राप्त हुआ है कि उससे बनी हुई खादी बहुत ही कम लोगोंको मिल सकती है। इसलिए वह खादी दूसरी खादीके साथ मिलानी पड़ी है। परन्तु कार्यालयके कार्यकर्त्ताओंमें उसका एक टुकड़ा भी नही बाँटा गया है। कार्यकर्त्ताओको जितनी खादी चाहिए उतनी खरीद लेते हैं और उनमें से कुछ तो अपने कते सूतकी ही खादी बुनवा लेते हैं। यदि यज्ञार्थ सूत कातनेवाले अपना सूत आप बुनवाकर उसका गुप्त दान करेंगे तो उससे जो उद्देश्य सघ-शक्तिसे ही सफल हो सकता है, उसे हानि पहुँचेगी अथवा वह निष्फल हो जायेगा और सूतको सुधारनेका जो काम आज हो रहा है वह रुक जायेगा। कार्यालयका खर्च उसकी आमदनीसे अधिक नही है। यदि ऐसा होता तो मैं स्वयं चरखा सघको बन्द कर देता या उसमें से निकल जाता। परन्तु मुझे यह बात स्वीकार करनी चाहिए कि जितना सूत आता है उससे कार्यालयका खर्च पूरा नही होता। कार्यालयका खर्च दानके रूपमें जो दूसरी रकमें मिलती हैं, उनसे चलता है। परन्तु यदि चरखा सघके आज जो चार हजार सदस्य हैं वे बढ़कर चार करोड़ हो जायें तो कार्यालयका खर्च उनके सूतसे भी निकल सकता है। तब सैकड़ों नवयुवक कार्यालयके द्वारा अपनी आजीविका प्राप्त कर सकते हैं, यही नही, बल्कि खादीकी कीमतोंपर भी उसका गहरा और सीधा असर पड़ सकता है।

१. पत्र यहाँ नहीं दिया गया है। पत्र-लेखकने चरखा संघकी आर्थिक स्थितिका पूरा विवरण जाननेकी इच्छा व्यक्त की थी।

ऐसे गोरक्षा हो सकती है?

एक गो-सेवक लिखते हैं:[1]

यह बड़ी दुःखद बात है। और बहुतेरी गोशालाओंका प्रबन्ध भी इसी प्रकार चलाया जाता होगा। १,५०० गोशालाओंका होना कोई छोटी-मोटी बात नहीं। इतनी गोशालाएँ सुव्यवस्थित तौरपर चलती हों और वे किसी एक संगठनके अधीन हों तो उनके जरिये हजारों जानवरोंका निर्वाह हो सकता है, करोड़ोंकी आय हो सकती है और गोरक्षाकी कुंजी हमारे हाथ लग सकती है। उक्त गोशालामें ११,००० रुपयेका टोटा नहीं पड़ना चाहिए। एक भी बछियाका दान नहीं किया जा सकता। यदि यही गोशाला आदर्श दुग्धालय बन जाये तो उस गाँवको उसके जरिये सस्ता घी और दूध मिल सकता है; और उसके साथ-साथ चर्मालय भी चलता हो तो लोगोंको जूते इत्यादि चमड़ेकी आवश्यक वस्तुएँ भी प्राप्त हो सकती हैं। आज तो रुपयेके-रुपये खर्च होते हैं और एक भी गाय कसाईखानेमें जानेसे नहीं बचती। तात्पर्य यह है कि गोशालाओंका कार्य बड़ा संकुचित हो गया है। गोशाला ऐसा स्थान बन गया है जहाँ पंगु ढोरोंकी ज्यों-त्यों करके रक्षा की जाती है।

हमें यदि कोई व्यापार करना हो तो हम उसके लिए रुपये देकर भी कुशल मनुष्योंको रखते हैं। नुकसान होता हो तो उसके कारण खोजते हैं। उसमें नित्य नये सुधार करते हैं और जबतक उसमें नुकसान दिखाई देता है तबतक निश्चित होकर नहीं बैठते। गोशालाका उद्देश्य कोई छोटा-मोटा व्यापार करना नहीं बल्कि गोरक्षाके महान् धर्मका पालन करना है। परन्तु यह कार्य हम अनुभवहीन मनुष्यों द्वारा उनकी फुरसतके समयमें कराते हैं। इस प्रकार काम करनेवाले मनुष्य आत्म-प्रवंचना करके यह मान लेते हैं कि वे सेवा-धर्मका पालन करते हैं। दान करनेवाले गोरक्षा होती है यह मानकर अपने मनको छलते हैं और इस धर्मके बहाने लाखों रुपये फिजूल खर्च होते हैं। यदि पत्रलेखकने निम्नलिखित बातें भी लिखी होतीं तो उससे इस गोशालाके कामकी अधिक अच्छी तरह जाँच की जा सकती थी।

(१) पंगु और दुर्बल ढोरोंकी संख्या।
(२) दूध देनेवाली गाय भैंसोंकी संख्या।
(३) रोजके दूधका परिमाण।
(४) बछड़े-बछियोंकी संख्या।
(५) बैलों और पाड़ोंकी संख्या।
(६) जमीनका क्षेत्रफल।
(७) गोशाला गाँवमें है या गाँवके बाहर।
(८) ढोरोंकी मृत्यु-संख्या।
(९) मृत ढोरोंकी व्यवस्था।

१. पत्र यहाँ नहीं दिया गया है। पत्र-लेखक एक गोशाला देखने गये थे। अपने पत्रमें उन्होंने बताया था कि वह गोशाला किस प्रकार घाटेमें चलाई जा रही है।

धर्मके नामपर अधर्म

अमरेलीके अन्त्यज मंदिरके लिए श्री रामेश्वरदास बिड़लाने २,५०० रुपये दिये थे। इस रुपयेसे सुन्दर मन्दिर बनाया गया। उसमें श्री लक्ष्मीनारायणकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा कराई गई और वह मन्दिर खोला गया। उसके सम्बन्धमें जो रिपोर्ट मेरे पास आई है उसमें निम्नलिखित बातें भी हैं:

> प्रतिष्ठा करानेवाले आचार्यपर ब्राह्मणोंने बहुत जुल्म किया, यद्यपि यजमान अन्त्यज-वर्गका न था। इस अन्त्यज मन्दिरमें प्रतिमाकी प्रतिष्ठा कराते समय अन्त्यज अलग बिठाये गये थे। दक्षिणा भी अन्त्यजोंकी तरफसे नहीं दी गई थी। मन्दिरके निर्माणमें जो रुपया खर्च हुआ वह भी अन्त्यजोंका न था। यानी यह मन्दिर अन्त्यजोंके लिए था, यही आचार्यका अपराध था। इस अपराधके लिए उन्हें मूँछ मुडवानी पड़ी और प्रायश्चित्त करना पड़ा।

मैं इस प्रकार अपने स्वाभिमानको भूल जानेवाले आचार्यकी प्रशंसा नहीं कर सकता। यदि प्राण-प्रतिष्ठा करानेका कार्य धर्मका काम था तो यह प्रायश्चित्त, प्रायश्चित्त नहीं, परन्तु पाप ही कहा जा सकता है। आचार्यका बहिष्कार भी किया जाता तो उससे उनकी क्या हानि होती? जाति-बहिष्कारके भूतसे आज जरा भी डरनेकी आवश्यकता नहीं है। जिन्होंने हिम्मतके साथ अपना बहिष्कार होने दिया है उन्हें कुछ भी नुकसान नहीं हुआ है। यही नहीं ये तो झूठे बन्धनसे मुक्त हुए हैं। ब्रह्मानन्द[1] कहते हैं:

> रे समज्या विना नव नीसरिए
> रे रणमध्ये जईने नव डरिए
> रे प्रथम चढे शूरो थईने
> रे भागे पाछो रणमां जईने
> ते शुं जीवे भूंडुं मुख लईने?[2]

ऐसे समयपर यह वचन कितना उचित मालूम होता है। मुझे यह आशा न थी कि अमरेली-जैसे आगे बढे हुए शहरमें भी ब्राह्मण लोग इतना अज्ञान और ऐसी धर्मांधता दिखायेंगे।

इस प्रकार यद्यपि अमरेलीके कुछ ब्राह्मणोंने हिन्दूधर्मका अपमान किया है तो दूसरोंने उसकी प्रतिष्ठा भी बढ़ाई है, क्योंकि प्राण-प्रतिष्ठाके समय सभी वर्णोंके हिन्दू इकट्ठे हुए थे। उनमें ब्राह्मण, वैश्य, लुहार, बढ़ई इत्यादि सब थे। अधिकारी वर्ग भी था। अन्त्यजोंके सिवा दूसरे लोग भी अन्त्यज-मन्दिरका उपयोग करते हुए देखे

१. गुजराती कवि।

२. बिना समझे-बूझे आगे नहीं बढ़ना चाहिए। रण-क्षेत्रमें जानेके बाद डरना नहीं चाहिए। जो प्रथम तो शूर बनकर निकल पड़ता है, परन्तु रणमें जाकर पीछे भागने लगता है वह अपना श्रीहीन मुख लेकर क्या जीयेगा।

जाते हैं। कुछ ब्राह्मणोंने तो 'भागवत' और अन्य धर्म-ग्रन्थोंकी कथा करना भी स्वीकार किया है। अब इस वहिष्कारका उनपर कैसा असर होता है यह देखना चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ६-६-१९२६

६४६. पत्र : के० टी० पॉलको

साबरमती आश्रम
६ जून, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला और प्रबन्ध-समितिके मूल पत्र भी। इन पत्रोंसे तो मुझे साफ लगता है कि निमन्त्रण आपकी प्रेरणासे भेजा गया था। वैसे आपने यह काम मेरे प्रति अपनी गहरी सद्भावना और जनता, विशेषकर युवक-समाजपर, मेरे प्रभावकी अपनी अतिरंजित कल्पनाके कारण ही किया। लेकिन, आज तो मैं इस बातको और भी ज्यादा महसूस कर रहा हूँ कि अभी वह समय नहीं आया है, जब इन पत्रोंसे जो कारण सामने आते हैं, ऐसे मामूली कारणोंसे मुझे भारतसे बाहर जाना चाहिए। सेवाके लिए मेरे भारतसे बाहर जानेकी बात तो तभी उठ सकती है जब मुझे उसकी आवश्यकताकी असन्दिग्ध प्रतीति हो। समितिके ये पत्र वास्तवमें आपकी इस इच्छाके परिणाम स्वरूप लिखे गये हैं कि हेलसिंगफोर्सके सम्मेलनमें मैं भी उपस्थित रहूँ। लेकिन, मैं अपनी मर्यादाओंको जानता हूँ, और मेरे सन्देशके लोगोंके हृदयतक पहुँचनेके मार्गमें जो कठिनाइयाँ हैं, उन्हें भी समझता हूँ। और अगर मेरे सन्देशमें कोई शक्ति है तब तो मेरी शारीरिक उपस्थितिके बिना भी लोग उसे महसूस करेंगे ही।

मैं जानता हूँ कि मेरे निर्णयसे आपको बड़ी निराशा होगी, लेकिन जीवनमें मुझे अपने स्नेही मित्रोंको निराश ही करते रहना पड़ा है। मगर मैं यह भी जानता हूँ कि इन निराशाओंसे हानिके बजाय लाभ ही हुआ है। मेरे कारण आपको बहुत परेशानियाँ उठानी पड़ीं। कृपया उस सबके लिए क्षमा करें और हेलसिंगफोर्सके जो मित्र वहाँ मेरी उपस्थितिकी अपेक्षा करते रहे हों, उनसे भी क्षमा करनेको कहें। कहनेकी जरूरत नहीं कि आपके सम्मेलनकी कार्यवाहीमें मेरी शुभ-कामनाएँ साथ होंगी। ईश्वरसे कामना करता हूँ कि आपकी यात्रा सकुशल सम्पन्न हो।

मैं मूल पत्रोंको लौटाता हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११३५७) की फोटो-नकलसे।

६४७. पत्र : वी० सुन्दरम्को

साबरमती आश्रम
६ जून, १९२६

प्रिय सुन्दरम्,

तुम्हारा पत्र पाकर बहुत खुशी हुई, क्योंकि मैं प्रायः तुम्हें याद किया करता था और यह जानकर तो और ज्यादा खुशी हुई कि तुम श्री स्टोक्सकी मदद कर रहे हो। लेकिन तुम्हारे वंशानुगत ग्राम-प्रधान (विलेज वार्डन) के पदको क्या हुआ? उस पदपर अब कौन होगा? आशा है, पहाड़पर रहनेसे तुम्हारी आँखें बिलकुल ठीक हो जायेंगी।

तुम्हारा हिन्दीमें लिखा हुआ लेख बहुत अच्छा है। उसकी हिन्दी मेरे तमिल भाषणसे बेहतर है, लेकिन उसमें अभी बहुत-कुछ सुधारकी गुंजाइश है। तुमने अपने नामके हिज्जे ठीक नहीं लिखे हैं। तुमने जिस भजनकी नकल तैयार की है, उसके शब्द बड़े सुन्दर हैं। मैं सावित्रीको अलगसे पत्र नहीं लिख रहा हूँ। उसने भी अच्छा प्रयास किया है। लेकिन उसे और अच्छा करना चाहिए।

देवदास बिलकुल ठीक है। तीन दिन हुए, वह अस्पतालसे आ गया है।

तुम्हारा,

श्रीयुत वी० सुन्दरम्
द्वारा एस० ई० स्टोक्स
कोटगढ़
शिमला हिल्स

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६०२) की माइक्रोफिल्मसे।

६४८. पत्र : मोतीबहन चौकसीको

साबरमती आश्रम
रविवार [६ जून १९२६][1]

चि० मोती,

तुम्हारा पत्र मिला। इस बारकी लिखावट अच्छी कही जा सकती है। यदि हमेशा कितना भी कम किन्तु सुन्दर अक्षर लिखनेका अभ्यास करती रहोगी तो लिखावट अवश्य सुधरेगी। तुमने जो प्रश्न पूछा है वैसे ही प्रश्नका उत्तर 'नवजीवन' के इस अंकमें दिया गया है। खटमलोंको बढ़ने देना और फिर उन्हें मारना — क्या इसके बीचकी कोई स्थिति नहीं है? हम उन्हें बढ़नेकी सुविधा देनेके लिए बँधे हुए नहीं हैं और उन्हें मारनेका हमें अधिकार नहीं। इसलिए उसे उठाकर दूर रख देते हैं। तुम्हारा पत्र ही मणिबहनको सौंप दूँगा। लक्ष्मीदास ज्यों ही आया त्यों ही मैंने उसे मसूरी भेज दिया। बेलाबहन कल ही मणिको लेनेके लिए, — रामदास जा रहा था — सो उसके साथ बम्बई गई हैं। वापस आते समय तुम्हारे साथ एक दिन रहकर यहाँ आयेगी। मणिबहन कहती है कि भेजी हुई पुस्तक उसे नहीं मिली है।

बापूके आशीर्वाद

सुकन्या नाजुकलाल चौकसी
राष्ट्रीय केलवणी मण्डल, भड़ौंच

गुजराती पत्र (एस० एन० १२१२८-ए) की फोटो-नकलसे।

६४९. तार : के० टी० पॉलको

७ जून, १९२६

के० टी० पॉल
थोट्टम
सेलम

पत्रके लिए धन्यवाद। गहराईसे और प्रार्थनापूर्वक विचार करनेके बाद मेरा अन्तिम निर्णय फिनलैंड न जानेका है।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११३५८) की फोटो-नकलसे।

१. डाककी मुहरसे।

६५०. पत्र : डॉ० बी० एस० मुंजेको

साबरमती आश्रम
७ जून, १९२६

प्रिय डॉ० मुंजे,

आपका पत्र मिला। बेशक, आपने मेरे सामने एक ऐसे कामका प्रस्ताव किया है जिसमें मेरी भी दिलचस्पी है। लेकिन चूंकि यह सारी परिकल्पना आपकी है, इसलिए इसे मैं दूसरोंसे कार्यान्वित कैसे करवाऊँगा? अगर आप व्याकरणका अध्ययन सुगम बनानेके लिए कुछ लिख दें और उसमें अपने दर्शनका प्रचार न करे तथा आपकी कृतिको सस्कृतके पण्डित लोग ठीक करार दे दें तो उसे छपवाकर लागत मूल्यपर बेचनेकी जिम्मेवारी मैं अपने सिर ले लूँगा या अगर आपकी जानकारीमें कोई ऐसा व्यक्ति हो जिसने आपके विचारोंको ठीकसे समझ लिया हो और अगर वह ऐसा व्याकरण लिखनेको तैयार हो किन्तु उसे आर्थिक सहायताकी आवश्यकता हो तो मैं उससे निवेदन करूँगा और उसकी सेवाएँ प्राप्त करनेकी कोशिश करूँगा। जो भी हो, फिलहाल गुजरात विद्यापीठ, जितना कुछ सम्भव है, उतना कर रहा है। लेकिन, मैं जानता हूँ कि अगर सस्कृतके अध्ययनको आसान बनाया जा सके और प्रयोग द्वारा यह प्रमाणित भी किया जा सके कि वह आसान बना दिया गया है, तब इस क्षेत्रमें जितनी सफलता मिल सकती है, उसकी तुलनामें विद्यापीठका काम कुछ भी नही है। खुद मैं तो सस्कृतके अध्ययनको काफी आसान मानता हूँ। हमारे दिमागपर अंग्रेजीके अस्वाभाविक अध्ययनका जो बोझ पड़ा हुआ है, उसे सस्कृतका अध्ययन कुछ बढ़ायेगा, ऐसा नही है। अग्रेजीके वर्तमान अध्ययनको मैं अस्वाभाविक इसलिए कहता हूँ कि इसने देशी भाषाओंको अपदस्थ कर रखा है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६०३) की फोटो-नकलसे।

६५१. भेंट: समाचारपत्रोंको

अहमदाबाद,
[८ जून, १९२६ या उसके पूर्व][1]

हालमें ही भारत सरकारने रंग-भेद विधेयकके बारेमें जो विज्ञप्ति[2] निकाली है, उसके सम्बन्धमें मुलाकातीने जब महात्मा गांधीकी राय जाननी चाही तो उन्होंने कहा:

मेरे विचारसे तो इस विज्ञप्तिसे हमारी स्थितिमें किसी प्रकारके सुधारका संकेत नहीं मिलता। यह ठीक है कि संघ सरकारने बार-बार कहा है कि फिलहाल विधेयकके प्रभाव-क्षेत्रको 'ताज बनाम हेल्डिक स्मिथ' के मामलेके निर्णयसे पहलेकी स्थितिकी अपेक्षा अधिक विस्तृत करनेका उसका कोई इरादा नहीं है। लेकिन, विधेयकके विरोधी लोग इसकी निन्दा इस सिद्धान्तके आधारपर करते हैं कि इस विधेयकके अन्तर्गत अधिकारियोंको प्रसंग आनेपर अपने विवेकके अनुसार जिन अधिकारोंके प्रयोगकी सत्ता दी गई है, वे अधिकार विधेयकके प्रभाव-क्षेत्रको उक्त निर्णयसे पहलेकी स्थितिकी अपेक्षा अधिक विस्तृत कर देते हैं और यह न केवल वतनी लोगों बल्कि भारतीयों पर भी लागू किया जा सकता है। और इस बातसे भी किसी प्रकारका संतोष प्राप्त नहीं किया जा सकता कि जब भी इस विधेयकके अन्तर्गत बनाये जानेवाले विनियमोंके प्रभाव-क्षेत्रका विस्तार किया जायेगा तब दक्षिण आफ्रिकी संघकी सीमाके भीतरके सभी पक्षोंकी राय लेकर ही वैसा किया जायेगा। यह विधेयक किसीके द्वारा सरकारसे अपना निवेदन करनेका अधिकार तो नहीं छीनता, लेकिन अबतक तो सभीको यह बात मालूम हो गई है कि ऐसे पक्षोंके निवेदनोंका परिणाम क्या होता है जिनमें अपनी इच्छाको कार्यान्वित करानेकी शक्ति नहीं है। इस आश्वासनका मतलब कहीं यह तो नहीं है कि संघसे बाहरके पक्षोंको — जैसे कि भारत सरकारको — अपनी बात कहनेका कोई अधिकार नहीं होगा?

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, ९-६-१९२६

१. संवाददाता द्वारा प्रेषित भेंट वार्ता इसी तारीखके अन्तर्गत प्रकाशित की गई थी।

२. देखिए "निरर्थक आश्वासन", १०-६-१९२६।

६५२. पत्र : जनकधारी प्रसादको

साबरमती आश्रम
८ जून, १९२६

प्रिय जनकधारी बाबू,

बहुत दिनोंके बाद आपका एक पत्र मिला। बड़ी प्रसन्नता हुई। स्कूल जिन कठिनाइयोंसे गुजर रहा है, उन्हें मैंने समझ लिया। विश्वास समयकी सीमा नही मानता। और जो विश्वास समयकी सीमासे बँधा हुआ है, वह विश्वास तो विश्वास है ही नहीं। इसलिए अगर आपको अपने इस कार्यमें अनन्त विश्वास है तो मुझे तनिक भी सन्देह नही कि यह कार्य सफल होगा, क्योकि यह अच्छा कार्य है।

उन दो कठिनाइयोंके बारेमें भी म तो यही कहूँगा। इस समय वातावरण इतना दूषित हो गया है कि मैं किसी नये दल या मण्डलकी स्थापनाकी सलाह ही नही दे सकता। हममें से जो लोग हिन्दू-मुस्लिम एकताके सम्बन्धमें किसी भी तरहकी आक्रामकतामें विश्वास नही रखते या किसी भी रूपमें कौंसिलोमें प्रवेश करना ठीक नहीं मानते, उनमें से हरएकको अपने सिद्धान्तपर दृढ़ रहना चाहिए। हमारी उमंग और उत्साह कायम रहे, इसके लिए हमे किसी संगठनकी जरूरत नही है। जिन्हें ऐसी बाहरी सहायताकी जरूरत है, समझ लीजिए, उनमें गहरा विश्वास नही है, और मैं चाहता हूँ कि जिनमें गहरा और स्थायी विश्वास है, सिर्फ वही लोग कौंसिलोंके झमेलेसे बाहर रहें। कारण, हो सकता है हमारे भाग्यमें अभी और भी कठिन परीक्षाओंसे गुजरना लिखा हो। इसलिए, उस हालतमें कमजोर विश्वासवाले लोग घुटने टेक देंगे। जो लोग कठिनसे-कठिन विघ्न-बाधाओके सामने भी डिगनेवाले नही हैं, सफलता अन्तमें उन्हींको मिलेगी, क्योंकि मुझे तो असहयोगके अलावा स्वतन्त्रता प्राप्त करनेका कोई और रास्ता दिखाई नही देता। जैसे-जैसे दिन बीतते हैं, उसमें मेरा विश्वास भी बढ़ता जाता है।

आशा है, आप बिलकुल स्वस्थ होगे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीयुत जनकधारी प्रसाद
श्री गांधी विद्यालय
डाकघर हाजीपुर
जिला मुजफ्फरपुर

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ५०) तथा (एस० एन० १९६०४) की फोटो-नकलसे भी।

६५३. पत्र : अब्बास तैयबजीको

साबरमती आश्रम
८ जून, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। 'बॉम्बे क्रॉनिकल' के लिए लेख अवश्य लिखिए। मैं आपके विचारोंसे अधिकांशतः सहमत हूँ। लेकिन शायद शिक्षा ही एकमात्र उपाय नहीं है। यदि केवल यही उपाय है तो एकताके लिए बहुत समयतक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। आवश्यकता तो हृदयको शिक्षित करने, हृदयमें स्नेह-सद्भावना भरने की है। मेरी रायमें, जो लोग प्रत्यक्षतः दंगा-फसाद करते हैं वे भले ही गुंडे हों, लेकिन उनके पीछे दिमाग तो आखिरकार शिक्षित हिन्दुओं और मुसलमानोंका ही काम करता है। यदि उसी शिक्षाका विस्तार करना हो तो फिर हिन्दुस्तानका तो भगवान ही मालिक है। लेकिन 'क्रॉनिकल' के लिए लेख लिखनेमें कोई हर्ज नहीं है और यह भी निश्चित ही मानिए कि अगर आप लेख न लिखें तो भी कोई हानि न होगी। मामलेको थोड़ा ठण्डा पड़ जाने दें तो अच्छा हो। वे लोग लड़ते-झगड़ते रहें, इसके अलावा फिलहाल कोई चारा नहीं है।

रामदास एक दिनके लिए यहाँ आया था। फिर देवदासको देखने बम्बई चला गया है और कह गया है कि लौटते समय आपसे मिलने और आपको नमस्कार करनेके लिए बड़ौदा उतर जायेगा।

उसका कहना है कि यदि आप न होते तो उसको अपनी खादीकी बिक्रीमें कोई सफलता न मिली होती। सफेद दाढ़ीकी अपनी ही खूबियाँ हैं।

आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ९५५६) की फोटो-नकलसे।

६५४. पत्र : रुथ एस० एलेक्जेंडरको

साबरमती आश्रम
८ जून, १९२६

प्रिय बहन,

श्री एन्ड्रयूजने आपका अनमोल पत्र मुझे दिया है। उससे पुरानी और पवित्र स्मृतियाँ ताजी हो जाती हैं। कैलेनबैक[1] यद्यपि हमेशा आनेको लिखते रहते हैं, लेकिन अभीतक आये नहीं हैं। हाँ, यह विश्वास जरूर है कि किसी दिन सबेरे-सबेरे उनका इस आशयका तार मिलेगा कि वे रवाना हो चुके हैं।

क्या आप कभी 'यंग इंडिया' पढ़ती हैं? मैं उसे मित्रोंके नाम लिखा अपना साप्ताहिक पत्र मानता हूँ। कृपया श्री एलेक्जेंडरसे मेरा यथायोग्य कहिएगा। श्री एन्ड्रयूजने मुझे बताया है कि उनके काममें एलेक्जैन्डरने कितनी ज्यादा मदद की थी।

हृदयसे आपका,

श्रीमती रुथ एस० एलेक्जैन्डर
हेलब्रॉन
लेटन रोड
सेंट जेम्स, सी० पी०

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०७६६) की फोटो-नकलसे।

६५५. पत्र : प्यारेलाल नैय्यरको

साबरमती आश्रम
८ जून, १९२६

प्रिय प्यारेलाल,

इधर कुछ दिनोंसे तुम्हारा कोई पत्र नहीं आया। मैं रजिस्टर्ड डाक द्वारा कताई पर लिखे निबन्धकी एक प्रतिलिपि और जो टिप्पणियाँ तुम यहाँ छोड़ गये थे, भेज रहा हूँ। मैं चाहता हूँ कि तुम जितनी जल्दी हो सके निबन्धको पढ़ जाओ और उसमें संशोधन कर डालो।

अब अन्तिम रूपसे यह तय हो गया है कि मैं फिनलैंड नहीं जा रहा हूँ। आशा है कि तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा चल रहा होगा और उसमें दिन-दिन सुधार हो रहा

१. एक जर्मन वास्तुशिल्पी, दक्षिण-आफ्रिकामें गांधीजीके सहयोगी और घनिष्ठ मित्र।

होगा और यह होना ही चाहिए। छोटालाल इधर-उधरके चक्कर लगाकर लौट आया है। अभी भी उसका मन स्वस्थ नहीं है।

तुम्हारा,

श्रीयुत प्यारेलाल नैय्यर
देवलाली

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६०५) की माइक्रोफिल्मसे।

६५६. पत्र : एच० के० वीरन्ना गौड़को

साबरमती आश्रम
८ जून, १९२६

प्रिय मित्र,

आपको अपनी कृति मुझे समर्पित करनेके लिए अनुमतिकी आवश्यकता नहीं है। लेकिन यदि आप मुझे समर्पित करें ही तो कृपया यह न कहें कि आपने मेरी अनुमति प्राप्त कर ली है। मैं पुस्तकको पढ़े बिना अनुमति दे नहीं सकता। और उसे आप मेरे पास भेज भी दें तो उसको पढ़नेके लिए समय कहाँसे लाऊँ?

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एच० के० वीरन्ना गौड़
चान्नापटना

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६०६) की माइक्रोफिल्मसे।

६५७. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

साबरमती आश्रम
मंगलवार, ८ जून, १९२६

भाई घनश्यामदासजी,

आपका पत्र मिला है। खादी प्रतिष्ठानको चरखा संघकी मार्फतसे आजतक कमसे कम ७० हजार रुपये दिये हैं। मुझको स्मरण है वहाँतक ३५ हजार अभय आश्रमको और ६ हजार प्रवर्तक संघको। और भी छोटी-छोटी रकमें दी गई हैं। सब मिलें के करीब १। लाख रुपये होंगे। और भी बंगालमें पैसे दिये जायेंगे। मैं जानता हूँ कि खादी प्रतिष्ठानकी आवश्यकता बहुत बड़ी है। सतीशबाबु अपना काम बहुत ही बढ़ाना चाहते हैं। मुझे यह बात प्रिय भी है। परंतु चरखासंघमें आज तो पैसे बहुत ही कम हैं। इसलिये यद्यपि चरखासंघके मार्फतसे जो कुछ हो सकता (है) वह किया जायगा तदपि आप जितना दे सकें इतना सतीशबाबुको अवश्य दें।

काउन्सिलके बारेमें मैं क्या लिखूँ? पूज्य मालवीयजीसे इस बारेमें मेरा तात्विक मतभेद है। मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि यदि आप मानें काउन्सिलोंमें आपके जानेसे लोकोपकार होगा तो आप अवश्य जावें। स्वराज दलका विरोध और राजनैतिक शिक्षण प्राप्तिका प्रलोभन यह दोनो बातें नैतिक दृष्टिसे ख्याल करनेमें अप्रस्तुत है। यदि आप ऐसा समझते हैं कि आपने काउन्सिलमें न जानेकी प्रतिज्ञा मेरे समक्ष की है तो इस समझको आप दूर करें। ऐसा कोई प्रतिबधका निश्चयपूर्वक स्वीकार नहीं किया है। ऐसे बधनसे मुक्त समझकर केवल औपचारिक दृष्टिसे अर्थात् नैतिक दृष्टिसे आप काउन्सिलमें जानेके बारेमें आपका अभिप्राय निश्चित करे।

आपका,
मोहनदास

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६१२८ तथा एस० एन० १९६०८) से।
सौजन्य: घनश्यामदास बिड़ला

६५८. पत्र : शान्तिकुमार मोरारजीको

साबरमती आश्रम
मंगलवार ८ जून, १९२६

भाई शान्तिकुमार,

महादेवको लिखा तुम्हारा पत्र पढ़ा। अपने जन्म-दिवसके आम भेजे थे तो उनके साथ आशीर्वाद तो माँग लिया होता। वैसे, वह तुम्हें हमेशा है ही। तुमने सात वर्षसे आम किसलिए छोड़ रखे हैं? ईश्वर तुम्हे दीर्घायु करे।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ४७०२) से।
सौजन्य: शान्तिकुमार मोरारजी

६५९. पत्र : राय प्रभुदास भीखाभाईको

साबरमती आश्रम
मंगलवार, ८ जून, १९२६

भाई प्रभुदास,

तुम्हारा विस्तृत पत्र मिला। तुमने लिखा सो ठीक ही किया। तुम्हारी दलीलमें कहीं भी त्रुटि नहीं है। लेकिन केवल प्राणायाम आदिसे ब्रह्मचर्यका पालन नहीं हो सकता, ऐसा मेरा तथा जिन्होंने प्राणायाम आदि क्रियाओंको किया है उनका अनुभव है। लेकिन मैं यह मानता हूँ कि जिन्होंने मनपर नियन्त्रण प्राप्त कर लिया है उन्हें प्राणायाम आदि मदद करते हैं। ऐसे बहुत ही कम व्यक्ति दिखाई देते हैं जिन्होंने इस दृष्टिसे योगका व्यापक अभ्यास किया हो और उसके प्रयोग किये हों। जिसे दिनमें एक ही समय और एक बारमें जितना खाना चाहिए उतना ही खानेकी आदत हो, उसके बारेमें मुझे कुछ नहीं कहना है। लेकिन यदि मनुष्य एक ही समयमें तीन बारमें जितना खाना चाहिए उतना खा ले तो उससे ब्रह्मचर्यको कोई मदद नहीं मिलती है। उससे ब्रह्मचर्य भंग होता है और शरीरको नुकसान पहुँचता है। ब्रह्मचर्यके पालनके लिए तुमने जिस पौष्टिक खुराककी बात कही उसकी आवश्यकताके बारेमें दो मत हैं और मुझे उसके बारेमें पूरी-पूरी शंका है। लेकिन तुम जिस ढंगसे चल रहे हो उससे यदि तुम्हें ब्रह्मचर्यके पालनमें मदद मिलती हो, आत्माका विकास होता हो, समस्त इन्द्रियाँ वशमें आती हों तो मेरे लिखनेसे तुम कोई परिवर्तन करो, यह मैं नहीं चाहता। तुम अपने प्रयोग करो और अनुभव तुम्हें जो परिवर्तन करनेके लिए कहे सो करो और उसमें यदि तुम्हें ऐसी सफलता मिले कि तुम्हारे विचार भी विकार-ग्रस्त न हों तो तुम्हारे प्रयोगोंसे जगतका कल्याण होगा। इतना याद रखना कि ब्रह्मचर्यका मतलब सारी इन्द्रियोंका मनसा, वाचा, कर्मणा संयम है। इस व्याख्याके अनुसार यदि आँखमें या विचारमें भी विकारका संचार हो अथवा स्वप्नमें भी स्राव हो तो यह ब्रह्मचर्यका खण्डन माना जायेगा।

गुजराती प्रति (एस० एन० १२१८७) की फोटो-नकलसे।

६६०. पत्र: पैरीन कैप्टेनको

साबरमती आश्रम
९ जून, १९२६

मैंने यह मान लिया है कि इस पूरे महीने-भर आप बम्बईमें ही रहेंगी। मेरा खयाल है कि मैंने आपको बताया था कि एक जर्मन बहन आश्रम आ रही हैं। उनका नाम हेलेन हाउर्डिग है। वे २५ को 'राजमाक' नामक जहाजसे आनेवाली हैं। मैं चाहूँगा कि आप उनसे मिलकर उन्हें अपने घर ले जायें और फिर उसी दिन साबरमती भेज दें। मुझे तार कर दीजिएगा कि वे किस ट्रेनसे बम्बईसे रवाना हुई हैं। यदि आपके उस दिन बम्बई न रहनेकी सम्भावना हो या आपके लिए उनसे जहाजपर मिलने जाना असम्भव हो तो कृपया मुझे वैसा सूचित कीजिएगा।

क्या नर्गिसबहन और मीठूबहन वापस आ गई हैं? यदि आ गई हों तो कुशलक्षेम लिखिएगा।

आपका,

श्रीमती पैरीन कैप्टेन

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६१०) की माइक्रोफिल्मसे।

६६१. टिप्पणियाँ

भारत सेवक समाज (सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी)

हालके अग्निकाण्डमें हुई अपनी क्षतिके सम्बन्धमें समाज द्वारा जारी किये गये विवरणमें जो चीज मनको सबसे अधिक प्रभावित करनेवाली है वह प्रेसके कर्मचारियों-का इस क्षतिमें हिस्सा बँटानेका प्रस्ताव है। यह इस बातका द्योतक है कि समाज अपने कर्मचारियोंका कितना अधिक ध्यान रखता आया है। अगर समाजकी क्षति उन्हें अपनी निजी क्षति-जैसी नहीं लगती तो वे यह स्वार्थ-रहित और उदारतापूर्ण प्रस्ताव नहीं करते कि वे आधा बोनस छोड़ देंगे और बिना कोई अतिरिक्त पारि-श्रमिक लिये हर रोज आठके बजाय दस घंटे काम करेंगे। मुद्रकने तो छः महीनेतक कुछ भी वेतन लिये बिना काम करनेका प्रस्ताव रखा है। पूंजी और श्रमके बीच इस पारस्परिक सद्भाव और सहयोगकी भावनाके लिए समाज और उसके कर्मचारी बधाईके पात्र हैं।

गोखलेके जीवनसे सम्बन्धित कीमती पाण्डुलिपियो और 'ज्ञानप्रकाश' की पिछले अस्सी वर्षोंकी फाइलोंके जल जानेसे जो क्षति हुई है, वह अपूरणीय है। किन्तु, प्रकृति हमें इसी प्रकार गहरे धक्के पहुँचाकर याद दिलाती है कि ईश्वरके अतिरिक्त

और कुछ भी स्थायी और अनश्वर नहीं है और इसलिए हमारे हाथमें तो बस इतना ही है कि परिणामोंकी कोई चिन्ता किये बिना हम ईमानदारी और नम्रताके साथ ईश्वरकी इच्छाका पालन करनेके लिए श्रम करते रहें।

इस दुर्घटनाके कारण जिन कार्योंमें व्यवधान पड़ गया है, उन्हें यथासम्भव शीघ्रसे-शीघ्र पुनः प्रारम्भ कर देनेके लिए समाजके सदस्यगण बड़े साहस और बहादुरीके साथ प्रयत्नशील हैं। प्रश्न यह है कि इसमें जनता किस प्रकार सहायता करेगी। भारतके कई स्थानोंसे आश्वासन आये हैं। आशा करनी चाहिए कि ये आश्वासन अविलम्ब और बिना किसी दिखावे या झंझटके पूरे कर दिये जायेंगे। समाजके राजनीतिक दृष्टिकोणसे कोई चाहे जितना भी असहमत हो, इससे कौन इनकार कर सकता है कि उसके सदस्य ईमानदारी और निस्वार्थ भावसे समाजके लिए श्रम कर रहे ह और वे सब सच्चे देशभक्त हैं? इसके महान् सामाजिक कार्य, जो किसी भी तरह राजनीतिक कार्योंसे कम महत्त्व नहीं रखते, बेजोड़ हैं। मुझे आशा है कि 'यंग इंडिया' के पाठक समाजकी अपीलपर चन्दा भेजकर इसकी सेवाओंके प्रति अपनी कद्रदानीका और जहाँ-कहीं वे इसके राजनीतिक विचारोंसे असहमत हों वहाँ अपनी सहिष्णुताका परिचय देंगे।

मैसूरमें चरखा

जिला कांग्रेसमें भाषण देते हुए जिलेके डिप्टी कमिश्नर और मैसूर जिला बोर्डके अध्यक्षने बताया कि कताई एक उपयोगी सहायक धन्धा है और गरीब परिवारोंके लिए पारिवारिक आयमें वृद्धि करनेकी दृष्टिसे तो विशेष रूपसे उपयुक्त है। कताईके गुण बताते हुए उन्होंने स्थानीय संस्थाओं और जन-सेवी लोगोंसे इसे तत्परताके साथ अपनानेका अनुरोध किया:[1]

> ... यह अधिक लोकप्रिय बने और सभी लोग ... इसे अपनायें, इसके लिए यह जरूरी है कि यजमान, साहूकार, बुद्धिवन्त आदि गाँवके सभी अगुआ लोग कताई शुरू करें। ... में तमाम नगर-परिषदों, पंचायतों, ग्राम-समितियों, सहकारी समितियों और अन्य संगठनोंसे अनुरोध करता हूँ कि वे चरखे जुटायें और उन्हें स्थानीय लोगोंके हाथ बेचें, अपने-अपने शहर या गाँवोंके लिए कमसे-कम एक बुनकर तैयार करें, उसे करघा दें और अपने यहाँके ऐसे लोगों द्वारा काते गये सारे सूतकी दुपट्टियाँ और तौलिये बुनवायें, जो बुढ़ापे, कमजोरी, बीमारी या रोजगारके अभावमें कोई और व्यापार-धन्धा नहीं कर सकते हों। सरकारने अभी हालमें एक आदेश जारी करके यह वादा किया है कि वह बुनाई और कताईके लिए आयोजित प्रदर्शनियों और प्रतियोगिताओंका आधा खर्च उठायेगी। जिला बोर्डको उम्मीद है कि वह अगले साल इस घोषणाका पूरा लाभ उठा सकेगा।

१. यहाँ भाषणके कुछ अंश ही दिये जा रहे हैं।

यहाँ हम सरकार द्वारा कताईका महत्त्व स्वीकार किये जानेका कमसे-कम एक उदाहरण तो देख रहे हैं। इस सीधे-सादे यन्त्रकी सम्भावनाओसे लोग जितना अधिक परिचित होंगे, उनमें इसका उतना ही अधिक प्रचार होगा।

अकालसे राहतके लिए कताई

काठियावाड़ राजकीय परिषद् काठियावाड़, अमरेलीमें और उसके आसपासके क्षेत्रमें अकाल-सहायता कार्यके तौरपर एक खादी केन्द्र चला रही है। वहाँ वास्तवमें अकालकी स्थिति नहीं है, फिर भी पर्याप्त वर्षा न होनेके कारण पिछले तीन वर्षसे औसतसे कम खेती होती रही है। परिणामतः बहुतसे काश्तकारोंकी स्थिति यह हो गई है कि वे किसी तरह खाने-पहनने-भरको अनाज उत्पन्न कर पाते हैं। इसी केन्द्रमें किसानोंकी लगभग एक हजार औरतें हाथ-कताईसे प्राप्त मजदूरीसे अपने-अपने परिवारोंकी अल्प आयको थोड़ा-बहुत बढ़ानेमें योग दे रही हैं। बेकार रहने और अघपेट खाकर दिन काटनेके बजाय, ये स्त्रियाँ कताईके काममें अपनी क्षमता अथवा इच्छाके अनुसार जितना समय लगा पाती हैं, उसके हिसाबसे ये प्रतिमास एकसे लेकर तीन रुपयेतक कमा रही हैं। कताईके चलनके फलस्वरूप उस क्षेत्रके धुनियो, बुनकरो और धोबियोंको भी काम मिल जाता है। इस तरह तैयार की गई खादीको बेचनेमें जरूर मुश्किल पड़ी। मगर इस कठिनाईको हल करनेके लिए श्री अब्बास तैयबजी आगे आये। खादी बेचनेके उद्देश्यसे उन्होंने काठियावाड़के बहुत-से हिस्सोका दौरा किया। इस काममें उन्हे श्रीयुत अमृतलाल सेठ और रामदास गांधीकी भी सहायता मिली। यहाँ खादीको उतना सस्ता बेच पाना सम्भव नही था, जितना सस्ता भारतके कुछ दूसरे हिस्सोमें बनी खादीको बेचा जा सकता है। उन हिस्सोमें तैयार की जानेवाली खादीके सस्ती होनेका कारण यह है कि वहाँ धुनिये, बुनकर, धोबी और यहाँतक कि कातनेवाले भी उतनी मजदूरी नही माँगते या पाते हैं, जितनी कि ये लोग काठियावाड़में माँगते या पाते हैं। लेकिन श्री अब्बास तैयबजीने अपने इलाकेके प्रति लोगोंकी प्रेम और कर्त्तव्यकी भावनाको जगाकर यह काम सफलतापूर्वक सम्पन्न किया। उन्होंने मुझे लिखा है कि लोगोंने कही भी उन्हें निराश नही किया, बल्कि ज्यों-ही उनकी समझमें यह बात आती थी कि इस खादीका क्या महत्त्व है, वे उनके पास जितनी खादी होती थी, सब ले लेते थे। इस खादी और दूसरी खादीके साथ भी एक दिलचस्प बात यह रही है कि जैसे-जैसे इसकी किस्ममें सुधार होता गया है, वैसे-वैसे इसकी कीमत कम होती गई है। और अभी भी खादीकी किस्ममें सुधार और दामोंमें कमीकी काफी गुंजाइश है। कीमतोंमें कमी आना और किस्ममें उत्तरोत्तर सुधार होना धुनाई और कताईमें क्रमिक सुधारपर निर्भर करता है। इन दोनों प्रक्रियाओंपर अधिकाधिक ध्यान दिया जा रहा है। लेकिन, इस सिलसिलेमें जो सबसे उल्लेखनीय बातें हैं, उनमें से एक तो यह है कि यह उन गरीब महिलाओंको रोजी और मजदूरी देनेका एक साधन रही है, जिन्हें इसके बिना न काम मिलता, न मजदूरी; और दूसरी बात यह कि अगर खादीकी माँग जारी रखी जा सके तो इस कामके लिए असीम सम्भावनाएँ हैं।

खादी प्रदर्शनियाँ

देश-भरके खादी कार्यकर्त्ता इस बातका प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं कि खादीको लोकप्रिय बनाने और अन्तमें करघेपर खादीके रूपमें बुने जानेतक रुईको जिन प्रक्रियाओं-से गुजरना पड़ता है, उन प्रक्रियाओंको लोगोंको समझानेकी दृष्टिसे खादी-प्रदर्शनियाँ कितनी उपयोगी हैं। हालमें ही रत्नागिरी जिलेमें चलती-फिरती प्रदर्शनीका आयोजन किया गया। प्रदर्शनी-क्षेत्रमें आठ गाँव आते थे। इन सभी गाँवोंमें हाथ-कताईकी तमाम प्रक्रियाओंका — धुनाई, चरखे और तकलीपर कताई, सूतकी मजबूती जाँचनेके तरीकों आदिका — प्रदर्शन किया गया। देशी रंग, नेताओं द्वारा काते गये सूत, किस्म-किस्मकी खादी और कुछ दूसरी स्वदेशी चीजें भी दिखाई गईं। जब इन गाँवोंमें प्रदर्शनी चल रही थी, उसी बीच वहाँ खादी बेचनेके लिए फेरियाँ भी लगाई गईं। एक वाचनालय की भी व्यवस्था कर दी गई थी, जिसमें खादी-सम्बन्धी साहित्य पढ़ा जा सकता था। मैजिक लैन्टर्नसे पर्देपर तस्वीरें भी दिखाई गईं। गायक-वृन्दोंने गीत और भजन गाये। लोगोंको अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारक कोषमें चन्दा देनेके लिए भी प्रोत्साहित किया गया और ऐसी व्यवस्था की गई जिससे वे वहींपर चन्दा दे सकें। जाने-माने वक्ताओंने खादीपर भाषण दिये। सारा प्रबन्ध बहुत ही कुशल और मितव्ययी ढंगसे किया गया था। कुल खर्च ६२२ रुपये ९ आने ११ पाई आया। इसमें से कुछ खर्च तो खादीकी बिक्रीसे हुए लाभसे ही निकल आया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऐसी प्रदर्शनियोंका शिक्षणकी दृष्टिसे बड़ा महत्त्व है; और हो सकता है आगेके अनुभवोंके आधारपर इस दिशामें सुधार होनेपर इन प्रदर्शनियों-के लिए ऊपरसे कुछ खर्च न करना पड़े और प्रदर्शनियोंसे हुई आयसे ही सारा खर्च निकल जाये।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १०-६-१९२६

६६२. खादीकी प्रगति

खादी प्रतिष्ठानने तीन सालमें खादीके उत्पादन और उसकी बिक्रीमें जो प्रगति की है, उसका अन्दाजा देनेवाला एक लेखाचित्र[1] नीचे दिया जा रहा है। पाठकगण एक नजरमें देख सकते हैं कि प्रतिष्ठानने उत्पादन और बिक्रीमें कितनी अधिक प्रगति की है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १०-६-१९२६

१. लेखाचित्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

६६३. निरर्थक आश्वासन

भारत सरकारने एक विज्ञप्तिमें जनताको सूचित किया है कि दक्षिण आफ्रिकाकी संघ सरकारने निम्नलिखित आश्वासन दिया है:

> संघ सरकारका फ़िलहाल ऐसा कोई इरादा नहीं है कि वह खनिकों और कर्मचारियोंसे सम्बन्धित विनियमोंको उन क्षेत्रोंसे बाहर कहीं और भी लागू करे जिन क्षेत्रोंमें वे 'ताज बनाम हेलडिक स्मिथ' के मामलेमें सर्वोच्च न्यायालयके ट्रान्सवाल प्रान्तीय विभागके निर्णयसे पूर्व लागू थे। उस मामलेमें यह निर्णय दिया गया था कि ये विनियम, जो वास्तवमें दक्षिण आफ्रिकामें १९११ से और कुछ प्रान्तोंमें तो उससे भी अनेक वर्ष पहलेसे लागू हैं, उस अधिनियमके खण्डोंके अन्तर्गत वैध नहीं हैं जिस अधिनियमके अधीन ये जारी किये गये हैं।

विज्ञप्तिमें आगे कहा गया है कि:

> भारत सरकारको यह आश्वासन भी दिया गया है कि अगर भविष्यमें कभी इन विनियमोंकी व्याप्तिको इस प्रकार बढ़ानेकी कोई तजवीज की गई तो संघकी सीमामें रहनेवाले ऐसे तमाम पक्षोंको, जिनका इस मामलेसे सम्बन्ध हो सकता है, अपनी-अपनी बात कहनेका उचित अवसर दिया जायेगा।

मैं इन दोनों आश्वासनोंको मात्र धोखेकी टट्टी मानता हूँ। कारण, संघ-सरकार अपनी लोक-सभामें पूछे गये प्रश्नोंके उत्तरमें बार-बार यही बात कहती रही है, जो अब उसने भारत सरकारसे कही है अर्थात् यह कि फिलहाल उसका ऐसा कोई इरादा नहीं है कि इन विनियमोंको वह उन क्षेत्रोंके अलावा और कहीं लागू करेगी जिन क्षेत्रोंमें वे उक्त निर्णयसे पहले लागू थे। नये विधेयकका दंश तो इस बातमें छिपा हुआ है कि वह सरकारको, यदि उसे ठीक लगे तो, कितना-कुछ कर सकनेका अधिकार देता है। यह वतनियों और दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंके सिरपर एक कमजोर धागेसे लटकती हुई तलवारके समान है, क्योंकि इसका प्रयोग भारतीयोंके विरुद्ध भी ठीक उसी तरह किया जा सकता है, जिस तरह वतनियोंके विरुद्ध। इसलिए, यह विधेयक ज्यादासे-ज्यादा जितना अपमानजनक बनाया जा सकता है उतना अपमानजनक है। हाँ, यह भारतीयोंके भौतिक हितोंको उतना अधिक प्रभावित नहीं करता जितना कि वर्ग-क्षेत्र विधेयक (क्लास एरियाज बिल) करता है। मगर इसका कारण संघ-सरकारकी सद्भावना नहीं है बल्कि यह है कि रंग-भेद विधेयकमें जिस प्रकारके साधारण या विशेष कुशलताकी अपेक्षा रखनेवाले श्रमका विचार किया गया है उस तरहका श्रम भारतीय आम तौरपर नहीं किया करते हैं। उनकी भौतिक समृद्धिपर तो प्रभाव पड़ता है उनके व्यापार और उनके रिहायशी

अधिकारोंपर लगाये जानेवाले प्रतिवन्धोंका और इस उद्देश्यकी प्राप्तिका प्रयत्न वर्ग क्षेत्र विधेयकके द्वारा किया जा रहा है, जिसपर कि गोलमेज कान्फ्रेन्स विचार करनेवाली है। रंगभेद विधेयक सरकारकी मनोवृत्तिका संकेत देता है और 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के संवाददाताने ठीक ही कहा है कि संघ सरकार द्वारा एक गोलमेज कान्फ्रेन्स करनेका प्रस्ताव स्वीकार किया जाना शिष्टताका प्रदर्शन-मात्र है। इसका अर्थ कोई यह नहीं लगाये कि संघ-सरकारके दृष्टिकोणमें परिवर्तन हो गया है। इस निष्कर्षकी पुष्टि वादकी इस खवरसे भी होती है कि वतनियोंके सम्वन्धमें अपनी नीति वताते हुए जनरल हर्टजोगने यह स्पष्ट कर दिया है कि वे संघ संसदमें वतनियों और रंगदार लोगोंको तो सीमित प्रतिनिधित्व देनेको तैयार हैं, किन्तु भारतीयोंको किसी तरहका प्रतिनिधित्व नहीं देंगे। अतएव 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के संवाददाताने ठीक ही कहा है कि कुल नतीजा यह निकलता है कि जनरल हर्टजोगकी नजरोंमें भारतीयोंका स्थान वतनियोंकी तुलनामें वहुत नीचा है। सच तो यह है कि सरकार भारतीयोंको एक आवश्यक वुराई मानते हुए उन्हें तवतक वरदाश्त करती रहेगी जवतक वह उन्हें दक्षिण आफ्रिकासे विलकुल उखाड़ वाहर नहीं कर पाती। इसलिए रंग-भेद विधेयकको संघ सरकारकी दूसरी कारगुजारियोंसे अलग करके नहीं देखा जा सकता। यह उसकी निश्चित नीतिका हिस्सा और उस नीतिको समझनेकी कुंजी है।

फिर संघ-सरकार द्वारा दिये गये दूसरे आश्वासनका भी कोई मूल्य नहीं है। वह कहती है कि अगर भविष्यमें कभी इन विनियमोंकी व्याप्तिको वढ़ानेकी कोई तजवीज की गई तो संघकी सीमामें रहनेवाले ऐसे तमाम पक्षोंको, जिनका इस मामलेसे सम्वन्ध हो सकता है, अपनी-अपनी वात कहनेका उचित अवसर दिया जायेगा। यह क्या कोई नया अधिकार है — विशेषकर यह देखते हुए कि संघ-सरकारको मालूम है कि भारतीयोंके पीछे मताधिकारका कोई वल नहीं है? और अगर "संघकी सीमामें रहनेवाले तमाम पक्षों" का मतलव यह है कि संघके वाहरके किसी भी पक्षको अर्थात् भारत-सरकार और साम्राज्य-सरकारको अपनी वात कहनेकी भी इजाजत नहीं दी जायेगी तो निश्चय ही यह आश्वासन निरर्थक ही नहीं, इससे भी वुरा है, क्योंकि यह घोषणा किसी रियायतकी घोषणा नहीं, वल्कि प्रतिवन्धकी घोषणा है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १०-६-१९२६

६६४. प्रार्थना क्या है?

चिकित्सा शास्त्रके एक स्नातकने पूछा है:

> प्रार्थनाका सबसे अच्छा रूप क्या है? इसमें कितना समय लगाना चाहिए? मेरे विचारसे तो न्याय करना ही सबसे अच्छी प्रार्थना है, और जो व्यक्ति ईमानदारीसे ऐसा चाहता है कि वह सबके साथ न्याय करे, उसे और प्रार्थना करनेकी कोई जरूरत ही नहीं है। कुछ लोग संध्या करनेमें बहुत समय लगाते हैं, और उनमें से ९५% लोग, उस समय जो मन्त्रोच्चार करते हैं, उसका कोई अर्थ ही नहीं जानते। मेरे विचारसे, प्रार्थना मातृ-भाषामें की जानी चाहिए। आत्मापर इसीका प्रभाव हो सकता है। मैं तो कहूँगा कि सच्चे मनसे की गई क्षण-भरकी प्रार्थना भी पर्याप्त है। ईश्वरसे इतना वादा कर देना काफी है कि मैं पाप नहीं करूँगा।

प्रार्थनाका मतलब है श्रद्धापूर्वक ईश्वरसे किसी वस्तुकी माँग करना। लेकिन, इस शब्दका प्रयोग किसी भक्तिपूर्ण कार्यके लिए भी किया जाता है। पत्र-लेखकके मनमें जो बात है, उसके लिए पूजा अधिक उपयुक्त शब्द होगा। किन्तु, परिभाषाकी बात छोड़ दीजिए तो सवाल यह है कि करोड़ों हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी और अन्य धर्मावलम्बी अपने स्रष्टाकी आराधनाके लिए निर्धारित समयमें प्रतिदिन क्या करते हैं? मुझे तो लगता है कि वे जो-कुछ करते हैं वह स्रष्टाके साथ हृदयके एकाकार होनेकी उत्कंठाकी अभिव्यक्ति, उसकी कृपाकी याचना है। तो यहाँ मुख्य बात यह नहीं है कि उस समय कोई किन शब्दोंका उच्चार या जाप करता है, बल्कि यह है कि उसका मनोभाव कैसा है। और प्राचीनकालसे प्रार्थनाके लिए प्रयुक्त होते आ रहे शब्दोंके साथ जो एक विशेष भाव जुड़ गया है, उसके कारण अकसर उनमें ऐसा प्रभाव होता है जो प्रभाव उन शब्दोंके मातृ-भाषामें अनुवाद कर दिये जानेपर नहीं रह जाता। इस प्रकार अगर गायत्रीका, मान लीजिए, गुजरातीमें अनुवाद करके उसका जाप किया जाये तो उसमें वह प्रभाव नहीं होगा जो मूलमें है। राम नामका उच्चार करोड़ों हिन्दुओंके मनको तत्काल प्रभावित करेगा, किन्तु "गॉड" (ईश्वर) शब्दके उच्चारका उनपर वैसा कोई प्रभाव नहीं होगा, यद्यपि वे उस शब्दका अर्थ समझते हैं। आखिरकार दीर्घकालतक प्रयोगमें रहने और प्रयोगके साथ पवित्रताका भाव जुड़ा रहनेसे शब्दोंमें भी एक विशेष शक्ति तो आ ही जाती है। इसलिए अत्यन्त प्रचलित मन्त्रों या श्लोकोंके लिए प्राचीन संस्कृत रूप कायम रखनेके पक्षमें बहुत-कुछ कहा जा सकता है। और यह कहनेकी तो जरूरत ही नहीं है कि उनका अर्थ अच्छी तरह समझ लेना चाहिए।

इन भक्तिपूर्ण कार्योंमें कितना समय लगाया जाये, इसके बारेमें कोई निश्चित नियम नहीं है। यह बात व्यक्तिकी भावनापर निर्भर करती है। व्यक्तिके दैनिक

जीवनमें ये क्षण बड़े मूल्यवान हैं। ये क्रियाएँ हमें नम्र और हमारे मन शान्त बनानेके लिए होती हैं, और इनके द्वारा हममें इस बातकी प्रतीति करनेकी क्षमता आती है कि उस परमशक्तिमानकी इच्छाके बिना सृष्टिमें कुछ भी नहीं होता और हम "उस कुम्हारके हाथमें मिट्टीके समान" हैं। इन क्षणोंमे व्यक्ति अपने निकट अतीतके आचरणपर विचार करता है, अपनी कमजोरियोंको स्वीकार करता है, ईश्वरसे क्षमा-याचना करते हुए अच्छा बनने तथा अच्छे कर्म करनेकी शक्ति पानेकी कामना व्यक्त करता है। किसीके लिए एक क्षण ही काफी हो सकता है और किसीके लिए चौबीस घंटे भी बहुत कम हो सकते हैं। जो लोग अपने भीतर निरन्तर ईश्वरकी उपस्थितिका अनुभव करते रहते हैं, उनके लिए श्रम ही प्रार्थना है। उनका जीवन तो एक सतत प्रार्थना या पूजा है। फिर, जो लोग करनेके नामपर सिर्फ पाप करते हैं, विषय-वासनामें रत रहते हैं, और अपने ही लिए जीते हैं, उनके लिए कितना भी समय काफी नहीं है। अगर उनमें धैर्य, आस्था और शुद्ध बननेकी इच्छा हो तो वे तबतक प्रार्थना करते जायेंगे जबतक कि उन्हें अपने भीतर ईश्वरकी पावनकारी उपस्थितिका अनुभव न होने लगे। हम सामान्य मर्त्यजनोंको इन दोनोंके बीचका मार्ग अपनाना चाहिए। हम इतने ऊपर नहीं उठ चुके हैं कि कह सकें, हमारे सारे कार्य प्रार्थना और आराधना ही हैं, और शायद हम इतने पतित भी नही हो गये हैं कि सिर्फ अपने लिए ही जियें। इसलिए, सभी धर्मोंमें सामान्य आराधनाके लिए विशेष समय निर्धारित कर दिये गये हैं। किन्तु, दुर्भाग्यकी बात है कि आजकल इस सबने या तो पाखण्डका रूप ले लिया है या मात्र यान्त्रिक और औपचारिक क्रियाका। इसलिए आवश्यकता इस बातकी है कि इन आराधनाओंके समय लोगोंके जो मनोभाव होते हैं, उन्हें बदला जाये।

और जहाँतक ईश्वरसे कुछ माँगनेके अर्थमें बिलकुल व्यक्तिगत प्रार्थनाका सम्बन्ध है, यह तो मातृभाषामें ही की जानी चाहिए। इससे अच्छा तो कुछ हो ही नहीं सकता कि हम ईश्वरसे प्राणि-मात्रके प्रति न्यायका व्यवहार करनेकी शक्ति देनेको कहें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १०-६-१९२६

६६५. कताईमें सहयोग

मेरे एक प्रिय बन्धु और उनके कुछ मित्रोंके मनमें एक प्रश्न उठा है। इन बन्धुने मुझसे उसका उत्तर माँगा है। प्रश्न है :

> क्या कताईमें सहयोग है? क्या यह वास्तवमें लोगोंको विशुद्ध व्यक्ति-वादी तथा आत्म-केन्द्रित नहीं बना देती है; और क्या उसके प्रभावसे वे उसी तरह नहीं बन जाते जैसे एक ढेरमें पड़े बहुत-से कंकड़, जिनका परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं होता।

मैं जो सबसे संक्षिप्त और निर्णयात्मक उत्तर दे सकता हूँ वह यह कि आप किसी सुसंगठित खादी केन्द्रमें जाकर खुद ही वस्तुस्थितिको देखिए-परखिए। फिर आपको पता चल जायेगा कि सहयोगके बिना कताई सफल हो ही नही सकती।

मगर मैं जानता हूँ कि यह उत्तर संक्षिप्त भले ही हो किन्तु उन लोगोके लिए बेकार है, (और ऐसे लोग ही बहुसख्यक हैं) जो किसी खादी केन्द्रमें जाकर वहाँकी स्थिति देखने-परखनेके लिए समय नहीं निकाल सकते। इसलिए मैं एक खादी केन्द्रका यथासम्भव अच्छेसे-अच्छे ढंगसे वर्णन करके उन्हें इस बातकी प्रतीति करानेकी कोशिश करूँगा।

पिछले साल मद्रासकी एक सहकारी समितिमें बोलते हुए मैंने कहा था कि हाथ-कताईके द्वारा मैं इतनी बड़ी सहकारी समिति स्थापित करनेकी कोशिश कर रहा हूँ, जितनी बड़ी समिति दुनियाने कभी नही देखी है। यह कोई झूठा दावा नही है। हाँ, यह दावा बहुत बडा दावा जरूर हो सकता है। यह दावा झूठा इसलिए नहीं है कि जबतक करोडों लोग कताईके काममें परस्पर सहयोग नहीं करते तबतक इसका उद्देश्य ही सिद्ध नही हो सकता।

इसका उद्देश्य है, मजबूरीकी बेकारी और मुख्य रूपसे इस बेकारीसे उत्पन्न गरीबीको दूर भगाना। यह तो मानना ही पड़ेगा कि यह उद्देश्य महान् है। अतएव इसके लिए प्रयत्न भी उतना ही अधिक करना है।

यह सहयोग प्रारम्भिक अवस्थासे ही शुरू होना चाहिए। अगर कताई लोगोंको आत्म-निर्भर बनाती है तो साथ ही यह लगभग हर कदमपर पारस्परिक निर्भरताकी आवश्यकता समझनेका भी अवसर देती है। किसी साधारण कत्तिनको यह भरोसा होना चाहिए कि उसके फालतू सूतको लोग खरीद ही लेंगे। वह उसे बुन नहीं सकती। बहुत सारे लोगोंके सहयोगके बिना उसके सूतकी बिक्रीका निश्चित प्रबन्ध नहीं होगा। जिस प्रकार खेती करनेमें और खेतीकी उपजकी खपतके सम्बन्धमें करोड़ों लोगोंके सहयोगके कारण ही, वह सहयोग कितना भी थोड़ा क्यों न हो, कृषि-कार्य सम्भव है, उसी प्रकार कताई भी तभी सफल होगी जब उतने ही बड़े पैमानेपर सहयोग हो।

किसी भी खादी-केन्द्रके कामको लीजिए। केन्द्रीय कार्यालयमें कातनेवालोंके लिए बिनौलेवाली रुई जमा की जाती है, फिर ओटनेवाले शायद केन्द्रमें ही उसकी ओटाई करते हैं। उसके बाद वह रुई धुननेवालोंके बीच बाँट दी जाती है, जो उसे धुनकर उसकी पूनियाँ बनाकर वापस कर देते हैं। अब ये पूनियाँ कताईके लिए कातनेवालोंके बीच बाँट दी जानेको तैयार हैं। कातनेवाले अपना-अपना सूत लेकर प्रति सप्ताह केन्द्रमें आते हैं और अपना सूत देकर और नई पूनियाँ तथा मजदूरी लेकर चले जाते हैं। इस प्रकार प्राप्त सूत बुननेके लिए बुनकरोंको दे दिया जाता है, जो उससे खादी बुनकर बिक्रीके लिए फिर केन्द्रको लौटा देते हैं। अब इस खादीको खादी पहननेवालों अर्थात् जनताको बेच देना है। इस प्रकार केन्द्रीय कार्यालयको तमाम धर्मों, जातियों और रंगोंके लोगोंसे निरन्तर एक मानवीय सम्पर्क बनाये रखना पड़ता है। कारण, केन्द्रको कोई लाभ नहीं कमाना है, उसे अत्यन्त जरूरतमन्द लोगोंके अलावा और किसीकी एकान्त चिन्ता नहीं करनी है। केन्द्र उपयोगी हो सके, इसके लिए उसे हर तरहसे दोषरहित होना चाहिए। उसके और इस विशाल संगठनके संघटकोंके बीचका सम्बन्ध विशुद्ध रूपसे आध्यात्मिक और नैतिक है। इस प्रकार कताई केन्द्र एक सहकारी समिति है और ओटनेवाले, धुननेवाले, बुननेवाले तथा खरीदार लोग इसके सदस्य हैं — सभी पारस्परिक सद्भावना और सेवाके सूत्रमें आबद्ध हैं। इस समितिमें एक-एक चीजके बारेमें इस बातका लगभग निश्चित पता रखा जा सकता है कि वह कब, किसके हाथोंसे और किस स्थितिसे गुजर रही है। इन केन्द्रोंके विकासके साथ-साथ होगा यह कि देशके ऐसे युवक, जिनके हृदयमें देशभक्तिकी शिखा प्रदीप्त है और जिनकी ईमानदारीको दुनियाका कोई भी प्रलोभन डिगा नहीं सकता, इन केन्द्रोंकी ओर आकृष्ट होते जायेंगे और फिर ये ऐसे प्रकाश-केन्द्रोंका कार्य करेंगे — बल्कि ऐसा कहें कि इन्हें करना चाहिए — जो ग्रामवासियोंके बीच स्वास्थ्य, सफाई और छोटे-मोटे रोगोंके घरेलू उपचारके बुनियादी ज्ञानकी रश्मियाँ विकीर्ण करेंगे और उनके बच्चोंके बीच ऐसी शिक्षाकी ज्योति जलायेंगे जो वास्तवमें उनकी आवश्यकताओंके उपयुक्त हों। अभी वह समय नहीं आया है। हाँ, शुरुआत हो गई है। लेकिन यह आन्दोलन धीरे-धीरे ही आगे बढ़ेगा। जबतक कि खादी भी बाजारमें घी या उससे भी अच्छा उदाहरण लीजिए तो डाक टिकटोंकी तरह बिक्रीकी बहुत ही आम चीज नहीं बन जाती तबतक कोई ठोस नतीजा दिखा सकना असम्भव है। इस समय तो बहुत सारी शक्ति लोगोंको यह शिक्षा देनेमें लगानी है कि वे दूसरे सभी कपड़ोंका मोह छोड़कर सिर्फ खादी ही खरीदें — ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कोई बच्चा अपनी माँके हाथों पकाये चावलके बारेमें क्षण-भरको भी यह सोचे बिना कि वह चावल कैसा है और उसमें कितना खर्च लगा है, उस चावलको खाकर पूरे सन्तोषका अनुभव करेगा। और अगर वह यह सोचने भी बैठेगा कि वह चावल कैसा है और उसमें कितना खर्च हुआ है तो वह पायेगा कि उसकी माँने उसे जिस मेहनत और स्नेहसे पकाया है, उसके कारण यह किसी दूसरे चावलसे कई गुना बेशकीमती है और जब मादरे हिन्दके बच्चे अपनी नींदसे जागेंगे और देखेंगे कि उसकी बेटियाँ और बेटोंके

हाथों काता और बुना गया सूत अपने गुणोंकी दृष्टिसे उनके लिए कभी भी ज्यादा महँगा नहीं हो सकता तो एक दिन खादी भी माँके पकाये चावलों-जैसी गरिमाको प्राप्त होगी। जब हमें इस सीधे-सादे सत्यका एहसास होगा तब कताई केन्द्रोंकी संख्यामें सौ गुनी वृद्धि होगी, भारतकी अंधकारपूर्ण झोपड़ियोंमें आशाकी एक किरण पहुँचेगी और वह किरण हमारी उस स्वतन्त्रताकी सबसे पक्की नींवका काम करेगी, जिसे हम चाहते तो हैं लेकिन जिसको पानेका रास्ता नहीं जानते।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १०-६-१९२६

६६६. पत्र : जमनालाल बजाजको

साबरमती आश्रम
गुरुवार [१० जून, १९२६][1]

चि० जमनालाल,

तुम्हारा पत्र मिला। मैं चाहता हूँ कि तुम भी वहाँ लम्बे समयतक रह सको और घूम-फिरकर शरीरको अधिक मजबूत बना लो। चक्कर वगैरह बिलकुल बन्द हो जाने चाहिए। उसके लिए मुख्यतया खुली हवा और कसरत ही सही इलाज है। तुम्हारे लिए कमसे-कम दस मीलकी कसरत हमेशा होनी चाहिए। यह जरा भी अधिक है, यह बात मैं नहीं मानता। चर्खा-संघकी समितिकी सभा २६ वीं को है। इसलिए तबतक तो तुम्हारा यहाँ आनेका सवाल नहीं उठता। अभी दिल्ली और रामपुरा आश्रममें रुकनेका लोभ न करो, यह ठीक है। मसूरीमें जितने दिन बिता सको, उतने बिता दो, ऐसा चाहता हूँ। लक्ष्मीदासको कहना कि मुझे समय-समयपर पत्र लिखता रहे। तबीयत खूब सुधार ले। मणिको लेकर बेलाबेन आज शामको आयेगी।

बापूके आशीर्वाद

जमनालाल बजाज
नारायण निवास
मसूरी, यू० पी०

गुजराती पत्र (जी० एन० २८६६) की फोटो-नकलसे।

१. डाककी मुहरसे।

६६७. पत्र: सतीशचन्द्र दासगुप्तको

साबरमती आश्रम
११ जून, १९२६

प्रिय सतीश बाबू,

आपका पत्र मिला। मैं आपके साथ बहस नहीं करूँगा, क्योंकि आपका सोचना बिलकुल दुरुस्त है। खादी-कार्यके लिए तपस्याकी जरूरत है। आप उसके लिए कटिबद्ध हैं। इसलिए मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि ईश्वर आपकी सहायता करे।

अगर हेमप्रभा देवी अपनी इच्छासे अपना सब-कुछ त्याग दें और वे इस तरह अपनेको भार-मुक्त मानकर प्रसन्नताका अनुभव कर सकें तो स्वाभाविक है कि मुझे भी खुशी होगी। मैंने तो एक मित्रकी तरह आगाही-भर कर दी है। मगर आप दोनों वही करें जिस बातके लिए आपकी आत्मा गवाही दे।

बैठककी तिथि बढ़ा दी गई है। अब वह इस महीनेकी २६ तारीखको होगी, ताकि २१को ईदके दिन सभी अपने-अपने घर रह सकें। मैं २६को या उससे पहले आपके आनेका इन्तजार करूँगा।

खेड़ा, कच्छके श्री मुहम्मद हसन चमनके लिए सफरी चरखेके बारेमें मेरा पत्र[1] आपको मिला होगा। अगर न मिला हो तो कृपया वी० पी० से उन्हें एक चरखा भेज दें।

श्री बिड़लाने जो-कुछ किया, उसके बारेमें उन्होंने मुझे लिख भेजा है। आपने इस काममें उनकी रुचि पैदा करके अच्छा किया है। मैंने उन्हें विस्तारपूर्वक लिखा है[2] और कहा है कि वे प्रतिष्ठानकी भरसक सहायता करें।

आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १११८२) की माइक्रोफिल्मसे।

१. देखिए "पत्र: सतीशचन्द्र दासगुप्तको", ३-६-१९२६।
२. देखिए "पत्र: घनश्यामदास बिड़लाको", ८-६-१९२६।

६६८. पत्र : वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको

साबरमती आश्रम
११ जून, १९२५

प्रिय मित्र,

आपकी गश्ती चिट्ठी मिली। आपने 'यंग इंडिया' के ताजा अंकमें सोसाइटीकी[1] क्षतिके बारेमें शायद मेरी कुछ पंक्तियाँ देखी होंगी। मैं सोच रहा हूँ कि अपील किसके नाम निकाली जानी चाहिए। क्या आपको कुछ पता है कि मालवीयजी इस सम्बन्धमें किसीसे कुछ बातचीत कर रहे हैं? ऐसे कुछ पैसेवाले लोग हैं, जिनसे हम दोनों ही कुछ करनेको कह सकते हैं, लेकिन मैं जानता हूँ कि मालवीयजी यह काम अधिक भरोसे और सफलताके साथ कर सकते हैं। क्या किसीने श्री अम्बालाल साराभाईसे बात की है? जमनालालजीको मैं लिखूंगा। अभी तो वे कुछ अजीब-सी स्थितिमें हैं। उन्होंने धनोपार्जन बन्द कर दिया है और जो भी कमा रहे हैं, लगभग सबके बारेमें पहलेसे ही तय कर रखा है कि अमुक कार्योंमें इस धनराशिको लगाना है। मैं जानता हूँ कि अब भी उनके पास कुछ रकम वक्त-जरूरतके लिए पड़ी हुई है। मैं समझता हूँ कि वे कुछ अवश्य भेज देंगे, लेकिन उतना नहीं जितना कि यदि वे पहलेकी-सी हालतमें होते तो मैं उनसे उम्मीद रखता या माँगता।

हृदयसे आपका,

परम माननीय वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री
पूना

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १२०५९) की फोटो-नकलसे।

६६९. पत्र : अमियचन्द्र चक्रवर्तीको

साबरमती आश्रम
११ जून, १९२६

प्रिय भाई,

आपका पत्र मिला। मैं सोच रहा था कि मेरा पत्र कहीं भटक तो नहीं गया। जवाब मिलनेमें देर होनेका दुःखद कारण अब मालूम हुआ है। मगर खुद आपने तो अभीतक, आपपर जो विपत्ति पड़ी, उसकी कोई चर्चा नहीं की है। आपका मन शान्त हो, इसमें मैं क्या सहायता दे सकता हूँ? शान्ति तो अपने भीतरसे ही प्राप्त होगी और उसका रास्ता है, अपने मनको प्रभुमें लगाना और उसमें अटूट विश्वास

१. सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी।

रखना। जो व्यक्ति यह अनुभव करता है कि ईश्वर उसके भीतर विद्यमान है और वह बराबर उसके साथ है, उसे एकाकीपनका अनुभव हो ही नहीं सकता। मुझे जो-कुछ शान्ति मिली है, इसी विश्वासके बलपर मिली है कि हर चीजके पीछे ईश्वरका हाथ है। फिर विपत्तियाँ विपत्तियाँ नहीं रह जातीं। वे हमारी आस्था और दृढ़ताकी परीक्षा करती हैं। प्रभुसे प्रार्थना है कि ऊपरसे देखनेमें विपत्ति-जैसे लगनेवाले इस प्रसंगपर आपके मनको शान्ति प्राप्त हो।

हृदयसे आपका,

श्री अमियचन्द्र चक्रवर्ती
तीर्थनिवास, पुरी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १२०६०) की फोटो-नकलसे।

६७०. पत्र : जेठालाल हरिकृष्ण जोशीको

११ जून, १९२५

यदि भाई नृप्रसादको तुम्हारी जरूरत न जान पड़े और जमनादास आपको चाहे तो आप वहाँ जम जाइए। इससे अधिक अच्छा शिक्षाका क्षेत्र मैं आपके लिए कहाँसे खोज सकूँगा। जो चीज मैं बताऊँगा वह आजकल प्रचलित दृष्टिसे नीरस ही होगी।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (एस० एन० १०९२२) की माइक्रोफिल्मसे।

६७१. पत्र : फूलचन्द कस्तूरचन्द शाहको

साबरमती आश्रम
शुक्रवार, ११ जून, १९२६

भाई फूलचन्द,

तुम्हारे दो पत्र मिले। जमनादासका कार्ड शायद तुम फाइल करना चाहो, इसलिए वापस भेजता हूँ। उसे मैंने लिखा है कि उसे पैसेकी माँग मुझसे ही करनी चाहिए थी, क्योंकि हमारी विषम आर्थिक स्थितिके कारण पैसा देनेका तुम्हारे पास कोई साधन नहीं है। फिनलैंड जाना मुल्तवी रखा है, यह बात बहुत करके मैं तुम्हें लिख चुका हूँ। देवचन्दभाईको भी उत्तर भेज चुका हूँ। आज दीवान साहबका उत्तर आया है, वह भी मैंने उन्हें भेजा है। वे लिखते हैं कि वे इस माहके आखिरमें आयेंगे। रिपोर्ट मिली। देख जाऊँगा। परिषद्की तारीख तय करनेमें ढील हो रही है, यह बात मुझे भी खटकती है। लेकिन मैं पंखहीन हो गया हूँ। इसलिए ऐसी प्रत्येक

बातके सम्बन्धमें मुझे राह देखनेकी बात ही सूझती है। मणिलालने रेवाशंकरभाईके पास ३२ हजार रुपयेकी रकम जमा करवाई है, यह तो बिलकुल सच है; लेकिन अभी हम उसका उपयोग नही कर सकते। मणिलालको अभी तत्सम्बन्धी अधिकार-पत्र आना बाकी है। वे जब राजकोटसे वापस आये तब उन्होंने मुझसे कहा था कि यह पत्र थोड़े समयमे आ जायेगा। उस पैसेके मिलनेमें हमें देर हो या न हो, लेकिन जिन पैसोंके लिए मैं बँध गया हूँ वे तो मैं अवश्य चुकाऊँगा। राजकोटके स्कूलके सम्बन्धमें मैंने वल्लभभाईके साथ बात की है। तुम्हे जब जो चीज चाहिए, जरूर मँगवा लेना। राजकोट, जेतपुर आदिमें अन्त्यज शिक्षक तैयार करनेके लिए मैं कपास देनेको तैयार हूँ। भाई बलवन्तराय आ गये हैं। मैंने उनसे कहा है कि वे खादी बेचनेके लिए सौ रुपये रखें, यह ठीक है; और बुनकरोको देनेके लिए जब जितनी जरूरत जान पड़े, उतनी रकम मँगायें। भाई शम्भूशंकर यहाँ हैं। उनके साथ मैं गारियाधारके बारेमे बातचीत कर रहा हूँ। मैं देखता हूँ, उन्होंने बहुत किफायतसे काम लिया है। ऐसा लगता है कि गारियाधारका काम सबसे सस्ता है। मूलचन्दभाईको अन्त्यज आश्रमके लिए साढ़े पाँच हजार भेज चुका हूँ। भाई बलवन्तरायने बोटादकी अन्त्यज शालाके लिए जनवरीतक पाँच सौ रुपयेकी जरूरत बताई थी; ये उन्हे उनकी जमानतपर दिये हैं। अब तुम्हारी किसी बातका जवाब बाकी नही रहता।

गुजराती प्रति (एस० एन० १०९२३) की फोटो-नकलसे।

६७२. पत्र : चुन्नीलाल डी० गांधीको

साबरमती आश्रम
११ जून, १९२६

भाईश्री चुन्नीलाल,

आपका पत्र और आपके मित्रकी ओरसे भेजी हुण्डी मिली। पैसोंका उपयोग खादी प्रचारके निमित्त करना चाहता हूँ।

श्रीयुत सी० डी० गांधी
मार्फत—टाटा मिल्स लिमिटेड
बम्बई हाउस, ब्रूस स्ट्रीट
फोर्ट, बम्बई

गुजराती प्रति (एस० एन० १९६११) की माइक्रोफिल्मसे।

६७३. पत्र : देवचन्द पारेखको

साबरमती आश्रम
शुक्रवार, ११ जून, १९२६

भाई देवचन्दभाई,

इसके साथ दीवानजीका पत्र है। अब इस माहके अन्ततक तो राह देखनी ही चाहिए।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९६१२) की माइक्रोफिल्मसे।

६७४. पत्र : कान्तिलाल ह० पारेखको

साबरमती आश्रम
११ जून, १९२६

भाईश्री कान्तिलाल,

तुम्हारा सारमूलक पत्र मिला। तुमने लिखा सो ठीक किया। अब भी जो पूछना हो, सो निस्संकोच पूछना। खादीके कामका दायित्व तुम्हारे और तुम-जैसे लोगोंके कन्धोंपरसे तबतक नहीं हटाया जा सकता जबतक ऐसे व्यक्ति नहीं मिल जाते जो औरोंपर कम बोझ डालें और जो तुम्हारे समान शक्तिवाले हों अथवा जबतक वे खादीके काममें आत्मनिर्भर नहीं हो जाते। खादीके प्रचारके साथ-साथ सरल जीवनके प्रचारका कार्य भी चल ही रहा है। जबतक हमारी कुछ-एक बुरी आदतें दूर नहीं होतीं, तबतक खादी व्यापक नहीं होगी।

खादीको व्यावहारिक बनानेका अर्थ यदि यह किया जाता है कि वह मिलके कपड़ेसे होड़ करने लगे तो यह बात मैं लगभग असम्भव मानता हूँ। धर्मको किसी भी दिन होड़में नहीं डाला जा सकता। मिलवाले तो खादीका नाश करनेके लिए मिलका कपड़ा मुफ्त भी बेच सकते हैं, लेकिन क्या हम खादी इस तरह बेच सकते हैं? व्यापारमें तो चीजोंको मुफ्त बेचनेतक की होड़ होती है।

वहाँके कार्यकी सारी टीका सुननेके लिए मैं तैयार हूँ, और यदि उचित जान पड़े तो वे सब दोष निकालनेके लिए भी तैयार हूँ। यदि यह शिकायत है कि कार्यकर्त्तागण निजी आदमी हैं, इसलिए उस कार्यालयकी माँगें तुरन्त स्वीकार की जाती हैं तो मैं जानता हूँ कि यह शिकायत निराधार है। कारण ऐसा करना मेरे स्वभावके विरुद्ध है। हाँ, एक बात सच है। जहाँ विश्वास नहीं बैठता, वहाँ मैं बिलकुल निकम्मा हो जाता हूँ। तुम्हें शिकायत उचित लगी है, इसका कारण यदि तुम मुझे बताओगे तो मुझे प्रसन्नता होगी।

रामदास इस समय जिस तरह खादी बेच रहा है, उससे मुझे तनिक भी क्षोभ नहीं होता। वह लोगोंको बलात् खादी देता है, यह बात नही कही जा सकती। हाँ, यह अवश्य कहा जा सकता है कि लोग शरमसे अथवा परोपकारकी भावनासे खादी लेते हैं। इसमें मुझे कुछ बुराई नही दिखाई देती। खादीका प्रचार पहले-पहल इसी ढंगसे हो सकेगा। खादीपर कारीगरोको जो दाम दिये जाते हैं, उससे कही ज्यादा खर्च होता है। उसमें से जितना बने, उतना बचाना हमारा धर्म है और वह कार्यकर्त्ताकी श्रद्धा और त्यागवृत्तिपर निर्भर करता है। यह सुधार धीरे-धीरे हो रहा है, ऐसा मै मानता हूँ। लेकिन इस बारेमें तुम जितने सुझाव दे सको, उतने देना। जितनेपर अमल हो सकता है, उतने सुझावोंपर हम अवश्य अमल करेंगे।

अब तुम्हारे बारेमें: खादी प्रवृत्तिपर तुम्हारी श्रद्धा किस बातसे कम हो गई है, यदि मैं यह जान सकूँ तो औषधि बता सकता हूँ। बिना वेतन लिये काम करनेकी इच्छाको हमें प्रोत्साहन देना चाहिए। लेकिन ऐसा कितने लोग कर सकते हैं? तुम स्वयं वैसा करो, उससे पहले कितनी ज्यादा जवाबदेही उठानेकी आवश्यकता मालूम होती है? आश्रममें जितने दिन रहना तुम्हे ठीक लगे, उतने दिन अवश्य रह सकते हो। आश्रमने तुम्हे तैयार किया है और पुरस्कार तुम्हारा चरित्र है। तुम सदा उसकी रखवाली करते रहो, उसमें वृद्धि करते रहो, यही उसका बदला है। आश्रम तुमसे यही अपेक्षा कर सकता है। आश्रममें रहकर तुम कबतक सेवा कर सकते हो, यह बात कदाचित् तुम्हारी सुविधापर निर्भर करती है। मनुष्य चिन्तामुक्त अपने आप ही हो सकता है। यदि चिन्ता-मुक्तिका आधार सुविधाओंपर हो तो वह मुक्ति कभी नही मिलती। वहाँ मौसम पूरा होनेपर यहाँ अवश्य आना। उससे पहले तुम्हें जो विशेष लिखना हो सो लिखना। मेरे पत्रमें यदि कोई उत्तर धूरा हो तो उसे पूरा करवाना।

गुजराती प्रति (एस० एन० १०९२७) की फोटो-नकलसे।

६७५. पत्र : चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको

साबरमती आश्रम
१२ जून, १९२६

आपका पत्र मिला। दुर्भाग्य तो आपके सामने आयेगा ही। लेकिन तिरुचेनगोडुमें आपकी उपस्थितिसे जलाभावका सम्बन्ध उतना ही है जितना कि उसी जिलेमें आनेवाले किसी नवागन्तुकसे उसका सम्बन्ध हो सकता है। जो लोग आपपर, प्रतिद्वन्द्विताका आरोप लगाते हैं, वे अनजाने ही आपकी उपस्थितिको आवश्यकतासे अधिक महत्त्व देते हैं। लेकिन, चूँकि इससे आपके गर्वसे फूल उठनेका उतना खतरा नहीं है, इसलिए जो भले लोग आपपर ऐसा आरोप लगाते हैं, उन्हें इस भ्रमसे जितना आनन्द वे प्राप्त कर सकें, करने दीजिए।

फिनलैंड जानेका खयाल अब खत्म हो चुका है और समझ लीजिए कि हालमें उसे दफन भी कर दिया गया है। डा० दलालको ऐसा शक है कि देवदासको हाइड्रोसील हो गया है। अगर उसके लिए ऑपरेशन भी करना पड़े तो कोई बड़ी बात नहीं है। बेशक, मुझे उसकी कोई चिन्ता नहीं है। कारण शायद यह है कि मैं दवा खानेसे जितना डरता हूँ, उतना नश्तर लगवानेसे नहीं।

बेचारा सन्तानम्! मुझे तो यही लगता है कि भारतमें लोगोंको घरेलू झंझटें जरूरतसे ज्यादा हुआ करती हैं, और उसमें भी दक्षिणी प्रान्त तो सबसे आगे दिखाई देता है।

दौरेके प्रबन्धके विषयमें मैं शंकरलालसे बात करूँगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत चक्रवर्ती राजगोपालाचारी
गांधी आश्रम
तिरुचेनगोडु

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०९२९) की फोटो-नकलसे।.

६७६. पत्र: फेनर ब्रॉकवेको

साबरमती आश्रम
१२ जून, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका तार मिला। आपको तारका खर्च उठाना पड़ा, इसके लिए खेद है। अखबारोंके संवाददाता तो पुष्टि किये बिना ही समाचार प्रकाशित कर देते हैं। मेरे फिनलैंड जानेकी चर्चा तो अवश्य हुई थी। लेकिन, अखबारोंने तो यह खबर छाप दी कि सारी व्यवस्था की जा चुकी है, जबकि कुछ भी निश्चित नहीं हो पाया था। अन्तमें तय यह हुआ कि मुझे फिनलैंड नहीं जाना चाहिए। अगर जाता तो आपका निमन्त्रण अवश्य स्वीकार कर लिया होता। मगर हुआ यह कि मुझे आपको यह तार भेजना पड़ा "धन्यवाद! यूरोप नहीं आ रहा हूँ।" आशा है, आपको वह ठीक समयपर मिल गया होगा।

हृदयसे आपका,

श्री फेनर ब्रॉकवे
इंडिपेन्डेन्ट लेबर पार्टी
१३, ग्रेट जॉर्ज स्ट्रीट
लन्दन, एस० डब्ल्यू० १

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११३६१) की फोटो-नकलसे।

६७७. पत्र : कोंडा वेंकटप्पैया गारूको

साबरमती आश्रम
१२ जून, १९२६

प्रिय मित्र,

आपने कितना दुःख-भरा पत्र भेजा है। आपने मुझसे जो अपनत्व दिखाया है, उसके लिए आभारी हूँ। मगर, आखिरकार ये घरेलू परेशानियाँ ही तो मनुष्यके जीवनको अनुभव-समृद्ध बनाती हैं। कारण, इन्ही परेशानियोंको झेलकर हम यह समझ पाते हैं कि समस्त सांसारिक वैभव, सारी सांसारिक समृद्धि और सुख निस्सार हैं। ये हमें अहिंसाकी, दूसरे शब्दोंमें, विशुद्धतम प्रेमकी खूबीको समझ सकनेकी क्षमता प्रदान करती हैं।

यह जानकर खुशी हुई कि आपकी पत्नी और पुत्री, दोनोंके स्वास्थ्यमें सुधार हो रहा है। आशा है, सुधार बराबर जारी रहेगा और उनका स्वास्थ्य स्थायी रूपसे अच्छा हो जायेगा।

हाँ, देवदासका ऑपरेशन हुआ था। उसे पिछले हफ्ते ही अस्पतालसे फुर्सत दे दी गई। इस समय वह मसूरीमें जमनालालजीके साथ स्वास्थ्य-लाभ कर रहा है। मैं फिनलैंड नहीं जा रहा हूँ। जानेकी चर्चा जरूर थी, लेकिन मैंने न जाना ही तय किया।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६१६) की माइक्रोफिल्मसे।

६७८. पत्र : सी० वी० कृष्णको

साबरमती आश्रम
१२ जून, १९२६

प्रिय कृष्ण,

आपका पत्र मिला। सम्मेलनके लिए मेरा निम्नलिखित सन्देश है :

मैं सम्मेलनकी पूर्ण सफलताकी कामना करता हूँ। इसका आयोजन पिनाकिनी सत्याग्रह आश्रममें किया जा रहा है, यह बात अपना जीवन निस्स्वार्थ भावसे देश-हितके लिए अर्पित कर देनेवाले स्वर्गीय हनुमन्तरावकी स्मृतिमें अर्पित श्रद्धांजलि है। आशा है, वहाँ आयोजित किये जानेवाले विभिन्न सम्मेलनोंमें हाथ-कताई और खादीकी आवश्यकतापर जोर दिया जायेगा और जब मैं उस जिलेमें गया हुआ था उस समय

मैंने वहाँके समाजमें अस्पृश्यताका जो कलंक देखा था, वह इस सम्मेलनके प्रयत्नोंके परिणामस्वरूप दूर हो जायेगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६१७) की माइक्रोफिल्मसे।

६७९. पत्र : 'फॉरवर्ड' के सम्पादकको

साबरमती आश्रम
१२ जून, १९२६

प्रिय मित्र,

आपके विशेषांकके लिए मैं देशबन्धुके सम्बन्धमें जो अपना सबसे अच्छा संस्मरण दे सकता हूँ, वह नीचे दे रहा हूँ :

देशबन्धुके ऐहिक जीवनके अन्तिम दिनोंमें मुझे दार्जिलिंगमे उनके साहचर्यका जो सौभाग्य प्राप्त हुआ, उसमें मैंने देखा कि यद्यपि वे रुग्ण थे, तथापि उनका अधिकांश समय स्वदेश-चिन्तनमें ही बीतता था। जब उन्हें ज्वर होता था, उस समय भी वे मेरे साथ देशोत्थानके लिए बनाई अपनी भावी योजनाओंकी चर्चा किया करते थे। मेरे मनमे अकसर यह सवाल उठता है : ईश्वरने हमें देशबन्धु-जैसा महान् व्यक्ति दिया तो क्या हम अपने-आपको उसका योग्य पात्र सिद्ध करनेकी दिशामें यत्किंचित् अथवा पर्याप्त रूपसे प्रयत्नशील हैं ?

हृदयसे आपका,

सम्पादक
'फॉरवर्ड'
१९, ब्रिटिश इंडियन स्ट्रीट
कलकत्ता

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६१८) की फोटो-नकलसे।

६८०. पत्र : गंगाबहन मजमुदारको

सावरमती आश्रम
शनिवार १२ जून, १९२६

पूज्य गंगाबहन,

आपका पत्र मिला। मेरे साथ रहनेवाले व्यक्तियोके प्रति जहाँ आपको अविश्वास है, वहाँ मै क्या कर सकता हूँ? रुईके दो वर्ष पहलेके भाव आदि मैं स्वीकार नही कर सकता। मै तो आजका ही भाव दे सकता हूँ। हाँ, उसके बाद जितना ज्यादा दे सकता हूँ, उतना और देनेका प्रयत्न करूँगा। मैं तो इतना ही चाहता हूँ कि आप अपने किसी विश्वासी व्यक्तिको साथ भेजें और वह तथा मेरे द्वारा नियुक्त व्यक्ति आजकी स्थितिको देखते हुए जो भाव तय करें, वह मैं देनेको तैयार हूँ। मेरी विनती है कि आप इस प्रश्नका शीघ्र निबटारा करें।

बापू

श्रीमती गंगाबहन मजमुदार
नागरवाडा, रीचीरोड
अहमदाबाद

गुजराती पत्र (एस० एन० १०९४२) की माइक्रोफिल्मसे।

६८१. पत्र : मूलशंकर कानजी भट्टको

सावरमती आश्रम
शनिवार, १२ जून, १९२६

भाईश्री मूलशंकर,

आपके पत्रसे मैं कुछ भी नहीं समझ सका हूँ। नीति अथवा कानूनकी दृष्टिसे यदि आपका लेना निकलता है तो ही मैं हस्तक्षेप कर सकता हूँ। [इस मामलेमें] इन दोमें से मुझे कोई बात नजर नही आती।

श्री मूलशकर कानजी भट्ट
कालवा देवी, नई मार्केट, कमरा नं० २७
बम्बई – २

गुजराती प्रति (एस० एन० १९६१३) की माइक्रोफिल्मसे।

६८२. पत्र: सोमनाथ पुरुषोत्तमको

सावरमती आश्रम
शनिवार, १२ जून, १९२६

भाई सोमनाथ,

तुम्हारा पत्र मिला। मेरी दृष्टिसे तो सबके पालन योग्य महानियम तो सत्य और अहिंसा है। और जो अपने स्वादपर कावू नहीं रख सकता, वह इन दोमें से एक भी नियमका पालन नहीं कर सकता, ऐसी मेरी मान्यता है। और इन व्रतोंके पालनके लिए किसी योगाभ्यासकी जरूरत पड़ती होगी, ऐसा माना जा सकता है।

श्रीयुत सोमनाथ पुरुषोत्तम
भांगवाड़ी थियेटर
वम्बई – २

गुजराती प्रति (एस० एन० १९६१४) की माइक्रोफिल्मसे।

६८३. पत्र: जगजीवनदास नारणदास मेहताको

सावरमती आश्रम
शनिवार, १२ जून, १९२६

भाईश्री जगजीवनदास,

भाई शम्भूशंकर यहाँ आ गये हैं। उनके साथ सारी बात कर ली है। अभी तो उन्होंने ३०० रुपयेकी माँग की है। उसकी हुंडी इसके साथ है। उसमें से कुछ कर्ज छोटी राशिके हैं; ऐसा उन्होंने कहा है कि वे उन्हें चुका देंगे। आँकड़ोंमें मैं आपके १३०० रुपये देखता हूँ। ऐसा भाई शम्भूशंकरने कहा कि उसका आप ब्याज लेना चाहते हैं। मेरा तो खयाल है, ऐसे सार्वजनिक कार्योंके लिए दिये गये पैसेपर आपको ब्याज नहीं लेना चाहिए। भाई शम्भूशंकरने यह भी बताया कि मुझसे पैसे न मिलनेकी आपको हमेशा शिकायत रही है और इसी कारण आपको अपने पैसे लगाने पड़े हैं। बिना कारण आपको पैसा न भेजनेकी बात मुझे तो बिलकुल भी याद नहीं पड़ती। कुछ एक बातोंको अच्छी तरह समझ लेनेकी खातिर विलम्ब हुआ हो तो हुआ हो; उसके अलावा तो मैंने कभी कोई विलम्ब नहीं किया है। लेकिन, मान लीजिए कि मैंने अनुचित ढील की हो, तो भी आपको अपने पैसे देनेकी जरूरत नहीं थी और यदि दिये हैं तो अब आपको ब्याज लेनेकी इच्छा नहीं करनी चाहिए। ब्याजकी समस्याका समाधान हो जानेपर आपके जो पैसे निकलते हैं, वह मैं परिषद्‌की ओरसे चुकानेको तैयार हूँ। भाई शम्भूशंकरसे वेतनके सम्बन्धमें भी बात हुई

है। जुलाई मासतक वे ५० रुपये लें और बादमें २५ रुपये लें। इस बारेमें सोच-विचारकर शम्भूशंकर लिखेंगे। उनकी योग्यता तो ज्यादा है, लेकिन भाई शम्भूशंकरने मेरे पास हमेशा त्यागी होनेका ही इरादा व्यक्त किया, और बन सके तो सार्वजनिक सेवासे कुछ भी न लेनेका उनका निश्चय था। इस दृष्टिसे मैंने २५ रुपये सुझाये।

गुजराती प्रति (एस० एन० १९६१५) की माइक्रोफिल्मसे।

६८४. स्वाभाविक किसे कहेंगे?

आजकल "स्वाभाविक" शब्दका बड़ा दुरुपयोग हो रहा है। एक भाई लिखते हैं:

> जिस प्रकार मनुष्यके लिए खाना-पीना स्वाभाविक है, उसी प्रकार क्रोध करना भी स्वाभाविक है।

दूसरे भाई लिखते हैं:

> जिस प्रकार हम लोगोंके लिए सोना और उठना-बैठना स्वाभाविक है, उसी प्रकार विषयभोग करना भी स्वाभाविक है। यदि ऐसा न हो तो ईश्वरने हमें विषय-वासना दी ही क्यों है? दुष्ट मनुष्यके प्रति क्रोध करना और साधु-जनकी स्तुति करना हमारा धर्म नहीं है तो ईश्वरने हमें स्तुति-निन्दा करनेकी शक्ति क्यों दी है? सर्वशक्तियोंका सम्पूर्ण विकास ही धर्म क्यों न कहा जाये? इस प्रकार विचार करनेसे क्या यह प्रमाणित नहीं होता कि जितने अंशोंमें अहिंसा धर्म है उतने ही अंशोंमें हिंसा भी धर्म है? थोड़ेमें कहें तो यही प्रतीत होता है कि पुण्य-पाप हमारे दुर्बल मनकी कल्पना-मात्र हैं। आपका अहिंसा-धर्म एकांगी होनेके कारण दुर्बलताका ही सूचक प्रतीत होता है। और इसलिए उसे धर्म न मानकर परम अधर्म क्यों नहीं मान सकते? अहिंसा परमोधर्मः, इसमें अवग्रह छूट गया मालूम होता है, अथवा जान पड़ता है कि इसे मानव-जातिके किसी शत्रुने उड़ा दिया है। कारण, बहुत बार तो अहिंसाका परम अधर्म होना ही बड़ी आसानीसे साबित किया जा सकता है।

ये सब दलीलें किसी एक ही मनुष्यकी नहीं हैं, बल्कि इनमें दो-चार या अधिक लोगोंकी दलीलें मिली-जुली हुई हैं। अवग्रहके छूट जानेकी अथवा उसे उडा देनेकी कल्पना एक वकील मित्रकी है। और उन्होंने यह दलील बहुत ही गम्भीरतासे प्रस्तुत की थी। यदि मनुष्यको भी पशुओंकी श्रेणीमें रख दिया जाये तो अनेक बातें जिन्हें हम अस्वाभाविक मानते हैं, स्वाभाविक सिद्ध हो सकती हैं। परन्तु यदि हम यह स्वीकार करें कि इन दोनोंमें जातिभेद है तो यह नहीं कहा जा सकता कि जो बातें पशुओंके लिए स्वाभाविक हैं, वे सब मनुष्योंके लिए भी स्वाभाविक हैं। मनुष्य ऊर्ध्वगामी प्राणी है। उसे सारासारकी विवेकबुद्धि प्राप्त है। वह बुद्धिपूर्वक परमात्माका

भजन करता है और उसे जानने-पहचाननेका प्रयत्न भी करता है। वह उसकी पहचान कर लेना अपना पुरुषार्थ समझता है। परन्तु यदि यह कहा जा सके कि पशु भी ईश्वरका भजन करता है तो वह अनिच्छासे ही ऐसा करता है, स्वेच्छासे नहीं। पशुके सम्बन्धमें ईश्वरको भजनेकी इच्छाकी कल्पना ही नहीं की जा सकती। और मनुष्य तो अपनी इच्छासे शैतानकी भी पूजा करता है। इसलिए मनुष्यका स्वभाव तो ईश्वरको जानना ही होना चाहिए और है भी। वह जब शैतानकी पूजा करता है तब वह अपने स्वभावके प्रतिकूल कार्य करता है। यदि कोई यही मानता हो कि मनुष्य और पशुमें कोई जाति-भेद नहीं है तो उसके लिए मेरी यह दलील अवश्य निरर्थक है। वह अवश्य यह कह सकता है कि पाप-पुण्य-जैसी कोई चीज़ नहीं। ईश्वर सम्बन्धी जिज्ञासाके स्वभावसे युक्त मनुष्यके लिए तो खाना-पीना इत्यादि क्रियाएँ भी तभी स्वाभाविक हो सकती हैं जब वह उन्हें एक विशेष दृष्टिसे करे। कारण, ऐसा स्वभाव रखनेवाला मनुष्य खानेके लिए अथवा जिह्वा-सुखके लिए नहीं खाये-पियेगा, बल्कि ईश्वरकी पहचान करनेके लिए भी खाये-पियेगा। इसलिए उसके खाने-पीनेमें भी सदा चुनाव-मर्यादा और त्याग ही दिखाई देंगे।

इसी प्रकार विचार करनेसे हमें यह भी मालूम होगा कि विषयभोग मनुष्य-स्वभावके प्रतिकूल है। इन भोगका सर्वथा त्याग करना ही उसके स्वभावके अनुकूल है। और इन भोगका सर्वथा त्याग किये बिना ईश्वरको जानना भी असम्भव है। मनुष्यका धर्म अपने भीतर निहित सर्व-शक्तियोंका सम्पूर्ण विकास करना नहीं है। वह उसका स्वभाव भी नहीं है। उसका धर्म तो ईश्वरके निकट ले जानेवाली सब-शक्तियोंका विकास करना और उसके प्रतिकूल पड़नेवाली तमाम शक्तियोंका सर्वांशमें त्याग कर देना ही है।

जिस प्राणीको ग्रहण और त्यागकी स्वतन्त्रता है, उसका काम पाप-पुण्यका भेद माने बिना ही नहीं चल सकता। पाप-पुण्यका दूसरा अर्थ है त्याज्य और ग्राह्य कर्म। दूसरेकी चीज उससे छीन लेना त्याज्य है, पाप है। हममें अच्छी-बुरी वृत्तियाँ हैं। बुरी वृत्तियोंका त्याग करना हमारा धर्म है। यदि हम वैसा न करें तो हम मनुष्य-जन्म प्राप्त करनेपर भी पशु बन जाते हैं और इसीलिए तो सभी धर्म पुकार-पुकारकर यह कहते हैं कि मनुष्य-जन्म दुर्लभ है और हमें मनुष्य देह अपनी कसौटी करनेके लिए दी गई है। और हिन्दू-धर्म कहता है कि इस कसौटीमें अनुत्तीर्ण होनेपर हमें फिर पशुयोनिमें जाना होगा।

इस संसारमें हिंसा सब जगह व्याप्त है। एक अंग्रेजी वाक्यका अर्थ है, कुदरतके नाखून खूनसे रंगे होते हैं। यदि हम ऊपर-ऊपरसे इसी वाक्यपर विचार करेंगे तो उसका सत्य हमें जगह-जगहपर दिखाई देगा। परन्तु यदि हम मनुष्यको दूसरे प्राणियोंसे ऊँचा मानें और उसमें एक विशेष इन्द्रियका आरोपण करें तो हमें फौरन ही यह मालूम होगा कि इस लाल खूनसे रंगे नाखूनोंवाली कुदरतके बीचमें मनुष्य ऐसे नखोंसे हीन बड़ी शोभा पा रहा है। मनुष्यका यदि कोई अलौकिक कर्त्तव्य है, उसको शोभा दे — ऐसा कोई कर्त्तव्य है तो वह अहिंसा ही है। वह हिंसाके मध्यमें खड़ा

रहकर अपनी अन्तर-गुहाकी गहराईमें जाकर, उससे अनुभव प्राप्त करके कहता है: 'इस हिंसामय संसारमें मनुष्यका धर्म अहिंसा है और वह जितने अंशोमें अहिंसक है उतने ही अशोंमें अपनी जातिका गौरव बढ़ा सकता है।' मनुष्यका स्वभाव हिंसा नहीं बल्कि अहिंसा है, क्योकि वही अपने अनुभवसे निश्चयपूर्वक यह कह सकता है, 'मैं देह नहीं हूँ, आत्मा हूँ, और इस देहका उपयोग आत्माके विकासके निमित्त—आत्म-दर्शनके निमित्त—करनेका मुझे अधिकार है।' और उसमेंसे वह देह-दमनकी, काम, क्रोध, मद, मोह, मत्सर आदि शत्रुओंको जीत लेनेकी नीतिकी रचना करता है, उन्हें जीतनेका भारी प्रयत्न करता है और उसमें वह पूर्ण सफलता प्राप्त करता है। जब वह ऐसी सफलता प्राप्त करता है तभी यह कहा जा सकता है कि उसने मानव जातिके अनुरूप कार्य किया है इसलिए राग-द्वेषादिको जीत लेना कोई अतिमानुषी कार्य नहीं, बल्कि मानुषी कार्य है। अहिंसाका पालन बड़े उच्च प्रकारकी वीरताका लक्षण है। अहिंसामें भीरुताके लिए कोई स्थान नही हो सकता।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १३-६-१९२६

६८५. महुधा खादी कार्यालय

भाई मोहनलाल पण्ड्याने इस खादी कार्यालयका जो विवरण भेजा है, मैं उसमें से निम्न बातें यहाँ देता हूँ।

इस कारखानेकी मार्फत २६१ बहनें सूत कातती हैं। इनमें से २३६ मुसलमान हैं, बाकी ब्राह्मण, बनिया और बारोट जातियोंकी हैं। कातनेवाली बहनोंकी संख्या बढ़ती जाती है। इन बहनोंको अपने रहन-सहनके निर्वाहमें इस कामसे ठीक मदद मिलती है, उन्हें दूसरा काम ढूँढनेके लिए बाहर नही निकलना पड़ता। मुसलमान बहनें चरखेको बीवियोंका नूर कहती हैं।

इस प्रवृत्तिके सिलसिलेमें तीन पीजनेवालों और पाँच पूनियाँ बनानेवाली बहनोंको भी रखा गया है। आठ करघे चल रहे हैं।

सूतका उत्पादन प्रति-मास २० मन है। पहले ६ अंकका सूत काता जाता था। अब १० से कम अंकका सूत काता ही नही जाता और इस कारण प्रति कच्चा सेर पाँच आनेसे कमकी मजूरी नही दी जाती। इस तरह एक मनके १२॥ रुपये हुए और २० मनके २४६ रुपये। इस हिसाबसे प्रत्येक कत्तिनकी औसत कमाई एक रुपयेसे कम हुई। लेकिन भाई मोहनलाल लिखते हैं कि प्रति व्यक्ति औसत कमाई डेढ़ रुपया होगी। यदि ऐसा है तो या तो कत्तिनोंकी संख्या कम होगी अथवा सूतका अंक ऊँचा होगा।

इतने सूतसे हर महीने २७ इंच चौडाई और १८ गज लम्बाईके ६५ थान बुने जाते हैं। इनमें से डेढ गज लम्बे तौलिये और २२ इंचके चौरस छोटे गमछे बनाये जाते हैं। इस खादीकी बिक्री ज्यादातर बम्बईमें होती है। अगहनसे वैशाखतक स्थानीय रूपसे १२९४ रुपयेकी खादी बेची गई। अब कार्यालयमें बाहरकी खादी भी

रखी जाती है। पिछले तीन मासमें ८४२ रुपयेकी कीमतकी बाहरकी खादी बेची गई। खादीकी कीमत लागत मूल्यसे २० प्रतिशत कम रखी जाती है। इस कार्यालयमें ६ कार्यकर्त्ता काम करते हैं।

इस कार्यालयको तथा इसके जैसे अन्य कार्यालयोंके लोगोंसे मैं बंगालका अनुकरण करनेका अनुरोध करता हूँ। बंगालमें सारी खादी स्थानीय खपतको ध्यानमें रखकर ही तैयार की जाती है। इसलिए वहाँ स्थानीय आवश्यकताओंको पूरा करनेका पूरा प्रयत्न किया जा रहा है और इसी कारण महीन तथा बड़ी चौड़ाईकी खादी प्रचुर मात्रामें तैयार की जा रही है तथा इस उत्पादनमें दिन-प्रतिदिन वृद्धि हो रही है। इस तरह स्थानिक आवश्यकताओंको ध्यानमें रखकर काम करनेसे हमें सब वर्गोंके लोगोंके सम्पर्कमें आनेका अवसर मिलता है। उनकी सेवा होती है और खादीका अच्छा प्रचार होता है। इस ढंगसे खादीका प्रचार किया जाये तो अनेक समस्याएँ अपने-आप सुलझ जाती हैं और अन्ततः हमारी प्रगति धीरे-धीरे नहीं, किन्तु दिन-दूनी और रात चौगुनी होती है।

यदि सूतकी किस्मको महीन बनानेकी ओर जितना ध्यान दिया जाता है उतना ही मालकी मजबूती बढ़ानेपर दिया जाये तो सूतको कोई भी बुनकर बुन सकता है। और अनुभव यह बताता है कि यदि सूतकी किस्म सुधारनी हो तो कातनेवालेको पूनियाँ खुद बनानी चाहिए। ऐसा करनेसे कमाई बढ़ेगी, यह तो स्पष्ट ही है।

कार्यकर्त्ताओंको मेरी दूसरी सलाह यह है कि उन्हें रेलवेसे दूरके गाँवोंकी जाँच करनी चाहिए। वहाँके गरीबोंकी स्थिति देखनी चाहिए और वहाँ चरखेके प्रचारके लिए कैसा अवकाश है, इसकी खोज करनी चाहिए। मैं जानता हूँ कि आजके युगमें पले-पुसे हम लोगोंके लिए रेलवेसे दूर जाकर रहना बहुत कठिन है। वहाँ जानेका मतलब यह है कि वहाँसे फिर बार-बार आना-जाना नहीं हो सकता। तथापि सच्ची सेवाकी गुंजाइश तो वहीं है और अन्ततः वहाँ जानेसे ही हमारी समस्या हल होगी। देशके सात लाख गाँवोंमें रेलवे स्टेशन मात्र सात हजारसे कुछ अधिक हैं और यदि सरकार सात लाख गाँवोंमें कर उगाहनेके लिए जा सकती है तो देशके सेवक उनसे उगाहे जानेवाले इस करका प्रतिफल देनेके लिए क्यों वहाँ न जायें? यह नहीं भूलना चाहिए कि कर उगाहनेवाले अथवा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे उसका लाभ उठानेवाले हमारे मध्यमवर्गके लोग ही हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १३-६-१९२६

६८६. अपंग ढोरोंका क्या हो?

एक गोसेवक लिखते हैं:[1]

मेरे गोरक्षा सम्बन्धी लेख जिसने ध्यानपूर्वक पढ़े होंगे, उसके मनमें मेरे विचारों के सम्बन्धमें शंका उठ ही नहीं सकती, क्योंकि मैं अपंग जानवरोंको छोड़ देनेकी तो कल्पना भी नहीं कर सकता। मैं मानता हूँ कि ऐसे ढोरोंकी रक्षा करना हम सबका धर्म है। लेकिन मैंने कई बार बताया है कि इतनेसे जीवदयाका ध्येय पूरा नहीं होता। गोरक्षाका अर्थ बहुत विस्तृत है और सिर्फ कमजोर ढोरोंकी रक्षा करके ही हम गाय-भैंसोंके प्रति अपना धर्म पूरा नहीं कर सकते। गोरक्षाका अर्थ है ढोरोंकी आज जो अनावश्यक हत्या हो रही है, उसकी रोकथाम धार्मिक ढंगसे, यानी किसी भी मनुष्यको नुकसान पहुँचाये बिना करना। आज तो हमने अपने अज्ञान या धर्मान्धताके कारण गोरक्षाका अर्थ अत्यन्त संकुचित कर रखा है और इसी कारण हम अपनी आँखोंके सामने होनेवाले इस अनावश्यक पशु-वधको बर्दाश्त कर रहे हैं। थोड़ी ही समझसे, थोड़े त्यागसे और व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करके हम असंख्य गायों-भैंसों की जान बचा सकते हैं और हिन्दुस्तानके धनकी रक्षा कर सकते हैं। इन पृष्ठोंमें यही बात बतानेका प्रयत्न किया जा रहा है। इस रक्षा-प्रयत्नमें कमजोर ढोर तो सहज ही बच जाते हैं। यह भी कहा जा सकता है कि आज कमजोर जानवर हमारे सिरपर भार-रूप हैं और इससे उनकी सच्ची रक्षा नहीं होती। मेरा दृढ़ विश्वास है कि हम जब गोरक्षाका प्रश्न ज्ञानपूर्वक हल कर लेंगे, तब हम ऐसे ढोरोंकी रक्षा सुन्दर ढंगसे कर सकेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १३-६-१९२६

६८७. पत्र: एन० एस० वरदाचारीको

साबरमती आश्रम
१३ जून, १९२६

प्रिय वरदाचारी,

आपका पत्र पढ़कर तो मैं हैरान रह गया। आप खादीका काम छोड़नेकी इच्छा कैसे कर सकते हैं? हाँ, अगर खादी परसे आपका विश्वास ही उठ गया हो तो अलग बात है। मुझे तो यह उम्मीद थी कि और कोई भले ही छोड़ दे, आप इस

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखक इसमें सामान्यतः गांधीजीके विचारोंका समर्थन करते हुए यह जानना चाहता था कि यदि गांधीजीकी सलाहके अनुसार वर्तमान गोशालाएँ दुग्धशालाएँ बना दी जायें तो उस अवस्थामें अपंग पशुओंकी क्या व्यवस्था की जायेगी।

कामको छोड़नेवाले नहीं हैं। आपकी कठिनाइयाँ मैं समझ सकता हूँ। लेकिन, क्या किसी भी उपक्रममें सफलताका मतलब उन कठिनाइयोंपर — चाहे वे जितनी भी बड़ी हों — विजय प्राप्त करनेकी क्षमता ही नहीं है? आपको जितना वेतन मिलता है, उतनेसे अगर आप अपना काम नहीं चला सकते तो आपको मुझे बताना चाहिए कि आपको कितनेकी जरूरत है। अगर उतना पैसा चरखा कोषसे न दिया जा सकता हो तो आपके लिए कुछ अतिरिक्त कामकी व्यवस्था की जा सकती है। जहाँ चाह है, वहाँ राह है। जरूरत सिर्फ इस संकल्पकी है कि चाहे जितनी बड़ी कीमत चुकानी पड़े, खादीको नहीं छोड़ूँगा। लेकिन हाँ, अगर खादीमें आपका विश्वास डिग गया हो तो मुझे बताना चाहिए। मैंने मित्रोंसे बार-बार यह कहा है कि अगर आप लोग अपने अनुभवसे देखें कि खादीकी योजना अव्यवहार्य है तो आप चाहें तो निस्संकोच भावसे पहले मुझे बतायें और फिर जनताको सूचित करें। किसी गलत चीजको कायम रखने और प्रोत्साहन देनेकी मेरी कोई ख्वाहिश नहीं है, चाहे उससे अपना हाथ खींचनेमें मुझे निजी तौरपर कितनी भी व्यथा पहुँचे। सच तो यह है कि अपनी गलतीका पता लग जानेसे मुझे दुःख नहीं, सच्ची प्रसन्नता ही होगी। इसलिए जब कभी किसी मित्रको लगे कि खादीमें मेरा विश्वास तो हवाई किला बनाने-जैसा है तो उसे मेरे साथ मुरौवत करनेकी कोई जरूरत नहीं है। लेकिन अगर खादीमें आपका विश्वास उतना ही ताजा है जितना कि वह लेख लिखनेके दिनोंमें था तो आपको किसी भी हालतमें उसे छोड़ना नहीं चाहिए। जरूरी लगे तो खुद ही आकर मुझसे बात कीजिए।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एन० एस० वरदाचारी,
इरोद

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ११९८४) की माइक्रोफिल्मसे।

६८८. पत्र : वी० लॉरेंसको

साबरमती आश्रम
१३ जून, १९२६

प्रिय लॉरेंस,

महीनों बाद या वर्षों बाद कहूँ? — तुम्हारा एक लम्बा पत्र मिला। पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई। मुझे मालूम था कि तुम्हारा एक लड़का जफनामें रहता है। मगर यह कैसी बात है कि वह मुझे कभी लिखता ही नहीं? मेरा खयाल है, अब तुम्हारी आर्थिक स्थिति ऐसी है कि उसे एक बार मुझसे मिलनेके लिए आने दे सकते हो। वह यहाँ आ जाये; फिर मैं उसे कताईकी कुछ शिक्षा दूंगा और यहीं आकर वह असली भारतीय जीवनकी भी झाँकी पा सकेगा।

वेशक, मैं तुम्हारी वेटियोका सगीत सुनना चाहूँगा। रामदास अभी मेरे साथ है। वह खादीका काम कर रहा है। दो-चार दिन बाद वह यहाँसे अपने सदर मुकामको रवाना हो जायेगा। देवदासको एपेंडिसाइटिस हो गया था। उसका ऑपरेशन हो गया। इन दिनों वह पहाड़पर एक मित्रके साथ रहकर स्वास्थ्य लाभ कर रहा है। छगनलाल और मगनलाल अपने-अपने परिवारोके साथ यही है। तीसरा भाई, जमनादास, जिसे तुम जानते हो, राजकोटकी राष्ट्रीय पाठशालाकी देख-रेख करता है। श्रीमती नायडू भारतका दौरा कर रही है। श्री एन्ड्रचूज अपने मित्र स्टोक्सके यहाँ गये हुए है। वे इन दिनो शिमलामें हैं। इस तरह जिन लोगोको तुम जानते हो, सबका हाल मैंने बता दिया। मै दोनो अखबारोके सम्पादनमें अपना समय बिताता हूँ।

तुम सबको स्नेह वन्दन।

हृदयसे तुम्हारा,

श्री वी० लॉरेन्स
१९, फाउंड्रीलेन
डर्बन, दक्षिण आफ्रिका

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १९६१९) की फोटो-नकलसे।

६८९. पत्र : किशोरलाल मशरूवालाको

सावरमती आश्रम
रविवार, १३ जून, १९२६

चि० किशोरलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। मेरा सन्देश तो इस प्रकार था: यदि तुम थोड़े-थोड़े समयके लिए वहाँसे अवकाश पा सको तो निरीक्षकका कुछ काम कर सकते हो और कमा भी सकते हो। इस समय बालूभाई तुम्हें आश्रममें आने देनेके लिए राजी न होंगे, ऐसा मानकर मैंने यह सुझाव दिया था। तुम्हें यह पसन्द नहीं आयेगा, यह बात तो मैं जानता ही था और यह बात मैंने नानाभाईसे कही भी थी। लेकिन सोचा कि शायद थोड़े समयके लिए तुम निरीक्षकके कामको स्वीकार कर सको। यह काम मैंने तुम्हारे लिए हल्का मान लिया और यह भी मान लिया कि इसे करते हुए तुम वम्बईमें रह सकते हो। यदि तुम आश्रममें आ सको और यदि तुम्हारा शरीर स्वीकार करे तो तुम बुनाईका काम सीखनेमें लग जाओ; यह मुझे अच्छा लगेगा। विद्यार्थियोंके वारेमें जैसा तुम कहते हो वैसा ही है। इसके बारेमें विद्यार्थियोको सलाह दूंगा। स्त्रियोंके बारेमें, प्रसंगोपात्त चर्चा करूँगा।

गिरधारीको अभी कितना समय वहाँ लगाना पड़ेगा?

गुजराती प्रति (एस० एन० १९६२०) की फोटो-नकलसे।

६९०. पत्र : कासम अलीको

साबरमती आश्रम
रविवार, १३ जून, १९२६

भाईश्री ५ कासम अली,

आपका पत्र मिला। खुदा एक है और वह निराकार है — इसमें आपको क्या कठिन लगता है, यह मेरी समझमें नहीं आया। साकार वस्तु सर्वव्यापक नहीं हो सकती; जो सर्वव्यापक है उसे सूक्ष्मसे-सूक्ष्म ही होना चाहिए। इसलिए वह निराकार ही है। गुरुकी आवश्यकता तो सबको स्वीकार करनी चाहिए, लेकिन एकदम किसीको गुरु नहीं कहा जा सकता। इस जमानेमें तो गुरुकी शोध करना ही गुरुको माननेके समान है, क्योंकि सम्पूर्ण गुरुको प्राप्त करनेके लिए सम्पूर्ण योग्यता चाहिए। और यदि हम सब धर्मोंको सच मानें तो किसीको अपना धर्म छोड़ने अथवा दूसरोंसे उनका धर्म छुड़वानेकी आवश्यकता नहीं रह जाती, क्योंकि सब कोई सारे धर्मोंसे अपने सन्तोषकी वस्तुएँ ग्रहण कर सकते हैं।

गुजराती प्रति (एस० एन० १०९३२) की माइक्रोफिल्मसे।

६९१. सन्देश : विद्यार्थियोंको[1]

[१४ जून, १९२६ या उससे पूर्व][2]

आचार्य कृपलानी, अध्यापक तथा विद्यार्थीगण और भाइयो तथा बहनो,

कहाँ १९२१ और कहाँ १९२६!

इसे आप निराशाका उद्‌गार न मानें! हमारा देश पीछे नहीं जा रहा है। हम पीछे नहीं जा रहे हैं। हम स्वराज्यकी दिशामें पाँच साल आगे बढ़े हैं। इस बातसे कोई इनकार नहीं कर सकता। कोई कह सकता है कि १९२१ में तो लग रहा था कि वह अब आया, अब आया; आज तो न जाने वह हमसे कितनी दूर चला गया है। ऐसे लोगोंकी इस निराशाको आप मिथ्या मानिए। शुभ प्रयत्न कभी बेकार नहीं जाते और मनुष्यकी सफलता तो उसके शुभ प्रयत्नमें ही है। परिणामोंका मालिक तो सिर्फ ईश्वर ही है। संख्याके बलपर तो कायर लोग कूदते हैं। आत्म बलवाला मनुष्य

१ और २. भाषणका अंग्रेजी अनुवाद देते हुए १७-६-१९२६ के यंग इंडियामें प्रस्तावनाके रूपमें यह टिप्पणी दी गई थी: गर्मीकी छुट्टियोंके बाद गुजरात महाविद्यालय गत १४ जूनको गांधीजीके भाषणके साथ फिर खुल गया। १४ जूनको गांधीजीका मौन-दिवस पड़ता था, इसलिए उनका भाषण पढ़कर सुनाया गया।

अकेला ही जूझता है। इस विद्यापीठमें हम आत्मबलकी शिक्षा देने आये हैं—सो इसमें साथ देनेवाला एक हो या अनेक इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। आत्मबल ही सच्चा बल है। और यह निश्चित मानिए कि यह बल तपश्चर्या, त्याग, दृढ़ता, श्रद्धा और नम्रता और विनयके बिना प्राप्त नही हो सकता।

इस विद्यालयकी आधारशिला आत्मशुद्धि है। अहिंसामय असहयोग उसका प्रगट स्वरूप है। इस असहयोगके "अ" वर्णका अर्थ सरकारी पाठशाला इत्यादिका त्याग है। लेकिन जबतक हम अन्त्यजोंके साथ सहयोग नही करते, एक धर्मको माननेवाला व्यक्ति दूसरे धर्मके लोगोंसे सहयोग नही करता, खादी और चरखेको पवित्र स्थान देकर हम हिन्दुस्तानके करोड़ों लोगोंके साथ सहयोग नही करते तबतक वह "अ" निरर्थक है, उसमें अहिंसा नही, हिंसा अर्थात् द्वेष है; विधिके बिना निषेध, जीवके बिना देहके समान है। उसका तो अग्नि-संस्कार कर देना ही ठीक होगा।

सात लाख गाँवोंमें सात हजार रेलवे स्टेशन हैं। हम इन सात हजार गाँवोके भी लोगोंको नहीं जानते और रेलवेसे दूर रहनेवाले ग्रामीण भाइयोंकी स्थितिका खयाल तो हमारे मनमें सिर्फ इतिहास पढ़कर ही आ सकता है। उनके साथ निर्मल सेवा-भावका सम्बन्ध जोड़नेका एक-मात्र साधन चरखा ही है। जिसने यह बात अभीतक नही समझी हो, उसका इस राष्ट्रीय महाविद्यालयमें रहना मै निरर्थक मानता हूँ। जहाँ हिन्दुस्तानके गरीब लोगोंका विचार नही किया जाता, जहाँ गरीबीको दूर करनेके लिए उपाय नही किये जाते, वहाँ राष्ट्रीयता नही है। गाँवोसे सरकारका सम्बन्ध तो लगान वसूल करनेतक ही सीमित है। किन्तु उनके साथ हमारे सम्बन्धोका प्रारम्भ चरखे द्वारा उनकी सेवासे होता है। लेकिन खादी पहनने और चरखा चलानेमें ही उस सेवाका अन्त नही है। चरखा तो उस सेवाका केन्द्र-बिन्दु है। अगर आगे आनेवाली किसी छुट्टीके दिनोंमें आप किसी दूरस्थ गाँवको ढूँढकर वहाँ रहेंगे तो आपको मेरी बातों-की सचाईका प्रत्यक्ष अनुभव हो जायेगा। वहाँ आप लोगोंको निस्तेज और भयभीत पायेंगे। वहाँ आपको घर नही खण्डहर दिखेंगे। वहाँ आप आरोग्यके नियमोका भंग होते देखेंगे और पशुओंकी स्थितिको दयनीय पायेंगे। किन्तु इस सबके बावजूद आप वह आलस्य देखेंगे। आप पायेंगे कि लोगोको चरखेका स्मरण तो है, लेकिन चरखेकी या किसी भी प्रकारके उद्यमकी बात उन्हे अच्छी नही लगती। वे आशा छोड़ चुके हैं। यह तो मृत्युका दोष है कि वे जी रहे हैं। आप खुद चरखा चलायेंगे, तभी वे भी चलायेंगे। तीन सौकी आबादीवाले गाँवमें सौ लोग भी चरखा चलायेंगे तो उस गाँवको कमसे-कम १,८०० रुपयेकी अतिरिक्त वार्षिक आय होगी। इस आयके आधारपर आप हर गाँवमें उसके सुधार-कार्यकी नीव डाल सकते हैं। यह काम कहनेमें तो बहुत आसान लगता है, लेकिन करनेमें वह बहुत मुश्किल है। जहाँ श्रद्धा होगी, वहाँ वह आसान हो जायेगा। "मैं तो एक ही हूँ, फिर सात लाख गाँवोमें कैसे जाऊँ?" —ऐसा गलत और अभिमान सूचक हिसाब न लगाइये। जब आप इस विश्वासके साथ काम करेंगे कि यदि आपमें से प्रत्येक एक-एक गाँवमें आसन जमाकर बैठ जायेगा तो दूसरे लोग भी वैसा ही करेंगे। तभी देशकी उन्नति होगी।

इस विद्यालयका काम आपको ऐसा ही सेवक बनाना है। अगर उसमें रस न मिले तो आपके लिए यह विद्यालय नीरस और त्याज्य है।

आप देखेंगे कि इस सत्रमें विद्यालयमें बहुत-से परिवर्तन कर दिये गये हैं। जिनके त्यागके परिणामस्वरूप यह विद्यालय स्थापित हो सका, जिन्होंने विद्यार्थियों की सच्ची प्रीति अर्जित की, उन आचार्य गिडवानीने मेरी सलाह और विनतीपर प्रेम महाविद्यालय वृन्दावनका आचार्य-पद स्वीकार कर लिया है। मैं जानता हूँ कि जब यह बात विद्यार्थियोंने सुनी तो वे बहुत दुःखी हुए थे। उनके ऐसे प्रेमके लिए मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ। लेकिन जो आश्वासन मैंने लोगोंको मुँहसे दिया था, वही आश्वासन यहाँ लिखकर देना चाहता हूँ। *यह वियोग सहन करने योग्य है।* हमारा धर्म तो अपने प्रियजनोंके गुणोंकी स्मृति हृदयमें बनाये रखकर उनका अनुकरण करना है। हमने हरएक कदम विद्यापीठके श्रेयका विचार करके ही उठाया है। सौभाग्यसे कुलनायकके रूपमें हमें भाई नरसिंहप्रसाद मिले हैं। विद्यार्थियोंके साथ उनका वर्षोंसे सम्बन्ध रहा है। आपके सम्पर्कमें वे बार-बार आते हैं। आप उन्हें अपना हृदय दीजिए। मेरा द्वार तो हर विद्यार्थीके लिए खुला हुआ है। आपके जीवनमें मैं जितना चाहता हूँ उतना लीन नहीं हो सकता, इसका दुःख मुझे सदा रहा है।

अध्यापक आठवले, दलाल, मजमुदार और त्रिकमलाल शाह महाविद्यालय छोड़कर चले गये हैं। उनका जाना अनिवार्य था। उनकी विद्वत्ताका लाभ हमें नहीं मिलेगा, यह बेशक दुःखकी बात है। जो अध्यापक यहाँसे चले गये हैं, उनके बदले श्री कीकुभाई, झीणाभाई देसाई, नगीनदास, गोपालदास और गांधी आये हैं। वे सबके-सब इस विद्यापीठमें पढ़े हुए हैं, इस बातपर अगर हम कुछ अभिमान करें तो यह अनुचित न होगा। मेरी यही कामना है कि उनका उद्यम महाविद्यालयको शोभान्वित करे।

प्रभुसे मेरी प्रार्थना है कि वह विद्यार्थियोंका कल्याण करे, उन्हें दीर्घायु बनाये और शुद्ध सेवामें प्रवृत्त करे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०-६-१९२६

परिशिष्ट

परिशिष्ट १

गांधीजीके नाम विट्ठलभाई पटेलका पत्र

बम्बई
१० मई, १९२६

प्रिय महात्माजी,

केन्द्रीय विधान सभाका अध्यक्ष-पद स्वीकार करते समय मैंने यह निश्चय किया था कि अपने वेतनमें से जो-कुछ बचा पाऊँगा, उसका उपयोग मैं किसी ऐसे कार्यमें करूँगा जिससे राष्ट्रका हित-साधन होता हो। अनेक कारणोंसे मैं पहले छः महीने कुछ खास नही बचा सका। लेकिन अब आपको यह सूचना देते हुए मुझे खुशी हो रही है कि पिछले महीनेसे मुझे कोई कठिनाई नही रह गई है; और अब मैं एक खासी रकम बचा सकता हूँ और बचाता भी हूँ। देखता हूँ, मुझे अपने खर्चके लिए प्रति मास औसतन २,००० रुपयेकी जरूरत होती है। आयकर छोड़कर मेरा कुल मासिक वेतन ३,६२५ रुपये है। इसलिए मैं प्रति मास १,६२५ रुपये अलग रख देना चाहता हूँ, जिसका उपयोग अबसे उस तरीकेसे और उस कामके लिए किया जायेगा जो तरीका और जो काम आप पसन्द करेंगे। मैंने यह बचत पिछले महीनेसे ही शुरू कर दी है। वैसे तो इस सम्बन्धमें मेरे भी कुछ विचार हैं और समय आनेपर मैं उनके विषयमें आपसे चर्चा भी करूँगा, लेकिन आप मेरे उन विचारोंसे सहमत हों या न हों, यह राशि आप अपने जिम्मे समझिए।

मैं अप्रैल मासकी बचतकी १,६२५ रुपयेकी राशिका चेक साथमें भेज रहा हूँ। मुझे विश्वास है कि आप इस दायित्वको अस्वीकार नहीं करेंगे।

हृदयसे आपका,
वि० झ० पटेल

[अंग्रेजीसे]
विट्ठलभाई पटेल – लाइफ एण्ड टाइम्स-२, पृष्ठ ६६९

परिशिष्ट २

१. साबरमती-समझौता[1]

यह सम्मेलन पण्डित मोतीलाल नेहरूके आमन्त्रणपर २० और २१ तारीखको साबरमती आश्रम, अहमदाबादमें आयोजित किया गया।. . . बहुत-से तार और पत्र आये. . .जिनमें से एक पण्डित मदनमोहन मालवीयका भेजा हुआ था। उसमें भारतके सभी राजनीतिक दलोंको संयुक्त कांग्रेस मंचपर लानेके सम्बन्धमें सुझाव दिये गये थे।

सम्मेलनने तमाम मुद्दोंपर विचार करनेके बाद निम्नलिखित समझौता किया:

नीचे हस्ताक्षर करनेवाले हम लोग इस बातपर सहमत हैं — बशर्ते कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी इसकी पुष्टि कर दे — कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके ६ और ७ मार्च, १९२६के संकल्प २ ख (४) की धारा (क) और (ख) की दृष्टिसे प्रान्तोंमें सरकारकी प्रतिक्रियाको उस दशामें सन्तोषजनक माना जायेगा जब वह मन्त्रियोंको उनके दायित्वोंके ठीक निर्वाहके लिए आवश्यक सत्ता, दायित्व और पहलकी सुविधा प्रदान कर देगी और ऐसी सत्ता, दायित्व और पहलकी सुविधा पर्याप्त है या नहीं, इसका निर्णय प्रत्येक प्रान्तमें उस प्रान्तकी विधान परिषद्के कांग्रेसी सदस्य करेंगे, लेकिन उस निर्णयकी पुष्टि उस समितिसे करवाना आवश्यक होगा जिसके सदस्य पण्डित मोतीलाल नेहरू और श्री एम० आर० जयकर हैं।

हम इस बातपर भी सहमत हैं कि बम्बई, महाराष्ट्र, बिहार और मध्यप्रदेश मराठी, इन कांग्रेसी प्रान्तोंमें सारे विवादोंका निबटारा उक्त समिति ही करेगी। नीचे हस्ताक्षर करनेवाले लोगोंने अपनी-अपनी व्यक्तिगत हैसियतसे इस समझौतेपर हस्ताक्षर किये हैं और इसकी पुष्टि करानेके लिए इसे स्वराज्यवादी दल तथा प्रति-सहयोगी दल (रिस्पॉन्सिव कोऑपरेशन पार्टी) की कार्यकारिणी परिषदके समक्ष रखा जायेगा। इसकी मंजूरीके लिए इसे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके सामने आगामी ४ और ५ मईको साबरमतीमें बुलाई गई बैठकमें पेश किया जायेगा।

इस समझौतेपर २१ अप्रैल, १९२६ को साबरमतीमें सरोजिनी नायडू, मोतीलाल नेहरू, लाजपतराय, एम० आर० जयकर, एन० सी० केलकर, बी० एस० मुंजे, मा० श्री० अणे, डी० वी० गोखले और जी० ए० ओगलेने हस्ताक्षर किये हैं।

२. अ० भा० कां० क० का दिल्लीका प्रस्ताव

अ० भा० कां० क० की दिल्लीकी बैठकमें पास किये गये प्रस्ताव २ – ख (४) की जिन धाराओंका इस समझौतेमें उल्लेख है, उनमें कहा गया है कि कांग्रेसी लोग

(क) जबतक सरकार कांग्रेसके विचारसे संतोषजनक प्रतिक्रिया नही दिखाती तबतक उसके पास देनेके लिए जो भी पद हैं उनमें से कोई पद स्वीकार नही करेंगे;

१. यह "स्वराज्यवादी और प्रतिसहयोगवादी : अहमदाबाद समझौता" शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था।

(ख) जबतक सरकार ऐसी प्रतिक्रिया नही दिखाती तबतक सरकार द्वारा दी हुई कोई भी सामग्री स्वीकार नही करेंगे और यदि उन्हें बजटोंकी प्रतियाँ दी जायेंगी तो उन्हें नामंजूर कर देंगे, बशर्ते कि कार्य-समिति कोई अन्यथा निर्देश न दे।

३. प्रतिसहयोगियोंका अकोलासे जारी किया गया घोषणा-पत्र

गत फरवरी मासमें अकोलामें हुए सम्मेलनमें प्रतिसहयोगवादी दल द्वारा अपने कौंसिल कार्यक्रमके सम्बन्धमें जारी किये गये घोषणा-पत्रमें कहा गया है:

हम मानते हैं कि जबतक विधान परिषदोंकी कार्रवाईमें समान रूपसे और समान उत्साहसे निरन्तर बाधा डालते रहनेकी नीतिको बड़े पैमानेपर नही आजमाया जाता और जबतक उस नीतिके पीछे किसी ठोस शक्तिका समर्थन सुलभ नही होता तबतक उसका सहारा लेनेसे संवैधानिक गतिरोध नही पैदा हो सकता।

हम समझते है कि मौजूदा परिस्थितियोमें सबसे अच्छा रास्ता प्रतिसहयोगका ही है। वह रास्ता यह है कि जो सुधार दिये गये है वे यद्यपि असन्तोषजनक, निराशाजनक और अपर्याप्त हैं फिर भी उनसे जितना-कुछ सिद्ध हो सकता है, उसको दृष्टिमें रखकर हम उनके अनुसार काम करनेकी कोशिश करें; और इन सुधारोंका उपयोग हम पूर्ण उत्तरदायी शासन प्राप्त करने और उस शासनके प्राप्त होनेतक लोगोंको ऐसी सुविधाएँ सुलभ करानेके लिए करे जिनसे वे अपने हितोंको सुदृढ कर सके और अन्याय तथा कुशासनका मुकाबला करनेके लिए अपने अन्दर शक्ति और प्रतिरोधकी क्षमताका विकास कर सके।

इन सुधारोको कार्यान्वित करनेकी नीतिके अन्तर्गत अनिवार्यतः यह बात भी आ जाती है कि हम सत्ता, दायित्व और पहलकी क्षमता प्रदान करनेवाले उन तमाम स्थानोंपर कब्जा कर ले जिनपर विधान मण्डलीय दल चुनाव द्वारा कब्जा कर सकता है या जिन स्थानोंपर काम करनेवाले लोग अन्य प्रकारसे विधान मण्डलीय दलके प्रति उत्तरदायी हो सकते हैं। लेकिन ऐसा करते हुए नीति कार्यक्रम तथा ऐसे ही अन्य मामलोमें समय-समयपर जो शर्ते लगाना वाछनीय प्रतीत हो उनके बन्धनको मानना होगा।[1]

४. समझौता टूट गया

४ मईको अहमदाबादमें हुई अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें पण्डित मोतीलाल नेहरूने यह घोषणा की कि साबरमती समझौतेकी शर्तोंकी व्याख्याके सम्बन्धमें उसपर हस्ताक्षर करनेवाले लोगोंके बीच तीव्र मतभेद होनेके कारण वह वार्ता, जो मैं पिछले कुछ दिनोंसे प्रतिसहयोगवादियोंके साथ चला रहा था, टूट गई है और यह समझौता भंग हो गया है एवं अब इसका कोई अस्तित्व नहीं रहा। प्रतिसहयोगवादी दलके मन्त्रीका एक पत्र भी वहाँ प्रस्तुत था, जिससे पण्डित मोतीलालके वक्तव्यकी तत्त्वतः पुष्टि होती थी।

१. भाग १, २ और ३ अप्रैल १९२६ तथा भाग ४, ५ और ६ मई १९२६ के इंडियन रिव्यूसे लिये गये हैं।

५. मोतीलालजीका वैकल्पिक फार्मूला

प्रतिसहयोगवादी नेताओंको ४ तारीखकी सुबह दिये गये वैकल्पिक फार्मूलेका पाठ निम्न प्रकार था:

इस बातको ध्यानमें रखते हुए कि श्रीमती सरोजिनी नायडू, सर्वश्री लाजपतराय, मा० श्री० अणे, एम० आर० जयकर, एन० सी० केलकर, जी० ए० ओगले और पण्डित मोतीलाल नेहरूके बीच २१ अप्रैल, १९२६को साबरमतीमें हुए समझौतेकी सच्ची व्याख्याके सम्बन्धमें मतभेद और शंकाएँ उठ खड़ी हुई हैं, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी यह बैठक जहाँ कानपुर कांग्रेसके संकल्प ७ तथा दिल्लीमें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी ६ और ७ मार्च, १९२६को हुई बैठकोंमें स्वीकृत संकल्प २ (ख)में निर्धारित सिद्धान्तों, नीति तथा कार्यक्रमसे पूरी सहमति प्रकट करती है, वहाँ इसका यह विचार भी है कि सभी शंकाओं और मतभेदोंको दूर करने तथा देशके सामने असली सवालको रखनेके खयालसे यह बात साफ-साफ बता देना अच्छा होगा कि उक्त संकल्पमें जिस सन्तोषजनक प्रतिक्रियाका उल्लेख है, उसका क्या मतलब है।

इसलिए यह निश्चय किया जाता है कि:

(१) ८ फरवरी, १९२५को केन्द्रीय विधान सभा द्वारा पास किये गये प्रस्तावमें निहित सिद्धान्तका सरकार द्वारा स्वीकार कर लिया जाना पूर्ण उत्तरदायी शासनकी राष्ट्रीय माँगके प्रति उसकी सन्तोषजनक प्रतिक्रिया माना जायेगा और विधान सभा द्वारा ८ सितम्बर, १९२५को पास किये गये प्रस्तावमें जो कदम सुझाये गये हैं, यदि सरकार वैसे कदम तत्काल उठाये तो उसकी इस कार्रवाईको फिलहाल उक्त सिद्धान्तके अनुसार आचरण करनेका पर्याप्त प्रमाण माना जायेगा।

(२) यदि सरकार विधान सभा द्वारा ८ सितम्बर, १९२५को स्वीकृत प्रस्तावमें उल्लिखित कदमोंसे भिन्न अन्य कोई कदम उठाकर हमें इस बातके लिए आश्वस्त कर दे कि सच्चे अर्थोंमें उत्तरदायी शासन निकट भविष्यमें स्वयं आ जायेगा और अगर इस बीच प्रान्तोंमें सारतः पूर्ण उत्तरदायी शासन स्थापित कर दिया जाये तो सरकार द्वारा दिखाई गई ऐसी प्रतिक्रियाको मन्त्री-पद स्वीकार करने और प्रान्तीय बजटोंपर उनके गुण-दोषके आधारपर विचार करनेको राजी होनेकी दृष्टिसे पर्याप्त सन्तोषजनक माना जायेगा, लेकिन शर्त यह है कि ऐसी किसी भी प्रतिक्रियाको पर्याप्त नहीं माना जायेगा जिसमें निम्नलिखित बातें शामिल न हों:

(क) जिन राजनीतिक कैदियोंको वैध रूपसे गठित अदालत द्वारा अपराधी करार दिये बिना अभी जेलोंमें रखा जा रहा है उनकी रिहाई या कानूनके मुताबिक उनपर मुकदमा चलाया जाना।

(ख) सभी दमनकारी कानूनोंका रद्द किया जाना।

(ग) जिन लोगोंने दी हुई सजाएँ भोग ली हैं, उनपर देशकी निर्वाचित संस्थाओंकी सदस्यताके उम्मीदवार होनेके सम्बन्धमें लगाई गई सारी निर्योग्यताओंकी समाप्ति।

(घ) कौंसिलके गैर-सरकारी सदस्योंकी नामजदगीके चलनका खात्मा और नामजद गैर-सरकारी सदस्योंकी सारी जगहोंको आम मतदाताओं द्वारा चुनाव करवा कर भरना।

(३) किसी भी प्रान्तीय सरकारके किसी कार्यके, संकल्प २ में बताये गये अनुसार, सन्तोषजनक होनेकी सिफारिश उस प्रान्तकी विधान परिषद्के कांग्रेसी सदस्य कार्य-समितिके पास करेंगे और वह कार्य सन्तोषजनक है या नहीं, इसका अन्तिम निर्णय कार्य-समिति ही करेगी।

६. प्रतिसहयोगियोंकी अस्वीकृति

अपने उत्तरमें श्री जयकर और उनके सहयोगियोंने बताया कि :

हमने मसविदेपर ध्यानपूर्वक विचार किया। यह मसविदा हमें समझौतेका उपहास और उसे पूरी तरह नकारने-जैसा लगा। हमारा विचार है कि ऐसा कोई सामान्य आधार प्रस्तुत नही किया गया है जिसको दृष्टिमें रखते हुए आपसमें मिल-बैठकर बातचीत करनेसे हमारा कोई लाभ हो सकता हो। इन परिस्थितियोंमें हमारी राय यही है कि कार्य-समितिकी आज सुबहकी बैठकमें हमारे शरीक होनेसे कोई फायदा नही होगा और इसलिए हमने इस बैठकमें हिस्सा न लेनेका निर्णय किया है। हमें लगता है कि हमें अपने-अपने घरोंसे इतनी दूर अहमदाबाद बुलानेकी कोई जरूरत नही थी, क्योंकि इस मसविदेमें हमारे साथ सिर्फ मजाक ही तो किया गया है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन रिव्यू, अप्रैल और मई, १९२६

सामग्रीके साधन-सूत्र

गांधी-स्मारक संग्रहालय, नई दिल्ली : गांधी-साहित्य और तत्सम्बन्धी कागजातका केन्द्रीय संग्रहालय तथा पुस्तकालय; देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३५९।

नेशनल आर्काइव्ज़ ऑफ इंडिया, नई दिल्लीमें सुरक्षित कागजात।

साबरमती संग्रहालय — पुस्तकालय तथा संग्रहालय : जिसमें गांधीजीके दक्षिण आफ्रिकी काल तथा १९३३ तकके भारतीय कालसे सम्बन्धित कागजात रखे हैं; देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३६०।

'इंडियन रिव्यू' : मद्राससे प्रकाशित अंग्रेजी मासिक।

'गुजराती' : बम्बईसे प्रकाशित गुजराती साप्ताहिक।

'नवजीवन' : गांधीजी द्वारा सम्पादित और अहमदाबादसे प्रकाशित गुजराती साप्ताहिक।

'फॉरवर्ड' : कलकत्तासे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'फ्री प्रेस ऑफ इंडिया' : बम्बईसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक

'बॉम्बे क्रॉनिकल' : बम्बईसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'यंग इंडिया' : गांधीजी द्वारा सम्पादित और अहमदाबादसे प्रकाशित अंग्रेजी साप्ताहिक।

'लीडर' : अहमदाबादसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'हिन्दी नवजीवन' : गांधीजी द्वारा सम्पादित और अहमदाबादसे प्रकाशित हिन्दी साप्ताहिक।

'हिन्दुस्तान टाइम्स' : दिल्लीसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'हिन्दू' : मद्राससे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'ए बंच ऑफ ओल्ड लैटर्स' (अंग्रेजी) : जवाहरलाल नेहरू; एशिया प्रकाशन मन्दिर, बम्बई, १९५८।

'ग्लीनिंग्स' (अंग्रेजी) : मीराबहन; नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद।

'पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद' (हिन्दी) : काका कालेलकर द्वारा सम्पादित; जमनालाल बजाज ट्रस्ट, वर्धा, १९५३।

'बापुना पत्रो – ४ : मणिबहेन पटेलने' (गुजराती) : मणिबहन पटेल द्वारा सम्पादित; नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५७।

'बापुनी प्रसादी' (गुजराती) : मथुरादास त्रिकमजी; नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९४८।

'बापूज लैटर्स टु मीरा' (अंग्रेजी) : नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९४९।

'माई डियर चाइल्ड' (अंग्रेजी) : एलिस एम० बार्न्ज़ द्वारा सम्पादित; नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५६।

'विट्ठलभाई पटेल : लाइफ ऐण्ड टाइम्स' – भाग २ (अंग्रेजी) : आर० ए० मोरमकर; श्री लक्ष्मीनारायण प्रेस, बम्बई-२।

तारीखवार जीवन-वृत्तान्त

(११ फरवरीसे १४ जून, १९२६ तक)

११ फरवरी : 'यंग इंडिया' में प्रकाशित "स्वीडनसे" शीर्षक लेखमें गांधीजीने अहिंसक असहयोगके कार्यक्रम तथा अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलनके महत्त्वके बारेमें बताया।
'यंग इंडिया' में गांधीजीने एशियाई विधेयकको 'विश्वासघात' कहा।

१४ फरवरी : अहमदाबादमें दक्षिण आफ्रिकी शिष्टमण्डलको एक भेंटमें विश्वास दिलाया कि आवश्यकता पड़नेपर वे दक्षिण आफ्रिका जानेको तैयार हैं।

१८ फरवरी : 'यंग इंडिया' में प्रकाशित "आजकी चर्चाका विषय" तथा "बदसे बदतर" शीर्षक लेखोंमें गांधीजीने दक्षिण आफ्रिकी विधेयकके अन्यायकी आलोचना की तथा 'अपनी सहायता आप करे' और 'सत्याग्रह' इसके उपायके रूपमें सुझाया।

२५ फरवरी : 'यंग इंडिया' में प्रकाशित "हमारा अपमान" शीर्षक लेखमें गांधीजीने डॉ० मलानके प्रस्ताव — भारत सरकारकी ओरसे सिर्फ पैडिसन शिष्टमण्डल ही गवाही दे — पर वाइसरायकी स्वीकृति की आलोचना की।

२७ फरवरी : गांधीजीसे विचार-विमर्शके लिए मोतीलाल नेहरू अहमदाबाद आये।

११ मार्च : स्वामी श्रद्धानन्दके साप्ताहिक 'लिबरेटर' को सन्देश भेजा।
चुन्नीलालको लिखे पत्रमें गो-रक्षा अधिवेशनको सन्देश भेजा।

१२ मार्च : लाहौरके 'हिन्दुस्तानी' को चरखेपर एक सन्देश भेजा।

१५ मार्च : ए० ए० पॉलको लिखे पत्रमें चीन-यात्राके निमन्त्रणके बारेमें अपना इरादा बताया।

१७ मार्च : कैथरीन मेयोको दी गई एक भेंटमें गांधीजीने पश्चिम द्वारा शोषण, चरखेका अर्थशास्त्र, अस्पृश्यताके कलंक तथा भारतमें ब्रिटिश शासनके अन्याय आदिपर अपने विचार प्रकट किये।
डॉ० सत्यपालको लिखे पत्रमें सिखोंकी बहादुरीकी प्रशंसा करते हुए 'फुलवारी' के लिए सन्देश भेजा।
विधानचन्द्र रायको लिखे पत्रमें, रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा चित्तरंजन सेवा-सदनके उद्घाटन समारोहके लिए सन्देश और वासन्तीदेवीके लिए जन्म-दिवसकी शुभकामनाएँ भेजी।

१८ मार्च : 'यंग इंडिया' में प्रकाशित "केवल परिमाणका भेद" शीर्षक लेखमें गांधीजीने दक्षिण आफ्रिकामें जाति और रंगभेदको 'समस्त संसारकी बहुत भारी समस्या' बताया।
जोआकिम हेनरी राइनहोल्डको लिखे पत्रमें 'यंग इंडिया' के लेखोंका अनुवाद करनेकी अनुमति दी।

२० मार्च : लाला लाजपतरायको लिखे पत्रमें अमेरिका और फिनलैंडकी यात्राके निमन्त्रणके बारेमें अपने विचार प्रकट किये।

२१ मार्च : अहमदाबादके राष्ट्रीय संगीत मण्डलके द्वितीय वार्षिकोत्सवमें भाषण दिया।

२६ मार्च : कैथरीन मेयोको लिखे एक पत्रमें भारतकी गरीबीके कारण बताये और उसे दूर करनेके उपायके रूपमें चरखेके महत्त्वपर जोर दिया।

२७ मार्च : श्री आर० डी० टाटाको लिखे पत्रमें गांधीजीने श्री टाटाको याद दिलाया कि मेरी जमशेदपुरकी यात्राके दौरान आपने वायदा किया था कि मुझे एक लाखके भीतर जितने तकुओं और तकलियोंकी जरूरत होगी उतने आप मुझे खुशी-खुशी देंगे।

२८ मार्च : 'नवजीवन' में प्रकाशित 'कुछ धार्मिक प्रश्न' के उत्तर दिये।

१ अप्रैल : 'यंग इंडिया' में प्रकाशित "मेरा राजनीतिक कार्यक्रम" शीर्षक लेखमें अमेरिकी मित्रोंको उत्तर देते हुए एकता, अस्पृश्यता-निवारण और शराब तथा मादक द्रव्योंसे प्राप्त होनेवाले राजस्वके अनौचित्यके अलावा चरखेके कार्यक्रमपर जोर दिया।
त्रिवेन्द्रमकी एक सभाको अस्पृश्यता-निवारणपर सन्देश भेजा।

४ अप्रैल : 'नवजीवन' में "ब्रह्मचर्य", "सत्याग्रह सप्ताह", "पहाड़ी जातियाँ" तथा "अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारक" पर लेख लिखे।

८ अप्रैल : तुमकुरमें आयोजित वकीलोंके सम्मेलनको सन्देश भेजा।
हेमेन्द्र बाबू द्वारा लिखित 'देशबन्धुकी जीवनी' नामक पुस्तकका आमुख लिखा।
'यंग इंडिया' में प्रकाशित "शंका-समाधान" शीर्षक लेखमें बाबू भगवानदासकी शंकाका समाधान करते हुए चरखेका पक्ष समझाया।

११ अप्रैल : श्रीमती सरोजिनी नायडूके अनुरोधपर जलियाँवाला बाग-दिवसपर सन्देश लिखा।
घनश्यामदास बिड़लाको लिखे पत्रमें कलकत्तामें हुए साम्प्रदायिक दंगोंके बारेमें लिखा।

१३ अप्रैल : के० टी० पॉलको एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने फिनलैंडमें होनेवाले यंगमैन्स क्रिश्चियन एसोसिएशनके विश्व-सम्मेलनमें भाग लेनेके सिलसिलेमें अपने पहनावे तथा भोजन सम्बन्धी शर्तोंका उल्लेख किया और भाषण देनेके बजाय उन्होंने खुले हृदयसे छात्रोंके साथ बातचीत करनेको प्रमुखता दी।

१५ अप्रैल : 'टाइम्स ऑफ इंडिया' ने पण्डित नेहरूके प्रति "न केवल अपमानजनक अपितु अत्यन्त भ्रामक भाषा" का प्रयोग किया था; उसका उत्तर देते हुए 'यंग इंडिया' में "पण्डित नेहरू और खद्दर" शीर्षक लेख लिखा।
'यंग इंडिया' में "तकली शिक्षक" पुस्तककी लम्बी समीक्षा लिखी।

१८ अप्रैल : मसूरी-यात्रा स्थगित करनेके सम्बन्धमें वक्तव्य जारी किया।

२० अप्रैल : सतीशचन्द्र दासगुप्त तथा काका कालेलकरको लिखे पत्रोंमें बताया कि कैसे और क्यों मसूरी-यात्रा स्थगित की।

२१ अप्रैल : सरकारके साथ अनुक्रियामूलक सहयोगकी परस्पर स्वीकृत शर्तें तय करनेके लिए श्री मोतीलाल नेहरू द्वारा आयोजित परिषद्में, मोतीलालजी, जयकर, कालेलकर, अणे, मुंजे, लाला लाजपतराय, सरोजिनी नायडू और अन्य लोगोंसे विचार-विमर्श किया।

२२ अप्रैल: गांधीजीने 'यंग इंडिया' में प्रकाशित "मादक पदार्थ, शराब और शैतान" शीर्षक लेखमें भारतमें पूर्ण मद्य-निषेधकी वकालत की।
एक भेंटमें गांधीजीने शाही कृषि आयोगके सम्बन्धमें अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए कहा कि यदि मेरे पक्का असहयोगी होनेके बावजूद कार्यवाहक गवर्नर महोदय कृषि सम्बन्धी अनौपचारिक चर्चाके लिए मुझे महाबलेश्वर बुलाते हैं तो मैं अवश्य अपने विचार उनके सामने रखूँगा।

२३ अप्रैल: जवाहरलाल नेहरू और उनकी पत्नीका परिचय देते हुए रोमाँ रोलाँको पत्र लिखा।

२४ अप्रैल: अमूल्यचन्द्र सेनको लिखे पत्रमें "सत्यके उद्घाटन" की प्रक्रियापर विचार प्रकट किये।
पुरुषोत्तम मू० सेठको लिखे पत्रमें विधवा-विवाहपर अपने विचार प्रकट किये। अमृतलाल बेचरदासको लिखे पत्रमें अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि "बीमा करवाना ईश्वरके प्रति किसी-न-किसी मात्रामें हमारी आस्थाकी कमीका सूचक है"। अमृतलाल ठक्करको लिखे पत्रमें उनके दो कार्यों — अन्त्यजों और भीलोंकी सेवा — के बारेमें उनकी अनन्य सेवाकी प्रशंसा की।
रामू ठक्करको लिखे पत्रमें रामनाम और चरखेमें अपना विश्वास दोहराया।

२५ अप्रैल: 'नवजीवन' में प्रकाशित एक पत्रके उत्तरमें स्वच्छन्द प्रेमके समर्थकोंका विरोध करते हुए विवाहका समर्थन किया।

२७ अप्रैल: एस० श्रीनिवास अय्यंगारको लिखे पत्रमें खानगी तौरपर कौंसिल कार्य-क्रमकी कड़े शब्दोंमें भर्त्सना की।

२९ अप्रैल: 'यंग इंडिया' में प्रकाशित "दक्षिण आफ्रिका" शीर्षक लेखमें गांधीजीने दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंके दावोंको मंजूर करवाने, क्षेत्र संरक्षण विधेयकको स्थगित करने और वहाँकी सरकारको सम्मेलन बुलानेपर सहमत करनेके लिए भारत सरकारको उसकी कूटनीतिक विजयपर बधाई दी।
'यंग इंडिया' में प्रकाशित "टिप्पणियाँ" के उपशीर्षक "सच्चा परोपकारी व्यक्ति" में दक्षिण आफ्रिकामें एन्ड्रचूजके कार्यकी मुक्त कण्ठसे प्रशंसा की; और "अस्पृश्यताके चंगुलमें" उपशीर्षकमें कोचीनमें अस्पृश्योंकी दुर्दशाकी ओर ध्यान आकर्षित किया।

२ मई: रोमाँ रोलाँको लिखे पत्रमें 'भारतके संघर्षका विदेशोंमें प्रचार' पर अपने विचार प्रकट किये।

४ मई: गुजरात विद्यापीठमें हुई अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें भाग लिया।

५ मई: साबरमतीमें हुई अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें सत्यमूर्तिने दक्षिण आफ्रिकाके सम्बन्धमें प्रस्ताव रखा।
गांधीजी और स्वराज्यवादियोंके बीच हुए साबरमती समझौतेको अनुक्रियामूलक सहयोगवादियोंने तोड़ा।

६ मई: 'यंग इंडिया' में प्रकाशित "सुदूर अमेरिकासे" शीर्षक लेखमें बताया कि पशु-बलसे आत्म-बल बहुत अधिक श्रेष्ठ होता है।

८ मई: अबुलकलाम आजादको लिखे पत्रमें पारस्परिक मतभेदके कारण कांग्रेसकी दयनीय स्थितिके बारेमें लिखा।

९ मई: देवदासका आन्त्रशोथका ऑपरेशन हुआ।

१३ मई: महाबलेश्वर जानेके लिए अहमदाबादसे बम्बईके लिए रवाना हुए।

१४ मई: बम्बई पहुँचे और देवदासको देखने गये।

१५ मई: महाबलेश्वर जाते हुए रास्तेमें देवलालीमें मथुरादाससे मिले।

१६ मई: गांधीजी सायं ५ बजे महाबलेश्वर पहुँचे और सर चुन्नीलाल मेहताके साथ ठहरे।

१७ मई: सोमवार, मौन-दिवस।

१८ मई: गांधीजीने कार्यकारी वाइसराय सर हेनरी लॉरेंसके साथ बैठकमें भाग लिया और उनसे कृषि, चरखा तथा पशु-समस्यापर बातचीत की।

१९ मई: वाइसरायके साथ बातचीत जारी रही।

२० मई: पूना पहुँचे, सिंहगढ़ (काका कालेलकरसे मिलनेके लिए) गये और बम्बईके लिए रवाना हुए।

'यंग इंडिया' में आस्ट्रेलियामें भारतीयोंके प्रति जातीय भेदभावपर लिखा।

२२ मई: साबरमती वापस लौट आये।

के० टी० पॉलको लिखे पत्रमें अपनी फिनलैंड यात्रा स्थगित करनेका सुझाव रखा।

३० मई: ए० ए० पॉलको लिखे पत्रमें चीन-यात्राके निमन्त्रणपर अपनी स्वीकृतिके बारेमें लिखा।

ए० आई० काजी, महासचिव, दक्षिण आफ्रिकी भारतीय कांग्रेस, डर्बनको रंगभेद विधेयकके विरोधमें सभाका वार्षिक अधिवेशन जोहानिसबर्गमें रखनेके प्रस्तावपर सलाह दी।

'नवजीवन' में पूर्वी आफ्रिकी भारतीयोंको सलाह दी कि वे अपने बीच एकता कायम करें और आत्मसम्मानसे रहनेके लिए अपने अन्दर "सत्याग्रहकी शक्ति पैदा करें।"

३ जून: 'यंग इंडिया' में प्रकाशित "कुटिल कानून" शीर्षक लेखमें रंगभेद कानून तथा वर्ग क्षेत्र आरक्षण विधेयकपर विचार और आलोचना की।

६ जून: के० टी० पॉलको लिखे पत्रमें अपनी फिनलैंड यात्रा रद्द करनेकी सूचना दी।

८ जून: रंगभेद विधेयकपर समाचारपत्रके प्रतिनिधिको दी गई एक भेंटमें गांधीजीने विधेयकको "अपमानजनक" कह कर उसकी निन्दा की।

जनकधारी प्रसादको लिखे पत्रमें गांधीजीने कहा कि जो लोग कठिनसे-कठिन विघ्न-बाधाओंके सामने भी डिगनेवाले नहीं हैं, सफलता अन्तमें उन्हींको मिलेगी, क्योंकि मुझे तो असहयोगके अलावा स्वतन्त्रता प्राप्त करनेका कोई और रास्ता दिखाई नहीं देता।

१० जून: 'यंग इंडिया' में "प्रार्थना क्या है" के बारेमें लिखा।

१४ जून: मौन-दिवस। गुजरात महाविद्यालयके विद्यार्थियोंको सन्देश भेजा।

शीर्षक-सांकेतिका

विविध

सांकेतिका

आ

इ

ई

उ

ऋ

ए

ख

ग

घ

च

फ

ब

ल